मूल्य : रु० ४.५०

••

सप्तम संस्करण : १९६६

••

प्रकाशक —जयकृष्ण अग्रवाल, कृष्णा ब्रदर्स, कचहरी रोड, अजमेर
मुद्रक —इण्डिया प्रिण्टर्स, कचहरी रोड, अजमेर

प्राक्कथन

प्रबन्ध परिमल का सातवाँ सस्करण अपने विद्यार्थियो को भेंट करते हुए मुझे सन्तोष और प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। आठ वर्ष पूर्व जब इसका पहला सस्करण लेकर मैं उनके सामने उपस्थित हुआ था तब यद्यपि मुझे २०-२२ वर्षो के अध्ययन का अनुभव था और उसके आधार पर मैंने इसे सर्वाङ्ग सुन्दर एव छात्रोपयोगी बनाने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया था तथापि मेरे मन मे सकोच था। मन मे लगता था कि पता नही अध्यापको और छात्रो को यह पुस्तक पसन्द आएगी या नही, विद्वान् और शिक्षा-शास्त्री इसे प्रामाणिक एव उपयोगी मानेंगे या नही। लेकिन पहले ही वर्ष जब उसका पूरा सस्करण हाथो-हाथ बिक गया और शीघ्र ही दूसरा सस्करण निकला तो मन कुछ आश्वस्त हुआ। इसके बाद तो प्रतिवर्ष नये-नये सस्करण निकलते रहे और यह क्रम अब भी चल रहा है।

यह पुस्तक प्रतिवर्ष कितने ही नये हाथो मे जाती रही है और मुझे समय-समय पर अपने विद्यार्थियो एव अध्यापको से अनेक प्रशसा के पत्र मिलते रहे हैं। कुछ मित्र मुझे उपयोगी सुझाव भी देते रहे है। मैं उन सबका हृदय से आभारी हूँ और उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

इस पुस्तक की इतनी लोकप्रियता और प्रतिवर्ष नये सस्करण निकलने का एक बडा लाभ यह हुआ है कि मुझे प्रतिवर्ष उसमे कुछ सशोधन एव परिवर्द्धन करने का सुअवसर मिलता गया और विद्यार्थियो की आवश्यकता तथा राजस्थान, मध्य प्रदेश और दिल्ली बोर्ड के पाठ्यक्रम को ध्यान मे रखकर उसे सजाता-सवारता रहा। इस सस्करण मे तो इस दृष्टि से मैंने काफी श्रम किया है। इस बार इसमे 'लोकोक्तियाँ और मुहावरे' वाले अध्याय को बिलकुल बदल दिया गया है और उनकी सख्या पहले से चौगुनी कर दी है ताकि छात्रो को उनका अच्छा

ज्ञान हो सके। काव्य गुण पर एक नया अध्याय जोडा गया है और एक स्थल पर नई परीक्षा प्रणाली के प्रश्न भी जोडे गये हैं। निबन्ध तो लगभग आधे बदल दिये हैं। नये निबन्ध नये विषयो पर हैं ताकि विद्यार्थियो को एक ओर नई समस्याओ, नये विकास और नवीन परिवर्तनो का ज्ञान हो तथा दूसरी ओर नवीन विषयो पर निबन्ध लिखने मे कठिनाई न हो। मुझे आशा है छात्रो के लिए यह संस्करण बहुत अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

प्रस्तुत पुस्तक की एक विशेषता यह है कि पाठ्य पुस्तको के अध्ययन के बाद पत्र-लेखन, निबन्ध, व्याकरण, रस, छन्द, अलकार, गुण, लोकोक्तियाँ और मुहावरे, अपठित, लेखक-परिचय, कवि-परिचय, साहित्य के स्वरूप और इतिहास आदि जिन अनेक बातो की आवश्यकता रहती है, वे सब यह एक स्थान पर प्रस्तुत करती है। यद्यपि इन सब विषयो पर अलग-अलग अनेक अच्छी पुस्तके है तथापि विद्यार्थी के पास न तो इतना पैसा है न समय कि वह इन सबको अलग-अलग प्राप्त करे और इनमे से अपने लिये उपयोगी सामग्री का चयन करले। मैंने प्रत्येक नये संस्करण के समय इसे इस दृष्टि से पूर्ण बनाने की कोशिश की है। यदि मेरे विद्वान् मित्र इस सम्बन्ध मे कुछ और सुझाव देंगे तो मैं उनका स्वागत करूंगा।

इसमे कोई सन्देह नही कि इस पुस्तक को लिखते समय मेरे सामने हाई स्कूल और हायर सेकण्डरी परीक्षाएँ और उनके छात्र ही रहे हैं फिर भी मैंने इसे उन्ही तक सीमित न रहने दिया है। मैंने प्रयत्न किया है कि प्रथमा, मध्यमा, कोविद, विद्याविनोदिनी, प्री-यूनीवर्सिटी आदि परीक्षाओ के विद्यार्थी भी इससे लाभ उठा सकें। इससे पुस्तक का कलेवर बढा है और उसकी पृष्ठ संख्या ७०० के आसपास पहुँच गई है। पृष्ठ संख्या जितनी बढती है मूल्य भी उतना ही बढता है और इसका परिणाम यह होता है कि बालको के लिए उसे खरीद पाना कठिन हो जाता है। विद्यार्थियो की इस कठिनाई को ध्यान मे रखकर इस पुस्तक के प्रकाशक श्री जयकिशनजी अग्रवाल ने साढ़े चार रुपये ही इसका मूल्य रखना तय किया और पिछले आठ वर्षो मे सभी चीजो के भाव बढ

जाने पर भी इसका मूल्य नही बढाया। यह एक बडी ही शुभ मनोवृत्ति है और इसके लिए हमे उनका कृतज्ञ होना चाहिए।

इस पुस्तक को तैयार करते समय मैंने इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखा है कि वह परीक्षोपयोगी होने के साथ-साथ ज्ञानवर्द्धक भी हो। इसे परीक्षोपयोगी बनाने के लिए एक ओर मध्यभारत एव राजस्थान बोर्ड की परीक्षाओ मे पूछी जाने वाली लगभग सभी बातो को छूने का प्रयत्न किया गया है एव दूसरी ओर उसे ज्ञानवर्द्धक बनाने के लिए सभी बातो को सरल ढग से कहने का प्रयत्न किया है और इस बात का भी पूरा-पूरा ध्यान रखा है कि वह रुचिवर्द्धक हो। इससे निश्चय ही वह कुञ्जियो, नोट्स और गाइड्स की श्रेणी से ऊपर उठ गई है।

अन्त मे मैं उन अनेक ज्ञात-अज्ञात लेखको और सम्पादको के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिनकी पुस्तको और पत्र-पत्रिकाओ से मुझे इस पुस्तक के लिखने मे उपयोगी सहायता मिली। मैं अपने उन सभी मित्रो और अध्यापको का भी आभारी हूँ जिन्होने इसकी प्रशसा करके मुझे प्रोत्साहित किया और समय-समय पर उपयोगी सुझाव दिये। अन्त मे मैं अपने उन सभी छात्रो और पाठको का भी आभारी हूँ जिन्होने इसे स्नेहपूर्वक अपनाया।

सोनकच्छ (देवास म० प्र०)
जुलाई, १९६६ ई०

बाबूराव जोशी

विषय-सूची

भाषा और व्याकरण

पुरातत्त्व-वेत्ताओ तथा वैज्ञानिको की यह बात सही मालूम होती है, कि सृष्टि के आरम्भ मे मनुष्य असभ्य होगा। उसे न ठीक तरह काम करना आता होगा, न बोलना—बात करना। जैसे-जैसे उसके आचरण मे सस्कार होता गया होगा वैसे-वैसे ही वह सभ्यता की दिशा मे अग्रसर होता गया होगा। हमारी आज की सभ्यता हजारो-लाखो वर्षों के प्रयत्नो का परिणाम है। यदि एक भाषा का ही प्रश्न लें तो उसके विकास मे सैंकडो वर्ष लग गये होगे। प्रारभ मे मनुष्य मूक वातावरण मे घूमता रहता होगा। अपने विचार अभिव्यक्त करने के लिए उसने सबसे पहले सकेतो का आश्रय लिया होगा और कभी सिर हिलाकर, कभी हाथ हिलाकर और कभी अलग-अलग मुद्राएँ बनाकर अपने मन की बात दूसरो को बताने का प्रयत्न किया होगा तथा इसी प्रकार के इशारो के द्वारा दूसरो के मन की बात स्वय जानने का प्रयत्न भी किया होगा। जब सकेतो से पूरा काम चलते न देखा होगा तब ध्वनि का आश्रय लिया होगा और एक लम्बे अर्से तक उसका प्रयोग करने के बाद उसमे सार्थकता आ पाई होगी। भाषा को अपना सही स्वरूप प्राप्त कराने के लिये मानव को जड और चेतन प्रकृति की प्राकृतिक बोलियो का अनुकरण करना पडा होगा, प्राकृतिक क्रियाओ से उत्पन्न होने वाली स्वाभाविक ध्वनियो को सुनना और समझना पडा होगा तथा उन सबके द्वारा बने हुए ध्वनि-सकेतो को अपनाकर अपना मार्ग प्रशस्त बनाना पडा होगा। सक्षेप मे, यही भाषा के जन्म की कहानी होगी।

भाषा के जन्म की यह कहानी केवल कल्पना नही है। वह तथ्यो पर आधारित है। अपनी सामाजिक उपयोगिता एव साकेतिक आधार के कारण वह एक सामाजिक और साकेतिक सस्था ही बन गई है। वह एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा मानव अपने मन के भाव और विचार दूसरो के सामने भली-भाँति प्रकट कर सकता है तथा दूसरो के भाव और विचार स्वय समझ सकता है। भाषा विचार-विनिमय एव भाव-प्रकाशन

का साधन है। वह हमारे सामाजिक व्यवहार का माध्यम है। साहित्याचार्यों के मतानुसार भाषा—'वह व्यक्त ध्वनि-सकेत है, जिसके द्वारा हम किसी वस्तु के विषय मे परस्पर विचार-विनिमय कर सकते हैं।'

भाषा सभ्यता की देन है। अत सभ्यता के विकास के साथ-साथ वह भी परिमार्जित एव परिष्कृत बनती रहती है। जैसे-जैसे समाज का बौद्धिक और मानसिक विकास होता है वैसे-वैसे भाषा भी शक्तिशाली और समृद्ध होती जाती है। इस प्रकार भाषा हमारे पूर्वजो की अनेक पीढियो के परिश्रम का फल है और उनसे विरासत के रूप मे हमे प्राप्त हुई है। समाज मे रहकर, लोगो के सम्पर्क मे आकर तथा उनका अनुकरण करके ही हम भाषा सीख पाते हैं।

भाषा का कोई एक निश्चित स्वरूप नही होता। भिन्न-भिन्न देशो और भिन्न-भिन्न प्रान्तो मे हमे अलग-अलग प्रकार की भाषा दिखाई देती है। कोई देश भाव-प्रकाशन के लिये किसी एक प्रकार की ध्वनि का उपयोग करता है और कोई अन्य देश किसी अन्य प्रकार की ध्वनि का। इस प्रकार भिन्न-भिन्न देशो और प्रातो मे भिन्न-भिन्न ध्वनियो का प्रयोग किया जाता है। प्रत्येक भापा ने ध्वनि के लिये कुछ वर्ण मान लिये हैं। ये वर्ण उस भाषा की ध्वनि के सर्वस्वीकृत चित्र ही हैं। प्रत्येक भाषा के वर्ण अलग-अलग होते हैं और जिस रूप मे उन वर्णों को अकित किया जाता है, उसे लिपि कहा जाता है। हमारे देश मे बगाली, गुजराती, गुरमुखी, मराठी, तेलगू, तमिल, कन्नड आदि बहुत सी भाषाएँ हैं; किन्तु हिन्दी हमारी राष्ट्र-भाषा है। हमारे देश के अधिकाश लोग उसी के द्वारा अपने विचारो को प्रकट करते है। हिन्दी भाषा के वर्ण देवनागरी लिपि मे अकित होते हैं। अत हमारे देश की प्रमुख भाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी है।

भाषा तीन प्रकार की होती है—कथित, लिखित एव साकेतिक। कथित भाषा ध्वनियो से बनी हुई है, उसका प्रयोग केवल बोलने के काम मे होता है। उसमे ध्वनि की प्रधानता होती है। किन्तु दूरस्थ व्यक्ति के प्रति अपने विचार प्रकट करना कठिन होता है। ध्वनि वहाँ तक पहुँच नही पाती है। अत उसके लिये लिखित भाषा का प्रयोग किया जाता

है। लिखित भाषा पढने-लिखने के काम मे आती है। उसका निर्माण अक्षरो के मेल से होता है। अपने दूर के मित्र और सगे-सबधियो से लिखित भाषा (पत्र) के द्वारा ही हम अपना सम्पर्क साधे रहते हैं। लेखो और पुस्तको के रूप मे इस लिखित भाषा की सहायता से ही हमारे पूर्वज ज्ञान और अनुभव की एक बहुत बडी विरासत हमारे लिये छोड गये हैं। प्रारम्भ मे केवल कथित भाषा का प्रचार हुआ होगा और पीछे से जब विचारो को स्थायी रूप देने के लिये लिपि का श्रीगणेश हुआ होगा तब लिखित भाषा चल निकली होगी। साकेतिक भाषा यद्यपि भाषा का प्रारम्भिक रूप था तथापि आजकल भी अनेक प्रकार से उसका प्रयोग किया जाता है। झण्डी, उँगली, सीटी, बत्ती आदि के सकेतो द्वारा युद्ध-स्थल मे और उसके बाहर भी उसका प्रयोग किया जाता है।

सभी भाषाओ मे ध्वनियो के अपने-अपने अलग चिह्न मान लिये जाते हैं। ये माने हुए चिह्न अक्षर कहलाते हैं। अक्षरो के मेल से शब्द बनते हैं और शब्दो के मेल से वाक्य। भाषा इन वाक्यो का मेल है। शब्द सार्थक ध्वनियो का समूह होता है। प्रत्येक शब्द भिन्न-भिन्न विचार और अर्थ को प्रकट करता है। जो शब्द जितना ज्यादा उपयोगी होता है उतना ही बारबार प्रयुक्त होता है और जो शब्द जितना कम उपयोगी होता है उतना ही कम प्रयुक्त होता है। हम ऊपर कह चुके हैं कि वाक्य शब्दो के मेल से बनता है। किन्तु किसी भी वाक्य मे शब्दो का पारस्परिक सम्बन्ध होता है और उस सम्बन्ध को बताने के लिये शब्दो का कुछ निश्चित क्रम भी होता है। वाक्य मे दूसरे शब्दो के साथ अपना सम्बन्ध बताने के लिये शब्द कभी नये-नये रूप बदलता है और कभी दो-तीन या अधिक शब्द मिलकर एक नये शब्द को जन्म दे देते हैं। शब्द के शुद्ध स्वरूप, वाक्यो मे उनके प्रयोग के नियम तथा नये-नये शब्दो के निर्माण से सम्बन्ध रखने वाले प्रश्नो का विवेचन जिस शास्त्र मे किया जाता है उसे 'व्याकरण' कहते हैं। व्याकरण के अध्ययन से शुद्ध भाषा पढने-लिखने और बोलने का ज्ञान होता है। कथित भाषा की अपेक्षा लिखित भाषा का प्रयोग करने मे अधिक सावधानी की आवश्यकता होती है। अत व्याकरण के नियम लिखित भाषा के ही आधार पर

निश्चित किये जाते है । यह बात न भूलना चाहिए कि व्याकरण भाषा के नये नियम नही गढता, वह तो हमे उन्ही नियमो को समझाता है जो शिष्ट-जनो द्वारा स्वीकृत हैं । व्याकरण का अध्ययन भाषा के शुद्ध प्रयोगो का ज्ञान कराता है ताकि हम बोलने और लिखने मे त्रुटियां न करें ।

अपनी कोई भी बात कहने के लिये हमे वाक्य का प्रयोग करना पडता है । वाक्य भाषा का मुख्य अग है । वाक्य शब्दो से बनता है और शब्द वर्ण से । अतः वाक्य, शब्द और वर्ण के विचार से व्याकरण के तीन विभाग होते हैं—वर्ण-विचार, शब्द विचार और वाक्य विचार । जिसमे अक्षरो या वर्णों के उच्चारण, आकार, भेद, सयोग आदि के नियम होते हैं उसे शब्द-विचार कहते है । जिसमे शब्दो की व्युत्पत्ति, भेद, व्यवस्था आदि के नियम होते हैं उसे वर्ण-विचार कहते है और जिसमे शब्दो के द्वारा वाक्य-निर्माण के नियम, वाक्यो के पारस्परिक सम्बन्ध, विश्लेषण आदि के नियम बताये जाते है उसे वाक्य-विचार कहते है ।

अभ्यास

१ भाषा की उत्पत्ति कैसे हुई होगी ?
२ भाषा किसे कहते है ? उसका विकास कैसे हुआ होगा ?
३ लिपि से आप क्या समझते है ? हमारी लिपि का नाम क्या है ?
४ भाषा कितने प्रकार की होती है ?
५ 'कथित, लिखित और साकेतिक भाषाओ का अपना-अपना महत्त्व है।' इस कथन की पुष्टि कीजिये ।
६ व्याकरण किसे कहते है ? उसका क्या महत्त्व है ?
७ व्याकरण के कितने विभाग है ?

वर्ण-विचार

इस अध्याय मे हम वर्णों के आकार, भेद, उच्चारण और उनके परस्पर सयोग के नियमो का अध्ययन करेंगे।

वर्ण उस मूल ध्वनि को कहते है जो विभाजित न हो सके। जैसे · अ, ई, ट्, स, उ, च्, क् आदि। प्रत्येक भाषा मे इस प्रकार के अनेक वर्ण होते हैं। वर्णों के समुदाय को 'वर्ण-माला' कहा जाता है। वर्ण दो प्रकार के होते है—(१) स्वर और (२) व्यञ्जन।

स्वर—उन वर्णों को कहते है जिनका उच्चारण बिना किसी अन्य वर्ण की सहायता के हो सके। जैसे अ, इ, उ। हिन्दी भाषा मे केवल ११ स्वर हैं—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ। सस्कृत वर्ण माला मे ॠ, लृ, ॡ ये तीन स्वर और होते हैं, किन्तु हिन्दी मे इनका प्रयोग नही होता है। हिन्दी मे 'ऋ' का प्रयोग होता है, किन्तु वह भी उन्ही शब्दो मे जो सस्कृत से तत्सम रूप मे आये है। जैसे ऋतु, ऋजु, नृत्य, मृत्यु, ऋण आदि।

स्वर दो प्रकार के होते हैं—मूल स्वर और दीर्घ स्वर। ऊपर जो ११ स्वर बताये गये है उनमे अ, इ, उ, ऋ मूल स्वर है। इनके उच्चारण मे एक मात्रा का समय लगता है। अत इन्हे एक-मात्रिक भी कहते हैं। किन्तु आ, ई, ऊ, ए, ओ, औ, ॠ आदि के उच्चारण मे दो मात्रा का समय लगता है अत इन्हे द्विमात्रिक या दीर्घ स्वर कहते हैं। दीर्घ स्वरो मे आ, ई, ऊ को छोड कर जो चार स्वर ए, ऐ, ओ, औ शेष रहते हैं वे भिन्न-भिन्न स्वरो के मेल से बनते हैं। अत उन्हे सयुक्त स्वर भी कहते हैं। जैसे

अ + इ या ई = ए	अ + उ या ऊ = ओ
अ + ए = ऐ	अ + ओ = औ

व्यजनो के मिलने से स्वर का जो रूप हो जाता है वह उस स्वर की मात्रा कहलाता है। 'अ' की कोई मात्रा नही होती। शेष स्वरो की मात्राएँ इस प्रकार होती हैं

अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ
×	ा	ि	ी	ु	ू	े	ै	ो	ौ

व्यञ्जन—उन वर्णों को कहते हैं जो स्वर की सहायता से बोले जाते हैं। जैसे क्, ख्, च्, ट्, प्। 'अ' के अभाव में इन सबका उच्चारण अस्पष्ट होता है। 'अ' के मेल से इनका उच्चारण स्पष्ट हो जाता है। जैसे क, ख, च, ट, प आदि। हिन्दी में कुल ३३ व्यञ्जन होते हैं, जो इस प्रकार हैं

क, ख, ग, घ, ङ	....	क वर्ग	(१) स्पर्श वर्ण
च, छ, ज, झ, ञ	....	च वर्ग	
ट, ठ, ड, ढ, ण	.	ट वर्ग	
त, थ, द, ध, न	....	त वर्ग	
प, फ, ब, भ, म	...	प वर्ग	
य, र, ल, व	...		(२) अन्तस्थ वर्ण
श, ष, स, ह	....		(३) ऊष्म वर्ण

इनके अतिरिक्त वर्णमाला में तीन और व्यञ्जन हैं, जो 'संयुक्त-व्यञ्जन' कहलाते हैं। ये दो-दो व्यञ्जनों के मेल से बने हैं। जैसे

(१) क्ष=क्+ष (२) त्र=त्+र (३) ज्ञ=ज्+ञ

अनुस्वार ( ), चन्द्र बिन्दु (ँ) और विसर्ग (.) को भी उच्चारण की दृष्टि से व्यञ्जनों में ही गिना जाता है। इनके उच्चारण में स्वर की सहायता लेनी पडती है। इसीलिये इन्हें भी व्यञ्जन कहा जाता है।

वर्णों का उच्चारण और स्थान

वर्णों का उच्चारण भिन्न-भिन्न स्थानों से होता है—किसी का कण्ठ से, किसी का दाँतों से और किसी का ओठ से। वर्ण के उच्चारण में मुख के भीतर के जिस अवयव का प्रयोग होता है वही उस वर्ण का उच्चारण स्थान होता है। इस स्थान भेद के अनुसार वर्णों का वर्गीकरण निम्न प्रकार किया जाता है

कण्ठ्य—वे वर्ण जिनका उच्चारण कण्ठ से होता है। जैसे . अ, आ, क, ख, ग, घ, ङ, ह और विसर्ग ( )।

तालव्य—वे वर्ण जिनका उच्चारण तालु (ऊपर के दाँतों के पीछे का भाग)

मे जिह्वा के स्पर्श से होता है। जैसे · इ, ई, च, छ, ज, झ, ञ, य और श।

मूर्द्धन्य—वे वर्ण जिनका उच्चारण मूर्द्धा (तालु के पीछे का भाग) मे जिह्वा के स्पर्श से होता है। जैसे ऋ, ॠ, ट, ठ, ड, ढ, ण, र, ष।

दन्त्य— वे वर्ण जिनका उच्चारण ऊपर के दातो पर जिह्वा के स्पर्श से होता है। जैसे त, थ, द, घ, न, ल, स।

ओष्ठ्य—वे वर्ण जिनके उच्चारण मे दोनो ओठ मिल जाते है। जैसे · उ, ऊ, प, फ, व, भ, म।

कण्ठ-तालव्य—वे वर्ण जिनका उच्चारण करने मे कण्ठ और तालु दोनो का प्रयोग होता है। जैसे ए, ऐ।

कण्ठ्योष्ठ्य—वे वर्ण जिनके उच्चारण मे कण्ठ और ओठ दोनो का प्रयोग होता है। जैसे ओ, औ।

दन्त्योष्ठ—वे वर्ण जिनका उच्चारण करने मे ऊपर के दांत झटके से नीचे के ओठो का स्पर्श कर हट जाते है। जैसे व।

अनुनासिक—वे वर्ण जिनका उच्चारण मुख और नासिका दोनो से होता है। जैसे ङ, ञ, ण, न, म, अनुस्वार ( ), चन्द्र-विन्दु ( )।

हिन्दी भाषा मे वर्णों का क्रम व्यवस्थित और वैज्ञानिक है। हम स्पष्टत इस प्रश्न का उत्तर दे सकते हैं कि पहला वर्ण 'अ' ही क्यो रखा गया है और इसके वाद क्रमश जो दूसरे वर्ण रखे गये हैं वे भी उस क्रम से क्यो रखे गये है। मुश्किल से ऐसी दूसरी भाषा मिलेगी जो इतनी वैज्ञानिक और व्यवस्थित हो। 'अ' को पहला स्थान इसलिये दिया गया है कि वह मूल ध्वनि है। उसके वाद जो स्वर आते हैं वे भी विकास के ही क्रम से रखे गये है। उदाहरणार्थ अ, आ कण्ठ्य स्वर हैं. इ, ई तालव्य उ, ऊ, ओष्ठ्य तथा उसके वाद आने वाले ए, ऐ और ओ, औ सयुक्त स्वर हैं। इसी तरह हमारी वर्णमाला मे कण्ठ से आगे वढकर तालव्य, मूर्द्धन्य, दन्त्य और ओष्ठ्य वर्णों को क्रमश स्थान प्राप्त हुआ है। इसके अतिरिक्त इन पांच वर्गों मे भी पहले और दूसरे प्रकार के वर्ण कठोर वर्ण हैं, दूसरे और तीसरे प्रकार के कोमल तथा पाँचवे

प्रकार के अनुनासिक । प्रत्येक वर्ग का प्रथम और तृतीय वर्ण अल्पप्राण है तथा द्वितीय और चतुर्थ क्रमश प्रथम और तृतीय के महाप्राण— उनमे हकार की ध्वनि स्पष्ट रूप से सुनाई देती है । अल्पप्राण वर्णों की अपेक्षा महाप्राण वर्णों मे प्राण-वायु का उपयोग अधिक श्रमपूर्वक करना पडता है । उदाहरणार्थ क, क्+ह=ख; ग, ग्+ह=घ आदि । स्वरो को वर्णमाला मे इसलिये प्रथम स्थान दिया गया है कि उनके उच्चारण मे वागिन्द्रिय खुली रहती है और मुँह को विशेष प्रयत्न नही करना पडता । इसी प्रकार व्यन्जनो मे भी पहले स्पर्श वर्णों को स्थान दिया गया है फिर अन्तस्थ और बाद मे ऊष्म वर्णों को । कारण यह है कि स्पर्श वर्णों के उच्चारण मे वागिन्द्रिय का कही न कही स्पर्श होता है किन्तु अन्तस्थ वर्णों के उच्चारण मे वागिन्द्रिय कुछ कुछ खुली रहती है । ऊष्म वर्णो के उच्चारण मे एक प्रकार का घर्षण होता है । इस प्रकार हिन्दी वर्णमाला की वैज्ञानिकता एव क्रम-बद्धता स्पष्ट है । यदि अग्रेजी, उर्दू या अन्य किसी भाषा की वर्णमाला से हम अपनी वर्णमाला की तुलना करें तो यह भेद बिलकुल स्पष्ट हो जायगा ।

अभ्यास

१ वर्ण किसे कहते हैं ?

२ स्वर और व्यन्जन मे क्या अन्तर है ?

३ स्वर कितने हैं और व्यन्जन कितने हैं ?

४. वर्णों के उच्चारण-स्थान से क्या समझते हो ? सब वर्णों के उच्चारण-स्थान अलग-अलग बताओ ।

५ निम्नलिखित वर्णों के उच्चारण के स्थान बताओ
ड, थ, प, ह, स, घ, च, ञ, म, न, द, ढ, क्ष, त्र, ज्ञ, क, ध, फ और त ।

६ सिद्ध कीजिये कि हिन्दी वर्णमाला वैज्ञानिक और व्यवस्थित है ।

——

सन्धि

दो अक्षरो या वर्णों के पास-पास आने से या यो कहिये कि उनके मेल से जो विकार होता है उसे सन्धि कहते है। यह विकार उच्चारण की सुगमता के कारण होता है। सीधे सादे शब्दो मे कहे तो अक्षरो के मेल को सन्धि कहते हैं। सन्धि मे दो अक्षरो का मेल होता है और इस मेल के परिणाम-स्वरूप विकार होता है अर्थात् उनके स्थान पर एक भिन्न वर्ण आ जाता है। उदाहरणार्थ, धर्मार्थ=धर्म+अर्थ, यहाँ अ+अ मिलकर 'आ' हो गया है। दिगम्बर=दिक्+अम्बर, यहाँ क्+अ मिलकर 'ग' हो गया है। भानूदय=भानु+उदय, यहाँ उ+उ मिलकर 'ऊ' हो गया है।

यह न भूलना चाहिये कि दो अक्षरो के मेल से सयुक्ताक्षर भी बनते है। जब दो या तीन व्यञ्जन मिलते हैं और उनके बीच स्वर नही होता, तो उनके मेल को सन्धि नही कहा जाता। 'मत्स्य', 'महात्मा' इसी प्रकार के सयुक्ताक्षर हैं। सन्धि और सयुक्ताक्षर मे केवल यही अन्तर है कि सन्धि मे दो अक्षरो के मेल से एक भिन्न अक्षर बनता है जब कि सयुक्ताक्षर मे ऐसा नही होता।

सन्धि तीन प्रकार की होती है (१) स्वर-सन्धि, (२) व्यञ्जन-सन्धि और (३) विसर्ग-सन्धि।

(१) स्वर-सन्धि—दो स्वरो के पास आ जाने पर उनके मेल से जो परिवर्तन होता है उसे स्वर-सन्धि कहते है। जैसे रामानुज=राम+अनुज। महाशय=महा+आशय।

(२) व्यञ्जन सन्धि—जब एक व्यञ्जन दूसरे व्यञ्जन अथवा स्वर से मिले और उनके मिलने से जो परिवर्तन हो उसे व्यञ्जन-सधि कहते हैं। जैसे सज्जन=सत्+जन। वाङ्मय=वाक्+मय।

(३) विसर्ग सन्धि—जब विसर्ग के साथ स्वर अथवा व्यञ्जन का मेल हो और उसके मिलने से जो परिवर्तन हो उसे विसर्ग-सन्धि कहते हैं। जैसे अधोगति=अधः+गति। निर्गुण=निः+गुण।

स्वर-सन्धि

स्वर-सन्धि के पांच भेद हैं (१) दीर्घ, (२) गुण, (३) वृद्धि, (४) यण्, (५) अयादि।

(१) **दीर्घ सन्धि**—जब ह्रस्व या दीर्घ अ, इ, उ, ऋ के साथ क्रमश ह्रस्व या दीर्घ अ, इ, उ, ऋ मिले तो दोनो के स्थान पर क्रमश दीर्घ स्वर आ, ई, ऊ, ॠ हो जाते हैं। जैसे ·

परमार्थ	=	परम + अर्थ	(अ + अ = आ)
वाचनालय	=	वाचन + आलय	(अ + आ = आ)
शिक्षार्थी	=	शिक्षा + अर्थी	(आ + अ = आ)
महाशय	=	महा + आशय	(आ + आ = आ)
कवीन्द्र	=	कवि + इन्द्र	(इ + इ = ई)
कपीश	=	कपि + ईश	(इ + ई = ई)
महीन्द्र	=	मही + इन्द्र	(ई + इ = ई)
जानकीश	=	जानकी + ईश	(ई + ई = ई)
भानूदय	=	भानु + उदय	(उ + ऊ = ऊ)
लघूर्मि	=	लघु + ऊर्मि	(उ + ऊ = ऊ)
वधूत्सव	=	वधू + उत्सव	(ऊ + उ = ऊ)
भूर्ध्व	=	भू + ऊर्ध्व	(ऊ + ऊ = ऊ)
मातृण	=	मातृ + ऋण	(ऋ + ऋ = ऋ)

(२) **गुणसन्धि**—गुण-सधि उस सन्धि को कहते हैं जिसमे 'अ' अथवा 'आ' के पश्चात् इ अथवा ई के आने से 'ए' हो जाता है। अथवा 'अ' या 'आ' के वाद 'उ' या 'ऊ' आने से 'ओ' हो जाता है, अथवा 'अ' या 'आ' के वाद 'ऋ' आने से 'अर्' हो जाता है। जैसे

वीरेन्द्र	=	वीर + इन्द्र	(अ + इ = ए)
सुरेश	=	सुर + ईश	(अ + ई = ए)
महेन्द्र	=	महा + इन्द्र	(आ + इ = ए)
रमेश	=	रमा + ईश	(आ + ई = ए)
सर्वोदय	=	सर्व + उदय	(अ + उ = ओ)

जलोर्मि	=	जल + ऊर्मि	(अ + ऊ = ओ)
गङ्गोदक	=	गङ्गा + उदक	(आ + उ = ओ)
महोर्मि	=	महा + ऊर्मि	(आ + ऊ = ओ)
देवर्षि	=	देव + ऋषि	(आ + ऋ = अर्)
महर्षि	=	महा + ऋषि	(आ + ऋ = अर्)

(३) **वृद्धि सन्धि**—जब 'अ' या 'आ' के बाद 'ए' या 'ऐ' हो तो दोनो के मेल से 'ऐ' हो जाता है तथा जब 'अ' या 'आ' के आगे 'ओ' या 'औ' होने से उसके मेल से 'औ' हो जाता है, तो उसे वृद्धि सन्धि कहा जाता है । जैसे .

एकैक	=	एक + एक	(अ + ए = ऐ)
मतैक्य	=	मत + ऐक्य	(अ + ऐ = ऐ)
सदैव	=	सदा + एव	(आ + ए = ऐ)
महैश्वर्य	=	महा + ऐश्वर्य	(आ + ऐ = ऐ)
जलौघ	=	जल + ओघ	(अ + ओ = औ)
वनौषधि	=	वन + औषधि	(अ + औ = औ)
महौज	=	महा + ओज	(आ + ओ = औ)
महौदार्य	=	महा + औदार्य	(आ + औ = औ)

(४) **यण सन्धि**—जब ह्रस्व या दीर्घ 'इ', 'उ', 'ऋ' के बाद कोई असवर्ण (विजातीय) स्वर आता है तो क्रमश 'य्', 'व्' और 'र्' हो जाते है, इस परिवर्तन को यण् सन्धि कहते हैं । जैसे

यद्यपि	=	यदि + अपि	(इ + अ = य)
इत्यादि	=	इति + आदि	(इ + आ = या)
प्रत्युपकार	=	प्रति + उपकार	(इ + उ = यु)
प्रत्येक	=	प्रति + एक	(इ + ए = ये)
देव्यर्पण	=	देवी + अर्पण	(ई + अ = य)
देव्याङ्गण	=	देवी + आङ्गण	(ई + आ = या)
नद्यर्पण	=	नदी + अर्पण	(ई + अ = य)
सख्युचित	=	सखी + उचित	(ई + उ = यु)
नद्यूर्मि	=	नदी + ऊर्मि	(ई + ऊ = यू)

मन्वन्तर	=	मनु + अन्तर	(उ + अ = व)
स्वागत	=	सु + आगत	(उ + आ = वा)
अन्वीक्षण	=	अनु + ईक्षण	(उ + ई = वी)
अन्वेषण	=	अनु + एषण	(उ + ए = वे)
बह्वैश्वर्य	=	बहु + ऐश्वर्य	(उ + ऐ = वै)
वध्वागमन	=	वधू + आगमन	(ऊ + आ = वा)
पित्रनुमति	=	पितृ + अनुमति	(ऋ + अ = र)
मात्रानन्द	=	मातृ + आनन्द	(ऋ + आ = रा)

(५) **अयादि सन्धि**—जब 'ए', 'ऐ', 'ओ', 'औ' के बाद कोई भिन्न स्वर आता है और उसके परिणाम-स्वरूप वह क्रमश 'अय्', 'आय्', 'अव्', 'आव्' हो जाता है तो उस परिवर्तन या विकार को अयादि सन्धि कहते है । जैसे

नयन	=	ने + अन	(ए + अ = अय)
गायन	=	गै + अन	(ऐ + अ = आय)
पवन	=	पो + अन	(ओ + अ = अव)
नाविक	=	नौ + इक	(औ + इ = आव)

व्यञ्जन-सन्धि

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है व्यञ्जन के साथ व्यञ्जन या स्वर के मेल से जो विकार या परिवर्तन होता है उसे व्यञ्जन सन्धि कहते है । व्यञ्जन सन्धि मे विकार प्राय पहले व्यञ्जन मे होता है । जैसे—जगदीश = जगत् + ईश (त् + ई = दी) । किन्तु जब दो व्यञ्जन मिलते हैं तो विकार दोनो व्यञ्जनो मे पाया जाता है । जैसे—सच्छास्त्र = सत् + शास्त्र (त् + श = च + छ् = च्छ)। व्यञ्जन सन्धि के दस प्रमुख नियम हैं—

पहला नियम—यदि क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग और प वर्ग मे से किसी के प्रथम अक्षर अर्थात् क्, च्, ट्, त्, प् के आगे अनुनासिक वर्ण हो अथवा कोई घोष वर्ण हो तो पहिले वर्ण के स्थान पर उसी वर्ग का तीसरा अक्षर (ग्, ज्, ड्, द्, ब्) हो जाता है । जैसे—

वाग्बल	=	वाक् + बल
षड्दर्शन	=	षट् + दर्शन

अजन्त	=	अच् + अन्त
अब्ज	=	अप् + ज

दूसरा नियम—यदि किसी वर्ग के प्रथम अक्षर के बाद कोई अनुनासिक वर्ग आए तो प्रथम वर्ण के स्थान पर उसी का अनुनासिक वर्ण हो जाता है। जैसे

वाङ्मय	=	वाक् + मय
षण्मास	=	षट् + मास
जगन्नाथ	=	जगत् + नाथ
चिन्मात्र	=	चित् + मात्र
अम्मय	=	अप् + मय

तीसरा नियम—यदि 'छ' से पहले कोई स्वर हो तो 'छ' के स्थान पर 'च्छ' हो जाता है। जैसे

आच्छादन	=	आ + छादन
परिच्छेद	=	परि + छेद

चौथा नियम—यदि 'त्', 'द्' के आगे 'श्' हो तो 'त्' या 'द्' के स्थान पर 'च्' और 'श्' के स्थान पर 'छ्' हो जाता है। यदि 'त्' या 'द्' के आगे 'ह' हो तो 'त्' या 'द्' के स्थान पर 'द्' तथा 'ह्' के स्थान पर 'घ्' हो जाता है। जैसे

सच्छास्त्र	=	सत् + शास्त्र
उच्छ्वास	=	उत् + श्वास
तद्धित	=	तत् + हित
उद्धार	=	उत् + हार

पाँचवाँ नियम—यदि 'त्' या 'द्' के आगे 'च्' या 'छ्' हो तो 'त्' या 'द्' के स्थान पर 'च्' हो जाता है। यदि 'त्' या 'द्' के आगे 'ज्' 'झ्' हो तो 'ज्' हो जाता है और यदि 'ट्' या 'ढ्' हो तो 'ड्' और 'ल्' हो तो 'ल्' हो जाता है। जैसे

उच्चारण	=	उत् + चारण
शरच्चन्द्र	=	शरत् + चन्द्र
सच्छात्र	=	सत् + छात्र

सज्जन	=	सत्	+	जन
तल्लीन	=	तत्	+	लीन
उल्लसित	=	उत्	+	लसित

छठा नियम—यदि 'त्' के आगे कोई स्वर अथवा ग, घ, द, घ, ब, म अथवा य, र, ल, व हो तो 'त्' के स्थान पर 'द्' हो जाता है। जैसे

सदानन्द	=	सत्	+	आनन्द
भगवदिच्छा	=	भगवत्	+	इच्छा
सद्गति	=	सत्	+	गति
उद्दीपन	=	उत्	+	दीपन
जगदीश	=	जगत्	+	ईश
सद्धर्म	=	सत्	+	घर्म
उद्योग	=	उत्	+	योग
तद्रूप	=	तत्	+	रूप

सातवाँ नियम—यदि 'म्' के आगे अन्तस्थ या ऊष्म वर्ण हो तो 'म' के स्थान पर अनुस्वार रह जाता है। जैसे

सयोग	=	सम्	+	योग
सहार	=	सम्	+	हार
सवाद	=	सम्	+	वाद
सरक्षण	=	सम्	+	रक्षण
सलग्न	=	सम्	+	लग्न

आठवाँ नियम—यदि 'म्' के आगे 'क' से लेकर 'म' तक कोई वर्ण हो तो 'म्' के स्थान पर उस वर्ण के वर्ग का पञ्चम वर्ण हो जाता है। जैसे :

सङ्गम	=	सम्	+	गम
सङ्कल्प	=	सम्	+	कल्प
सञ्चय	=	सम्	+	चय
सन्तोष	=	सम्	+	तोष
सम्पूर्ण	=	सम्	+	पूर्ण

नौवां नियम—यदि किसी स्वर के आगे 'अ', 'आ' को छोड कर ऐसा शब्द हो जिसका पहला अक्षर 'स' हो तो 'स' के स्थान पर 'ष' हो जाता है। जैसे .

विषम	=	वि	+	सम
निषिद्ध	=	नि	+	सिद्ध
अभिषेक	=	अभि	+	सेक
सुषमा	=	सु	+	समा
सुषुप्त	=	सु	+	सुप्त
अनुष्ठान	=	अनु	+	स्थान

दसवां नियम—यदि यौगिक शब्दो मे प्रथम शब्द के अन्त मे 'न' हो तो उसका लोप हो जाता है। जैसे

राजाज्ञा	=	राजन्	+	आज्ञा
प्राणीमात्र	=	प्राणिन्	+	मात्र

विसर्ग सन्धि

व्यञ्जन सन्धि की तरह विसर्ग सन्धि के भी कुछ नियम है, जो इस प्रकार हैं

पहला नियम—यदि विसर्ग के पहले 'अ' हो और बाद मे क, ख, प, फ मे से कोई वर्ण हो तो विसर्ग मे किसी प्रकार का परिवर्तन नही होता। जैसे

मन कामना	=	मन	+	कामना
अन्त करण	=	अन्त	+	करण
प्रात काल	=	प्रात	+	काल
पय पान	=	पय	+	पान
पय फेन	=	पय	+	फेन
अध पतन	=	अध	+	पतन
तेज पुञ्ज	=	तेज	+	पुञ्ज

दूसरा नियम—यदि विसर्ग के पहिले 'इ' या 'उ' हो और बाद मे 'क', 'ख', 'प', 'फ' हो तो विसर्ग का लोप होकर 'ष्' हो जाता है। जैसे .

निष्कपट	=	नि	+	कपट
दुष्प्रकृति	=	दु	+	प्रकृति
वहिष्कार	=	बहि	+	कार
निष्फल	=	नि	+	फल
निष्काम	=	नि	+	काम
चतुष्फल	=	चतु	+	फल

तीसरा नियम—यदि विसर्ग के पहले 'अ' हो और बाद मे घोष व्यञ्जन हो तो 'अ' के स्थान पर 'ओ' हो जाता है। जैसे

यशोभिलाषी	=	यश	+	अभिलाषी
अधोगति	=	अध	+	गति
यशोगान	=	यश.	+	गान
मनोभाव	=	मन	+	भाव
नभोमण्डल	=	नभ	+	मण्डल
मनोरजन	=	मन	+	रजन
मनोवृत्ति	=	मन.	+	वृत्ति
वयोवृद्ध	=	वय	+	वृद्ध
मनोहर	=	मन	+	हर

चौथा नियम—यदि विसर्ग के आगे 'च', 'छ' हो तो विसर्ग का 'श्', 'ट्', 'ठ्' हो तो विसर्ग का 'ष्' और 'त', 'थ' हो तो विसर्ग का 'स्' जाता है। जैसे

निश्चल	=	नि	+	चल
निश्छल	=	नि	+	छल
दुश्चरित्र	=	दु	+	चरित्र
निष्ठुर	=	नि	+	ठुर
मनस्ताप	=	मन	+	ताप
निस्तेज	=	नि	+	तेज
दुस्तर	=	दु	+	तर

पाँचवाँ नियम—यदि विसर्गों के बाद 'श', 'ष', 'स' मे से कोई वर्ण आए तो विसर्ग ज्यो का त्यो रहता है, जैसे :

दु शासन	=	दुः	+	शासन
नि शेष	=	नि.	+	शेष
पुर सर	=	पुर.	+	सर
नि सन्देह	=	नि	+	सन्देह

छठा नियम—यदि विसर्ग के पहले 'अ', 'आ' को छोड कर कोई अन्य स्वर हो तथा आगे कोई घोष वर्ण हो तो विसर्ग के स्थान पर 'र्' हो जाता है। जैसे ·

निराशा	=	नि	+	आशा
निरीक्षण	=	नि	+	ईक्षण
निरुत्तर	=	नि	+	उत्तर
निर्गुण	=	नि	+	गुण
निर्घोष	=	नि	+	घोष
निर्जन	=	नि	+	जन
निर्झर	=	नि	+	झर
निर्दय	=	नि	+	दय
वहिर्मुख	=	वहि	+	मुख
दुराशा	=	दु	+	आशा
प्रादुर्भाव	=	प्रादु	+	भाव
दुर्लभ	=	दु	+	लभ

सातवाँ नियम—यदि विसर्ग के आगे 'र' हो तो विसर्ग का लोप करके पूर्व स्वर दीर्घ कर दिया जाता है। जैसे

नीरस	=	नि	+	रस
नीरोग	=	नि	+	रोग

अभ्यास

१ सन्धि किसे कहते है ?

२ सन्धि के कितने भेद है ? प्रत्येक की परिभाषा देकर स्पष्ट कीजिये ।

३ स्वर सन्धि के कितने भेद है ?

४ निम्नलिखित शब्दो का सन्धि-विच्छेद करके बताइये कि वहाँ कौनसी सन्धि है

अभिषेक, उच्छिन्न, वागीश, तथैव, महर्षि, उन्नत, नायक, महोत्सव, निस्सार, निष्काम, परोपकार, सर्वोदय, अन्त्योदय, स्वेच्छा, नरेश, उमेश, निर्भय, प्रत्युपकार, प्राङ्मुख, अन्त करण, निष्पाप, तद्रूप, मनोनीत, हितोपदेश, हिमालय और दिग्गज ।

५ निम्नलिखित शब्दो मे सन्धि कीजिये

सत् + आचार, देवी + आगम, मन + विज्ञान, पय. + फेन, गुरु + आज्ञा, एक + एक, इति + आदि, परम + उज्ज्वल, तथा + एव, बहि + कार, नि' + सिद्ध, नि + कलक, महा + औदार्य, जल + ऊर्मि, पुन + आगमन, उत् + लघन, विधु + उदय, भारत + इन्दु ।

शब्द विचार

अक्षरो से शब्द बनते हैं। शब्द वह ध्वनि है जो कानो से सुनाई पडती है। शब्द दो प्रकार के होते हैं—(१) सार्थक और (२) निरर्थक। सार्थक शब्द उन शब्दो को कहते हैं जिनसे किसी अर्थ का बोध होता है और निरर्थक शब्द उन शब्दो को कहते हैं जिनसे किसी अर्थ का बोध नही होता।

सार्थक शब्दो का वर्गीकरण चार प्रकार से किया जाता है

(१) उत्पत्ति के अनुसार (२) व्युत्पत्ति के अनुसार
(३) अर्थ के अनुसार (४) परिवर्तन के अनुसार

१. उत्पत्ति के अनुसार शब्दो के भेद

हमारी हिन्दी भाषा का मूल स्रोत सस्कृत है। उसे इस वर्तमान रूप मे आते-आते अनेक प्रभावो से प्रभावित होना पडा है। हमारे देश मे मुसलमानो और यूरोप-निवासियो के आगमन के कारण फारसी, अरबी, अग्रेजी, फ्रेंच, पोर्तुगीज, डच तथा इसी प्रकार की अन्य भाषाओ के शब्द भी आये और अब वे सब हमारी हिन्दी भाषा का ही अग बन गये हैं। अत हिन्दी भाषा मे प्रमुखत पाँच प्रकार के शब्द पाये जाते हैं—(अ) तत्सम, (आ) तद्भव, (इ) देशज, (ई) अनुकरण-वाचक एव (उ) विदेशी।

(अ) तत्सम वे शब्द है जो मूल सस्कृत से आये है और बिना किसी विकार के ज्यो के त्यो हिन्दी भाषा के अङ्ग बन गये है, जैसे श्री, चन्द्र, अग्नि, वरुण, सूर्य, ज्ञान, छिद्र आदि।

(आ) तद्भव वे शब्द हैं जो मूलत सस्कृत के ही हैं, किन्तु अब विकृत रूप मे प्रयुक्त होते हैं। जैसे सूरज (सूर्य), चाँद (चन्द्र), काठ (काष्ठ), गाँव (ग्राम), आग (अग्नि) आदि।

(इ) देशज वे शब्द है जो सस्कृत भाषा से न तो तत्सम रूप मे आये हैं न तद्भव रूप मे, किन्तु हिन्दी भाषा मे विद्यमान हैं और हमको

जिनकी उत्पत्ति का ठीक-ठीक पता नही है। जैसे : लोटा, कटोरा, जूता, खिडकी, टहनी आदि।

(ई) अनुकरण-वाचक शब्द उन शब्दो को कहते हैं जिनका निर्माण पशु-पक्षियो की वोली या पदार्थों के अनुकरण के आधार पर हुआ है, जैसे चूँ-चूँ, म्याऊ-म्याऊ आदि।

(उ) विदेशी वे शब्द हैं जो विदेशियो के सम्पर्क से हमारी भाषा मे आ गये हैं। ये न सस्कृत के तत्सम व तद्भव शब्द हैं न देशज। ये विदेशी भाषाओ के शब्द हैं और हिन्दी मे घुल-मिलकर हमारी भाषा के ही अङ्ग वन गये हैं। जैसे अग्रेजी के टिकट, कार्ड, पार्सल, मेल, स्टेशन, पेन्सिल आदि, पोर्तुगीज के पादरी, गिर्जा, अस्पताल आदि। अरवी के कागज, बुखार, जरूरत, गरीब आदि और फारसी के सिक्का, गुलाव, लगाम, गवाह आदि।

२ व्युत्पत्ति के अनुसार शब्दो के भेद

व्युत्पत्ति के अनुसार शब्दो के तीन भेद होते हैं—(अ) रूढि, (आ) यौगिक (इ) योगरूढि।

(अ) रूढि शब्द वे हैं जो किसी से वने हुए प्रतीत नही होते। यदि खण्ड करके भी उनका अर्थ निकालने का प्रयत्न किया जाता है तो उससे भी उनका कोई अर्थ नही निकलता। जैसे. कुत्ता, विल्ली, हाथी, कौआ आदि।

(आ) योगिक उन शब्दो को कहते हैं जिनका निर्माण किन्ही दो या दो से अधिक शब्दो के योग से हुआ है। यदि हम उनके खण्ड करें तो सरलता से अर्थ निकलता है। जैसे स्वानुभव, राजपथ, स्वाभिमान, सज्जन आदि।

(इ) योगरूढि उन शब्दो को कहते हैं जो योगिक शब्दो की तरह यद्यपि दो या दो से अधिक शब्दो से वने हुए होते हैं तथापि उनका अपना विशेष अर्थ होता है। जैसे दशानन, पञ्चानन, पवनसुत, यशोदा-नन्दन, जानकीवल्लभ आदि।

३. अर्थ के अनुसार शब्दो के भेद

अर्थ के अनुसार शब्दों के तीन भेद होते हैं—(अ) वाचक, (आ) लाक्षणिक (इ) व्यजक ।

(अ) वाचक शब्द वे है जिनका अर्थ सीधा व सरल होता है और जिनके समझने में कठिनाई नही होती, जैसे चाय, बकरी, माता, पिता, घर, पेड, पत्थर आदि ।

(आ) लाक्षणिक वे शब्द हैं जिनका अर्थ लक्षण के द्वारा मालूम होता है, जैसे कैलाशवासी । कैलाशवाशी शब्द का अर्थ वैसे कैलाश मे रहने वाला होता है, किन्तु लक्षण से उसका अर्थ होता है—मृत ।

(इ) व्यजक वे शब्द हैं जिनका अर्थ न तो वाचक शब्दो की तरह सीधा सरल हो न लाक्षणिक शब्दो की तरह लक्षण से ही प्रतीत हो, किन्तु जिसका अर्थ इन दोनो से भिन्न हो । जैसे घण्टी बजी, सिगनल गिरा । घण्टी बजने से हमारा आशय उसके शब्द विशेष से नही अपितु इस बात से होता है कि स्कूल का काम प्रारम्भ हो रहा है । इसी प्रकार सिगनल गिरने से हमारा आशय उस क्रियाविशेप से नही अपितु इस बात से होता है कि गाडी आने ही वाली है ।

परिवर्तन के अनुसार शब्दो के भेद

परिवर्त्तन के अनुसार शब्दो के दो भेद होते हैं—(अ) विकारी और (आ) अविकारी ।

(अ) विकारी शब्द वे हैं जो लिङ्ग, वचन, कारक के अनुसार बदलते हैं । जैसे मैं, मोहन, चलना आदि ।

(आ) अविकारी शब्द वे हैं जो लिङ्ग, वचन, कारक के अनुसार नही बदलते । जैसे जल्दी-जल्दी, वाह-वाह आदि ।

विकारी शब्द चार प्रकार के होते हैं—सज्ञा, क्रिया, सर्वनाम और विशेषण । अविकारी शब्द भी चार प्रकार के होते हैं—क्रिया विशेषण, सम्बन्धबोधक, समुच्चयबोधक और विस्मयादिबोधक ।

अभ्यास

१—शब्द किसे कहते हैं ?

२—उत्पत्ति के अनुसार शब्दो के कितने भेद हैं ? प्रत्येक को उदाहरण देकर समझाइये ।

३—व्युत्पत्ति के अनुसार शब्दो के कितने भेद होते हैं ? योगरूढि शब्दो के पाँच उदाहरण दीजिये ।

४—परिवर्त्तन के अनुसार शब्दो के कितने भेद हैं ? बताइये ।

५—विकारी और अविकारी शब्दो का भेद समझाइये ।

विकारी - शब्द

शब्दो के उस समूह को जो कहने वाले का आशय पूरी तरह प्रकट कर देता है वाक्य कहते हैं । वाक्य मे प्रयोग के अनुसार साधारणत शब्द तीन प्रकार के होते हैं—सज्ञा, क्रिया और अव्यय ।

सज्ञा

किसी मनुष्य, स्थान, वस्तु या गुण के नाम को सज्ञा कहते हैं । सज्ञा के तीन भेद होते हैं—(१) व्यक्ति-वाचक (२) जाति-वाचक और (३) भाव-वाचक ।

(१) **व्यक्ति-वाचक संज्ञा**—जिस सज्ञा से एक जाति की एक वस्तु अथवा व्यक्ति का बोध हो उसे व्यक्ति-वाचक सज्ञा कहते हैं । जैसे : मोहन, हिमालय, गङ्गा, बम्बई, कैलाश आदि ।

(२) **जाति-वाचक संज्ञा**—जिस सज्ञा से एक जाति की एक से अधिक वस्तुओ का बोध हो उसे जाति-वाचक सज्ञा कहते है । जैसे नदी, पशु, पक्षी, मनुष्य, वैश्य आदि ।

(३) **भाव-वाचक संज्ञा**—जिस सज्ञा से किसी वस्तु या पदार्थ की स्थिति, गुण, दोष आदि का वोध हो उसे भाव-वाचक सज्ञा कहते हैं । जैसे गहराई, मिठास, उँचाई, विनयशीलता, सुन्दरता आदि ।

लिंग

जिस रूप से वस्तु की जाति का बोध होता है उसे लिंग कहते हैं । लिंग दो प्रकार के होते हैं (१) पुल्लिग और (२) स्त्रीलिंग ।

(१) **पुल्लिग**—पुरुषजाति के बोधक शब्द को पुल्लिग कहते हैं । जैसे . लडका, बैल, बकरा, हाथी, शेर आदि ।

(२) **स्त्रीलिंग**—स्त्रीजाति के बोधक शब्द को स्त्रीलिंग कहते है । जैसे लडकी, गाय, बकरी, हथिनि, शेरनी आदि ।

वस्तुत जिन जीवधारियो का जोडा होता है और नर व मादा बतलाने वाले शब्दो का प्रयोग भाषा मे होता है उनका लिङ्ग-भेद यथार्थ है और उन्हे मालूम करना भी सरल पडता है । किन्तु दूसरी वस्तुओ का लिङ्ग-भेद कल्पित होता है और प्रयोग से ही जाना जाता है ।

(१) अकारान्त अथवा आकारान्त प्राणीवाचक पुंल्लिग शब्दो के अन्त मे 'ई' लगाने से स्त्रीलिग बनता है—
चेला-चेली, चाचा-चाची, मामा-मामी, दादा-दादी, दास-दासी, गोप-गोपी, देव-देवी, लडका-लडकी, बेटा-बेटी, बकरा-बकरी, घोडा-घोडी।

(२) निरादर अथवा प्रेम मे कही कही 'ई' के बदले 'इया' लगाने से भी स्त्रीलिग बनता है—
कुत्ता-कुतिया, लोटा-लुटिया, चूहा-चूहिया, बेटा-बिटिया, बच्छा-बछिया।

(३) जातियो के पुंल्लिग नामो मे प्राय 'इन' लगाते हैं तो स्त्रीलिग बन जाता है—
अहीर-अहीरन, भगी-भगिन, चमार-चमारिन, जमादार-जमादारिन, माली-मालिन, काछी-काछिन, पुजारी-पुजारिन, धोबी-धोबिन, कुम्हार-कुम्हारिन, मजदूर-मजदूरिन।

(४) पशुओ के नाम मे 'नी' लगाकर भी स्त्रीलिग बनाया जाता है—
मोर-मोरनी, हस-हसनी, रीछ-रीछनी, सियार-सियारिनी, हरिण-हरिणी, शेर-शेरनी, हाथी-हथनी, ऊँट-ऊँटनी।

(५) उपनाम-वाचक सज्ञाओ के अन्त मे 'आइन' लगा दिया जाता है—
दुबे-दुबाइन, पडित-पडिताइन, चौबे-चौबाइन, पाठक-पाठकाइन, सुकुल-सुकुलाइन, मिश्र-मिश्राइन।

(६) कई एक शब्द ऐसे भी है जिनमे उपर्युक्त कोई नियम लागू नही होता। इनमे पुंल्लिग और स्त्रीलिग शब्द अलग-अलग होते हैं—
पुरुष-स्त्री, राजा-रानी, सास-ससुर, युवा-युवती, बैल-गाय, बन्दर-बन्दरी, सम्राट-सम्राज्ञी, विद्वान-विदुषी, भाई-बहिन, माता-पिता, कौआ-कोयल, वर-वधू, छात्र-छात्रा।

वचन

सज्ञा या दूसरे विकारी शब्दो के जिस रूप से सख्या का बोध होता है उसे 'वचन' कहते हैं। वचन दो प्रकार के होते हैं—(१) एक-वचन

और (२) बहु-वचन ।

(१) **एक-वचन**—जिस शब्द से एक वस्तु का बोध होता है उसे एक-वचन कहते हैं । जैसे पुस्तक, घडी, पेटी, नदी आदि ।

(२) **बहु-वचन**—जिस शब्द से एक से अधिक वस्तुओ का बोध होता है उसे बहु-वचन कहते हैं । जैसे : पुस्तकें, घडिया, पेटियाँ, नदियाँ आदि ।

कुछ ऐसे भी शब्द हैं जिनका रूप दोनो वचनो मे एक ही रहता है । जैसे

एक-वचन	बहु-वचन
वह बालक आ रहा है ।	वे बालक आ रहे हैं ।

आदर के लिए भी बहु-वचन का प्रयोग होता है । उदाहरणार्थ आज हमारे प्रधान मन्त्री आ रहे हैं, महारानी जा रही हैं, सन्त तुलसीदास कहते हैं ।

कारक

सज्ञा या सर्वनाम के जिस रूप से उसका सम्बन्ध वाक्य के किसी दूसरे शब्द के साथ—विशेषत क्रिया के साथ—प्रकट होता है, उसे कारक कहते है । जैसे · सरकार ने उत्तर प्रदेश मे कैदियो से एक बडा बाँध बनवा दिया । इस वाक्य मे 'सरकार ने', 'उत्तर प्रदेश मे', 'कैदियो से', 'बाँध' आदि सज्ञाओ के रूपान्तरो के द्वारा उनका सम्बन्ध क्रिया के साथ सूचित होता है । कारक आठ हैं—कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण और सम्बोधन ।

(१) **कर्त्ता**—क्रिया के करने वाले को कर्त्ता कारक कहते है ।

(२) **कर्म**—जिस वस्तु पर क्रिया के व्यापार का फल पड़ता है, उसे सूचित करने वाले सज्ञा के रूप को कर्म कारक कहते है ।

(३) **करण**—जिस साधन से क्रिया होती है उसे सूचित करने वाले रूप को करण कारक कहते हैं ।

(४) **सम्प्रदान**—जिसको कुछ दिया जाता है या जिसके लिए कोई क्रिया की जाती है उसे सूचित करने वाले रूप को सम्प्रदान कारक कहते हैं ।

(५) **अपादान**—जिस वस्तु का किसी से पृथक् होना पाया जाता है उसे अपादान कारक कहते हैं।

(६) **सम्बन्ध**—जिस वस्तु का लगाव किसी दूसरी वस्तु से प्रकट होता है वह सम्बन्ध कारक होता है।

(७) **अधिकरण**—क्रिया का आधार अर्थात् समय, स्थान आदि सूचित करने के लिए जो रूप काम मे लिया जाता है, उसे अधिकरण कारक कहते है।

(८) **सम्बोधन**—सज्ञा के जिस रूप से किसी को पुकारना सूचित होता है उसे सम्बोधन कारक कहते है।

सस्कृत भाषा मे सम्बोधन कारक को छोड कर सभी कारको को विभक्तियो के नाम से पुकारा जाता है। प्रत्येक कारक की विभक्ति और चिह्न निम्न प्रकार हैं.

कारक	विभक्तियाँ	चिह्न
कर्त्ता	प्रथमा	ने
कर्म	द्वितीया	को
करण	तृतीया	से
सम्प्रदान	चतुर्थी	के लिए, को
अपादान	पञ्चमी	से (सबन्ध-विच्छेद)
सम्बन्ध	षष्ठी	का,की,के,रा,री,रे,ना,नी,ने
अधिकरण	सप्तमी	मे, पे, पर
सम्बोधन	अष्ठमी	हे, हो, अरे

सर्वनाम

सर्वनाम उस शब्द को कहते हैं जो किसी भी सज्ञा के बदले प्रयुक्त किया जाता है। जैसे यह, वह, मैं, आप, वे, हम आदि।

सर्वनाम पाँच प्रकार के होते हैं—(१) पुरुष-वाचक, (२) निश्चय-वाचक,(३) अनिश्चय-वाचक,(४) सम्बन्ध-वाचक और (५) प्रश्न-वाचक।

(१) **पुरुष-वाचक**—जिन सर्वनामो का प्रयोग पुरुष के स्थान पर किया जाता है, उन्हे पुरुष-वाचक सर्वनाम कहते है। ये तीन प्रकार के होते है :-

१—मैं, हम (उत्तम-पुरुष)

२—तू, तुम, आप, वे (मध्यम-पुरुष)

३—यह, ये, वह, वे, अपना (अन्य-पुरुष)

(२) **निश्चय-वाचक**—जिस सर्वनाम से किसी वस्तु या पदार्थ के विषय मे ठीक-ठीक और निश्चित ज्ञान हो उसे निश्चय-वाचक सर्वनाम कहते है। जैसे . यह, ये, वह, वे।

(३) **अनिश्चय-वाचक**—जिस सर्वनाम से किसी वस्तु अथवा पदार्थ के बारे मे निश्चित ज्ञान न हो, उसे अनिश्चय-वाचक सर्वनाम कहते हैं। जैसे : कुछ, कोई।

(४) **सम्बन्ध-वाचक**—जिस सर्वनाम से दो भिन्न बातो का सम्बन्ध प्रकट हो उसे सम्बन्ध-वाचक सर्वनाम कहते हैं। जैसे जो, सो, आदि।

(५) **प्रश्न-वाचक**—जिस सर्वनाम से किसी प्रश्न का बोध हो उसे प्रश्न-वाचक सर्वनाम कहते हैं। जैसे · क्या, कौन, आदि।

विशेपण

जो शब्द किसी नाम या सर्वनाम के अर्थ मे कोई विशेषता कर देता है उसे विशेपण कहते हैं और जिस नाम या सर्वनाम के अर्थ मे ऐसी विशेषता हो जाती है उसे विशेष्य कहते हैं। जैसे रामलाल की नई पुस्तक दिखाओ। इस वाक्य मे 'नई' विशेषता है, 'पुस्तक' विशेष्य। विशेषण चार प्रकार के होते हैं—(१) गुण-वाचक, (२) सख्या-वाचक, (३) परिमाण-वाचक और (४) सकेत-वाचक।

(१) **गुण-वाचक विशेषण**—जो शब्द किसी वस्तु का रग, आकार, अवस्था, गुण, स्थान, काल आदि बताते है वे गुण-वाचक विशेपण कहे जाते है। जैसे · लाल, पीला, सुडौल, भला, बुरा, लम्बा-चौडा, सीधा आदि।

(२) **संख्या-वाचक विशेषण**—जिस शब्द के द्वारा किसी सज्ञा या सर्वनाम की गणना, क्रम आदि का बोध हो उसे सख्या-वाचक सर्वनाम कहते है। जैसे · तीन, चार, सात आदि। सख्या-वाचक विशेपण के दो भेद होते हैं—निश्चयवाचक और अनिश्चय-वाचक। निश्चय-वाचक निश्चित सख्या का बोध कराता है,अनिश्चयवाचक अनिश्चित सख्या का।

जैसे पहला, दूसरा, आठ (निश्चय-वाचक), कोई, कुछ (अनिश्चय-वाचक) ।

(३) **परिमाण-वाचक विशेषण**—जिस शब्द से किसी वस्तु की नाप-तोल का बोध होता है उसे परिमाण-वाचक विशेषण कहते हैं । जैसे सेरभर, गजभर आदि ।

(४) **संकेत-वाचक विशेषण**—जो शब्द किसी सज्ञा या सर्वनाम की ओर सकेत करता है उसे सकेत-वाचक विशेषण कहते हैं । जैसे . यह (घोडा), वह (लडका) आदि ।

क्रिया

जिस शब्द से किसी काम के करने या होने का बोध होता हो उसे क्रिया कहते हैं । जैसे : दौडना, भागना, चलना, उठना, देना, लेना आदि । क्रिया के दो भेद होते हैं—अकर्मक और सकर्मक । किन्तु इनके अतिरिक्त उसके तीन और भेद होते हैं—द्विकर्मक-क्रिया, सयुक्त-क्रिया तथा प्रेरणार्थक-क्रिया ।

(१) **सकर्मक क्रिया**—जिस क्रिया का व्यापार और फल कर्त्ता को छोडकर कर्म पर आश्रित हो उसे सकर्मक क्रिया कहते हैं । जैसे सोहन नाटक देखता है ।

(२) **अकर्मक-क्रिया**—जिस क्रिया का व्यापार और फल कर्त्ता तक ही सीमित हो, उसे अकर्मक क्रिया कहते है । जैसे मोहन गाता है ।

(३) **द्विकर्मक क्रिया**—वे क्रियाए जो दो कर्म रखती हैं द्विकर्मक क्रिया कही जाती हैं । जैसे . सोहन ने मोहन को गाय वेची । इस वाक्य मे 'वेची' क्रिया के सोहन और गाय दो कर्म हैं ।

(४) **संयुक्त क्रिया**—जो कियाए भिन्नार्थक क्रियाओ के मिश्रण से वनती हैं उन्हे सयुक्त क्रियाए कहा जाता है । जैसे मोहन ने खाना खा लिया ।

(५) **प्रेरणार्थक क्रिया**—जव कर्त्ता स्वयं अपने कर्म को न करके किसी अन्य से कराए तो उसे प्रेरणार्थक क्रिया कहते हैं । जैसे—किशन पोस्ट-मास्टर से पत्र पढवाता है ।

क्रियाओ मे वाच्य, काल, पुरुष, लिङ्ग आदि के द्वारा विकार ोता है ।

वाच्य

वाच्य से प्रकट होता है कि किसी क्रिया का वास्तविक कर्त्ता कस कारक मे रखा गया है । वाच्य तीन प्रकार के होते हैं—कर्तृ वाच्य, र्म वाच्य और भाव-वाच्य ।

(१) **कर्तृ-वाच्य**—जिस क्रिया का वास्तविक कर्त्ता कर्त्ताकारक मे खा गया हो उस वाक्य की क्रिया कर्तृवाच्य क्रिया कही जाती है । ैसे राम अग्रेजी सीखता है, हलवाई मिठाई बनाता है आदि ।

(२) **कर्म-वाच्य**—जिस क्रिया का मूल कर्त्ता करणकारक मे हो ौर उसका कर्म कर्त्ताकारक मे हो तो उस वाक्य की क्रिया कर्म-वाच्य क्रया कहलाती है । जैसे मुझसे इतना बोझ नही उठाया जाता, द्यार्थियो को सैर के लिए ले जाया जा रहा है आदि ।

(३) **भाव-वाच्य**—जब अकर्मक-क्रिया का मूल कर्त्ता करणकारक । हो और कर्त्ता कारक मे कोई शब्द न हो तो ऐसे वाक्य की क्रिया ाव-वाच्य क्रिया कहलाती है । जैसे वर्षा मे चला नही जाता, यहाँ से बैठा जायगा आदि ।

कर्तृ-वाच्य से कर्म-वाच्य या भाव-वाच्य बनाना और कर्म-वाच्य । भाव-वाच्य से कर्तृ-वाच्य बनाना 'वाच्य-परिवर्त्तन' कहा जाता है ।

काल

क्रिया के रूपान्तर को, जिससे क्रिया के व्यवहार का समय तथा सकी पूर्ण अपूर्ण अवस्था का बोध होता है, 'काल' कहा जाता है । ाल तीन प्रकार के होते हैं—वर्तमान, भूत और भविष्यत् ।

र्तमान-काल के पाँच भेद होते हैं—

(अ) सामान्य वर्तमान . जैसे वह खाता है ।
(आ) अपूर्ण वर्तमान ... जैसे वह खा रहा है ।
(इ) सन्दिग्ध वर्तमान ... जैसे वह खाता होगा ।
(ई) सम्भाव्य वर्तमान .... जैसे शायद वह खाता होगा ।
(उ) पूर्ण वर्तमान ... जैसे उसने खा लिया है ।

भूत-काल के छः भेद होते है

(अ) सामान्य भूत .... जैसे राम ने खाना खाया ।
(आ) आसन्न भूत .... जैसे राम ने खाना खाया है ।
(इ) अपूर्ण भूत .... जैसे . राम खाना खा रहा था ।
(ई) पूर्ण भूत .... जैसे राम ने खाना खाया था ।
(उ) सन्दिग्ध भूत .... जैसे राम ने खाना खाया होगा ।
(ऊ) हेतुहेतुमदभूत .... जैसे . यदि राम खाना खा लेता तो अब तक आ जाता ।

भविष्यत्-काल के दो भेद होते हैं :

(अ) सामान्य-भविष्यत् .... जैसे . राम खाना खाएगा ।
(आ) समाव्य भविष्यत् .... जैसे समवत राम खाना खाए ।

अभ्यास

१—सज्ञा किसे कहते हैं ? उसके कितने भेद हैं ?
२—लिङ्ग कितने प्रकार के होते हैं ?
३—वचन से आप क्या समझते है ? ऐसे तीन शब्द बताओ जिनका रूप दोनो वचनो मे एक ही रहता है ।
४—कारक कितने हैं ? उनकी विभक्तियाँ चिह्न सहित बताओ ।
५—सर्वनाम कितने प्रकार के होते है ? अनिश्चय-वाचक और सम्बन्ध वाचक सर्वनाम को सोदाहरण समझाइये ।
६—विशेषण और विशेष्य से आप क्या समझते हैं ?
७—परिमाणवाचक और सज्ञा-वाचक विशेषण की परिभाषा लिखिये ।
८—क्रिया कितने प्रकार की होती हैं ?
९—क्या अकर्मक और सकर्मक क्रिया के अतिरिक्त भी क्रिया के कोई अन्य भेद होते हैं ? यदि हां, तो कितने ?
१०—वाच्य किसे कहते हैं ? वाच्य परिवर्तन से आप क्या समझते हैं ?
११—काल किसे कहते हैं ? भूतकाल के भेदो का सविस्तार वर्णन कीजिये ।

अविकारी-शब्द

जो अविकारी शब्द क्रिया की विशेषता का वोध कराते हैं वे क्रिया-विशेपरण कहे जाते हैं। जैसे राम जल्दी-जल्दी दौडता है। यहाँ 'जल्दी-जल्दी' क्रियाविशेपरण है। क्रियाविशेषरण चार प्रकार के होते है-(१) काल-वाचक (२) स्थान-वाचक, (३) रीति-वाचक और (४) परिमाण-वाचक।

(१) **काल-वाचक क्रिया-विशेषण**—जिन अविकारी शब्दो मे क्रिया के व्यापार का काल निश्चित हो उसे काल-वाचक क्रिया-विशेषरण कहते है। जैसे—किन्तु, कब, रात, कल, परसो, अभी-अभी, निरतर, अब तक आदि।

(२) **स्थान-वाचक क्रिया-विशेषण**—जिन अविकारी शब्दो से क्रिया के व्यापार-स्थान का वोध हो उसे स्थान-वाचक क्रिया-विशेषरण कहते है। जैसे वहाँ, कहाँ, यहाँ, इधर, उधर, ऊपर, नीचे, आसपास आदि।

(३) **रीति-वाचक क्रिया-विशेषण**—जिन अविकारी शब्दो से क्रिया के व्यापार की रीति जानी जाय उन्हे रीति-वाचक क्रिया-विशेपरण कहते हैं। रीति-वाचक क्रिया विशेषरण सात प्रकार के होते है

(१) निश्चय-वाचक	अवश्य, नि सन्देह।
(२) अनिश्चय-वाचक	सभवत, कदाचित्।
(३) प्रकार-वाचक	ऐसे, वैसे, जैसे, इस तरह।
(४) स्वीकार-वाचक	हाँ, ठीक।
(५) कारण-वाचक	अत, इसलिए, क्योकि।
(६) निपेध-वाचक	नही, मत।
(७) अवधारण-वाचक	तो, हो, बस।

(४) **परिमाण-वाचक क्रिया-विशेषण**—जिन अविकारी शब्दो से क्रिया का परिमाण सूचित हो उन्हे परिमाण-वाचक क्रिया-विशेषरण कहते हैं। जैसे थोडा, बडा, कम आदि। परिमाण-वाचक क्रिया-विशेपरण के पाँच भेद होते हैं.

(१) अधिक-वाचक अधिक, अत्यन्त, बहुत, बडा ।
(२) न्यूनता-वाचक कम, थोड़ा, अल्प ।
(३) पर्याप्ति-वाचक ठीक, बस, पर्याप्त ।
(४) तुलना-वाचक जितना, उतना ।
(५) श्रेणी-वाचक थोडा, एक-एक करके ।

१ सम्बन्ध-वाचक अव्यय—

जो अविकारी शब्द सज्ञा या सर्वनाम के शब्दो से पहले और पीछे उनका सम्बन्ध किसी अन्य शब्द से कराए वे सम्बन्ध-बोधक अव्यय कहे जाते हैं । जैसे . तुल्य, समान, मध्य, भीतर, निकट, योग्य, सामने आदि ।

२. समुच्चय-बोधक अव्यय—

जो अविकारी शब्द दो शब्दो अथवा दो वाक्यो को मिलाते है उन्हे समुच्चय-बोधक अव्यय कहते हैं । जैसे · और, तथा, एव आदि । समुच्चय-बोधक दो प्रकार के होते हैं—(१) सयोजक (२) विभाजक ।

(१) सयोजक—वे अव्यय जो दो शब्दो को मिलाते हैं सयोजक अव्यय कहे जाते है । जैसे : तो, भी, जो, तथापि, तथा, यदि, तथा आदि ।

(२) विभाजक—जो अविकारी शब्द दो शब्दो या वाक्यो को जोडते हुए भी भाव को भिन्न ही रखें उन्हे विभाजक अव्यय कहते हैं । जैसे अथवा, पर, लेकिन, अपितु, वरना, या, वा, वल्कि आदि ।

३ विस्मयबोधक अव्यय

जो अविकारी शब्द विस्मय, आश्चर्य, हर्ष, घृणा, शोक आदि प्रकट करें उन्हे विस्मयादि बोधक अव्यय कहते है । जैसे अरे !, ओ हो !, हे !, धिक् !

अभ्यास

१—अविकारी शब्दो से आप क्या समझते हैं ?
२—क्रिया-विशेषण के कितने भेद है ? उनके नाम बताओ ।
३—रीति-वाचक क्रिया-विशेषण के भेद उदाहरण सहित बताइये ।
४—निम्नलिखित वाक्यो मे से क्रिया-विशेषण पहिचान कर बताइये कि वे किस प्रकार के क्रिया-विशेषण हैं ?

(अ) शायद राम कल जाए, मैं ठीक-ठीक तो वता नही सकता ।

(आ) मैं यह वात इसलिए नही कहता हूँ कि मुझे अभी अभी इसकी निश्चित खवर मिल चुकी है ।

(इ) वस, इतने से ही परेशान हो गये ।

(ई) जो यहाँ आदर का पात्र है वह वहाँ भी आदर का पात्र रहेगा ।

५—सम्वन्ध-वोधक अव्यय से आप क्या समझते हैं ? उसके उदाहरण दीजिये ।

६—सयोजक और विभाजक समुच्चय-वोधक अव्यय के भेद समझाइये ।

तद्भव और तत्सम शब्द

तद्भव	तत्सम	तद्भव	तत्सम
अकाज	अकार्य्य	आठ	अष्ट
अछत	अक्षत	आयसु	आदेश
अँगूठा	अगुष्ठ	आरज	आर्य
अगाडी	अग्राड़ी	आलस	आलस्य
अच्छर	अक्षर	इमली	अम्लीका
अजान	अज्ञान	ईख	ईक्षु
अटारी	अट्टालिका	उँगली	अङ्गुलि
अठारह	अष्टादश	उछाह	उत्साह
अनत	अन्यत्र	उपास	उपवास
अनमना	उन्मन	ऊँचा	उच्च
अपूत	अपुत्र	उल्लू	उलूक
अमिय	अमृत	उसास	उच्छ्वास
अमोल	अमूल्य	ओठ	ओष्ठ
अरपन	अर्पण	औगुण	अवगुण
असीम	आशिष	औतार	अवतार
अस्तुति	स्तुति	कङ्गन	कङ्कण
अहीर	आभीर	कछुआ	कच्छप
आक	अर्क	कडवा	कटु
आँख	अक्षि	कतरनी	कर्तरी
आग	अग्नि	कपूर	कर्पूर
आँगन	अङ्गण	कबूतर	कपोत
आँचर	अञ्चल	कंध	स्कन्ध
आज	अद्य	कपूत	कुपुत्र
आँसू	अश्रु	करम	कर्म

तद्भव	तत्सम	तद्भव	तत्सम
कसेरा	कास्यकार	गाँव	ग्राम
कहार	कर्मकार	गाजर	गर्जर
काँख	कक्ष	गाडी	गन्त्री
काठ	काष्ठ	गाडीवान	गन्त्रीक
कातिक	कार्तिक	गाहक	ग्राहक
किवाड	कपाट	गीध	गृद्ध
किसान	कृषक	गुन	गुण
कीरति	कीर्ति	गेहूँ	गोधूम
कुआ	कूप	ग्यारह	एकादश
कुम्हार	कुम्भकार	ग्वाला	गोपाल
केवट	कैवर्त	गोखरू	गोक्षुर
केहरी	केशरी	गोबर	गोमय
केला	कदली	घडी	घटी
कोढ	कुष्ठ	घर	गृह
कोइल	कोकिल	घरनी	गृहिणी
कौआ	काक	घिन	घृणा
खटिया	खट्वा	घी	घृत
खत्री	क्षत्रिय	घोसी	घोषी
खम्भ	स्तम्भ	घोडा	घोटक
खार	क्षार	चकवा	चक्रवाक
खान	खदान	चमडा	चर्म
खीर	क्षीर	चमार	चर्मकार
खुर	क्षुर	चन्दा	चन्द्र
खेत	क्षेत्र	चहुँदिसि	चतुर्दिक
गड्ढा	गर्त	चाँदनी	चन्द्रिका
गधा	गर्दभ	चितेरा	चित्रकार
गवार	ग्रामीण	चून	चूर्ण
गाँठ	ग्रन्थि	चैत	चैत्र

तद्भव	तत्सम	तद्भव	तत्सम
चोंच	चञ्चु	जूआ	द्यूत
चोकोर	चतुष्कोण	जेठ	ज्येष्ठ
चौखट	चतुष्काष्ठ	जोति	ज्योति
चौदह	चतुर्दश	जोतिष	ज्योतिष
चौथा	चतुर्थ	जोधा	योद्धा
चौपाया	चतुष्पद	जौ	यव
चौबे	चतुर्वेदी	जोवन	यौवन
चौमासा	चतुर्मास	टकसाल	टङ्कशाला
छः	षट्	डङ्क	दश
छकडा	शकट	तम्बोली	ताम्लिक
छत्री	क्षत्रिय	ताम्बा	ताम्र
छाता	छत्र	तासु	तस्य
छमा	क्षमा	तिगुन	त्रिगुण
छिन	क्षण	तीखा	तीक्ष्ण
छीन	क्षीण	तीरथ	तीर्थ
छेद	छिद्र	तेरस	त्रयोदशी
जती	यति	तिरसूल	त्रिशूल
जथा	यथा	थन	स्तन
जनेऊ	यज्ञोपवीत	थल	स्थल
जन्त्र	यन्त्र	थान	स्थान
जम	यम	दतौन	दन्तधावन
जशोदा	यशोदा	दही	दधि
जाचक	याचक	दाद	दद्रु
जामिनी	यामिनी	दिया	दीप
जांघ	जङ्घा	दिवाली	दीपावली
जीभ	जिह्वा	दीठ	दृष्टि
जुग	युग	दुबला	दुर्बल
जुगत	युक्ति	दूजा	द्वितीय

तद्भव	तत्सम	तद्भव	तत्सम
दूध	दुग्ध	पसीना	प्रस्वेद
दूब	दूर्वा	पन्द्रह	पञ्चदश
धतूरा	धत्तूर	पलङ्ग	पर्यङ्क
धीरज	धैर्य	पहर	प्रहर
धेवता	दौहित्र	पाँख	पक्ष
धोती	धोत्र	पात	पत्र
नखत	नक्षत्र	पाँचवाँ	पञ्चम
नाई	नापित	पाँव	पाद
नाक	नासिका	पास	पार्श्व
नाच	नृत्य	पाटी	पट्टिका
नारियल	नारिकेल	पापड़	पर्पट
निवाह	निर्वाह	पाहन	पाषाण
नींद	निद्रा	पिय	प्रिया
नीबू	निम्बूक	पितर	पितृ
निठुर	निष्ठुर	पीपल	पिप्पल
नीम	निम्ब	पूछ	पुच्छ
नेवला	नकुल	पूरा	पूर्ण
नौमी	नवमी	पोथी	पुस्तिका
नौ	नव	पौन	पवन
पकवान	पक्वान	प्यास	पिपासा
पचास	पचाशत्	प्रगट	प्रकट
पतोहू	पुत्रवधू	फन्दा	पाश
पत्थर	प्रस्तर	फटिका	स्फटिक
पन	प्रण	फरसा	परशु
पनही	पनाह्ी	फुर्ती	स्फूर्ति
परख	परीक्षा	फुलका	फुल्ल
परस	स्पर्श	फोडा	स्फोटक

तद्भव	तत्सम	तद्भव	तत्सम
बकरा	बर्कर	भीतर	आभ्यन्तर
बचन	वचन	भूखा	बुभुक्षु
बच्चा	वत्स	भौह	भ्रू
बछडा	वत्स	मकड़ी	मर्कट
बहरा	बघिर	मक्खी	मक्षिका
बड	वट	मग	मार्ग
बरात	वरयात्रा	मगर	मकर
बहिन	भगिनी	मच्छ	मत्स्य
बहनोई	भगिनीपति	मच्छर	मशक
बहू	वधू	मछली	मत्स्य
बाँस	बस	मनिहार	मणिकार
बासुरी	वशी	मरघट	मृतघट्ट
बिगाड़	विग्रह	मशहरी	मशकहरी
बिघन	विघ्न	मसान	श्मशान
बिजली	विद्युत्	मामा	मातुल
बिथा	व्यथा	मारग	मार्ग
बीट	विष्ठा	मावस	अमावस्या
बैंगन	वार्तिकी	मिर्च	मारिच
बैन	वाणी	मीत	मित्र
ब्याह	विवाह	मोगरी	मुग्दर(या मुद्गर)
भवर	भ्रमर	रतालु	रक्तालु
भतीजा	भ्रातृज	राजपूत	राजपुत्र
भरम	भ्रम	रात	रात्रि
भानजा	भागिनेय	रीछ	ऋक्ष
भादो	भाद्र	लच्छन	लक्षण
भाभी	भ्रातृवधू	लछमी	लक्ष्मी
भावज	भ्रातृजाया	लहसन	लहशुन
भीख	भिक्षा		

तद्भव	तत्सम	तद्भव	तत्सम
लीपना	लेपन	सूआ	शुक
लुहार	लोहकार	सूण्ड	शुण्ड
लौंग	लवंग	सूत	सूत्र
लोढा	लोष्ट	सूना	शून्य
लोमडी	लोमशा	सूर	शूर
शीशम	शिंशपा	सेंध	सन्धि
सतसई	सप्तशति	सेमल	शाल्मली
सनीचर	शनिश्चर	सोना	स्वर्ण
सवेरा	सुवेला	हथनी	हस्तिनि
सरवर	सरोवर	हल्दी	हरिद्रा
सरसों	सर्षप	हिरण	हरिण
सलाई	शलाका	हींग	हिंगु
ससुर	श्वसुर	हीरा	हीरक
साँप	सर्प	हुलास	उल्लास
साखी	साक्षी	होठ	ओष्ठ
साग	शाक	होतव	भवितव्य
साडी	साटी	होली	होलिका
साली	श्याली	हिय	हृदय
साला	श्याला	हाथ	हस्त
सास	श्वश्रू	हरख	हर्ष
सिंगार	शृङ्गार	हत्यारा	हत्याकर
सींग	शृङ्ग	हुँडी	हुण्डी
सीख	शिक्षा	हाँक	हुङ्कार
सीढ़ी	श्रेणी	हँसी	हास्य
सुनार	स्वर्णकार	हिंडोरा	हिंदोला
सुमिरन	स्मरण	हाट	हट्ट
ससुराल	श्वसुरालय	हाथी	हस्ती
सुहाग	सौभाग्य	हुलसन	उल्लसन
सूअर	शूकर	हरा	हरित

पर्यायवाची, विपरीतार्थक एवं अनेकार्थक शब्द

१—पर्यायवाची शब्द

भाषा मे एक ही अर्थ को बताने वाले प्राय. कई शब्द होते हैं। यहाँ इसी प्रकार के कुछ शब्द दिये जा रहे हैं

अग्नि—अनल, कृशानु, पावक, वह्नि, ज्वाला, वैश्वानर, दहन, हुताशन।

अनादर—अपमान, परिभव, निरादर, तिरस्कार, अवहेलना, अवज्ञा।

अमृत—सुधा, अमी, पीयूष, सुरभोग, सोम।

अरण्य—वन, विपिन, कानन, जङ्गल, अटवी।

अन्धकार—तम, तिमिर, अन्धेरा, तमिस्र, ध्वान्त।

आकाश—अन्तरिक्ष, नभ, अम्बर, व्योम, गगन, तारापथ, अनन्त।

आम—रसाल, आम्र, सहकार, मधुदूत, पिकबन्धु, कोषी।

आँख—नयन, नेत्र, लोचन, चक्षु, विलोचन, अक्षि, दृग।

आनन्द—हर्ष, आह्लाद, प्रसन्नता, सुख, मोद, प्रमोद।

इच्छा—आकाक्षा, स्पृहा, लिप्सा, मनोरथ, लालसा, कामना, अभिलाषा।

इन्द्र—सुरेश, पुरन्दर, शक्र, वासव, सुरपति, पर्वतारि, देवेन्द्र, मघवा।

कमल—नलिन, शतदल, अरविंद, राजीव, कोकनद, सरोज, अम्बुज वारिज, जलज, तामरस, पङ्कज, सारङ्ग, शतपत्र, उत्पल।

कल्पवृक्ष—सुरतरु, पारिजात, कल्पतरु, कल्पद्रुम, मदार, देववृक्ष।

कामदेव—मदन, अनग, कदर्प, मार, मन्मथ, मनसिज, पुष्पशर, मीनकेतु, काम, स्मर, प्रद्युम्न, मनोभव, पचशर, रतिपति।

किरण—रश्मि, कर, अशु, मरीचि, मयूख, दीधिति।

कोकिल—पिक, वसन्त-दूत, कोयल, काकलीक, परभृत, वनप्रिय।

खल—अधम, पामर, नीच, दुष्ट, दुर्जन, कुटिल, धूर्त, लठ।

गणेश—गणनायक, विनायक, विघ्नराज, एकदन्त, गजानन, लम्बोदर, वक्रतुण्ड, द्वैमातुर, शूर्पकर्ण, गणाधिप।

गङ्गा—भागीरथी, सुरसरि, त्रिपथगा, जाह्नवी, मदाकिनी, देवापगा।

गाय—गौ, धेनु, सुरभि, गोरू, उस्रा, अघन्या।

घर—आगार, अयन, निकेतन, भवन, धाम, सदन, गृह, सद्म, निलय ।
घोडा—तुरग, तुरग, वाजि, अश्व, हय, कच्छी, घोटक, सैन्धव ।
चन्द्रमा—निशापति, तारापति, शशि, इन्दु, सोम, विधु, सुधाशु, कलानिधि, क्षपाकर, रजनीश, मयक, शशाक, द्विजराज ।
चाँदनी—चन्द्रिका, कौमुदी, ज्योत्स्ना, हिमकर, चन्द्रमरीची, अमृत द्रव ।
चाँदी—रजत, जातरूप, रुक्म, कलधौत, रौप्य, रूपा ।
जल—पय, नीर, अम्बु, वारि, सलिल, उदक, तोय, जीवन, अप् ।
जीभ—रसना, जिह्वा, रसज्ञा, रसिका ।
झण्डी—ध्वजा, पताका, वैजयन्ती, कदलिका ।
डरावना—भीषण, भीष्म, भयकर, कराल, विकराल, भीम ।
ढाक—पलास, टेसू, केसू, किंशुक, रक्त, पुष्पक, सुपर्णी ।
तरकश—तूण, तूणीर, निषग, उपासङ्ग, तूर्णी, इषुधि ।
तलवार—करवाल, खड्ग, असि, कृपाण, चन्द्रहास ।
तालाब—सर, सरोवर, तडाग, पुष्कर, ताल, कासार, जलाशय, सरसी ।
दाँत—दशन, रदन, दन्त, मुखक्षुर, द्विज ।
दिन—दिवस, वासर, दिवा, वार, अहन् ।
दुर्गा—भवानी, गोरी, गिरिजा, शिवा, उमा, चण्डी, पार्वती ।
दूध—दुग्ध, क्षीर, पय ।
देवता—देव, अमर, अमर्त्य, सुर, विबुध, वसु, वृन्दारक ।
धन—वित्त, सम्पत्ति, अर्थ, द्रव्य, सम्पदा, दौलत, लक्ष्मी ।
धनुष—चाप, शरासन, कोदण्ड ।
नदी—सरिता, तटनी, तरगिनी, निम्नगा, अपगा, सरि ।
नाव—तरी, पोत, जलयान, नौका, नौ, तरिणी ।
पक्षी—खग, विहग, शकुनि, शकुन्त, पतग, अण्डज ।
पडित—वुध, विद्वान्, सुधी, कोविद, प्राज्ञ, मनीषी ।
पत्थर—अश्म, पाषाण, शिला, उपल, प्रस्तर, पाहन ।
पर्वत—पहाड, गिरि, धरणीधर, शैल, अद्रि, नग, महीधर, भूधर, अचल ।
पवन—वायु, समीर, वात, अनिल, पवमान, बयार, समीरण, मारुत ।
प्रत्यञ्चा—शिंजिनी, मौर्वी, गुण, ज्या, गोदा, पनच ।

पृथ्वी—भू, भूमि, अवनि, धरित्री, कु, वसुन्धरा, क्षोणी, अचला, वसुमती, वसुधा, मही, रसा, मेदिनी पुहुमि, क्षिति ।

पुरुष—मनुष्य, जन, मनुज, मानव, नर, मर्त्य ।

पुत्र—सुत, तनय, आत्मज, औरस, तनुज, अपत्य ।

पुत्री—सुता, तनया, आत्मजा, लडकी, तनुजा, दुहिता, सुता ।

फूल—सुमन, प्रसून, पुष्प, कुसुम, पुहुप ।

बादल—जलद, पयोद, वारिधर, जलधर, वारिवाह, सारग, मेघ, नीरद, अम्बुद, जीमूत ।

बन्दर—कपीश, हरि, मर्कट, शाखामृग, वानर, कपि, कीश ।

बसन्त—ऋतुराज, मधु, माधव, कुसुमाकर, पिकानन्द ।

बिजली—विद्युत्, चञ्चला, चपला, तडित, सौदामिनी, घनवाण, घनप्रिया ।

बुद्धि—धी, मनीषा, प्रज्ञा, मेधा, मति ।

बाग—आराम, उद्यान, उपवन, वाटिका, बगीचा ।

ब्राह्मण—विप्र, भूदेव, भूमिसुर, द्विज, महीदेव, अग्रजन्मा, वेदपाठी ।

भौरा—अलि, मधुप, भृग, मधुकर, भ्रमर, षट्पद, मिलिन्द, चचरीक ।

भौह—भ्रू, भ्रकुटि, तन्द्रिका, प्रतीला, भौं, भव ।

महादेव—शिव, त्रिलोचन, चन्द्रमौलि, त्रिपुरारि, नीलकण्ठ, शभु, शकर, पशुपति, गौरीश, गङ्गाधर, महेश, उमापति, हर ।

मछली—उलूपी, पाठीन, झष, जलज, मीन, मकर, मत्स्य ।

मदिरा—मधु, शराब, मद्य, हाला, वारुणी, सुरा ।

माला—सुमिरणी, मलिका, माल्य, दाम ।

मित्र—सुहृद, तात, हितू, प्रिया, अभिन्न-हृदय, स्नेही ।

मुकुट—किरीट, शेखर, कोटीर, मौलि, अवतन्स ।

मृग—कृष्णसार, हरिण, भीरु, हृदय, कुरग, करसायर ।

मेढक—दादुर, मण्डूक, भेक, शालूर, प्लव ।

मोर—सारग, केकी, शिखी, कलापी, नीलकण्ठ ।

यम—काल, यमराज, शमन, सूर्य-पुत्र, महिषवाहन, कृतान्त ।

यमुना—रवितनया, रविनन्दिनी, यमी, रविजा, कृष्णा, कालिन्दी ।

राजा—नृप, नरेश, महीपति, भूपति, महीप, महिपाल, अवनीश, नरपति ।

रात्रि—निशि, यामिनी, रैन, तमी, निशीथ, शर्वरी, रजनि, क्षपा ।
राक्षस—निशिचर, निशाचर, यातुधान, मनुजाद, असुर, दानव, दैत्य ।
लक्ष्मी—रमा, कमला, श्री, इन्दिरा, पद्मा, भार्गवी, सिन्धुसुता ।
बाण—शिलीमुख, विशिख, तीर, सायक, शर, नाराच, तोमर ।
विष—हलाहल, गरल, कालकूट, माहुर, धूलक ।
विष्णु—नारायण, गरुडध्वज, चक्रपाणि, चतुर्भुज, जनार्दन, कमलापति ।
श्रीकृष्ण—घनश्याम, केशव, माधव, मोहन, गोपाल, मुरलीधर, गिरिधर, वासुदेव, कंसारि, देवकीनन्दन, हृषीकेश ।
शरीर—काया, तनु, कलेवर, वपु, गात्र, गात, अंग, देह ।
शब्द—निर्घोष, स्वन, रव, ध्वनि, निनाद, नाद ।
समुद्र—पयोधि, सिन्धु, तोयनिधि, अर्णव, सागर, उदधि, जलनिधि, रत्नाकर, अब्धि, पारावार ।
सिंह—मृगराज, पंचानन, केहरि, शार्दूल, मृगरिपु, गजारि, वनराज ।
सूर्य—भानु, पतंग, दिनेश, रवि, मार्तण्ड, आदित्य, दिनकर, भास्कर, दिवाकर, सविता, तरणि, सूर, अंशुमाली, अर्क ।
सरस्वति—शारदा, वाणी, गिरा, भारती, वीणा-पाणि, ब्राह्मी ।
साँप—विषधर, मणिधर, अहि, पन्नग, उरग, नाग, भुजंग, व्याल, सारंग, सर्प, हरि, चक्षुश्रुवा, द्विजिह्व ।
सिर—मस्तक, माथा, शिर, शुण्ड, मौलि, शीश ।
सेना—वरुथिनि, सैन्य, अनीक, अनी, दल, कटक, बाहिनी, चमू ।
स्त्री—अबला, वनिता, कान्ता, भामा, तरुणी, नारी, कामिनि, दारा, तिया, रमणी, बाला, युवती, महिला ।
सोना—स्वर्ण, कंचन, कनक, सुवर्ण, कलधौत, हरि, हेम ।
हनुमान—पवनसुत, बजरंगी, कपीश्वर, महावीर, मारुति, रामदूत ।
हाथी—गयन्द, करी, गज, मतंग, कुंजर, कलभ, हस्ती ।

२—विपरीतार्थक शब्द

कभी-कभी शब्दों का विपरीत अर्थ जानने से शब्दों का ठीक भाव समझा जा सकता है । शब्दों का विपरीतार्थ कई प्रकार से दिया जा सकता है:—

(अ) भिन्न शब्दो के द्वारा : सुख-दुःख, आदि-अन्त, आकाश-पाताल, अनुकूल-प्रतिकूल, अच्छा-बुरा, अनुराग-विराग, आशा-निराशा, शत्रु-मित्र, आरम्भ-अन्त, विष-अमृत, कोमल-कठोर, जेष्ठ-कनिष्ठ, जड-चेतन, जीवन-मरण, हानि-लाभ, पडित-मूर्ख, स्थूल-सूक्ष्म, शीत-उष्ण, ह्रस्व-दीर्घ, दिन-रात, धनी-दरिद्र, स्वर्ग-नरक, पाप-पुण्य, विधि-निषेध, सच-झूट, उच्च-नीच, निन्दा-स्तुति, कटु-मधुर, हर्ष-शोक, नया-पुराना, पूरा-अधूरा, कृतघ्न-कृतज्ञ, उदय-अस्त, उत्थान-पतन, मूक-वाचाल, अपना-पराया, आय-व्यय, खोटा-खरा, गुण-दोष, अन्धकार-प्रकाश, आवाहन-विसर्जन, उदार-कृपण, गुरु-लघु, नूतन-पुराण, स्वार्थ-परमार्थ, पाश्चात्य-पूर्वात्य, मिलन-विछोह, योगी-भोगी, सृष्टि-प्रलय, सक्षिप्त-विस्तृत, राजा-रक, रानी-दासी, शोक-हर्ष, सम्पदा-विपदा ।

(आ) शब्द के आदि मे 'अ', 'अन्' और 'निर' निषेधार्थक उपसर्गो को जोडने से : आचार-अनाचार, आदि-अनादि, आतप-अनातप, आतुर-अनातुर, ईश-अनीश, उचित-अनुचित, एक-अनेक, ऐश्वर्य-अनैश्वर्य, कल्याण-अकल्याण, कुटिल-अकुटिल, चर-अचर, ज्ञान-अज्ञान, धर्म-अधर्म, शुभ-अशुभ, सत्-असत्, न्याय-अन्याय, चर-अचर, स्वस्थ-अस्वस्थ, मगल-अमगल, अन्त-अनन्त, इच्छा-अनिच्छा, ऋत-अनृत, अभिमान-निरभिमान ।

(इ) उपसर्ग जोडने से क्रय-विक्रय, कीर्ति-अपकीर्ति, मान-अपमान, यश-अपयश, राग-विराग, योग-वियोग, घात-प्रतिघात, वाद-प्रतिवाद, विवाद-निर्विवाद, जय-पराजय, गुण-अवगुण, श्वास-उच्छ्वास, पक्ष-विपक्ष, क्रम-व्यतिक्रम ।

(ई) उपसर्ग परिवर्तन द्वारा—सयोग-वियोग, सुगम-दुर्गम, स्वतत्र-परतन्त्र, आदान-प्रदान, आयात-निर्यात, अतिवृष्टि-अनावृष्टि, अनुकूल-प्रतिकूल, अनुराग-विराग, अनुग्रह-निग्रह, उत्कर्ष-अपकर्ष, उत्कृष्ट-निकृष्ट, उन्नति-अवनति, आकर्षण-विकर्षण, सुकर-दुष्कर, साकार-निराकार, सगुण-निर्गुण, सरस-नीरस, उन्मज्जन-निमज्जन, उपकार-अपकार, दुर्गन्ध-सुगन्ध, सधवा-विधवा, सुलभ-दुर्लभ, स्वदेश-परदेश, प्रत्यक्ष-परोक्ष ।

(उ) लिङ्ग परिवर्तन के द्वारा · नर-नारी, आदमी-स्त्री, माता-पिता, भाई-बहिन, राजा-रानी, धोबी-धोबिन, ब्राह्मण-ब्राह्मणी, मजदूर-

मजदूरिन, राजपूत-राजपूतानी, पत्ता-पत्ती, नाई-नाइन, सदस्य-सदस्या ।

(ऊ) एक साथ आनेवाले विपरीतार्थक शब्द पाप-पुण्य, साधु-असाधु, गुण-दोष, हित-अहित, न्याय-अन्याय, शुभ-अशुभ, धर्म-अधर्म, आहार-विहार, आय-व्यय, आदान-प्रदान, कुपात्र-सुपात्र, हँसना-रोना, मरना-जीना, शीत-उष्ण, ऊँच-नीच, जय-पराजय ।

३ अनेकार्थक शब्द

अक—चिह्न, गोद, १, २, ३ आदि सख्याएँ, नाटक के अक, आक ।

अज—वकरा, व्रह्म, दशरथ के पिता, जीव, ईश्वर ।

अक्रूर—मित्र, श्री कृष्ण के चाचा, कोमल स्वभाव ।

अम्वर—वस्त्र, आकाश ।

अरुण—सूर्य, लाली, सूर्य का सारथि ।

अर्क—इन्द्र, आक, सूर्य, विष्णु, ताँबा ।

अर्थ—प्रयोजन, निमित्त, कारण, धन, अभिप्राय, लाभ ।

अशोक—मौर्यवश का सम्राट्, एक पेड, शोक रहित ।

अयन—घर, गति, चलना, स्थान, मार्ग, विषुवत् रेखा से उत्तर या दक्षिण सूर्य का रास्ता ।

इन्द्र—कपूर, चन्द्रमा ।

इन्द्रवधु—इन्द्राणी, वीरबहूटी ।

कक—कपट, युधिष्ठिर, ब्राह्मण, बगुला, कौआ ।

कनक—धतूरा, सोना ।

कर—महसूल, हाथ, सूँड, किरण, जड, मशीन ।

कर्ण—कुन्ती का पुत्र, कान, समकोण, त्रिभुज मे वडी भुजा ।

कर्त्ता—पहला कारक, ईश्वर, करने वाला, स्वामी ।

कर्म—दूसरा कारक, काम, भाग्य ।

कल—आज का अगला और पहला दिन, आराम, यन्त्र, दाव-पेच, अस्फुट, मधुर ध्वनि, वीर्य, श्रेष्ठ ।

कला—समय का भाग, अश, चन्द्रमण्डल का सोलहवा गुण, छल ।

काल—समय, मृत्यु, यमराज, अकाल ।

कृष्ण—वासुदेव, अन्धकार, काला, कलियुग, कोयल ।

खग—मन, पक्षी, तीर, ग्रह, हवा ।
खाल—चमडा, धोकनी, खाडी, विमान ।
गति—मोक्ष, कर्म, क्रिया, उपाय, राह, ज्ञान, चाल, दशा ।
गुण—विशेषता, रस्सी, सत्व-रज-तम, हुनर, स्वभाव, धनुष की प्रत्यञ्चा ।
गुरु—द्विमात्रिक अक्षर, पूज्य, वृहस्पति, शिक्षक, आचार्य, बडा भारी ।
गो—इन्द्रिय, आकाश, सूर्य, व्रज, दिशा, बाण, वाणी, पानी, पृथ्वी, किरण, स्वर्ग, गाय ।
चक्र—भूमडल, चकवा, सेना, भीड, व्यूह-रचना, घेरा, चाक, पहिया ।
चपला—लक्ष्मी, बिजली ।
ज्येष्ठ—जेठ का महिना, श्रेष्ठ, बडा, पति का बडा भाई ।
तम—तमोगुण, अन्धेरा, एक प्रत्यय, राहु, तमाल ।
तात—भाई, मित्र, पुत्र, बाप, प्यारा ।
ताल—ताली बजाने का शब्द, एक वृक्ष, तालाब ।
दक्ष—चतुर, ब्रह्मा का पुत्र ।
दण्ड—यमराज का अस्त्र, दमन, एक घडी समय, सजा, लाठी, एक व्यायाम, राजनीति का एक अग ।
दर्शन—देखना, भेंट, दर्शनशास्त्र, आँख ।
दल—पक्ष, मोटाई, खण्ड, समूह, सेना, पत्ता ।
दाम—राजनीति का दूसरा अङ्ग, ध्वजा, माला, रस्सी, माल्य ।
द्रव्य—सार वस्तु, द्रवित होने वाला पदार्थ, औषधि, धन ।
द्विज—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, दाँत, पक्षी, केश ।
द्विजराज—ब्राह्मण, चन्द्रमा, गरुड, शिव ।
धर्मराज—यमराज, युधिष्ठिर, जिनेन्द्र, बुद्ध ।
ध्रुव—ध्रुव भक्त, अटल, सत्य, ध्रुव तारा, केन्द्र ।
नकुल—युधिष्ठिर का भाई, पुत्र, महादेव, नेवला, वशरहित ।
नग—नगीना, वृक्ष, पर्वत, सख्या ।
नन्दन—इन्द्र का बाग, पुत्र, सुखदायक ।
नाक—स्वर्ग, प्रतिष्ठा, नासिका ।
नाग—सांप, हाथी, नाग केशर ।

नायक—सेनापति, मुखिया, नाटक का प्रधान पात्र, प्रेमाभिलापी ।
नीलकण्ठ—एक पक्षी, मोर, महादेव ।
पञ्चानन—सिंह, पचमुखी, महादेव ।
पय—दूध, पानी ।
पद—पद्य, पाँव, स्थान, प्रतिष्ठा, विभक्तियुक्त शब्द ।
पयोधर—स्तन, पर्वत, बादल, गन्ना ।
पुष्कर—एक तीर्थ,हाथी की सूँड का अग्रभाग,जल,तालाव,कमल,आकाश ।
पुर—नगर, शरीर, एक राक्षस का नाम, भरापूरा, घर ।
फल—लाभ, नतीजा, भाले की नोक, सन्तान, चार पदार्थ ।
भव—महादेव, जन्म, ससार, कुशलक्षेम ।
माधव—श्रीकृष्ण, वसन्त ऋतु, वैशाख, महुआ ।
मान—घमण्ड, नाप, मूल्य ।
मुद्रा—आकृति, टकसाल, छाप, रुपया, अँगूठी ।
मूल—वश, पूँजी, उन्नीसवाँ नक्षत्र, जड ।
मृग—पाँचवाँ नक्षत्र, हरिण, पशुमात्र, हाथी ।
यन्त्र—ताला, औजार, वाजा, टोटका ।
योग—योग्य, समाधि, शुभ-घडी, मेल ।
रक्त—रुधिर, लाल ।
रङ्ग—वर्ण, ढग, खेल, आनन्द ।
रचना—बनाना, सजावट, ग्रथ ।
रजत—सोना, हार, सफेद, दाँत, हाथी, चाँदी ।
रस—स्वाद, अर्क, पारा, कविता के नवरस, राग, गुण, पानी ।
राग—क्रोध, मोह, रङ्ग, प्यारा, गीत ।
लघु—छोटा, शीघ्र, ह्रस्व, स्वर, इष्ट, सुन्दर, हल्का ।
लय—स्वर, ताल, टेर, नाश, वीन ।
लोक—भुवन, मनुष्य ।
वटु—बालक, विद्यार्थी, ब्रह्मचारी ।
वत्स—बालक, बछडा, वर्ष, प्यार का शब्द ।
वन—स्थान, जङ्गल, पानी ।

वर—वरदान, पति, श्रेष्ठ ।

वर्ग—चार भुज का क्षेत्र जिसकी चारो भुजाएँ समान हो तथा चारो कोण समकोण हो, किसी अङ्क को उसी से गुणा करना ।

वर्ण—अक्षर, जाति, रङ्ग ।

वसु—रत्न, किरण, जल, आठ देवता, अग्नि, लगाम ।

विग्रह—कलह, शरीर, भाग, आकार, विस्तार ।

विधि—भाग्य, ब्रह्मा, रीति, शास्त्र मे कही हुई नीति ।

विहगम—तीर, पक्षी, बादल, चन्द्र, सूर्य ।

श्री—विष्णु की पत्नि, लक्ष्मी, धन, शोभा ।

सज्ञा—सूर्य की पत्नी, नाम, बुद्धि, चेतना, गायत्री ।

सर—पानी, बाण, तालाब ।

सरस्वती—विद्या, शारदा, एक नदी, वाणी ।

सारङ्ग—मोर, साँप, बादल, चातक, हाथी, स्त्री, दीपक, शङ्ख, वस्त्र, चन्दन, कपूर, भौंरा, पानी ।

सुरभि—कामधेनु, वसन्तऋतु, सुगन्ध, सुन्दर, गाय ।

हस—श्वेत, सरोवर का पक्षी, ईश्वर, जीव, योगी, राजा, सूर्य, घोडा ।

हरि—कामदेव, विष्णु, इन्द्र, साँप, सिंह, घोड़ा, सूर्य, चन्द्रमा, तोता, वदर, यमराज, हवा, किरण, कोयल, हस, पर्वत ।

क्षेत्र—सदावर्त बाँटने का स्थान, स्थान-तीर्थ, शरीर, खेत ।

४ विषमतासूचक एकार्थक शब्द

१. अज्ञ, मूर्ख

अज्ञ—जिसे पढने-लिखने या जानने-समझने का अवसर न मिला हो, अनभिज्ञ ।

मूर्ख—जिसमे-समझने की क्षमता न हो, जड ।

२ अलौकिक, अस्वाभाविक

अलौकिक—जो लोक या समाज मे न पाया जाय, दैवी या स्वर्गिक ।

अस्वाभाविक—जो सृष्टि के नियम के विपरीत हो, बनावटी, कृत्रिम ।

३, भ्रम, प्रमाद

भ्रम—असावधानी से होने वाली भूल या त्रुटि।
प्रमाद—मूर्खतावश या जानबूझकर की गई भूल ।

४ सेवा, शुश्रूषा

सेवा—देवता, गुरुजन या वडो की टहल, सहायता ।
शुश्रूषा—रोगी की परिचर्या या देखभाल ।

५ श्रद्धा, भक्ति

श्रद्धा—वडो के प्रति उनके ज्ञान और गुण के कारण अनुराग, आदर ।
भक्ति—देवता, ईश्वर या गुरुजनो के प्रति प्रेम ।

६ प्रेम, प्रणय, स्नेह, वात्सल्य

प्रेम—किसी भी व्यक्ति या पदार्थ के प्रति साधारण अनुराग ।
प्रणय—स्त्री के प्रति प्रेम ।
स्नेह—छोटो के प्रति प्रेम ।
वात्सल्य—पिता व गुरु का अपने पुत्र-पुत्री या शिष्य के प्रति स्नेह ।

७ ईर्षा, द्वेष, स्पर्धा

ईर्षा – दूसरो की उन्नति देखकर पैदा होने वाली जलन ।
द्वेष—दूसरो से सकारण की गई शत्रुता या घृणा ।
स्पर्धा—दूसरो से आगे बढ जाने की इच्छा ।

८. व्याख्यान, अभिभाषण

व्याख्यान—मौखिक भाषण ।
अभिभाषण—लिखित भाषण ।

९ उत्साह, साहस

उत्साह—कार्य करने की स्फूर्ति या प्रेरणा ।
साहस—भय सामने देखकर भी कार्य करने की प्रेरणा ।

१०. प्रतियोगिता, प्रतिद्वन्द्विता

प्रतियोगिता—गुणो के बल पर अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करने की इच्छा ।
प्रतिद्वन्द्विता—गुणो के अभाव मे छल कपट से श्रेष्ठता-प्राप्त करने की इच्छा ।

११. परामर्श, मन्त्रणा

परामर्श—अपना मत प्रकट करना, सलाह देना ।

मन्त्रणा—गुप्त विचारो का आदान-प्रदान ।

१२ प्रार्थना, निवेदन, आवेदन

प्रार्थना—गुरुजनो के सामने विनीत भाव से इच्छा प्रकट करना ।

निवेदन—दूसरो की इच्छानुसार विनम्र विचार रखना ।

आवेदन—अपने गुण दिखाकर किसी से काम करवाने के लिये इच्छा प्रकट करना, प्रार्थना-पत्र ।

१३ दया, कृपा, सहानुभूति

दया—दूसरो का दु ख देख कर हृदय पिघल जाना ।

कृपा—छोटो पर की जाने वाली दया ।

सहानुभूति—दूसरो को जैसी अनुभूति हो वैसी ही अनुभूति करना, उनके दु ख को अपना दु ख समझना ।

१४ अहकार, अभिमान

अहङ्कार—अपने को उचित से अधिक समझना ।

अभिमान—अपनी वास्तविकता, प्रतिष्ठा या महत्ता का ध्यान रखना ।

१५ अस्त्र, शस्त्र

अस्त्र—वह हथियार जिसे फेंक कर प्रहार किया जाता है ।

शस्त्र—वह हथियार जिसे हाथ मे रख कर प्रहार किया जाता है ।

१६ भ्रान्ति, सन्देह

भ्रान्ति—निर्मूल या गलत धारणा ।

सन्देह—मन का अस्थिर या अनिश्चयात्मक विचार ।

१७ आधि, व्याधि

आधि—मानसिक कष्ट ।

व्याधि—शारीरिक कष्ट ।

१८ उद्योग, उद्यम

उद्योग—भरसक या शक्ति भर प्रयत्न ।

उद्यम—पेशा, व्यवसाय या धन्धा ।

१९ आयु, अवस्था, वय

आयु—सम्पूर्ण जीवन ।

अवस्था—जीवन का वर्षों मे मापदण्ड ।

वय—आयु का पूर्ण हो जाने वाला एक भाग ।

२० घृणा, ग्लानि, प्रायश्चित

घृणा—दूसरे के बुरे कार्यो पर अपनी अनिच्छा और अरुचि प्रकट करना ।

ग्लानि—अपने कार्यों के प्रति अपने ऊपर ही उत्पन्न अरुचि ।

प्रायश्चित—अपनी भूल पर स्वेच्छा से दु ख प्रकट करना और आगे उस की पुनरावृत्ति न होने देने का विचार ।

२१ खेद, दु.ख, शोक, विषाद, क्षोभ, पश्चात्ताप

खेद—पश्चात्ताप अथवा निराशा मे प्रसन्नता का अभाव ।

दु ख—कष्ट या किसी वस्तु के अभाव मे प्रसन्नता का अभाव ।

शोक—किसी की मृत्यु पर प्रसन्नता का अभाव ।

विषाद—बडा भारी दु ख ।

क्षोभ—अनिष्ट के समय प्रसन्नता का अभाव ।

पश्चाताप—भूल से अनुचित कार्य करने पर खेद करना ।

२२ स्त्री, महिला, पत्नी

स्त्री—साधारण स्त्री ।

महिला—कुलीन घर की स्त्री ।

पत्नी—अर्धाङ्गिनी ।

२३ प्रयास, प्रयत्न, यत्न, चेष्टा

प्रयास—साधारणत कष्टो का विचार न करके कार्य करना ।

प्रयत्न—साधारणत तन-मन से कार्य करना ।

यत्न—साधारणत तन-मन से कार्य करना ।

चेष्टा—मन से यत्न करना ।

२४ भय, आतङ्क, त्रास

भय—किसी अनिष्ट के विचार से मन मे विशेष विचार उत्पन्न होना ।

आतङ्क—शरीर और मन मे उत्पन्न भय का विचार ।

त्रास—दूसरो के द्वारा कष्ट देना ।

२५. अमूल्य, अतिमूल्य, बहुमूल्य

अमूल्य—जिसका कोई मूल्य न आँका जा सके ।
अतिमूल्य—आवश्यकता से अधिक या अनुचित मूल्य ।
बहुमूल्य—कीमती, अधिक किन्तु उचित मूल्य ।

२६. हृदय, अन्तःकरण, चित्त

हृदय—ज्ञानेन्द्रिय ।
अन्त करण—सत्-असत् का अनुभव करने वाली इन्द्रिय ।
चित्त—स्मरण करने की इन्द्रिय ।

५—रूप मे किंचित् भिन्न शब्द

१ अणु=कण, छोटा टुकडा
अनु = पीछे (उपसर्ग)

२. अर्घ=मूल्य
अर्घ्य=पूजा का द्रव्य

३ अलि=भौंरा
आली=सखी

४ अस=कधा
अश=भाग

५ अनल=अग्नि
अनिल=वायु

६ अपेक्षा=इच्छा, बनिस्वत
उपेक्षा=अवहेलना, निरादर

७. अवलम्ब=सहारा
अविलम्ब=शीघ्र

८. अपमान=निरादर
उपमान=जिस वस्तु से किसी की उपमा दी जाय

९ अविराम=निरन्तर, लगातार
अभिराम=सुन्दर

१० आवरण=परदा
आभरण=गहना

११. आकर=खान
आकार=रूप

१२ इति=समाप्ति
ईति=अकाल का कारण

१३ उधार=ऋण
उद्धार=तरना, मोक्ष

१४. कपट=छल
कपाट=किवाड

१५ कुल=वश
कूल=किनारा

१६. कृत=किया हुआ
कृत्य=कार्य या काम
क्रीत=खरीदा हुआ

१७. कान =सुनने की इन्द्रियाँ
कानि=मर्याया
१८ ग्रह =सूर्य, चन्द्र आदि
गृह =घर
१९ चिर =हमेशा
चीर =वस्त्र
२० छत्र =छतरी
क्षत्र =क्षत्रिय
२१ छात्र=विद्यार्थी
क्षात्र=क्षत्रिय सम्बन्धी
२२ जलद=बादल
जलज=कमल
जलधि=समुद्र
२३ तरणि=सूर्य
तरणी=नाव
तरुणी=युवती
२४ तरङ्ग=लहर
तुरङ्ग=घोडा
२५ तुन्द=तोद
तुण्ड=मुख
२६ दारा=स्त्री
द्वारा=मार्फत
२७ दीप=दिया, दीपक
द्वीप=टापू
द्विप=हाथी
२८ दूत=सवाद ले जाने वाला
द्यूत=जुआ
२९ नग=पहाड
नाग=साँप या हाथी

३० निर्जर=देवता
निर्झर=झरना
३१. नक्र =मगर
नरक =स्वर्ग का विपरीतार्थ
३२. पानी=जल
पाणि=हाथ
३३ प्रकार=तरह
प्राकार=परकोटा
३४ प्रसाद=कृपा, प्रसन्नता
प्रासाद=महल
३५ प्रणाम=नमस्कार
परिणाम=फल
परिमाण=मात्रा
३६ पुष्कर=कमल
पुष्कल=बहुत
३७ प्रथा=रीति
पृथा=कुन्ती
३८ परुष=कठोर
पुरुष=मनुष्य
३९ पथ=मार्ग
पथ्य=परहेज
४० बली=शक्तिमान
बलि=पूजोपहार
४१ बिस=कमलनाल
विष=जहर
४२ बलाक=बगुला
बलाहक=बादल
४३ मत=राय
मति=बुद्धि

४४ मूल=जड
मूल्य=कीमत
४५ लक्ष=लाख
लक्ष्य=उद्देश्य, निशाना
४६ वसन=वस्त्र
व्यसन=बुरी आदत
४७ वित्त =दौलत
वृत्त =गोल घेरा
४८ विना=विहीन, अभाव मे
वीणा=एक वाद्य यत्र
४९ वारिद=बादल
वारिस=उत्तराधिकारी
५० शर =तीर
सर =तालाब
५१ शूर =वीर
सूर =सूर्य, अन्धा
५२ सुत =पुत्र
सूत =सारथि
५३ शुक्ल =सफेद
शुल्क =फीस
५४ सकल =सब
शकल =टुकडा
५५ सव =सारे
शव =लाश
५६ सकृत =एक बार
शकृत =विष्ठा
५७ सम =बराबर
शम =शान्ति
५८. सित =सफेद
शीत =ठण्डा
शती =नीला
५९. समान =बराबर
सम्मान=आदर
६० सिता =शक्कर
सीता =हल का फल, रामपत्नी
६१ शुचि =पवित्र
सूची =सुई
६२ षष्टि =साठ
षष्ठी =पक्ष की छठी तिथि

६—अनेक शब्दो के स्थान पर आने वाला एक शब्द

अनाथ—वह बालक जिसके माता-पिता न हो ।
अज, अजन्मा—जो कभी जन्म नही लेता ।
अजेय—जो जीता न जा सके ।
अछेद्य—जो छेदा न जा सके ।
अल्पज्ञ—थोड़ा जानने वाला ।
अदृश्य—जो दिखाई न देता हो ।
अथाह—जिसकी थाह न मिले । बहुत गहरा ।

अनिर्वाचनीय—वह व्यक्ति जो चुनाव के योग्य नही ।
अविज्ञेय—ऐसा भाषरण या लेख जो समझ मे न आए ।
अद्वितीय—जिसके समान दूसरा न हो ।
अजातशत्रु—जिसका कोई शत्रु पैदा न हुआ हो ।
अजायवघर—वह स्थान जहाँ प्राचीन युग की वस्तुए सग्रहीत हो ।
अपरिहार्य—जिसके विना काम न चले ।
अवसरवादी—मौके की ताक मे रहने वाला और उससे लाभ उठाने वाला ।
अन्तरिक्ष यात्री—सौर मण्डल की यात्रा करने वाला यात्री ।
अरिहता—दुश्मन की हत्या करने वाला ।
अशिष्ट—वह व्यक्ति जो शिष्ट आचरण नही करता ।
अश्रव्य—जो सुनाई न दे ।
अकाट्य—जो काटा न जा सके ।
अवर्णनीय, अवर्ण्य—जिसका वर्णन न हो सके ।
अतीत—वीता हुआ समय ।
अन्धविश्वासी—जो विना सोचे विचारे किसी बात को मान ले ।
अवैतनिक—जो विना वेतन लिये काम करता है ।
अकिंचन—जिसके पास कुछ भी न हो ।
अदेय—जो देने योग्य न हो ।
अपाठ्य—जो पढा न जा सके ।
अग्राह्य—जो ग्रहण न किया जा सके ।
अपव्यय—गलत काम मे धन खर्च करना ।
अमूल्य—जिसका मूल्य न हो ।
असाध्य—ऐसा रोग जिसका इलाज न हो सके ।
अगोचर—जो इन्द्रियो से न जाना जा सके ।
अल्पाहारी—थोडा भोजन करने वाला ।
अकथनीय, अकथ्य—जो कहने योग्य न हो ।
अविश्वसनीय—जिस पर विश्वास न हो सके ।
अतुलनीय—जिसकी तुलना न हो सके ।

अनन्य—जिसके समान दूसरा न हो ।
अनुगामी—पीछे चलने वाला ।
आजीवन—जीवन भर ।
आस्तिक—जो ईश्वर के अस्तित्व मे विश्वास रखता हो ।
आपाद मस्तक—सिर से लेकर पैर तक ।
आसक्त—किसी के प्रेम मे बहुत बुरी तरह मग्न ।
आर्ष—ऋषि द्वारा कही हुई बात ।
आत्म हत्या—अपने आप को मार डालना ।
उत्तराधिकारी—किसी की मृत्यु होने पर उसकी सम्पत्ति पर अधिकार प्राप्त करने वाला ।
उपास्य—वह देवता जिसकी उपासना की जाती है ।
एकाहारी—दिन रात मे केवल एक बार भोजन करने वाला ।
औरस—विवाहिता स्त्री से उत्पन्न सन्तान ।
कृतज्ञ—जो दूसरे के द्वारा किया हुआ उपकार न मानता हो ।
कृतघ्न—जो दूसरो के द्वारा किया हुआ उपकार न माने ।
कल्पनातीत—जिसकी कल्पना न की जा सके ।
किंकर्त्तव्यविमूढ—जो अपना कर्त्तव्य न सोच सके ।
कुमार्गगामी—बुरे रास्ते पर जाने वाला ।
खाद्य—खाने योग्य ।
गेय—जिसको गाया जा सके ।
चिकीर्षु—काम करने का इच्छुक ।
चौराहा—जहा चार रास्ते मिलते हो ।
चतुर्भुज—चार भुजाओ वाला ।
जिज्ञासु—जो कोई बात जानने का इच्छुक हो ।
जितेन्द्रिय—जिसने अपनी इन्द्रियाँ वश मे करली है ।
जलचर—जो पानी मे चलता फिरता है ।
जन्मान्ध—जो जन्म से ही अन्धा हो ।
दत्तक—गोद लिया हुआ लडका ।
दुर्दम—जिसका दमन नही किया जा सकता ।

निर्भीक—जो किसी से डरता न हो ।
निवनोत्तर—वह वच्चा जो पिता की मृत्यु के वाद जन्मा हो ।
नि शुल्क—जिस काम के लिए कोई फीस नही ली जाती ।
निराकार—जिसका कोई आकार न हो ।
निरक्षर—जो लिखना पढना नही जानता ।
निर्निमेष—बिना पलक गिराये देखना ।
निर्जन—जहाँ एक भी आदमी न हो ।
निर्विवाद—जिस विषय मे कोई विवाद न हो ।
परोपकारी—दूसरो का भला करने वाला ।
पैतृक सम्पत्ति—पिता से मिलने वाली सम्पत्ति ।
पितृहता—पिताजी की हत्या करने वाला ।
पिपासु—जिसे प्यास लगी हो ।
पचवटी—वह स्थान जहा पाच वट के वृक्ष खडे हो ।
पारदर्शी—जिसके आर पार दिखाई दे ।
प्रियदर्शन—जो देखने मे प्यारा लगता हो ।
भूतपूर्व—जो पहले हो चुका हैं ।
भूमिधर—भूमि रखने वाला, किमान ।
मितव्ययी—कम खर्च करने वाला ।
मिताहारी—कम भोजन करने वाला ।
मासाहारी—मास खाने वाला ।
यथाशक्ति—शक्ति के अनुसार ।
रुढि—वहुत दिनो से चला आता हुआ रिवाज ।
राजतन्त्र—वह शासन जिसमे राजा ही सब कुछ हो ।
विधवा—वह स्त्री जिसका पति मर चुका हो ।
विधुर—वह आदमी जिसकी पत्नी मर चुकी हो ।
वध्या—जिस स्त्री के सन्तान न हो ।
वर्णनातीत—जिसका वर्णन न किया जा सके ।
वीर-प्रसु—वह माता जिसने वीर पुत्र को जन्म दिया हो ।
विपथगा—बुरे मार्ग पर चलने वाली ।

विश्वासपात्र—वह व्यक्ति जो विश्वास करने योग्य हो ।
सधवा—वह स्त्री जिसका पति जीवित हो ।
महोदर—एक पेट से जन्म लेने वाला ।
सूची भेद्य—जिसे केवल सूई ही भेद सके, बहुत गहरा (अन्धकार) ।

अभ्यास

१—पर्यायवाची शब्द से आप क्या समझते है ?
२—निम्नलिखित शब्दो के चार-चार पर्यायवाची शब्द दीजिए
इन्द्र, कमल, सारङ्ग, किरण, बादल, पुत्री, पृथ्वी, यम ।
३—विपरीतार्थक शब्द किसे कहते है ?
४—*निम्नलिखित शब्दो के विपरीतार्थक शब्द लिखिए*
पराया, स्वदेशी, धर्म, न्याय, कृतघ्न, विधि, सूक्ष्म, पुण्य ।
५—निम्न शब्दो के अलग-अलग कितने अर्थ हो सकते है ? बताइये
अर्क, कला, गुण, खग, दण्ड, दल, नकुल, चक्र ।
६—निम्नलिखित के अर्थ मे क्या अन्तर है ? लिखिये और उन्हे वाक्यो मे प्रयोग करके स्पष्ट कीजिए
श्रद्धा-भक्ति, व्याख्यान-अभिभाषण, प्रतियोगिता-प्रतिद्वन्द्विता, अस्त्र-शस्त्र, भ्रान्ति-सन्देह, आधि-व्याधि ।
७—निम्नलिखित शब्दो के अर्थ भेद को स्पष्ट कीजिए ।
छात्र-क्षात्र, जलद-जलधि, तरणि-तरणी-तरुणी, बलाक-बलाहक, शुक्ल-शुल्क, शुचि-सूची ।
८—निम्नलिखित वाक्यो मे रिक्त स्थानो की पूर्ति आगे कोष्ठक मे दिये हुए शब्दो मे से किसी एक उपयुक्त शब्द के द्वारा कीजिये ।
१ ···· बम का विस्फोट महाविनाशक होता है । (अनु, अणु)
२ बिना ···· जीवित रहना असभव है । (अनिल, अनल)
३ पिता की मृत्यु के बाद माता का एक मात्र उसका बेटा होता है । (अविलम्ब, अवलम्ब)
४. भगवान राम ने अहिल्या का ····· किया । (उधार, उद्धार)

५ सरिता के ·· ···पर अनेक व्यक्ति स्नान कर रहे थे।
(कूल, कुल)

६. छोड़ि दई कुल की ·· ·· क्या करेगा कोई। (कानि, कान)

७ गौतम ··· त्याग करके तप करने गये। (ग्रह, गृह)

८ इस युद्ध मे राजस्थानी वीरो ने अपने ·· धर्म का अच्छा परिचय दिया। (क्षात्र, छात्र)

९ महाराणा प्रताप · पर सवार होकर युद्धभूमि मे बढते थे।
(तुरङ्ग, तरङ्ग)

१० अण्डमान नीकोवार ·· · बगाल की खाडी के दक्षिण मे है।
(दीप, द्वीप, दिप)

११ चित्तौड दुर्ग का ······ अभेद्य है। (प्रकार, प्राकार)

१२ गतवर्ष की अपेक्षा हमने इस वर्ष अधिक · ·· मे चना खरीदा।
(परिमाण, परिणाम)

१३ अपने कुल की ·· ·· के अनुसार उसने पिता का श्राद्ध किया।
(पृथा, प्रथा)

१४ रुग्णावस्था मे ··· ···का बडा महत्व है। (पथ, पथ्य)

१५ क्या तुम्हारी · ·· मारी गई जो इतना हानि का सौदा किया?
(मत, मति)

१६ सुन्दर ·· ···शरीर की शोभा बढाते है। (व्यसन, वसन)

१७ ·· ····युद्ध भूमि से पैर पीछे नही हटाते। (सूर, शूर)

१८ · · ····पक्ष मे रात उजेली रहती है। (शुक्ल, शुल्क)

१९ ·· · पदारथ है जग माही, कर्महीन नर पावत नाही।
(सकल, शकल)

२० किशोर की···· ने आज एक बालक को जन्म दिया।
(स्त्री, महिला, पत्नी)

२१ जन्म-पत्री के अनुसार मेरी··· · पच्चीस वर्ष है।
(आयु, अवस्था, वय)

२२ परीक्षा मे उत्तीर्ण होने के लिए केशव बडा ·· कर रहा है।
(उद्यम, उद्योग)

२३. राम मन्दिर मे प्रतिदिन सन्ध्या समय·······बाटा जाता है ।
(प्रासाद, प्रसाद)

२४. ······· बालको का समुचित विकास नही हो पाता ।
(उपेक्षित, अपेक्षित)

२५. क्या आप बतायेंगे कि हमे किस ·······मे ठहराया जा रहा है ? (कक्ष, कक्षा)

२६ आपका कद सुरेश से·······है । (उच्च, ऊचा)

२७ इस सहायता के लिए मैं आपका बडा·······हूँ । (कृतघ्न, कृतज्ञ)

२८ भारत ने रूस को १० करोड़ का माल······ किया ।
(आयात, निर्यात)

२९ मैं जीवन भर आपका ·······नही भूल सकता ।
(अपकार, उपकार)

३० यह··· · ही है कि आपके दर्शन हो गये । (वियोग, सयोग)

३१. भारत की · विश्व-विख्यात है । (सस्कृति, सस्कृत)

३२ छेडने पर ही काटता है । (नग, नाग)

९ नीचे कुछ शब्द और उनकी व्याख्याए दी गई है । यह व्याख्या जिस शब्द पर भलीभाँति लागू होती है उस पर ✓ का निशान लगाइये—

१ कार्य करने की स्फूर्ति (साहस, उत्साह)
२ गुप्त विचारो का आदान प्रदान (परामर्श, मन्त्रणा)
३ छोटो के प्रति प्रेम (प्रणय, प्रेम, स्नेह, वात्सल्य)
४ रोगी की देख-भाल (सेवा, परिचर्या)
५ असावधानी से होने वाली भूल (प्रमाद, भ्रम)
६. जिसमे समझने की क्षमता न हो (मूर्ख, अज्ञ)
७ गुणो के बल पर अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करने की इच्छा
(प्रतियोगिता, प्रतिद्वन्द्विता)
८. दूसरो से आगे बढने की इच्छा (स्पर्धा, ईर्ष्या, द्वेष)
९ मन मे यत्न करना (यत्न, प्रयत्न, चेष्टा, प्रयास)
१० अर्धाङ्गिनी (महिला, स्त्री, पत्नी)

११ बडा भारी दुःख (पश्चाताप, शोक, विषाद, खेद)
१२. मानसिक कष्ट (व्याधि, आधि)
१३. मन का अनिश्चयात्मक विचार (भ्रान्ति, सन्देह)
१४. शरीर और मन मे उत्पन्न भय का विचार (आतङ्क, भय, त्रास)
१५. अपने को उचित से अधिक समझना (अहकार, अभिमान)
१६ स्मरण करने की इन्द्रिय (अन्त करण, चित्त, हृदय)
१७ जिसका कोई मूल्य न आका जा सके (अमूल्य, अतिमूल्य, बहुमूल्य)
१८ बादल (बलाक, बलाहक)
१९ सवाद ले जाने वाला (द्यूत, दूत)
२० झरना (निर्झर, निर्जर)
२१ मुख (तुण्ड, तुन्द)
२२ अकाल का कारण (इति, ईति)
२३ शक्तिमान (बली, बलि)
२४ नीला (शीत, शती, सित)
२५ गोल घेरा (वित्त, वृत्त)
२६ विष्ठा (शकृत, सकृत)
२७ लाख (लक्ष्य, लक्ष)
२८. पुत्र (सूत, सुत)
२९. शक्कर (सिता, सीता)
३०. सुई (सूची, शुचि)
३१ आदर (सम्मान, समान)
३२ तालाब (शर, सर)

पद - परिचय

पदो के विपय मे व्याकरण से सम्वन्धित ज्ञान कराने को पद-परिचय कहते है। साधारणत शब्द पाँच प्रकार के माने गये हैं . सज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, अव्यय और क्रिया। आगे की पक्तियो मे इन्ही का पद-परिचय दिया जा रहा है।

१. सज्ञा

सज्ञा का पद-परिचय देते समय नीचे लिखी वातो पर ध्यान दिया जाता है

(अ) सज्ञा के भेद—(व्यक्तिवाचक, जातिवाचक तथा भाववाचक)
(आ) लिंग—(पुल्लिग अथवा स्त्रीलिंग)
(इ) वचन—(एक वचन अथवा बहु वचन)
(ई) कारक—(कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्वन्ध, अधिकरण और सम्बोधन)
(उ) अन्य शब्द और क्रिया से सम्बन्ध।

उदाहरणार्थ—(१) रमेश बाजार से कपडा लाया।
(२) मोहन, दूध वाले को बुलाओ।
(३) राम ने चाकू से फल काटा।

(१) रमेश बाजार से कपडा लाया।

रमेश—व्यक्तिवाचक सज्ञा, पुलिग, एक वचन, कर्त्ता कारक, 'लाया' क्रिया का कर्त्ता।

वाजार—जातिवाचक सज्ञा, पुल्लिग, एक वचन, अपादान कारक, 'लाया' क्रिया का अपादान कारक।

कपडा—जातिवाचक सज्ञा, पुल्लिग, एक वचन, कर्म कारक, 'लाया' क्रिया का कर्म कारक।

(२) मोहन, दूध वाले को बुलाओ।

मोहन—व्यक्तिवाचक सज्ञा, पुल्लिग, एक वचन, सम्वोधन कारक।

दूध वाला—जातिवाचक सज्ञा, पुल्लिग, एक वचन, कर्म कारक, 'बुलाओ' क्रिया का कर्म।

(३) राम ने चाकू से फल काटा ।

राम—व्यक्तिवाचक सज्ञा, पुल्लिग, एक वचन, कर्त्ता कारक, 'काटा' क्रिया का कर्त्ता ।

चाकू—जातिवाचक सज्ञा, पुल्लिग, एकवचन, करण कारक 'काटा' क्रिया का करण ।

फल—जातिवाचक सज्ञा, पुल्लिग, एक वचन, कर्म कारक, 'काटा' क्रिया का कर्म ।

२ सर्वनाम

सज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले शब्द को सर्वनाम कहते है । इसलिये सर्वनाम के पद-परिचय मे लगभग वे ही बाते होती हैं जो संज्ञा के पद-परिचय मे आवश्यक होती हैं । अन्तर इतना ही रहता है कि जहाँ सज्ञा के पद-परिचय मे सज्ञा के भेद दिये जाते हैं वहाँ सर्वनाम मे सर्वनाम के भेद दिये जाते हैं ।

उदाहरणार्थ—(१) मैंने तुम्हारा चाकू तोड दिया ।
(२) उस भिखारी की मदद करो !
(३) जो सुवह उठेगा वह प्रसन्न रहेगा ।

(१) मैंने तुम्हारा चाकू तोड दिया ।

मैंने—पुरुपवाचक सर्वनाम, उत्तम पुरुप, पुल्लिग और स्त्रीलिङ्ग दोनो, एक वचन, कर्त्ता कारक, 'तोड दिया' क्रिया का कर्त्ता ।

तुम्हारा—पुरुषवाचक सर्वनाम मध्यम पुरुष, पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग दोनो, एक वचन, सम्बन्ध कारक, 'चाकू' का सम्बन्ध ।

(२) उस भिखारी की मदद करो ।

उस—निश्चयवाचक सर्वनाम, अन्य पुरुप, पुल्लिङ्ग, एक वचन, 'भिखारी' का विशेपण ।

(३) जो सुवह उठेगा वह प्रसन्न रहेगा ।

जो—सम्बन्धवाचक सर्वनाम, अन्य पुरुप, पुल्लिङ्ग, एकवचन, कर्त्ता कारक, 'उठेगा' क्रिया का कर्त्ता ।

वह—सम्वन्धवाचक सर्वनाम, अन्य पुरुप, पुल्लिङ्ग, एक वचन, कर्त्ता कारक, 'प्रसन्न रहेगा' क्रिया का कर्त्ता ।

३ विशेषण

विशेपरण का पद-परिचय देते समय निम्नलिखित बातो का ध्यान रखना आवश्यक होता है

(अ) विशेषरण के भेद

(आ) लिग

(इ) वचन

(ई) विशेष्य

उदाहरणार्थ-(१) यह सुन्दर साडी है।

(२) पिताजी ने मुझे चार रगीन कमीज दिये ।

(३) तुमने इस कपड़े की पूरी कीमत क्यो दे दी?

(१) यह सुन्दर साडी है ।

सुन्दर—गुणवाचक विशेषरण, स्त्रीलिङ्ग, एक वचन, 'साडी' का विशेषरण ।

(२) पिताजी ने मुझे चार रगीन कमीज दिये ।

रगीन—गुरणवाचक विशेषरण, पुल्लिङ्ग स्त्रीलिङ्ग दोनो, बहु वचन, 'कमीज' का विशेषरण ।

(३) तुमने इस कपडे की पूरी कीमत क्यो दे दी ?

इस—सकेतवाचक विशेषरण, पुल्लिङ्ग, एक वचन, 'कपड़े' का विशेषरण ।

पूरी—परिमारणवाचक विशेषरण, पुल्लिङ्ग, एक वचन, 'कीमत' का विशेषरण ।

४ क्रिया

क्रिया का पद-परिचय देते समय निम्नलिखित बातो का ध्यान रखना आवश्यक होता है

(अ) क्रिया के भेद

(आ) वाच्य

(इ) लिग

(ई) वचन
(उ) पुरुष
(ऊ) काल
(ए) प्रकार
(ऐ) कारक से सम्बन्ध

उदाहरणार्थ—(१) राम परदेश गया है।
(२) वह अखबार पढ रहा है।
(३) मैं तुम्हारा चाचा हूँ।

(१) राम परदेश गया है।

गया है—सकर्मक क्रिया, कर्त्तृवाच्य, वर्तमान काल, पुल्लिङ्ग, एक वचन, अन्य पुरुष, 'राम' इसका कर्त्ता है।

(२) वह अखबार पढ रहा है।

पढ रहा है—सकर्मक क्रिया, कर्त्तृवाच्य, अपूर्ण वर्तमान काल, एक वचन, पुल्लिङ्ग, अन्य पुरुष, इसका कर्त्ता 'वह' है।

(३) मैं तुम्हारा चाचा हूँ।

हूँ—अकर्मक क्रिया, कर्त्तृवाच्य, सामान्य वर्तमान काल, एक वचन, पुल्लिङ्ग, उत्तम पुरुष, 'मैं' इस क्रिया का कर्त्ता है।

५—क्रिया-विशेषण

क्रिया-विशेषण का पद-परिचय देते समय क्रिया-विशेषण के भेद तथा सम्बन्ध बताना आवश्यक होता है।

उदाहरणार्थ—(१) राम अभी आ रहा है।
(२) मोहन शोरगुल मत करो !
(३) तुम्हारे कहने पर ही मैं वहाँ गया।

इन वाक्यो मे 'अभी', 'मत' और 'वहाँ' क्रिया-विशेषण हैं। उनका पद-परिचय इस प्रकार होगा

अभी—कालवाचक क्रिया-विशेषण, 'आ रहा है' क्रिया की विशेषता प्रकट करता है।

मत---रीतिवाचक क्रिया-विशेषण, निषेधवाचक, 'शोर गुल करो' क्रिया
की रीति बताता है।

वहाँ---स्थानवाचक क्रिया-विशेषण, 'गया' क्रिया की विशेपता प्रकट
करता है।

६—अव्यय

अव्यय का पद-परिचय देते समय उसके भेद और सम्बन्ध का उल्लेख करना आवश्यक होता है। जैसे

(१) बाजार के सिरे पर गौशाला के पास उसका घर है।
(२) यद्यपि नरेश दुबला है, तथापि बुद्धिमान् है।
(३) वाहवाह ! कितनी सुन्दर बात कही।

(१) बाजार के सिरे पर गौशाला के पास उसका घर है।

पर—सम्बोधक अव्यय, 'सिरे' सज्ञा से अपना सम्बन्ध रखता है।

पास—सम्बोधक अव्यय, 'घर' सज्ञा से अपना सम्बन्ध रखता है।

(२) यद्यपि नरेश दुबला है, तथापि बुद्धिमान् है।

यद्यपि, तथापि—समुच्चयबोधक अव्यय, दुबला और बुद्धिमान का सबंध
स्थापित करता है।

(३) वाहवाह ! कितनी सुन्दर बात कही।

वाहवाह—विस्मयादि-बोधक अव्यय, हर्ष सूचित करता है।

अभ्यास

१. सज्ञा के पद-परिचय में किन-किन बातों की आवश्यकता होती है ? लिखिये।

२ निम्नलिखित वाक्यों मे सज्ञा शब्दों का पद-परिचय दीजिये :
  (अ) राम ने उस पुस्तक मे सशोधन करना आवश्यक समझा।
  (आ) चाहे हिन्दी पढिये चाहे मराठी दोनो की लिपि एक ही है।
  (इ) सोहन बाजार से एक घडी और एक पेन खरीद लाया।

३ सर्वनाम का पद-परिचय देते समय किन-किन बातों का ध्यान रखना आवश्यक होता है ?

४ निम्नलिखित वाक्यो मे सर्वनाम शब्दो का पद-परिचय दीजिये :

(अ) मैं अपनी किताब लेकर उसके घर गया ।

(आ) वह पुस्तक किसी विद्यार्थी की होगी ।

५ विशेषण का पद-परिचय देते समय किन-किन बातो का ध्यान रखना आवश्यक होता है ?

६ क्रिया-विशेषण और अव्यय का पद-परिचय देते समय किन-किन बातो का ध्यान रखना चाहिये ?

७ नीचे लिखे वाक्यो मे आये हुए सज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया और अव्यय शब्दो का पद-परिचय दीजिये :

(अ) भारत सरकार हिन्दी भाषा के प्रचार के लिये शीघ्र बडा कार्य करेगी ।

(आ) मेरे घर के पास यद्यपि अन्धेरा है तथापि रास्ता ठीक है ।

(इ) यदि मैं शिक्षामन्त्री होता तो सब बच्चो के लिये शिक्षा अनिवार्य कर देता ।

(ई) वाह, यह भी खूब कहा उसकी तो मौत ही हो जायगी ।

(उ) सन्तो की वाणी अमृतमय है, वह किसका उद्धार नही कर सकती ?

उपसर्ग और प्रत्यय

१—उपसर्ग

'शब्द विचार' नामक एक पिछले अध्याय मे हम पढ चुके हैं कि व्युत्पत्ति के अनुसार शब्दो के तीन भेद है—रूढि, यौगिक और योग-रूढि । सब भाषाओ की तरह हिन्दी में भी कुछ ऐसे शब्द हैं जिनसे दूसरे यौगिक शब्द बनाये गये । यौगिक शब्द बनाने के तीन तरीके हैं· (१) शब्द के पूर्व कुछ उपसर्ग लगाने से (२) शब्द के पश्चात् प्रत्यय लगाने से और (३) दो या दो से अधिक शब्दो के योग से । प्रस्तुत अध्याय मे हम उपसर्ग और प्रत्यय के सम्बन्ध मे विचार करेंगे ।

उपसर्ग वे अव्यय शब्द हैं जिनका प्रयोग अकेले नही होता । किसी शब्द के पूर्व उपसर्ग लगाने से उनका अर्थ बदल जाता है । उपसर्ग न तो अपना स्वतन्त्र अर्थ रखते हैं और न स्वतन्त्र रूप से प्रयोग मे ही आते है । वे तो किसी अन्य शब्द के पहले प्रयुक्त होकर उसके अर्थ मे विशेषता प्रकट कर देते हैं । सस्कृत व्याकरण के अनुसार उपसर्ग केवल 'धातु' अर्थात् क्रिया के ही पूर्व लगाये जाते हैं । धातु या धातु से बने शब्दो के अलावा और शब्दो के पूर्व जिन अव्ययो का प्रयोग होता है उन्हे अव्यय नही कहते । हिन्दी मे बहुत से उपसर्ग सस्कृत से आये हैं लेकिन कुछ उपसर्ग फारसी-अरबी से आये हैं । हिन्दी और सस्कृत भाषा मे प्रयुक्त होनेवाले उपसर्ग निम्न प्रकार हैं·

अति—अधिक या उत्कर्ष—अत्याचार, अत्यन्त, अतिरिक्त, अतिक्रमण, अतिशय, अतिकाल, अतितप्त, अतिदीन, अतिनिर्धन ।

अधि—श्रेष्ठता, प्रधानता—अधिकार, अधिराज, अध्यक्ष, अधीश्वर, अधिपति ।

अनु—पीछे या बाद में—अनुगामी, अनुज, अनुकरण, अनुष्ठान, अनुरूप, अनुचर, अनुक्रम ।

अप—हीनता, विरोध, अभाव—अपयश, अपकार, अपमान, अपवाद, अपराध, अपशब्द, अपकर्ष ।

अभि—सम्मुख, विशेष निकट—अभिवन्दन, अभिजात, अभिमुख, अभिमत, अभिलिप्सा, अभिप्राय, अभिशाप, अभ्यागत, अभिमान, अभिलाषा ।

अव— हीनता-अवगुण, अवसर, अवनति, अवज्ञा, अवतार, अवलम्ब, अवगत ।

अन्त —मध्य—अन्त करण, अन्तर्देशीय, अन्त:पुर, अन्तर्राष्ट्रीय ।

अन—नही—अनादि, अनाधिकार, अनन्तर, अनजान ।

आ—मर्यादा, तक, विरोध-आदेश, आकण्ठ, आजन्म, आगमन, आकर्षण, आजानबाहु, आसमुद्र, आरोहण, आक्रमण, आकाक्षा, आलिगन, आरम्भ, आचरण, आहार, आदाब ।

इति—समाप्त—इतिवृत, इतिहास ।

उत्—ऊपर, ऊँचा, प्रबल-उत्सुक, उद्‌गम, उच्चारण, उत्साह, उत्कर्ष, उत्तम, उदय, उदाहरण, उत्पति, उड्डयन, उत्कण्ठा ।

उप—समीपता, अप्रधानता, सदृष्य—उपचार, उपदेश, उपाध्यक्ष, उपनाम, उपनयन, उपग्रह, उपवन, उपकार, उपकृत, उपभेद, उपमन्त्री ।

कु— बुरा—कुसग, कुविचार, कुमति, कुसस्कार ।

दु —दुष्ट, कठिन, हीन—दुर्बुद्धि, दुर्गम, दुर्जन, दुर्गुण, दुसाध्य, दुर्गति, दुराचार, दुर्दशा ।

नि—भीतर, नीचे, बाहर—निवेश, निबन्ध, निकृष्ट, निदर्शन, निवृत्त, निपात ।

नि , निस्, निर—निषेध, अभाव, अतिशय,-निर्बल, निसग, निर्दोष, निर्देश, निश्चित्, निर्गत्, निश्रेयस, निर्णय, निरपराध, निर्धन, निर्जीव, निर्भय, निष्प्राण, निर्गुण ।

परा—पीछे, उलटा—पराजय, पराभव, परावृत्त, पराक्रम, पराधीन ।

परि—चारो ओर, व्याप्ति—परिभ्रमण, परिखा, परिपूर्ण, परिष्कार, परिधान, परिक्रमा, परिजन, परितोष, परिच्छेद ।

प्र—अधिक—प्रबल, प्रसन्न, प्रयोग, प्रार्थना, प्रशान्त, प्रख्यात, प्रचार, प्रमाण, प्रसिद्ध ।

प्रति—विरुद्ध, सामने, एक-एक—प्रतिकार, प्रतिफल, प्रत्यक्ष, प्रतिशोध, प्रतिज्ञा, प्रत्युत्तर, प्रतिवादी, प्रतिपल, प्रत्येक, प्रतिक्षण, प्रतिकूल, प्रतिनिधि, प्रतिपक्षी ।

वि—अभाव, अतिशय,—विभाव, विकार, विलक्षण, विश्लेषण, विशेष, विहार, विवरण, विलाप, विदेश, विज्ञान, विभूषण, विवाद, विचित्र, वियोग, विमुख, विस्मरण ।

सम्—सहित, अच्छा, पूर्ण—समुख, सस्कार, सस्कृति, सम्मेलन, ससद, सम्मति, ससिद्धि, सम्पूर्ण, सग्रह, सगम, सतोष, सरक्षण, सहार ।

सु— अच्छा, सहज, शुभ—सुकर्म, सुगति, सुलभ, सुजन, सुयश, सुजाति, सुशिक्षित, सुगम, सुवचन, सुकृत ।

उपसर्ग की भाँति प्रयोग मे आनेवाले विशेषण और अव्यय ।

अ, अन—अभाव, निषेध,—अधर्म, अज्ञान, अनीति, अभाव, अगम, अजान, अचेत, अलग, अछूत, अनल, अचल, अथाह, अनेक, अनन्तर, अनमोल, अनबन, अनगिनत ।

अधस्—नीचे—अध पतन, अधोमुख, अधोगति, अधोभाग, अधोवस्त्र ।

आवि —प्रकट—आविष्कार, आविर्भाव ।

ईषत्—थोडा—ईषद्दर्शन, ईषत्प्राप्त ।

चिर—बहुत—चिरकाल, चिरजीव, चिरायु ।

तिरस्— छिपाव—तिरस्कार, तिरोभाव, तिरोधान ।

पुन —फिर—पुनर्जन्म, पुनरागमन, पुनरुक्ति, पुनर्विवाह, पुन प्राप्ति, पुनर्मिलन ।

पुर—आगे—पुरस्कार, पुरश्चरण, पुरोहित, पुरोगामी ।

स—सहित—सप्रेम, सपरिवार, सजीव, सफल, सकुशल, सगोत्र, सगुण, सहृदय ।

सत्—अच्छा—सत्पुरुष, सत्कर्म, सत्पात्र, सद्गुरु, सज्जन ।

सह—साथ—सहज, सहगमन, सहचर, सहपाठी, सहोदर ।

सु—अच्छा—सुगम, सुहृदय, सुशील, सुविचार, सुजन, सुपथ, सुरम्य, सुकृत, सुवचन ।

स्व—अपना—स्वदेश, स्वकाज, स्वराज्य, स्वधर्म, स्वतन्त्र, स्वभाव ।

विदेशी भाषाओं के उपसर्ग

ब—से—बहुक्म, बदौलत, बनाम, बजरिये, बदर्जे ।

बा—साथ—बाअदब, बातमीज, बाकायदा, बामुख्तार ।

बे—बिना—बेईमान, बेकदरी, बेगुनाह, बेतरह, बेचारा ।

ना—अभाव—नापसन्द, नालायक, नाराज, नाचीज, नाखुश, नाकाबिल ।

नेक—अच्छा—नेकनाम, नेकनियत, नेकचलन ।

ला—बिना—लाइल्म, लाजवाब, लापरवाह ।

बद—बुरा—बदनाम, बदचलन, बदनीयत, बदनसीब बदमाश, बदबू, बदमिजाज, बद्जात ।

गैर—भिन्न—गैरहाजिर, गैरमुल्क, गैरमुमकिन ।

कम—थोडा—कमजोर, कम्बख्त, कमनसीब ।

खुश—अच्छा—खुशकिस्मत, खुशदिल, खुशबू, खुशमिजाज ।

सर—मुख्य—सरदार, सरताज, सरकार, सरहद ।

हर—प्रत्येक—हररोज, हरमाह, हरसाल, हरदम ।

हम—साथ—हमराह, हमेश, हमउम्र, हमबिस्तर ।

२—प्रत्यय

वे शब्दाश, जो किसी शब्द के अन्त मे लगकर उसके अर्थ और अवस्था मे परिवर्तन कर देते हैं, प्रत्यय कहे जाते हैं । वे न स्वतन्त्र शब्द कहे जा सकते हैं, न अपना स्वतन्त्र अर्थ ही रखते हैं । उपसर्गों की भाँति उनका प्रयोग भी अकेले नही होता । किन्तु जब वे अन्य शब्दो के पश्चात् लगा दिये जाते हैं तो एक नया अर्थ पैदा कर देते है । प्रत्यय सभी प्रकार के शब्दो मे लग सकते है, जैसे लिखना + वट = लिखावट, सुन्दर + ता = सुन्दरता । प्रत्यय दो प्रकार के हैं—(१) कृदन्त (२) तद्धित ।

(१) **कृदन्त**—क्रियात्मक शब्दो के पीछे जो प्रत्यय लगते हैं उन्हे कृदन्त कहते हैं । कृदन्त शब्दो के पाँच प्रकार होते है :

(अ) **कर्त्तृवाचक**—जिससे क्रिया के करने वाले का अर्थ जाना जाता है ऐसे शब्द को कर्त्तृवाचक कृदन्त कहते हैं, जैसे . लिखने-वाला,

जागने-वाला, खिलाड़ी, गायक, चटोरा आदि। इसके मुख्य प्रत्यय निम्न-लिखित है

वाला—सोने-वाला, पढने-वाला, जाने-वाला, आने-वाला आदि।

इया—धुनिया, जडिया।

आडी—खिलाडी।

ऊ—खाऊ, उडाऊ, रट्टू, बिगाड़ू, चलाऊ।

क—तैराक, लडाक, मारक, तारक, पालक, उडाक।

इयल—अडियल, सडियल।

एरा—सँपेरा, लुटेरा, कढेरा।

एत—फिकैत, लठैत।

ओडा—भगोडा।

ओटा—चटोरा।

वैया—गवैया, नचैया।

हारा—जानन-हारा, रोकन-हारा।

हुआ—सडा हुआ, गला हुआ, पका हुआ, चढा हुआ।

(आ) कर्मवाचक—यदि सामान्य भूत की क्रिया (सकर्मक) के आगे 'हुई', 'हुआ' लगा देते हैं तो कर्मवाचक कृदन्त बन जाते है, जैसे . पढा हुआ, सुना हुआ, लिखी हुई, बेची हुई।

हुआ—पढा हुआ, लिखा हुआ, सुना हुआ, गिना हुआ।

हुई—पढी हुई, लिखी हुई, सुनी हुई, गिरी हुई।

ना—बिछौना, चबैना।

नी—ओढनी, सूँघनी, चटनी, कहानी।

आ—ठेला, चेला, मैला।

गया—देखा गया, सुना गया, उठा गया।

(इ) करणवाचक—क्रिया के साथ ना, नी, अन्, ई, ऊ लगाकर जो शब्द बनाये जाते हे, वे करणवाचक कृदन्त कहे जाते हैं। जैसे . चलनी, बेलन आदि।

ना—ढकना, ओढना, चलना ।

नी—ढकनी, ओढनी, कतरनी ।

अन्—झाडन, बेलन, ढक्कन ।

ई—बुहारी, रेती, फाँसी ।

ऊ—झाडू ।

(ई) **भाववाचक**—भाववाचक सज्ञा की तरह ही भाववाचक कृदन्त भी बनते हैं, जैसे उतार, झपट, दौड, रोक, खेल आदि ।

अ—समझ, पुकार, लेन, देन, चाल, जाँच, पहुँच, लूट, चोर, दौड, सीच, सोच, विचार, चमक, दमक ।

आ—घेरा, फेरा, जोडा, छाया, मेला ।

आई—लडाई, चढाई, पढाई, पिसाई, बिनाई ।

आन—उठान, उडान, लगान ।

आव—बढाव, बहाव, बनाव, घुमाव, छिडकाव, लगाव ।

आहट—चिल्लाहट, घबराहट, मुस्कराहट ।

आवट—बनावट, सजावट, मिलावट, थकावट, दिखावट, रुकावट लिखावट ।

ई—हँसी, बोली, धमकी, करनी, मरजी ।

त—बचत, लागत, खपत, छूत ।

न—ऐंठन, सुकडन, चलन, गठन, पठन ।

ना—चलना, टहलना, देखना, उठना, बैठना ।

(२) **क्रियाद्योतक**—क्रिया द्योतक कृदन्त उन्हे कहते है जिनसे क्रिया के अर्थ का बोध हो । वे निम्न प्रकार बनाये जाते है

(क) 'हुए' या 'ते' प्रत्यय लगाकर । जैसे सोते हुए, उठते हुए, पढते, गिरते, उठते, जाते ।

(ख) हेतुहेतुमद्भूत के रूप मे **'हुआ'** प्रत्यय जोडकर । जैसे घूमता हुआ, फिरता हुआ, लेटा हुआ ।

(ग) कभी-कभी क्रिया के सामान्य रूप से ही काम चल जाता है, जैसे सोना ।

(२) तद्धित

तद्धित सञ्ज्ञाओं के छः रूप होते हैं :

(१) **कर्तृवाचक**—जिससे कर्त्ता का बोध होता है, जैसे मोटर-वाला, सुनार, चमार आदि।

आर—सुनार, लुहार, सुतार, कुम्हार।

ई—तेली, माली, धोबी, भण्डारी, कोठारी।

एडी—भँगेडी, गँजेडी।

वाला—पान-वाला, पानी-वाला, सब्जी-वाला।

(२) **गुणवाचक**—जिससे किसी गुण के भाव का प्रदर्शन हो; जैसे प्रेम से प्रेमी, दया से दयालु और हठ से हठी।

आ—भूखा, प्यासा, मैला, बोझा।

ई—भारी, ऊनी, सूती, रेशमी, स्वदेशी, विदेशी।

ईला—रसीला, लजीला, रगीला, छबीला।

ऊ—पेटू, बाजारू, गरजू, ढालू, घरू।

(३) **भाववाचक**—जिनसे भाव आदि का भान हो, जैसे भलाई मिठास, चिकनाहट, बचपन आदि।

आई—भलाई, बुराई, सच्चाई, झुठाई।

आस—मिठास, कडवास, खटास।

आहट—चिकनाहट, कडुआहट।

ई—सर्दी, गर्मी, चोरी, खेती, नर्मी।

पन—बचपन, लडकपन, खोटापन, खरापन।

पा—बुढापा, रँडापा, अपनापा।

(४) **सम्बन्धवाचक**—जिससे सम्बन्ध का ज्ञान हो, जैसे ससुराल।

आल—ससुराल, ननिहाल।

एरा—ममेरा, फुफेरा, ननेरा, चचेरा।

(५) **अल्पतासूचक**—जिससे अल्पता का ज्ञान हो, जैसे बुढ़िया।

इया—डिबिया, बुढिया, खटिया।

ई—रस्सी, टोकरी, ढोलकी, पहाडी, घाटी, डोरी।

ओला—खटोला, सपोला ।

ली—टिकली, खटुली ।

अभ्यास

१ उपसर्ग किसे कहते हैं ? उनका क्या महत्त्व है ?

२ निम्नलिखित शब्दो मे उपसर्ग बताइये

प्रतिलिपि, अकाल, अत्यन्त, निर्लज्ज, निर्भर, सम्मान, अनुक्रम, आकाक्षा, इतिवृत्त, प्रयोग, प्रार्थना, उपकृत, विमुख, विस्मरण, सुगम, सहार, ससिद्धि, प्रतिशोध ।

३ 'वि' प्रत्यय लगाने वाले पाँच शब्द लिखिये ।

४ 'हार' शब्द मे भिन्न-भिन्न प्रत्यय लगाकर पाँच शब्द बनाइये ।

५ प्रत्यय से आप क्या समझते है ? वे कितने प्रकार के होते हैं ?

६ निम्नलिखित शब्दो मे आये हुए प्रत्यय लिखिये .

रोता हुआ, पानी वाली, लडकपन, धुनिया, भगोडा ।

७ निम्नलिखित क्रियाओ से कृदन्त बनाइये

बोना, काटना, भूलना, चुराना, थकना, गिरना ।

८ कृदन्त और तद्धित मे क्या अन्तर है ? स्पष्ट कीजिये ।

९ गुणवाचक तद्धित किसे कहते हैं ?

१० निम्नलिखित शब्दो से गुणवाचक तद्धित बनाइये .

भार, मैल, बोझ, बाजार, पेट, रस, भूत ।



समास

पिछले अध्याय मे हम उपसर्ग और प्रत्यय के सम्बन्ध मे पढ चुके हैं। उनके अतिरिक्त भी दो या दो से अधिक शब्दो के योग से नये शब्द बनाये जाते हैं। इस प्रकार दो शब्दो के पारस्परिक योग से नये शब्द बनाने की क्रिया का नाम समास है और इस प्रकार बने हुए शब्द को सामासिक शब्द अथवा समस्त पद कहते हैं। समास बनाने पर शब्दो के बीच परस्पर सम्बन्ध बतलाने वाले शब्दो, प्रत्ययो अथवा विभक्तियो का लोप हो जाता है और एक नया शब्द बन जाता है। सामासिक पदो के टुकडो या पदो को अलग-अलग कर उनका सम्बन्ध प्रकट कर देने की क्रिया को 'विग्रह' कहते हैं। जैसे 'यशोदानन्दन' एक सामासिक पद है। यह 'यशोदा' और 'नन्दन' इन दोनो के सम्बन्ध से बना है। विग्रह करने पर इनका सम्बन्ध इस प्रकार व्यक्त किया जायेगा—यशोदा का नन्दन। समास का अर्थ है 'सक्षेप'। समास के द्वारा शब्दो का स्वरूप सक्षिप्त या छोटा बना दिया जाता है। जैसे . 'चार हैं मुँह जिसके' न कह कर हम सक्षेप मे 'चतुरानन' कहते है।

शब्दो के योग मे सन्धि के नियमो का प्रयोग किया जाता है, जैसे पीत+अम्बर=पीताम्बर। जिन शब्दो मे समास होता उन सबका बल समान नही होता। उनमे से किसी एक का अर्थ मुख्य होता है और शेप उसके अर्थ को पुष्ट करते है। सभी समस्त पदो मे कम से कम दो शब्द होते हैं। पहिले पद को 'पूर्वपद' और दूसरे पद को 'उत्तरपद' कहा जाता है। इन मे कभी उत्तर-पद प्रधान होता है, कभी पूर्व-पद। कभी-कभी दोनो ही प्रधान होते हैं और कभी-कभी दोनो ही प्रधान नही होते है। वैसे समास छ हैं। लेकिन प्रधानता या अप्रधानता के आधार पर उनके चार भेद किये जाते हैं

(१) पूर्व-पद प्रधान .... अव्ययीभाव
(२) उत्तर-पद प्रधान ... तत्पुरुष, कर्मधारय, द्विगु
(३) उभय-पद प्रधान ... द्वन्द्व
(४) अन्य-पद प्रधान ... बहुव्रीहि

(१) **अव्ययी-भाव समास**—जिस सामासिक पद मे पहला पद प्रधान हो और यह प्राय अव्यय हो तो वह अव्ययी-भाव समास कहा जाता है। यह सामासिक पद क्रिया-विशेषण का कार्य करता है। जैसे

सामासिक पद	विग्रह
आजीवन	जीवन तक (इसी प्रकार आजन्म)
यथाविधि	विधि के अनुसार (इसी प्रकार यथाक्रम, यथारुचि, यथास्थान, यथानियम)
अनुरूप	रूप के अनुसार (इसी प्रकार अनुकूल)
प्रतिमास	महीने-महीने (इसी प्रकार प्रतिवर्ष, प्रतिदिन, प्रतिक्षण)

हिन्दी मे अव्ययी-भाव समास का प्रयोग निम्नलिखित रूप से होता है

(क) हिन्दी ··· अतिकाल, आजन्म, पराजय, निधडक, निडर।

(ख) उर्दू ····बेशक, नाहक, हररोज, बखूबी।

(ग) मिश्रित · बेकाम, हरबडी, बेखटके, हरदिन।

(घ) सज्ञा-द्विरुक्ति ' ' द्वार-द्वार, पल-पल, हाथो-हाथ, गली-गली।

(ङ) अव्यय-द्विरुक्ति 'बीचो-बीच, पास-पास, बार-बार, धीरे-धीरे।

(२) **तत्पुरुष समास**—जिस सामासिक पद मे अन्तिम पद प्रधान होता है और पूर्व मे कर्त्ता एव सम्बोधन कारक को छोड कर शेष कारको मे किसी कारक की विभक्ति से युक्त होता है उसे तत्पुरुष समाम कहते है। तत्पुरुष समास मे दोनो पद सज्ञा होते हैं और जिस विभक्ति का लोप होता है उसी के कारक के नाम पर इस समास का नाम होता है।

(क) **कर्मतत्पुरुष**—यदि पद-विग्रह करने पर पहले पद के आगे कर्म का चिह्न आये तो कर्म तत्पुरुष समास होता है। जैसे माखनचोर (माखन को चुराने वाला), स्वर्गगत (स्वर्ग को गया हुआ)।

(ख) **करण तत्पुरुष**—यदि पद का विग्रह करने पर पहले पद के आगे करण का चिह्न हो तो करणतत्पुरुष होता है। जैसे ' रेखाङ्कित

(रेखा से अंकित), कपडछान (कपडे से छना हुआ), मुँहमाँगा (मुँह से माँगा हुआ)।

(ग) सम्प्रदान तत्पुरुष—यदि पद का विग्रह करने पर पहले पद के आगे सम्प्रदान कारक का चिह्न हो तो सम्प्रदान तत्पुरुष होता है। जैसे. देवोपहार (देवता के लिए उपहार), यज्ञशाला (यज्ञ के लिए शाला), देशभक्ति (देश के लिए भक्ति)।

(घ) अपादान तत्पुरुष—यदि पद का विग्रह करने के पहले पद के आगे अपादान कारक का चिह्न हो तो तत्पुरुष होता है। जैसे जन्माध (जन्म से अन्धा), गुरुभाई (गुरु के सम्बन्ध से भाई), पथभ्रष्ट (पथ से भ्रष्ट)।

(ङ) **सम्बन्ध तत्पुरुष**—यदि पद का विग्रह करने के पहिले पद के आगे सम्बन्ध कारक का चिन्ह हो तो सम्बन्ध तत्पुरुष होता है। जैसे वनमानुष (वन का मानुष), घुडदौड (घोडो की दौड), लखपति (लाखो का पति)।

(च) अधिकरण तत्पुरुष—यदि पद का विग्रह करने के पहले पद के आगे अधिकरण कारक का चिह्न हो तो अधिकरण तत्पुरुष होता है। जसे जलमग्न (जल मे मग्न), आपबीती (अपने पर बीती हुई), मोहान्ध (मोह मे अन्धा)।

(३) **कर्मधारय समास**—जो समस्त पद विशेषण और विशेष्य अथवा उपमेय और उपमान से मिल कर बना है उसे कर्मधारय समास कहते हैं। कर्मधारय समास के विग्रह करने पर प्राय 'जो', 'वत्', 'समान' आदि शब्द आते है। इनसे उसकी पहिचान मे सरलता होती है। जैसे पुरुषोत्तम (पुरुषो मे उत्तम), नराधम (नरो मे अधम), मुख कमल (कमल के समान मुख)।

(४) **द्विगुसमास**—जिस सामासिक पद मे पहला पद सख्या वाचक और दूसरा पद मुख्य होता है, उसे द्विगु समास कहते हैं। इस समास का समस्त पद समुदाय या समाहार का बोध कराता है। अत विग्रह करते समय समाहार शब्द लगा दिया जाता है। जैसे : अष्टसिद्धि

(अष्ट सिद्धियो का समूह), सप्तलोक (सात लोको का समूह), चौदह भुवन (चौदह भुवनो का समूह), नवरत्न (नौरत्नो का समूह)।

(५) द्वन्द्व—जिस सामासिक पद मे दोनो पद सज्ञाएँ हो और दोनो प्रधान हो अथवा उनका समाहार हो तो उसे द्वन्द्व समास कहते हैं। इस समास के पदो के वीच 'या', 'वा', 'और' आदि शब्द छिपे रहते है। जैसे दिन-रात (दिन और रात), जात-कुजात (जात और कुजात), द्वन्द्व समास के तीन भेद होते हैं

(अ) इतरेत्तर द्वन्द्व—जहाँ दोनो पद प्रधान हो और दोनो सज्ञा हो वहाँ इतरेत्तर द्वन्द्व समास होता है। जैसे ऋषि-मुनि (ऋषि और मुनि)। राधा-कृष्ण (राधा और कृष्ण)।

(आ) वैकल्पिक द्वन्द्व—जव परस्पर विरोधी पदो का मेल होता है तव वैकल्पिक द्वन्द्व समास होता है। जैसे दिन-रात (रात वा दिन), सुख-दु ख (सुख वा दु ख), यश-अपयश (यश वा अपयश)।

(इ) समाहार द्वन्द्व—जिस सामासिक शब्द मे वास्तविक अर्थ के साथ साथ अन्य अर्थ भी सूचित हो उसे समाहार द्वन्द्व कहते हैं। जैसे सेठ साहूकार (सेठ और साहूकार के अतिरिक्त अन्य सब लोग भी), अन्न-जल (अन्न और जल के अतिरिक्त अन्य खाद्य पदार्थ)।

(६) वहुव्रीहि समास—जिस सामासिक शब्द मे प्रयुक्त पदो मे कोई भी प्रधान नही होता और उससे उन पदो से भिन्न किसी और अर्थ का बोध होता है उसे वहुव्रीहि समास कहते है। वहुव्रीहि समास मे सामासिक पद किसी सज्ञा का विशेषणवत् होता है। जैसे चतुरानन (चार है मुँह जिसके अर्थात् व्रह्मा)। यहाँ न पूरा पद चतु है न आनन। इन दोनो के अतिरिक्त व्रह्मा का अर्थ निकलता है। इसी प्रकार इस समास के अन्य उदाहरण है—कृतकार्य, गङ्गाधर, निशाचर, चन्द्रमौलि, लम्वोदर, नीलकण्ठ, दशानन, जितेन्द्रिय, निर्विकार, अनन्त आदि।

समास के सम्वन्ध मे कुछ स्मरणीय बाते

(१) समास के सम्बन्ध मे पहली ध्यान रखने योग्य बात यह है

कि प्रयोग के अनुसार एक ही शब्द मे एक से अधिक समास हो सकते है। अत समास का निर्णय करने के पूर्व वाक्य मे उसका अर्थ भली प्रकार समझ लेना चाहिए। जैमे भगवान् पीताम्बर के दर्शन से बडी शान्ति मिली। (पीनाम्बर=पीत है अम्बर जिसका—बहुब्रीहि समास)।

जैसे पीताम्बर पहिन कर भगवान् की पूजा की।

(पीताम्बर=पीला वस्त्र—कर्मधारय समास)।

वह निडर जा रहा है। (अव्ययीभाव–जा रहा है क्रिया का विशेषण)

निडर आदमी कठिनाई का मुकाबला बडे साहस से करते हैं।

निडर=जिसको डर नही है वह—बहुब्रीहि समास।

(२) निषेघार्थक 'अ' या 'अन' को देखकर ही तत्पुरुष समास वतला देना ठीक नही। समास का निर्णय अर्थ पर अवलम्बित रहता है। जैसे 'अपुत्र' का अर्थ है—जिसके पुत्र नही है। इस विग्रह के अनुसार अपुत्र मे बहुब्रीहि समास है।

(३) विभक्ति समासान्त पद के अन्त मे लगती है। अव्ययीभाव क्रियाविशेषण हो जाता है, अत उसमे विभक्ति नही लगती। दूसरे स्थानो पर आवश्यकतानुसार सभी विभक्तियाँ लगती हैं।

जैमे सज्जन के लिए दुनिया मे कोई दुश्मन नही।

(४) समासान्त पदो मे कई प्रकार के परिवर्तन हो जाते है

(अ) आकारान्त पुल्लिग शब्द अकारान्त हो जाते हैं।

जैसे जिसकी आशा निर्गत है वह निराश (बहुब्रीहि)

(आ) ईकारान्त और ऋकारान्त मे 'क' जुड जाता है।

जैसे जिसकी पत्नी है वह सपत्नीक, जिसकी स्त्री है वह सस्त्रीक।

(इ) कुछ शब्दो का उत्तर पद वदल जाता है। जैसे रात्रि का रात्र, गन्ध का गन्धि, अक्षि का अक्ष और राजा का राज।

जैसे नव रात्रियो का समूह नव-रात्र (द्विगु)

देवो का राजा—देवराज (तत्पुरुष)

जिसकी गन्ध दुष्ट हो—दुर्गन्धि (बहुब्रीहि)

अक्षियो (आँखो) के म१ (सामने)—समक्ष (अव्ययीभाव)

समास विग्रह

	पद	विग्रह	समास
१	चतुर्भुज	चार भुजा हैं जिसकी (विष्णु)	बहुव्रीहि समास
२	षट्ऋतु	छ ऋतुओ का समूह	द्विगु समास
३	प्रतिमास	मास-मास	अव्ययीभाव समास
४	भानुवश	भानु का वश	तत्पुरुष समास
५	कोलकिरात	कौल और किरात	द्वन्द्व समास
६	नीलकमल	नील है जो कमल	कर्मधारय समास
७	ऋणमुक्त	ऋण से मुक्त	तत्पुरुष समास
८	सप्तद्वीप	सात द्वीपो का समूह	द्विगु समास
९	अनुरूप	रूप के अनुसार	अव्ययीभाव समास
१०	पतझड	जिसमे पत्ते झडते हैं वह ऋतु	बहुव्रीहि समास
११	घनश्याम	घन की तरह श्याम	कर्मधारय समास

अभ्यास

१. समास किसे कहते हैं ? समास के भेद किस आधार पर किये जाते है ?

२. उदाहरण देकर द्विगु और कर्मधारय, कर्मधारय और बहुव्रीहि तथा अव्ययीभाव और बहुव्रीहि समास का अन्तर स्पष्ट कीजिये ।

३ नीचे लिखे पदो का विग्रह करके समास लिखिये
जलजात, उपकूल, धर्मशाला, रजनीचर, गिरिराजकिशोरी, जगज्जननि, अचलशृङ्ग, अष्टसिद्धि, त्रिनेत्र, सस्त्रीक ।

वाक्य विचार

वाक्य ऐसे शब्दो का समूह है जो एक विचार को पूरी तरह प्रकट कर देता है । मोटे रूप मे वाक्य के दो खण्ड होते हैं । पहले खण्ड मे किसी के बारे मे कुछ कहा जाता है । दूसरे खण्ड मे वह बात कही जाती है जो कहना इष्ट होता है । दूसरे शब्दो मे वाक्य मे कर्त्ता और क्रिया का होना आवश्यक होता है । कुछ ऐसे भी वाक्य होते है जिनमे कर्त्ता नही होता, लेकिन ऐसे वाक्य बहुत कम होते हैं । जैसे. लिखो, पढो । इन वाक्यो से यद्यपि अर्थ स्पष्ट हो जाता है तथापि इनमे 'तुम' शब्द अर्थात् कर्त्ता का लोप है । अत चाहे कर्त्ता प्रकट रूप में हो चाहे उसका लोप हो, वाक्य उसके बिना पूर्ण नही होता । हिन्दी मे साधारणत प्रत्येक वाक्य मे सबमे पहले कर्त्ता, फिर कर्म और अन्त मे क्रिया आती है । जैसे मोहन पुस्तक खरीद रहा है । केशव गाय चराता है । किन्तु यदि इस क्रम को बदल दिया जाय और पहले वाक्य को इस प्रकार लिखा जाय—'मोहन खरीद रहा है पुस्तक' अथवा 'खरीद रहा है पुस्तक मोहन' तो वाक्य शुद्ध नही कहा जा सकता । अत. वाक्य मे शब्दो का एक निश्चित क्रम होता है । उस क्रम को बदल देने से वाक्य विशृङ्ख-लित हो जाता है । वह वाक्य, वाक्य नही रहता । दूसरी बात यह है कि वाक्य का आधा अश सुनकर यदि पूरा भाव मालूम हो जाय तो वह वाक्य त्रुटि-पूर्ण है । वाक्य के शब्दो को सुनते-सुनते सुनने वाले की आकांक्षा बढनी चाहिये । जैसे 'कल मेरे घर' इतना कहने पर श्रोता को उत्सुकता होगी कि आगे क्या कहा जाने वाला है और जब वह यह सुन लेगा कि 'दावत है' तो उसकी आकाक्षा पूरी होगी । इसी प्रकार तीसरी बात यह है कि वाक्य मे ऐसे शब्द रखे जायँ जो स्पष्ट अर्थ सूचित करे । यदि अर्थ मे अस्पष्टता या विरोध पैदा हो जाय तो वह शुद्ध वाक्य नही कहा जा सकता । जैसे वह कुए से पानी खींचता है । इस वाक्य मे पानी के बाद 'खीचता' या 'निकालता' आना चाहिए ।

रचना के अनुसार वाक्य के तीन भेद होते है—(१) साधारण वाक्य (२) मिश्रित वाक्य और (३) सयुक्त वाक्य ।

(१) **साधारण वाक्य**—जिस वाक्य मे एक उद्देश्य और एक समापिका क्रिया होती है उसे साधारण वाक्य कहा जाता है। जैसे हम खेल देखने गये थे।

(२) **मिश्रित वाक्य**—जिस वाक्य मे एक प्रधान वाक्य होता है अर्थात् एक मुख्य उद्देश्य और विधेय होता है तथा एक या एक से अधिक सहायक या आधीन वाक्य होते हैं वह मिश्रित वाक्य कहलाता है। जैसे सच्चा वीर वही है जो वडी से वडी मुसीवत आने पर भी धीरज रखता है। मिश्रित वाक्य मे मुख्य उद्देश्य और विधेय से जो वाक्य बनता है उसे मुख्य उपवाक्य और दूसरे वाक्य को आश्रित उपवाक्य कहते है। ऊपर के वाक्य मे 'मच्चा वीर वही है' मुख्य उपवाक्य है और 'जो वडी से वडी मुमीवत आने पर भी धीरज रखता है' आश्रित उपवाक्य है। इस प्रकार मिश्रित वाक्य मे कई कर्त्ता और क्रियाएँ होते हुए भी मुख्य कर्त्ता और क्रिया एक ही होते हैं।

(३) **संयुक्त वाक्य**—जिस वाक्य मे एक से अधिक प्रधान उपवाक्य होते है और अपना पूर्ण अर्थ रखते हुए स्वतन्त्र रहते हैं वे सयुक्त वाक्य कहलाते हैं। जैसे मोहन अभी आया है, लेकिन वह कहता था कि कल ही चला जायगा।

अर्थ के अनुमार वाक्य-भेद

अर्थ के अनुसार वाक्य के आठ भेद होते हैं:—

(१) विधानार्थक—जिस वाक्य मे साधारण रूप से किसी बात का कथन किया जाय उसे विधानार्थक कहते हैं, जैसे नगेन्द्र पुस्तक पढता है।

(२) निषेधवाचक—जिस वाक्य मे किसी बात का निषेध अथवा न होने का भाव व्यक्त हो उसे निषेधवाचक वाक्य कहते है। जैसे बिना साँस लिये कोई भी जी नही सकता।

(३) प्रश्नार्थक—जिस वाक्य मे किसी प्रकार का प्रश्न किया जाय उसे प्रश्नार्थक वाक्य कहते है। जैसे क्या तुमने जमनलाल से रुपया उधार लिया है?

(४) आज्ञार्थक वाक्य—जिस वाक्य से किसी प्रकार की आज्ञा, विनती या उपदेश का बोध हो उसे आज्ञार्थक वाक्य कहते हैं। जैसे यह पुस्तक टेबल पर रख दो।

(५) विस्मयादि बोधक—जिस वाक्य मे आश्चर्य, विस्मय आदि भावो का बोध हो उसे विस्मयादि बोधक वाक्य कहते हैं। जैसे . हाय-हाय ! उसकी दोनो टाँगें कट गईं।

(६) इच्छा-बोधक—जिस वाक्य मे इच्छा या आशीष का बोध हो उसे इच्छा बोधक वाक्य कहा जाता है। जैसे . भगवान् करे कहीं से भी रुपये मिल जायँ।

(७) सन्देह-सूचक—जिस वाक्य से सन्देह या सम्भावना प्रकट होती है उसे सन्देह-सूचक वाक्य कहा जाता है। जैसे . शायद वह बीमार हो गया होगा।

(८) सकेतार्थक—जिस वाक्य से सकेत या शर्त का बोध हो उसे सकेतार्थक वाक्य कहते है। जैसे . यदि पानी न बरसा तो अकाल पड जायगा।

वाक्य-शुद्धि

वाक्य मे अशुद्धि का होना उतना ही कुरुचि-पूर्ण और भद्दा लगता है जितना किसी बढिया दूध के कप मे मक्खी का गिर जाना। मक्खी गिर जाने से जैसे दूध पीने की इच्छा तो रहती ही नही उल्टे दूध से घृणा होने लगती है, उसी प्रकार अशुद्ध वाक्यो को पढने की इच्छा तो होती ही नही उसके लेखक के प्रति भी आदर या स्नेह की भावना कम हो जाती है। अत· वाक्य-शुद्धि भाषा-ज्ञान की पहली और महत्त्व-पूर्ण शर्त है। कुछ लोगो का ख्याल है कि वर्तनी शुद्ध लिख देने से वाक्य भी शुद्ध हो जाता है, लेकिन उनकी यह धारणा ठीक नही है। वर्तनी सम्बन्धी त्रुटियाँ दूर कर देने पर भी ऐसी अनेक बातें रह जाती हैं जिनके सम्बन्ध मे सावधानी न रखी जाय तो वाक्य अशुद्ध रहता है और भाषा में सरसता नहीं आ पाती। यहाँ हम ऐसी ही कुछ भूलो पर विचार करेंगे जिनका निराकरण हो जाने पर वाक्य-शुद्धि का मार्ग सरल हो जाता है।

(क) शब्दों का यथास्थान प्रयोग

प्राय. बहुत से लोग व्याकरण की ठीक-ठीक जानकारी के अभाव मे रचना-सम्बन्धी अनेक भूलें कर बैठते हैं। वे शब्दो को यथास्थान नही रख पाते जिससे सारा वाक्य भद्दा हो जाता है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित वाक्य ध्यान से पढिये :

१. फुटबाल खेलता है अविनाश कुमार।
२ केशव, हाय, हाय खो गई मेरी पुस्तक।
३ कहाँ जा रहे हो मेरे प्यारे दोस्त मोहन।

वाक्य रचना की दृष्टि से हम कर्त्ता को सबसे पहिले, कर्म को उसके बाद और क्रिया को अन्त मे रखते हैं, किन्तु पहले वाक्य मे इस नियम की कोई परवाह नहीं की गई है। इसमे कर्त्ता है 'अविनाश कुमार'। उसे पहला स्थान दिया जाना चाहिये। उसके बाद 'फुटबाल' और अन्त मे 'खेलता है' आना चाहिये। तब वाक्य का स्वरूप होगा—'अविनाश कुमार फुटबाल खेलता है' जो कि शुद्ध है।

इसी प्रकार की भूल दूसरे और तीसरे वाक्य मे भी दुहराई गई है। दूसरे वाक्य मे 'हाय हाय' शोक प्रकट करने वाला शब्द है। उसे सबसे पहले रखा जाना चाहिये और वाक्य का सघटन कर्त्ता, कर्म, क्रिया के क्रम से करना चाहिये। तब वाक्य का स्वरूप होगा—हाय हाय, केशव, मेरी पुस्तक खो गई। इसी नियम के अनुसार तीसरे वाक्य का सही स्वरूप होगा— 'मेरे प्यारे दोस्त मोहन! कहाँ जा रहे हो?

(ख) उपयुक्त शब्दो का प्रयोग

यद्यपि शब्दो को यथास्थान प्रयुक्त करने से वाक्य की रचना या संघटन शुद्ध हो जाता है तथापि यदि शब्दो के सही-सही अर्थ का ज्ञान न हो और जहाँ जिस शब्द की आवश्यकता हो उसी का प्रयोग न किया जाय तब भी वाक्य सदोष बना रहता है। उदाहरण के लिये निम्नलिखित दो वाक्यो को ध्यान से पढिये :

१ जब श्री सुशीला देवी ने सभा-पत्नी का आसन ग्रहण किया तो सबने जोर से तालियाँ बजाई।

२ घोडा जोर-जोर से चिल्ला रहा है ।

पहले वाक्य मे सुशीला देवी के सामने 'श्री' रखा गया है जो अनुपयुक्त है । यदि सुशीला देवी कुमारिका है तो उनके नाम के सामने 'कुमारी' शब्द लिखा जाना चाहिये और यदि वे विवाहित हैं तो उनके सामने 'श्रीमती' शब्द लिखा जाना चाहिये । 'श्री' शब्द पुरुषो के लिये काम मे लिया जाता है, स्त्रियो के लिये नही । इसी प्रकार सभापति का स्त्रीलिङ्ग सभानेत्री होता है, सभापत्नी नही । इन दोनो अशुद्धियो को दूर कर देने के बाद वाक्य का शुद्ध स्वरूप होगा—'जब श्रीमती सुशीला देवी ने सभानेत्री का आसन ग्रहण किया तो सबने जोर से तालियाँ बजाईं ।' दूसरे वाक्य मे घोडे के लिए 'चिल्लाना' शब्द उपयुक्त नही है । उसके लिए 'हिनहिनाना' शब्द का प्रयोग किया जाता है । अत. वाक्य का सही स्वरूप होगा—'घोडा जोर-जोर से हिनहिना रहा है ।'

इस प्रकार की और भी कई भूलें हमे इधर-उधर दिखाई पड जाती हैं । हम एक विशिष्ट जाति या वर्ग के व्यक्ति के नाम के आगे विशिष्ट शब्द का प्रयोग कर उसके प्रति आदर व्यक्त करते है । जैसे सिक्खो के लिये 'सरदार' शब्द का प्रयोग किया जाता है । उत्तर प्रदेश के सेठजो के लिये 'लालाजी' का । कायस्थो के लिये 'मु शीजी' शब्द का और ब्राह्मणो के लिये 'पण्डितजी' का । इसी तरह कुछ विशिष्ट पुरुषो के लिए विशिष्ट शब्दो का प्रयोग किया जाता है । जैसे गाधीजी के लिये 'महात्मा' शब्द का प्रयोग किया जाता है और विनोबा के लिये 'सन्त' का । तिलक को 'लोकमान्य' कहा जाता था और चितरजनदास को 'देशबन्धु' । अत इन बातो का ध्यान रखना भी आवश्यक होता है ।

(ग) कारको की विभक्तियों का अशुद्ध प्रयोग

बहुत से लोग कारको की विभक्तियो का प्रयोग ठीक-ठीक नही करते और उससे वाक्य गलत हो जाता है । उदाहरण के लिये नीचे लिखे हुए वाक्यो को ध्यान से पढिये .

१ सोहन गाडी बेची ।

२ प्रश्न विकट है कुछ समझ नही आता ।

पहले वाक्य मे कुछ अटपटा-पन लगता है। उससे अर्थ ठीक-ठीक तरह व्यक्त नही होता। 'सोहन' और गाडी के बीच 'ने' लगा देने से यह अटपटापन नही रहता और अर्थ भी स्पष्ट हो जाता है। इसी प्रकार दूसरे वाक्य मे समझ और नही के बीच 'मे' लगाने से वाक्य शुद्ध बन जाता है। 'ने' और 'मे' दोनो विभक्तिया है। उनका ठीक स्थान पर प्रयोग न करने से दोनो वाक्य अशुद्ध हो गये थे।

(घ) पुरुष, लिङ्ग और वचन सम्बन्धी त्रुटियाँ

पुरुप, लिङ्ग और वचन सम्बन्धी भूलें भी साधारणत बहुत से विद्यार्थियो के वाक्यो मे मिलती है। उदाहरण के लिए निम्न वाक्य ध्यानपूर्वक पढ़िये ·

(१) मैंने चाय छाना और पिया।

(२) वह लोग उसको जबरदस्ती पकड ले गये।

(३) राम ने आज चार पुस्तक और दो कॉपी खरीदी।

पहिले वाक्य में लिङ्ग सम्बन्वी अशुद्धि है। चाय शब्द का प्रयोग स्त्रीलिङ्ग मे किया जाता है जबकि इस वाक्य मे उसे पुल्लिङ्ग मानकर वाक्य रचना की गई है। यदि उसे स्त्रीलिङ्ग मानकर वाक्य को शुद्ध करें तो उसका सशोधित रूप इस प्रकार होगा—'मैंने चाय छानी और पी।' दूसरे वाक्य मे अशुद्धि वचन और पुरुप सम्बन्धी है। 'वह' शब्द एक वचन है जबकि 'पकड ले गये' क्रिया बहुवचन मे प्रयुक्त हुई है। अत वाक्य का शुद्ध रूप होगा—वे लोग उसको जबरदस्ती पकड ले गये।

(ङ) अशुद्ध सन्धि के प्रयोग सम्बन्धी अशुद्धियाँ

सन्धियो का ठीक-ठीक ज्ञान न होने से भी कई बार वाक्य में बहुत सी अशुद्धियाँ रह जाती हैं। उदाहरण के लिये निम्न वाक्यो को देखिये.

(१) आप वनऔषधि का प्रयोग क्यो नही करते ?

(२) वधू आगमन के कारण उनके घर बडी चहल-पहल है।

पहले वाक्य मे 'वन औषधि' शब्द आया है। यहाँ वन और औषधि शब्द के योग से जो विकार पैदा हुआ है उसके कारण रूप बदलता है। सन्धि के नियमो के अनुसार यहाँ वन और औपधि मे अ + औ की

सन्धि है जिससे इस शब्द का शुद्ध रूप होता है वनौषधि । अत शुद्ध रूप से इस वाक्य का स्वरूप इस प्रकार होना चाहिये—'आप वनौषधि का प्रयोग क्यो नही करते ?' दूसरे वाक्य मे भी वधू और आगमन के योग से 'वध्वागमन' शब्द बनता है । अत 'वधू आगमन' के स्थान पर वध्वागमन लिखने से दूसरा वाक्य भी शुद्ध हो जाता है ।

(च) अन्य भाषाओं के उपसर्ग, प्रत्यय आदि से सम्बन्ध रखने वाली अशुद्धियाँ

विदेशी भाषाओ के शब्द के रूप उन्ही भाषाओ के व्याकरण के अनुसार बदले जाते है । उन शब्दो का रूप हिन्दी व्याकरण के अनुसार बदलना ठीक नही होगा । इसी प्रकार विदेशी भाषा के शब्दो मे उपसर्ग और प्रत्यय भी उस भाषा के नियम के अनुसार लगाने चाहिए । उदाहरण के लिये 'चार टिकिटें दीजिये' के स्थान पर 'चार टिकिट्स दीजिये' ही शुद्ध माना जायगा । 'मैं कुछ महत्त्वपूर्ण लैटरो की प्रतीक्षा कर रहा हूँ' के स्थान पर 'मैं कुछ महत्त्वपूर्ण लैटर्स की प्रतीक्षा कर रहा हूँ' कहना शुद्ध होगा । इसी प्रकार 'मैं अपनी बात सअदब कहना चाहता हूँ' के स्थान पर 'मैं अपनी बात बाअदब कहना चाहता हूँ' कहना शुद्ध होगा । 'तुम्हे इतनी अमीरता नही दिखानी चाहिये' के स्थान पर होगा 'तुम्हे इतनी अमीरी नही दिखानी चाहिए ।'

अशुद्ध और शुद्ध वाक्य

अशुद्ध—किताब मेरी मैने उसी दिन दे दी थी ।
शुद्ध—मैंने अपनी किताब उसी दिन दे दी थी ।
अशुद्ध—यहाँ ओफ कितनी तेज धूप है ।
शुद्ध—ओफ ! यहाँ कितनी तेज धूप है !
अशुद्ध—सहजोबाई और मीराबाई हिन्दी की अच्छी कवि थीं ।
शुद्ध—सहजोबाई और मीराबाई हिन्दी की अच्छी कवियत्रियाँ थी।
अशुद्ध—स्वतन्त्रता दिवस पर कलक्टर साहब ने झण्डा उडाया ।

शुद्ध—स्वतन्त्रता दिवस पर कलक्टर साहब ने झण्डा फहराया ।
अशुद्ध—उसी आदमी के कपडे वडे गदे हैं ।
शुद्ध—उस आदमी के कपडे वडे गदे है ।
अशुद्ध—मैं तुम्हारे आधीन नही हूँ मुझे बेफिजूल मत डाँटो ।
शुद्ध—मैं तुम्हारे आधीन नही हूँ मुझे फिजूल मत डाँटो ।
अशुद्ध—पूज्यनीय गुरुजी ने मुझे उपदेश दिया ।
शुद्ध—पूज्य (अथवा पूजनीय) गुरुजी ने मुझे उपदेश दिया ।
अशुद्ध—उसे ध्यान मे आया कि गल्ती मेरी ही है ।
शुद्ध—उसके ध्यान मे आया कि गलती उसकी ही थी ।
अशुद्ध—तुमको मोटर लाने के लिये कहा था ।
शुद्ध—तुझे मोटर लाने को कहा था ।
अशुद्ध—वे हर समय मे आपस मूर्खों की तरह मे लडते रहे ।
शुद्ध—वे हर समय आपस मे मूर्खों की तरह लडते रहे ।
अशुद्ध—सीतल जल के पान से हिरदय सान्त हो गया ।
शुद्ध—शीतल जल पीने से हृदय शान्त हो गया ।
अशुद्ध—कल जब वारह वजा था हम स्कूल से आये थे ।
शुद्ध—कल वारह वजे, हम स्कूल से आये थे ।
अशुद्ध—शीला हमारे एक मित्र की महिला है ।
शुद्ध—शीला हमारे एक मित्र की पत्नी है ।
अशुद्ध—यह गहना वहुत मूल्यवान है ।
शुद्ध—यह गहना बहुमूल्य है ।
अशुद्ध—वृक्षो पर फूल खिल रहा था ।
शुद्ध—वृक्षो पर फूल खिल रहे थे ।
अशुद्ध—ताजमहल की सौन्दर्य अनुपम है ।
शुद्ध—ताजमहल की सुन्दरता अनुपम है ।
अशुद्ध—नवल वाबू कल यहाँ से मोटरो पर सवार होकर गये थे ।
शुद्ध—नवल वाबू कल यहाँ से मोटर पर सवार होकर गये थे ।
अशुद्ध—पर्चा कडा नही, सरल है ।
शुद्ध—पर्चा कठिन नही, सरल है ।

अभ्यास

१ वाक्य किसे कहते है ? अच्छे वाक्य मे क्या-क्या गुण होने चाहिये ?
२. सयुक्त और मिश्रित वाक्यो मे क्या अन्तर है ?
३ अर्थ की दृष्टि से वाक्य के कौन-कौन से भेद होते है ?
४ निम्नलिखित वाक्यो को शुद्ध रूप मे लिखो

(क) सुधा ने अब तक फीस नही लाई ।
(ख) द्वारका सिरी कृष्णजी की जन्मभूमि थी ।
(ग) सच्चा मित्र जीवन मे कोई एक ही विरला होता है ।
(घ) गोपियो ने राधा श्रीकृष्ण के पास भेजी ।
(ङ) क्या तुमको नही मालूम कि नरेश दिल्ली से वापिस लौट आया ।
(च) मीठा आम का रग भले ही पीला हो पर रस अवश्य मीठी होती है ।
(छ) हमारी नाक मे दम हो गया है ।
(ज) मुझको नौकर को भेजने को कहा गया था ।
(झ) तब शायद वह अवश्य आएगा ।

वाक्य-विश्लेषण

प्रत्येक वाक्य कुछ भिन्न-भिन्न अव्ययो से मिलकर बना हुआ होता है। इन भिन्न-भिन्न अव्ययो को अलग अलग करके उनका पारस्परिक सम्वन्ध दिखाना ही वाक्य-विश्लेषण कहा जाता है। कुछ लोग इसे वाक्य-विग्रह कहते है, कुछ वाक्य-विच्छेद।

साधारणत प्रत्येक वाक्य के दो भाग होते हैं। पहला भाग उद्देश्य कहा जाता है, दूसरा विधेय। वाक्य मे जिसके बारे मे कुछ कहा जाता है उसे उद्देश्य कहते हैं और उद्देश्य के विषय मे जो कुछ कहा जाता है उसे विधेय कहते हैं। जैसे मित्रराष्ट्रो ने जर्मनी को हराया। इस वाक्य मे 'मित्रराष्ट्रो' के बारे मे कहा गया है, अत वह उद्देश्य है, और 'जर्मनी को हराया' यह बात कही गई है, अत यह विधेय है।

पिछले अध्याय मे कहा जा चुका है कि जिस वाक्य मे एक उद्देश्य और एक विधेय हो, उसे साधारण वाक्य कहते हैं।

उद्देश्य और उसके भाग

उद्देश्य का प्रधान अश कर्त्ता होता है। उपर्युक्त वाक्य मे 'मित्रराष्ट्र' कर्त्ता है। साधारणत- एक उद्देश्य मे एक ही कर्त्ता होता है। कही-कही कर्त्ता के साथ कुछ कर्तृ विशेषण भी काम करते हैं। ये शब्द कर्त्ता के स्थान पर प्रयुक्त किये जाते हैं। जैसे कायर भागते हैं, तुम पढ रहे हो, खाने वाले आ गये हैं। इन वाक्यो मे 'कायर', 'तुम',, 'खाने वाले' आदि इसी प्रकार के शब्द है। ये सव कर्त्ता हो सकते है।

कर्त्ता का विस्तार

जो शब्द कर्त्ता की विशेषता बताते हैं अथवा कर्त्ता से सम्वन्ध रखते हैं, वे कर्त्ता का विस्तार कहे जाते है। कर्त्ता का विस्तार विशेषण या विशेषण के समान प्रयुक्त होने वाले शब्दो से होता है। जैसे अच्छे कवि जनता को मन्त्र-मुग्ध वना देते है, मिलने वाले लोग कितनी देर

से बैठे है, युधिष्ठिर का छोटा भाई अर्जुन बहुत बडा वीर था। इन वाक्यो मे 'अच्छे', 'मिलने वाले' तथा 'युधिष्ठिर का छोटा भाई' क्रमश 'कवि', 'लोग' और 'अर्जुन' कर्त्ता के विस्तार हैं।

विधेय और उसके भाग

क्रिया विधेय का मुख्य अश होता है। क्रिया अथवा क्रिया-विशेषण के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले शब्द विधेय का विस्तार कहे जाते हैं। विधेय के चार भाग होते हैं—(१) क्रिया, (२) कर्म और उसका विस्तार, (३) पूरक और उसका विस्तार और (४) क्रिया-विशेषण अथवा क्रिया का विस्तार। यह आवश्यक नही है कि प्रत्येक वाक्य मे विधेय के ये चारो भाग रहे। कभी अकेली क्रिया से ही विधेय का कार्य चल जाता है और कभी इन चार भागो मे से दो, तीन, अथवा चारो भी रहते हैं।

(१) प्रत्येक वाक्य मे एक क्रिया अवश्य होती है। जैसे सुशील जाता है। इस वाक्य मे 'जाता है' क्रिया है। इसी से विधेय का काम पूरा हो जाता है।

(२) कर्म और उसका विस्तार—जब क्रिया सकर्मक होती है तो उसका कर्म भी होता है। जैसे सुशील स्कूल जाता है। यहाँ 'स्कूल' कर्म हुआ। कभी-कभी क्रिया द्विकर्मक होती है और वाक्य मे दो कर्म होते है। जैसे राम ने मोहन को गेद बेच दी। यहाँ 'मोहन' और 'गेद' दोनो ही कर्म हैं।

जिस प्रकार कर्त्ता का विस्तार करने वाले शब्द को कर्त्ता का विस्तार कहते है उसी प्रकार कर्म का विस्तार करने वाले शब्द को कर्म का विस्तार कहते हैं। जैसे राम ने सोहन के भाई मोहन को काली गेंद बेच दी। यहाँ 'सोहन के भाई' तथा 'काली' दोनो ही क्रमश 'मोहन' और 'गेंद' कर्म के विस्तार है।

(३) पूरक और पूरक का विस्तार—यदि क्रिया अपूर्ण होती है तो उसका पूरक होता है। पूरक शब्द या तो सज्ञा होते है या सज्ञा के स्थान

पर विशेषण भी हो सकते हैं। जैसे केशव के भतीजे का नाम दुष्यन्त है। यहाँ 'दुष्यन्त' पूरक है। कर्त्ता और कर्म की भाँति पूरक का विस्तार करने वाले शब्द को पूरक का विस्तार कहते है। जैसे माया मेरी बडी पुत्री है। यहाँ 'बडी' पूरक का विस्तार है।

(४) क्रिया का विस्तार—समय, स्थान आदि बताने वाले कुछ शब्द या शब्द-समूहो का क्रिया-विशेषण के रूप मे प्रयोग किया जाता है। जैसे मोहन जल्दी जल्दी भाग रहा है, केशव दौडता हुआ आया। यहाँ 'जल्दी-जल्दी' और 'दौडता हुआ' क्रिया-विशेषण अथवा क्रिया के विस्तार हैं।

इस प्रकार साधारण वाक्य का वाक्य विश्लेषण करते समय हमे निम्नलिखित वातें बतानी पडती हैं

(१) कर्त्ता, कर्त्ता का विस्तार, (२) क्रिया, कर्म और उसका विस्तार, पूरक और उसका विस्तार, क्रिया का विस्तार।

उदाहरण के लिये हम यहाँ दो वाक्य दे रहे हैं :

(१) दो लडके स्कूल के वाचनालय मे नई पत्रिकाएँ जोर-जोर से पढ रहे है।

(२) हमारी कक्षा के अध्यापक ने इस मास सर्वश्रेष्ठ छात्र सुनील को कक्षा का मॉनीटर बना दिया।

उद्देश्य Project		विधेय Subject					
कर्त्ता	कर्त्ता का विस्तार	क्रिया	कर्म	कर्म का विस्तार	पूरक	पूरक का विस्तार	क्रिया का विस्तार
१ लडके	दो	पढ रहे हैं	पत्रिकाएँ	नई			जोर-जोर से, स्कूल के वाचनालय मे
२. अध्यापक ने	हमारी कक्षा के	बना दिया	सुनील	सर्वश्रेष्ठ छात्र	मॉनीटर	कक्षा का	इस मास

मिश्रित वाक्य

मिश्रित वाक्य मे एक मुख्य उपवाक्य होता है और शेष आश्रित उपवाक्य। आश्रित उपवाक्य तीन प्रकार के होते है–(१) सज्ञा उपवाक्य, (२) विशेषण उपवाक्य और (३) क्रिया-विशेषण उपवाक्य।

(१) **संज्ञा उपवाक्य**—जो उपवाक्य प्रधान उपवाक्य की सज्ञा के रूप मे अथवा कारक के रूप मे सहायता करते हैं, आश्रित सज्ञा उपवाक्य कहे जाते हैं। सज्ञा उपवाक्य, वाक्य मे सज्ञा का काम करता है। जैसे सब जानते हैं कि तुम एक अच्छे कलाकार हो।

(२) **विशेषण उपवाक्य**—जो आश्रित उपवाक्य मुख्य उपवाक्य की किसी सज्ञा या सर्वनाम की विशेषता बताते है, वे विशेषण उपवाक्य कहे जाते है। जैसे वह आदमी जो कल ही नौकर हुआ था आज भाग गया।

(३) **क्रिया-विशेषण उपवाक्य**—जो उपवाक्य प्रधान उपवाक्य की क्रिया की विशेषता प्रकट करते हैं, क्रिया-विशेषण उपवाक्य कहे जाते है। जैसे वह जितना जितना पढता जाता है उतना उतना ही सुशील वनता जाता है।

मिश्रित वाक्य का वाक्य विश्लेषण दो प्रकार से किया जाता है। (१) विस्तृत वाक्य-विश्लेषण और (२) सक्षिप्त वाक्य-विश्लेषण। विस्तृत वाक्य-विश्लेषण मे वाक्यो के उपवाक्य और उपवाक्यो के भिन्न-भिन्न भाग अलग-अलग दिखाये जाते है जब कि सक्षिप्त वाक्य-विश्लेषण मे केवल उपवाक्य और उनका सम्बन्ध दिखाया जाता है। विस्तृत वाक्य विश्लेषण पर साधारण वाक्य का वाक्य-विश्लेषण करते समय प्रकाश डाला जा चुका है। यहाँ सक्षिप्त वाक्य-विश्लेषण के दो तीन उदाहरण दिये जा रहे है

(१) प्रसन्नता का विषय है कि इतने विद्वान् श्रोताओ के सामने मुझे व्याख्यान देने का अवसर मिला।

(क) प्रसन्नता का विषय है—मुख्य उपवाक्य।

(ख) कि इतने विद्वान् श्रोताओ के सामने व्याख्यान देने का

अवसर मिला—(क) के आश्रित उपवाक्य, 'विषय' का समानाधिकरण। 'कि'—सयोजक।

(२) जल्दी दौड़ो ताकि ट्रेन के समय पर पहुँच सके।

(क) जल्दी दौडो—मुख्य उपवाक्य।

(ख) ताकि ट्रेन के समय पर पहुँच सकें—(क) के आश्रित क्रिया-विशेषण उपवाक्य।

(ग) ताकि—सयोजक।

(३) जब पुलिस लाठी बरसा रही थी तब एक अधा आदमी, जो रास्ता भूल गया था, रो पडा और कहने लगा, 'भाई, कृपा कर मुझे थोडी देर तुम्हारे घर मे आश्रय दे दो।'

(क) एक अन्धा आदमी रो पडा—प्रधान उपवाक्य।

(ख) और (वह) कहने लगा–(क) का समानाधिकरण उपवाक्य।

(ग) जो रास्ता भूल गया था—(क) के आश्रित विशेषण उपवाक्य।

(घ) भाई कृपा करके थोडी देर मुझे घर मे ठहरने दो—(ख) के आश्रित सज्ञा उपवाक्य।

(ङ) जब पुलिस लाठी बरसा रही थी—(क) के आश्रित क्रिया विशेषण उपवाक्य।

सयुक्त वाक्य

सयुक्त वाक्य मे एक से अधिक प्रधान उपवाक्य रहते है और इन प्रधान वाक्यो के साथ बहुधा इनके आश्रित उपवाक्य भी रहते है जो अपना पूर्ण अर्थ रखते हुए स्वतन्त्र रहते है। सयुक्त वाक्य साधारण रूप से समुच्चयबोधक अव्यय द्वारा जोडे जाते है। जैसे

(१) **सयोजक**—और, एवम्, फिर आदि।

मैं बाजार जाऊँगा और पुस्तक ले आऊँगा।

(२) **विभाजक**—अथवा, नही तो, नकि, न, चाहे।

हम सदाशिव के साथ दिल्ली अथवा मथुरा जायेंगे।

(३) **विरोध दर्शक**—लेकिन, वरन्, बल्कि।

उसने कडा परिश्रम किया लेकिन गोल नही कर सका।

(४) **परिणाम दर्शक**—अस्तु, क्योंकि, अत , इसलिये ।
मैं दिल्ली गया था, इसीलिए तो ये यहाँ आये है ।

सयुक्त वाक्य का सक्षिप्त वाक्य-विश्लेषण

(१) साधारण बाढ मे किनारे के खेतो को ही क्षति पहुँचती है, किन्तु बडी बाढ मे गाँव के गाँव बह जाते हैं ।

(२) व्यायाम से बल बढता है, चेहरा सतेज बनता है और सब प्रकार के कामो मे मन लगता है ।

(३) पहिले दो दिन तो सुधा ने कृष्णा को सामने से गुजरते हुए देखा था लेकिन वह तडके ही निकल जाती थी, अत वह उसे रोक नही पाती थी और समझती थी कि कोई और लडकी जा रही होगी ।

(१) (क) साधारण बाढ मे किनारे के पेडो को ही क्षति पहुँचती है—प्रधान उपवाक्य (ख) से सयुक्त ।

(ख) किन्तु बडी बाढ मे गाँव के गाँव बह जाते हैं—प्रधान उपवाक्य 'क' का समान-कक्षी ।

(२) (क) व्यायाम से बल बढता है—प्रधान उपवाक्य ।

(ख) चेहरा सतेज बनता है—प्रधान उपवाक्य (क) का समानाधिकरण उपवाक्य ।

(ग) सब प्रकार के कामो मे मन लगता है—प्रधान उपवाक्य (क) का समानाधिकरण उपवाक्य ।

(३) (क) पहिले दो दिन तो सुधा ने कृष्णा को सामने से गुजरते हुए देखा था—प्रधान उपवाक्य ।

(ख) लेकिन वह तडके ही निकल जाती थी—प्रधान उपवाक्य (क) का विरोध सूचक उपवाक्य ।

(ग) अत वह उसे रोक नही पाती थी—उपवाक्य (ख) का परिणाम बोधक उपवाक्य ।

(घ) और वह यही समझती थी—उपवाक्य (ग) का समानाधिकरण।

(ङ) कोई और लडकी जा रही होगी—उपवाक्य (घ) का आश्रित।

अभ्यास

१. साधारण वाक्य का वाक्य-विश्लेषण करते समय क्या-क्या बातें बतानी पडती है ?

२ मिश्रित उपवाक्य किसे कहते हैं ? मिश्रित वाक्य मे आश्रित उपवाक्य कितने प्रकार के होते है ?

३ निम्नलिखित वाक्यो का वाक्य-विश्लेषण करो .

(क) एक अच्छा लडका सदैव सच बोलता है, अपने माता-पिता की आज्ञा मानता है तथा पढने लिखने मे ढील-ढाल नही करता।

(ख) बी० ए० की परीक्षा उसने नौकरी करने के लिए नही दी थी वरन् इस कामना से कि उसे प्रथम स्थान मिलेगा और विदेश जाने के लिए छात्रवृत्ति मिल जायगी।

(ग) प्राय· देखा गया है कि जब रेल स्टेशन पर ठहरती है तो कुछ लोग चढते व कुछ लोग उतरते हैं जिससे धक्का-मुक्की होने लगती है और बेचारे स्त्री-बच्चे कुचल जाते है।

विराम-चिन्ह

बातचीत करते समय हमे वाणी के उतार-चढाव द्वारा अपनी बात कहने मे सरलता प्रतीत होती है। कभी हम रुकते हैं, कभी एक ही प्रवाह मे बोलते हैं और कभी शब्द विशेष पर जोर देते हैं। ऐसा करने से हमे अपने विचारो की अभिव्यक्ति मे सरलता होती है और श्रोता को भी वह बात समझने मे कठिनाई नही पडती। इस उतार-चढाव, रुकने आदि को ही विराम-चिह्न कहा जाता है। विराम का शाब्दिक अर्थ है रुकना या ठहरना। लिखने की भाषा मे अपने मनोभावो को स्पष्ट करने के लिए ही विराम-चिह्न का प्रयोग किया जाता है। उनके प्रयोग से भाषा सुगठित और वाक्याश जुड़े हुए प्रतीत होते हैं। विराम-चिह्न लम्बे-लम्बे मिश्रित और सयुक्त वाक्यो को भी सरल और सुबोध बना देते हैं।

विराम-चिह्न सर्व स्वीकृत और सर्वग्राह्य हैं तथा वे लेखक के विचार को समझने और समझाने मे बडी सहायता देते हैं। उनके प्रयोग से लेखक का विचार ज्यो का त्यो समझ मे आ जाता है। यदि उनका प्रयोग न हो तो बात ठीक तरह समझ मे नही आती और अस्पष्टता एव भ्रामकता बनी रहती है। यदि उनका गलत प्रयोग कर दिया जाय तब तो अनर्थ ही हो जाता है। उदाहरण के लिए यदि आपके कोई साथी आपको तार द्वारा सूचना देते हैं कि—'बम्बई जाओ मत रुको' तो निश्चय ही आप चक्कर मे पड जायेंगे, क्योकि इस वाक्य का एक निश्चित अर्थ नही है। यदि इसके दो भाग करते समय एक भाग 'बम्बई जाओ' और दूसरा 'रुको मत' माना जाय तो उसका स्पष्ट अर्थ यह है कि बम्बई जाना है। किन्तु यदि उसके भाग करते समय 'बम्बई जाओ मत' उसका एक भाग किया जाय और दूसरा भाग किया जाय 'रुको' तो उसका अर्थ होगा रुक जाना है। ऐसी स्थिति मे सचमुच समझ नही पडता कि किसे सही माना जाय। इस अस्पष्टता और अनिश्चितता की स्थिति को विराम-चिह्न दूर कर देते हैं। यदि 'जाओ' के बाद मे अल्प-विराम लगा दिया जाय तो फिर अनिश्चय या अस्पष्टता की बात ही नही रहती। अत: पढने या

लिखते समय रुकने, भाव प्रकट करने या सम्बन्ध प्रदर्शन करने के लिये जिन सर्व-स्वीकृत और सर्व-ग्राह्य चिह्नो का प्रयोग किया जाता है उन्हे विराम-चिह्न कहा जाता है। हिन्दी मे निम्नलिखित विराम चिह्न प्रचलित है

१.	अल्प विराम	,
२.	अर्द्ध विराम	;
३	अपूर्ण विराम	
४.	पूर्ण विराम	।
५	प्रश्न-सूचक चिह्न	?
६	विस्मयादि वोधक चिह्न	!
७	सम्वोधक चिह्न	!
८	योजक या विभाजक चिह्न	-
९	निर्देशक चिह्न	—
१०	कोष्ठक	() { } []
११	उद्धरण चिह्न	‘ ’ “ ”
१२	लोप चिन्ह	+ × ‘.. ...’
१३	विवरण चिह्न	—
१४	तुल्यता या समानता सूचक चिह्न	=
१५	सक्षेप सूचक चिह्न	००
१६	हस-पद चिह्न	^

१ अल्प-विराम

पढते समय जहाँ थोडी देर के लिये रुकते हैं वहाँ अल्प विराम लगाया जाता है। अल्प विराम चिह्न का प्रयोग अन्य चिह्नो की अपेक्षा अधिक होता है अतः इस चिह्न का महत्त्व भी अधिक है। इस चिह्न का प्रयोग निम्नलिखित स्थानो पर किया जाता है .

(क) यदि एक ही वाक्य मे दो से अधिक शब्द, वाक्याश, उपवाक्य आदि समान रूप से प्रयुक्त किये गये हैं तो वहाँ उनके मध्य मे अल्प-विराम का प्रयोग होता है। जैसे 'अपनी यात्रा मे मैं

दिल्ली, आगरा, कानपुर, लखनऊ और इलाहाबाद जाऊँगा ।

(ख) वाक्य के मध्य मे आये हुए विशेषरण अथवा क्रिया-विशेषरण उपवाक्य के पूर्व और पश्चात् दोनो ओर अल्प विराम का प्रयोग किया जाता है । जैसे . मैंने जो योजना बनाई थी, सफल हो गई ।

(ग) सम्बोधन शब्द के बाद भी अल्प-विराम का प्रयोग किया जाता है । जैसे . सुनो महेश, कल तुम्हे परीक्षा देने के लिये जल्दी ही जाना है ।

(घ) विषय को स्पष्ट बतलाने और सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिये भी अल्प विराम का प्रयोग किया जाता है । जैसे श्रीमद्भागवद् गीता, ११ वाँ अध्याय, श्लोक १८ ।

(ङ) उक्ति या उद्धरण चिह्न से पूर्व भी अल्प-विराम लगाया जाता है । जैसे : राम ने कहा, "मैं परसो जयपुर जा रहा हूँ ।"

(च) जहाँ परस्पर सम्बन्ध वाले दो शब्दो के बीच मे कोई पद, वाक्याश या उपवाक्य आकर उन्हे अलग कर दे, वहाँ उसके दोनो ओर अल्प-विराम लगाया जाता है । जैसे चाहे तुम घर नहाओ, चाहे कुए पर जाओ, १० बजे तक अवश्य आ जाना ।

(छ) यदि संयुक्त वाक्य के दूसरे वाक्य का प्रारम्भ 'इससे', 'अतएव', 'तभी', 'इसीलिए', 'किन्तु', 'वरन्', 'परन्तु', 'क्योकि' आदि से हो तो उसके पहले अल्प-विराम लगाया जाता है । जैसे . मोहन अपनी कक्षा मे प्रथम रहा, परन्तु खेल मे तो वह सबसे पीछे रहता है ।

(ज) 'वह', 'यह' अथवा 'नित्य' सम्बन्धी शब्दो के जोड का दूसरा शब्द जहाँ लुप्त हो वहाँ भी अल्प-विराम लगाया जाता है । जैसे : मोहन जो भी खेल खेलता है, कमाल कर देता है ।

(झ) वाक्य मे पढते समय जिन स्थानों पर अल्प समय के लिए रुकना आवश्यक लगे, वहाँ अल्प-विराम का प्रयोग किया जाता है । जैसे : कौशल्या इतनी रूठ गई थी कि न बोलती थी, न खाती थी, न पीती थी और न कोई दैनिक कार्य ही करती थी ।

(ञ) समान पदी शब्द या वाक्यांश को पृथक् करने के लिये अल्प विराम का प्रयोग किया जाता है। जैसे . भारत के सर्वमान्य नेता, प० जवाहरलाल नेहरू, आज हमारे बीच मे नही हैं।

२. अर्द्ध विराम

जिस स्थान पर अल्प-विराम की अपेक्षा अधिक रुकना पडता है, वहाँ अर्द्ध विराम लगाया जाता है। अर्द्ध विराम को अल्प-विराम और पूर्ण विराम के बीच का चिह्न कह सकते हैं। अर्द्ध विराम का प्रयोग निम्नलिखित स्थानो पर किया जाता है ·

(क) किसी एक वाक्य पर निर्भर रहने वाले कई आश्रित वाक्यो के बीच अर्द्ध-विराम लगाया जाता है। जैसे जब तक वह अत्याचारी यह न देख लेगा कि बीसियो परिवार त्राहि-त्राहि कर रहे हैं, उनके पास न पहिनने को कपडा है न खाने को अनाज, वे दर-दर के भिखारी बन गये हैं, तब तक उसका हृदय शान्त नही होगा।

(ख) जब किसी एक वाक्य के दो भागो मे से पहला भाग अपने अर्थ मे पूर्ण हो और दूसरा उसकी व्याख्या आदि करता हो तब उनके बीच अर्द्ध-विराम लगाया जाता है। जैसे मैं कसरत करता हूँ, तुम मालिश कर लो।

(ग) समानाधिकरण वाक्यो के मध्य मे भी अर्द्ध विराम का प्रयोग किया जाता है। जैसे : कर्वे विश्व विद्यालय की नीव आचार्य कर्वे ने डाली, उन्ही ने उसे कॉलेज बनाया, उन्ही ने उसे महिला-शिक्षा का एक आदर्श केन्द्र बनाया, और उन्ही ने उसे विश्वविद्यालय भी बनाया।

(घ) प्रधान वाक्य से कारणवाचक क्रिया-विशेषण का सम्बन्ध दूर होने पर भी अर्द्ध-विराम लगाया जाता है। जैसे मैं तुम्हारा चेहरा एक क्षण के लिये भी देखना नही चाहता, मेरी आँखो के सामने से हट जाओ !

(ङ) मिश्रित अथवा सयुक्त वाक्य मे जो वाक्य दूसरे वाक्य अथवा वाक्यो मे विपरीत अर्थ प्रकट करता है उस वाक्य के पूर्व अर्द्ध विराम लगाया जाता है। जैसे मारने-पीटने या कडी-कडी सजा देने से आजादी का आन्दोलन दबाया नही जा सकता, उससे तो वह ऐसे ही तेज होता है जैसे घृताहुति से अग्नि ।

३ अपूर्ण विराम

यदि किसी स्थान पर अर्द्ध विराम की अपेक्षा अधिक समय तक रुकना पडे तो अपूर्ण विराम लगाया जाता है । हमारी भाषा मे अपूर्ण चिह्न तथा विसर्ग चिह्न मे कोई विशेष अन्तर नही होता । अत इस चिह्न का प्रयोग बहुत ही कम किया जाता है । इस चिह्न का प्रयोग निम्नलिखित स्थानो पर किया जाता है.—

(क) जहाँ रुकना आवश्यक एव अनिवार्य हो जाता है । जैसे · दो दिन बुखार आया और लडकी चल बसी क्या करें भाग्य मे यही लिखा था ।

(ख) जहाँ किसी कथन की पुष्टि मे एक से अधिक उदाहरण दिये जाय और वहाँ 'अर्थात्', 'जैसे', 'उदाहरणार्थ' आदि शब्दो का प्रयोग न किया जाय वहाँ अपूर्ण विराम लगाया जाता है । जैसे . शेक्सपीयर ने कई अच्छे नाटक लिखे मेकब्रेथ, हेमलेट, किंगलियर, ऑथेलो, जूलियस सीजर, वेनिस का सौदागर, रोमियो जूलियट, जैसी आपकी मर्जी आदि ।

(ग) जहाँ बातचीत के बाद 'सक्षेप मे', 'साराश यह है' आदि वाक्यो का प्रयोग होता है वहाँ उनके बाद अपूर्ण विराम लगाया जाता है । जैसे साराश यह है · यदि आप ईमानदारी और मेहनत से काम करें तो मैं आपको नौकरी दिला सकता हूँ ।

(घ) यदि वाक्य स्वतन्त्र होते हुए भी अन्योन्याश्रित हो तो अपूर्ण विराम का प्रयोग किया जाता है । जैसे सब धर्मों का यही आदेश है . प्राणीमात्र पर दया करो, सत्य बोलो और किसी को हानि मत पहुँचाओ ।

४. पूर्ण विराम

पूर्ण विराम चिह्न का प्रयोग निम्नलिखित स्थानो पर किया जाता है

(क) साधारणत. प्रत्येक पूर्ण वाक्य के अन्त मे पूर्ण विराम लगाया जाता है। जैसे मैं अपना काम समाप्त करके दिल्ली जाऊँगा।

(ख) आज्ञा-सूचक या आदेशात्मक वाक्य के अन्त मे भी पूर्ण विराम लगाया जाता है। जैसे अभी बैठो। थोडी देर बाद जाना।

५ प्रश्न-सूचक चिन्ह

प्रश्न-सूचक चिह्न का प्रयोग निम्नलिखित स्थानो पर किया जाता है।

(क) यदि किसी वाक्य मे कोई प्रश्न पूछा जाता है तो अन्त मे प्रश्न-सूचक चिह्न का प्रयोग किया जाता है। जैसे क्या आप आज ही लौटे हैं ?

(ख) यदि किसी वाक्य से सन्देहात्मक अथवा अनिश्चयात्मक भाव सूचित हो तो प्रश्न-सूचक चिह्न लगाया जाता है। जैसे शायद आप परीक्षा मे पास हो गए हैं ?

(ग) यदि वाक्य मे कही साकेतिक, सन्देहात्मक अथवा व्यङ्गात्मक भाव प्रदर्शित किया जाय तो कोष्ठक के अन्दर प्रश्न-सूचक चिह्न का प्रयोग किया जाता है। जैसे यहाँ सब सभ्य व्यक्ति (?) रहते हैं, तभी तो चोर-बाजारी, रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार का बाजार गर्म है।

६. विस्मयादिबोधक चिन्ह

(क) विस्मयादिबोधक चिह्न का प्रयोग उस वाक्य मे किया जाता है जहाँ हर्ष, विषाद, घृणा, भय, आश्चर्य, प्रार्थना, आज्ञा आदि मनोवेगो का प्रदर्शन करना होता है। जैसे

(१) अरे! चोर भाग रहा है, पकडो उसे !

(२) छि ! कितने गन्दे विचार हैं तुम्हारे !

(३) भगवन् ! गरीबो पर दया करो !

(ख) उपहास तथा व्यग के विशेषभाव को सूचित करने के लिए भी

विस्मयादिबोधक चिह्न का प्रयोग किया जाता है। जैसे यदि आप पाँच-पचास हजार रुपया खर्च करने के लिए तैयार हो तो महीने भर मे ही आपको अनेक सस्थाओ का सभापति बना दूँ! फिर प्रत्येक अखबार आपका चित्र छापेगा, प्रत्येक सस्था आपका गुणगान करेगी !

७—सम्बोधक चिन्ह

विस्मयादिबोधक चिह्न और सम्बोधक चिह्न मे कोई अन्तर नही है। चिह्न वही है, किन्तु जहाँ पुकारने या सचेत करने का भाव होता है वहाँ सम्बोधक चिह्न लगाया जाता है। जैसे अरे केशव ! कहाँ चले गये, इधर आओ।

८. योजक या विभाजक चिन्ह

जहाँ दो या दो से अधिक शब्दो का सम्बन्ध प्रकट करना होता है वहाँ योजक या विभाजक चिह्न का प्रयोग किया जाता है। इसके नियम इस प्रकार है

(क) साधारणत योजक चिह्न उन तत्पुरुष और द्वन्द्व समासो के बीच लगाया जाता है जो सन्धि या रूप-परिवर्तन के कारण एक नही हो पाते। जैसे माता-पिता, दिन-रात।

(ख) पुनरुक्ति अथवा युग्म रूप मे जिन शब्दो का प्रयोग होता है वहाँ भी योजक चिह्न का प्रयोग किया जाता है। जैसे . राम-राम, पढते-पढते, आमने-सामने।

(ग) यदि कोई शब्द पक्ति के अन्त मे पूर्ण न हो सके तब भी इस चिह्न का प्रयोग किया जाता है। जैसे : मैंने बार-बार कहा कि मित-व्ययता से काम लो परन्तु तुम मेरी बात मानते ही नही।

९ निर्देशक चिन्ह

जहाँ किसी बात को समझाने के लिए उदाहरण देते हैं या किसी बात का निर्देशन करते हैं वहाँ निर्देशक चिह्न लगाया जाता है। इसका प्रयोग नीचे लिखे स्थानो मे होता है

(क) वार्तालाप विषयक लेखो मे वक्ता के नाम के अथवा जहाँ

किसी की उक्ति शुरु होती है वहाँ इस चिह्न का प्रयोग किया जाता है। जैसे . राम ने कहा—यह अखबार पढो।

(ख) यदि वाक्य के बीच मे कोई वाक्य, वाक्याश या स्वतन्त्र-पद आ जाए तो उसके दोनो ओर भी इस चिह्न का प्रयोग किया जाता है। जैसे हमारे चारो भाई—भगवान् उनकी रक्षा करे—दगाग्रस्त क्षेत्र मे शान्ति स्थापना के लिए गए हैं।

(ग) विषय विभाग सम्बन्धी प्रत्येक शीर्षक के आगे और जहाँ उदाहरण देना हो वहाँ भी इस चिह्न का प्रयोग किया जाता है। जैसे तुलसीदास की सभी रचनाएँ जैसे—रामायण, विनय पत्रिका, कवितावली, गीतावली, पार्वती-मगल—मैंने पढ ली है।

(घ) यदि वाक्य मे क्रिया के अनेक कर्त्ता हो, और अन्त मे कोई शब्द सामूहिक रूप से उसका प्रतिनिधित्व करे तो उस शब्द से पूर्व निर्देशक चिह्न का प्रयोग किया जाता है। जैसे : बालक, बूढे, स्त्री, पुरुष, हिन्दू, मुसलमान—सभी तो 'भारत छोडो' आन्दोलन मे कूद पडे थे।

(ङ) यदि वाक्य मे कोई ऐसा शब्द प्रयोग करने का अवसर आ जाय जो भद्दा हो तो उसके स्थान पर भी निर्देशक चिह्न लगाया जाता है। जैसे रमेश को बहुत गुस्सा आ रहा था, उसने कहा सुशील तो—बच्चा है।

१०—कोष्ठक चिन्ह

कोष्ठक चिह्न का प्रयोग निम्नलिखित स्थानो पर किया जाता है

(क) कोष्ठक चिह्न का प्रयोग ऐसे स्थल पर होता है जहाँ कुछ शब्द अथवा वाक्य मुख्य-वाक्य से सम्बन्धित नही होते हैं, किन्तु अर्थ स्पष्ट करने के लिए उनका वाक्य मे होना आवश्यक होता है। जैसे आगरा निवासी लल्लू लालजी (स० १८२०-१८८२) का प्रेम-सागर उल्लेखनीय ग्रन्थ है।

(ख) नाटको मे अभिनय की क्रिया को प्रकट करने के लिए भी कोष्ठक चिह्न का प्रयोग किया जाता है। जसे . सुधारक—

(आगे बढ कर) ठहरो! अब हरिजनो के साथ इतना दुर्व्यवहार नही किया जा सकेगा।

(ग) कही-कही गम्भीर या क्लिष्ट शब्दो का अर्थ स्पष्ट करने के लिये भी इस चिह्न का प्रयोग किया जाता है। जैसे भाषावार प्रान्त रचना के लिये भारत-सरकार ने दस वर्ष पहले एक आयोग (कमीशन) बैठाया था।

११—उद्धरण चिन्ह

उद्धरण चिह्न का प्रयोग निम्नलिखित स्थानो पर किया जाता है :

(क) जब किसी व्यक्ति द्वारा कहे हुए वाक्य ज्यो के त्यो रखना आवश्यक होता है, तब उद्धरण चिह्न का प्रयोग किया जाता है। जैसे : उस दिन हरिभाऊजी ने मुझ से कहा था—"मेरे कोई पुत्र नही, मैं तुम्हे अपने पुत्र की तरह ही रखना चाहता हूँ।"

(ख) किसी पुस्तक या लेखक के उद्धृत किये हुए शब्द उद्धरण चिह्न के अन्तर्गत रखे जाते हैं। जैसे : रामायण मे तुलसीदासजी के प्रतिपाद्य भगवान् राम ही हैं। उन्होने लिखा है—"इहि महँ आदि मध्य अवसाना, प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना।"

(ग) यदि किसी वाक्य मे दो उद्धरण आ जायें तो पहिले अवतरण के लिये दोहरे चिह्न और दूसरे के लिये इकहरे चिह्न का प्रयोग किया जाता है। जैसे विनोबा प्रार्थना प्रवचन मे कह रहे थे—"सम्पत्ति किसी व्यक्ति की नही समाज की—ईश्वर की है, तुलसीदासजी ने रामायण मे लिखा है—'सम्पत्ति सब रघुपति के आही।'.... ...."

१२—लोप-चिन्ह

जब किसी अवतरण मे कुछ शब्द अथवा वाक्य छोड दिये जाते हैं और लेखक यह सकेत करना चाहता है कि कुछ छोड दिया गया है तो लोप चिह्न का प्रयोग किया जाता है। जैसे : शान्त रहो .... दुर्भाग्य की काली छाया · ·। यदि अनुच्छेद या अधिक वाक्य छोड दिये जाते हैं तो [× × ×] चिह्न का प्रयोग किया जाता है।

कही कही (') के द्वारा भी लोप चिह्न का काम चला लिया जाता है। जैसे . सन् १८५७ न लिखकर '५७ ही लिख दिया जाता है।

१३—विवरण चिन्ह

किसी विषय अथवा बात को समझाने के लिये अथवा निर्देश के लिये विवरण चिह्न का प्रयोग किया जाता है। जैसे सन्धि तीन प्रकार की होती है—स्वर सन्धि, व्यजन सन्धि और विसर्ग सन्धि।

१४—तुल्यता या समानता सूचक चिन्ह

जहाँ एक वस्तु की तुलना या समानता दूसरी वस्तु से दिखानी होती है वहाँ इस चिह्न का प्रयोग किया जाता है। जैसे आठ फर्लाङ्ग =एक मील।

१५—संक्षेप-सूचक चिन्ह

जहाँ पूरा शब्द या पूरा नाम न लिखकर सक्षिप्त नाम से ही काम चलाना आवश्यक होता है वहाँ इस चिह्न का प्रयोग किया जाता है। जैसे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन या प्रयाग-महिला विद्यापीठ के स्थान पर हि० सा० स० या प्र० म० वि०।

१६—हसपद चिन्ह

यदि वाक्य मे भूल से कोई शब्द समूह छूट जाता है तो इस चिह्न को बीच मे लगाकर छूटे हुए शब्द, पक्ति के ऊपर लिख दिये जाते

निवासी

हैं। जैसे शभूनाथ शुक्ल विंध्य प्रदेश के ∧ हैं।

उपर्युक्त चिह्नो के अतिरिक्त नीचे लिखे चिह्न भी हिन्दी भाषा मे प्रयुक्त होते हैं

(१) पुनरुक्ति चिह्न ,,
(२) समाप्ति सूचक चिह्न —०—
(३) विशेष चिह्न *, † ‡ || आदि

अभ्यास

१. विराम चिह्नो की क्या उपयोगिता है ?
२ विराम चिह्न कितने प्रकार के हैं ? उनके नाम बताइये।
३. अर्द्धविराम कहाँ-कहाँ लगाया जाता है ?

४ योजक या विभाजन चिन्ह कहाँ-कहाँ लगाया जाता है ?

५. निम्नलिखित वाक्यो मे उपयुक्त चिन्ह लगाइये

(१) गाधीजी के अनुसार किसी को न मारना मात्र ही अहिंसा नही है वरन् वास्तविक अहिंसा तो यह है कि किसी भी प्राणी को मन वचन और कर्म से किसी भी प्रकार का कष्ट न पहुँचाया जाय ।

(२) उपन्यासकार पूर्ण चिडिया ही नही बल्कि आस-पास बैठी हुई दूसरी चिडियो को तथा जहाँ तक उसकी निगाह दौड सके पूरे दृश्य को सावधानी के साथ अवलोकन करता है किन्तु कहानीकार धनुर्विद्या विशारद वीर अर्जुन की भाँति अपने निशाने को अचूक बनाने के लिये केवल आँख की ओर अधिक से अधिक सिर को जिसमे आँख अवस्थित है लक्ष कर तीर चलाता है ।

लोकोक्तियाँ और मुहावरे

साधारणत. मुहावरे शब्द का अर्थ है—अभ्यास। किन्तु इस साधारण अर्थ मे उसका प्रयोग नही होता। हम ऐसे पद या वाक्याश को मुहावरे कहते हैं जो अपने साधारण शाब्दिक अर्थ के स्थान पर लाक्षणिक या कोई दूसरा अलौकिक अर्थ प्रकट करें। अपनी मनोभावना दूसरो पर ठीक तरह अभिव्यक्त करने के लिये, अपनी अनुभूति की तीव्रता प्रकट करने के लिये हमे कुछ चुभते हुए लोक-प्रचलित वाक्याशो का प्रयोग करना पडता है। इनके प्रयोग से हमारा कार्य सरल बन जाता है। लोकोक्तियाँ या मुहावरे भाषा की जान हैं। वे भाषा को सजीव, रोचक, प्रवाह-पूर्ण और आकर्षक बना देते हैं। उनके प्रयोग से जहाँ लिखने या बोलने वाले को इस बात का सन्तोष हो जाता है कि वह अपनी बात ठीक तरह कह सका है, वहाँ सुनने वाले को भी इस बात से सन्तोष होता है कि वह वक्ता या लेखक के विचारो को ठीक-ठीक समझ पाया है। उदाहरण के लिये यदि कोई आदमी थोडा बडा ओहदा पाकर घमण्ड मे फूल उठे और सीधे मुँह बात भी न करे तो हमे यह कहकर सन्तोष होगा कि—'प्यादा से फर्जी भयो, टेढो-टेढो जाय'। इससे हमारी मनोभावना ठीक-ठीक व्यक्त हो जायगी। इसी प्रकार सुनने वाले को भी हमारी मनोभावना की ठीक-ठीक कल्पना हो सकेगी। अपने विचार, भाव या अनुभूति की तीव्रता दूसरो पर प्रकट करने मे मुहावरे और लोकोक्तियाँ सहायक होती हैं। जो बात दूसरे शब्दो मे, दो तीन वाक्य लिख अथवा बोल कर भी हम प्रकट नही कर पाते हैं, वह लोकोक्तियो के द्वारा एक छोटा-सा वाक्याश प्रकट कर देता है।

भाषा को प्रवाह-पूर्ण और सजीव बनाकर मुहावरे एव लोकोक्तियाँ लेखक, वक्ता और श्रोता सभी का काम सरल बना देते हैं। वे लिखने, कहने, सुनने और पढने के काम मे एक रस पैदा कर देते हैं जिससे वह कार्य बड़ा रोचक हो जाता है। इसलिये भाषा मे मुहावरे और लोकोक्तियो का प्रयोग आवश्यक माना गया है। लोकोक्तियो और मुहावरों

का वास्तविक स्वरूप एक ही है,किन्तु फिर भी उनमे भेद है । लोकोक्तियाँ एक वाक्य के समान होती हैं और वे अपना स्वतन्त्र अर्थ भी रखती हैं, किन्तु मुहावरे केवल वाक्याश होते हैं, वे अपना स्वतन्त्र अर्थ नही रखते ।

लोकोक्तियो और मुहावरो का महत्त्व निर्विवाद है । किन्तु अपात्र के हाथ मे पड कर वे अर्थ का अनर्थ भी कर देती हैं । अत विद्यार्थियो के लिये उन्हे भलीभाँति समझ लेना आवश्यक है । उन्हे ठीक तरह समझे विना ही प्रयोग मे लाना कई बार अभीष्ट प्रभाव नही डाल पाता, वल्कि उससे उल्टा प्रभाव ही पडता है । इसी प्रकार लोकोक्तियो के शब्दो मे भी कोई परिवर्तन करना उचित नही है । इस परिवर्तन से भी अर्थ का अनर्थ हो सकता है और अनेक बार वह प्रयोगकर्त्ता के अज्ञान का ही सूचक वन जाता है । अत नीचे हम कुछ लोकोक्तियाँ और मुहावरे दे रहे हैं । उनके साथ-साथ हमने उनके अर्थ और प्रयोग भी देने का प्रयत्न किया है ताकि ठीक प्रकार समझने और अपने वाक्यो मे प्रयोग करने मे कठिनाई न हो ।

लोकोक्तियाँ

१ अकेला चना भाड नही फोड सकता—अकेला व्यक्ति कठिन काम नही कर सकता ।
प्रयोग—मोहन ने वहुत प्रयत्न किया कि मोटर को गड्ढे से वाहर खीच ले लेकिन अकेला चना भाड नही फोड सकता ।

२ अटका वनिया देय उधार—स्वार्थी व्यक्ति मौका पडने पर विवश होने पर सव कुछ करने को तैयार हो जाता है ।
प्रयोग—वैसे तो सेठ वन्नालाल सीधे मुँह वात नही करते थे लेकिन आज जव इनकमटैक्स वालो ने तग किया तो मुझे पैरवी के लिए एक हजार रुपये तक देने को तैयार हो गये । ठीक ही कहा है—अटका वनिया देय उधार ।

३ अधजल गगरी छलकत जाय—ओछा मनुष्य इतराता है।

४ अनमागे मोती मिलें, मागे मिले न भीख—जो कुछ भाग्य मे होता है अपने आप मिल जाता है। मागने से तो भीख भी नही मिलती।

५ अपना सोना खोटा तो परखैया को क्या दोष—यदि कमी अपने मे ही है तो इसमे दूसरो का क्या दोष।

६. अपना लाल गवाय के घर घर मागे भीख—पास की सम्पति नष्ट करके दूसरो की सहायता मागना।

७. अपना हाथ जगन्नाथ—अपना काम सबसे वडा मानना।

८. अपनी गरज को लोग गधा चराते हैं—मतलब पडने पर लोग बुरे से बुरा काम करने को तैयार हो जाते हैं।

९ अपनी अपनी ढपली अपना अपना राग—मनमानी करना।

१० अपनी करनी पार उतरनी—अपने कर्मों का फल खुद को ही भोगना पडता है।

११. अपनी गली मे कुत्ता भी शेर होता है—अपने स्थान पर निर्बल भी बलवान बन जाता है।

१२ अपनी नाक कटे तो कटे दूसरो का सगुन तो बिगडे—दूसरो को थोडी हानि पहुँचाने के लिए अपना अधिक नुक्सान कर लेना।

१३ अपनी पगडी अपने हाथ—अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने का काम स्वय को ही करना चाहिए।

१४ अपने दही को कोई खट्टा नही कहता—अपनी वस्तु को कोई बुरी नही बताता।

१५ अब पछताये होत क्या, चिडिया चुग गई खेत—समय निकल जाने पर पछताने से कुछ नही होता।

१६ अभी तो दूध के दात भी नही टूटे हैं—अभी बच्चे हो।

१७ अमरौती खाकर कोई नही आया—कोई अमर नही है, सब मरेंगे।

१८. अरहर की टट्टी गुजराती ताला—अनमेल वस्तुओ का साथ।

१६. अलख पुरुष की माया, कही धूप कही छाया—ईश्वर की माया अपार है ।

२० अल खामोशी नीम रजा—चुप रहने का मतलब है स्वीकृति ।

२१ अशर्फियाँ लुटें और कोयलो पर छाप—एक ओर खूब खर्च करना दूसरी तरफ पैसे पैसे का हिसाब रखना ।

२२ अस्सी की आमद चौरासी का खर्च—आय से व्यय अधिक होना ।

२३ अडे सेवे कोई, वच्चे लेवे कोई—श्रम कोई करे, लाभ कोई उठाए ।

२४ अन्त भला सो सब भला—यदि परिणाम अच्छा निकले तो सब कुछ अच्छा ही समझना चाहिए ।

२५ अन्धा क्या मागे दो आखें—इच्छित वस्तु का बिना प्रयास मिल जाना ।

२६. अन्धा बाटे रेवडी अपने अपने को दे—जिसके पास सत्ता या अधिकार है वह पहले अपने ही लोगो को लाभ पहुँचाता है ।

२७ अन्धा मुल्ला टूटी मसीद—दोनो का समान होना ।

२८ अन्धी पीसे कुत्ता खाय—मेहनत कोई करे लाभ कोई उठाए ।

२९ अन्धे के आगे रोना, अपने दीदे खोना—दूसरो को अपनी कष्ट-कथा सुनाने से कोई लाभ नही होता ।

३० अन्धे के हाथ बटेर लगी—अनायास कोई लाभ होना ।

३१ आई मौज फकीर की दिया झोपडा फूंक—विरक्त व्यक्ति को किसी से ममता नहीं होती ।

३२ आँख और कान मे चार अगुल का फर्क है—बिना देखे किसी पर विश्वास नही करना चाहिए ।

३३ आँख न दीदा काढे कसीदा—अपनी योग्यता से अधिक कर दिखावा करना ।

३४ आँख बची माल दोस्तो का—असावधानी हमेशा हानिकारक होती है ।

३५ आँख के अन्धे नाम नयनसुख—गुण कुछ, नाम कुछ ।

३६ आग लगने पर कुआ खोदना—विपत्ति आने पर उसे दूर करने का प्रयत्न करना ।

३७ आगे न पीछे मगहा, सबसे भला कुम्हार का गदहा—जिसके कोई न हो ।

३८ आटे के साथ घुन भी पिस जाता है—दोषी के साथ रहने से निर्दोष व्यक्ति को भी हानि उठानी पडती है ।

३९ आदमी जाने बसे, सोना जाने कसे—पास रहने पर ही आदमी को पहिचाना जा सकता है ।

४०. आधी तज सारी को धावे, आधी रहे न सारी पावे—अधिक लालच करना बहुत खतरनाक होता है ।

४१. आपकाम, महाकाम—अपना काम अपनी ही मेहनत से बनता है, दूसरो से नही। ।

४२. आप न जावे सासुरे औरो को सिख दे—स्वय न करना और दूसरो को उसे करने की शिक्षा देना ।

४३ आप मरे और जग डूबा—मरने पर भले ही कुछ भी हो ।

४४ आम के आम, गुठली के दाम—दुहेरा लाभ मिलना ।

४५. आम खाने से काम, पेड गिनने से क्या काम ?—व्यर्थ की बातों मे न पडकर मूल बात को पकडना ।

४६ आये थे हरि भजन को ओटन लगे कपास—लक्ष्य भ्रष्ट होना ।

४७ आसमान से गिरा और खजूर मे अटका—दाता ने दिया, बीच वालो ने झमेले मे डाल दिया ।

४८ इन तिलो मे तेल नही—यहा कोई लाभ की आशा नही है ।

४९ ईंट का घर मट्टी कर दिया—बना बनाया काम बिगाड़ दिया ।

५०. उतर गई लोई क्या करेगा कोई—बेशर्म का कोई कुछ नहीं कर सकता ।

५१. उधार दिया और ग्राहक खोया—उधार देने से ग्राहक के दर्शन कठिन हो जाते है ।

५२. उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे—दोषी व्यक्ति का निर्दोष पर सारा दोष मढ़ देना ।

५३ उल्टे बांस बरेली को—विपरीत या बेमेल कार्य करना ।

५४ ऊची दुकान, फीका पकवान—दिखावा अधिक, वास्तविकता कम ।

५५ ऊँट किस करवट बैठता है—देखें क्या फैसला होता है ।

५६ ऊँट की चोरी और झुके झुके—बड़े काम छिपकर नही किये जा सकते ।

५७ ऊँट के मुँह में जीरा—आवश्यकता बहुत अधिक, लेकिन वस्तु बहुत कम ।

५८ एक अनार सौ बीमार—वस्तु एक, माँगने वाले अनेक ।

५९ एक और एक ग्यारह होते हैं—एकता मे बडी शक्ति है ।

६० एक कहो न दस सुनो—न किसी का कुछ बिगाडो जो वह तुम्हारा कुछ बिगाडे ।

६१ एक हाथ से ताली नही बजती—एक ओर से ही लडाई नहीं होती ।

६२ एक तो चोरी दूसरे सीना जोरी—बुरा काम करके भी आँखे दिखाना ।

६३ एक ही थैली के चट्टे बट्टे—एक समान ।

६४. एक मछली सारे तालाब को गदा करती है—एक बुरा व्यक्ति सबको बदनाम करता है ।

६५ एक तो करेला कडुआ दूसरे नीम चढा—एक बुराई के साथ दूसरी बुराई का और जुड जाना ।

६६ एक म्यान मे दो तलवारें नही समा सकती—जहा एक व्यक्ति जितना ही स्थान हो वहां दो नही रह सकते ।

६७. ओखली मे सिर दिया तो मूसलो से क्या डरना—जब कोई कठिन कार्य अपने ऊपर ले लिया तो कष्टो से क्या डरना ।

६८ ओछे की प्रीत बालू की भीत—दुष्ट मनुष्य की मित्रता अधिक नही टिकती ।

६९ ओछे के मुह लगना, अपनी इज्जत खोना—दुष्ट व्यक्ति से वाद-विवाद करना अच्छा नही ।

७० ओस के चाटे प्यास नही बुझती—जहा बहुत की जरूरत हो वहा थोडे से क्या हो सकता है ?

७१ और बात खोटी, सही बात रोटी—भोजन सबसे अधिक महत्व की और मुख्य बात है ।

७२ ककडी के चोर को फासी की सजा नही दी जाती—साधारण अपराध पर कठिन दण्ड नही दिया जा सकता ।

७३ कँगाली मे आटा गीला—मुसीबत मे मुसीबत ।

७४ कडाही से गिरा चूल्हे मे पडा—एक विपति से छूटने पर दूसरी विपति मे पडना ।

७५ कभी घी घना, कभी मुट्ठी चना, कभी वह भी मना—जो कुछ मिले उसी मे सन्तुष्ट रहना चाहिए ।

७६. कभी गाडी नाव पर, कभी नाव गाडी पर—हर व्यक्ति को दूसरो की सहायता की जरूरत होती ही है ।

७७ करम हीन खेती करे बैल मरे या सूखा पडे—कर्महीन को हर जगह मुसीबत ही मिलती है ।

७८ करे कल्लू भरे उल्लू—अपराध कोई करे और सजा किसी को मिले ।

७९ कलाल की दुकान पर पानी पियो तो भी शराब का शक होता है—बुरे स्थान पर बैठने से निर्दोष व्यक्ति को भी कलक लगता है ।

८० कहां राजा भोज कहां गगू तेली—महान् अन्त ।

८१ कही की ईंट कही का रोडा, भानुमति ने कुनबा जोडा—इधर उधर की अनावश्यक वस्तुओ को जोडकर निकम्मी चीज तैयार करना ।

८२ कहे से धोबी गधे पर नही चढता—जिद्दी आदमी कहने से कोई बात नही मानता ।

८३ काटो तो खून नही—भय से सन्न रह जाना ।

८४ काजल की कोठरी मे केतो हूँ सयानो जाय, एक रेख काजर की लागि है पै लागि है—बुरे के साथ रहने पर कुछ न कुछ बुराई

पैदा होगी ही ।

८५. काजी जी दुवले क्यो ? शहर के अदेशे से—अपनी चिन्ता न करके व्यर्थ ही दुनिया की चिन्ता से परेशान होना ।

८६. काठ की हाडी वार-बार नही चढती—कपट से किसी को एक ही बार ठगा जा सकता है, वार-बार नही ।

८७. कावुल मे क्या गधे नही होते—मूर्ख और विद्वान सभी जगह मिलते हैं ।

८८. काला अक्षर भैंस बरावर—अनपढ ।

८९. कुछ कमान झुके कुछ गोसा—दोनो पक्षो की सहिष्णुता से ही निपटारा सभव हो सकता है ।

९०. कुतिया चोरो से मिल गई पहरा किसका दे—रक्षक ही का भक्षक वन जाना ।

९१ कुत्ते की दुम बारह वर्ष नल मे रखो, तो भी टेढी की टेढी—दुष्ट व्यक्ति अपना स्वभाव नही बदलता ।

९२. कुत्ते को हड्डी भली लगती है—गन्दे आदमी को गन्दी बात ही अच्छी प्रतीत होती है ।

९३. कुत्तो के भौंकने से हाथी नही डरते—बुद्धिमान व्यक्ति मूर्खों की मूर्खता से परेशान नही होते ।

९४ कुम्हार अपना ही घडा सराहता है—सब अपनी चीज को अच्छा वताते हैं ।

९५. कूडे पर फुलेल डालना—मूल्यवान वस्तु को व्यर्थ बरबाद करना ।

९६. कोठी वाला रोवे, छप्पर वाला सोवे—निर्धन निश्चिन्त रहता है ।

९७. कोयलो की दलाली मे काले हाथ—बुरो के साथ रहने से कलक लगता ही है ।

९८. कोयला होय न ऊजले, सौ मन साबुन लाय—कितना ही क्यो न समझाया जाय दुष्ट व्यक्ति अपनी आदत नही छोडता ।

९९. कौआ चला हस की चाल—कपटपूर्ण आडम्बर की रचना करना ।

१००. क्या पिदडी और क्या पिदडी का शोरवा—छोटी चीज से वडा काम पूरा नही हो सकता ।

१०१ खग जाने खग ही की भाषा—जो जिस सगति मे रहता है उसका हाल वही जानता है ।

१०२ खर को खूव न्हवाइये, तऊ न छाडे छार—जातीय स्वभाव नही छूटता ।

१०३ खरवूजे को देखकर खरवूजा रग वदलता है—देखा-देखी शौक करना ।

१०४ खरी मजूरी चोखा काम—नकद और पूरी मजदूरी देने से काम अच्छा होता है ।

१०५ खाक डाले चाँद नही छिपता—चाहे जितनी निन्दा की जाय यशस्वी व्यक्ति का यश समाप्त नही होता ।

१०६ खात निवौरी दाख वतावै—अपने खाने पीने की झूठी प्रशसा करना ।

१०७ खाल ओढाये सिंह की, स्यार सिंह नहिं होय—वेश के वदलने से गुण नही वदलता ।

१०८ खिलाये का नाम नही, रुलाये का नाम—दूसरो का भला करने से तो यश नही मिलता, लेकिन वुरा करने से वदनामी शीघ्र होती है ।

१०९ खिसियानी विल्ली खम्वा नोचे—लज्जित होकर क्रोध करना ।

११०. खुदा गजे को नाखून न दे—अत्याचारी को अधिकार न मिले ।

१११. खोटा वेटा और खोटा पैसा ही समय पर काम आता है—समय पडने पर अपनी वुरी चीज ही काम आती है ।

११२. खोदा पहाड निकली चुहिया—भारी परिश्रम का तुच्छ परिणाम ।

११३. गगा गये गगादास जमुना गये जमुनादास—मुँह देखी वातें करना ।

११४. गजी यार किसके, दम लगा के खिसके—स्वार्थी आदमी किसी का साथ नही देवे ।

११५ गधा खेत खाय, जुलाहा मारा जाय—अपराध कोई करे, सजा कोई भुगते ।

११६ गये थे रोजा छुडाने उल्टी नमाज गले पडी—सुख प्राप्ति की इच्छा रखने वाले को सुख के बजाय दु ख मिलना ।

११७ गये थे छब्बे होने, रह गये दुबे—चाहते थे बढना पर घट गये ।

११८ गरीब तेरे तीन नाम, झूठा, पाजी, बेईमान—गरीब आदमी सदैव सन्देह की नजर से देखा जाता है ।

११९ गरीबो ने रोजे रखे तो दिन ही बडे हो गये—गरीबो के लिए सब ओर मुसीबत ही मुसीबत है ।

१२० गागर मे सागर भरना—विशद भावो को थोड़े शब्दो मे व्यक्त करना ।

१२१ गाय को अपने सीग भारी नही होते—अपने कुटुम्बी किसी को भी कष्टदायक प्रतीत नही होते ।

१२२ गुड खाय गुलगुलो से परहेज करे—परहेज का दिखावा करना ।

१२३ गुड दिये मरे तो जहर क्यो दें—समझाने बुझाने से काम चल जाय तो लडाई झगडे की क्या जरूरत ?

१२४ गोद मे लडका, शहर मे ढिढोरा—खोई हुई वस्तु के पास ही होने पर भी इधर उधर खोज करना ।

१२५ घर की मुरगी दाल बराबर—अपनी चीज की कोई कद्र नही होती ।

१२६. घर का जोगी जोगना, आन गाँव का सिद्ध—परिचित व्यक्ति की अपेक्षा अपरिचित व्यक्ति का सम्मान अधिक होता है ।

१२७ घर का भेदी लका ढावे—आपस की फूट से अनर्थ हो जाता है ।

१२८ घर मे नही दाने, बुढिया चली भुनाने—झूठा दिखावा ।

१२९. घर खीर तो बाहर खीर—जिसके पास रुपया है उसकी इज्जत बाहर भी होती है ।

१३० घी खाया मेरे बाप ने मू घो मेरे हाथ—दूसरो की कीर्ति पर डींग हाँकना ।

१३१ घोड़े का गिरा सभल सकता है, नजरो का गिरा नही—प्रतिष्ठा नष्ट हो जाने वाले व्यक्ति की कोई कीमत नही रह जाती ।

१३२. चन्दन की चुटकी भली, गाड़ी भरा न काठ—वहुत सी निकम्मी वस्तुओ की अपेक्षा अच्छी वस्तु थोड़ी होने पर भी अच्छी ही रहती है ।

१३३ चमड़ी जाय पर दमड़ी न जाय—अत्यन्त कजूस ।

१३४ चलती का नाम गाडी—बनी बात के सब साथी ।

१३५. चाद को भी ग्रहण लगता है—भले को भी कलक लगता ही है।

१३६ चाकरी मे नाकरी क्या—नौकरी मे इन्कार नही चलता ।

१३७ चार दिन की चाँदनी, फिर अधेरी रात—थोडे दिन का सुख ।

१३८ चिकने घड़े पर पानी नही ठहरता—बेशर्म पर किसी भी बात का असर नही होता ।

१३९ चुपडी और दो दो—दोनो ओर से लाभ ।

१४० चूहे का वच्चा विल ही खोदेगा—जाति स्वभाव नही छूटता ।

१४१. चोर की दाढी मे तिनका—दोषी विना पूछे ही बोल उठता है।

१४२ चोर चोर मोसेरे भाई—दुष्ट लोग शीघ्र मेल कर लेते है ।

१४३ चोर से कहे चोरी करियो, शाह से कहे जगता रहियो—दोनो पक्षो से मिला रहना ।

१४४ चोर चोरी से जाय पर हेरा फेरी से न जाय—वुरी आदत नही छूटती ।

१४५. छछून्दर के सिर मे चमेली का तेल—अयोग्य के हाथ अच्छी चीज लग जाना ।

१४६ छोटे मुँह वडी वात—अपनी योग्यता से वढकर बात कहना ।

१४७ जब तक सासा तब तक आशा—मृत्यु तक आशा बनी रहती है ।

१४८ जल मे रहकर मगर से वैर—जिसके आश्रय मे रहना उसीसे झगडा करना ।

१४९ जहँ जहँ चरण पडे सन्तन के,तहँ तहँ बन्टा धार—मनहूस व्यक्ति जहा जहा जाता है वहा वहा नुक्सान करवा देता है ।

१५० जहां जाय भूखा तहां पडे सूखा—दुखिया को सब कही कष्ट मिलता है ।

१५१ जहा देखे तवा परात, वही गँवावे सारी रात—लालची आदमी अपमान सहन करके भी पडा रहता है ।

१५२ जहा मुर्गा नही होता क्या वहा सवेरा नही होता—किसी के विना किसी का काम नही अटकता ।

१५३ जाके पांव न फटी बिवाई,सो क्या जाने पीर पराई—भुक्त-भोगी ही दूसरो के कष्ट को जान सकता है ।

१५४ जान बची और लाखो पाये—आलसी को कर्तव्य की अपेक्षा जान अधिक प्यारी होती है ।

१५५ जान मारे बानिया, पहिचान मारे चोर—बनिये और चोर पहिचान वाले या भेद प्राप्त व्यक्तियो को ही हानि पहुँचाते हैं ।

१५६ जिसकी लाठी उसकी भैस—शक्तिशाली आदमी की विजय हर जगह होती है ।

१५७ जिस बर्तन मे खाना उसी मे छेद करना—जिसके सहारे रहना उसीको हानि पहुँचाना ।

१५८. जीभ भी जली और स्वाद भी न आया—कोई लाभ न मिलना या व्यर्थ परिश्रम करना ।

१५९. जैसी तेरी तिल चावरी वैसे मेरे गीत—जैसी मजदूरी वैसा काम ।

१६०. जैसे सापनाथ वैसे नाग नाथ—दो समान मनुष्यो का साथ होना ।

१६१. जो गरजते है वे बरसते नही—डीग हाकने वालो से काम नही होता ।

१६२ टके के वास्ते मस्जिद ढाना—थोड़े लालच के लिए बडी हानि करना ।

१६३. टके की गुड़िया नो टका मेहसूल—असल से अधिक ऊपर का खर्च ।

१६४ ठोकर लगी पहाड की तोड़े घर की सिल—बाहर अपमानित होकर क्रोध घर वालो पर निकालना ।

१६५ ढाक के वही तीन पात—सदैव एक स्थिति मे रहना ।

१६६ तलवार का घाव भरता है बात का घाव नही भरता—कडी वात तलवार से भी ज्यादा कष्टकर होती है ।

१६७ तवेले की वला वन्दर के सिर—घर भर की वुराई एक के ही सिर मढ देना ।

१६८ तिरिया तेल, हमीर हठ, चढे न दूजी वार—दृढ प्रतिज्ञ अपनी प्रतिज्ञा को कभी भग नही करते ।

१६९ तुरत दान महा कल्याण—जो कुछ करना है शीघ्र कर डालो ।

१७० तेली का तेल जले, मसालची का पेट फटे—खर्च कोई करे, दु ख किसी को हो ।

१७१. तेते पाँव पसारिये जेती लाम्बी सौर—शक्ति के अनुसार कार्य करना ।

१७२ थोथा चना वाजे घना—आडम्बर प्रिय ही खूब चिल्लाते हैं ।

१७३ दवी विल्ली चूहो से कान कटवाती है—अपरावी को कमजोरो की भी सुननी पडती है ।

१७४ दवे पर चीटी भी चोट करती है—अधिक सताने पर कमजोर मनुष्य भी वदला लेता है ।

१७५ दमडी की हाडी गई कुत्ते की जात पहिचानी गई—थोडी हानि उठाकर वास्तविकता को जान लेना ।

१७६ दादा कहने से वनिया गुड देता है—खुशामद बहुत वडी चीज है ।

१७७. दादा ले और पोता वरते—वहुत मजबूत वस्तु ।

१७८ दाम सवारे काम—पैसे से सव कुछ होता है ।

१७९ दाल भात मे मूसरचन्द—अनावश्यक एव अनुचित हस्तक्षेप करना ।

१८० दाल मे नमक, सच मे झूठ—वहुत थोडी सी बुराई ही चल सकती है ।

१८१. दिन के फेर सो सुमेरु होत माटी को—वुरे दिन आने पर सोना भी मिट्टी हो जाता है ।

१८२ दिया दान, दिया दान, फिर मागे तो मुसलमान—दिये हुए दान को कोई हिन्दू तो मागता नही ।

१८३ दीपक की रवि के उदय, बात न पूछे कोय—बडों के रहते कोई छोटो को नही पूछता ।

१८४ दीवार के भी कान होते है—गुप्त सलाह मशविरा एकान्त मे भी धीरे धीरे करना चाहिए ।

१८५ दुधारु गाय की लात भली—लाभ पहुँचाने वाले की कुछ गल्त बाते भी सह ली जाती हैं ।

१८६ दुनिया का मुँह किसने बन्द किया है ?—कोई किसी को बोलने से रोक नही सकता ।

१८७ दुनिया ठगिये मक्कर से, रोटी खाइये शक्कर से—दुनिया को ठगो और आराम से रहो । बिना ठगी आराम नही मिल सकता ।

१८८ दूल्हा को पत्तल नही, बजनियो को थाल—प्रमुख व्यक्ति की उपेक्षा और अप्रमुख का बोल बाला ।

१८९ दूध का जला छाछ फूक फूक कर पीता है—एक बार धोखा खाया हुआ आदमी सावधानी से काम करता है ।

१९०. दूर के ढोल सुहावने—दूर की वस्तुएँ जब तक उनका अनुभव नही होता, अच्छी प्रतीत होती हैं ।

१९१. देखें ऊँट किस करवट बैठता है—फैसले की प्रतीक्षा करो ।

१९२ देना थोडा दिलाना बहुत—आशा अधिक दिलाना काम कम करना ।

१९३ देह धरे को दण्ड है, सब कांहूँ के होय—सभी देह धारी को बीमारी आदि कष्ट होते ही है ।

१९४ दोनो हाथ लड्डू है—दोनो तरफ से लाभ है ।

१९५. दो मुल्लो मे मुर्गी हराम—वहुत से आदमी काम बिगाड देते है ।

१९६. दोस्ती मे लेन देन, बैर का मूल—मित्रता मे लेन देन करने से लडाई झगडा हो ही जाता है ।

१९७ धनवन्ती के कॉटा लगा, दौडे लोग हजार, निर्धन गिरा पहाड

से कोई न आया कार—धनवान की सहायता सब करते है, गरीब की कोई नही ।

१९८ बी पराई, आख लजाई—बेटी की शादी होने पर समधी से दबना ही पडता है ।

१९९ धीरज धर्म मित्र अरु नारी, आपत काल परखिये चारी—धीरज, धर्म, मित्र और स्त्री की परीक्षा मुसीबत मे ही होती है ।

२०० धोबिन पर बस न चले, गधैया के कान उमेठे—जब बलवान पर बस नही चलता तो निर्बल पर जोर दिखाया जाता है ।

२०१ धोबी का कुत्ता घर का न घाट का—दोनो ओर के लाभ से वञ्चित हो जाना ।

२०२ धोबी बसि के क्या करे, दिगम्बरो के गाव—जहा न आवश्यकता हो, न प्रतिष्ठा हो वहाँ रहना व्यर्थ है ।

२०३ धोबी रोवे धुलाई को, मियाँ रोवे कपडे को—दोनो ओर से अपनी अपनी शिकायत करना ।

२०४ नगे बडे परमेश्वर से—नगो से डरना चाहिए ।

२०५. नगी क्या नहाएगी, क्या निचोडेगी—अभाव ग्रस्त व्यक्ति दूसरो की सहायता क्या करेगा ।

२०६ न इधर के रहे न उधर के रहे—दोनो ओर से असफलता या निराशा मिलना ।

२०७ नक्कार खाने मे तूती की आवाज कौन सुनता है—बडे आदमियो की बात मे गरीब की कौन सुनता है ।

२०८ नटनी जब बास पर चढी, तब घू घट क्या—जब काम ही बेशर्मी का उठा लिया तो शरमाने से क्या लाभ ?

२०९ नदी किनारे रुखडा, जब तब होय विनास—खतरे से भरे काम मे हमेशा भय सिर पर रहता ही है ।

२१० नदी नाव सयोग—अकस्मात किसी सयोग से मिल जाना ।

२११ नया नौ दिन, पुराना सौ दिन—नई चीजो का भरोसा करना व्यर्थ है, काम पुरानी ही चीजें आती हैं ।

२१२. न रहेगा बास, न बजेगी बासुरी—जड को ही मिटाना ताकि अन्य सारे प्रश्न समाप्त हो जायँ ।

२१३ न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी—न अधिक सामान होगा न कार्य होगा । असभव शर्त पेश करना ।

२१४ नाई नाई वाल कितने, जजमान अभी सामने आयेंगे—जो बात शीघ्र सामने आने वाली है उसके लिए अधिक जिज्ञासा कैसी ।

२१५ नाई की बरात मे सब ठाकुर ही ठाकुर—गरीब और असमर्थ के काम मे सब अपनी हाकते हैं ।

२१६ नाक कटी पर हठ न हठी—मूर्ख लोग हानि उठाकर भी हठ नही छोडते ।

२१७ नाक दबाने से मुह खुलता है—बिना दबाव कोई काम नही होता ।

२१८ नाच न आवे आगन टेढा—काम न आने पर भी उसमे दोष निकालते रहना ।

२१९. नाचने वाले के पाव थिरकते हैं—काम करने वाला चुप नही वैठ सकता ।

२२०. नाना के टुकडे खावे, दादा का पोता कहावे—काम कोई करे नाम किसी का हो ।

२२१ नानी के आगे ननिहाल की बातें—अपने से अधिक जानने वाले को कोई बात बताना ।

२२२. नाम बडा और दर्शन खोटे—प्रसिद्धि अधिक, किन्तु वास्तविकता का कम होना ।

२२३. नाम बढावे दाम—प्रसिद्ध दुकानें चीजें अधिक महगी वेचते हैं ।

२२४. नामी चोर मारा जाय, नामीशाह कमा खाए—प्रसिद्धि से लाभ होता है और बदनामी से हानि ।

२२५ नारियल मे पानी, नही जानता खट्टा कि मीठा—किसी बात से रहस्यमय होना ।

२२६ निर्बल के बलराम—जिसका कोई सहायक नही उसका सहायक भगवान होता है ।

२२७ नीचे की सास नीचे ऊपर की सास ऊपर—बहुत दु ख होना ।

२२८ नीम हकीम खतरा जान—अनुभवहीन मनुष्य खतरा पैदा कर सकते हैं ।

२२९. नेकी और पूछ पूछ—उपकार करने मे पूछना क्या ?

२३०. नौ नगद, तेरह उधार—ज्यादा मूल्य मे उधार वेचने से कम मूल्य मे नगद वेचना अच्छा होता है ।

२३१. नो दिन चले अढाई कोस—बहुत सुस्ती से काम करना ।

२३२ नौसौ-चूहे खाय के विलाई चली हज के—लम्बे समय तक बुरे काम करके अन्त मे भले काम का दिखावा करना ।

२३३ पचो का कहना सिर माथे पर, मगर परनाला यही रहेगा—दूसरो की बात मानने का दिखावा करके भी अपनी ही बात पर अड़े रहना ।

२३४ पढे तो हैं, पर गुने नहीं—अनुभव शून्य, केवल परीक्षा पास ।

२३५ पढे फारसी वेचे तेल, यह देखो किस्मत का खेल—दुर्भाग्य से पढे लिखे आदमी भी मारे मारे फिरते हैं ।

२३६ पत्थर को जोक नही लगती—निर्दयी व्यक्ति के मन मे दया पैदा नही होती ।

२३७ पहले घर मे, पीछे मस्जिद मे—पहले घर की हालत अच्छी करना चाहिए फिर वाहर की ।

२३८ पराधीन सपने सुख नाही—परतन्त्रता मे दु ख ही दु ख है ।

२३९ पहले लिख और पीछे दे—हिसाव किताव मे पहले लिखना चाहिए बाद मे रुपया देना चाहिए ।

२४० पाँच पच मिल कीजे काज, हारे जीते नाही लाज—बहुत से लोगो के साथ काम करने पर फिर उसकी असफलता के लिए लज्जित नही होना पडता ।

२४१. पाचो उँगली घी मे होना—चारो ओर से लाभ ही लाभ होना ।

२४२ पाँचो उँगली बराबर नही होती—सब व्यक्ति समान नहीं होवे ।

२४३ पानी पीकर जात पूछना—काम विगड जाने पर पूछ-ताछ करना व्यर्थ रहता है ।

२४४ पानी मथने से घी नही होता—वेमेल और असगत वातो से कोई लाभ नही होता ।

२४५ पिये रुधिर पय ना पिये, लगी पयोधर जोक—नीच व्यक्ति दूसरो के गुण नही, अवगुण ही ग्रहण करते हैं ।

२४६ पूत आपनो सवको प्यारो—सवको अपनी सन्तान प्यारी लगती है ।

२४७ पेट पालना कुत्ता भी जानता है—स्वार्थ की वाते तो जानवर भी जानते है ।

२४८ प्यासा कुए के पास जाता है, कुआ प्यासे के पास नही—जिसे गरज होती है वही जाता है ।

२४९ प्रभुता पाइ काहि मद नाही—धन और ऐश्वर्य पाकर किसे अभिमान नही होता ?

२५० फटा मन और फटा दूध फिर नही मिलता—एक वार मन-मुटाव या लडाई झगडा हो जाने पर फिर पूर्ववत मेल-मिलाप नही हो सकता ।

२५१ फिसल पडे कि हर गगा—भूल हो जाने पर उसे ही खुशी-खुशी स्वीकार कर लेना ।

२५२ वन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद—मूर्ख गुणो को नही समझ सकता ।

२५३ वकरे की मा कव तक खैर मनाएगी—जव कोई वात होने ही वाली है तो उससे कव तक वचा जा सकता है ?

२५४ वडे वोल का सिर नीचा—अहकारी का घमण्ड चूर होता ही है ।

२५५ वडो के कान होते है, आँख नही—वडे आदमियो की जानकारी सुनी सुनाई होती है क्योकि उन्हे देखने का समय नही मिलता ।

२५६. वद अच्छा वदनाम वुरा—वुरा सिद्ध हो जाना अच्छा है, झूठा कलक लगना खराव ।

२५७ बनिक पुत्र जाने कहा, गढ लेने की बात—जिसका जो काम है, उसी मे उसको सफलता मिलती है ।

२५८ बाझ क्या जाने प्रसव की पीडा—जिसने मुसीबत नही झेली वह उसे नही जान सकता ।

२५९ बादल फटे तो कहा तक थिगली—जब काम बहुत बिगड जाय तो थोडे प्रयत्न से कैसे सुधर सकता है ।

२६० बाप न मारी मीढकी, बेटा तीरदाज—व्यर्थ शेखी मारना ।

२६१ बाप भला न भैया, सबसे भला रुपैया—रुपया सभी नाते तुडवा देता है ।

२६२ बारह बरस दिल्ली मे रहे, भाड ही झौंका—गुणवानो मे रहकर भी कुछ न सीखना ।

२६३ बावन तोले पाव रत्ती—बिलकुल ठीक ठीक ।

२६४ बासी बचे न कुत्ता खाय—व्यर्थ नष्ट होने के लिए किसी वस्तु को छोडने के पूर्व उपयोग मे ले लेना ।

२६५ बिंध गया सो मोती, रह गया सो सीप—जो काम मे लगा वह अच्छा, जो न लगा वह निकम्मा ।

२६६ बिच्छू का काटा रोवे, साप का काटा सोवे—मीठी मार बहुत बुरी होती है ।

२६७ बिन माँगे मोती मिले, माँगी मिले न भीख—मिलने वाली वस्तु बिना माँगे ही मिलती है, माँगने से कुछ नही मिलता ।

२६८ बिना रोये तो माँ भी दूध नही पिलाती—बिना प्रयत्न कुछ नही मिलता ।

२६९ बिल्ली के भाग मे छीका टूटा—सयोग से कोई अच्छा कार्य हो जाना ।

२७० बीमार की रात पहाड बराबर—बीमारी मे समय कठिनाई से बीतता है ।

२७१ बैठे से बेगार भली—बैठे रहने की अपेक्षा मुफ्त मे काम कर देना भी अच्छा होता है ।

२७२ भई गति साप छछुन्दर केरी—किसी काम के करने से भी हानि और न करने से भी हानि ।

२७३ भरी थाली मे लात मारना—बने बनाये काम को मूर्खता से बिगाड देना ।

२७४ भरे पेट पर शक्कर खारी—पेट भरा हुआ होने पर अच्छी चीजें भी स्वादिष्ट नही लगती ।

२७५. भेड जहा जायगी वही मु डेगी—मूर्ख हर जगह ठगा जायगा ।

२७६ भागते भूत की लगोटी ही भली—जो भी हाथ पड़े ले लेना चाहिए ।

२७७ भैंस के आगे बीन बजावे, भैंस खडी पगुराय—मूर्ख को अच्छी अच्छी बातें कहने से कोई लाभ नही होता ।

२७८. भौंर न छाडे केतकी, तीखे कटक जान—जिससे जिसका प्रेम हो जाता है वह बाधाओ से डरकर प्रेम नही छोडता ।

२७९ मन के लड्डुओ से भूख नही मिटती—केवल विचार से काम पूरा नही होता ।

२८० मन चगा तो कठौती मे गगा—मन पवित्र हो तो तीर्थ यात्रा की कोई जरूरत नही है ।

२८१. मन मन भावे मूढ हिलावे—इच्छा होने पर भी नाही करना ।

२८२. मन के हारे हार है, मन के जीते जीत—मन की दृढता और कमजोरी ही हमारे जय पराजय का कारण बनती है ।

२८३. मरता क्या न करता—जो अत्यन्त कष्ट मे है वह उसके निवारण के लिए कुछ भी करने को तैयार हो जाता है ।

२८४ मागे हड, दे बहेडा—आज्ञापालन न करना, मूर्खता ।

२८५ मान का पान, अपमान का लड्डू—सम्मान सहित दी हुई छोटी चीज अपमान के साथ दी हुई बडी चीज से अच्छी होती है ।

२८६ मान न मान, मैं तो मेहमान—जबरदस्ती किसी के सिर पडना ।

२८७ मानो तो देव, नही तो पत्थर—विश्वास के अनुसार ही फल मिलता है ।

२८८ मार के आगे भूत भागे—मार से सभी डरते हैं ।

२८९ मुल्ला की दौड मस्जिद तक—अधिकार सीमित होना ।
२९०. मेढकी को भी जुकाम हुआ है—छोटे आदमी द्वारा नखरे करना।
२९१. मेरी बिल्ली मुझी से म्याऊ—भलाई करने वाले को भी हानि पहुँचाने का प्रयत्न करना ।
२९२. मोम की नाक है जिधर चाहो उधर घुमा लो—दूसरो के प्रभाव मे बारबार निश्चय बदलना ।
२९३ यथा राजा तथा प्रजा—जैसे मालिक वैसे नौकर ।
२९४ यह मुँह और मसूर की दाल—घमण्ड करना ।
२९५. रस्सी जल गई, पर ऐंठन न गई—दुर्दशा होने पर भी घमण्ड करना ।
२९६ रानी रूठेगी अपना सुहाग लेगी, क्या किसी का भाग लेगी—मालिक नाराज होगा तो नौकरी लेगा और क्या करेगा ?
२९७ रुपया परखे बार बार, आदमी परखे एक बार—आदमी की परीक्षा एक बार होती है ।
२९८ रोग का घर खासी, लडाई की जड हासी—हँसी मजाक के कभी वहुत बुरे परिणाम निकलते हैं ।
२९९ लकडी के बल वकरी नाचे—मूर्ख भय से ही काम करता है।
३०० लातो के भूत बातों से नही मानते—नीची प्रकृति के लोग बिना मारे सीधे रास्ते नही आते ।
३०१ लिखे मूसा पढे खुदा—बहुत खराव अक्षर लिखना।
३०२. लेना एक न देना दो—हिसाब बिल्कुल साफ ।
३०३. विष दे विश्वास न दे—जहर देना अच्छा, विश्वासघात अच्छा नही ।
३०४ शर्म की बहू भूखे मरे—खाने पीने मे शर्म करना अच्छा नहीं ।
३०५ शिकार के वक्त कुतिया हगासी—काम पडने पर जी चुराना ।
३०६. समरथ को नहि दोष गुसाई—बलवान को दोष देने पर भी नही लगता ।
३०७. ससुरार सुख की सार, जो रहे दिना चार—ससुराल मे आराम तो है, पर केवल २-४ दिन ही ।

३०८. सस्ता रोवे बार बार, मंहगा रोवे एक बार—सस्ती चीज अच्छी नही होती।

३०९. सहज पके सो मीठा होय—जो काम सहज हो जाय वही अत्यन्त अच्छा होता है।

३१०. साच को आच कहा—सच बोलने वाला निर्भय रहता है।

३११ साप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे—बिना हानि के काम हो जाना।

३१२. सावन सूखा न भादो हरा—कोई परिवर्तन नही।

३१३. सावन के अन्धे को हरा ही हरा सूझता है—बदली हुई स्थिति का विचार न करना।

३१४. सिह के वश मे उपजा स्यार—योग्य व्यक्ति के अयोग्य सन्तान होना।

३१५. सिर मुड़ाते ही ओले पडे—प्रारम्भ मे ही विघ्न आना।

३१६. सीधी उँगली से घी नही निकलता—बिलकुल सीधे पन से काम नही चलता।

३१७. सुनिये सबकी, करिये मन की—बात सबकी सुनना चाहिए, लेकिन करना वही चाहिए जो अपने मन को अच्छी लगे।

३१८. सूप बोले तो बोले, चलनी क्या बोले, जिसमे बहत्तर छेद—जो स्वय बुराइयो से भरा हुआ है वह दूसरो की शिकायत नहीं कर सकता।

३१९ सूरज धूल डालने से नही छिपता—बुरो के बुरा कहने से अच्छा आदमी बुरा नही हो जाता।

३२० सोना जाने कसे और मानस जाने बसे—सोने की कसने से और मनुष्य की पास रहने से ही पहिचान होती है।

३२१. सोने मे सुगन्ध—अच्छाई में एक और अच्छाई।

३२२. हसा थे सो उड़ गये, कागा भये दिवान—अच्छे चले गये, बुरे रह गये।

३२३. हजारो टाकी सहकर महादेव बनते हैं—बहुत कष्ट सहने से ही आदमी पूजनीय बनता है।

३२४. हज्जाम के आगे सबका सिर झुकता है—स्वार्थ के आगे सबको झुकना पडता है ।

३२५. हड लगे न फिटकरी; रग चोखा आवे—विना कुछ खर्च किये काम वन जाना ।

३२६ हथेली पर सरसो नही जमती—केवल वात करने से काम नही होता ।

३२७. हाँडी मे होगा, सो डोई मे आप ही आएगा—जो मन मे होगा वह जवान से निकलेगा ही ।

३२८. हाथ कगन को आरसी क्या—प्रत्यक्ष को प्रमाण की क्या आवश्यकता ?

३२९. हाथी के दाँत दिखाने के और, खाने के और—कहना कुछ करना कुछ ।

३३० हाथी के पाँव मे सबका पाँव—किसी महान व्यक्ति के गुणो में अनेक छोटे गुण आ-ही जाते हैं ।

३३१. हाथी निकल गया, दुम रह गई—काम का अधिक भाग समाप्त हो गया, थोडा सा रह गया है ।

३३२ हिमायती की घोडी ऐराकी को लात मारे—बड़े का सहारा पाकर अपने से अधिक शक्तिशाली से लडना ।

३३३ हिसाव जौ-जौ, वखशीश सौ-सौ—हिसाव तो पाई-पाई का होना चाहिए चाहे इनाम सौ-सौ रुपये क्यो न दे दिये जायँ ।

३३४ हिजडे के घर वेटा हुआ—कोई असभव वात होना ।

३३५. हौज भरे तो फव्वारे छूटे—आय हो तो व्यय किया जाय ।

मुहावरे

१ अक्ल का पुतला—अत्यन्त समझदार ।

२. अक्ल का दुश्मन—मूर्ख ।

३ अक्ल के घोडे दौडाना—अनेक प्रकार की कल्पनाएँ करना ।

४. अक्ल के पीछे लट्ठ लिये फिरना—मूर्खतापूर्ण कार्य करना ।

५ अक्ल पर पत्थर पडना—बुद्धि हीन होना ।

६. अक्ल मे चक्कर आना—चकित होना ।

७. अक्ल चरने जाना—ज्ञान की कमी होना ।

८ अक्ल सठिया जाना—बुढापे के कारण बुद्धि भ्रष्ट होना ।

९. अगर मगर करना—आगा पीछा करना ।

१०. अगिया वेताल—कठिन और असभव कार्य करने वाला ।

११ अच्छे दिन आना—भाग्योदय होना ।

१२ अटकल पच्चू—मनगढन्त ।

१३ अठखेलियाँ करना—क्रीडा करना ।

१४ अठखेलियाँ सूझना—मजाक करना ।

१५. अडचन डालना—बाधा पहुँचाना ।

१६ अडियल टट्टू—रुक रुक कर काम करने वाला ।

१७ अड्डा जमाना—जमकर बैठ जाना ।

१८ अन्न जल उठना—रोजी न रहना ।

१९. अपना उल्लू सीधा करना—मतलब गाँठना ।

२० अपना सा मुँह लेकर रह जाना—असफल होने पर लज्जित होना ।

२१ अपनी खिचडी अलग पकाना—सबसे अलग रहना ।

२२. अपने पैरो पर खडे होना—स्वावलम्बी बनना ।

२३ अपने मुँह मियाँ मिट्ठू बनना—अपनी प्रशसा स्वय करना ।

२४ अपने पैरो पर आप कुल्हाडी मारना—अपने हाथो अपना नुक्सान कर लेना ।

२५ अक देना—हृदय से लगाना ।

२६ अग टूटना—अगडाई आना ।

२७. अग अग ढीला होना—सुस्त हो जाना ।

२८ अग अग मुस्कराना—शरीर से प्रसन्नता प्रकट होना ।

२९ अगार उगलना—कडी बातें कहना ।

३०. अंगार बरसना—कडी धूप होना ।

३१. अगारों पर पैर रखना—जानबूझ कर अपने को खतरे में डालना ।

३२. अगूठा चूमना—चापलूसी करना ।

३३ अगूठा दिखाना—नाही कर देना, चिढाना।
३४ अन्त पाना—रहस्य से परिचित होना।
३५ अतडियो मे बल पडना—पेट दर्द करना।
३६ अधा होना—ज्ञान शून्य होना।
३७ अन्धे की लकडी—एक मात्र सहारा।
३८ अधेरा छाना—उदासी छाना।
३९. अधेरे घर का उजाला—कुल दीपक।
४०. अर्द्ध चन्द्र देना—गर्दन पकडकर बाहर निकाल देना।
४१ आँख उठाना—हानि पहुँचाने का प्रयत्न करना।
४२ आँख उठाकर न देखना—अभिमान करना।
४३ आँख खुलना—सचेत होना।
४४ आँख का तारा—प्यारा।
४५. आँख चरने जाना—प्रत्यक्ष वस्तु न दिखाई देना।
४६. आँख बिछाना—प्रेम से बाट देखना।
४७ आँख दिखाना—धमकाना।
४८ आँख लाल करना—क्रोध करना।
४९ आँख चुराना—सामने न जाना।
५०. आँख लाल पीली करना—क्रोध करना।
५१ आँख चार होना—परस्पर देखना, प्यार होना।
५२ आँखें भर आना—आँखो मे आसू आ जाना।
५३ आँखें तरसना—देखने की इच्छा करना।
५४ आँखें दिखाना—क्रोध करना।
५५ आँखें निकालना—क्रोध भरी नजर से देखना।
५६ आँखे पथराना—आँखो का थक जाना।
५७ आँखे फिरना—उपेक्षा करना।
५८ आँखें बदल जाना—पहले की तरह बर्ताव न रहना।
५९. आँखें मारना—सकेत करना।
६०. आँखें मूँदना—मर जाना।
६१. आँखें लगना—नीद आना।

६२. आँखें सेकना—किसी के सौन्दर्य का आनन्द लेना ।
६३. आँखो से गिरना—प्रतिष्ठा घटना ।
६४. आँखो का काटा होना—अप्रिय लगना ।
६५ आँखो का तारा—अत्यन्त प्रिय ।
६६ आँखो का परदा हटना—भ्रम दूर होना ।
६७. आँखो की पुतली समझना—अत्यन्त प्यार करना ।
६८ आँखो के आगे अधेरा छाना—मूर्च्छा आना ।
६९ आँखो के आगे अधेरा होना—ससार शून्य प्रतीत होना ।
७० आँखो पर बिठाना—अत्यन्त आदर करना ।
७१ आँखो मे खून उतर आना—क्रोध से भर जाना ।
७२ आँखो मे धूल झोंकना—धोखा देना ।
७३ आँच न आने देना—हानि न होने देना ।
७४ आँधी होना—बहुत तेज चलना ।
७५ आसू पोछना—ढाढस देना ।
७६. आकाश पाताल के कुलावे मिलाना—आन्दोलन करना, धूम मचाना ।
७७ आकाश पाताल का अन्तर—बहुत ज्यादा भेद ।
७८. आग बबूला होना—अधिक क्रोध करना ।
७९. आग मे घी डालना—गुस्सा बढाना ।
८० आटे दाल का भाव मालूम होना—दु ख का अनुभव होना ।
८१ आडे हाथो लेना—भला बुरा कहना ।
८२ आन की आन मे—शीघ्र ही ।
८३. आपा धापी पडना—अपनी ही चिन्ता मे लगे रहना ।
८४ आपे से बाहर होना—अत्यन्त क्रोध करना, क्रोध मे विवेक खो देना ।
८५ आसन डोलना—चित्त चलायमान होना ।
८६. आसमान टूट पडना—सहसा विपत्ति आना ।
८७ आसमान पर चढ़ना—अधिक अभिमान करना ।
८८. आसमान पर चढ़ाना—प्रशंसा करना ।

८९ आसमान पर थूकना—बडे आदमी का अपमान करने का प्रयत्न करके स्वयं अपमानित होना।

९० आस्तीन का साँप—धोखे बाज मित्र।

९१ इज्जत दो कोडी की न रहना—प्रतिष्ठा समाप्त हो जाना।

९२ इधर उधर की हाँकना—बहकी बहकी बातें करना।

९३ इस कान से सुनकर उस कान से उडा देना—ध्यान न देना।

९४ ईंट से ईंट बजा देना—मिटा देना।

९५ ईद का चाँद होना—बहुत दिनो के बाद दिखाई देना।

९६ उगली उठाना—हानि पहुँचाने की कोशिश करना।

९७ उगली पर नचाना—वश मे रखना।

९८ उडन छू होना—भाग जाना।

९९ उडती चिडिया पहचानना—मन की बात ताड़ लेना।

१०० उधार खाये बैठना—ताक मे रहना।

१०१ उधेड बुन—सोच-विचार।

१०२ उलटी गगा बहाना—जो कभी न हुआ वैसा करना।

१०३ उल्लू फसाना—अपने चगुल मे लेना।

१०४ एक लाठी से हाँकना—एकसा व्यवहार करना।

१०५ एक आँख से देखना—समान दृष्टि से देखना।

१०६. एक और एक ग्यारह होना—मिलकर शक्ति बढ़ाना।

१०७ एक स्वर से बोलना—एक मत होना।

१०८ ओखली मे सिर देना—जानबूझ कर झझट मे पड़ना।

१०९. ओठ चबाना—क्रोध करना।

११०. कफन सिर से बाधना—मरने के लिए तैयार होना।

१११. कब्र मे पाँव लटकाये रहना—मरने के निकट होना।

११२. करवटें बदलना—विस्तर पर बेचैन रहना, नीद न आना

११३. कल पड़ना—चैन पडना।

११४. कलेजा खाना—बहुत परेशान करना।

११५. कलेजा छलनी होना—कड़वी बातो से जी दुखना।

११६. कलेजा थामना—कष्ट सहन के लिए तैयार होना।

११७ कलेजा थामकर रह जाना—मन मसोसकर रह जाना ।
११८ कलेजा पत्थर का होना—कडा दिल होना ।
११९ कलेजे पर साप लौटना—ईर्षा से दिल जलना ।
१२० कलेजे पर हाथ रखना—अपने मन से पूछना ।
१२१ कलेजा मुँह को आना—दिल मे घबराहट पैदा होना ।
१२२ काँटा बिछाना—विघ्न खडा करना ।
१२३ काँटा दूर करना—विघ्न दूर करना ।
१२४ कागजी घोडे दौड़ाना—क्रियात्मक काम न करके केवल लिखा-पढी करना ।
१२५ कान पर जू न रेंगना—बेखबर होना ।
१२६ कानो कान खबर न होने देना—किसी को मालूम न होने देना ।
१२७ कान खडे होना—चौकन्ना होना ।
१२८ कान काटना—मात करना ।
१२९ कान खा जाना—बहुत बातें करना ।
१३० कान भरना—दूसरो के सम्बन्ध मे विचार खराब करना ।
१३१. कान पकडना—अपनी भूल स्वीकार करना ।
१३२ कान मे तेल डाले बैठना—बात सुनकर भी चुप रहना ।
१३३ कान का कच्चा होना—किसी के कहने पर ही भरोसा कर लेना ।
१३४ काला मुँह होना—बदनाम होना ।
१३५ कानोकान खबर न होना—किसी को मालूम न होने देना ।
१३६ काम आना—लडाई मे मर जाना ।
१३७ काम तमाम करना—मार डालना ।
१३८ काया पलट जाना—बिलकुल बदल जाना ।
१३९ किनारा करना—साथ छोडना ।
१४० किरकिरा हो जाना—आनन्द मे बाधा पडना ।
१४१ किस खेत की मूली है—किस गिनती मे है ?
१४२. किस मर्ज की दवा—किस काम के ।
१४३ किस्सा खतम होना—बात समाप्त होना ।

१४४ कुआ खोदना—हानि पहुँचाने का प्रयत्न करना ।
१४५ कुत्ता काटना—पागल होना ।
१४६ कुप्पा हो जाना—नाराज होना ।
१४७ कोख की आच—सन्तान का विरह ।
१४८ कोल्हू का बैल—दिन-रात काम मे लगा रहने वाला ।
१४९ कोसो दूर रहना—वहुत दूर रहना ।
१५० कोडी काम का नही—निकम्मा ।
१५१ कोडी कोडी को मुहताज—बहुत गरीब या दरिद्री ।
१५२ खटाई मे पडना—झमेले मे पडना ।
१५३ खाक छानना—भटकना ।
१५४ खाक डालना—छिपाना ।
१५५ खाला जी का घर—सरल काम ।
१५६ खिचडी पकाना—गुप्त सलाह करना ।
१५७ खून खौलना—जोश आना ।
१५८ खून सूखना—भयभीत होना ।
१५९ खेत रहना—लडाई के मैदान मे मारे जाना ।
१६० खोपडी गजी करना—खूब पीटना ।
१६१ ख्याली पुलाव पकाना—तरह तरह की कल्पनाएँ करना ।
१६२ गजभर की छाती होना—बडा साहसी होना ।
१६३. गठरी मारना—अन्यायपूर्वक किसी की सम्पत्ति हडप लेना ।
१६४ गढ जीतना—कठिन काम करना ।
१६५ गढे मुर्दे उखाडना—पुरानी वात उभाडना ।
१६६ गत बनाना—पीटना ।
१६७ गरदन उठाना—विरोध करना ।
१६८ गरदन पर छुरी फेरना—सताना ।
१६९ गला घोटना—जबरदस्ती करना ।
१७०. गला घूटना—पीछा छूटना ।
१७१ गाठ काटना—जेब काटना ।
१७२ गाठ का पूरा—धनी ।

१७३ गाठ मे बाधना—भलीभाति याद रखना ।
१७४. गाजर मूली समझना—कुछ भी न समझना ।
१७५ गाल बजाना—डीग मारना ।
१७६ गाल फुलाना—रूठना ।
१७७ गिरगिट की तरह रग बदलना—सिद्धान्त का पक्का होना ।
१७८ गुड गोबर कर देना—काम बिगाड देना ।
१७९ गुदडी का लाल—किसी अच्छे गुणवान व्यक्ति का बहुत मामूली वेश मे रहना ।
१८० गुल खिलना—रहस्य प्रकट होना ।
१८१. गुल छर्रे उडाना—मौज से दिन बिताना ।
१८२ गू गे का गुड—अनुभवगम्य अकथनीय ।
१८३. घडो पानी पडना—अत्यन्त शर्मिन्दा होना ।
१८४ घर का रास्ता लेना—भाग जाना ।
१८५ घर फू क तमाशा देखना—अपनी हानि करके आनन्द मनाना ।
१८६. घर का भेदी—गुप्त भेद जानने वाला ।
१८७ घर फोडना—घर मे झगडा करवाना ।
१८८ घाट घाट का पानी पीना—अनेक स्थानों मे घूमकर अनुभव प्राप्त करना ।
१८९ घात लगाना—अनुकूल अवसर की खोज मे रहना ।
१९०. घाव पर नमक छिडकना—दु ख के समय और दुखाने वाली बात करना ।
१९१. घास काटना—समय व्यर्थ गवाना ।
१९२. घुट घुट कर मरना—बड़े कष्ट से जान देना ।
१९३. चम्पत होना—भाग जाना ।
१९४. चकमा देना—धोखा देना ।
१९५. चट कर जाना—खा जाना ।
१९६. चल बसना—मर जाना ।
१९७ चाद पर थूकना—बड़े आदमी की बुराई करना ।

१९८ चादर के बाहर पैर पसारना—क्षमता से ज्यादा काम करने का प्रयत्न करना।

१९९ चारो खाने चित्त गिरना—बुरी तरह पराजित होना।

२०० चाल चलना—धोखा देने की कोशिश करना।

२०१ चादी का जूता मारना—रुपया देकर काम निकालना।

२०२ चिऊँटे को पर लगना—मौत के निकट आना।

२०३ चिडिया फसाना—किसी मालदार आदमी को चक्कर मे लेना।

२०४ चित्त पर चढना—मन मे बसना।

२०५ चिराग तले अधेरा—दूसरो को उपदेश देने वाले के स्वय के आचरण मे उपदेश का अभाव होना।

२०६ चिराग बुझना—इकलौते बेटे का मर जाना।

२०७ चुल्लूभर पानी मे डूबना—लज्जा से मर जाना।

२०८ चूल्हे मे जाना—बरबाद हो जाना।

२०९. चेहरा उतरना—उदास होना।

२१० चिकना घडा—निर्लज्ज।

२११ चिकनी चुपडी बाते करना—कपटभरी बातें करना।

२१२. चुटकियो मे उडाना—तुच्छ समझना।

२१३ चेहरे पर हवाइया उडना—डर जाना।

२१४ चैन की वशी बजाना—आनन्द से दिन बिताना।

२१५ चोटी से एडी तक का जोर लगाना—खूब कोशिश करना।

२१६. चोली दामन का साथ—घनिष्ठता।

२१७ चोटी का—सर्वोत्तम।

२१८ चौका लगाना—बरबाद करना।

२१९ छक्के छूटना—साहस टूट जाना।

२२० छक्के छुडाना—वेहाल करना, हराना।

२२१ छठी का दूध याद आना—भयकर विपत्ति मे पडना।

२२२ छप्पर फाडकर देना—बिना मेहनत, बिना मांगे देना।

२२३. छाती पर मूग दलना—अत्यन्त कष्ट पहुँचाना।

२२४. छाती पर सांप लेटना—ईर्षा या डाह रखना।

२२५. छाती ठडी करना—चित्त प्रसन्न करना ।
२२६ जवान वदलना—कहकर वदल जाना ।
२२७. जवान पकडना—न वोलने देना ।
२२८. जवान मे लगाम न होना—विना सोचे वोलना ।
२२९ जड उखाडना—नष्ट करना ।
२३० जमीन पर पैर न पडना—अधिक घमण्ड होना ।
२३१ जलती आग मे तेल डालना—झगडा वढाना ।
२३२ जल भुन कर कोयला होना—क्रोधावेश मे पागल होना ।
२३३ जहर का घूट पीना—कडी वात सहना ।
२३४ जान के लाले पडना—मुसीवत मे पड जाना ।
२३५ जान पर खेलना—प्रसन्नता से प्राण जोखिम मे डालना ।
२३६ जान मे जान आना—मन मे शान्ति होना ।
२३७ जान लडाना—कडी मेहनत करना ।
२३८ जान होठो पर होना—जान निकलने के करीव होना ।
२३९ जामे से वाहर होना—अत्यन्त क्रोध करना ।
२४०. जी उचटना—तवियत न लगना ।
२४१ जी का वुखार निकालना—मन का उद्वेग निकालना ।
२४२ जी को मारना—मन की इच्छाओ को रोकना ।
२४३ जी खोलकर—निस्सकोच ।
२४४ जी चुराना—वहानेवाजी करना ।
२४५ जीती मक्खी निगलना—जान वूझकर अनुचित वात सहन करना ।
२४६ जूतिया चटकाते फिरना—विना मतलव इधर-उधर भटकते फिरना ।
२४७ जोर पकडना—वढना ।
२४८ झख मारना—व्यर्थ समय विताना ।
२४९ झख सवार होना—धुन सवार होना ।
२५० झूठ का पुल वाधना—अत्यन्त झूठ वोलना ।
२५१ टक टकी वाधना—स्थिर दृष्टि से देखना, अपलक देखना ।

२५२. टस से मस न होना—दृढ रहना, कोई परिवर्तन न होना ।
२५३ टका सा जवाव देना—किसी वात को अस्वीकार करना ।
२५४ टकासा मुँह लेकर रह जाना—लज्जित हो जाना ।
२५५ टक्कर का—मुकावले का ।
२५६ टट्टी की ओट से शिकार खेलना—छिपकर कोई बुरा काम करना ।
२५७ टाग अडाना—किसी काम मे व्यर्थ वाधा डालना ।
२५८ टाट उलटना—दिवाला निकालना ।
२५९ टाल मटोल करना—वहाना करना ।
२६० टेढी खीर—मुश्किल काम ।
२६१ टूट टूट कर वरसना—वहुत जोर से वर्षा होना ।
२६२ टोपी उछालना—अपमान करना ।
२६३ टोह लगाना— पता मालूम करना ।
२६४. ठकुर सुहाती वातें करना—चापलूसी की वातें करना ।
२६५ ठडी सास खीचना—आह भरना ।
२६६ ठिकाने आना—जगह पर आना, ठीक होना ।
२६७ ठिकाने लगाना—अपनी जगह पर आना ।
२६८ ठोकरे खाना—मारा मारा फिरना ।
२६९ ठोकना वजाना—जाच पडताल करना ।
२७० डडे वजाते फिरना—वेकाम घूमना ।
२७१ डकार लेना—हजम करना ।
२७२ डीग मारना—अपनी भूठी प्रशसा करना ।
२७३ डूव मरना—शर्म से मर जाना ।
२७४. डूवते को तिनके का सहारा—कष्ट मे पड़े हुए व्यक्ति को कुछ सहायता ।
२७५ डेरा डडा उखाडना—सामान लेकर चले जाना ।
२७६ डेढ चावल की खिचडी पकाना—अपनी व्यवस्था अलग करना ।
२७७ ढिंढोरा पीटना—चारो ओर कह देना ।
२७८. ढेर करना—मारकर गिरा देना ।

३३५ नाक रगडना—खुशामद करना ।
३३६ नाको चने चबाना—खूब परेशान करना ।
३३७ नादिरशाही—अत्यन्त अत्याचार ।
३३८ नानी याद आना—प्राण सूख जाना ।
३३९ नाम पर धब्बा लगाना—कीर्ति समाप्त करना ।
३४० निन्नानवे के फेर मे पडना—लोभ मे फसना ।
३४१ नीचा दिखाना—हराना ।
३४२ नुकता चीनी करना—दोष निकालना ।
३४३ नौ दो ग्यारह होना—भाग जाना ।
३४४ पगडी उछालना—अपमान करना ।
३४५ पट्टी पढाना—बुरी सलाह देना ।
३४६ पत्थर का कलेजा—कठोर हृदय ।
३४७ पहेली बुझाना—चक्करदार बात करना ।
३४८ पल्ला भारी होना—पक्ष मजबूत होना ।
३४९ पाचो उँगली घी मे होना—अत्यन्त लाभ होना ।
३५० पाव उखड जाना—हारकर भाग जाना ।
३५१ पाव जमीन पर न पडना—अत्यन्त घमण्ड करना ।
३५२ पानी के मोल—बहुत सस्ता ।
३५३ पानी पानी होना—अत्यन्त लज्जित होना ।
३५४ पानी फिर जाना—नष्ट हो जाना ।
३५५ पानी का बुदबुदा—क्षण भगुर ।
३५६ पापड बेलना—बहुत श्रम करना ।
३५७ पासग भी न होना—बहुत छोटा होना ।
३५८ पानी मे आग लगाना—जहा सभव न हो वहा भी झगड़ा करवा देना ।
३५९ पिण्ड छूटना—पीछा छूटना ।
३६० पीछे पडना—किसी को हानि पहुँचाने के लिए बार बार प्रयत्न करना ।
३६१ पीठ दिखाना—लड़ाई के मैदान से भाग जाना ।

३६२ पीठ पीछे—अनुपस्थिति मे ।
३६३ पेट का पानी न पचना—चुप न रहा जाना ।
३६४. पेट मे चूहे दौडना—जोर की भूख लगना ।
३६५ पेट मे दाढी होना—बहुत चालाक होना ।
३६६ पैरो तले से जमीन निकल जाना—होश उड जाना ।
३६७. पौबारह होना—बहुत लाभ होना ।
३६८ प्राण मुँह को आना—बहुत अधिक कष्ट होना ।
३६९ प्राण हथेली पर लिये रहना—जान देने के लिये तैयार रहना ।
३७० प्राणों पर बीतना—अत्यन्त सकट होना ।
३७१. फडक उठना—प्रसन्न होना ।
३७२ फुस फुस करना—धीरे धीरे सलाह करना ।
३७३ फूक देना—बहकाना ।
३७४ फूक फूक कर कदम रखना—सोच समझकर काम करना ।
३७५. फूट फूट कर रोना—बहुत रोना ।
३७६ फूला न समाना—बहुत ज्यादा प्रसन्न होना ।
३७७ बन्दर घुडकी—प्रभावहीन धमकी ।
३७८ बगलें झाकना—बचने का रास्ता ढूढना ।
३७९. बट्टा लगना—कलक लगना ।
३८०. बडी बडी बातें करना—अतिशयोक्तिपूर्ण या बहकी बहकी बातें करना ।
३८१ बडी बात—कठिन काम ।
३८२ बल्लियो उछलना—बहुत प्रसन्न होना ।
३८३ बाह पकडना—मदद करना ।
३८४. बायें हाथ का खेल—सरल काम ।
३८५ बाल भी बाका न होना—तनिक भी हानि न होना ।
३८६ बावन तोले पाव रत्ती—बिलकुल ठीक ।
३८७ बाग बाग होना—बहुत प्रसन्न होना ।
३८८ बाछे खिल जाना—अत्यन्त प्रसन्न होना ।
३८९ बाजार गर्म होना—अधिक कार्य होना ।

२७९. ताक मे रहना—मौके की प्रतीक्षा करना ।
२८० ताजा करना—याद दिलाना ।
२८१ तिल का ताड करना—छोटी वात को वढा चढा कर कहना ।
२८२ तिल धरने की जगह न होना—भीड भाड होना ।
२८३ तीन पाच करना—झगडे की वातें करना ।
२८४ तूती वोलना—आतक होना ।
२८५ तेवर चढना—क्रोध आना ।
२८६ तोते की तरह आँखें वदलना—एकाएक कठोर हो जाना ।
२८७ थाली का वैंगन—स्वार्थी ।
२८८ थूक कर चाटना—कहकर मुकर जाना ।
२८९ दवे पाव निकल जाना—चुपके से भाग जाना ।
२९० दम भरना—किसी के भरोसे वढ़-वढ कर वातें करना ।
२९१ दम के दम मे—शीघ्र ।
२९२ दाँत खट्टे करना—हरा देना ।
२९३. दाँत गडाना—किसी चीज को प्राप्त करने की तीव्र इच्छा रखना ।
२९४ दाँत पीसना—क्रोध करना ।
२९५ दाँत कटी रोटी—घनिष्ठ मित्रता ।
२९६ दाँतो तले उँगली दवाना—आश्चर्य करना ।
२९७ दाँतो मे तिनका दवाना—गिडगिड़ाना ।
२९८ दाई से पेट छिपाना—जानकार से वात छिपाना ।
२९९ दाने दाने को तरसना—खाना पीना न मिलना ।
३०० दाना पानी छोडना—अन्न जल त्याग देना ।
३०१ दाल मे काला होना—कुछ खटके या सदेह की वात होना ।
३०२ दाल न गलना—कावू न चलना ।
३०३ दिन दूना रात चौगुना—अत्यन्त अधिक उन्नति होना ।
३०४. दिन फिरना—अच्छे दिन आना ।
३०५ दिन काटना—समय गुजारना ।
३०६ दिमाग खाना—व्यर्थ तग करना ।

३०७. दिमाग सातवें आसमान पर होना—बहुत घमण्ड करना ।
३०८ दिल मे घर करना—मन मे स्नेह पैदा करना ।
३०९ दिल की कली खिलना—प्रसन्न होना ।
३१० दिल के फफोले फूटना—मन के उद्गार प्रकट हो जाना ।
३११ दुकान लगाना—सामान इधर उधर फैलाकर रखना ।
३१२ दुनिया से चल वसना—मर जाना ।
३१३ दुम दबाकर भागना—डरकर भागना ।
३१४ दूज का चाँद होना—बहुत दिनो के वाद दिखाई देना ।
३१५. दूध के दात न टूटना—निरा वालक होना ।
३१६. दूध का दूध, पानी का पानी—ठीक-ठीक न्याय ।
३१७ दो कौडी का आदमी—छोटे विचार का आदमी ।
३१८ दो दिन का मेहमान—शीघ्र मरने वाला ।
३१९ दौड धूप करना—कठिन मेहनत करना ।
३२० धता वताना—कपटपूर्वक टालना ।
३२१ धाक जमाना—रौव जमाना ।
३२२. धज्जिया उडाना—दुर्गति करना ।
३२३ धरती पर पैर न रखना—अत्यन्त घमण्ड करना ।
३२४ धूप मे वाल सफेद करना—बिना ज्ञान उम्र विताना ।
३२५ धोखे की टट्टी—भ्रम मे डालने वाली वस्तु ।
३२६ धोती ढीली होना—भयभीत होना ।
३२७ न तीन मे न तेरह मे—जिसे कोई नही पूछता ।
३२८ नमक मिर्च लगाना—किसी वात को बढाकर कहना ।
३२९ नया गुल खिलना—कोई नया रहस्य प्रकट होना ।
३३० नाक का वाल—घनिष्ठ मित्र ।
३३१ नाक कटना—प्रतिष्ठा कम होना ।
३३२ नाक रख लेना—प्रतिष्ठा रख लेना ।
३३३ नाक भौं सिकोडना—अप्रसन्नता व्यक्त करना ।
३३४ नाक पर मक्खी न बैठने देना—किसी का थोडा भी एहसान न लेना ।

३९० बात की बात मे—शीघ्र ।
३९१ बाल की खाल उतारना—व्यर्थ तर्क करना ।
३९२ बाल बाल बचना—नुक्सान होते होते बच जाना ।
३९३ बाल भी बाका न होना—कुछ भी नुक्सान न होना ।
३९४. बीडा उठाना—प्रतिज्ञा करना ।
३९५. बेगार टालना—दिल से काम न करना ।
३९६ बे सिर पैर की बात करना—ग्रट सट बात करना ।
३९७ बोल बाला होना—भाग्यवान होना ।
३९८ भडा फूटना—भेद खुलना ।
३९९ भाड झोंकना—नीच काम करना ।
४००. भिड के छत्ते को छेडना—फसादी आदमी को छेडना ।
४०१ भीगी बिल्ली बनना—विवश होना ।
४०२ मक्खियाँ मारना—बेकार रहना ।
४०३ मगज चाटना—परेशान करना ।
४०४. मगज पच्ची करना—देर तक समझाना ।
४०५ मजा किरकिरा होना—आनन्द मे बाधा पड़ना ।
४०६ मन के लड्डू—सुखो की कल्पना ।
४०७ मर मिटना—बरबाद होना ।
४०८ माई का लाल—माँ का प्रिय पुत्र ।
४०९. माथा ठनकना—भ्रम की आशका होना ।
४१० माथे पर बल पडना—अप्रसन्नता प्रकट करना ।
४११ मिट्टी पलीद करना—बुरी हालत करना ।
४१२ मुँह की खाना—पराजित होना ।
४१३ मुँह तोड जवाब देना—कठोर शब्दो मे उत्तर देना ।
४१४ मुँह पर हवाइयाँ उडना—चेहरा उतर जाना ।
४१५ मुँह मे कालिख लगाना—कलकित करना ।
४१६ मुँह में खून लगना—चसका लगना ।
४१७. मुँह मे पानी भर आना—जी ललचाना ।
४१८ मुट्ठी गरम करना—रिश्वत देना ।

४१६ मुट्ठी मे करना—काबू मे करना ।
४२० मुँह मे लगाम न होना—वात करने मे सयम न रखना ।
४२१ मैदान मारना—लडाई जीतना ।
४२२ मौत सिर पर खेलना—मौत का निकट प्रतीत होना ।
४२३ याद करोगे—पछताओगे ।
४२४. युग युगान्तर से—बहुत दिनो से ।
४२५ रग उतरना—चेहरा पीला पडना ।
४२६. रग जमना—धाक जमना ।
४२७. रग मे भग पडना—आनन्द मे बाधा आना ।
४२८ रग लाना—बुराई करना ।
४२९ रगा सियार—ढोगी या ठग ।
४३० रफू चक्कर होना—भाग जाना ।
४३१. रह जाना—थक जाना ।
४३२. रास्ता देखना—प्रतीक्षा करना ।
४३३ रास्ते पर लाना—ठीक करना ।
४३४. रोगटे खडे होना—डर से रोमाचित होना ।
४३५ लगोटिया यार—बचपन का साथी ।
४३६ लकीर का फकीर होना—पुरानी बातो मे विश्वास रखने वाला, रूढिवादी ।
४३७ लट्टू होना—आकर्षित या प्रभावित होना ।
४३८. लहू के घूट पीना—क्रोध दबाकर रह जाना ।
४३९ लहू लुहान होना—रक्त से सन जाना ।
४४० लाल पीला होना—गुस्सा होना ।
४४१ लुटिया डुबोना—बरबाद करना ।
४४२ लेने के देने पडना—उलटे, झगडे या मुसीबत मे पड जाना ।
४४३. लोहा मानना—आधीनता स्वीकार करना ।
४४४ लोहे के चने चबाना—अत्यन्त कठिन काम करना ।
४४५ वाह वाह होना—प्रशसा होना ।
४४६ विष उगलना—कडी और बुरी बात कहना ।

४४७. विष की गाठ—कपटी, उपद्रवी ।
४४८. शहद लगाकर चाटना—निरर्थक चीज की हिफाजत करना ।
४४९ शिकार होना—मारा जाना ।
४५० शैतान के कान काटना—अधिक चालाक होना ।
४५१. श्रीगणेश करना—प्रारम्भ करना ।
४५२. सत्तू बाध कर पीछे पडना—बुरी तरह पीछे लगना ।
४५३ सफेद झूठ—बिलकुल झूठ ।
४५४. सब्ज बाग दिखाना—लालच देकर बहकाना ।
४५५. सात घाट का पानी पीना—तरह तरह का अनुभव होना ।
४५६. सात पाँच करना—चलाकी करना ।
४५७ सिक्का बैठाना—अधिकार करना ।
४५८. सिर आँखो पर—खुशी से स्वीकार होना ।
४५९. सिर उठाना—विरोध करना ।
४६०. सिर खाना—तग करना ।
४६१ सिर चढना—अशिष्ट बन जाना ।
४६२ सिर पर आना—बहुत करीब आना ।
४६३ सिर पर हाथ धरना—मदद करना ।
४६४. सिर मारना—बहुत कोशिश करना ।
४६५ सिर से कफन बांधना—मरने के लिए तैयार होना ।
४६६. सीग कटाकर बछडो मे मिलना—लडको के साथ काम करना ।
४६७. हक्का बक्का रह जाना—चकित होना ।
४६८ हजामत बनाना—लूटना या ठगना ।
४६९ हथियार डाल देना—हार मान लेना ।
४७० हराम होना—मुश्किल होना ।
४७१. हवा खाना—हवा के लिए बाहर निकलना ।
४७२ हवा लगना—सगति का असर होना ।
४७३ हवा से बातें करना—बहुत तेज चलना ।
४७४ हवा हो जाना—भाग जाना ।
४७५ हाथ कटाना—लिखकर प्रतिज्ञा करना ।

४७६ हाथ को हाथ न सूझना—घना अन्धकार ।
४७७ हाथ खीचना—सहायता बन्द कर देना ।
४७८. हाथ डालना—कोई काम प्रारम्भ करना ।
४७९ हाथ धोना—नष्ट करना ।
४८० हाथ धोकर पीछे पडना—बुरी तरह पीछे पडना ।
४८१. हाथ पाँव फूल जाना—डर जाना ।
४८२ हाथ वटाना—सहायता करना ।
४८३ हाथ बाधे खडा रहना—सेवा के लिए तैयार रहना।
४८४ हाथ साफ करना—खूब डटकर खाना या कोई चीज उडा देना ।
४८५ हाथो हाथ बिकना—बहुत जल्द बिकना ।
४८६ होश उड जाना—सुध न रहना ।

——

अपठित

भाषा के विद्यार्थियो के लिये प्रत्येक कक्षा मे कुछ पाठ्य-पुस्तके निश्चित कर दी जाती है जिनमे कुछ चुनी हुई कविताएँ, कहानियाँ, निबन्ध और नाटक आदि होते हैं। भाषा का ज्ञान कराने के लिये कक्षा मे इन पाठ्य-पुस्तको के पाठो को अच्छी तरह पढा दिया जाता है। परीक्षा मे उन्ही पाठो के कुछ गद्याश व पद्याश सरल भावार्थ लिखने के लिये दिये जाते है ताकि यह मालूम हो सके कि बालक उन्हे कहा तक समझ सके हैं। पाठ्य-पुस्तको मे कुछ चुने हुए निबन्ध, कहानिया, कविताएँ आदि रखने के पीछे यही उद्देश्य होता है कि बालक उनके जैसे अन्य निबन्धो, कविताओ और कहानियो को भी समझने की क्षमता प्राप्त करले। क्योकि बालको का ज्ञान पाठ्य पुस्तको तक ही सीमित रहा तो उससे कोई लाभ नही होता। वह तो बालक को कूप-मण्डूक बनाने जैसा ही होता है। अत बालको की सही उपलब्धि का अनुमान उन्ही कहानियो, निबन्धो और कविताओ से किया जा सकता है जिन्हे बालको ने कक्षा मे नही पढा है। बालक जो रचनाएँ कक्षा मे नही पढता है और उसके सामान्य ज्ञान और उपलब्धि का पता लगाने के लिये जो परीक्षा मे दी जाती हैं उन्ही को अपठित कहते है।

अपठित रचनाओ के सम्बन्ध मे पूछे जाने वाले प्रश्नो मे जो बाते प्रमुख रहती हैं उन्ही को हम यहाँ स्पष्ट करने का प्रयत्न कर रहे हैं

१ गद्याश—भाषा मुख्यतः दो प्रकार की होती है—गद्य और पद्य। जिस भाषा के वाक्यो व पदो मे ह्रस्व व दीर्घ मात्राओ तथा वर्णों और गणो के उच्चारण का कोई भी नियम नही रहता, उसे गद्य कहते हैं और गद्य भाषा मे लिखे हुए किसी निबन्ध, कहानी, सस्मरण, रेखाचित्र, गद्य-गीत आदि के एक अश को गद्याश कहते हैं।

२ पद्याश—जिस भाषा के वाक्यो व पदो मे मात्राओ व वर्णों की गणना का कोई विशेष क्रम निश्चित होता है और जहाँ-तहाँ विराम आदि का भी विशेष विधान होता है, उसे पद्य कहते हैं।

इस प्रकार के पद्य के एक अश को पद्याश कहते है।

३ सरलार्थ—अपठित सम्बन्धी प्रश्न पूछते समय किसी भी गद्य या पद्य का अर्थ चार प्रकार से पूछा जाता है (१) सरलार्थ (२) भावार्थ (३) तात्पर्य और (४) व्याख्या।

(१) सरलार्थ—किसी गद्याश या पद्याश मे आये हुए लेखक के भाव या विचार को बोल-चाल की सरल भाषा मे व्यक्त कर देना सरलार्थ कहलाता है। अर्थ करते समय कठिन शब्दो, मुहावरो आदि को सरल भाषा मे लिख दिया जाता है। सरलार्थ का उद्देश्य लेखक के अभिप्राय को सीधे-सादे शब्दो मे अभिव्यक्त करना ही होता है।

(२) भावार्थ—जब जटिल और क्लिष्ट शब्दो एव मुहावरो आदि को केवल सरल भाषा मे लिख देना इष्ट नही होता है, बल्कि लेखक के मुख्य भाव को स्पष्ट करना होता है और इसी दृष्टि से गद्याश या पद्याश को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया जाता है तब उसे भावार्थ कहते हैं।

(३) तात्पर्य—लेखक या कवि के शब्दो मे जो मुख्य भाव या प्रेरणा होती है उसे स्पष्ट करना ही तात्पर्य बताना कहा जाता है।

(४) व्याख्या—जब प्रसग बताते हुए विस्तार-पूर्वक किसी पद्याश या गद्याश के रस, अलकार, छन्द, अन्तर्कथा आदि का वर्णन करके उसमे निहित अर्थ रहस्य को स्पष्ट किया जाता है तो उसे व्याख्या कहा जाता है। व्याख्या मे तीन बातो का ध्यान प्रमुख रूप से रखा जाता है—(क) प्रकरण, (ख) अर्थ और (ग) विशेष।

(क) प्रकरण—जिन बातो से व्याख्या के समझने मे सहायता मिलती है उन्हे प्रकरण कहते हैं। उदाहरणार्थ वह गद्याँश या पद्याश किस जगह से लिया गया है, उसमे कौन किससे कहता है आदि। इसे प्रसग भी कहा जाता है। प्रसग बता देने से अर्थ समझने मे बडी सहायता मिलती है।

(ख) अर्थ—प्रसग लिख देने के बाद गद्याश या पद्याश का सरल और सुबोध भाषा मे जो सरलार्थ लिखा जाता है वह अर्थ कहा जाता है । उसके चारो प्रकारो पर ऊपर प्रकाश डाला जा चुका है ।

(ग) विशेष—गद्याश या पद्याश मे जो विशेषता होती है उसे ही विशेष कहते हैं । उदाहरण के लिए यदि गद्याश या पद्याश मे कोई अन्तर्कथा हो, कोई रस या अलकार हो अथवा कोई और ऐसी वात हो जिसके स्पष्टीकरण की आवश्यकता हो तो उसको स्पष्ट करना ही इस विशेष को स्पष्ट करना कहा जाता है ।

४ साराश—लेखक या कवि के विस्तारपूर्वक कहे गये विचारो को कुछ चुने हुए सक्षिप्त वाक्यो मे कह देना साराश कहा जाता है ।

५. शीर्षक—किसी अवतरण के ऊपर उसके सन्देश या अभिप्राय को व्यक्त करने वाले एक दो शब्द के नाम को शीर्षक कहा जाता है ।

अपठित अश का सरलार्थ, भावार्थ, व्याख्या या तात्पर्य बताने के लिए अथवा उसका साराश या शीर्षक स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित वातो का ध्यान रखना आवश्यक होता है .

१—विद्यार्थियो को केवल पाठ्य-पुस्तको तक ही अपने अध्ययन को सीमित न होने देना चाहिए और अपने विद्यालय के वाचनालय, घर के पुस्तकालय या शहर—मुहल्ले के अन्य वाचनालय-पुस्तकालय का भी उपयोग करना चाहिये और जहाँ तक हो सके मासिक एव सप्ताहिक-पत्र तथा पुस्तको का अध्ययन करते रहना चाहिए । इस प्रकार के अध्ययन से उनका ज्ञान विस्तृत होगा और अपठित अवतरणो के प्रश्नो का सही उत्तर देना सरल हो जायगा ।

२—अपठित रचना के प्रश्नो को हल करने के पहले उसे आदि से अन्त तक ध्यानपूर्वक पढ लेना चाहिये । एक वार मे वह समझ मे न आए तो दूसरी वार—तीसरी वार उसे पढना चाहिए और उसका पढना तभी वन्द करना चाहिये जवकि उसका आशय ठीक तरह से समझ मे आ जाय । यदि विना समझे ही उसकी व्याख्या'

साराश अथवा भावार्थ लिखने का प्रयत्न किया गया तो बुनियाद ही गलत हो जायगी और गलत बुनियाद पर बनाया गया मकान कभी अच्छा नही बन पाएगा ।

३—रेखाङ्कित अश का तात्पर्य लिखते समय केवल उसका शब्दार्थ नही लिखना चाहिए, बल्कि उसके आशय को अपने शब्दो मे बताने का प्रयत्न करना चाहिए।

४—किसी पद या शब्द का अर्थ देते समय केवल पर्यायवाची शब्द लिख कर सन्तोष नही कर लेना चाहिए । जो अर्थ दिया जाय वह ऐसा हो कि मूल अश के स्थान पर रखा जा सके और तब यदि उसे पढा जाय तो वाक्य-सगठन मे कोई दोष आए बिना ही आशय स्पष्ट हो जाय । उसके कारण आशय को कोई आघात नही पहुँचना चाहिये ।

५—व्याख्या, सरलार्थ, तात्पर्य, भावार्थ आदि लिखते समय सीधी सरल और सुबोध भाषा का प्रयोग करना चाहिये ।

६—यदि किसी अवतरण का शीर्षक लिखना हो तो वह इस प्रकार का होना चाहिए कि उसकी आत्मा को अभिव्यक्त कर सके । यदि उस प्रकार का कोई शीर्षक अवतरण मे ही ढूँढने का प्रयत्न किया जाय तो बहुत अशो मे निराश नही होना पडेगा । वह अवतरण की प्रारम्भिक या अन्तिम पक्तियो मे कही न कही मिल सकता है ।

अपठित अवतरण†

गद्यांश

(१)

मैं दुनिया मे एक छोर से दूसरे छोर तक गया और देखा कि प्रत्येक स्थान पर गुलामी, **प्रशसा और आदर की उत्सव-यात्रा** के साथ मौजूद है । लोग उसकी बलि-वेदी पर नवयुवक और नवयुवतियो को भेंट चढाते हैं और उसे देवता के नाम से पुकारते हैं । उसके चरणो मे सुगन्ध या शराब चढाते है और उसे बादशाह के नाम से पुकारते हैं । **उसकी**

† ये अवतरण सक्षिप्तीकरण (Précis) के लिए भी समुचित अभ्यास बन सकते है ।

मूर्तियो के सामने धूप बत्तियां सुलगाते हैं और उसे अवतार का नाम देते है। शीश नवाते हुए उसके सामने गिरते है और उसे कानून कहते है। उसके लिए लडते और एक दूसरे का वध करते हैं और उसका नाम राष्ट्रीयता रखते है। **अपने आपको उसकी इच्छा पर छोडते हैं और उसे पृथ्वी पर परमात्मा की छाया समझते हैं। उसके विचार और विश्वास के जोश मे** अपने घरो को आग लगाते हैं और इमारतो को गिराते हैं और उसे भाई-बन्दी और समानता के नाम से याद करते हैं।

—खलील जिब्रान

प्रश्न न० १—उपर्युक्त अवतरण का साराश चार या पाँच पक्तियो मे लिखिये।

२—मोटे टाइप मे दिये हुए शब्दो का भाव समझाकर लिखिये।

३—इस अवतरण का उपयुक्त शीर्षक बताइये।

४—इस गद्याश के अनुसार गुलामी के अलग अलग स्वरूप क्या हैं?

उत्तर

१—जहाँ आवश्यकता से अधिक आदर या प्रशसा है, जहाँ अन्धपूजा और खुशामद है, जहाँ कानून को विवश होकर मान लिया जाता है, जहाँ राष्ट्रीयता के नाम पर झगडे होते हैं तथा समता और बन्धुत्व के नाम पर अपने विचार दूसरो पर लादे जाते हैं वहाँ गुलामी है। ऊपर से भले ही वह और कुछ दिखाई दे वस्तुत वह गुलामी ही है।

२—(क) प्रशसा और आदर की उत्सव यात्रा—अत्यन्त अधिक मान-सम्मान और यशोगान।

(ख) उसकी मूर्तियो के सामने धूप बत्तियाँ सुलगाते हैं—गुलामी की प्रतिमा या मूर्ति की पूजा-अर्चा करते है।

(ग) अपने आपको उसकी इच्छा पर छोडते हैं—अपने विवेक और बुद्धि को छोडकर उसकी इच्छा को ही सर्वोपरि मान लेते हैं तथा उसीका अनुसरण करते हैं।

(घ) उसे पृथ्वी पर परमात्मा की छाया समझते हैं—गुलामी को ईश्वर का ही प्रतिरूप मानते हैं।

(ङ) उसके विचार और विश्वास के जोश मे—यह मानकर कि गुलामी का विचार बिलकुल सही है ।

३—इस अवतरण का उपयुक्त शीर्षक होगा—'गुलामी' ।

४—देवता, बादशाह, अवतार, कानून, राष्ट्रीयता, भाई-बन्दी, समानता आदि कई अच्छे समझे जाने वाले रूपो मे भी हमे गुलामी दिखाई देती है । वह दुनियाँ के एक छोर से दूसरे छोर तक प्रत्येक स्थान मे प्रशसा और आदर की उत्सव-यात्रा के साथ मौजूद मिलती है ।

(२)

साहित्यकार को **लोक हृदय के अनुकूल परिपूर्ण शब्द** प्रकट करने की कला साधनी चाहिए अर्थात् **सम्यक्, मधुर और कुशल तीनो प्रकार की वाणी** बोलना—जिसमे **न्यून, अतिरिक्त और विपरीत भाव न हो**। यह एक महान् साधना है जो उसी को सधती है जिसे अपना निज का कोई विकार न हो । जो निज का विकार रखता है वह इस तरह की सम्यक् वाणी प्रकट नही कर सकता । **थर्मामीटर को खुद का बुखार नहीं होता** इसलिये वह दूसरो का बुखार नाप सकता है । इसी प्रकार जिसमे स्वय कोई विकार नही होता **वही दूसरों के लिये सम्यक् वाणी बोल सकता है ।** —विनोबा

प्रश्न न० १—मोटे टाइप मे दिये हुए शब्दो की व्याख्या कीजिये ।

२—इस गद्याश का साराश चार पक्तियो मे लिखिये ।

३—इस गद्याश का उपयुक्त शीर्षक बताइये ।

४—अन्तिम वाक्य की पद-व्याख्या कीजिये ।

५—साहित्यकार को कौन-सी कला की साधना करना चाहिए ? यह साधना कौन-सा व्यक्ति कर सकता है ?

(३)

आचार्य विश्वश्रुति के तीनो शिष्यो ने शिक्षा समाप्त करके **गृहस्थाश्रम मे प्रवेश करने के लिए अनुमति मांगी**। आचार्य की **आंखें डबडबा आईं**। अनुमति दे दी ।

उस समय सध्या हो रही थी । तीनो शिष्य अपनी-अपनी तैयारी

करने लगे । सहसा **आचार्य के मस्तिष्क में एक योजना कौंधी।** जाकर उन्होंने राह मे काँच के टुकड़े विखेर दिये और स्वय एक कुज की ओट मे छिप रहे ।

जाते हुए तीनो शिष्यो ने मार्ग मे विखरे हुए काँच के टुकडे देखे । पहला लाँघ कर आगे बढ गया । दूसरा पल भर ठिठका, फिर आगे बढ गया । तीसरा अपना सामान एक ओर रख कर उन टुकडो को बिनने लगा ।

आचार्य ने तीसरे को जाने दिया और पहले दोनो को यह कहते हुए रोक लिया कि '**वत्स तुम दोनों की शिक्षा पूरी नहीं हुई है** । तुमने **अभी शिक्षा का उद्देश्य नही समझा है** । तुम अभी यही रहो ।'

प्रश्न न० १—उपर्युक्त गद्याश का भावार्थ अपने शब्दो मे लिखिये ।
२—मोटे टाइप मे दिये हुए वाक्याशो की व्याख्या कीजिये ।
३—आचार्य ने मार्ग मे काँच के टुकडे क्यो बिखर दिये थे ?
४—आचार्य ने तीसरे शिष्य को ही क्यो जाने दिया ?
५—उपर्युक्त गद्याश का शीर्षक बताइये ।
६—'आचार्य ने तीसरे को ···· ········पूरी नही हुई है ।' इस वाक्य का वाक्य-विश्लेषण कीजिये ।
७—निम्नलिखित मुहावरो का अर्थ लिखिये और उनका प्रयोग अपने शब्दो मे कीजिये—आँख डबडबाना, मस्तिष्क मे कोई योजना कौंधना, मार्ग मे काँटे बिखेरना ।

(४)

कवीर को हिन्दी का पहला कवि माना जाना चाहिये । उसने कई काम एक साथ किये । **उस काल की जनता राह भटक गई थी, हिन्दू-मुसलमान के भेद जड़ पकड़ गये थे, मनुष्य-मनुष्य मे अन्तर हो गया था, ईश्वर भी वांटे में आ गया था** । सारे समाज को सुधार की आवश्यकता थी । **कबीर ने अक्षर ब्रह्म की सिद्धि की** । अक्षर ब्रह्म से निरजन की, निरजन से ब्रह्मा-विष्णु-महेश की । ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना के लिये माया को जन्म दिया और माया ने अपने पिता ब्रह्मा से

विवाह कर लिया। **यही माया अपने जाल में फँसा कर हमें अपने राम से अलग कर देती है**। लेकिन **साधना से यह दूरी मिट सकती है**। कबीर की इस साधना को रहस्यवाद कहते हैं।

कबीर की कविता अपने काल की अस्त-व्यस्तता और धार्मिक भावना से पैदा हुई। **वह हमारा हृदय छूती है** और आज भी सकेत करती है कि ऐसा करेंगे तो कविता का रस हमे **धरती के ताप शाप से मुक्ति** देगा।

प्रश्न न० १—उपर्युक्त अवतरण का भावार्थ सरल भाषा मे लिखिये।

२—मोटे टाइप मे दिये हुए वाक्यांशो का अर्थ लिखिये।

३—कबीर के रहस्यवाद से आप क्या समझते हैं?

४—किन बातो ने प्रमुख रूप से कबीर की कविता को जन्म दिया?

५—निम्नलिखित मुहावरो का अर्थ लिख कर उन्हे वाक्यो मे प्रयुक्त कीजिये—

राह भटकना, जड पकडना, जाल मे फँसाना, हृदय छूना।

६—इस अवतरण के अन्तिम वाक्य का वाक्य-विश्लेषण कीजिये।

७—समास बताइये—हिन्दू-मुसलमान, अक्षर-ब्रह्म, ब्रह्मा-विष्णु-महेश, ताप-शाप।

(५)

चुङ्ग-सिन नामक एक चीनी शिष्य ने अपने गुरु ताओ वू की बडी सेवा की। एक दिन चुङ्ग-सिन ने गुरु के पास जाकर कहा—"जिस दिन से मैं आया हूँ आपने मुझे धर्म के सार के विषय मे कभी नही बताया।"

गुरु ने उत्तर दिया—"जब से तुम यहा आये हो, मैं कभी धर्म का सार बताये बिना नही रहा हूँ। जब तुम चाय के प्याले को लिये मेरे पास आये हो तब मैं कभी उसे ग्रहण किये बिना नही रहा हूँ। जब तुमने हाथ जोड कर आदर-पूर्वक मुझे प्रणाम किया है तब मैं कभी अपना सिर झुकाये बिना नही रहा हूँ। अब तुम्ही बताओ मैंने कब तुम्हे

धर्म का उपदेश नही दिया है ? तुम्हारी भ्रान्ति यह है कि तुम धर्म को दैनिक जीवन के कार्य-कलापो से अलग मानते हो। अतः यदि तुम सत्य के साक्षात्कार के मानसिक विश्लेषण का आग्रह करोगे तो अपने लक्ष्य से बहुत ही दूर जा पडोगे।"

प्रश्न न० १—उपर्युक्त अवतरण का आशय सक्षेप मे लिखिये।
२—धर्म का सार क्या है ?
३—उपर्युक्त अवतरण का उपयुक्त शीर्षक बताइये।
४—धर्म के बारे मे साधारणत: लोगो का भ्रम क्या है ?
५—निम्नलिखित शब्दो को अपने वाक्यो मे प्रयुक्त कीजिये :
साक्षात्कार, विश्लेषण, आग्रह, भ्रान्ति, कार्य-कलाप।
६—सन्धि-विच्छेद कीजिये
विषम, आच्छादन, उल्लास, स्वजन, अभिषेक, सम्पूर्ण, अहकार परिच्छेद।

(६)

दुःख को हम अवाछनीय कह कर उससे भागते है और **जितना हम भागते हैं उतना ही वह हमारा पीछा करता है।** किसी कारण यदि **वह हमे छोड जाए तो हमारा विकास-क्रम रुक जाए। जगद्धात्री माता का वह प्यारा सन्देश-वाहक है,** कारिन्दा है।

और दुःख की तरह **सुख का मूल भी तृष्णा** ही है। वास्तव मे यह तृष्णा कोरी छलना ही नही है। जो पुरुषार्थ हम तृष्णा की पूर्ति के लिए करते है वही ज्ञान और नई शक्ति देता है। **इस तृष्णा के द्वारा ही जगत् की बडी बातें संभव हो सकी हैं।** यदि सुख की इच्छा को मानव मन से निकाल दिया जाय तो पशु मे और उनमे कोई अन्तर नही रह जायगा।

प्रश्न न० १—उपर्युक्त अवतरण का साराश तीन पक्तियो मे लिखिये।
२—मोटे टाइप मे दिये हुए अशो का अर्थ स्पष्ट कीजिये।
३—इस अवतरण का उपयुक्त शीर्षक बताइये।

४—दु ख जगद्धात्री माता का सन्देश-वाहक क्यो कहा गया है ?
५—लेखक के अनुसार मनुष्य और पशु मे क्या अन्तर है ?
६—अन्तिम वाक्य का वाक्य-विश्लेषण कीजिये ।

(७)

मात दुर्गे, हमारे शरीर मे **योग बल** द्वारा प्रवेश कर । हम होगे तेरे यन्त्र, **तेरी अशुभ-विनाशिनी तलवार, तेरे अज्ञान-विनाशी प्रदीप** । हे माता, भारत के युवको की इस आशा को पूर्ण कर । यन्त्री बन कर यन्त्र चला, **शुभ-यन्त्री होकर तलवार घुमा, ज्ञान-दीप्ति-प्रकाशिनी होकर हाथ मे प्रदीप** ले और प्रकाशमान् हो ।

मात दुर्गे, अब की बार तुझे पाने पर हम तेरा विसर्जन नही करेंगे। **श्रद्धा, भक्ति और प्रेम की डोर से तुझे बांध लेंगे** । आ मात , **हमारे मन, प्राण और शरीर मे प्रकाशमान्** हो ।

वीर मार्ग-प्रदर्शिनी । आ, **हमारा सारा जीवन ही अविच्छिन्न दुर्गापूजा हो** । हमारे समस्त कार्य अविरत, पवित्र, प्रेयमय, शक्तिमय एव मातृ-सेवा-व्रत से युक्त हो यही प्रार्थना है। हे माता ! तू भारत मे आविर्भूत हो, प्रकाशमान् हो ।

—योगीराज अरविन्द

प्रश्न न० १—मोटे टाइप मे दिये हुए वाक्याशो की व्याख्या कीजिये ।
२—लेखक माता दुर्गा से क्या याचना करता है ?
३—उपर्युक्त अवतरण का तात्पर्य लिखिये ।
४—अन्तिम वाक्य की पद-व्याख्या कीजिये ।
५—सन्धि-विच्छेद कीजिये
अविच्छिन्न, अविरत, जगद्धात्री, पुरुषार्थ, उल्लास ।
६—समास बताइये ।
वीरमार्ग-प्रदर्शिनी, दुर्गा-पूजा, मातृसेवा-व्रत, योग-बल, अशुभ-विनाशिनी, शुभ-यत्री, ज्ञान-दीप्ति तथा मार्ग-प्रदर्शनी ।

(८)

हमारे देश मे **अन्वेषण एवं अनुसंधान की प्रवृत्ति** उत्तेजित होना चाहिये । **हमारे देश की चेतना को अधिक** जागरूक एवं तीक्ष्ण बनाना **चाहिए** । हमे याद रखना चाहिये कि **किसी देश की संस्कृति** मूलत: **उसके निवासियों की चेतना की क्रिया है,** न कि **विश्वासों और आदर्शों की जड धरोहर** । वह चेतना-क्रिया को भी जीवन चिन्तन के रूप मे ही ग्रहण करती और आँकती है । इस प्रकार का चिन्तन ही किसी सस्कृति की चेतना-धारा को वेगवान एव स्वच्छ बनाए रखता है । जहाँ चेतना उक्त ढङ्ग से लगातार क्रियाशील रहती है वहाँ सस्कृति के मरने का प्रश्न ही नही उठता, वहाँ **प्राचीन सस्कृति के समस्त श्रेष्ठ तत्त्व चिर-नवीन चिन्तन-क्रिया में लगकर उज्जीवित और नवीन होते हैं** ।

प्रश्न न० १—उपर्युक्त अवतरण का भावार्थ सरल भाषा मे लिखिये ।
२—मोटे टाइप मे दिये हुए वाक्याशो को स्पष्ट कीजिये ।
३—इस अवतरण का उपयुक्त शीर्षक बताइये ।
४—सस्कृति मूलत किसे कह सकते है ?
५—सस्कृति का उत्थान कैसे हो सकता है ?
६—समास बताइये
चितन-क्रिया- चेतना-धारा, नर-सहार, काशी-घाट, त्रिलोकी, साहित्य-रत्न ।

(९)

लम्वे वाल, चौडा माथा, उस पर एक बडी बिन्दी, मस्ती-भरी चाल और इन सवके **बीच कुछ खोजती हुई आँखें, स्थूलता की ओर झुकने को लालायित शरीर—यह कई विरोधी बातों के सम्मिश्रण से** गठित सम्पूर्णानन्द है ।

जीवन मे जितने आदमियो को मैं जानता हू—और जिनकी सख्या कुछ कम भी नही—उनमे कदाचित् सम्पूर्णानन्द सवसे अधिक **जटिल**

व्यक्तित्व के उदाहरण हैं। मनोविज्ञान के विद्यार्थी के लिए **उनका जीवन एक पूरी की पूरी प्रयोगशाला है। उसमें दार्शनिक की खोज है, सन्देहवादी और संशयात्मा का प्रश्न-चिन्ह है। उसमें भक्त और सेवक का आत्म-निवेदन है, विद्रोह की हुँकार है, राजनीतिज्ञ का समझौता है।** एक स्कॉच की तरह वह अनेक एव बहुरूपी व्यक्तियो के व्यक्ति है।

इसका मतलब यह नही कि उसमे कोई प्रधान धारा अथवा **जीवन की प्रवृत्ति पर शासन करने वाला कोई उपकरण नहीं है। न ये बातें किंचित् उपहास करती हैं उनका;** न ही ये उनके जीवन को महत्त्व और गति देने वाले आवश्यक उपादन हैं। और इन उपादानो का वे अत्यन्त जीवनदायिनी रूप मे उपयोग करते करते है। —रामनाथ 'सुमन'

प्रश्न न० १—मोटे टाइप मे दिये हुए वाक्याशो की व्याख्या कीजिये।
२—उपर्युक्त पक्तियो का साराश लिखिये।
३—श्री सम्पूर्णानन्द अनेक व्यक्तियो के व्यक्ति क्यो कहे गये है?
४—श्री सम्पूर्णानन्द किन उपादनो का जीवनदायी रूप मे उपयोग करते हैं?
५—पहले वाक्य का वाक्य-विश्लेषण कीजिये।

(१०)

मैंने भारत के सामने **आत्म-बलिदान का पुरातन कानून** रखने का साहस किया है, क्योकि सत्याग्रह और उसकी प्रशाखाएँ—**असहयोग और सविनय प्रतिकार**—आत्म-पीडन के नये नाम के सिवाय और कुछ नही है। वे ऋषि जिन्होंने हिंसा के बीच मे अहिंसा के कानून को खोजा न्यूटन की अपेक्षा कही अधिक प्रतिभाशाली थे। वे स्वय वेलिंगटन की अपेक्षा कही अधिक महान् योद्धा थे। अस्त्र-शस्त्रो का उपयोग वे जानते थे इसलिये वे समझ गये थे कि उनका कोई उपयोग नही है और इसलिये थके-हारे विश्व को उन्होंने सिखाया था कि **उसकी मुक्ति हिंसा से नहीं, बल्कि अहिंसा से होगी।**

अहिंसा का अर्थ सक्रिय स्थिति में मान-सहित पीड़न है। इसका अर्थ अत्याचारी की इच्छा के सामने चुप-चाप झुक जाना नही है, वरन्....इसका अर्थ है **अत्याचारी की इच्छा के विरुद्ध अपनी सारी प्राण-शक्ति लगा देना।** हमारे अस्तित्व के इस कानून के अन्तर्गत काम करते हुए अकेले व्यक्ति के लिए भी सभव है कि वह अपने सम्मान, अपने धर्म और अपनी आत्मा की रक्षा करने के लिए एक अन्यायी साम्राज्य की महान् शक्ति के विरुद्ध खडा हो जाय और इस प्रकार उस **साम्राज्य के पतन या सुधार की नींव डाल दे।** —महात्मा गाँधी

प्रश्न न० १—मोटे टाइप मे दिये हुए वाक्यांशो का अर्थ स्पष्ट कीजिये।

२—गाँधीजी के अनुसार अहिंसा का सही अर्थ क्या है ?

३—गाधीजी हिंसा की अपेक्षा अहिंसा को श्रेष्ठ क्यो मानते थे?

४—हिंसात्मक प्रतिकार और अहिंसात्मक प्रतिकार मे क्या अन्तर है ?

५—उपर्युक्त अवतरण का भावार्थ अपने शब्दो मे लिखिये।

६—पहले वाक्य का वाक्य-विश्लेषण कीजिये।

७—संधि-विग्रह कीजिये

अत्याचारी, रेखाङ्कित, सत्याग्रह, वाक्यांश।

(११)

चारो ओर देखने पर मुझे **एक गर्वीली सभ्यता के भग्नावशेष** दिखाई दे रहे हैं, मानो एक, बहुत बडा बिल्कुल बेकार का ढेर तितर-बितर पडा हो। फिर भी **मानव में विश्वास खोने का भारी पाप** नही करूगा। मैं उसके इतिहास मे एक नये अध्याय को देखना चाहूँगा, जो इस तूफान के बाद, वायुमण्डल साफ होने के बाद, सेवा और बलिदान की भावना से प्रारम्भ होगा। शायद वह प्रभात इसी क्षितिज पर होगा, **पूर्व में**—जहा सूर्योदय होता है। एक ऐसा दिन आयगा जब **अपराजित मानव** सारी रुकावटो के होते हुए अपने विजय-मार्ग पर वापिस लौटेगा, ताकि वह अपनी खोई हुई **मानवीय पैतृक सम्पत्ति** पा सके।

आज हम उन खतरो को देख रहे हैं जो शक्ति की उद्दण्डता के साथ सोते हैं। एक दिन ऋषियो द्वारा घोषित यह पूर्ण सत्य प्रकट होगा .

'असत्याचरण से मनुष्य की समृद्धि होती है, शत्रुओ पर विजय प्राप्त होती है, चाही हुई चीजे मिलती हैं लेकिन **जड़ में उसका नाश हो जाता है।**'

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

प्रश्न न० १—मोटे टाइप मे दिये हुए वाक्यांशो की व्याख्या कीजिये।
२—इस अवतरण का भावार्थ अपने शब्दो मे लिखिये।
३—इसका शीर्षक लिखिये।
४—कवीन्द्र रवीन्द्र के अनुसार मानव का विजय-मार्ग क्या है और वह किस प्रकार उसे पा सकता है ?
५—कवीन्द्र ने मानव मे विश्वास खोने को पाप क्यो कहा है? वे उसे अपराजित क्यो मानते हैं ?

(१२)

रवीन्द्रनाथ **स्वप्नदृष्टा कवि** थे। '**तन्त्रीनाद कवित्त रस**' मे सब अग वूडे हुए थे। **संसार की कठोर वास्तविकताओं** को भूले नही थे। देश की **दासताजन्य दयनीय दशा** से उनका हृदय दुखित रहता था। उनका जीवन-सन्देश '**पलायनवाद**' का न था। उनकी **कला कला के लिए** न थी, वरन् '**बहुजनहिताय**' थी। वे राष्ट्र-कवि मैथिलीशरण गुप्त के शब्दो मे '**भव मे नव वैभव प्राप्त कराने**' आये थे। वे यहाँ **गढ़ने और जोडने** आये थे, तोडने नही। वे विदेशी शासन के **आर्थिक शोषण** के ही विरुद्ध न थे वरन् उससे जो भारतीय स्वाभिमान की शोचनीय क्षति होती थी उसके प्रति **सात्विक क्रोध** प्रकट करने आये थे। अग्रेज जैसी जाति से, जो दूसरो को मान्यता देने मे स्वभावत. कृपण हैं, उन्हे भरपूर मात्रा मे प्रशसा मिली। किन्तु **वे उस**

प्रशंसा की मोह-निद्रा से बचे रहे। जलियाँवाला-बाग के क्रूर हत्याकाण्ड से उनका हृदय द्रवित हो गया और अंग्रेजो के द्वारा दी हुई 'सर' की पदवी को उन्होने दृढता-पूर्वक ठुकरा दिया।

—गुलाबराय

प्रश्न न० १—मोटे टाइप मे दिये हुए वाक्याशो की व्याख्या कीजिये।

२—उपर्युक्त अवतरण मे कवि द्वारा रवीन्द्रनाथ की किन-किन विशेषताओ पर प्रकाश डाला गया है ? संक्षेप मे उन्हे स्पष्ट कीजिये।

३—अन्तिम वाक्य का वाक्य-विश्लेषण कीजिये।

४—इस अवतरण का उपयुक्त शीर्षक सुझाइये।

५—निम्न पदो मे कौन से समास हैं और क्यो ?
स्वप्नद्रष्टा, तन्त्रीनाद, कवित्तरस, दासता-जन्य, नव-वैभव, मोह-निद्रा।

६—इस अवतरण का भावार्थ सरल शब्दो मे लिखिये।

(१३)

निबन्ध के लक्षणो मे स्वच्छन्दता, सरलता, आडम्बर-हीनता घनिष्ठता और आत्मीयता के साथ लेखक के **वैयक्तिक आत्मनिष्ठ दृष्टिकोण** का भी उल्लेख किया जाता है। परन्तु ये लक्षण विविध लेखको की कृतियो मे कितने विभिन्न रूपो मे मिलते हैं इसे स्मरण रखना आवश्यक है। **निबन्धकार की स्वच्छन्दता उच्छृङ्खलता नहीं है। उसकी अनियमता में भी एक नियम है** और उसकी अव्यवस्था मे भी एक व्यवस्था है। जान पडता है कि **वह कलात्मक प्रयास नही करता,** परन्तु वास्तव में ऐसा भ्रम पैदा करने के लिये उसे स्वत अपनी मौलिक पद्धति खोजनी पडती है। अत निबन्ध एक ऐसी कलाकृति बन जाता है कि जिसके नियम लेखक द्वारा ही आविष्कृत होते है। इसी प्रकार सहज, सरल, **आडम्बरहीन आत्माभिव्यक्ति** के लिये परिपक्व और विचार-शील गम्भीर व्यक्तित्व की अपेक्षा है। यद्यपि उसकी कृति मे प्राय रचना की परिपक्वता का अभाव-सा दिखाई देता है परन्तु

पाठक के साथ लेखक की निकटता और आत्मीयता वास्तविक होती है। इसके अभाव मे सफल कथात्मक निवन्ध-रचना सभव नही। निवन्ध लेखक बिना किसी सकोच के अपने जीवन के अनुभव सुनाता और उन्हे **आत्मीयता के साथ उनमें भाग लेने को आमन्त्रित करता है।** उसकी यह **घनिष्ठता** जितनी सच्ची और सघन होगी, उसका निबन्ध पाठको पर उतना ही सीधा और तीव्र असर करेगा।

प्रश्न न० १—सफल निबन्ध के कौन-कौन मे गुण हैं?
२—मोटे टाइप मे दिये हुए वाक्याशो का अर्थ स्पष्ट कीजिये।
३—एक सफल निबन्धकार को किन-किन बातो का ध्यान रखना चाहिए?
४—इस अवतरण का उपयुक्त शीर्षक क्या होगा? लिखिये।
५—"यद्यपि उसकी कृति ··· ·· ···वास्तविक होती है।" इस वाक्य का वाक्य-विश्लेषण कीजिये।

(१४)

जव महाभारत का अन्तिम श्लोक महर्षि वेदव्यास के मुखारविन्द से निसृत हो, गणेशजी के **सुडौल सुपाठ्य अक्षरों में भूर्जपत्र पर अंकित हो चुका,** तव गणेशजी से महर्षि ने कहा—"विघ्नेश्वर, धन्य है आपकी लेखनी! महाभारत का सृजन तो वस्तुत उसीने किया है। पर एक वस्तु आपकी लेखनी से भी अधिक विस्मयकारी है। वह है आपका मौन। सुदीर्घकाल तक आपका हमारा साथ रहा। इस अवधि मे मैंने तो पन्द्रह-वीस लाख शब्द वोल डाले परन्तु आपके मुख से एक भी शब्द नही सुना।" इस पर गणेशजी ने मौन की व्याख्या करते हुए कहा—

"बादरायण, किसी दीपक मे अधिक तेल होता है, किसी मे कम। परन्तु तेल का अक्षय भण्डार किसी दीपक मे नही होता। उसी प्रकार देव, मानव, दानव आदि जितने भी तनुधारी हैं **सब की प्राण-शक्ति सीमित है।** किसी की कम है, किसी की कुछ अधिक, परन्तु असीम किसी की नही। इस प्राण-शक्ति का पूर्णतया लाभ वही पा सकता है जो सयम से उसका उपयोग करता है। **सयम ही समस्त सिद्धियों का**

आधार है । **सयम का प्रथम सोपान है—वचोगुप्ति** अर्थात् वाक्सयम । जो वाणी का सयम नही रखता उसकी जिह्वा बोलती रहती है। बहुत बोलने वाली जिह्वा अनावश्यक बोलती है और **अनावश्यक शब्द प्राय: विग्रह और वैमनस्य पैदा करते हैं** जो हमारी प्राण-शक्ति को सोख डालते हैं। **वचोगुप्ति से यह सारी अनर्थ परम्परा दग्ध-बीज हो जाती है** इसीलिए मैं मौन का उपासक हूं ।"

प्रश्न न० १—मोटे टाइप मे दिये हुए वाक्याशो की व्याख्या कीजिये ।

२—सन्धि-विग्रह कीजिये—

मुखार-विन्द, महर्षि, वचोगुप्ति, अनर्थ, विघ्नेश्वर ।

३—वाक्सयम का महत्व स्पष्ट कीजिये ।

४—इस अवतरण का भावार्थ लिखिये ।

५—इस अवतरण का उपयुक्त शीर्षक सुझाइये ।

(१५)

हे प्रभु, मैं सरल कामो की कामना नही करता ! मेरी प्रार्थना है कि मुझे **सबल मन और प्रचुर क्षमताएँ** मिले ताकि मैं उन सभी कठिन से कठिन कार्यों को कर सकूँ जिनके साथ जीवन मे मेरा वास्ता पड़े । मेरी सहायता करो कि मैं दूसरो की सहायता करके उनका जीवन अधिक सुविधामय और सुखमय बना सकूँ । **मेरी आस्था मेरे साथी मानवो में सदा दृढ़ बनी रहे** चाहे वे मेरे विरुद्ध कुछ भी कहे, कुछ भी करें ।

मुझे शक्ति दो भगवन्, कि मैं इस **स्वर्णिम सूत्र** के अनुसार जीवन यापन कर सकूँ—मेरे आसपास जो हो उन्हे प्रोत्साहित करते रहने का उत्साह मुझमे बना रहे, जो दु खी हो उनके कष्ट का बोझ मैं हलका करता रहूँ और अपने **आनन्द को, अपने हर्ष को दूसरों के साथ बांट कर भोगूँ** ।

मेरी सहायता करो कि ससार मे मैं भी कुछ ऐसा कर सकूँ जिसे **उत्तम योगदान** माना जाय ! मुझे साहस और विश्वास दो कि मैं आपदाओ को मुस्कराहट के साथ झेल सकूँ और सारी वस्तुओ के

उज्ज्वल पक्ष को देखने का गुण प्राप्त कर सकूँ। मेरे अन्दर इस भावना की ज्योति प्रज्ज्वलित रहे। हे प्रभु! मैं सदा **तुम्हारी इच्छा को निष्ठा और निर्भयता के साथ कार्यान्वित कर सकूँ** और मेरा मन सदैव शान्ति से भरा-पूरा रहे।

प्रश्न न० १—मोटे टाइप मे दिये हुए वाक्याशो की व्याख्या कीजिये।
२—इस अवतरण का भावार्थ लिखिये।
३—इसका उपयुक्त शीर्षक सुझाइये।
४—इसमे लेखक क्या प्रार्थना करता है?

पद्यांश

(१)

लक्ष्मी सदैव चलती फिरती, **चपला-सी चमक दिखाती है**।
यह धरती **अचला होने से कब साथ किसी के जाती है**?
मनुजात तुम्हीं जैसे हैं जो हत-भाग्य तुम्हारे ही भाई।
वे भूमि भाग से वंचित हैं तो कहो कौन **उत्तरदायी**?
प्रभु ने यह अवसर दिया तुम्हे जो वस्तु अधिक तुमने पाई।
देकर वह उनके अर्थ उन्हें तुम **बनो समान सदय-न्यायी**।
ले लो यह यश की लूट स्वय जो **टूट सुफलसी आती है**।
यह धरती अचला होने से कब साथ किसी के जाती है।

—दिनकर

प्रश्न न० १—मोटे टाइप मे दिये हुए वाक्यांशो की व्याख्या कीजिये।
२—इस पद्याश का साराश लिखिये।
३—इस कविता द्वारा कवि क्या प्रेरणा देता है?
४—समास-विग्रह कीजिये और बताइये कि निम्नलिखित में कौनसे समास हैं:
हतभाग्य, अचला, मनुजात, भूमिभाग, समान, सदय।
५—लक्ष्मी और अचला की यहाँ कौनसी विशेषता बताई गई है?
६—कवि कौनसा यश लूटने की प्रेरणा देता है और उससे

कौन-कौन से लाभ होने की बात कहता है ?

(२)

कृश कंकाल, नसो के नीले जाल,
अस्थि-पंजर-निष्प्राण, शून्य श्वासो का भार !
यही है वे नादान **भटकते भूले-बाल** ।
दीन-ककाल, **नग्न ककाल** !
कौन सुनता है करुण पुकार ?
किसे रुचता है हाहाकार ?
अरे निर्धन-नादान,
उसे तुम कहते हो भगवान्—
जो बरसाता है जीवन में रोग-शोक दु ख-दैन्य अपार,
जिसने तुमको उदर दिया है और अगारो का संसार !
उसे सुनाने चले पुकार !
भूल गया है ईश्वर जग को पा मादक अधिकार !

—नरेन्द्र शर्मा

प्रश्न न० १—मोटे टाइप मे दिये हुए वाक्याशो का अर्थ स्पष्ट कीजिये ।
२—इस अवतरण मे कवि ने किसका चित्र खीचा है ?
३—इस अवतरण का उपयुक्त शीर्षक बताइये ।
४—कवि के अनुसार ईश्वर के द्वारा ससार को भुला दिये जाने के क्या प्रमाण है ?
५—इस अवतरण का साराश चार पक्तियो मे लिखिये ।
६—निम्नमे कौनसे समास हैं—
मादक-अधिकार, रोग-शोक, दु ख-दैन्य, भूले-बाल, कृश-कङ्काल, निर्धन-नादान, अस्थि-पजर ।

(३)

तर्क ने तर्कों का रण छिड़ा, विचारो से लड रहे विचार !
ज्ञान के कोलाहल के बीच डूबता जाता है ससार ।

और सबका उल्टा परिणाम, बुद्धि का जितना बढ़ता जोर।
आदमी के भीतर की शिरा हुई जाती कुछ और कठोर।
ज्ञान के मरु से चलता हुआ, **आदमी** खोता जाता है।
हृदय के सर का शीतल वारि और कम होता जाता है।
बुद्धि तृष्णा की दासी हुई, मृत्यु का सेवक है विज्ञान।
चेतता तब भी नहीं मनुष्य, विश्व का क्या होगा भगवान्!

—'दिनकर'

प्रश्न नं० १—मोटे वाक्यांशों का अर्थ स्पष्ट कीजिये।
२—उपर्युक्त अवतरण का भावार्थ लिखिये।
३—उपर्युक्त अवतरण में कवि कौनसी चिन्ता व्यक्त करता है?
४—इस चिन्ता का क्या कारण है?
५—उपर्युक्त कविता का शीर्षक बताइये।

(४)

युवक नहीं जो देख संकटों को डर जाता,
वह चकोर ही नहीं कि जो अंगार न खाता,
बलिदानों का पंथ नहीं जिसने पहिचाना,
कह देगा यह कौन कि वह भी है परवाना।
उष्ण रक्त की धार जवानी माँग रही है।
वीरोचित शृंगार जवानी माँग रही है॥

नहीं चाहती आज जवानी **पंकिल यौवन,**
नहीं चाहिये आज जवानी को अल्हड़पन,
आज जवानी माँग रही है यह परिवर्तन,
दर्द एक का बने दूसरे दिल की धड़कन,
मानवता का प्यार जवानी माँग रही है।
वीरोचित शृङ्गार जवानी माँग रही है॥

—हरिप्रसाद शर्मा

प्रश्न न० १—आज जवानी क्या माँग रही है ?
२—युवक किसे कहना चाहिये ?
३—मोटे टाइप मे दिये हुए वाक्याशो का अर्थ बताइये ।
४—उपर्युक्त अवतरण का तात्पर्य लिखिये ।
५—इस अवतरण का शीर्षक बताइये ।

(५)

पत्थर के टुकड़े काटते ही रहो,
जाने कब, कौन मूर्ति बन बोले,
मुस्काए, गाए, जी जागे,
कब यो तप का फल मिल जाए ?
मैं इसलिए तो कहता हूँ—
छैनी कुण्ठित न हो,
हथौडी चलती रहे,
हाथ विश्राम न माँगे
जितनी मूर्तियाँ गढ सकें
उतनी हम गढ डालें,
गढते ही जाएँ !

—राजकुमार शर्मा

प्रश्न न० १—उपर्युक्त कविता का शीर्षक बताइये ।
२—कवि पत्थर के टुकड़े काटते ही रहने की बात क्यो कहता है ?
४—इस कविता का भावार्थ लिखिये ।

(६)

शीतल चन्दन चन्द्रमा, तैसे शीतल सन्त ।
तैसे शीतल सन्त, जगत की ताप बुझावें,
जो कोई आवे जरत, मधुर मुख वचन सुनावें ।
धीरज सील सुभाव क्षमा ना जात बखानी,

कोमल अति मृदु बैन, वज्र को करते पानी ।
रहन चलन मुस्कान ज्ञान को सुगन्ध लगावें,
तीन ताप मिट जाय सन्त के दरसन पावें ।
'पलटू' ज्वाला उदर की रहे न मिटे तुरन्त,
शीतल चन्दन चन्द्रमा तैसे शीतल सन्त ।।

—पलटू साहब

प्रश्न न० १—पलटूसाहब के अनुसार सन्त किसे कहना चाहिये ?
२—सन्त के दर्शन से क्या लाभ मिलता है ।
३—उपर्युक्त पद्यांश का सरल अर्थ कीजिये ।

(७)

प्रभु जू सरन तिहारी आयो
जो कोई सरन तिहारी नाही, **भरम भरम** दुख पायो ।
औरन के मन देवी देवा मेरे मन तुहि भायो ।
जब सो सुरति तुम्हारी जग मे, और न सीस नमायो ।।
नरपति सुरपति आस तुम्हारी, यह सुनिकै मैं धायो ।
तीरथ बरत सकल फल त्यागो चरन कमल चित लायो ।।
नारद मुनि अरु सिव ब्रह्मादिक तेरो ध्यान लगायो ।
आदि अनादि जुगादि तेरो जस वेद **पुरानन** गायो ।।
अब क्यो न बाँह गहो हरि मेरी तुम काहे बिसरायो ।
चरनदास कही करता तूही गुरु सुकदेव बतायो ।।

—चरनदास

प्रश्न न० १—उपर्युक्त पद का सरलार्थ लिखिये ।
२—मोटे टाइप मे दिये हुए वाक्यांशो का अर्थ लिखिये ।
३—निम्नलिखित शब्दो के तत्सम रूप बताइये ।
सरन, भरम, सिव, सुरति, सीस, नरपति, तीरथ, बरत, चरन, जस ।
४—इस पद का शीर्षक लिखिये ।

(८)

ली जाच प्रेम ने वहुत मगर वापू ! तू सदा खरा उतरा ।
शूली पर से भी वार वार, तू नूतन जोति भरा उतरा ।
प्रेमी की यह पहचान **परुषता** को न जीभ पर लाते है,
दुनियाँ देती है जहर किन्तु वे सुधा छिडकते जाते हैं ।
जाने कितने **अभिशाप** मिले, कितना है पीना पडा गरल,
तव भी नयनों में ज्योति हरी, तव भी मुख पर मुस्कान सरल ।
सामान्य मृत्तिका के पुतले, हम समझ नही कुछ पाते हैं,
तू ढो लेता किस भाँति पाप जो हम दिन रात कमाते हैं ।
कितना विभेद ! हम भी मनुष्य पर **तुच्छ स्वहित में सदा लीन,**
पल पल चचल व्याकुल **विषण्ण, लोह के तापो के अधीन ।**
पर, तू पापो से परे **कामना-जयी** एकरस **निर्विकार,**
पृथ्वी को शीतल करता है, **छायाद्रुम-सी बाहें पसार ।**

—दिनकर

प्रश्न न० १—उपर्युक्त कविता का सरलार्थ लिखिये ।

२—मोटे वाक्याशो का अर्थ स्पष्ट कीजिये ।

३—इस कविता का शीर्षक लिखिये ।

४—निम्नलिखित शब्दो को अपने वाक्यो मे प्रयुक्त कीजिये—
परुषता, सुधा, एकरस, छायाद्रुम, मृत्तिका, कामना-जयी और विभेद ।

५—कवि ने इस अवतरण मे गाधीजी के कौन-कौन से गुणो का उल्लेख किया है ?

(९)

वे नृशस है, वे जन के श्रम वल से पोषित,
दुहरे धनी, जोक जग के हैं, भू उनसे शोषित,
नही जिन्हे करनी श्रम से जीविका उपार्जित,
नैतिकता से भी रहते जो अत अपरिचित,
शय्या की क्रीडा-कन्दुक है जिनको नारी,

अहमन्य वे मूढ अर्थ-बल के व्यभिचारी।
सुराङ्गना सम्पदा सुराओ से ससेवित,
नर पशु है वे—भार मनुजता जिनसे लज्जित।
दर्पी, हठी, निरकुश, निर्मम, कलुषित, कुत्सित,
गत-सस्कृति के गरल, लोक-जीवन जिनसे मृत।
जग जीवन का दुरुपयोग है उनका जीवन,
अब न प्रयोजन उनका, अन्तिम है उनके क्षण।

—सुमित्रानन्दन पन्त

प्रश्न न० १—उपर्युक्त कविता का शीर्षक लिखिये।
२—निम्नलिखित शब्दो के अर्थ लिखिये और उन्हे वाक्यो मे प्रयुक्त कीजिये—
निरकुश, सुरागना, ससेवित, कन्दुक, शोषित, गरल, प्रयोजन, कलुषित, कुत्सित, अर्थ-बल।
३—इस कविता मे किसकी भर्त्सना की गई है और क्यो ?
४—इस कविता का आशय पांच पक्तियो मे लिखिये।

(१०)

रहिमन निज मन की व्यथा, मन ही राखो **गोय**,
सुनि **इठलैहैं** लोग सब, बाँटि न लैहे कोय।
रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहिं,
उनसे पहिले वे मरे, जिन मुख निकसत नाहिं।
रहिमन राज सराहिये, शशि सम सुखद जो होय,
कहा बापुरो भानु जो तप्यो **तरैयन** खोय।
मथत मथत माखन रहे, दही मही **बिलगाय**,
रहिमन सोई मीत है, **भीर** पडे ठहराय।
छमा बडन को चाहिए **छोटन** को उत्पात,
का रहीम हरि को घट्यो जो भृगु मारी **लात**।

प्रश्न न० १—उपर्युक्त दोहो का सरल अर्थ लिखिये।
२—मोटे टाइप मे दिये हुए शब्दो का अर्थ लिखिये।

३—उपर्युक्त पाँचो दोहो का सार एक एक वाक्य मे लिखिये ।

४—निम्नलिखित के तत्सम रूप लिखिये :

छमा, मीत, बडन, माखन और दरसन ।

(११)

छोड नही सकते रे यदि जन
जाति, वर्ग औ धर्म के लिए रक्त बहाना,
बर्बरता को सस्कृति का बाना पहनाना—
तो अच्छा हो छोड दें अगर
हम हिन्दू, मुस्लिम और ईसाई कहलाना ।
मानव होकर रहे धरा पर,
जाति वर्ण धर्मों से ऊपर
व्यापक मनुष्यत्व मे बन्धकर !
नही छोड सकते रे यदि जन
देश, राष्ट्र, राज्यो के हित नित युद्ध कराना
हरित जनाकुल धरती पर विनाश बरसाना—
तो अच्छा हो छोड दें अगर
हम अमरीकन, रूसी व इगलिश कहलाना
देशों में आप धरा निखर
पृथ्वी हो सब मनुजो का घर
हर उसकी सन्तान बराबर ।

प्रश्न न० १—मोटे टाइप मे दिये हुए वाक्याशो की व्याख्या कीजिये ।

२—इस कविता का कोई उपयुक्त शीर्षक सुझाइये ।

३—अन्तिम आठ पक्तियो का सरल अर्थ लिखिये ।

४—इन पक्तियो मे कवि क्या उद्‌बोधन देना चाहता है ? समझाकर लिखिये ।

५—कवि जाति, वर्ग, धर्म तथा रूसी, अमरीकन, इगलिश कहलाना छोड़ने का आग्रह क्यो करता है ?

(१२)

वह इष्ट देव के मन्दिर की पूजा-सी
वह **दीप-शिखा सी-शान्त,** भाव मे लीन
वह **क्रूर काल ताण्डव की स्मृति-रेखा-सी,**
वह **टूटे तरु की छटी लता-सी-दीन**
दलित भारत की ही विधवा है ।
षड् ऋतुओ का शृगार,
कुसुमित कानन मे नीरव पद-सञ्चार
अमर कल्पना मे स्वच्छन्द विहार—
व्यथा की भूली हुई कथा है
उसका एक स्वप्न अथवा है ।
उसके मधु-सुहाग का दर्पण
जिसमे देखा था उसने
बस एक बार बिम्बित अपना जीवन-धन
अवल हाथो का एक सहारा—
लक्ष्य जीवन का प्यारा वह ध्रुवतारा
दूर हुआ वह वहा रहा है
उस **अनन्त-पथ** से करुणा की धारा ।

प्रश्न न० १—मोटे टाइप मे दिये हुए वाक्यांशो की व्याख्या कीजिये ।
२—इस अवतरण से कवि ने भारतीय विधवा का करुण चित्र खीचने का प्रयत्न करते हुए कौन-कौन सी उपमाओ का प्रयोग किया है ? लिखिये ।
३—इस अवतरण के आधार पर विधवा जीवन की करुणा का वर्णन कीजिये ।
४—उपर्युक्त अवतरण का उपयुक्त शीर्षक सुझाइये ।
५—समास-विग्रह कीजिये और बताइये कि इन पदो मे कौन-कौन से समास हैं :

अनन्त-पथ, जीवन-धन, ध्रुवतारा, मधु-सुहाग, इष्ट-देव, स्मृति-रेखा, काल-ताण्डव, दीप-शिखा ।

(१३)

जैसी मुख ते नीकसे, तैसी चाले चाल ।
पार ब्रह्म नेडा रहे, पल मे करे निहाल ॥
जेती देखो आतमा, तेता सालिगराम ।
साधू प्रतषि देव है, नही पाथरसूँ काम ॥
कबीर माला काठ की, कहि समझावे तोहि ।
मन न फिरावे आपणा, कहा फिरावे मोहि ॥
चतुराई हरि ना मिले, **एँ बाता की बात** ।
एक निसप्रेही निरधार का, गाहक गोपीनाथ ।
काची काया मन अथिर, थिर थिर काम करँत ।
ज्यूँ ज्यूँ नर निधडक फिरे, **त्यूँ-त्यूँ काल हसँत** ।

प्रश्न न० १—मोटे टाइप मे दिये हुए वाक्याँशो का सरल अर्थ लिखिये ।
२—कबीर साहब के उपदेशो का साराँश अपने शब्दो मे लिखिये ।
३—प्रत्येक दोहे का अलग-अलग शीर्षक सुझाइये ।
४—उपर्युक्त दोहो मे कबीर ने किस प्रकार के आचरण पर बल दिया है ?
५—तत्सम रूप लिखिये—
गाहक, निरधार, काची, थिर, अथिर, काठ, पाथर, प्रतखि, आतमा ।

(१४)

कौन है जो मौन है मन मे मेरे,
और मुसकराता है,
आंख करना चाहता हूँ चार,
वह नजरें चुराता है !

हर सुबह मे जब उघडती आँख,
लगता है कि बैठा सिरहाने ।
हर उदय मे शक्ति देता,
यामिनी मे स्नेह गाता है ।
कौन है जो मौन है मन मे मेरे,
और मुसकराता है ।
कभी लगता किसी क्षण मे
कि मानो बरजता है—यह न कर,
किसी क्षण मे धीर देता है
कि, **तरना है तो धारा से न डर;**
फिर किसी क्षण हर द्विधा से
दीन करके **आपको ऊपर उठाता है**
कौन है जो मौन है मन मे मेरे
और मुसकराता है ।

प्रश्न नं० १—मोटे टाइप मे दिये हुए वाक्याशों का अर्थ समझाइये ।
२—इस कविता का भावार्थ लिखिये ।
३—इस कविता का कोई उपयुक्त शीर्षक सुझाइये ।
४—ऐसी कौन-कौनसी बातें हैं जिनसे कवि को किसी अव्यक्त परोक्षा सत्ता की अनुभूति होती है ?

(१५)

लोहे के पेड हरे होंगे, तू गान प्रेम के गाता चल ।
नम होगी यह मिट्टी आँसू के कण बरसाता चल ।
सिसकियों और चीत्कारो से जितना भी हो आकाश भरा ।
ककालो का हो ढेर, **खप्परों से चाहे हो पटी धरा ।**
आशा है स्वर का भार, पवन को लेकिन लेना ही होगा ।
जीवित स्वप्नों के लिए मार्ग मुर्दों को देना ही होगा ।
रगो के सातो घट उँडेल यह अँधियाली रग जायेगी ।

ऊषा को सत्य बनाने को, जावक नभ पर छितराता चल ।
आदर्शों से आदर्श भिडे, **प्रज्ञा प्रज्ञा पर टूट रही ।**
प्रतिभा प्रतिभा से लडती हैं **धरती की किस्मत फूट रही ।**
आवर्तों का है विषम जाल, **निरुपाय बुद्धि चकराती है ।**
विज्ञान सान पर चढी हुई, **सभ्यता डूबने जाती है ।**
जब जब मस्तिष्क जयी होता, ससार ज्ञान से जलता है ।
शीतलता की है राह हृदय, तू यह सवाद सुनाता चल ।

प्रश्न न० १—उपर्युक्त अवतरण मे कवि ने किन खतरो की ओर सकेत किया है ?

२—कवि के अनुसार इन खतरो का सामना कैसे किया जा सकता है ?

३ – मोटे टाइप मे दिये हुए वाक्याशो का अर्थ लिखिये ।

४—इस कविता का साराश तीन अथवा चार पक्तियो मे लिखिये ।

५—अन्तिम चार पक्तियो का सरल अर्थ लिखिये ।

शैली

शैली का साधारण अर्थ है 'ढग', 'प्रणाली' या 'तरीका' । बाबू श्यामसुन्दरदासजी के अनुसार 'रचना-चमत्कार का नाम ही शैली है ।' वस्तुत शैली उस अभिव्यक्ति प्रणाली को कहते हैं जिसके द्वारा कोई रचना प्रभावोत्पादक, आकर्षक और रमणीय बन जाती है । इस परिभाषा के अनुसार शैली के अन्तर्गत ध्वनि, शब्द-शक्ति, रीति, अलकार सब आ जाते हैं । यद्यपि इन सब मे से कोई शब्द मे चमत्कार पैदा करता है और कोई अर्थ मे, कोई शब्द और अर्थ दोनो मे ही चमत्कार पैदा करता है तथापि जिनका सम्बन्ध शब्द से आता है उनका सम्बन्ध अर्थ मे आये बिना नही रहता । क्योकि शब्द और अर्थ का सम्बन्ध अविच्छेद्य है । अत अभिव्यक्ति की प्रणाली चाहे शब्दगत हो, चाहे अर्थगत, वह अभिव्यक्ति के सौन्दर्य को बढाने का कार्य करती ही है ।

यद्यपि भाषा का आश्रय हम आत्म-प्रकाशन और विचार-विनिमय के लिए ही लेते हैं, तथापि अपनी सौन्दर्य-भावना के कारण हम इस कार्य को भी सजावट और सुन्दरता के साथ करना चाहते है। सजावट और सौन्दर्य-प्रियता हमारा स्वभाव है। किसी भी बात को, किसी भी वस्तु को उसके नग्न रूप मे रख देना हमे अच्छा नही लगता। यही कारण है कि वक्ता या लेखक अपनी बात को सुन्दर और नपे-तुले शब्दो मे कहना चाहता है ताकि उसका अभीष्ट परिणाम हो। लेखक या वक्ता जहा एक ओर अपने विचार ठीक तरह से अभिव्यक्त करना चाहता है, उन्हे सजाकर दूसरो के सामने रखना चाहता है, वहा दूसरी ओर वह यह भी चाहता है कि वे सुनने वाले या पढने वाले को अच्छे लगें और उनका अभीष्ट प्रभाव पडे। यही शैली का कलात्मक रूप है। शैली का यह कलात्मक रूप प्राप्त करने के लिए लेखक जहा पाठक की रुचि का ध्यान रखता है, वहा शब्द-शक्ति का पूरा-पूरा ज्ञान भी प्राप्त करता है और व्याकरण के नियमो का पालन, अनुच्छेदो का सघठन, क्रिया-पदो का उपयोग, विशेषणो का चयन तथा शुद्ध वाक्यो की रचना आदि महत्त्वपूर्ण बातो का भी ध्यान रखता है। मतलब यह है कि लेखक अपने विचार, भाव या अनुभूति को इतने सुन्दर, आकर्षक और प्रभावोत्पादक ढग से अभिव्यक्त करना चाहता है कि पाठक के सामने एक चित्र-सा खिच जाय। इस दृष्टि से "शैली उस कला-पूर्ण साधन का नाम है जो रमणीय, आकर्षक एव प्रभावोत्पादक रूप से रचना के समस्त सरस तत्त्वो की अभि-व्यक्ति मे अभिनव तथा उचित शक्ति का सञ्चार करता है।"

शैली का महत्त्व

एक अग्रेज-साहित्यकार के अनुसार "शैली ही मनुष्य है और मनुष्य ही शैली है।" शैली के वैचित्र्य एव महत्त्व के सम्बन्ध मे ये विचार बडे महत्त्वपूर्ण हैं। वस्तुत प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव, प्रत्येक व्यक्ति की रुचि और प्रत्येक व्यक्ति की प्रवृत्ति दूसरे व्यक्ति के स्वभाव, रुचि और प्रवृत्ति से भिन्न होती है। अत जब वह किसी

भी वस्तु को देखता है तथा उसके सम्बन्ध मे अपने विचार अभिव्यक्त करता है तो विभिन्नता आ ही जाती है। यदि लेखक विचारशील और गम्भीर है तो वह वस्तुओ को गम्भीरता से और विचार-पूर्वक देखेगा। फिर उसकी शैली मे उथलापन नही आ सकेगा। उसकी शैली स्वभावतः गम्भीर और विचारात्मक होगी। किन्तु दूसरी ओर यदि लेखक विनोद-प्रिय और चचल-स्वभाव का होगा तो वह वस्तुओ को उडती हुई नजर से ही देखेगा और उसकी शैली मनोरजन एव हास्यरस प्रधान ही होगी। अत शैली से मनुष्य को और मनुष्य से शैली को पहिचानना कठिन नही होता है। व्यक्ति और शैली का घनिष्ठ सम्बन्ध है। शैली लेखक की शब्द-साधना और कौशल का परिणाम है। उसमे लेखक के विचार, अनुभूति, रुचि, चरित्र, स्वभाव, सस्कार सब कुछ चित्रित हो जाते हैं। शैली मानो व्यक्ति का प्रतिबिम्ब ही है।

शैली जहाँ व्यक्ति के स्वभाव, रुचि, कौशल और शब्द-साधना का परिणाम होती है, वहाँ व्यक्ति की अनुभूतियो की तीव्रता का भी उस पर कम प्रभाव नही होता। लेखक जब किसी भावना को बडी तीव्रता से अनुभव करता है तो उसको उसी तीव्रता से अभिव्यक्त करने के लिए भी उतावला-सा हो उठता है। अनुभूति की तीव्रता के साथ अभिव्यक्ति की तीव्रता भी आ ही जाती है। मीराँ, कबीर और तुलसी जैसे सन्त शब्द-साधना के फेर मे पडकर उच्च-कोटि के कवि नही बने। उनके मन मे भक्ति की लहर बडे जोर से उठी और दुनियाँ के प्रति विरक्ति तथा भगवान् के प्रति प्रेम की भावना इतनी तीव्र बन गई कि अनुभूति की वह तीव्रता शब्दों मे उतरे बिना न रह सकी। इसी प्रकार जब किसी लेखक के मन मे करुणा, क्रोध, उत्साह, विरक्ति, प्रेम आदि किसी भी भाव की प्रबलता होती है तो वह उसे उसी प्रबलता के साथ अनुभव करवाने के लिए शक्तिशाली भाषा की खोज करता है। यह शक्तिशाली भाषा की खोज ही उसे शैली के पास ले जाती है। शैली भाषा को शक्तिशाली और प्रभावपूर्ण बनाती है। शैली की यह शक्ति बहुत बडे कार्य करने की क्षमता रखती है। शैली ने अनेक पतितो को सदाचारी बनाया है, असाधुओ को साधु बनाया है, अनेक

कजूसो को उदार बनाया और अनेक अकर्मण्य लोगो को कर्मवीर बनाया है। तलवार, बन्दूक या एटम की शक्ति भी जिस काम को नही कर सकी उसी को शैली ने कर दिखाया है।

कला-पक्ष

कोई भी साहित्यकार अपनी अनुभूतियाँ या मनोवेगो को भाषा का परिधान पहिनाकर लोगो के सामने रखता है। इसी को हम साहित्य कहते हैं। इस साहित्य के दो पक्ष होते हैं—भाव-पक्ष और कला-पक्ष। भाव-पक्ष के अन्तर्गत बुद्धितत्त्व, भावतत्त्व और कल्पना-तत्त्व आते हैं तथा कला-पक्ष के अन्तर्गत शैली। जब लेखक किसी विषय पर लिखने के लिए तैयार होता है तो पहिले बुद्धि से काम लेता है और अपने विषय की सीमा निर्धारित कर लेता है। वह यह तय करता है कि लोगो के सामने उसे कौन-कौन-सी बाते रखनी हैं और कितनी। यही बुद्धि-तत्त्व या ज्ञान-तत्त्व है। इस तत्त्व का सहारा लिए विना कोई भी साहित्यकार कलम नही उठाता। इसके बाद वह विषय के साथ हृदय का सम्बन्ध स्थापित करता है। यह रचना का दूसरा तत्त्व है। इसे भाव-तत्त्व या हृदय-तत्त्व कहा जाता है। साहित्य-निर्माण का कार्य इस तत्त्व के बिना हो ही नही सकता। चाहे कहानी हो या कविता और चाहे नाटक हो या उपन्यास जब तक उसमे कोई मुख्य सवेदना नही होती, तब तक वह जैसे बेजान रहती है। तीसरा तत्त्व है—कल्पना-तत्त्व। कल्पना के सहारे लेखक ऐसी बातें दिखाने का प्रयत्न करता है जो किसी ने देखी नही हैं, ऐसी बातें सुनाने का प्रयत्न करता है जो किसी ने सुनी नही हैं और ऐसी अनुभूतियो का चित्र खीच देता है जिसको उसने कभी अनुभव नही किया है। अत कल्पना-तत्त्व के द्वारा रचना मे बल आ जाता है। ये तीनो तत्त्व मिलकर भाव-पक्ष को सबल बनाते हैं। यह भाव-पक्ष काव्य, कहानी, उपन्यास या नाटक की आत्मा होता है। उसका शरीर है कला-पक्ष। कला-पक्ष की सहायता से भाव-पक्ष के सौन्दर्य का दर्शन होता है। उसके सौन्दर्य को बढाने और

टिकाने के काम मे कलापक्ष का महत्त्व निर्विवाद है। इस कलापक्ष को ही हम शैली कह सकते हैं।

शैली और अलङ्कार

ऊपर कहा जा चुका है कि मनुष्य सौंदर्य-प्रेमी है। सौंदर्य-प्रियता मानव-स्वभाव है। एक सुन्दर से फूल या रङ्ग-विरगे खिलौने को देखकर छोटा-सा वालक भी अपने को भूल-सा जाता है और उसे प्राप्त करने की धुन मे इस वात का विचार ही नही करता कि फूल तालाव के वीचो-वीच है या खिलौना आग के पास रखा हुआ है। यह सौंदर्य प्रियता उसे सुन्दरता का उपासक वना देती है और जहाँ भी उसे कुरूपता दिखाई देती है उसे हटाकर सुन्दरता की प्रतिष्ठा करने का प्रयत्न करता है। सौंदर्योपासना के इस कार्य मे अलङ्कार उसकी वडी सहायता करते हैं। वस्तुतः किसी सुन्दर और सजी-सजाई वस्तु को और सजाने की आवश्यकता नही होती है। सजाया तो उसी को जाता है जिसमे सुन्दरता नही है। लेकिन यह मानव-स्वभाव ही है कि जो चीज स्वाभाविक रूप से सुन्दर होती है उसे भी हम सजाने का प्रयत्न करते है और उसकी शोभा को और ज्यादा वढाकर मानसिक तृप्ति का अनुभव करते हैं। फूल सुन्दर है किन्तु उसको गुलदस्ते मे सजाकर किसी भी कमरे की मेज पर रख देते हैं और उससे कमरे की शोभा वढ़ जाती है। सुन्दर स्त्री की वेणी मे फूल माला, ललाट पर विन्दी, आँखो मे काजल और हाथो मे मेहदी उसके सौंदर्य को और ज्यादा वढा देते है। अत कुरूप को सजाने के लिए ही नही सुरूप को और ज्यादा सुन्दर वनाने के लिए भी अलङ्कार का प्रयोग किया जाता है। अलङ्कार स्वाभाविक सुन्दरता को और ज्यादा वढा देते है। भाषा के क्षेत्र मे भी अलङ्कार वही चमत्कार दिखाते हैं। वे भाषा के सौंदर्य मे अभिवृद्धि कर देते है। उनके द्वारा गूढ भावो को समझना सरल हो जाता है, भाषा मे प्रवाह आ जाता है और विषय का ऐसा चित्र स्मृति-पटल पर खिंच जाता है कि वर्षों तक भुलाया नही जाता। अनुप्रास, रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, श्लेष, यमक इस कार्य

मे लेखक की बडी सहायता करते हैं और उसका मार्ग सरल बना देते हैं। इस प्रकार के अलङ्कारो का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है (१) सादृश्य-मूलकता, (२) विरोधमूलकता तथा (३) समीपता। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि ऐसे बहुत से अलङ्कार हैं जो किसी बात को स्पष्ट करने के लिए उससे मिलती-जुलती किसी दूसरी बात को सामने रखते है। इस प्रकार की सादृश्यता गुणो पर ध्यान रखकर ही बताई जाती है । उदाहरण के लिए 'जब वह मैदान मे आया तो लोग इस प्रकार भाग गये जैसे कोई शेर आया हो।' दूसरी प्रकार के ऐसे भी कुछ अलङ्कार है जो व्यक्ति या पदार्थ के गुण-अवगुण अथवा विरोध का सहारा लेकर स्पष्ट करते हैं। जैसे : "अब तुम निरे बालक नही रहे जो प्रत्येक बात तुम्हे समझाई जाय।" तीसरी प्रकार के अलङ्कार वे हैं जिनमे सामीप्य भावो से किसी शब्द का अर्थ-बोध कराया जाता है । जैसे "आजकल उसकी पाँचो उँगलिया घी मे हैं।" इस प्रकार ये तीनो प्रकार के अलङ्कार अपने-अपने ढङ्ग से भाषा के सौंदर्य को बढाते है। अत. शैली मे अलङ्कार का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है।

शैली और सगीत

अलङ्कार के द्वारा जिस सौंदर्य की अभिवृद्धि होती है वह केवल शब्दो की आकृति या बनावट का सौंदर्य नही होता । वह शब्दो की ध्वनियो तथा अर्थो के सामञ्जस्य का सौंदर्य भी होता है। प्रत्येक शब्द के एक या उससे अधिक अर्थ तो होते ही हैं, उसकी अपनी ध्वनि भी होती है। लेखक उसके अर्थ और ध्वनि मे सामञ्जस्य पैदा करने का प्रयत्न करता है। लेखक इस कार्य मे जितना अधिक सफल होता है पाठको के हृदय को आनन्द विभोर बनाने की उतनी अधिक कला भी उसे सधती है। स्वय मानव की रचना ही विभिन्न तत्वो के सामञ्जस्य से हुई है। अत उसकी आत्मा सदैव उसी साम्य, उसी सामञ्जस्य को खोजती रहती है। यह सामञ्जस्य या साम्य उसे शैली और सङ्गीत दोनो मे मिलता है। जिस प्रकार शैली हमारी ज्ञानेन्द्रियो का विषय

है और शैली का आनन्द ज्ञानेन्द्रियो को ही प्राप्त होता है, उसी प्रकार सङ्गीत भी ज्ञानेन्द्रिय का ही विषय है। जब गायक वाद्य की ध्वनि मे अपने कण्ठ की ध्वनि मिलाकर उसके साथ एक रूप बन जाता है तब श्रोता भी मन्त्रमुग्ध-सा हो जाता है और अपनी ज्ञानेन्द्रियो को चारो ओर से समेट कर उसी मे लगा देता है। आदमी ही नही साँप, हरिण आदि जानवर तक सङ्गीत पर मुग्ध होकर अपने प्राण भी न्योछावर कर देते हैं। किसी वाद्य से निकले हुए स्वर मे जो मोहकता होती है वही मोहकता ध्वनि-साम्य मे होती है, जो शैली का एक प्रमुख गुण होता है और जिसके कारण शैली मे सजीवता आती है। शैली भावुक हृदय का सङ्गीत है। उस सङ्गीत का आनन्द रसिक लोग सदैव लेते रहते है।'

शैली और मनोविज्ञान

मनोविज्ञान वह विद्या है जो मानव-हृदय की कल्पनाओ, अनुभूतियों, और उमगो का विश्लेषण करती है तथा उनके कारणो का पता लगाती है। मनोविज्ञान का सम्बन्ध अन्तर्जगत से है। वह बताता है कि हमारी मूल प्रवृत्तियाँ क्या हैं, सवेग क्या है, विचार और कल्पना क्या हैं, वे क्यो और कैसे उत्पन्न होते हैं तथा किन सिद्धान्तो के अनुसार चलते हैं। मनोविज्ञान के इन सिद्धान्तो का महत्त्व अब दिन-प्रति-दिन साहित्य मे बढता जा रहा है। अब मनोविज्ञान के सिद्धान्तो के प्रकाश मे ही लेखक की चिन्तन-धारा का परीक्षण एव विश्लेषण किया जाता है। इधर 'शैली ही मनुष्य है' वाले सिद्धान्त के अनुसार लेखक का व्यक्तित्व शैली मे रहता है। अत शैली के अध्ययन से मनोविज्ञान के अध्ययन मे बडी सहायता मिलती है। इस सम्बन्ध मे एक और महत्त्व की बात यह है कि प्रत्येक वस्तु की एक-सी अनुभूति नही होती, प्रत्येक व्यक्ति का ज्ञान समान नही होता। इसी कारण प्रत्येक व्यक्ति की अभिरुचि और वृत्ति भी अलग-अलग ही होती हैं। परिणाम यह होता है कि दुनिया को देखने का दृष्टिकोण भी सबका अलग-अलग ही होता है। बस यही कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति की चिन्तन-प्रणाली भिन्न-

भिन्न होती है और उसकी शैली मे भी भिन्नता होती है। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि व्यक्ति की अभिरुचि, वृत्ति और विचार-धारा का प्रभाव उसकी रचना मे आये बिना नही रहता है। यदि उसे छिपाकर कोई नाटक, कहानी, कविता या उपन्यास लिखना चाहे तो भले ही उसे थोडी देर तक सफलता मिल जाय, वह स्थायी नही होगी और अस्वाभाविकता का जो आवरण उसने डाला है वह दूर हुए बिना न रहेगा। इसीलिए तो यह कहा जाता है कि लेखक की शैली पर उसकी मनोवृत्तियो की, व्यक्तित्व की छाप अमिट रहती है।

हमारी मनोवृत्तियाँ दो प्रकार की होती है—रूढ और उदार। ऐसी मनोवृत्तियाँ जो परम्परागत होने के कारण मजबूत बन गई हैं रूढ मनोवृत्तियाँ कही जाती हैं। ये रूढ मनोवृत्तियाँ धीरे-धीरे व्यापक बन कर देशीय और जातीय बन जाती हैं और सारे देश और सारी जाति की मनोवृत्ति का प्रतिनिधित्व करती हैं। उदाहरण के लिए राम-कृष्ण का पावन-चरित्र, हिन्दू-धर्म की पवित्रता, पतित-पावनी भागीरथी की अघनाशिनी शक्ति, वेदो की प्राचीनता आदि ऐसी अनेक बातें हैं जिन्हे कोई भी भारतीय श्रद्धा के साथ मानता है। इसी प्रकार प्रताप, शिवाजी, झाँसी की रानी और गाधीजी भी हमारे समूचे समाज व देश के श्रद्धा-भाजन है। इनके साथ जुडे हुए विचार और भावनाएँ हमारे मानस पर जबरदस्त प्रभाव डालते है। ये धार्मिक, सामाजिक एव जातीय मनोवृत्तियाँ हमारे जन-जीवन मे रूढ हो गई हैं। अत अपने देश, समाज, जाति और धर्म के प्रति श्रद्धा-भावना रखने वाला कोई भी व्यक्ति, इन मनोवृत्तियो के प्रभाव से अछूता नही रह सकता। दूसरे प्रकार की मनोवृत्तिया उदार कही जाती है। हमारे अपने धर्म, धार्मिक पुरुष, इतिहास, परम्परा आदि का आदर तो हम करते ही है किन्तु जब हम विदेशी धर्म, इतिहास और परम्परा के सम्पर्क मे आते हैं तो उनकी भी बहुत-सी अच्छी बातें हमे आकर्षित करती है और उनके महापुरुषो, धर्म, सस्कृति, सभ्यता आदि के प्रति हमारे मन मे आदर की भावना पैदा हो जाती है। अत विदेशी भावनाओ के सम्पर्क मे आने से हमारे मानस मे जिन वृत्तियो का उदय होता

है उन्हे उदार मनोवृत्तियाँ कहा जाता है। पुराने जमाने की अपेक्षा अब तो सम्पर्क के अवसर ज्यादा उपलब्ध हैं। आज का जमाना ही अन्तर्राष्ट्रीयता का जमाना कहा जाने लगा है और रेल, तार, डाक, वायुयान, रेडियो आदि ने पारस्परिक मेल-जोल एव आदान-प्रदान को अधिक सुगम बना दिया है। अत आज के लेखको की रचनाओ पर हमे इस प्रकार की उदार मनोवृत्तियो का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। यह एक अच्छा लक्षण है। उदार मनोवृत्तियो का प्रभाव जिस साहित्य पर जितना अधिक पडता है वह उतना ही विश्व-रचनाओ का महत्त्वपूर्ण अग बनता है और जिस लेखक की रचनाओ मे इन उदार मनोवृत्तियो का प्रभाव अधिक होता है वह उतना ही अधिक अच्छा लेखक माना जाता है। इन दोनो मनोवृत्तियो के अतिरिक्त लेखक पर पुराने और नये लेखको की रचनाओ का भी प्रभाव पडता है—फिर चाहे प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता हो, चाहे न दिखाई देता हो। इस प्रभाव के कारण नई नई शैलियो का जन्म होता है और लेखको की प्रतिभा को विकास का समुचित अवसर मिलता है।

शैली के उपादान

शैली की उद्भावना दो प्रकार के उपादान तत्त्वो से होती है—बाह्य तत्त्व तथा आभ्यन्तरिक तत्त्व। बाह्य तत्त्वो के अन्तर्गत (१) ध्वनि (२) शब्द (३) वाक्य (४) अनुच्छेद (५) प्रकरण और (६) चिह्न आते हैं। यहाँ हम पहले शैली के इन बाह्य उपादानो पर ही विस्तार से विचार करेंगे।

(१) बाह्य उपादान

(अ) ध्वनि—शैली के बाह्य उपादान तत्त्वो मे महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। प्रत्येक शब्द अपनी ध्वनि रखता है। शब्द उस ध्वनि का साकार रूप ही तो है। अत शब्दो के ध्वनि-समूहो से वाक्यो की रचना होती है। ध्वनियो के प्रयोग मे सबसे पहले इस बात का ध्यान रखना होता है कि ध्वनियाँ श्रुतिकटु न हो। श्रुतिकटु ध्वनियो

से पाठक ऊब जाता है। वह ऐसी रचना पसन्द करता है जो श्रुति-मधुर हो। श्रुति-कटुत्व के दोष से अपनी रचना को बचाये रखने के लिए लेखक को ट-वर्ग, रेफयुक्त वर्णों तथा द्वित्व वर्णों के प्रयोग से जहाँ तक सभव हो बचे रहना चाहिये। इसी प्रकार वर्ग के प्रथम वर्णों का द्वितीय के साथ तथा तृतीय का चतुर्थ के साथ सयोग भी कम से कम हो, इस बात का ध्यान रखना चाहिये। भाषा मे श्रुति-कटुत्व न आने देने के साथ-साथ ध्वनियो की प्रसगानुकूल योजना का भी ध्यान रखना चाहिये। यदि मधुर और कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति की जा रही हो तो उसमे ध्वनि-लालित्य और श्रुति-कोमलता का ध्यान रखना आवश्यक होता है। यदि युद्ध का वर्णन करना हो और उसके लिए उग्र एव उद्धत भावनाओ की अभिव्यक्ति आवश्यक हो, तो ओजपूर्ण ध्वनियो का प्रयोग करना चाहिये। साराश यह कि ध्वनि-योजना प्रसग के अनुकूल होनी चाहिये।

(आ) **शब्द योजना**—दो या दो से अधिक शब्दो के समूहो से वाक्य बनता है। जिस प्रकार प्रत्येक अक्षर और शब्द की अपनी ध्वनि होती है और अच्छी शैली मे ध्वनि का ध्यान रखना आवश्यक होता है उसी प्रकार शब्दो के अनेक अर्थ भी होते हैं और उनका ध्यान रखे बिना रचना सुन्दर नही बन सकती। लेखक सार्थक शब्दो के द्वारा ही तो अपनी भावनाओ की अभिव्यक्ति करता है। ये सार्थक शब्द ही वे साधन है जिनके बल से लेखक दूसरे व्यक्तियो के हृदय तक पहुँचता है और उनकी प्रसुप्त भावनाओ को जाग्रत करता है। ऐसी स्थिति मे यदि लेखक शब्द-योजना का पूरा-पूरा ध्यान न रखे तो अपने उद्देश्य मे सफल नही हो सकता। शब्द के सही अर्थ का ज्ञान उपयुक्त शब्दो का सचय तथा यथास्थान उनका प्रयोग अच्छे लेखक के गुण हैं। इससे उसकी शैली शक्तिशाली बनती है। शब्द-योजना के अन्तर्गत व्याकरण का अध्ययन भी आता है। व्याकरण के अनुसार शब्दो के तीन भेद होते हैं—सज्ञा, विशेषण तथा क्रिया-पद। इनके समुचित अध्ययन से मालूम हो जायगा कि किस शब्द का प्रयोग किस विचार अथवा भाव के लिए हुआ है। एक ही बादल को—अभ्र, धारा-

घर, बलाहक, घन, जलधर वारिद, जीमूत, नीरद, वारिधर, पयोद, अम्बुद, पयोधर पुरजन, जगजीवन आदि नामो से पुकारा जाता है। किन्तु प्रत्येक नाम के साथ एक इतिहास है, एक विशेष भाव है। यदि इस भाव की उपेक्षा करके कोई धाराधर के स्थान पर अभ्र और अभ्र के स्थान पर धाराधर लिख दे तो विद्वानो की मण्डली मे उसकी मजाक ही उडाई जायगी। इसी प्रकार विशेषण और क्रिया-पद का प्रयोग भी सोच-विचार कर करना चाहिये। एक बात और ध्यान रखने योग्य यह है कि जहाँ तक हो सके प्रान्तीय भाषा के शब्दो से बचना चाहिये। विदेशी शब्दो के प्रयोग से भी बचे रहना चाहिये। यदि हम फारसी, अरबी, अग्रेजी, फ्रेंच और लेटिन भाषा के शब्दो का धडाधड प्रयोग करने लगें तो पाठक को उन्हे समझने मे कठिनाई होगी। इससे शैली का समुचित प्रभाव लोगो पर नही पड सकेगा और शैली दोषपूर्ण बन जायेगी।

(इ) **वाक्य-योजना**— शैली का तीसरा महत्त्वपूर्ण उपादान-तत्त्व है—वाक्य-योजना। यद्यपि प्रत्येक शब्द का अपना-अपना अलग-अलग अर्थ होता है, तथापि पूरे भाव की अभिव्यक्ति वाक्य के द्वारा ही होती है। हम लोग वाक्य मे ही सोचते है और वाक्य मे ही अपने विचार अभिव्यक्त करते हैं। वाक्य हमारी भाषा का चरमावयव है। ध्वनि और शब्द तो भाषा के कल्पित अवयव है। अत किसी भी लेखक के लिये वाक्य-योजना पर पूरा-पूरा ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है। इस सम्बन्ध मे हमे यह ध्यान रखना चाहिये कि एक वाक्य मे केवल एक ही विचार की अभिव्यक्ति हो। एक वाक्य मे अधिक विचार लाने का प्रयत्न किया तो उससे अस्पष्टता, विशृङ्खलता आदि बुराइया पैदा होगी। दूसरी बात यह है कि वाक्य-योजना मे व्याकरण के नियमो का ध्यान रखना चाहिये। व्याकरण के नियमो का ध्यान रखने से भाषा परिमार्जित बनती है और अभिव्यक्ति मे स्पष्टता आती है। इसके साथ वाक्य मे कुछ शब्दो पर बल देना भी आवश्यक होता है। अत जिन शब्दो पर बल देना उचित हो उन पर बल देना चाहिये। ऐसे वाक्य नही लिखने चाहिये जिनमे एक विचार पूरा न होता हो। अधूरे वाक्यो से

भाषा का सौंदर्य नष्ट होता है। तीसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वाक्य के समस्त पदो मे स्पष्टता हो। ऐसा न हो कि लिखा कुछ जाय और उसका मतलव कुछ और निकले। अत इस सम्बन्ध मे इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिये कि हम ऐसी बातें न लिखदें जो हमारी ही पूर्व कथित वात को गलत सिद्ध करदे। शब्द और विचार का विरोध जहाँ तक सम्भव हो भाषा मे न आने देना चाहिये। चौथी महत्वपूर्ण बात यह है कि लेखक के द्वारा प्रयुक्त शब्द परस्पर सन्निहित होने चाहिये। ऐसा न हो कि जिस काल, पुरुष और लिग मे बात प्रारम्भ की गई है वह आगे वढते-वढते उम काल, पुरुष, लिग आदि के विपरीत हो जाय। पाचवी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि रचना मे आकार, ध्वनि एव अर्थ पर पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिये। जिस वाक्य मे इन तीनो का सुन्दर सामञ्जस्य होता है वह वाक्य उत्कृष्ट बनता है। जहाँ तक आकार का सम्बन्ध है वाक्य छोटा होना ही अच्छा है। छोटे वाक्य समझने मे सरल होते है। बड़े-बडे वाक्य दुरूह हो जाते हैं और उनका समझना कठिन हो जाता है। यदि वाक्य मिश्र या सयुक्त है तो उसके अङ्गो मे परस्पर सतुलन होना चाहिये। मुहावरो का प्रयोग वाक्य का सौंदर्य बढा देता है। अत जहाँ तक हो मुहावरो का प्रयोग करना चाहिये। हाँ, इस वात का ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि मुहावरो की भरमार न हो जाय।

(ई) **अनुच्छेद-योजना**—शैली का चौथा उपादान-तत्त्व है—अनुच्छेद-योजना। अनुच्छेद का अर्थ है उद्देश्ययुक्त वाक्यो का समूह। शब्द और वाक्य के वाद रचना मे अनुच्छेद का ही महत्त्व होता है। अनुच्छेद की योजना मे इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि उसमे केवल एक ही प्रसग के विचारो का विकास हो। यदि उसमे अन्य प्रसङ्ग के विचार भी भरने का प्रयत्न किया गया अथवा उस प्रसङ्ग के विरोधी विचार भी दिये गये तो अनुच्छेद की सुन्दरता नष्ट हो जायगी। प्रत्येक अनुच्छेद का प्रारम्भ या तो ऐसे वाक्य से करना चाहिये जिससे उसका सार आ जाय या ऐसे वाक्य से हो जिनमे उसके वर्णित प्रसङ्ग की प्रस्तावना हो। इसी प्रकार अनुच्छेद का अन्त ऐसे वाक्य से करना

चाहिये जो आगे के अनुच्छेद की भूमिका वन सके। मतलब यह कि निबन्ध के अनुच्छेद माला के फूलो की तरह एक दूसरे से बँधे हुए हो, उनका अपना क्रम हो और वे आपस मे सघठित हो।

(उ) **प्रकरण-योजना**—प्रकरण शैली का पाँचवा उपादान तत्त्व है। अनुच्छेद के बाद रचना मे प्रकरण का भी महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। प्रकरण कई अनुच्छेदो से बनता है। एक प्रकरण मे एक ही विपय का, एक ही प्रसङ्ग का प्रतिपादन अनेक दृष्टियो से होता है। प्रत्येक दृष्टिकोण के लिये एक या अनेक अनुच्छेद हो सकते है। प्रकरण का आरम्भ बडे आकर्षक ढग से करना चाहिये। प्रारम्भ जितना ही सुन्दर और आकर्षक होगा उतना ही पाठक को पसन्द आएगा। यदि प्रारम्भ अच्छा न हुआ तो हो सकता हैं कि पाठक दो-चार वाक्य पढ कर ही उसे रख दे। इसी प्रकार प्रकरण का अन्त भी आकर्षक होना चाहिए। आकर्षक अन्त की पहिचान यह है कि प्रकरण समाप्त करने के वहुत देर तक विषय पाठक के मस्तिष्क मे गूँजता रहे। प्रकरण मे नपी-तुली बातें कहना उसके सौदर्य को बढा देता है। अत अनावश्यक बातो के बोझ से प्रकरण का सौंदर्य नष्ट नही करना चाहिये।

(ऊ) **चिन्ह विचार**—यह विचार शैली का छठा उपादान-तत्त्व है। इस पर हम पिछले एक अध्याय मे अच्छी तरह विचार कर चुके हैं, अत उन सव बातो को यहाँ दुहराने की आवश्यकता नही। इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि चिह्नो के समुचित प्रयोग से अर्थ-बोध का कार्य सुगम वन जाता है। इसमे एक ओर लेखक को अपनी बात स्पष्टता से कहने मे सहायता मिलती है तो दूसरी ओर पाठक को वाक्यो और अनुच्छेदो मे कही हुई वात को समझने मे सरलता होती है। जो लोग चिह्नो के समुचित प्रयोग पर ध्यान नही देते उनकी रचना क्लिष्ट और दुरूह हो जाती है। अत प्रत्येक लेखक को पूर्ण-विराम, अर्द्ध-विराम, अल्प-विराम, प्रश्नवाचक चिह्न आदि के सूक्ष्म भेदो को समझ लेना चाहिये और उनका समुचित प्रयोग करना चाहिये।

(२) शैली के आभ्यन्तरिक उपादान

शैली के वाह्य उपादानो पर विचार कर लेने के वाद अव हम उसके आभ्यतरिक उपादानो पर विचार करेंगे। भारतीय साहित्यकारो ने रचना-चातुर्य के लिये रीति शब्द का प्रयोग किया है। रीति काव्य की आत्मा और पदो की विशेष रचना का नाम है। भारतीय आचार्यो ने जिस रूप मे रीति का वर्णन किया है उसमे लेखक का व्यक्तित्व नही रहता किन्तु शैली पर लेखक की मानसिक विशेपताओ की छाप रहती है। इस दृष्टि से रीति और शैली मे तात्त्विक अन्तर है। किन्तु रीति मे ऐसे गुण हैं जो शैली का सौन्दर्य भी वढा देते हैं। अत शैली की दृष्टि से रीति का महत्व कम नही है। भरतमुनि के अनुसार रीति का सवसे वडा गुण है दोपो का अभाव। श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओज, पद-सौकुमार्य, अभिव्यक्ति, उदारता और कान्ति रीति के गुण हैं। ये ही काव्य के गुण भी है। भरतमुनि के वाद अलकार-शास्त्र का विकास हुआ और आचार्य मम्मट तथा अन्य आचार्यो ने ओज, प्रसाद एव माधुर्य गुणो को ही प्रधानता दे दी। इन्ही गुणो के आधार पर रीति के वैदर्भी, गौडी, पाञ्चाली—तीन मुख्य भेद किये गये। वैदर्भी वह रचना कही जाने लगी जो माधुर्य व्यञ्जक वर्णों से निर्मित हो, जिसमे समास न हो और जो ललित हो। जिस रचना मे कठिन वर्ण हो और समास की वहुलता हो वह गौडी कही जाने लगी। इसी प्रकार माधुर्य-व्यजक एव ओज व्यजक वर्णों के बाद जो वर्ण बचे रहते हैं उनसे निर्मित तथा पाच-छ पदो तक की समास वाली रचना को पाञ्चाली कहते हैं। इन रीतियो मे वाचक, लाक्षणिक और व्यञ्जक तीन प्रकार के शब्द तथा वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ एव व्यगार्थ तीन प्रकार के अर्थ पाये जाते हैं। वाचक शब्द मे जो अर्थ होता है उसे वाच्यार्थ, लाक्षणिक शब्द से जो अर्थ होता है उसे लक्ष्यार्थ और व्यजक शब्द से जो अर्थ होता है उसे व्यगार्थ कहते है। इन तीनो अर्थों के प्रादुर्भाव से जो शक्तियाँ काम आती हैं उन्हे क्रमश अभिधा, लक्षणा और व्यजना कहते है। इन्ही शक्तियो को वृत्ति भी कहा जाता है।

भारतीय दृष्टिकोण से शैली के तीन मुख्य गुण हैं—ओज, प्रसाद और माधुर्य। जब किसी रचना के सुनने से मन मे तेज का उदय हो तो उस रचना को ओजपूर्ण कहते हैं। लम्बे समास और ट-वर्ग की अधिकता वाले वाक्यो की भाषा ओजगुणपूर्ण मानी जाती है। शैली का दूसरा गुण है प्रसाद। जब शब्द शीघ्र ही हृदय को स्पर्श करने लगते है तो प्रसादगुण पूर्ण रचना कहते है। सरलता और सुबोधता प्रसाद-गुण व्यजक माने जाते हैं। शैली का तीसरा गुण है माधुर्य। माधुर्य वह गुण है जो हृदय को आनन्द से परिपूर्ण कर देता है। इस गुण से हृदय द्रवीभूत हो जाता है। माधुर्य-गुण शृङ्गार, करुण और शान्त रसो मे रहता है, ओज वीर, रौद्र और वीभत्स रसो मे तथा प्रसाद लगभग सभी रसो मे रह सकता है। जिस प्रकार अलकार, शब्द और अर्थ का धर्म है, उसी प्रकार गुण रस का धर्म है। अलकार रस का साथ छोड़ कर नीरस रचना मे भी रह सकता है किन्तु गुण रस का साथ छोड कर नही रह सकता।

पाश्चात्य दृष्टिकोण

पाश्चात्य समालोचको के अनुसार शैली मे सरसता, स्वच्छता, स्पष्टता, प्रभावोत्पादकता, शिष्टता, लय आदि गुणो का होना आवश्यक है।

(अ) सरसता—लेखक की रचना तभी लोकप्रिय हो सकती है जबकि उसमे सरसता हो। क्लिष्ट रचना को कुछ इने-गिने लोग ही समझ पाते हैं। अत उसका लोकप्रिय होना कठिन होता है। अपनी रचना को सर्व-साधारण के योग्य बनाने के लिये ऐसे शब्द, वाक्य और मुहावरो का प्रयोग करना चाहिय जो सुबोध हो। उसके वाक्य, अनुच्छेद और प्रकरण इतने सरल हो कि सारी बात समझने मे देर न लगे। सरसता एक ऐसा गुण है जो सबसे ज्यादा आवश्यक ही नही, पहली श्रेणी का गुण माना जाता है। इनके अनुसार लेखक को क्लिष्ट शब्दो, लम्बे वाक्यो, बडे-बडे पदो तथा कठिन अलङ्कारो के प्रयोग से निरन्तर बचे रहना चाहिये।

(आ) स्वच्छता—पाश्चात्य आचार्यों के अनुसार शैली का

दूसरा गुण है—स्वच्छता। लेखक की रचना इतनी स्वच्छ हो कि उसमे कही गूढता या रहस्य जैसी बात न रहे। उसे अपनी अनुभूतियों, भावनाओ एव कल्पनाओ के गूढ रहस्यो को पूर्णत खोलकर पाठको के सामने रख देना चाहिये। स्वच्छता का गुण अपनी रचना मे लाने के लिये लेखको को क्लिष्ट शब्दो, बडे-बडे पारिभाषिक शब्दो, दुरूह कल्पनाओ, गूढ उद्धरणो, अप्रचलित उपमाओ एव अस्पष्ट अन्तर्कथाओ के प्रयोग से बचना चाहिये।

(इ) **स्पष्टता**—उत्कृष्ट शैली का तीसरा गुण है—स्पष्टता। लेखक जो कुछ कहना चाहता है वह स्पष्टता-पूर्वक पाठक के मानस पर अकित हो जाय, यह शैली का एक महत्त्वपूर्ण गुण है। यदि लेखक के शब्दो मे अस्पष्टता है, उसके कथन का सही चित्र नही खिच पाता है तो वह शैली का दोष माना जायगा। अत अपनी रचना मे स्पष्टता का गुण लाने के लिए उसे अपनी भाषा व्याकरण-सम्मत बनानी चाहिये। उसके वाक्य, शब्द, मुहावरे, पद सब कुछ व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध होने चाहिये। यदि शुद्धता का अभाव रहा तो लेखक कहेगा कुछ और उसका मतलब निकलेगा कुछ और।

(ई) **प्रभावोत्पादकता**—शैली का चौथा गुण है—प्रभावोत्पादकता। यदि किसी लेखक की रचना सरल, स्वच्छ और स्पष्ट है किन्तु इन गुणो के होते हुए भी यदि वह प्रभावशाली नही है तो उसमे वे सब गुण व्यर्थ ही हैं। अत॰ प्रभावोत्पादकता शैली का प्रमुख गुण है। इस गुण को लाने के लिये लेखक को अपना विषय सर्व साधारण की अनुभूति के योग्य बना देना चाहिये। अपनी रचना मे वह जिस हर्ष, शोक, क्रोध, वैर, उत्साह, आशा, निराशा आदि का चित्रण करना चाहता है वह एक व्यक्ति का हर्ष-विषाद न रह कर विश्वजनीय बन जाय। अपने हर्ष-विषाद को सबका हर्ष-विषाद बनाने की शक्ति लेखक मे जितनी अधिक आ जायगी उतना ही वह जनमानस को छू सकेगा, झकृत कर सकेगा। अत॰ किसी भी उत्कृष्ट शैली मे जनमानस को छूकर झकृत कर देने की शक्ति होनी चाहिये।

(उ) **शिष्टता**—उत्कृष्ट शैली का पाँचवाँ गुण है—शिष्टता। मानव

सौन्दर्योपासक है। उसे वस्तु की सुन्दरता सदैव आकर्षित करती है। किसी वस्तु को नग्न, भद्दे अथवा कुरुचिपूर्ण ढङ्ग से उपस्थित करना उसे रुचता नही है। अत लेखक जो कुछ लिखे शिष्ट भाषा मे, सुरुचिपूर्ण शब्दो मे लिखे। उसे मर्यादा का ध्यान रखकर ही लिखना चाहिये। शिष्टता, मर्यादा और सुरुचि का ध्यान रख कर वह जो कुछ लिखेगा वह पाठक को अच्छा लगेगा। अत. लेखक को सौन्दर्य-विधान का ख्याल सदैव रखना चाहिये।

(ऊ) **लय**—उत्कृष्ट शैली का छटवाँ गुण है—लय। शब्दो का जिस प्रकार अपना अर्थ होता है उसी प्रकार उनकी ध्वनि भी होती है। शब्द ध्वनियो का समूह होता है। अत शब्दो की ध्वनि और अर्थ मे साम्य का ध्यान रखना लेखक को न भूलना चाहिये। इससे शैली मे लय और प्रवाह का आविर्भाव होता है। लय दो प्रकार की होती है—(१) ध्वनिलय और (२) ताल-लय। मधुर ध्वनियो की योजना से शैली मे ध्वनिलय आती है। ताल-लय एक प्रकार का गीतात्मक स्वर-सञ्चार होता है। वह स्वरो के उतार-चढाव पर निर्भर रहता है।

इन गुणो के अलावा हास्य और विनोद का गुण भी शैली को उत्कृष्ट बनाने मे महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। हास्य-विनोद से पाठक का मन विषय मे रमता है और उसकी ग्रहणशीलता बढती है। जिस प्रकार अच्छे मिष्ठान्न के साथ नमकीन पदार्थ भोजन के आनन्द को बढा देता है उसी प्रकार हास्य-विनोद से भी शैली मे रोचकता आ जाती है। किन्तु हास्य-विनोद का प्रयोग मर्यादा ही मे होना चाहिये।

शैली के दोष

शैली के गुणो का विवेचन कर देने के बाद उसके दोषो पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। एक ही भाव को बार-बार दुहराते रहना शैली का दोष है। अक्सर कुछ लोग अलग-अलग शब्दो मे एक ही बात कहते रहते हैं। यह ठीक नही है। कम से कम शब्दो मे ज्यादा से ज्यादा बात कहने वाली शैली अच्छी मानी जाती है। शैली का दूसरा दोष है ऐसे वाक्यो का प्रयोग करना जो जटिल और लम्बे-लम्बे हो। इससे रचना दुरूह और अनिश्चित बनती है। तीसरा दोष है ऐसे वाक्यों

और शब्दो का प्रयोग करना जिसमे अस्पष्टता बनी रहे। चौथा दोष है अनावश्यक और अनुचित शब्दो का प्रयोग। कई बार कुछ लोग अपना पाण्डित्य दिखलाने के लिये स्वय ही कुछ वडे-वड़े शब्दो का प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार ऐसे शब्दों का प्रयोग भी करते हैं जो उचित नही होते। शैली को अच्छी वनाने के लिये अनावश्यक और अनुचित शब्दो के प्रयोग से वचना चाहिये। पाँचवाँ दोष है एक ही शब्द की पुनरुक्ति करना। पुनरुक्ति से शब्द कानो को अच्छा नही लगता। ग्राम्य शब्दो का प्रयोग और शब्दाडम्बर शैली का छठा दोप है। उन्ही शब्दों का प्रयोग करना चाहिये जो उस भाषा के है। ग्रामीणो द्वारा बोले जाने वाले प्रातीय भाषा के शब्दो का प्रयोग शैली को दोष-पूर्ण बना देता है। सातवाँ दोष है, पाण्डित्य प्रदर्शन की चेष्टा। वहुत से लोग अपनी विद्वत्ता दिखाने के लिये अनावश्यक रूप से बडे-वडे क्लिष्ट शब्दो का प्रयोग करते हैं, ऐसा करना अच्छा नही है। सीधे सादे सरल शब्दो के प्रयोग से ही शैली अच्छी वनती है। आठवाँ दोष है—सयोजक और वियोजक शब्दो का अनुचित प्रयोग। नवाँ दोष है—मिश्रित रूपक का प्रयोग। दसवाँ दोष है—अनुच्छेदो तथा विराम-चिह्नो का अभाव। अनुच्छेदो और विराम-चिह्नों के अभाव में, भाषा मे स्पष्टता, सरलता, स्वच्छता और प्रभावोत्पादकता नही आ पाती। ग्यारहवाँ दोष है—पहले विषय की उत्कृष्टता का वर्णन करके वाद मे उसकी न्यूनता का वर्णन करना। इससे प्रभावोत्पादकता नष्ट हो जाती है। वारहवाँ दोष है विचारो की असम्बद्धता। विचार क्रमपूर्ण होने से पाठक को समझने मे देर नही लगती, किन्तु उनके असम्बद्ध होने से उलझन-सी पैदा हो जाती है।

शैली के स्वरूप अग

ऊपर शैली के जिन बाह्य और आभ्यन्तरिक उपादान-तत्त्वो का वर्णन किया गया है उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि शैली मे विचार, अनुभूति और अभिव्यञ्जना की प्रधानता रहती है। जहाँ तक विचार का सम्बन्ध है, विचार के तीन प्रमुख गुण हैं—सरलता, स्पष्टता और आरोहण। विचार की सरलता शैली को सरल बनाती है। जब विचार

लेखक को पूरी तरह हजम हो जाता है—वह उसका अपना ही विचार हो जाता है तब उसे सीधे-सादे सरल शब्दो मे अभिव्यक्त करना आसान हो जाता है। अत सरलता विचार का महत्त्वपूर्ण गुण है। वह विचार की परिपक्वता का द्योतक है। विचार मे स्पष्टता लाने के लिए स्पष्ट और प्रत्यक्ष उदाहरण दिये जाते हैं ताकि अस्पष्टता के लिए कोई स्थान न रहे। विशेषार्थ-बोधक कथन को प्रधानता भी स्पष्टता लाने के लिए ही दी जाती है। स्पष्ट शैली की यह विशेषता होती है कि उसमे एक परिच्छेद मे शब्द एक ही अर्थ मे प्रयुक्त किया जाता है। उसमे कोई असगत कथन नही होता। आरोहरण मे युग-गत ज्ञान से काम लिया जाता है और विचार विषय के अनुरूप होते हैं।

अनुभूति के तीन गुण हैं—प्रवृत्ति, ओज और काति। एन्द्रिय वृत्तियो को आकर्षित करने के गुण को प्रवृत्ति कहते है। जो रचनाएँ जीव और प्रकृति के प्रति प्रेम पैदा करती है, जीवो के सुख-दु ख के प्रति सहानुभूति पैदा करती हैं—ऐन्द्रिय वृत्ति को जागृत करने वाली रचनाएँ कही जाती हैं। जिन रचनाओ से हृदय मे शक्ति का सचार हो उन्हे ओजगुण से पूर्ण रचना कहते है। ऐसी रचनाओ मे प्रकृति के रहस्यो का वर्णन इस प्रकार किया जाता है कि मन मे उत्कृष्ट भाव पैदा होते हैं। जिन रचनाओ मे आह्लादप्रदायिनी शक्ति होती है उन्हे कान्तिगुण से पूर्ण रचना कहा जाता है। शब्द, पद तथा वाक्य का लालित्य, रसज्ञता, विनोद, वाक्-चातुरी, सुरुचि-पूर्ण शब्द चयन, परिष्कृत कथनो की योजना आदि इसी गुण की वृद्धि करते है। गुण वाली रचनाओ मे धर्म और सदाचार के प्रति रुचि पैदा करने की क्षमता होती है तथा पाठको के विचार के प्रति सम्मान का भाव रहता है।

अभिव्यञ्जना के चार गुण हैं—रुचि, अनुक्रम, मधुरता और यथार्थता। परिमार्जित भाषा का व्यवहार अभिव्यञ्जना मे रुचि का परिणाम है। जिन रचनाओ मे रुचि का ध्यान रखा जाता है उनमे शब्द और वाक्य नपे-तुले होते है। अनुक्रम के कारण पाठक को रचना का अर्थ समझने मे सरलता होती है। स्वर-मधुरता का गुण हृदय और मस्तिष्क मे आनन्द का उद्रेक करता है। श्रुति-मधुर रचना मे इतनी

विविधता होती है कि जी उबने नही पाता । यथार्थता का गुण उन रचनाओ मे होता है जो पाठको के विचारो के अनुरूप होती है । ऐसी रचनाओ मे ध्वनि, गति, आकार आदि को व्यक्त करने के लिये उन्ही के अनुकरणशील शब्दार्थों का प्रयोग होता है ।

शैली के भेद

ऊपर बताया जा चुका है कि भाव और भाषा इन दोनो के द्वारा शैली का निर्माण होता है। अत' इन दोनो के आधार पर शैली के दो प्रधान भेद किये गये हैं—भाषा-प्रधान शैली और विचार-प्रधान शैली । भाषा प्रधान शैली मे भाषा का स्थान प्रमुख रहता है, भाव का गौण, और विचार-प्रधान शैली मे विचार का स्थान प्रमुख रहता है, भाषा का गौण । भाषा-प्रधान शैली मे भाषा विचार की अनुगामिनी होती है ।

भाषा प्रधान शैली—भाषा-प्रधान शैली के दो रूप है—(१) शब्द-प्रधान और (२) वाक्य-रचना-प्रधान । शब्द प्रधान शैली मे बडे-बडे शब्दो की प्रमुखता रहती है । बडे-बडे शब्दो की प्रधानता के कारण यह शैली शब्दाडम्बर पूर्ण हो जाती है । इसमे विचारो की तीव्रता का ध्यान नही रखा जाता । शब्दो की सख्या के अनुसार इस शैली के तीन उपभेद होते हैं—पहली प्रकार की शैली-वाग्बहुल कही जाती है । इसमें शब्दो की भरमार होती है । दूसरे प्रकार की सक्षिप्त-शैली कही जाती है । इसमे अपेक्षाकृत कम शब्दो से काम लिया जाता है । तीसरे प्रकार की शैली है शब्द-प्रधान—निर्दिष्ट-शैली, इसमे शब्द न तो बहुत कम होते हैं न अधिक ।

वाक्य-रचना-प्रधान शैली—भाषा-प्रधान शैली का दूसरा रूप है वाक्य-रचना-प्रधान शैली । वाक्य भाषा का चरमावयव है । अत' वाक्यो की रचना के अनुसार शैली के भेदो पर विचार करना शब्द-प्रधान शैली की अपेक्षा अधिक युक्तिसगत है । इस दृष्टि से शैली के पाँच भेद किये जाते हैं—(१) सरल शैली (२) गुम्फित-वाक्य शैली (३) उक्ति-प्रधान शैली (४) अलकृत शैली और (५) गूढ शैली ।

(१) सरल शैली—इस शैली मे छोटे-छोटे वाक्यो का प्रयोग किया

जाता है। प्राय वाक्य एक क्रिया वाले होते है। इस वात का ध्यान विशेष रूप से रखा जाता है कि भाषा प्रभावोत्पादक, समर्थ एव अर्थ-वान् हो। थोडे से शब्दो मे वहुत कुछ कह देना इस शैली का एक वहुत वडा गुरा है। इस शैली मे ऐसे छोटे और प्रसाद गुरा युक्त वाक्यो का प्रयोग किया जाता है ,जो चुस्त होने के साथ-साथ मर्म-स्पर्शी भी होते है।

(२) **गुम्फित शैली**—इस शैली मे गुम्फित वाक्यो का प्रयोग किया जाता है। गुम्फित वाक्य वे है जिनमे दो या दो से अधिक क्रिया पद आते है। अनुभवी और प्रौढ लेखक ही इस प्रकार की शैली अपना सकते है। यदि लेखक अनुभवी और प्रौढ न हुआ तो भाषा मे शिथिलता आने का भय वना रहता है। गूढ विषयो के निरूपरा मे यह शैली अधिक उपयुक्त होती है।

(३) **उक्ति-प्रधान शैली**—इस प्रकार की शैली मे मुहावरो और सूक्तियो आदि का प्रयोग प्रचुर मात्रा मे होता है। मुहावरो और सूक्तियो के उचित प्रयोग से भाषा मे सुन्दरता और चमत्कार आ जाता है। लोकोक्तियो और मुहावरो से प्रत्येक व्यक्ति परिचित होता है। अत. उनके प्रयोग से अर्थ-बोध मे सहायता होती है। जो बात साधारण भाषा मे कहने पर बिलकुल नीरस और रूखी मालूम होती है, वही मुहा-वरेदार भाषा के द्वारा चमक उठती है। इस प्रकार की शैली मे इसी बात का ध्यान रखना होता है कि मुहावरो का प्रयोग वरिणत विषय के अनुकूल किया जाय। यदि उपयुक्त मुहावरे और सूक्तियो का प्रयोग नही किया गया तो वह सौंदर्य और चमत्कार नही आ सकेगा जो इस शैली की विशेषता कही जाती है।

(४) **अलकृत शैली**—अलकार-युक्त भाषा वाली शैली को अलकृत शैली कहते है। यह शैली दो प्रकार की होती है—(अ) शब्दा-लकार-युक्त शैली और (ब) अर्थालकार-युक्त शैली। जिस रचना मे अनुप्रास, यमक, श्लेष आदि शब्दालकारो के प्रयोग से चमत्कार पैदा कर दिया जाता है उसे शब्दालकार-युक्त शैली कहते हैं। इस शैली मे शब्दालकारो की योजना रसानुभूति का कारण बनती है। जिस

शैली मे रसानुभूति अर्थालकारो के द्वारा होती है उसे अर्थालकार-युक्त शैली कहते हैं। इस शैली मे भावो का उत्कर्ष दिखाया जाता है।

(५) **गूढ़ शैली**—इस शैली मे लेखक शव्दो की लाक्षणिक तथा व्यग्यात्मक शक्ति से काम लेता है। वह अपनी वात सीधे-सादे ढग से न कह कर घुमा-फिरा कर कहता है। जिस शैली का व्यङ्ग शीघ्र समझ मे आ जाता है, उसे सरस गूढशैली कहते हैं। किन्तु जिस शैली का व्यङ्ग शीघ्रता से समझ मे नही आता, वह क्लिष्ट गूढ शैली कही जाती है।

विचार-प्रधान शैली—विचार-प्रधान शैली मे भाषा की अपेक्षा विचार या भाव को अधिक महत्त्व दिया जाता है। विचार प्रधान शैली मे दो प्रकार के विचार रहते हैं—एक आत्मगत, दूसरे विषयगत। जिस शैली मे व्यक्ति-सम्वन्धी विचारो की प्रधानता रहती है उसे व्यक्ति-प्रधान शैली कहते हैं और जिसमे विषय-सम्वन्धी विचारो की प्रधानता रहती है उसे विषय-प्रधान शैली कहते है। व्यक्ति-प्रधान शैली मे व्यक्तिगत अनुभूति,रुचि, भाव तथा मनोवृत्ति का सजीव चित्रण होता है। व्यक्ति-प्रधान शैली के तीन प्रमुख भेद हैं। पहले प्रकार की शैली वह है जिसमे लेखक अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियो का चित्रण स्वय करता है। यह शैली उत्तम पुरुष मे होती है। दूसरे प्रकार की शैली वह है जिसमे अपनी मतोवृतियो को उत्तम पुरुप मे चित्रित करते हुए भी लेखक हमारे सामने प्रत्यक्ष रूप से नही आता। कहानी, काल्पनिक नाटक अथवा उपन्यास मे इसी प्रकार की शैली मिलती है। इस प्रकार की शैली से लेखक स्वय न कह कर अपने मन की बात अपने पात्रो के मु ह से कहलवाता है। व्यक्ति-प्रधान शैली का तीसरा रूप हमे उन निवन्धो मे देखने को मिलता है, जिनमे किसी विपय का विवेचन हृदय के सयोग से किया जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के वहुत से निवन्ध इसी शैली मे लिखे गये हैं। शुक्लजी ने इस शैली के तीन स्थूल भेद किये हैं। इन मे पहला भेद है—रागात्मक शैली का। इस प्रकार की शैली मे लेखक की भावनाएँ कल्पना का सहारा पाकर उत्तेजित हो जाती हैं और उनका प्रवाह नदी की निर्मल धारा की तरह बह निकलता है। दूसरी प्रकार की शैली इन्द्रियानुभावात्मक शैली है।

इस शैली का सम्बन्ध मानव-इन्द्रियो से होता है । मानव-इन्द्रियाँ ज्ञान प्राप्ति मे सहायता देती हैं । अत जब लेखक का भावुक हृदय बाह्य इन्द्रियो द्वारा प्राप्त किए हुए अनुभव को जनता तक पहुँचाने के लिए व्याकुल हो उठता है और उसके परिणामस्वरूप शैली का जन्म होता है,तो उसे व्यक्ति-प्रधान इन्द्रियानुभावात्मक शैली कहते हैं। व्यक्ति-प्रधान शैली का तीसरा स्वरूप है ज्ञानात्मक शैली । किसी विषय के विवेचन मे इसी प्रकार की शैली से काम लिया जाता है । जिन शास्त्रीय विपयो मे मस्तिष्क का सयोग हृदय की अपेक्षा अधिक होता है, वे इस शैली मे ही लिखे जाते हैं ।

व्यक्ति-प्रधान शैली मे किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व या निजत्व का अश अधिक रहता है । लेकिन जब व्यक्तित्व विषय के प्रवाह मे तिरोहित हो जाता है तो उसे विषय-प्रधान शैली कहते है । विषय-प्रधान शैली मे लिखी हुई रचना मे लेखक के व्यक्तित्व का अभाव रहता है । उसमे लेखक छिपा रहता है, स्पष्टत सामने नही आता । इस प्रकार की विषय-प्रधान शैली मे आलोचनात्मक, विचार-प्रधान, कलात्मक एव ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी लेख लिखे जाते है ।

आलोचनात्मक शैली

जिस शैली मे लेखक की रचना के गुण-दोषो का विवेचन किया जाता है, उसे आलोचनात्मक शैली कहते हैं । इस शैली के तीन स्वरूप होते है । पहला है निर्णयात्मक शैली । इस शैली मे आलोचना शास्त्रीय ढग से की जाती है । अर्थात् लेखक लक्षण-ग्रन्थ मे वर्णित सिद्धान्तो के प्रकाश मे रचना के गुण-दोषो पर निर्णय देता है । वह निर्णय आलोचक का नही शास्त्रीय ग्रन्थो का रहता है । आलोचनात्मक शैली का दूसरा रूप है तर्क-प्रधान शैली । इस शैली मे लेखक अपनी तर्क बुद्धि के अनुसार रचना के गुण-दोपो पर प्रकाश डालता है । ऐसी आलोचनात्मक शैली या तो दोष-प्रधान होती है या गुण-प्रधान । लेखक के प्रति आलोचना का जो दृष्टिकोण बन जाता है उसी के अनुसार वह उचित या अनुचित ढग से उसकी रचना को परखता है । इस

प्रकार की आलोचना मे आलोचक का अहभाव स्पष्टत दिखाई देता है। ऐसा प्राय दो कारणो से होता है। पहला यह है कि आलोचक का ज्ञान परिमित अथवा अपूर्ण हो और दूसरा यह कि वह लेखक के प्रति या तो पक्षपात कर रहा हो या उससे ईर्ष्या कर रहा हो। कोई भी कारण हो उसके कारण की गई आलोचना पक्षपातपूर्ण बन जाती है।

आलोचना-प्रधान शैली का तीसरा स्वरूप है—व्याख्या-प्रधान शैली। यही आलोचना की आधुनिक शैली है। इस शैली के अनुसार आलोचक न तो केवल शस्त्रीय-सिद्धान्तो पर चलता है और न अपने मनोरागो पर। वह रचना की आत्मा को परखने का प्रयत्न करता है और इस प्रकार उसकी आत्मा मे प्रविष्ट होकर उसकी भावनाओ, कल्पनाओ तथा अनुभूतियो का विश्लेषण करता है। वह लेखक की परिस्थितियो, उसके सामाजिक वातावरण, उसकी रुचि-अरुचि, उसके समय, योग्यता आदि को जानने का प्रयत्न करता है। वह यह भी जानने का प्रयत्न करता है कि लेखक ने अपने विषय के प्रतिपादन के लिये कहा-कहा से किस-किस रूप मे सामग्री एकत्र की है। इस प्रकार के अध्ययन से आलोचक को लेखक के हृदय और मस्तिष्क दोनो का परिचय मिल जाता है। बस, इस परिचय के प्रकाश मे वह लेखक की कृति के गुण-दोषो को अपनी बुद्धि की तुला पर तोलता है। इस प्रकार की आलोचना शैली पक्षपात से दूर होती है और उसका प्रत्येक शब्द लेखक के प्रति सहानुभूति से भरा रहता है।

शैली के सम्बन्ध मे इतने विस्तार के साथ कह देने के बाद यह कहना अनुचित न होगा कि शैली के भेद और उपभेद समझने के बाद भी प्रत्येक लेखक की अपनी अपनी शैलियाँ होती है। वह स्वय अपनी शैली का निर्माता होता है, उसकी अपनी शैली दूसरो की शैली से भिन्न होती है। इसका कारण जहा लेखक की अपनी योग्यता होती है वहा भावुकता भी होती है। अपनी कल्पना, भावुकता, अनुभूति और भावना के द्वारा वह ऐसी शैली को जन्म देता है जो सबसे भिन्न और सबसे अलग प्रकार की होती है।

रस

हमारे प्राचीन आचार्यों के अनुसार 'रसात्मक वाक्य ही काव्य है' (वाक्य रसात्मक काव्य)। वे रस को काव्य की आत्मा मानते है। भरत-मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र मे लिखा है कि विभाव, अनुभाव और सञ्चारी भाव के सयोग से रस की निष्पत्ति होती है। प्राय जब हम कोई सुन्दर कविता पढते हैं या सुनते हैं तो हमे एक विशेष प्रकार का आनन्द अनुभव होता है। हम कुछ समय तक अपने को भूल कर उस आनन्द मे खो जाते हैं। जब हम किसी विपन्न, दरिद्र या पीडित व्यक्ति की आर्त्त-वाणी सुनते हैं या किसी दुर्घटना का दृश्य देखते हैं तो एक तीव्र पीडा से अभिभूत हो जाते हैं, हमारा हृदय दु ख से भर जाता है। इसी प्रकार, जब हम अपने बहुत पुराने और निकटतम साथी या प्रियजन से मिलते हैं, किसी आनन्दोत्सव मे सम्मिलित होते है अथवा कोई सुखद समाचार सुनते हैं तो खुशी मे झूमने लगते है। यह आनन्दानुभूति ही रस है। दूसरे शब्दो मे हम यह कह सकते है कि चित्त मे उत्पन्न होने वाली यह विशेष वृत्ति ही रस है। वस्तुत. ऐमी चित्त-वृत्ति प्रत्येक सहृदय व्यक्ति के हृदय मे वासनारूप मे विद्यमान रहती है। वासना एक ऐसी ईश्वरदत्त शक्ति है जो प्रत्येक मानव-हृदय मे छिपी हुई है। यही ईश्वरदत्त शक्ति जिसे वासना कहा गया है हमे रस की अनुभूति कराती है। काव्य मे आचार्यों ने रस को 'ब्रह्मानन्द सहोदर' कहा है। रस के द्वारा जो आनन्दानूभूति हमे होती है वह लौकिक नही होती है, वह तो एक अनिर्वचनीय आनन्द है।

ये रस नौ है—शृ गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त।

रस के चार अङ्ग होते हैं—स्थायीभाव, विभाव, अनुभाव और सचारी भाव। जो भाव हमारे हृदय मे स्थायी रूप से विद्यमान रहते है उन्हे स्थायी भाव कहते हैं। ये मनोभाव मानव-हृदय मे सदैव एक

प्रशात दशा मे सोये हुए रहते है। जब कोई अनुकूल परिस्थिति आती है तो ये सहसा जाग्रत हो जाते है। ये विरोधी या अविरोधी भावो से नष्ट नही होते तथा विरोधी भावो को भी अपने रूप के वदल लेने की शक्ति रखते हैं। साराश यह है कि जिस भाव का रूप सजातीय या विजातीय भावो के प्रभाव से भी वदल न सके और जव तक रस की अनुभूति होती हो तव तक विद्यमान रहे वही स्थायी भाव है। शृ गार रस का स्थायी भाव रति है हास्य रस का हास है, करुण रस का शोक है, रौद्र रस का क्रोव है, वीर रस का उत्साह है, भयानक रस का भय है, वीभत्स रस का जुगुप्सा है, अद्भुत रस का विस्मय है और शान्त रस का निर्वेद है। ये स्थायी भाव अपने-अपने रसो मे विद्यमान रहते है और इनका परिष्कृत रूप ही रस कहलाता है।

स्थायी भाव को जाग्रत करने वाले भावो को विभाव कहते है। इनके द्वारा रस अकुरित होकर आस्वादन के योग्य वनता है। विभाव के दो भेद हैं—आलम्वन विभाव और उद्दीपन विभाव। जिनके आलम्वन से रति, उत्साह, भय आदि स्थायी भाव उत्पन्न हो, वे आलम्वन विभाव कहे जाते हैं। दूसरे शब्दो मे कहे तो जिस प्रकार चना, गेहू आदि के वीज उनके अकुर के आलम्वन होते हैं, उसी प्रकार स्थायी भाव को अकुरित करने के लिए जिन विभावो की आवश्यकता होती है वे आलम्वन विभाव कहे जाते हैं। आलम्वन पर रस का उत्पन्न होना निर्भर रहता है। उदाहरण के लिए यदि आप रास्ता चलते-चलते किसी दीन, विपन्न और दु.खी व्यक्ति को किसी के द्वारा सताये जाते हुए पाते है, तो आपको वडा शोक होता है। अत वह दु खी व्यक्ति आपके शोक स्थायी भाव का आलम्वन हुआ। यही वात क्रोव, हास, रति आदि के सम्वन्ध मे भी कही जा सकती है।

जिसके द्वारा आलम्वन विभाव से अकुरित रति, जुगुप्सा, विस्मय, शोक, हास आदि स्थायी भाव उद्दीप्त हो उसे उद्दीपन विभाव कहते है। दूसरे शब्दो मे जिसके देखने या सुनने से किसी रस की पुष्टि हो उसे उद्दीपन विभाव कहते हैं। उदाहरण के लिए किसी अवला का आर्त्त-नाद, किसी आहत की करुण पुकार अथवा किसी उद्दण्ड व्यक्ति के

अभिमान भरे हुए शब्द हमारे शोक, क्रोध अथवा इसी प्रकार के अन्य भाव को उद्दीप्त कर देते हैं।

आलम्बन विभाव के माध्यम से अकुरित और उद्दीपन विभाव के सहारे पल्लवित रति, क्रोध, शोक आदि स्थायी भावो को जो अनुभव कराते हैं उन्हे अनुभाव कहते हैं। 'अनु' का अर्थ है—पीछे। अत जो विभावो के पीछे चले उसे अनुभाव कहते हैं। आलम्बन और उद्दीपन द्वारा जाग्रत स्थायीभाव की स्थिति का बोध कराने वाली शारीरिक चेष्टा आदि को अनुभाव कहा जाता है। उदाहरणार्थ—शोक मे आँसू आना, उत्साह मे भुजाए फडकना, भय मे भागना आदि।

स्थायीभाव के साथ-साथ जल-तरङ्ग की भाँति प्रकट होने वाले अस्थिर मनोविकारो को सचारीभाव कहते हैं—इन्हे व्यभिचारी भाव भी कहते हैं। इनकी सख्या ३३ है। ये है—निर्वेद, ग्लानि, शङ्का, असूया, मद, श्रम, आलस्य, दैन्य, चिन्ता, मोह, स्मृति, धृति, ब्रीडा, चपलता, आवेग, हर्ष, जडता, गर्व, विषाद, औत्सुक्य, निद्रा, अपस्मार, स्वप्न, विबोध, अमर्ष, अवहित्था, उग्रता, मति, व्याधि, उन्माद, मरण, त्रास और वितर्क।

रस अनिर्वचनीय आनन्द है। इसी से रस को ब्रह्मानन्द सहोदर कहा गया है। जब हम करुण रस से पूर्ण किसी नाटक को देखते हैं या किसी गीत, कहानी, उपन्यास, काव्य आदि को पढते हैं तो उसमे भी हमे एक प्रकार के आनन्द की ही अनुभूति होती है, यही रसानुभूति है। यदि उनमे आनन्द की अनुभूति न हो तो उन्हे कौन पढेगा ? लेकिन उनकी ओर लोगो की जबरदस्त रुचि ही उनके महत्त्व को प्रकट करती है। रस की अनुभूति मे सत्त्वगुण की प्रधानता होती है। यदि रजोगुण और तमोगुण की प्रधानता हुई तो रस की अनुभूति उसी प्रकार नही हो पाती जिस प्रकार गन्दे शीशे में स्वच्छ परछाँई नही दिखाई देती। अत रजोगुण और तमोगुण पर सत्त्वगुण की प्रधानता आवश्यक है। इसी के द्वारा ज्ञान का प्रकाश होता है और ज्ञान के प्रकाश से ही सहृदय-जनो के हृदय मे रस की अनुभूति होनी है।

१—शृङ्गार रस

शृङ्गार रस के दो भेद हैं—सयोग और विप्रलम्भ । सयोग शृङ्गार मे नायक और नायिक के पारस्परिक मिलन का मनोहारी वर्णन रहता है । कही तो यह नायिका के द्वारा प्रारम्भ होता है और कही नायक के द्वारा । विप्रलम्भ शृङ्गार मे नायक-नायिका के पारस्परिक वियोग का वर्णन रहता है ।

स्थायीभाव—रति अथवा प्रेम ।

आलम्बन विभाव—उत्तम प्रकृति के नायक और नायिका ।

उद्दीपन—नायक-नायिका की उत्तम वेश-भूषा, आपसी चेष्टा आदि पात्रगत होती है । बाहरी बातो मे वसन्त ऋतु, चाँदनी रात, एकान्त स्थान, वाटिका, नौका-विहार आदि आते है । वियोग मे बाहरी उद्दीपन ही दुखदायी बन जाते हैं ।

अनुभाव—नायक-नायिका का एक दूसरे को देखना, प्रेमपूर्वक बात-चीत करना, कटाक्ष करना, मुस्कराना आदि ।
विप्रलम्भ मे आँसू, विवर्णता आदि ।

सचारी भाव—कुछ को छोड़ कर प्राय सभी सचारी भाव इस रस मे रहते हैं । जैसे हर्ष, विषाद, व्रीडा, औत्सुक्य आदि ।
वियोग मे चिन्ता, उद्वेग, प्रलाप आदि ।

उदाहरण

राघव बोले देख जानकी के आनन को—
"स्वर्गङ्गा का कमल मिला कैसे कानन को ?"
"नील मधुप को देख वही उस कुञ्ज कली ने—
स्वय आगमन किया"—कहा यह जनक-लली ने ।।

—प्रसाद

यहाँ राम-सीता का प्रेम स्थायी-भाव है । सीता आलम्बन विभाव है और चाँदनी रात मे चित्रकूट के प्राकृतिक दृश्य उद्दीपन विभाव । सीता और राम का सरल वार्तालाप अनुभाव है । हर्ष, चपलता आदि सचारी भाव है ।

विप्रलम्भ शृङ्गार का उदाहण

है कितना बेचैन हृदय, तुमको भूल न पाता क्यो ?
वह रेवा-सा रूप तुम्हारा, आँखो मे लहराता क्यो ?
चञ्चल हिरणो-सी नयनो की करुणा मेरा घर भरती ?
एक असीमित तृष्णा रह-रह कर मन को घायल करती ।

—अञ्चल

यहा नायक का नायिका के प्रति प्रेम स्थायीभाव है । रेवा नदी के समान उसकी सुन्दरता तथा हरिणी के समान चचल नेत्र उद्दीपन विभाव हैं । हृदय की बेचैनी और उसका न भूलना अनुभाव है । स्मृति आदि सचारी भाव है ।

२—हास्य रस

जब हम किसी की विकृत चेष्टाएँ, अनोखी वेशभूषा तथा अनोखी बातचीत देखते या सुनते है तो हास्य रस की उत्पत्ति होती है । हास्य रस के छ भेद हैं —स्मित, हसित, विहसित, अवहसित अपहसित और अतिहसित ।

स्थायी भाव—हास ।

आलम्बन विभाव—विचित्र आकृति, विचित्र वेश-भूषा, विचित्र वस्तुएँ, लज्जा, हीनता आदि ।

उद्दीपन विभाव—हँसी बढाने वाली चेष्टाएँ आदि ।

अनुभाव—हँसना, मुँह खोलना, प्रसन्नता, आखो को बन्द करना आदि ।

सचारी भाव—रोमाच, हर्ष, चपलता, निद्रा, आलस्य, अवहित्था आदि ।

उदाहरण

वावू वनने का यार फ़ैश फारमूला सुनो,
कीजिये इकन्नी खर्च मूँछ की मुंडाई मे ।
लीजिये सकण्ड हैण्ड सूट डेढ रुपये मे,
डेमी रिस्टवाच चार पैसे की कलाई मे ।

गूदडी बाजार का हो बूट भी अधेली वाला,
करो पूरे खर्च आने तीन नेकटाई मे ।
अठन्नी मे कोट और चश्मा दुअन्नी मे
'मुरली' बनी न बाबू मुद्रिका अढाई मे ।

—मुरली

यहा स्थायीभाव हास है । कवि की उक्ति आलम्बन और उक्तिकालीन चेष्टाएँ उद्दीपन हैं । चेहरे का विकसित हो जाना आदि अनुभाव है । व्यङ्ग रूप से वर्तमान आवेग सचारी भाव हैं ।

३—करुण रस

अभीष्ट वस्तु का न मिलना, प्रेमीजन का वियोग, धन की हानि आदि से मन मे शोक का प्रादुर्भाव होता है और उसी से करुण रस की अभिव्यक्ति होती है ।

स्थायी भाव—शोक ।

आलम्बन विभाव—मृत बन्धुजन, प्रियजनो का विछोह, विनिष्ट ऐश्वर्य आदि ।

उद्दीपन विभाव—प्रियजन का मृत शरीर, उसके गुण, कार्य और रूप का स्मरण, आभूषण, वस्त्र, चित्र-दर्शन आदि ।

अनुभाव—रोना, प्रलाप करना, भाग्य को दोष देना, मूर्छित हो जाना आदि ।

उदाहरण

मैं हूँ वही जिसका किया था ग्रन्थि-बन्धन साथ मे,
मैं हूँ वही जिसका लिया था हाथ अपने हाथ मे ।
मैं हूँ वही जिसको किया था विधि-विहित अर्धाङ्गिनी,
भूलो न मुझ को नाथ मैं हूँ अनुचरी चिर-सगिनी ।

—मैथिलीशरण गुप्त

यहा अभिमन्यु की मृत्यु पर शोक से अभिभूत उत्तरा प्रलाप कर रही है । शोक स्थायी भाव है । अभिमन्यु का मृत शरीर आलम्बन और अपने

विवाह सम्बन्धी कार्यों का स्मरण उद्दीपन है। उसका करुण क्रन्दन अनुभाव है। विलाप, दैन्य, स्मृति आदि सचारी भाव है।

४—रौद्ररस

अपमान, तिरस्कार तथा माता-पिता, गुरुजन आदि की निन्दा से रौद्ररस की उत्पत्ति होती है।

स्थायीभाव—क्रोध।

आलम्बन—अपराधी शत्रु या अन्यायी व्यक्ति की चेष्टाएँ व क्रिया-कलाप।

उद्दीपन—शत्रु, अपराधी या अन्यायी व्यक्ति के अनुचित कार्य, तिरस्कार, गर्वोक्ति आदि।

अनुभाव—मुख और नेत्रो का लाल हो जाना, दात और ओठो का चबाना, गर्जन, तर्जन, कम्पन आदि।

सचारी भाव—अमर्ष, गर्व, आवेग, क्रूरता, असूया, श्रम, चपलता आदि।

उदाहरण

इस अकार्य मे योग दिया भी होगा जिसने,
या सगर्व यह पाप किया भी होगा जिसने,
या जिसने यह देख लिया हर-धुन का खण्डन,
अभी करूँगा देख उसी के धनु का खण्डन।
शठ, शीघ्र बता उसको अभी, किसने धनु खण्डन किया?
तो परशुराम मैं हू नही, यदि उसको दण्ड न दिया॥

—रामचरित उपाध्याय

यहाँ क्रोध स्थायीभाव है। धनुष का भग जिस व्यक्ति ने किया है वह आलम्बन है। टूटा हुआ धनुष उद्दीपन है। नेत्रो का लाल होना आदि अनुभाव है। आवेग, चपलता आदि सचारी भाव है।

५—वीर रस

किसी कठिन कार्य, युद्धस्थल, शत्रु की उन्नति आदि के द्वारा उत्साह-भाव व्यक्त होने से वीर रस का प्रादुर्भाव होता है।

स्थायीभाव—उत्साह ।

आलम्बन—शत्रु, प्रतिद्वन्द्वी आदि जिन्हे जीतना है ।

उद्दीपन—युद्ध के बाजे, शत्रु की ललकार, विपक्षी का उत्साह-प्रदर्शन, ओजपूर्ण वचन, उसके उत्कर्ष का श्रवण आदि ।

अनुभाव—गर्व से भरी बातें, अस्त्र-शस्त्रो का प्रयोग, भुजाओ का फडकना, अपने पराक्रम का वर्णन आदि ।

आचार्यों ने इस रस के चार भेद माने है .

युद्धवीर, दयावीर, दानवीर और धर्मवीर ।

उदाहरण

कोलाहल पर कोलाहल सुन,
शस्त्रों की सुन झकार प्रबल,
मेवाड केसरी गरज उठा,
सुनकर अरि की ललकार प्रबल ।

—श्यामनारायण पाण्डे

यहां उत्साह स्थायी भाव है । शत्रु की सेना आलम्बन विभाव और उसके शस्त्रो की झनकार आदि उद्दीपन विभाव है । मेवाड-केसरी प्रताप का गरज उठना अनुभाव है । गर्व, अमर्ष, असूया आदि सचारी भाव हैं ।

६—भयानक रस

भय देने वाली वस्तुओ को देखने अथवा सुनने से हृदय मे स्थित भय द्वारा इस रस की व्यञ्जना होती है ।

स्थायी भाव—भय ।

आलम्बन—भय उत्पन्न करने वाली वस्तु, सिंह, सर्प, विजन, प्रबल शत्रु, भूत, प्रेत, अग्निकाण्ड आदि ।

उद्दीपन—भीषण दृश्य, हिंसक प्राणियो की विकराल चेष्टाएँ आदि ।

अनुभाव—रोमाच होना, पसीना आना, भागना, स्वर-भग होना, मूर्छा आदि ।

सचारी भाव—आवेग, चिन्ता, त्रास, मृत्यु, शका आदि ।

उदाहरण

यही बडा एक भीषण व्याल था,
स्वरूप जो था विकराल काल का।
विशाल काले उसके शरीर की,
करालता थी मति-लोपकारिणी ॥
कभी फणी जो पथ मध्य वक्र हो
कँपा स्वकाया चलता सवेग था,
वनस्थली मे उस काल-त्रास का
प्रकाश पाता अति उग्र रूप था।

—अयोध्यासिंह उपाध्याय

यहा स्थायी भाव भय है। सर्प आलम्बन और उसकी भयकर आकृति आदि उद्दीपन। वन मे भय छा जाना अनुभाव है। आवेग मोह आदि सचारी भाव हैं।

७—वीभत्स रस

घृणा पैदा करने वाली वस्तु या दृश्य को देखकर या उसका वर्णन सुनकर मन मे जो घृणा का भाव उत्पन्न होता है, उसी से वीभत्स रस की व्यञ्जना होती है।

स्थायी भाव—घृणा।

आलवन—घृणा उत्पन्न करने वाली वस्तुएँ।

उद्दीपन—मांस आदि का सडना, उनसे दुर्गन्ध आना, कुत्तो, स्यारों आदि का मांस के लिये लडना, मक्खियो का भिन-भिनाना आदि।

अनुभाव—थूकना, मुँह फेरना, नाक सिकोडना, रोमाँच होना, आँख नाक का वन्द कर लेना आदि।

सचारी भाव—मूर्छा, व्याधि, जडता चिन्ता आदि।

उदाहरण

सिर पर बैठ्यो काग, आख दोउ खात निकारत,
खींचत जीभहिं स्यार, अतिहि आनन्द उर धारत।

गिद्ध जाघ कह खोदि खोदि कर मांस उचारत,
स्वास अगुरिन काटि काटि के खान विचारत।
बहु चील नोचि ले जाति तुव मोद बढ्यौ सबको हियो।
मनु ब्रह्म भोज जिजमान कोउ आज भिखारिन कँह दियो।

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

यहा घृणा स्थायी भाव है। युद्धस्थल मे मरे हुए योद्धाओ के शव आलम्बन हैं। श्वान, गिद्ध, स्यार आदि के द्वारा मांस खीचना उद्दीपन है। इसे देखकर नाक-भौं सिकोडना अनुभाव है।

८—अद्भुत रस

आश्चर्यजनक घटना या विचित्र वस्तु को देख अथवा सुनकर मन मे जो आश्चर्य का भाव पैदा होता है उसी से अद्भुत रस का आविर्भाव होता है।

स्थायी भाव—विस्मय।

आलम्बन—अद्भुत दृश्य, असाधारण वस्तु, अलौकिक कार्य।

उद्दीपन—विचित्र दृश्यो का वर्णन देखना व सुनना।

अनुभाव—रोमाच, स्तम्भ, स्वरभग, किंकर्त्तव्य-विमूढता।

सचारी भाव—हर्ष, वितर्क, जडता, औत्सुक्य, आवेग आदि।

उदाहरण

देख यशोदा शिशु के मुख मे
सकल विश्व की माया,
क्षण भर को वह बनी अचेतन
हिल न सकी कोमल काया।

यहा स्थायी भाव विस्मय है। भगवान् कृष्ण का मुह आलम्बन और उसमे सारे विश्व की माया देखना उद्दीपन है। क्षण भर के लिए अचेत हो जाना आदि अनुभाव तथा त्रास आदि सचारी भाव है।

९—शान्त रस

जगत् को मिथ्या तथा ससार की सभी वस्तुओ को अस्थिर व नश्वर समझने से निर्वेद के द्वारा शान्त रस की अनुभूति होती है।

स्थायी भाव—निर्वेद, शम ।

आलम्बन—ससार की असारता, पाप-पुण्य का ज्ञान ।

उद्दीपन—धर्मोपदेश, तीर्थ-भ्रमण, वेदान्त अध्ययन, सत्सग ।

अनुभाव—रोमाच, शत्रु-मित्र मे समभाव, गृह-त्याग, अश्रु-पात विषयो मे अरुचि आदि ।

सचारी भाव—स्मृति, निर्वेद, हर्ष, असूया, ग्लानि, दैन्य आदि ।

उदाहरण

इस मध्य निशा मे ओ अभाग,
तुझ को तेरे ही अर्थ त्याग—
जाता हूँ मैं यह वीतराग ।
दयनीय ठहर तू क्षीणक्षाण,
ओ क्षण भगुर भव, राम राम ।

—मैथिलीशरण गुप्त

यहाँ निर्वेद स्थायी भाव है । निस्सार ससार आलम्बन और इसे क्षण भगुर समझना उद्दीपन है । अपने को वीतराग मानकर गृह-त्याग करना अनुभाव है । विवोध, ग्लानि सचारी भाव है ।

१०—वात्सल्य रस

इन नौ रसो के अतिरिक्त वात्सल्य को भी एक और रस मान लिया गया है । भक्ति-रस भी वात्सल्य-रस के साथ आता है । वैसे ये दोनो रतिभाव के अन्दर आ जाते हैं ।

स्थायी भाव—प्रेम, रति ।

आलम्बन—शिशु ।

उद्दीपन—शिशु की विविध चेष्टाएँ और क्रीडाएँ ।

अनुभाव—हर्षित होना ।

सचारी भाव—हर्ष, रोमांच आदि ।

उदाहरण

भोजन करत चपल चित, इत उत अवसर पाय ।
भाजि चलत किलकत मुख, दधि ओठन लिपटाय ।।

—तुलसीदास

अभ्यास

१ रस किसे कहते है ? रस के अगो पर प्रकाश डालिये ।

२ वीभत्स और रौद्र रस का उदाहरण देकर उनका अन्तर स्पष्ट कीजिये ।

३ वीर रस की दो कविताएँ लिखिये ।

४ निम्नलिखित रचना मे रस-निष्पत्ति का निर्देश कीजिये—

चूमता था भूमितल को अर्थ विधु का भाल ।
बिछ रहे थे प्रेम के दृग, छाल बनकर बाल ।
छत्र-सा सिर पर उठा था प्राण-पति का हाथ ।
हो रही थी प्रकृति अपने आप पूर्ण सनाथ ।।

——

गुण

साहित्याचार्यों ने रस को काव्य की आत्मा कहा है। रस के बिना काव्य उच्च कोटि का नही हो सकता । जिस प्रकार वीरता, उदारता, त्याग, प्रेम, करुणा आदि गुणो से मनुष्य की आत्मा का उत्कर्ष प्रकट होता है उसी प्रकार माधुर्य, ओज और प्रसाद गुणो से काव्य की आत्मा रस का उत्कर्ष होता है। अत गुण का महत्व निर्विवाद है। वह काव्य की आत्मा रस का उत्कर्ष करने वाला है। साहित्याचार्यो का कहना है कि रस के उत्कर्ष के लिए गुणो का होना आवश्यक है।

गुणो की व्यञ्जना वर्णों से होती है। लेकिन इसका आशय यह नही है कि गुण वर्णों मे ही होते हैं। जिस प्रकार उदारता, त्याग, सहानुभूति, प्रेम, वीरता, साहस, उत्साह आदि गुण शरीर के नही आत्मा के हैं, उसी प्रकार गुण रस मे होते हैं वर्णों मे नही। दूसरे शब्दो मे यो कह सकते हैं कि गुण सरस काव्य मे ही होते है, नीरस काव्य मे नही। क्योकि नीरस काव्य, काव्य ही नही माना जाता जबकि गुण से युक्त काव्य सरस होता ही है। जिस प्रकार किसी पुरुष के शरीर की गठन, चाल आदि से उसकी वीरता की झलक मिलती है उसी प्रकार कठोर या मधुर शब्द से युक्त रचना को सुनते ही ओज, माधुर्य आदि की प्रतीति होने लगती है।

दोषो के अभाव मात्र का नाम गुण नही है। उनका भावात्मक पक्ष भी है। जिस प्रकार दोषो का न होना मात्र सौंदर्य नही है उसी प्रकार दोषो का अभाव मात्र गुण नही है। अधिकांश आचार्यों ने यही बात कही है। वाग्भट्ट ने स्पष्टत कहा है कि दोष न रहते हुए गुणो के बिना शब्द और अर्थ शोभा नही उत्पन्न कर पाते—

'अदोषावपि शब्दार्थौ प्रशस्येते न यैर्विना।'

भरत, वामन आदि आचार्यों ने शब्द और अर्थ के दश-दश गुण माने हैं और भोज ने तो उनकी सख्या चौबीस तक पहुँचा दी है। किन्तु आचार्य मम्मट ने इन दशो को माधुर्य, ओज, प्रसाद तीन के ही भीतर लाने का प्रयत्न किया है। अब गुण तीन ही माने जाते हैं—

ओज, प्रसाद और माधुर्य । इन तीनो गुणो का सम्बन्ध चित्त की तीन वृत्तियो से है । माधुर्य का द्रुति, द्रव्यशीलता या पिघलाने से है । ओज का दीप्ति से अर्थात् उत्तेजना से और प्रसाद का विकास से अर्थात् चित्त को खिला देने से ।

(१) **ओज**—इस गुण के द्वारा मन मे उमङ्ग, उत्साह आदि का सचार होता है । ओज निम्नलिखित वातो से उत्पन्न होता है—

(अ) किसी रचना मे टवर्ग (ट, ठ, ड, ढ, ण) की अधिकता ।

(आ) अन्य वर्गों (क, च, त, प वर्गो) के पहले और तीसरे तथा दूसरे और चौथे वर्णो के योग से बने सयुक्त शब्दो जैसे—क्रुद्ध, रिच्छ आदि की प्रचुरता ।

(इ) 'र' के सयोग से वने शब्दो जैसे—क्रुद्ध, वक्र आदि की प्रचुरता ।

(ई) लम्बे लम्बे समासो वाले शब्दो का प्रयोग ।

वीर और रौद्र रस मे ओज गुण का होना अनिवार्य है । वीभत्स और भयानक रस भी इस गुण से उत्कर्ष प्राप्त करते हैं । एक उदाहरण देखिये—

आयौ युद्धभूमि मे सनद्ध वर वीर क्रुद्ध,
रुद्ध बुद्धि ह्वै रहे विरुद्ध दल वारे है ।
कहे रतनाकर प्रभाकर कराकर से,
अविरल घाये विसिखाकर करारे है ।
धीरे भये ध्वस्त हस्त लाघव विलोकि सबै,
भागे जात त्रस्त व्यस्त बीरता बिसारे है ।
वान लेत मण्डत उमण्डत न पेखि परै,
देखि परे रुण्ड मुण्ड खण्डित वगारे है ।

—जगन्नाथ प्रसाद 'रत्नाकर'

(२) **माधुर्य**—जिस गुण के कारण किसी रचना को पढ या सुनकर चित्त आनन्द से द्रवित हो जाय, पिघल जाय और उसमे

कठोरता विरक्ति, उमङ्ग आदि पैदा न हो उसे माधुर्य कहते है। इस गुण के लिए निम्न बातें आवश्यक है—

(अ) रचना मे टवर्ग के सभी वर्णों का अभाव,

(आ) र और पचम वर्णों (ङ, ञ, ण, न, म आदि) के सयोग से बने शब्दो का अभाव।

(इ) लम्बे लम्बे समास वाले शब्दो का अभाव।

दूसरे शब्दो मे यो कह सकते है कि ओज गुण के लिए जो जो बातें आवश्यक हैं वे सभी इस गुण के लिए अनावश्यक हैं। उसका सम्बन्ध चित्त की कोमल वृत्तियो से है। सयोग शृङ्गार, करुण, विप्रलभ और शान्त रस मे यह गुण क्रमश बढता है। नीचे एक उदाहरण देखिये—

पुर ते निकसी रघुवीर वधू धरि धीर दये मग मे डग द्वै।
झलकी भरि भाल कनी जल की पुट सूखि गये मधुराधर वै।
फिर बूझति हैं चलनो अब कैतिक पर्णकुटी करि हो कित ह्वै।
तिय की लखि आतुरता पिय की अखिया अति चारु चली जल च्वै।

(३) **प्रसाद**—जिस गुण के कारण किसी रचना का अर्थ तुरन्त समझ मे आ जाय, उसका पूरा प्रभाव चित्त पर पड जाय उसे प्रसाद गुण कहते हैं। यदि किसी रचना का अर्थ सुनने के साथ ही सुनने वाले की समझ मे आ जाय तो उसे प्रसाद गुण से पूर्ण माना जाता है। जिस प्रकार पके हुए अगूर का रस बाहर से झलकता है उसी प्रकार प्रसाद गुण से युक्त रचना का भावार्थ शब्दो मे झलकता है। ऐसी रचना के हृदयङ्गम होने मे देर नही लगती। प्रसाद का अर्थ है प्रसन्नता। वह सभी रचनाओ के लिए आवश्यक है। इसीलिए जहा माधुर्य और ओज गुणो का तीन तीन रसो से सम्बन्ध है वहा प्रसाद का सम्बन्ध सभी रसो से है। सूखे ईंधन मे अग्नि के प्रकाश अथवा स्वच्छ कपडे मे जल की झलक की भाँति प्रसाद गुण द्वारा चित्त मे एक साथ अर्थ का प्रकाश हो जाता है। प्रसाद गुण माधुर्य और ओज दोनो के साथ रह सकता है। इसलिए उसके दो उपमान अग्नि और जल दिये गये हैं।

अग्नि का सम्बन्ध ओज से है और जल का माधुर्य से। विरोध माधुर्य और ओज का है क्योकि एक का सम्बन्ध चित्त की कोमल वृत्तियो से है और दूसरे का कठोर वृत्तियो से।

प्रसाद गुण की आवश्यकता हर रस मे रहती है। यदि प्रेम की बात कहते ही समझ मे न आए, यदि करुण सन्देश कानो के द्वार से तत्काल ही हृदय मे घुस न गया तो उसे निष्फल ही समझना पडेगा। प्रेमालाप के समय अथवा अन्यायी पर आक्रमण करते समय कोई कोप लेकर नही बैठ सकता। इस गुण का एक उदाहरण देखिये—

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहू पुर को तजि डारो।
आठौं सिद्धि नवो निधि को सुख, नन्द की गाय चराय बिसारो।
रसखानि कबौं इन आँखिन ते ब्रज के बन बाग तडाग निहारो।
कोटिन हू कलधौत के धाम करील के कुञ्जन ऊपर वारौ।

छन्द

वाक्य-रचना के दो प्रकार हैं—गद्य और पद्य। गद्य लिखने के लिए कर्त्ता, कर्म, क्रिया के क्रम का ध्यान रखना पड़ता है किन्तु पद्य मे इस क्रम को अधिक ध्यान मे रखने की आवश्यकता नही होती। हाँ, व्याकरण के लिंग, वचन, कारक, सन्धि, समास आदि का अवश्य ध्यान रखना पडता है। जैसा हम बोलते है उसी का लिखित रूप गद्य है, किन्तु पद्य छन्द-बद्ध रचना है। आचार्य दण्डी के अनुसार छन्द उसे कहते हैं जो आनन्द प्रदान करता है। छन्द की बड़ी व्यापक परिभाषा है। पहिचान की सरलता के लिए हम कह सकते है कि साधारणत जिस रचना मे गण, मात्रा, यति, चरण, तुक आदि का पूर्ण ध्यान रखा जाता है उसे छन्द कहते है। छन्द तीन प्रकार के होते है—मात्रिक, वर्णिक और मुक्तक। मात्रिक छन्दो का निर्माण मात्राओ के आधार पर होता है और वर्णिक छन्दो का निर्माण वर्णो के आधार पर। वर्णिक छन्द मे वर्ण की एक निश्चित सख्या होती है तथा मात्रिक छन्द मे मात्राओ की। मुक्तक छन्द मात्राओ और वर्णो के बन्धन से मुक्त होता है।

वर्ण के बोलने मे जितना समय लगता है उसे 'मात्रा' कहते हैं। मात्रा दो प्रकार की होती हैं—ह्रस्व और दीर्घ। छन्द-शास्त्र मे अक्षर को वर्ण कहा जाता है। जिस वर्ण या अक्षर मे एक मात्रा हो उसे 'लघु' और जिसमे दो हो उसे 'गुरु' कहते हैं। दूसरे शब्दो मे ह्रस्व को लघु और दीर्घ को गुरु कहते हैं। जिन वर्णो के उच्चारण मे कम समय लगता है उनको ह्रस्व और जिनके उच्चारण मे अधिक समय लगता है उन्हे दीर्घ कहते है। लघु का चिह्न '।' तथा गुरु का चिह्न 'ऽ' होता है। उदाहरण के लिए 'राम दयाल'—ऽ।।ऽ।—२, १, १, २, १—मे सात मात्राएँ है।

लघु और गुरु जानने के लिए नीचे लिखी बातो का ध्यान रखना आवश्यक है

(क) अ, इ, उ और ऋ ये चारो स्वर लघु होते हैं।

तथा अ, इ, उ और ऋ की मात्रा वाले अक्षर भी लघु होते है।
जैसे सु, कि, कु आदि।

(ख) आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अ, अ इन सभी मात्राओ वाले अक्षर गुरु माने जाते है। जैसे का, की, कू, के आदि।

(ग) यदि किसी व्यजन पर गुरु की मात्रा हो तथा साथ ही अनुस्वार अथवा विसर्ग हो तो दो मात्राएँ ही गिनी जाती है। जैसे हैं, त आदि।

(घ) यदि किसी व्यजन पर चन्द्र विन्दु लगा हो तो वह लघु माना जाता है।

(ङ) सयुक्ताक्षर से पूर्व का अक्षर लघु होने पर भी गुरु मान लिया जाता है। जैसे 'कुन्तल' (ऽ । ।)।

(च) किसी किसी स्थान पर उच्चारण के अनुसार लघु को गुरु और गुरु को लघु पढते हैं।

गण

तीन अक्षरो के समूह को गण कहते हैं। लघु और दीर्घ के क्रम से गण आठ माने गये है

गण का नाम	रूप	उदाहरण
यगण	। ऽ ऽ	बुलाना
मगण	ऽ ऽ ऽ	कोठारी
तगण	ऽ ऽ ।	आभार
रगण	ऽ । ऽ	बेबसी
जगण	। ऽ ।	कमाल
भगण	ऽ । ।	वासर
नगण	। । ।	कमल
सगण	। । ऽ	कमला

इन आठो गणो को याद रखने के लिये निम्नलिखित सूत्र याद कर लेना लाभदायक रहेगा। वह है—'यमाताराजभानसलगा'। अन्तिम दो को छोडकर इसके प्रथम आठ अक्षर आठ गणो के ही नाम है। जैसे, पहले अक्षर 'य' का मतलब है—यगण और दूसरे 'मा' का अर्थ है मगण।

इस प्रकार उपर्युक्त सूत्र गणो के नाम याद रखने मे तो हमारी सहायता करता ही है, गणो की पहिचान मे भी सहायता करता है। यदि आपको किसी भी गण का स्वरूप ज्ञात करना हो तो इस सूत्र मे उस गण का नाम ढूँढिये और उसके आगे के दो और अक्षरो को मिलाकर एक गण बना लीजिये। इस गण का जो स्वरूप होगा वही उस गण का स्वरूप है। उदाहरण के लिए यदि यगण का स्वरूप मालूम करना हुआ तो 'यमाता' अर्थात् यगण का स्वरूप । ऽ ऽ मालूम हो जायगा।

छन्दो के विषय मे आगे कुछ जानने के पहले यह जान लेना चाहिए कि यति, गति, चरण, लय आदि किसे कहते है। छन्दो के पढने मे जो एक प्रकार का प्रवाह होता है उसे गति या लय कहते हैं। मात्राएँ पूरी होने पर भी यदि छन्द मे लय न हो तो वह छन्द नही बनता, क्योकि उसमे गति भङ्ग होने का दोष आ जाता है।

छन्द को पढते समय जहाँ ठहरना पडता है उसे यति कहते है। इसका प्रयोग भाव को अधिक स्पष्ट करने तथा भाषा मे सुन्दर गठन लाने के लिए किया जाता है।

छन्द के टुकड़ो को चरण कहते है। साधारणत हर एक छन्द मे चार चरण हुआ करते हैं। कुण्डलियाँ और छप्पय मे छ: चरण होते हैं। जिसके चारो चरणो मे मात्राएँ बराबर हो वह सम छन्द कहा जाता है। जैसे . द्रुतविलम्बित, चौपाई, रोला आदि और जहाँ पहले, तीसरे तथा दूसरे और चौथे चरण मे बराबर मात्राएँ हो वे अर्द्ध-सम कहलाते हैं। जिनके चारो चरण एक से न हो अथवा जिनमे चार से अधिक चरण हो वे विषम कहलाते हैं।

छन्दो के चरण के अन्त मे जो एक से स्वर-सहित व्यजन रखे जाते है उन्हे तुक या अन्त्यानुप्रास कहते हैं।

मात्रिक छन्द

(१) चौपई

इस छन्द के प्रत्येक चरण मे १५ मात्राएँ होती है। अन्त मे गुरु-लघु होता है।

उदाहरण

। । ऽ । ऽ ऽ । । । ऽ । =१५ मात्राएँ
हम चौधरी डोम सरदार
अमल हमारा दोनो पार
सब मसान पर हमरा राज
कफन माँगने का है काज ।

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

(२) चौपाई

इस छन्द के प्रत्येक चरण मे १६ मात्राएँ होती हैं। चरण के अन्त मे तगण (ऽ ऽ ।) अथवा जगण (। ऽ ।) नही होना चाहिए ।

उदाहरण

ऽ । । ऽ । । ऽ । । । । ऽ =१६ मात्राएँ
सन्त असन्तन के अस करणी, जिमि कुठार चन्दन आचरणी ।
काटे मलय परसु सुनु भाई, निज गुण देय सुगन्ध बसाई ।

—तुलसीदास

(३) दोहा

इसके प्रथम और तृतीय चरण मे १३, १३ तथा दूसरे और चौथे चरण मे ११, ११ मात्राएँ होती हैं। तुक दूसरे और चौथे चरण मे मिलती है। अन्त मे गुरु लघु अवश्य आना चाहिये ।

उदाहरण

ऽ । ऽ । ऽ ऽ । ऽ=१३ । । । । ऽ । । ऽ ।=११
प्रेम वारुनी छान के, वरुन भये जल-धीस ।
प्रेमहि ते विष पान करि, पूजे जात गिरीस ।

—रसखान

(४) सोरठा

इसके प्रथम और तीसरे चरण मे ११, ११ तथा दूसरे और चौथे चरण मे १३, १३ मात्राएँ होती है। इसकी तुक दूसरे-चौथे चरण मे न होकर पहले और तीसरे चरण मे होती है। पहले और तीसरे

के अन्त मे गुरु लघु होता है। यह दोहा छन्द का बिल्कुल उल्टा होता है।

उदाहरण

S । S । S S ।=११ S । । S । । । । । । । ।=१३
मूक होय वाचाल, पँगु चढे गिरिवर गहन।
जासु कृपासु दयाल, हरहु सकल कलिमल दहन॥

—तुलसीदास

(५) गीतिका

दोहा और सोरठा की तरह इस छन्द मे भी चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण मे २६ मात्राएँ होती है तथा चौदहवी और बारहवीं मात्रा पर यति होती है। अन्त मे लघु के बाद गुरु आता है। कभी कभी तीन लघु भी आ जाते हैं। इसमे ३, १०, १७ और २४ वी मात्राएँ लघु होनी चाहिये।

उदाहरण

S । S । । S । । S S । S । । S । S=२६
धर्म के मग मे अधर्मों से कभी डरना नही।
चेत कर चलना कुमारग मे कदम घरना नही।
शुद्ध भावो मे भयानक भावना भरना नही।
बोध वर्धक लेख लिखने मे कभी डरना नही॥

—नाथूराम शकर शर्मा

(६) हरिगीतिका

हरिगीतिका छन्द मे चार चरण होते है। प्रत्येक मे २८ मात्राएँ होती हैं—१६ और १२ मात्राओ पर यति होती है। अन्त मे लघु-गुरु आता है।

उदाहरण

। । । । । S । । S । S S S । । S । S । S=२८
कछु जननि दे परितीति जासो रामचन्द्रहिं आवई।
शुभ शीश की मणि दई यह कहि सुयश तब जग गावई।

सब काल ह्वै हो अमर अरु तुम समर जय पद पाइहो,
सुत आजु ते रघुनाथ के तुव परम भक्त कहाइहो ।।

—केशवदास

(७) रोला

इसके भी चार चरण होते है । प्रत्येक चरण मे ११, १३ मात्राओ के विराम मे २४ मात्राएँ होती हैं ।

उदाहरण

। । । । S S । । । S । । । । । । । S S = २४
तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये,
झुके कूल सो जल परसन हित मनहुँ सुहाये ।
किधौं मुकुर मे लखत उझकि सब निज निज शोभा,
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा ।

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

(८) कुण्डलिया

इस छन्द मे छ चरण होते है । आदि मे एक दोहा तथा अन्त मे एक रोला होता है । इस प्रकार दोहा-रोला के योग से यह छन्द बनता है । दोहे का चतुर्थ चरण, रोला का प्रथम चरणाश बनाया जाता है । इस छन्द मे एक और विशेष बात यह होती है कि इसका पहला शब्द ही सबसे अन्त मे आता है । इसमे कुल १४४ मात्राएँ होती हैं ।

उदाहरण

लाठी मे गुण बहुत हैं, सदा राखिये सङ्ग,
गहर नदी नारा जहाँ, तहा बचावे अङ्ग ।
तहा बचावे अग, झपटि कुत्ते को मारे,
दुश्मन दावागीर, तिनहुँ को मस्तक झारे ।
कह गिरधर कविराय, सुनो हे धूर के बाठी,
सब हथियारन छाँडि हाथ मे लीजै लाठी ।।

(९) रूपमाला

इस छन्द मे चार चरण होते है । प्रत्येक चरण मे २४ मात्राएँ होती हैं और १४, १० पर यति होती है । अन्त मे गुरु-लघु होता है ।

उदाहरण

ऽ। ऽ ऽ ऽ। ।। ऽ ऽ।।। ऽ ऽ।=२४
चूमता था भूमि तल को, अर्द्ध विधु सा भाल
बिछ रहे थे प्रेम के दृग, जाल बनकर बाल।
छत्र सा सिर पर उठा था, प्राणपति का हाथ।
हो रही थी प्रकृति अपने आप पूर्ण सनाथ।

(१०) ताटंक या लावणी

इस छन्द मे भी चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण मे १६, १४ के विराम से ३० मात्राएँ होती हैं। अन्त मे दो गुरु होते हैं।

उदाहरण

ऽ। ऽ। ऽ ।ऽ ऽ। ।। ।। ।। ऽऽ ।।ऽऽ=३०
एक बार की सुनो बात तुम, जग यह सारा इठलाना,
मारी गई बुद्धि भोला की प्रभु शकर हुआ दिवाना।
लेके भांग पीस कर छानी, और हुआ मतवाला,
थेई थेई लगा नाचने खूब ओढ कम्बल काला।

(११) उल्लाला

इस छन्द मे चार चरण होते हैं। इसके प्रथम और तृतीय चरण मे १५-१५ मात्राएँ होती है तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण मे १३-१३। इस प्रकार १५ और १३ के विराम से २८ मात्रा पर यति होती है।

उदाहरण

ऽऽ ।ऽ। ऽ।। ।।। ऽ। ।।। ।। ।। ।ऽ=२८
चौंके विरचि शकर सहित, कोल कमठ अहि कल मल्यो।
ब्रह्मण्ड खण्ड कियो चण्ड धुनि, जबहि राम शिव धनु दल्यो।।

(१२) आल्हा या वीर

इस छन्द मे १६, १५ के विराम से कुल ३१ मात्राएँ होती हैं। अन्त में गुरु-लघु होता है।

उदाहरण

। । । । ऽ ऽ । । ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ । ऽ । । । । ऽ । = ३१

सुमिर भवानी जगदम्बा के औ गणेश के चरण मनाइ,
आदि सुरसती तुमको ध्याऊँ माता कण्ठ विराजो आइ।

(१३) **बरवै**

इस छन्द में भी चार चरण होते हैं। पहले और तीसरे चरण में १२, १२ मात्राएँ होती हैं तथा दूसरे और चौथे चरण में ७, ७। दूसरे और चौथे चरण के अन्त मे जगण का होना आवश्यक है।

उदाहरण

ऽ । । । । ऽ । । । । । । । । ऽ ।

चपक हरवा अङ्ग मिलि, अधिक सुहाय,
जानि परे सिय हियरे जब कुम्हलाय।

—तुलसीदास

(१४) **छप्पय**

इस छन्द मे छ चरण होते हैं। पहिले रोला और फिर उल्लाला के मिलने से यह बनता है।

उदाहरण

मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत, मिटि जात जमुन जल,
कै तारागण ठगन लुकत, प्रकटत शशि अविकल,
कै कालिन्दी नीर तरङ्ग जितो उपज़ावत,
तितनो ही धरि रूप मिलन हित तासो धावत।
कै बहुत रजत चकई चलत, कै फुहार जल उच्छरत,
कै निसिपति मल्ल अनेक विधि, उठि बैठत कसरत करत॥

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

वर्णिक छन्द

(१) **भुजंग-प्रयात**

यह चार चरण का छन्द है। इसके प्रत्येक चरण मे चार यगण होते हैं। (यगण, यगण, यगण, यगण)

उदाहरण

। ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ

छुटी कण्ठमाला लुटे हार टूटे
खसैं फूल फैले लसे केश छूटे,
फटी कञ्चुकी किंकनी चारु छूटी,
पुरी काम की सो मनो रुद्र लूटी ।

—केशवदास

(२) द्रुत-विलम्बित

यह भी चार चरण का छन्द है । इसके प्रत्येक चरण मे क्रमश. एक नगण, दो भगण तथा एक रगण होता है । (नगण, भगण, भगण, रगण)

उदाहरण

। । । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ

दिवस का अवसान समीप था ।
गगन था कुछ लोहित हो चला ।
तरु शिखर पर थी अब राजती,
कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा ।

—अयोध्यासिंह उपाध्याय

(३) वंशस्थ

इस छन्द के चार चरण होते हैं । प्रत्येक चरण मे क्रमश एक जगण, एक तगण, एक जगण और एक रगण होता है । (जगण तगण, जगण, रगण)

उदाहरण

। ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । ऽ

मुकुन्द चाहे वसुदेव पुत्र हो ।
कुमार होवें अथवा ब्रजेश के ।।
विके उन्हीं के कर सर्व गोप है ।
बसे हुए हैं मन नेत्र में वही ।।

—अयोध्यासिंह उपाध्याय

(४) बसंततिलका

इस छन्द मे चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण मे क्रमश एक तगण, एक भगण, दो जगण और दो गुरु होते हैं। (तगण, भगण, जगण, जगण, गुरु, गुरु)

उदाहरण

SS ।S। ।। S। ।S।S S
वशी निनाद सुन त्याग निकेतनो को।
दौडे समस्त सविनोद उमङ्ग डूबे॥
गोपी असख्य बहु गोप अनेक बाला।
आई विहार रुचि से वन मेदिनी मे॥

—अयोध्यासिंह उपाध्याय

(५) मालिनी

यह चार चरण का छन्द है। इसके प्रत्येक चरण मे क्रमश दो नगण, एक मगण और दो यगण होते हैं। (नगण, नगण, मगण, यगण, यगण) आठवें वर्ण पर यति होती है।

उदाहरण

।।।। ।।S S S। SS। SS
सुहृदय जन के जो, कण्ठ का हार होता,
मुदित मधुकरी का, जीवनाधार होता।
वह कुसुम रङ्गीला, धूल मे जा पडा है।
नियति नियम तेरा, भी बडा ही कडा है।

—अयोध्यासिंह उपाध्याय

(६) मंदाक्रांता

यह छन्द चार चरण का होता है। इसके प्रत्येक चरण मे क्रमश एक मगण, एक भगण, एक नगण, दो तगण और दो गुरु होते हैं। इसके चौथे, दसवें तथा सत्रहवें वर्ण पर यति होती है। (मगण, भगण, नगण, तगण, तगण, गुरु, गुरु)

उदाहरण

S S S S I I I I I S S I S S I S S
सूखी जाती, मलिन लतिका, जो धरा मे पडी हो,
तो तू पावो, निकट उसको, श्याम के ला गिराना।
यो सीधे तू, प्रकट करना, प्रीति से वञ्चिता हो,
मेरा होना अति मलिन औ, सूखते नित्य जाना ॥

—अयोध्यासिह उपाध्याय

(७) शार्दूल-विक्रीडित

इस छन्द के चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में क्रमश एक मगण, एक सगण, एक जगण, एक सगण, दो तगण और एक गुरु होता है। बारहवें तथा उन्नीसवे वर्ण पर यति होती है (मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण, गुरु)

उदाहरण

S S S I I S I S I I I S S S I S S I S
आ बैठी उर मोह जन्य जड़ता विद्या विदा हो गई।
पाई कायरता मलीन मन की हा, वीरता खो गई ॥
जागी दीन दया दरिद्र मन की श्री सम्पदा सो गई।
माया शकर की हँसाय हमको रुद्रा बनी रोगई ॥

—नाथूराम शकर शर्मा

(८) शिखरिणी

इस छन्द में चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में क्रमश: एक यगण, एक मगण, एक नगण, एक सगण, एक भगण और अन्त में एक लघु और एक गुरु होता है। छठे तथा ११ वें वर्ण पर यति होती हैं। (यगण, मगण, नगण, सगण भगण और लघु-गुरु)

उदाहरण

I S S S S S I I I I I S S I I I S
सलोनी आभा सी, सुखद सुषमा सी, सरस सी।
दिखा जो देती थी, झलक अपनी ही, सरल सी।

अनूठे गीतो से, तरल मन से, खीच कर जो ।
बना ही देती थी, बहु गुणमयी, भू विपिन को ।।

(९) शालिनी

यह चार चरण का छन्द होता है। उसके प्रत्येक चरण मे एक मगण, दो तगण और दो गुरु होते हैं। चौथे और ग्यारहवें वर्ण पर यति होती है। (मगण, तगण, तगण, गुरु-गुरु)

उदाहरण

SS S S S। S S।S S
दोनो की श्री देख के सोचते थे।
जीये दोनो ओर के शूर सारे।
गोरे काले दिव्य शस्त्रास्त्र वाले।
तेजस्वी हैं तप्त भास्वान जैसे ।।

(१०) तोटक छन्द

इस छन्द के प्रत्येक चरण मे चार सगण होते है।

उदाहरण

।।S। ।S ।।S। ।S
जगदीश सदा भवताप हरे।
इस जीवन मे नव साध भरें।
जन मान इसे सुख दान करें,
इसके मन-मन्दिर मे बिहरें ।।

(११) मदिरा सवैया (मालिनी)

यह चार चरण का छन्द है। इसके प्रत्येक चरण मे सात भगण और एक गुरु होता है। इसे मालिनी सवैया भी कहा जाता है।

उदाहरण

S। ।S।। S।। S ।। S। ।S।। S। ।S
तोरि शरासन शकर को, शुभ सीय स्वयम्वर माँझ वरी।
ताते बढ्यो अभिमान महा, मन मेरीयो नेक न सक करी।
सो अपराध पर्यो हम सो, अब क्यो सुधरे हम हूँ धौ कहौ।
बाहु दे दोउ कुठारहिं केशव, आपने धाम को पन्थ गहो ।।

(१२) **मत्त-गयंद सवैया (मालती)**

इस छन्द के चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण मे सात भगण और दो गुरु होते हैं। इसे मालती सवैया भी कहा जाता है।

उदाहरण

S I I S I I S I I S I I S I I S I I S I I S S
जान गये सब लोग इसे अब है तुममे कितनी निठुराई।
क्यो इतने बनते तुम हो खलती न तुम्हे जब पीर पराई।
था करना न निबाह तुम्हे तब क्यो तुमने चित चाह बढाई।
हो रहते दिल मे फिर क्यो अपने घर मे यह आग लगाई।

(१३) **सुमुखी सवैया**

यह चार चरण का छन्द है। इसके प्रत्येक चरण मे सात जगण और अन्त मे एक लघु और गुरु होता है।

उदाहरण

I S I I S I I S I I S I I S I I S I I S I I S
जुलीक लगे सिय रामहिं साथ चले बन माहि फिरे न चहे।
हमे प्रभु आयसु देहु चले न डरे सब सो कर जोरि कहे॥
चले कछु दूरि नपै पग धूरि भले फल जन्म अनेक लहे।
सिया सुमुखी हरि फेरि तिन्हे बहु भाँतिन ते समुझाय कहे॥

(१४) **दुर्मिल सवैया**

इस छन्द मे चार चरण होते है। इसके प्रत्येक चरण मे आठ सगण होते हैं।

उदाहरण

I I S I I S I I S I I S I I S I I S I I S I I S
हम डूब रहे दुख सागर मे अब बाह प्रभो धरिये धरिये,
अखिलेष विशेष कहे हम क्या अब शीघ्र कृपा करिये करिये।
यह भारत गारत हो न कही, धन धान्य यहाँ भरिये भरिये,
बस हो अब नैंक विलम्ब नही यह दीन दशा हरिये हरिये॥

(१५) **कवित्त अथवा मनहरण**

इस छन्द के प्रत्येक चरण मे १६, १५ के विराम से ३१ वर्ण

होते है। अन्त में गुरु होता है। इसमे ८, ८, ८ और ७ वर्ण पर यति होता है।

उदाहरण

सुनिये विटप वर, पुहुप तिहारे हम,
राखिहो हमे तो शोभा, रावरी बढाएँगे।
तजिहो हरषि के तो, विलग न माने कछु,
जहाँ जहाँ जैहे, तहाँ दूनो जस गाएँगे।
सुरन चढ़ेंगे नर सिर न चढ़ेंगे फेरि,
सुकवि अनीस हाथ हाथन विकाएँगे।
देस मे रहेगे परदेस मे रहेगे काहू—
भेस मे रहेगे तऊ रावरे कहाएँगे।

—अनीस

(१६) घनाक्षरी

इस छन्द के प्रत्येक चरण मे ३२ वर्ण होते है। शेष नियम मनहरण कवित्त की ही भाँति होते है।

उदाहरण

कब से तुम्हारी राह दिन-रात मैं देखता हूँ,
दयाघन दयाकर दया दिखलाओ तुम।
यह तो बताओ तुम छिपे किस लोक मे हो,
आओ शीघ्र मुझे मत तरसाओ तुम।
राधा के सहित करो मेरे उर मे निवास,
और सब मेरी भव बाधा को मिटाओ तुम।
जाऊँ कहाँ गोपाल शरण तुम्हारी छोड,
नाम ही के नाते अब मुझे अपनाओ तुम॥

—गोपालशरण सिंह

———

अलंकार

'अलङ्कार' दो शब्दो से बना है—'अल' और 'कार'। इनका अर्थ है—शोभा बढाने वाला। आचार्य दण्डी के अनुसार काव्य की शोभा बढाने वाले धर्मो को अलङ्कार कहते है। साधारणत हम अलङ्कार उन्हे कहते है जो कविता की शोभा बढा देते हैं। जिस प्रकार लौकिक व्यवहार मे गहने तथा रत्नो के आभूषण शरीर को सुशोभित करने के कारण अलङ्कार कहे जाते हैं, उसी प्रकार काव्य को अलकृत करने वाले शब्दो की रचना को अलङ्कार कहते है। आचार्य दण्डी ने काव्यादर्श मे यही बात कही है

"काव्य शोभाकरान्धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते।"

अलङ्कार प्रधानत· दो भागो मे विभक्त हैं—शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार। शब्द रचना के वैचित्र्य द्वारा काव्य को शोभित करने वाले अलङ्कारो को शब्दालङ्कार कहते हैं तथा अर्थ-वैचित्र्य की रचना द्वारा काव्य को शोभित करने वाले अलङ्कारो को अर्थालङ्कार कहते है। शब्दालङ्कारो की विचित्रता वर्णों अथवा शब्दो की पुनरावृत्ति और क्लिष्ट शब्दो के प्रयोग पर निर्भर है। अर्थालङ्कारो की विचित्रता अर्थ वैचित्र्य पर। इन दो के अतिरिक्त एक और अलङ्कार भी मान लिया गया है—उभयालङ्कार। उभयालङ्कार मे शब्द और अर्थ दोनो का ही वैचित्र्य समाया रहता है। अलङ्कारो का यह शब्द और अर्थगत् विभाजन अन्वय और व्यतिरेक पर निर्भर रहता है। कारण के रहने पर कार्य का अवश्य होना अन्वय है और कारण के अभाव मे कार्य का अभाव व्यतिरेक है। मतलब यह है कि जो अलङ्कार किसी विशेष शब्द की स्थिति रहने पर ही रह सकता है और उस शब्द के स्थान पर उसी अर्थ वाला दूसरा शब्द रख देने पर नही रह सकता, वह शब्दालङ्कार है। लेकिन जो अलकार-शब्दाश्रित नही होता अर्थात् जिन शब्दो के प्रयोग द्वारा किसी अलकार की स्थिति रहती है यदि उन शब्दो के स्थान पर उसी अर्थ वाले दूसरे शब्द रख देने पर भी उस अलङ्कार की स्थिति रह सकती हो तो वह अर्थालङ्कार है।

शब्दालङ्कार के मुख्य भेद ये है

(१) वक्रोक्ति (२) अनुप्रास (३) यमक (४) श्लेष (५) वीप्सा (६) पुनरुक्ति वदाभास (७) चित्र और (८) प्रहेलिका ।

(१) वक्रोक्ति अलङ्कार:

किसी के कहे हुए वाक्य का किसी अन्य व्यक्ति द्वारा—श्लेष से अथवा काकु उक्ति से—यदि कोई अन्य अर्थ निकाल लिया जाय तो उसे वक्रोक्ति अलङ्कार कहते हैं।

उदाहरण

"राम सप्रेम कहेउ मुनि पाही, नाथ कहहु अब किहि मग जाही ।
मुनि मन विहसि राम सन कहही, सुगम सकल मग तुम कहँ अहही ।"

उपर्युक्त चौपाई मे रामचन्द्रजी भारद्वाज मुनि से वन जाने का मार्ग पूछते हैं किन्तु भारद्वाजजी 'मग' शब्द का व्यापक अर्थ लेकर उत्तर देते हैं कि आपके लिए तो सारे मार्ग सरल है ।

(२) अनुप्रास अलङ्कार

वर्णों के साम्य को अनुप्रास अलकार कहते है । अनुप्रास के प्रधान भेद दो हैं—वर्णानुप्रास और शव्दानुप्रास । वर्णानुप्रास मे निरर्थक वर्णों की आवृत्ति होती है और शव्दानुप्रास या लाटानुप्रास मे सार्थक वर्णों की ।

वर्णानुप्रास के दो प्रमुख भेद हैं—छेकानुप्रास और वृत्यानुप्रास ।

(अ) छेकानुप्रास

अनेक वर्णों के एक बार सादृश्य होने को छेकानुप्रास कहते है ।

"मन्द मन्द चलि अलिन को करत गन्ध मद अन्ध ।
कावेरी वारी पवन पावन परम सुछन्द ।।"

यहाँ 'गन्ध' और 'अन्ध' मे 'न्ध' की, 'कावेरी' और 'वारी' मे 'री' की तथा पवन और 'पावन' मे 'वन' की आवृत्ति हुई है ।

(आ) वृत्यानुप्रास

वृत्तिगत अनेक वर्णों की अथवा एक वर्ण की अधिक वार आवृत्ति किये जाने को वृत्यानुप्रास कहते हैं ।

उदाहरण

चन्दन चन्दक चाँदनी, चन्दसाल नव वाल ।
नित ही चित चाहतु चतुर, ये निदाघ के काल ।।

यहाँ 'च' वर्ण की अनेक बार आवृत्ति हुई है ।

(इ) लाटानुप्रास

शब्द और अर्थ दोनो की आवृत्ति मे तात्पर्य भिन्नता होने को लाटानुप्रास कहते हैं ।

उदाहरण

वे घर हैं वन ही सदा, जो ह्वै वन्धु वियोग ।
वे घर हैं वन ही सदा, जो नहिं वन्धु वियोग ।।

यहाँ पहली पक्ति मे जो शब्द आये हैं लगभग वे ही शब्द दूसरी पक्ति मे भी आये हैं—केवल तात्पर्य भिन्न है ।

(३) यमक अलङ्कार

जहाँ शब्दो की आवृत्ति बार-बार हो परन्तु अर्थ मे भिन्नता रहे वहाँ यमक अलङ्कार होता है ।

उदाहरण

ऊँचे घोर मन्दिर के अन्दर रहन वारी,
ऊँचे घोर मन्दिर के अन्दर रहाती हैं,
कन्द मूल भोग करें, कन्द मूल भोग करे,
तीन वेर खाती, तै वे तीन वेर खाती है ।
भूखन शिथिल अङ्ग, भूखन शिथिल अङ्ग,
विजन डुलाती, तै वे विजन डुलाती है ।
भूषन भनत शिवराज वीर तेरे त्रास,
नगन जडाती तै वे नगन जडाती हैं ।।

—**भूषण**

उपर्युक्त कवित्त मे 'मन्दिर', 'कन्द', 'वेर', 'मूल', 'भूखन', 'नगन', 'विजन' आदि शब्दो की दो-दो बार आवृत्ति हुई है और प्रत्येक वार उनका अर्थ अलग होता है ।

(४) श्लेष अलङ्कार

जहाँ श्लिष्ट शब्द से अनेक अर्थों को ध्वनित किया जाता है, वहाँ श्लेष अलकार होता है। दूसरे शब्दो मे जहाँ किसी शब्द या वाक्य के दो या दो से अधिक अर्थ निकलते हो, वहाँ श्लेष अलकार होता है।

उदाहरण

मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाई परे, श्याम हरित द्युति होय।।

—बिहारी

यहाँ 'श्याम' और 'हरित' शब्द के दो से अधिक अर्थ होते है।

(५) वीप्सा अलङ्कार

जहाँ मनोभावो को प्रकट करने के लिए शब्दो अथवा पदो पर विशेष बल दिया जाता है, वहाँ वीप्सा अलकार होता है।

उदाहरण

हमको लिख्यो है कहा, हमको लिख्यो है कहा?
हमको लिख्यो है कहा, कहन सबै लगी।

—रत्नाकर

(६) पुनरुक्ति-वदाभास अलङ्कार

भिन्न आकार वाले शब्दो का वस्तुत एक अर्थ न होने पर भी एक अर्थ की प्रतीति होने को पुनरुक्ति वदाभास अलङ्कार कहते हैं। इस अलङ्कार मे पुनरुक्ति का आभास होता है—वस्तुत पुनरुक्ति नही होती।

उदाहरण

ग्रीषम को भीषण प्रताप जग जाग्यो भये,
सीत के प्रभाव भाव भावना भुलानी के।
कहे रत्नाकर त्यो जीवन भयो है जल,
जाके बिना मानस सुखात सब प्रानी के।

—रत्नाकर

यहा जीवन और जल शव्दो का रूप भिन्न-भिन्न होने पर भी अर्थ एक ही प्रतीत होता है। किन्तु जीवन का अर्थ प्राण देने वाला है, अतः पुनरुक्ति का आभास-मात्र है।

(७) **चित्र अलङ्कार**

वर्णों की रचना विशेष के कारण जो छन्द कमल आदि आकार मे पढे जा सकें, वहाँ चित्र अलङ्कार होता है।

(८) **प्रहेलिका**

जहाँ वाक्य की चतुरता से छन्द मे ही इच्छित उत्तर निकल आए वहाँ प्रहेलिका अलङ्कार होता है।

मैं कह 'दिया' उसका नाम
अर्थ करो नही छोडो ग्राम।

—अमीर खुसरो

अर्थालंकार

अर्थालङ्कार के मुख्य भेद इस प्रकार है

(१) **उपमालङ्कार**

जहाँ दो भिन्न-भिन्न वस्तुओ के साधारण धर्म द्वारा सम्बन्ध स्थापित किया जाय, वहाँ उपमा अलङ्कार होता है। दूसरे शव्दो मे उपमेय और उपमान के सादृश्य की योजना करने वाले समान धर्म का सम्वन्ध उपमा है। जैसे 'मुँह चन्द्रमा के समान है।' यहाँ मुँह और चन्द्रमा की समानता का ज्ञान कराया गया है। उपमालङ्कार मे चार अङ्ग होते हैं—(१) उपमेय (२) उपमान (३) साधारण-धर्म और (४) वाचक। जिसकी उपमा दी जाती है या जिसको किसी के समान कहा जाता है उसे उपमेय कहते हैं। उदाहरण के लिये, 'मुँह चन्द्रमा के समान सुन्दर है।' इस वाक्य मे 'मुँह' उपमेय है। जिसकी उपमा दी जाती है या जिससे समता दिखाई जाती है उसे उपमान कहा जाता है। उपर्युक्त वाक्य मे 'चन्द्रमा' उपमान है। उपमेय और उपमान मे समानता से रहने वाले गुण, क्रिया आदि धर्म को समान-धर्म या साधारण-धर्म कहते हैं। उपर्युक्त वाक्य मे 'सुन्दरता'

समान-धर्म है। उपमेय या उपमान की समानता या सादृश्य जिन शब्दो के द्वारा सूचित होती है उसे वाचक कहते हैं। उपर्युक्त वाक्य मे 'समान' वाचक है।

उपमालङ्कार के दो भेद हैं—(१) पूर्णोपमा और (२) लुप्तोपमा।

पूर्णोपमालकार उसे कहते है जिसमें उपमा अलकार के चारो अङ्ग उपमेय, उपमान, साधारण-धर्म और वाचक विद्यमान हो।

उदाहरण

विजय करन दारिद दमन, हरन सकल दुख दर्द।
गिरिजा-पद मृदु कञ्ज सम, वन्दत हो सुख कन्द॥

इसमें 'गिरिजा-पद' उपमेय है, 'कंज' उपमान है, 'मृदु' साधारण धर्म है और 'सम' वाचक शब्द है।

जहाँ उपमेय, उपमान, साधारण-धर्म और वाचक आदि चार अङ्गो में से एक या अधिक का लोप होता है, वहाँ लुप्तोपमालकार होता है।

उदाहरण

कुन्द इन्दु सम देह, उमा रमन करुणा-अयन।
जाहि दीन पर नेह, करहु कृपा मर्दन-मयन॥

—तुलसी

यहाँ 'देह' उपमेय है, 'कुन्द-इन्दु' उपमान है, 'सम' वाचक शब्द है। किन्तु साधारण धर्म 'गौर वर्ण' का उल्लेख नही है।

(२) मालोपमालङ्कार

जहाँ एक ही उपमेय के अनेक उपमानो का कथन हो, वहाँ मालोपमालङ्कार होता है।

उदाहरण

इन्द्र जिमि जृम्भ पर, बाडव सु अम्ब पर,
रावण सदम्भ पर रघुकुल राज है।
पौन वारिवाह पर, शम्भु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्त्रबाहु पर राम द्विजराज है।

—भूषण

इस पद्य मे शिवाजी उपमेय के बहुत से उपमान 'इन्द्र', 'वाडव' 'रघुकुलराज' आदि बताये गये हैं ।

(३) अनन्वय

अनन्वय का अर्थ है अन्वय (सम्बन्ध) न होना । अनन्वय मे अन्य उपमान का सम्बन्ध नही होता । उसमे उपमेय ही उममान होता है । अत जहाँ उपमान का अभाव प्रदर्शित कर उपमेय और उपमान को एक ही बताया जाय, वहा अनन्वय अलकार होता है ।

उदाहरण

आगे रहे गनिका गज गीध, सु तो अब कोउ दिखात नही है ।
पाप परायरण ताप धरे, परताप समान न आन कही है ।
हे सुखदायक प्रेमनिधे जग यो तो भले औ बुरे सबही हैं ।
दीनदयाल औ दीन प्रभो, तुमसे तुमही हमसे हमही हैं ।

यहा 'तुमसे तुमही', 'हमसे हमही' मे 'दीनदयाल को दीनदयाल' से ही और 'अपने को अपने' से ही उपमा दी गई है ।

(४) प्रतीप अलकार

प्रतीप का अर्थ है विपरीत या प्रतिकूल । इसमे उपमेय से उपमान की हीनता और उपमान से उपमेय की हीनता दिखाई जाती है ।

उदाहरण

तेरे मुख सा पकसुत या शशाँक यह बात,
कहते हैं कवि झूठ वे बुद्धिरंक विख्यात ।

यहा मुख का उत्कर्ष बताने के लिये कमल और चन्द्रमा के उपमानो की हीनता दिखाई गई है ।

(५) रूपक अलंकार

जहाँ उपमेय मे उपमान का आरोप किया जाय या दूसरे शब्दो मे कहे तो जहा उपमेय और उपमान को एक रूप कह दिया जाय, वहाँ रूपक अलकार होता है । इसके मुख्य भेद दो हैं :

(१) अभेद रूपक (२) तद्रूप रूपक।

जहाँ उपमेय और उपमान को समान रूप मान कर अभेद दिखाया जाय, वहा अभेद रूपक होता है।

उदाहरण

रनित भृङ्ग घटावली, झरित दान मधु-नीर।
मन्द मन्द आवत चल्यो, कुञ्जर कुञ्ज समीर।

यहाँ कुज की समीर मे हाथी का आरोप है। समीर की सामग्री भृङ्ग और मकरन्द मे हाथी के घट और दान का आरोप है।

जहा उपमेय को प्रसिद्ध उपमान से भिन्न होने पर भी उपमान का रूप वर्णन करने वाला कहा जाय, वहा तद्रूप रूपक होता है।

उदाहरण

अनुराग के रगनि रूप तरगिनी अगनि ओप मनो उफनी।
कहिं देव हियो सिय रानि सबै, सियरानि को देख सुहाग सनी॥
बर धायन वाम चढी बरसै, मुसकानि-सुधा घनसार घनी।
सखियान के आनन इन्दुन तै अँखियान की बन्दनवार तनी॥

यहा मुसकान मे सुधा का, आनन मे इन्दु का और अँखियान में बन्दनवार का आरोप है। इसके अवयव नही बताये गये है।

(६) **अपन्हुति**

जहा उपमेय को स्वीकार करके अन्य उपमान को स्वीकार कर लिया जाय, वहा अपह्नुति अलङ्कार होता है।

उदाहरण

धुरवा होइ न अलि यहैं, धुँआ धरनि चहुँ कोद।
जारत आवत जगत को, पावस प्रथम पयोद।

यहा बादल का निषेध कर आग के धुए को स्वीकार किया गया है।

(७) **भ्रान्तिमान**

जहा उपमान के समान ही उपमेय को देखकर उपमान का भ्रम होने लगे, वहा भ्रान्तिमान अलकार होता है।

उदाहरण

दुग्ध समझ कर नर-—कपाल को लगे चाटने जिन्हे विडाल,
तरु-छिद्रो मे गिरी देख गज लगे मानने जिन्हे मृणाल।

यहा 'नर-कपाल' पर गिरने वाली चन्द्र-किरणो मे दुग्ध का और तरु छिद्रो से निकाली हुई किरणो मे मृणाल का भ्रम होना बताया गया है।

(८) सन्देह अलंकार

जब किसी वस्तु को देख कर ठीक प्रकार से निश्चय न हो और सशय बना रहे, तब सन्देह अलकार होता है।

उदाहरण

"तारे आसमान के आये मेहमान बन,
या कि कमला ही आज आ के मुसकाई है।
चमक रही है चपला ही एक साथ या कि,
केशो मे निशा के मुक्तावली सजाई है।"

यह दीपावली का वर्णन है। यहा दीप-मालिका मे तारे आदि का सन्देह किया गया है।

(९) उत्पेक्षा अलंकार

जहा उपमान मे उपमेय की सम्भावना या कल्पना की जाय, वहाँ उत्प्रेक्षा अलकार होता है। उत्प्रेक्षा अलकार के तीन भेद होते हैं—वस्तूत्प्रेक्षा, हेतूत्प्रेक्षा और फलोत्प्रेक्षा।

उदाहरण

मङ्गलमय कल्याणमय, अभिमत फल दातार।
जनु सब साँचे होन हित भये सगुन इकवार।

—तुलसी

रामचन्द्रजी की वरात के प्रस्थान करते समय अनेक शुभ शकुन हुए और वे मनाने लगे कि आगे हम सच्चे माने जायँ। यहां शकुनो के होने मे उनके सच्चे होने की कल्पना की गई है।

(१०) अतिशयोक्ति अलकार

जहा किसी वस्तु का कथन अत्यन्त वढा-चढाकर किया जाता है, वहाँ

तक कि लोक-मर्यादा को भी पार कर दिया जाता है, वहाँ अतिशयोक्ति अलकार होता है।

उदाहरण

देख लो साकेत नगरी है यही,
स्वर्ग को छूने गगन है जा रही।

—मैथिलीशरण गुप्त

यहाँ साकेत नगरी के मकान इतने ऊँचे वताये गये हैं कि वे स्वर्ग को छूने के लिये जाते हुए प्रतीत होते हैं।

(११) प्रतिवस्तूपमालंकार

जहां उपमेय और उपमान के वाक्यो मे भिन्न-भिन्न शब्दो द्वारा एक ही धर्म कहा जाय, वहां प्रतिवस्तूपमालकार होता है।

उदाहरण

चटक न छाडत घटत हूँ सज्जन नेह गम्भीर।
फीको परे न वरु भटे रग्यो लाल रङ्ग चीर।

—बिहारी

(१२) अन्योक्ति अलकार

जहा किसी वस्तु का सीधा वर्णन न करके उसके समान किसी दूसरी वस्तु का वर्णन किया जाय, पर लक्ष्य पहिली वस्तु को ही किया जाय, तो अन्योक्ति अलकार होता है। इसमे उपमेय का वर्णन करने के लिये केवल उपमान का ही वर्णन किया जाता है।

उदाहरण

जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सु वीति वहार।
अव अलि रही गुलाव मे अपत कँटीली डार।

—बिहारी

यहा यद्यपि वात गुलाव से कही गई है तथापि यह वस्तुत ऐसे वैभवशाली व्यक्ति की बात है जिसका कि वैभव नष्ट हो चुका हैं।

(१३) दृष्टांत अलंकार

जहा पहिले एक वात कह कर फिर उसी से मिलती-जुलती दूसरी बात उदाहरण स्वरूप कही जाय, वहा दृष्टान्त अलकार होता है।

उदाहरण

कैसे छोटे नरन ते, सरत बड़ेन को काम ।
मढो दमामो जात कहुँ कहिं चूहे के चाम ।।

—विहारी

यहा पहले एक बात कही गई और फिर दृष्टान्त देकर उसकी पुष्टि की गई है ।

(१४) विरोधाभास अलंकार

जहा वस्तुत. विरोध न होने पर भी विरोध का आभास हो, वहां विरोधाभास अलकार होता है ।

उदाहरण

या अनुरागी चित्त की, गति समझै नहि कोय ।
ज्यो-ज्यो बूढे श्याम रग, त्यो-त्यो उज्वल होय ।

—विहारी

यहा चित्त श्याम रङ्ग मे डूबने से उज्ज्वल होता जाता है, अत: विरोध स्पष्ट है । किन्तु श्याम का अर्थ श्रीकृष्ण होने के कारण विरोध नही है ।

(१५) व्यतिरेक अलंकार

जहा उपमान की अपेक्षा उपमेय मे अधिक गुणो का उत्कर्ष दिखाया जाय वहा व्यतिरेक अलकार होता है ।

उदाहरण

राधा मुख को चन्द इव, कहत जु हे मतिरक ।
निष्कलक है यह सदा, वह प्रतच्छ सकलक ।।

(१६) व्याजस्तुति अलंकार

जहां स्तुति के वहाने निन्दा और निन्दा के वहाने स्तुति की जाय, वहा व्याज-स्तुति अलकार होता है । इस अलकार मे प्रकट रूप मे निन्दा या स्तुति की जाती है लेकिन वास्तव मे उसका भाव बिलकुल विपरीत होता है । व्याज का अर्थ है—वहाना और स्तुति का अर्थ है—प्रशमा ।

उदाहरण

सुरलोक से आप गिरी जननी, अवनी तल दु ख निवारण को,
दिक्-अबर भी शिव ने तुमको ली जटा मे छिपाकर धारण सो,
निर-लोभियो के मन लुब्ध बना करती तुम क्या न प्रतारण हो,
गुण राशि मे दोष तुम्हारे यही कहते सब हैं न अकारण जो।

यहा गङ्गाजी की निन्दा प्रतीत होती है, किन्तु वास्तव मे उनकी स्तुति की गई है।

(१७) विभावना अलंकार

जहा कारण के बिना ही कार्य हो जाय, वहां विभावना अलकार होता है। इसके दो भेद होते हैं—(१) उक्त-निमित्ता तथा (२) अनुक्त-निमित्ता। जहा यथार्थ कारण के अभाव मे काल्पनिक कारण दिया जाय वहा अनुक्त-निमित्ता अलंकार होता है, और जहा कारण दिया ही न जाय, वहां अनुक्त-निमित्ता अलङ्कार होता है।

उदाहरण

रहित सदाई हरियाई हिय घायनि मे,
उरध उसास सो झकोर पुरवा की है।
पीव-पीव गोपी पूरित पुकारति है,
सोई रत्नाकर पुकार पपीहा की है।
लागी रहे नैननिसो नीरकी झरी औ उठे—
चित्त मे चमक सो चमक चपला की है।
बिन घनश्याम धाम धाम ब्रज मण्डल मे,
ऊधो नित बसति बहार बरसा की है।

—रत्नाकर

यहां घनश्याम के बिना ही वर्षा होना बतलाया गया है।

(१८) असंगति अलंकार

जहा कारण कही हो और कार्य कही हो, वहा असगति अलकार होता है।

उदाहरण

दृग उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित्त प्रीति ।
परत गाँठ दुरजन हिये, दई नई यह रीति ।।

(१९) मीलित अलंकार

जहाँ किसी वस्तु के स्वाभाविक गुण से समान गुण वाली वस्तु छिप जाती है, वहाँ मीलित अलकार होता है । मीलित का अर्थ है–मिल जाना । अतः इस अलकार मे समान गुण के कारण एक वस्तु दूसरी वस्तु के साथ मिलकर छिप जाती है ।

उदाहरण

पान पीक अधरान मे, सखी लखी नहिं जाय ।
कजरारी अखियान मे, कजरा री न लखाय ।।

यहाँ नायिका के अधरों की स्वाभाविक लाली मे पान के पीक की रक्तता छिप जाने का वर्णन है; इसी प्रकार दूसरी पक्ति मे कजरारे नैनो मे काजल छिप जाने का वर्णन किया है ।

(२०) उन्मीलित अलकार

जहाँ स्वाभाविक गुणो की समानता होने पर भी किसी विशेष कारण से भेद की प्रतीति हो वहाँ उन्मीलित अलकार होता है । उन्मीलित अलकार मीलित अलकार का विरोधी है । इस अलकार मे एक वस्तु दूसरी वस्तु के साथ मिलकर भी किसी कारणवश पृथक् प्रतीत होती है ।

उदाहरण

सिवा, तिहारे सु-जस मे मिले धवल छबि-मूल ।
बोल-बास ते जानियत, हस चमेली-फूल ।।

श्वेत-वर्णी हस और चमेली के फूल शिवा के धवल यश के सामने विलीन हो गये, पर ध्वनि के द्वारा हस और सुवास के द्वारा चमेली अपनी सत्ता का भान करा जाते है ।

(२१) अर्थान्तरन्यास अलकार

जहाँ साधारण का विशेष से अथवा विशेष का साधारण से समान धर्म या विधर्म कहा जाय, वहाँ अर्थान्तरन्यास अलकार होता है ।

अर्थान्तरन्यास का अर्थ है—अन्य अर्थ रखना । इस अलकार मे सामान्य वृत्तान्त का विशेष वृत्तान्त से और विशेष का सामान्य वृत्तान्त से समर्थन किया जाता है ।

उदाहरण

वडे न हूजे गुणन विन, विरद वडाई पाय ।
कहत घतूरे सौं कनक, गहनो गढ्यो न जाय ॥

इस दोहे मे कहा गया है कि केवल नाम वडा होने से गुण के विना कोई वडा नही हो सकता । इस सामान्य वात का धतूरे के विशेष वृत्तान्त द्वारा समर्थन किया गया है ।

(२२) तद्गुण और पूर्वरूप अलङ्कार

यदि कोई वस्तु अपना गुण त्याग कर अपने निकट की किसी अधिक गुण वाली वस्तु के गुणो को ग्रहण करले तो तद्गुण अलङ्कार होता है ।

उदाहरण

अति सुन्दर दोनो कानो मे जो कहलाते शोभागार,
एक एक था भूषण जिसमे जड़े हुए थे रत्न अपार ।
कर्णपूर प्रतिविम्व युक्त था कान्त कपोल युग्म उस काल,
कभी श्वेत था, कभी हरा था, कभी कभी होता था लाल ।

यहाँ दमयन्ती के कपोलो द्वारा अपना गुण त्याग कर समीपवर्ती अनेक रत्नजटिल कर्ण-भूषण का श्वेत, हरा और रक्त गुण ग्रहण करने का वर्णन है ।

(२३) अतद्गुण अलङ्कार

जहाँ समीपवर्ती वस्तु के गुण का ग्रहण किया जाना सम्भव होने पर भी यदि ग्रहण न किया जाय, तो अतद्गुण अलङ्कार होता है । अतद्गुण अलङ्कार पूर्वोक्त तद्गुण अलङ्कार का विरोधी है ।

आप अपना हृदय उज्जवल कह रहे,
रङ्ग उस पर प्रिय नही चढता कही ।
राग पूरित हृदय मे रखती उसे,
रक्त फिर भी वह कभी होता नही ॥

यहाँ नायिका के राग भरे हुए हृदय से रक्त गुण द्वारा नायक के उज्ज्वल हृदय का रक्त होना सम्भव होने पर भी रक्त न होना कहा गया है।

(२४) स्वभावोक्ति अलङ्कार

जहाँ बालको की चेष्टा या स्वरूप का वर्णन किया जाय अथवा किसी दृश्य का वर्णन ज्यो का त्यो कर दिया जाय, वहाँ स्वभावोक्ति अलङ्कार होता है।

उदाहरण

धूरि धुरेटे चरणि पै, धरत अटपटे पाय।
लाल लटपटे औखरनि, भाषत सखि हरखाय॥

यहाँ श्रीकृष्णजी की बालकोचित चेष्टाओ का वर्णन किया गया है।

साहित्य का स्वरूप

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह अपने सुख-दु ख की चर्चा दूसरो से करता है और दूसरो के सुख-दु ख को जानना चाहता है। इसमे उसे एक प्रकार का आनन्द मिलता है। अपना सुख-दु ख दूसरो पर प्रकट किये बिना और दूसरो का सुख-दुःख जाने बिना उसे एक प्रकार की घुटन-सी प्रतीत होती है। अपने सुख-दु ख को अभिव्यक्त करने के लिए वह युगो से भाषा का आश्रय लेता आ रहा है। भाषा उसके विचार और भाव के आदान-प्रदान का माध्यम है। भाषा के द्वारा अपने भाव और विचार की अभिव्यक्ति ही साहित्य है। दूसरे शब्दो मे ज्ञान-राशि के सचित कोष को साहित्य कहा जाता है। यह साहित्य का व्यापक अर्थ है। साहित्य मे सहित का, सम्मिलन का भाव रहता है। उसमे ससार के समस्त प्राणियो का, ऊँच-नीच का, शिक्षित-अशिक्षित का यहाँ तक कि तीनो कालो का सम्मिलन होता है। लेकिन सस्कृत के प्राचीन आचार्य साहित्य का इतना व्यापक अर्थ नही लेते थे। उनके अनुसार तो साहित्य से तात्पर्य केवल उस रचना से है जो छन्द-बद्ध हो। मतलब यह है कि उनके अनुसार साहित्य और काव्य मे कोई अन्तर नही था। उस समय साहित्य और काव्य एक ही अर्थ मे प्रयुक्त होते थे। किन्तु वह साहित्य का सकुचित अर्थ था। उस अर्थ के अनुसार गणित, दर्शन, इतिहास, भूगोल आदि लोकोपयोगी विषय साहित्य के अन्तर्गत नही आ सकते थे, क्योकि इन विषयो का छन्द से कोई सम्बन्ध नही था। किन्तु आज साहित्य को उस सकुचित अर्थ मे नही लिया जाता है। आजकल उसके अन्तर्गत गद्य और पद्य दोनो ही आ जाते हैं।

साहित्य के प्रकार

साहित्य दो प्रकार का होता है—उपयोगी और कलात्मक। जिस साहित्य मे हमारे दैनिक जीवन की आवश्यकताए पूरी-करने की क्षमता हो, जो हमे सुख दे सकता है, उसे हम उपयोगी साहित्य कहते हैं।

उदाहरण के लिए यदि किसी पुस्तक मे गेहूँ की खेती, गोपालन या बागवानी पर विस्तार के साथ विचार और अनुभव प्रकट किये गये हो तथा यह बताया गया हो कि अच्छे गेहूँ, दूध, फल या सब्जी किस प्रकार प्राप्त किये जा सकते हैं, तो उसे हम उपयोगी साहित्य कहेंगे। ऐसी पुस्तक को पढने मे हमे आनन्द नही मिलेगा। आनन्द तो तब मिलेगा जब हम उसमे बताये हुए विचारो को कार्यरूप में परिणत करेंगे। किन्तु कलात्मक साहित्य हम उसे कहते है जो चाहे उपयोगी हो या न हो, परन्तु जिसके पढने मात्र से हमे आनन्द प्राप्त होता है। आनन्द भावना-जगत् की वस्तु है। भावना हमारे मन मे स्वत पैदा होती है। उसके लिए तर्क-वितर्क की आवश्यकता नही होती। उदाहरणार्थ, किसी सुन्दर फूल को खिला हुआ देखकर हमारा मन भी खिल उठता है और किसी भले आदमी की दुर्घटना के कारण मृत्यु होने का समाचार सुनते ही हमे भी जैसे काठ मार जाता है। मन की यह प्रसन्नता या उदासी किसी तर्क-वितर्क का परिणाम नही होती। वह सहज स्वाभाविक रूप से अपने आप ही पैदा हो जाती है। विचार तर्क-वितर्क का परिणाम है। सह-शिक्षा होनी चाहिए या नही अथवा ईश्वर का अस्तित्व है या नही—इस प्रकार के विचार हमारे मन मे अपने आप नही आते, वे सोच-विचार, वाद-विवाद या अध्ययन के परिणाम होते है। आनन्द अपने आप मन मे पैदा होने वाली वस्तु है। कलात्मक साहित्य सबसे पहले आनन्द प्रदान करता है, उसके गुण-दोष का विचार बाद मे होता है। इस प्रकार कलात्मक साहित्य की सबसे बडी विशेषता यही है कि उसमें आनन्ददायिनी शक्ति होती है। जिस साहित्य मे आनन्द देने की शक्ति नही, वह उपयोगी साहित्य तो है, कलात्मक साहित्य नही कहा जा सकता। इस आनन्द-दायिनी शक्ति की कसौटी पर कस कर ही हम कह सकते है कि जिस साहित्य मे यह शक्ति जितनी अधिक होती है उसे हम उतना ही उच्च कलात्मक साहित्य कहते है।

साहित्य का महत्व

वस्तुत साहित्य का आविर्भाव मानव-कल्याण के लिए हुआ है। साहित्य ने मानव का सस्कार किया है, उसे सभ्य बनाया है। यही कारण है कि साहित्य मे मानव-जीवन की अभिव्यक्ति और मानव मस्तिष्क का चरम विकास समाया हुआ है। अनादि-काल से मानव जो कुछ सोचता और मनन करता आ रहा है साहित्य उसी का भण्डार है। वह एक ऐसा भण्डार है जिसमें मानव-जगत् के अमूल्य विचार, रत्नो की तरह सजाकर रखे गये हैं। समाज बनता और मिटता है किन्तु साहित्य का भण्डार अमर रहता है। साहित्य किसी भी समाज की आत्मा होती है। जिस समाज या राष्ट्र का अपना कोई साहित्य नही उसे निष्प्राण ही समझना चाहिए। साहित्य मे बडी जबरदस्त शक्ति होती है। जिस प्रकार अच्छा खाद और जल पाकर सूखे खेत लहलहा उठते है उसी प्रकार अच्छा साहित्य पाकर अवनत, पतित और पददलित समाज या राष्ट्र भी उठ खडा होता है। साहित्य मे प्राणदायिनी शक्ति होती है। रूसो, वाल्टेयर आदि की कलम से निकले हुए साहित्य ने ही फ्रान्स में राज्यक्राति की नीव डाली थी। उसी ने वहाँ प्रजातन्त्र का उन्नयन और विकास किया था। नव-निर्माण की इस अपार शक्ति के साथ उसमे विनाश की अपार शक्ति भी निहित है। वह हानिकर विचारधारा, रूढि, रीति और परम्परा को मिटाता है। उसके सामने न तोप-गोलो की शक्ति टिक पाती है, न एटम की।

साहित्य हमारी ज्ञान-पिपासा को शान्त करता है। जटिल से जटिल समस्याओ को हल कर देने की शक्ति रखता है। वह मानव मस्तिष्क का भोजन है। यदि वह न मिले तो मस्तिष्क निष्क्रिय और दुर्बल बन जाएगा। मस्तिष्क के साथ-साथ यह हृदय का भी भोजन है। उसके द्वारा हमे जो आनन्द प्राप्त होता है वह ब्रह्मानन्द की कोटि का ही होता है। इसीलिए तो भर्तृहरि ने कहा था—

साहित्य सङ्गीत कलानभिज्ञ साक्षात्पशु पुच्छ विषाणहीन ॥

साहित्य का उद्देश्य है मानव-मन का सस्कार। मानव-मन गुण-

दोषमय विश्व की ही भाँति गुण-दोषमय है। उसमे मनुष्यत्व के साथ पशुत्व भी है। उसमे सात्विक गुणो के साथ राजस और तामस गुणो का भी अस्तित्व है। इसीलिए हमारे प्राचीन आचार्यों ने साहित्य का उद्देश्य केवल धर्म और मोक्ष की प्राप्ति ही नही, काम और अर्थ की प्राप्ति भी बताया है।

१—काव्य

कलात्मक साहित्य के प्रमुख रूप हैं—कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास और निबन्ध। काव्य या कविता की परिभाषा के सम्बन्ध मे भारतीय आचार्यों मे मतभेद है। साधारणत काव्य के दो पक्ष हैं—कलापक्ष और भावपक्ष। शब्द, अर्थ, अलकार आदि कलापक्ष के अन्तर्गत आते हैं और भावव्यञ्जना, रस आदि भावपक्ष के। वस्तुत कलापक्ष मे अभिव्यक्ति की प्रधानता होती है; भावपक्ष मे अनुभूति की। कलापक्ष काव्य का शरीर है तो भावपक्ष उसकी आत्मा। आचार्य विश्वनाथ और नाट्यशास्त्र के रचयिता भरतमुनि का मत है कि रस काव्य की आत्मा है। इधर आचार्य दण्डी, भामह और केशवदासजी की यह मान्यता है कि अलकार वाली रचना ही काव्य है। आचार्य कुन्तक काव्य मे वक्रोक्ति की प्रधानता पर जोर देते हैं और आचार्य वामन रीति-पक्ष की प्रधानता पर। इस प्रकार इस प्रश्न पर अलग-अलग विद्वानो के अलग-अलग मत हैं। किन्तु इन मे दो-तीन मत ऐसे हैं जो बहुत से विद्वानो द्वारा मान्य किये गये हैं। इनमें पहला स्थान है साहित्य-दर्पण के रचयिता आचार्य विश्वनाथ का। आचार्य विश्वनाथ ने लिखा है—'वाक्य रसात्मक काव्य' अर्थात् रसपूर्ण वाक्य ही काव्य है। रस किसे कहते हैं और वे कितने प्रकार के हैं आदि पर हम पीछे विस्तार के साथ पढ चुके हैं। अत यहाँ उसे दुहराने की आवश्यकता नहीं है। दूसरा स्थान है प० जगन्नाथराज रत्नाकर का। उनके अनुसार—'रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्द काव्यम्' अर्थात् रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाला शब्द काव्य है। तीसरा स्थान है आचार्य मम्मट का। आचार्य मम्मट ने अपने काव्य-प्रकाश

नामक ग्रन्थ मे लिखा है—'तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि ।' अर्थात् दोषरहित एव गुणयुक्त पदावली ही काव्य है । फिर कही कोई अलकार भी न हो तो कोई बात नही ।

यह तो हुई प्राचीन आचार्यों की बात । अर्वाचीन आचार्यों मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत है कि—"जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था ज्ञान-दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिये मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती आई है उसे कविता कहते है ।" हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त ने बड़े ही हृदयस्पर्शी शब्दो मे कविता की परिभाषा कविता में ही देते हुए लिखा है

वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान ।
उमडकर आँखो से चुपचाप,
वही होगी कविता अनजान ।

पतजी के इन शब्दो में भवभूति की 'एकोरस करुण एव' और अंग्रेजी कवि शैली की—'Our sweetest songs are those that tell of the saddest thoughts' वाली उक्ति की याद आ जाती है ।

इस प्रकार काव्य की परिभाषा के प्रश्न पर यद्यपि सब आचार्य एक मत नही हैं तथापि एक बात तो सभी मानते हैं कि कविता मे अनुभूति पक्ष की प्रधानता होती है । किन्तु ऐसा कहने से हमारा यह मतलब नही है कि अभिव्यक्ति-पक्ष का कम महत्त्व है । आचार्य गुलाबराय ने अपनी परिभाषा मे अनुभूति-पक्ष और अभिव्यक्ति-पक्ष दोनो को ही प्रधानता दी है । उनकी यह मान्यता ठीक ही है । महत्त्व दोनो का है—एक का कुछ अधिक, दूसरे का कुछ कम ।

काव्य के भेद

(अ) महाकाव्य

काव्य दो प्रकार के होते हैं—प्रबन्ध और मुक्तक । जिस काव्य मे कोई कथा हो उसे प्रबन्ध-काव्य कहते हैं और जिसमे कोई कथा न हो

उसे मुक्तक। प्रबन्ध काव्य दो प्रकार का होता है—महाकाव्य और खण्ड-काव्य। सस्कृत के आचार्यों के अनुसार महाकाव्य मे निम्नलिखित विशेपताएँ होनी चाहिए

१ महाकाव्य की कथा ऐतिहासिक और लोक-प्रसिद्ध होनी चाहिये। सारी कथा कुछ परिच्छेद या सर्गों मे विभक्त हो और वे परिच्छेद न बहुत बडे हो और न बहुत छोटे। परिच्छेदो की सख्या आठ से अधिक होनी चाहिये।

२ महाकाव्य का नायक देवता अथवा सद्वशीय क्षत्रिय होना चाहिये। यदि ऐसा न हो तो नायक एक कुल, एक वश के कई राजा होने चाहिये। नायक धैर्यवान् और यशस्वी होना चाहिये।

३ जहाँ तक रस का सम्बन्ध है महाकाव्य मे शृङ्गार, वीर अथवा शान्त रस की प्रधानता होनी चाहिये। इसका अर्थ यह नही कि अन्य रस न हो। अन्य रस भी होने चाहिये किन्तु प्रधानता उपर्युक्त रसो की हो। अन्य रसो का स्थान गौण हो।

४ महाकाव्य की रचना का लक्ष्य धर्म, काम अथवा मोक्ष की प्राप्ति होनी चाहिए।

५ प्रारम्भ मे मङ्गलाचरण होना चाहिये। ग्रन्थ में कही पर सन्तो का गुणगान होना चाहिये और कही असन्तो की निन्दा भी होनी चाहिये।

६ प्रत्येक परिच्छेद मे एक ही छन्द होना चाहिये। किन्तु प्रत्येक परिच्छेद का अन्तिम छन्द भिन्न होना चाहिये। एक परिच्छेद विभिन्न छन्दो वाला भी होना चाहिये। प्रत्येक परिच्छेद के अन्त मे अगले परिच्छेद की कथा की सक्षिप्त सूचना होनी चाहिये। प्रत्येक परिच्छेद का शीर्षक परिच्छेद मे वर्णित कथावस्तु के आधार पर होना चाहिए।

७ इन सब लक्षणो के अतिरिक्त महाकाव्य मे प्रकृति-चित्रण अर्थात् वन, पर्वत, नदी, समुद्र, ऋतु, प्रात काल, सध्या, सूर्य, चन्द्रमा, आदि का जहाँ तक सम्भव हो विस्तृत वर्णन होना चाहिए।

पश्चिमी विद्वानो का मत है कि महाकाव्य मे काव्य की महानता होनी चाहिये। ऊपर जिन लक्षणो की चर्चा की गई है वे सब ऐसे हैं जो किसी भी काव्य को महान् बना देने की चेष्टा करते हैं।

(आ) खण्ड-काव्य

महाकाव्य की भाँति कथा का प्रवाह खण्ड-काव्य मे भी होता है किन्तु उसका क्षेत्र उतना व्यापक नही होता। महाकाव्य मे जहाँ जीवन के सब अङ्गो की झाँकी दिखाई जाती है, वहाँ खण्ड-काव्य मे केवल एक अङ्ग की। खण्ड-काव्य जीवन के एक पृष्ठ या एक चित्र की झाँकी अत्यन्त आकर्षक और सुन्दर रूप मे प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है। उसमे केवल एक प्रधान घटना का उल्लेख किया जाता है। एकाकी, नाटक और कहानी मे भी लगभग यही बात होती है। महाकाव्य मे जहाँ सम्पूर्ण जीवन का चित्र खीचा जाता है वहाँ खण्ड-काव्य में जीवन की पूरी कथा मे से किसी आकर्षक अश को चुन लिया जाता है। खण्ड-काव्य कें सब सर्गों में प्राय' एक ही छन्द होता है। महाकाव्य के नायक की तरह खण्ड-काव्य का नायक भी देवोचित गुणो से पूर्ण होता है। खण्ड-काव्य मे प्रकृति-चित्रण के लिए पर्याप्त अवसर नही मिलता। इसी प्रकार बडे-बडे सवादो को भी स्थान नही दिया जाता। इसमे वे सक्षिप्त और आकर्षक रूप मे ही दिए जाते हैं। स्थान की कमी के कारण सभी वर्णनीय दृश्य सूक्ष्म रूप मे उपस्थित किये जाते है। रस के उद्दीपन के लिए साँकेतिक शैली को अपनाया जाता है। हिन्दी मे पचवटी (गुप्तजी), जयद्रथ-वध (गुप्तजी), नहुप (गुप्तजी), बकसहार वन-वैभव (गुप्तजी), गङ्गावतरण (रत्नाकरजी), उद्धवशतक (रत्नाकरजी), पथिक (रामनरेश त्रिपाठी), मिलन (रामनरेश त्रिपाठी), सुदामा-चरित्र (नरोत्तमदास), जानकी-मङ्गल (तुलसीदास) आदि प्रसिद्ध खण्ड-काव्य हैं।

(इ) मुक्तक-काव्य

मुक्तक काव्य वह है जिसमें कथा-तारतम्य और प्रवाह का बन्धन न हो। बन्धन-मुक्तता ही उसकी प्रमुख विशेषता है। इस काव्य के प्रत्येक छन्द अथवा पद की अपनी निजी विशेषता होती है। वह

किसी अन्य छन्द या पद की अपेक्षा नही रखता। मुक्तक-काव्य का पद एक छोटे से भाव को लेकर बनाया जाता है। वह भाव अपने में पूर्ण होता है और उसका सम्बन्ध अपने आगे या पीछे के पद से कुछ नही होता। काव्याचार्यों ने मुक्तक काव्य के दो भेद किये हैं— पाठ्य और गेय। पाठ्य मुक्तक सूक्तियो के रूप में होता है। नीति, शृङ्गार और वीर रस के दोहे इसी प्रकार के होते हैं। विहारी के दोहे, वियोगी हरि की वीर सतसई, रहीम के दोहे, कबीर के दोहे, तुलसीदास की दोहावली इसी पाठ्य मुक्तक के अन्तर्गत आते है। गेय मुक्तक या गीति-काव्य की विशेषता यह होती है कि उसमें एक ही भाव की प्रधानता होती है। यद्यपि उसमें अन्य भाव भी होते हैं किन्तु वे उस एक प्रधानभाव के आस-पास ही चक्कर काटते हैं। गीत-काव्य में वैयक्तिकता की प्रधानता होती है और वह गेय होता है।

ऊपर जो कहा गया है कि गीत-काव्य में एक ही भाव की प्रधानता होती है उसका आशय यह है कि गीत का प्रमुख भाव पहली पक्ति में व्यक्त कर दिया जाता है। हिन्दी में हम ऐसी पक्ति को टेक की पक्ति कहते हैं। यह पक्ति दो, तीन, चार, पाँच अथवा छ पक्तियो के बाद बार-बार दुहराई जाती है। वैयक्तिकता से हमारा तात्पर्य यह है कि गीति-काव्य वर्णनात्मक नही होता। वह आत्म-प्रधान (Subjective) होता है। पहले गीति-काव्य के लिए गेय होना आवश्यक समझा जाता था। किन्तु आजकल ऐसे गीत भी लिखे जाने लगे हैं जिनमें छन्द ही नही होता। फिर भी इस प्रकार के छन्दो में लय होती है। अत. अब गेयता से तात्पर्य केवल लय से रह गया है। सूरदास, मीरांबाई, दादू, कबीर, विद्यापति आदि प्राचीन कवियो के पद तथा प्रसाद, पत, निराला, महादेवी आदि के गीत इसी प्रकार के काव्य में सम्मिलित किये जाते हैं।

२—नाटक

साहित्याचार्यों के अनुसार काव्य के दो भेद होते हैं—श्रव्य-काव्य

और दृश्य-काव्य । श्रव्य-काव्य का वर्णन किया जा चुका है । नाटक दृश्य-काव्य माना जाता है । काव्य का आनन्द सुनने से प्राप्त होता है जबकि नाटक का आनन्द देखने से । इसलिये इसे दृश्य-काव्य कहा गया है । दृश्यकाव्य या नाटक मे भारतीय नाट्य-शास्त्र के अनुसार तीन प्रमुख तत्त्व माने जाते हैं—कथावस्तु, नायक और रस । किन्तु आज कल नाटक के छ तत्त्व माने जाते है—कथावस्तु, पात्र, कथोपकथन, रस, वातावरण और मञ्च । नाटक का कथानक कथावस्तु या वस्तु कहलाता है । कथावस्तु दो प्रकार की होती है—अधिकारिक और प्रासङ्गिक । अधिकारिक कथावस्तु उसे कहते हैं जो प्रमुख होती है और नाटक के प्रधान पात्रो से सम्वन्ध रखती है । वह आदि से अन्त तक एक ही गति से चलती है । प्रासङ्गिक कथावस्तु उसे कहते हैं जो गौण होती है । यह अधिकारिक कथावस्तु से अलग ऐसी कथा होती है जो प्रधान कथावस्तु के सौंदर्य को बढाने मे सहायता देती है । प्रासङ्गिक कथावस्तु प्रमुख कथा के विकास मे सहायता करती है ।

कथावस्तु तीन प्रकार की होती है—ऐतिहासिक, उत्पाद्य और मिश्रित । जिस कथा का आधार इतिहास या पुराण होता है, उसे ऐतिहासिक कहते हैं । किन्तु जो केवल कवि या लेखक की कल्पना का ही परिणाम होती है उसे उत्पाद्य कहते हैं । मिश्रित उसे कहते हैं जो ऐतिहासिक या पौराणिक होने के साथ-साथ कल्पित भी होती है । दूसरे शब्दो मे जो न पूरी तरह कल्पित्त होती है न ऐतिहासिक या पौराणिक । कथावस्तु का विकास अर्थ-प्रकृति के द्वारा होता है । अर्थ-प्रकृतियाँ पाँच प्रकार की होती है—बीज, विन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य । बीज कथानक के उस मूलभाग को कहते हैं जिसे आगे विकसित होना है । इसे कथानक का मूल या जड कह सकते हैं । जिस प्रकार बीज मे कोपल उत्पन्न होती है उसी प्रकार जो बात कथा को आगे बढाती है उसे बिन्दु कहते हैं । पताका वह कथा भाग है जो कथानक के मूल उद्देश्य की प्राप्ति मे सहायक होता है । प्रकरी उन छोटे-छोटे कथाशो को कहते हैं जो कथानक के मुख्य उद्देश्य की प्राप्ति मे सीधे सहायक तो नही होते किन्तु कथानक को चमत्कार-पूर्ण वनाने के लिए

जोड दिये जाते हैं। यह आवश्यक नही होता कि इनका सीधा सम्बन्ध मूल कथानक मे हो। कार्य कथानक की सबसे प्रमुख घटना को कहते हैं।

कथानक के विकास की पांच अवस्थाएँ होती हैं—आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम। जिसमे किसी फल की प्राप्ति के लिये प्रयत्न किया जाता है उसे प्रयत्न कहा जाता है। जिसमे फल की प्राप्ति की आशा की जाती है किन्तु साथ ही असफलता की आशका भी वनी रहती है, उसे प्राप्त्याशा कहते हैं। फलागम मे सफलता निश्चित हो जाती है। उदाहरणार्थ रामायण की कथा पर यदि एक नाटक वना लिया जाय तो पृथ्वी का गाय का रूप धारण कर स्वर्ग जाना और इस प्रकार राम-जन्म का कारण वनना वीज होगा। राम का वनवास विन्दु होगा और सुग्रीव की कथा पताका। रावण-जटायु का सवाद प्रकरी होगा और रावण-वध कार्य। इसी प्रकार राम-जन्म आरम्भ, राम-वनवास और सीता-हरण प्रयत्न, हनुमान का सीता को खोज निकालना प्राप्त्याशा, युद्ध मे विभीषण द्वारा राम को रावण की नाभि मे वाण मारने के लिये कहना नियताप्ति तथा रावण का वध फलागम होगा।

कथावस्तु के जोड या मिलन के लिये सन्धियो की आवश्यकता होती है। सन्धियो के पाँच भेद होते हैं—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्ष, और निर्वहण। मुख सन्धि की सहायता से आरम्भ के सयोग द्वारा बीज अर्थ-प्रकृति की उत्पत्ति होती है। प्रतिमुख मे प्रयत्न के कारण बीज अकुरित होता है। गर्भ मे वीज का विस्तार होता है। विमर्ष या अवमर्ष मे विघ्न उत्पन्न होता है और निर्वहण मे बीज पूर्णत. विस्तार पाकर सफलता तक पहुँच जाता है।

पाश्चात्य विद्वान् नाटको मे चार प्रकार की एकता होना आवश्यक मानते है। ये है—स्थान की एकता, काल की एकता, कार्य की एकता और प्रभाव की एकता। स्थान की एकता का मतलब यह है कि कथानक मे स्थान सम्बन्धी एक सूत्रता हो। काल की एकता का यह मतलब है कि घटनाएँ काल-क्रम रूप से दी जाए। कार्य की एकता का

मतलब यह है कि घटनाएँ क्रमिक रूप से दी जावें । यदि इन तीनों एकताओ का अस्तित्व है तो प्रभाव की एकता आती है । अत. प्रभाव की एकता कोई अलग प्रकार की नही है । उसका मतलब यही है कि दर्शक पर अभीष्ट प्रभाव पड़े । वह अस्पष्ट, विखरा-विखरा या टूटा-टूटा न हो।

नाटक मे पात्रो का बडा महत्त्व होता है और उन पात्रो मे भी प्रमुख पुरुष-पात्र का तो सबसे ज्यादा महत्त्व होता है । उसे नायक कहते हैं । प्रधान स्त्री-पात्र को नायिका कहते हैं । प्राचीन आचार्यों के अनुसार नायक कुलीन, धैर्यवान्, वीर, योद्धा, विद्वान्, चतुर, कुशल, विनम्र, त्यागी और मधुरभाषी होना चाहिये । सस्कृत नाटको मे प्राय राजा, ब्राह्मण और देवता ही नायक होते थे । लेकिन अब यह आवश्यक नही माना जाता । अब तो चोर, डाकू, वेश्या और शराबी-जुआरी भी नायक हो सकते हैं—होते हैं । सस्कृत नाट्य-शास्त्र के अनुसार नायक चार प्रकार के होते हैं

(१) धीरोदात्त—जो शोक, क्रोध आदि से विचलित न हो, जो क्षमाशील, दृढ, गम्भीर और स्थिरमति हो, जो विनयशील एव स्वाभिमानी हो ।

(२) धीर-ललित—जो कला-प्रेमी और मधुर स्वभाव का हो ।

(३) धीर-शान्त—जिसमें ब्राह्मणो के गुण हो ।

(४) धीरोद्धत—जो कपटी, कुटिल, अहकारी, अपनी प्रशसा करने वाला तथा असहनशील हो ।

प्रतिनायक आततायी, कपटी, कुटिल और लोभी होता है । पीठ-मर्द नायक का सहायक कहलाता है । परिहास-प्रिय व्यक्ति विदूषक कहा जाता है । नायिका तीन प्रकार की होती हैं—स्वकीया, परकीया और सामान्या । अवस्था के अनुसार भी नायिका के तीन भेद होते हैं—मुग्धा, मध्या और प्रौढा ।

कथोपकथन तीन प्रकार का होता है—सर्व-श्राव्य, नियत-श्राव्य और अश्राव्य । सर्व-श्राव्य कथोपकथन वह है जिसको सब सुन सकें । नियत-श्राव्य कथोपकथन उसे कहते हैं जिसे कुछ थोडे व्यक्ति ही सुन

पाते हैं। इन थोडे से व्यक्तियो मे श्रोताग्रो या दर्शको का सुनना ग्रावश्यक है। नियत-श्राव्य कथोपकथन रगमञ्च पर उपस्थित पात्रो मे से जिसे सुनाना ग्रावश्यक होता है वे सुनते है और शेप ऐसा ग्रभिनय करते हैं जैसे उन्होने सुन न पाया हो। ऐसा कथोपकथन ग्रस्वाभाविक लगता है। लेकिन यह वहुत समय से चला ग्रा रहा है। इस प्रकार नियतश्राव्य कथोपकथन वह है जिसे वक्ता कहता है ग्रौर दर्शक सुनता है, किन्तु रगमञ्च के व्यक्ति नही सुन पाते हैं। इसे स्वगत भी कहा जाता है। ग्रश्राव्य कथोपकथन वह है जिसे कहने वाला तो दिखाई नही देता किन्तु वह पात्रो को सुनाई पडता है। कथोपकथन मार्मिक ग्रौर रुचिकर होना चाहिये। उसका सक्षिप्त होना भी ग्रावश्यक है। यदि वह भापरग वन जाय तो उसमे लोगो की दिलचस्पी नही रहती। इसी प्रकार ग्रधिकाश कथोपकथन का भावुकता-पूर्ग होना भी ग्रच्छा नही होता। वह स्वाभाविक होना चाहिये।

रस नाटक मे महत्त्वपूर्ग स्थान रखता है। उसके बिना दर्शको को नाटक मे कोई ग्रानन्द नही ग्राता। रस की निष्पत्ति भाव, विभाव, ग्रनुभाव ग्रौर सचारीभाव के योग से होती है। इन सब पर पिछले एक ग्रध्याय मे विचार हो चुका है। नाटक मे वीर, शृङ्गार ग्रौर करुग रसो की प्रधानता होती है। ग्राज-कल नाटको मे रस का उतना विचार नही रखा जाता, जितना प्राचीन सस्कृत-नाटको मे रखा जाता था। ग्राज-कल के नाटक मनोविज्ञान की किसी गुत्थी को सुलझाने की चेष्टा करते हुए प्रतीत होते हैं।

नाटक मे वातावरग या देश-काल का भी पूरा-पूरा ध्यान रखना पड़ता है। ऐसा न हो कि सीता का शृङ्गार ऊँची एडी के जूते पहिना कर किया जाय ग्रौर झाँसी की रानी लक्ष्मीवाई का लिपस्टिक लगा कर। इसी प्रकार काश्मीर मे लू चला देना ग्रौर जैसलमेर मे वाढ का दृश्य दिखाना भी देश-काल की दृष्टि से सदोष होगा।

नाटक मे मच का वडा महत्त्वपूर्ग स्थान होता है। मच के कारग ही नाटक दृश्य-काव्य की कोटि मे ग्राता है ग्रन्यथा उसमे ग्रौर उपन्यास मे कोई ग्रन्तर ही न रह जाय। ग्रत नाटक मे इस बात का ध्यान

रखना पडता है कि उसमे ऐसी घटनाएँ न रखी जायँ जिनका प्रदर्शन मच पर न किया जा सके। इसी प्रकार ऐसी भाषा का प्रयोग भी नही किया जाना चाहिये जिसे सर्व-साधारण न समझ सके। पात्रो की वेष-भूषा ऐसी हो कि दर्शक उन्हे सरलता से समझ सकें। जब कोई नया पात्र मच पर आए तो अन्य पात्रों को तुरन्त उसका नाम लेना चाहिये जिससे दर्शक उसका नाम जान लें। स्थान की सूचना भी दर्शको को पात्रो के कथोपकथन से मिल जानी चाहिये। दो दृश्यों और दो घटनाओ के बीच कितना समय बीत गया इसका ज्ञान भी दर्शको को करा देना चाहिये।

प्राचीन सस्कृत नाटको मे मच पर हत्या, भोजन, मृत्यु आदि के दृश्य नही दिखाये जाते थे। उनमे पहले दृश्य में सूत्रधार नाटक और नाटककार का परिचय देता था। अन्त में भरत-वाक्य के रूप में एक उपदेश दिया जाता था जिसमें नाटक का सार आ जाता था, लेकिन अब ये बाते नही होती हैं। इसी प्रकार प्राचीन नाटको में असद्-प्रवृत्तियो की पराजय तथा सद्प्रवृत्तियो की विजय दिखाई जाती थी। अत सस्कृत के नाटक सुखान्त होते थे किन्तु असद्वृत्तियो की विजय के कारण पश्चिमी नाटक दुखान्त होते थे।

३. उपन्यास

उपन्यास शब्द का शाब्दिक अर्थ है—सामने रखना। हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार स्व० प्रेमचन्द के अनुसार 'उपन्यास मानव जीवन का चित्र है।' बाबू श्यामसुन्दरदास उपन्यास को मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा मानते थे। बाबू गुलाबराय के शब्दो में उपन्यास कार्य-कारण शृङ्खला में बँधा हुआ वह गद्य कथानक है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियो से सम्बन्धित वास्तविक या काल्पनिक घटनाओ द्वारा मानव-जीवन के सत्य का उद्घाटन किया जाता है।

उपन्यास में पाँच प्रमुख तत्त्व होते हैं—कथानक, पात्र, मुख्य सवेदना,

वातावरण और शैली। कथानक कुछ घटनाओ का सकलन होता है। ये घटनाएँ अलग-अलग होने पर भी एक दूसरे से बँधी रहती हैं। कथानक मे कोई न कोई समस्या अवश्य होती है, फिर वह चाहे जन्म से सम्बन्ध रखती हो, चाहे मृत्यु से, और चाहे प्रेम से सम्बन्ध रखती हो चाहे घृणा से। अच्छे कथानक के निर्वाचन पर ही उपन्यास की बहुत कुछ सफलता निर्भर रहती है। अच्छे कथानक मे मौलिकता एव कौशल होना चाहिये। उसमे सम्भावना, सगठितता और रोचकता भी आवश्यक होते हैं। कथा मे नवीनता होना मौलिकता कहा जाता है और कथा मे सम्बन्ध का निर्वाह कौशल। सम्भावना का अर्थ है कथानक का समुचित विकास। कथानक के सगठन एव क्रम को सगठितता कहा जाता है और कौतूहल का समावेश रोचकता कहा जाता है।

पात्र दो प्रकार के होते हैं—स्थिर और परिवर्तनशील। स्थिर-पात्र वे है जो अपनी विशेषताओ को कायम रखते हैं। किन्ही प्रभावो के कारण अपने स्वभाव को बदल नही पाते। सत्य हरिश्चन्द्र, राम, लक्ष्मण, भरत आदि इसी प्रकार के पात्र हैं। परिवर्तनशील पात्र वे हैं जो प्रभावो के वशीभूत होकर अपने स्वभाव को बदल लेते हैं। चोर-लुटेरे से साधु हो जाना अथवा कामी-क्रोधी से भगवद्-भक्त हो जाना इसी प्रकार के पात्रो की विशेषता है। तुलसीदास, वाल्मीकि आदि इसी कोटि के चरित्र हैं। उपन्यास मे प्राय इन दोनो प्रकार के पात्रो का पारस्परिक सघर्ष दिखाया जाता है। आज के बहुत से उपन्यासो मे हमे यह दिखाई देता है कि एक स्थिर-पात्र के सम्पर्क मे परिवर्तनशील पात्र आता है और किस प्रकार उसके चरित्र का विकास होता है। कभी-कभी परिवर्तनशील पात्रो के पारस्परिक सघर्ष के परिणाम-स्वरूप भी कथानक आगे बढता है। आजकल शायद ही कोई ऐसा उपन्यास मिलेगा जिसमे एक ही प्रकार के पात्र हो। पुराने जमाने की बात जाने दीजिये आजकल जो चरित्र-चित्रण प्रधान उपन्यास लिखे जा रहे हैं उनमे एक ही प्रकार के पात्रो से किसी भी प्रकार काम नही चल पाता। पात्रो के साथ चरित्र-चित्रण का तत्त्व भी जुडा हुआ है। चरित्र-चित्रण का अर्थ है मानव-स्वभाव और मानव-ज्ञान का विश्लेषण।

चरित्र-चित्रण की दो रीतियाँ हैं—विश्लेषणात्मक एव नाटकीय। पहली रीति के अनुसार लेखक पात्रो के स्वभाव का स्वय वर्णन करता है और दूसरी के अनुसार यह कार्य पात्रो की अपनी वातचीत और क्रिया-कलाप के द्वारा। चरित्र-चित्रण के दो प्रमुख साधन हैं—वार्तालाप और किया-कलाप। अत. उपन्यास लेखक को चरित्र-चित्रण मे इन वातो का विशेष ध्यान रखना पडता है। अच्छे चरित्र-चित्रण मे सजीवता के साथ-साथ स्वाभाविकता का गुण अवश्य होता है।

उपन्यास का तीसरा तत्त्व है मुख्य संवेदना। उपन्यास लेखक अपनी लेखनी से जीवन का कोई सही चित्रण उपस्थित करने का प्रयत्न करता है। उसका उद्देश्य होता है समाज मे होने वाले किसी अभाव को वाणी देना—उस पर प्रकाश डालना। इसलिये वह किसी सामयिक समस्या को उठाता है अथवा आदर्श और यथार्थ का द्वन्द्व दिखाता है। मानव-जीवन का कोई सत्य, चाहे वह मनोवैज्ञानिक हो चाहे और किसी प्रकार का, उपन्यास का केन्द्र बिन्दु होता है और उसी के आस पास कथावस्तु, पात्र, शैली, वातावरण आदि तत्त्व घूमते हैं। इसी सत्य को हम मुख्य सवेदना कहते हैं।

चौथा तत्त्व है—वातावरण। नाटक के सम्वन्ध से विचार करते हुए हम वातावरण के तत्त्व पर विचार कर चुके हैं। नाटक के वातावरण और उपन्यास के वातावरण मे वस्तुत. कोई विशेष अन्तर नही होता। अत यहाँ उसको फिर से दुहराना आवश्यक नही है। उपन्यास और नाटक के वातावरण मे इतना ही अन्तर होता है कि उपन्यास मे वातावरण की सूचना सीधे-सीधे लिख दी जाती है लेकिन नाटक मे इतना सीधापन नही होता।

उपन्यास का पाँचवा तत्त्व है—शैली। शैली का उपन्यास मे बडा महत्त्व होता है। शैली का चुनाव उपन्यासकार कथावस्तु और चरित्र चित्रण को ध्यान मे रखकर करता है। उपन्यास की शैली तीन प्रकार की होती है—(१) ऐतिहासिक, (२) आत्म-चरित्र और (३) पत्र। ऐतिहासिक शैली वह है जिसमे लेखक तटस्थ होकर घटनाओ का वर्णन कर देता है। इस प्रकार की शैली दुनियाँ के अधिकाश उपन्यासो मे

मिलती है। आत्म-चरित्र शैली वह है जिसमे उपन्यास का कोई पात्र आत्म-चरित्र के रूप मे अपनी कथा स्वयं कहने लगता है। जब उपन्यास का कोई एक पात्र दूसरे पात्र को पत्र लिखता है और पत्र के द्वारा सारी कथा कहता है तो उसे पत्र-शैली कहा जाता है। ऐतिहासिक-शैली मे उपन्यास लिखना तुलनात्मक दृष्टि से सरल है। इसमे लेखक घटनाओ एव चरित्र-चित्रण पर अपने विचार स्वतन्त्रता-पूर्वक व्यक्त कर सकता है। किन्तु आत्म-चरित्र और पत्र शैली मे इतनी सुविधा नही होती। आत्म-चरित्र और पत्र-शैली के द्वारा जो कुछ कहा जाता है वह उन पात्रो के विचार होते है, लेखक के नही। अत इन शैलियो के द्वारा घटनाओं और पात्रो की तटस्थ समीक्षा सम्भव नही होती। इन पाँचो तत्त्वो के सुन्दर समन्वय से ही उपन्यास सुन्दर बनता है। यदि इनमे से कोई एक तत्त्व भी निर्बल हुआ तो उपन्यास सर्वाङ्ग सुन्दर नही बन पाता।

४—कहानी

उपन्यास मे जो पाच तत्त्व होते हैं वे ही कहानी मे भी होते है। कहानी और उपन्यास मे बहुत वडी समानता है। यदि अन्तर है तो इतना ही कि उपन्यास का कलेवर बडा होता है, कहानी का छोटा। कहानी का कथानक काफी छोटा होता है। उसमे बहुत-सी घटनाये नही होती। प्राय एक ही प्रमुख घटना उसमे होती है। यदि एक से अधिक घटनाएँ होती भी हैं तो वे उस प्रमुख घटना की सयोजक ही होती है। उपन्यास जहाँ जीवन का पूरा चित्र देना चाहता है वहाँ कहानी का कथानक उसकी झलक मात्र ही दिखाना चाहना है। कहानी का कथानक जीवन के एक बिन्दु पर केन्द्रित रहता है जबकि उपन्यास जीवन की धारा पर। उपन्यास मे जीवन के बिन्दुओ का चित्रण होता है, किन्तु वह होता है धारा के चित्रण के लिये। इसी प्रकार कहानी मे भी जीवन की धारा का चित्रण होता है किन्तु वह होता है जीवन के बिन्दुओ के चित्रण के लिये।

कहानी मे पात्रो की सख्या सीमित होती है। फिर भी कहानी और उपन्यास मे पात्रो की सख्या सम्बन्धी अन्तर विशेष महत्त्वपूर्ण इसलिये

नही है कि आजकल ऐसे उपन्यास भी लिखे जा रहे है जिनमे दो-तीन पात्र ही होते हैं। उपन्यास मे चरित्र की विशेषताएँ सम्यक् रूप से दिखाई जाती है। किन्तु कहानी के छोटे कलेवर मे यह सम्भव नही होता। उसमे चरित्र की विशेषताएँ प्रभावशाली ढङ्ग से व्यक्त अवश्य की जाती हैं किन्तु सम्यकता नही आ पाती।

कथानक एव पात्रो की तरह मुख्य सवेदना की दृष्टि से भी कहानी और उपन्यास मे विशेष अन्तर नही होता। हाँ, उपन्यास मे जहाँ मुख्य-सवेदना को विकसित करने और उसका समुचित चित्रण करने के लिये पर्याप्त अवसर मिलता है वहाँ कहानी मे उतनी मुक्तता नही मिल पाती।

वातावरण की दृष्टि से तो कहानी और उपन्यास मे कोई अन्तर नही होता। फिर भी इतना अन्तर तो होता ही है कि उपन्यास का वातावरण बहुत जल्दी विस्मृत हो जाता है। वातावरण की भाँति शैली सम्बन्धी भी कोई अन्तर कहानी मे नही होता। उपन्यास की जो तीन शैलियाँ बताई गई है उन्ही मे कहानी लिखी जाती है। जिस कहानी मे उपर्युक्त तत्त्वो के सुन्दर समन्वय के साथ-साथ सरस और सरल भाषा, अन्तर्द्वन्द का सजीव चित्रण, औत्सुक्य की वृद्धि तथा नपे-तुले शब्दो मे कहने की कला होती है, वही कहानी श्रेष्ठ मानी जाती है। कहानियाँ कई प्रकार की होती हैं। जिस कहानी मे घटना की प्रधानता हो उसे घटना-प्रधान और जिसमे चरित्र की प्रधानता हो उसे चरित्र-प्रधान कहानी कहते हैं। इसी प्रकार शिक्षा की प्रधानता से शिक्षा-प्रधान, आदर्श की प्रधानता से आदर्श-प्रधान, अनुभूति की प्रधानता से अनुभूति-प्रधान तथा हास्यरस की प्रधानता से कहानी हास्यरस-प्रधान कही जाती है। इसी प्रकार अन्य विशेषताओ के कारण कहानियाँ अलग-अलग नामो से भी पुकारी जाती हैं। जैसे सामाजिक, पत्रात्मक, आध्यात्मिक, सवादात्मक, कार्यक्रमात्मक आदि। आजकल के व्यस्त जीवन मे जबकि बड़े-बड़े उपन्यास पढने का समय ही नही मिलता, कहानी की आवश्यकता, लोक-प्रियता और महत्त्व दिन प्रति दिन बढता जा रहा है।

५—निबध

निवन्ध का शाब्दिक ग्रर्थ है—'बँधा हुग्रा।' जव कुछ नपे-तुले सीमित शब्दो मे किसी विषय की व्याख्या की जाती है तो उसे निवन्ध कहा जाता है। निवन्ध के तीन भाग माने गये हैं—प्रस्तावना, मध्य ग्रौर उपसहार। विषय की दृष्टि से निवन्ध के निम्नलिखित भेद माने जाते हैं—विवरणात्मक, वर्णनात्मक, विवेचनात्मक, व्याख्यात्मक, ग्रालोचनात्मक, साहित्यिक ग्रौर ललित निबन्ध। विवरणात्मक निवन्धो मे घटना की प्रधानता होती है। वर्णनात्मक निबन्धो मे किन्ही प्राकृतिक वस्तुग्रो, उत्सवो, मेलो, नगरो, सस्थाग्रो ग्रादि का वर्णन होता है। विवेचनात्मक निबन्धो मे विचारो की प्रधानता होती है। व्याख्यात्मक निबन्ध मे व्याख्या पर पूरा ध्यान रहता है ग्रौर ग्रालोचनात्मक निवन्धो मे ग्रालोचना पर। इसी प्रकार साहित्यिक निबन्धो मे साहित्य की एव ललित निबन्धो मे रोचकता एव सुन्दरता की प्रधानता रहती है।

निवन्ध मे दो तत्व होते हैं—विषय-वस्तु ग्रौर शैली। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है निबन्ध गद्य रचना है, जिसमे सीमित ग्राकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वच्छन्दता, सौष्ठव ग्रौर सजीवता के साथ किया जाता है। ग्रत विचार की स्पष्टता के साथ प्रतिपादन की शैली का भी निबन्ध मे वडा महत्वपूर्ण स्थान होता है। निबन्ध मे विचारो को क्रम से तथा एक दूसरे से ग्रच्छी तरह बाँध कर रखा जाता है ताकि विचार बिखरे-विखरे या विश्रृङ्खल प्रतीत न हो। उनमे स्वाभाविक रूप से एक वाक्य मे से दूसरा वाक्य ग्रौर एक ग्रनुच्छेद मे से दूसरा ग्रनुच्छेद निकलना चाहिये। बहुत से निबन्ध लेखक, निबन्ध का ग्रारम्भ भूमिका से तथा ग्रन्त उपसहार से करते है। किन्तु ग्राजकल ऐसे भी निबन्ध लिखे जा रहे हैं जिनमे न भूमिका होती है न उपसहार। व्यर्थ की भूमिका निबन्ध की रोचकता को नष्ट कर देती है।

यह ग्रावश्यक नही है कि निवन्ध मे किसी विषय का सम्यक् विश्लेपण हो। सम्यक् विश्लेषरणपूर्ण निबन्ध प्रबन्ध कहे जाते है। ग्राजकल कुछ लेखक तो केवल एक विचार लेकर ही निवन्ध लिखते हैं।

प्रतापनारायण मिश्र ने इसी प्रकार के कुछ निवन्ध लिखे थे। इस प्रकार के निवन्धो मे विपय का सम्यक् विवेचन नही होता। रोचकता ही उनका एक मात्र गुण होता है। जिस प्रकार किसी वस्तु की उत्पत्ति, विकास, गुण, दोष आदि पर प्रकाश डालना कविता का कार्य नही है, वह तो इनमे से किसी एक पक्ष को लेकर ही लिखी जा सकती है, उसी प्रकार निवन्ध भी किसी विषय के एक पक्ष को लेकर लिखे जा सकते हैं। कविता की भाँति निवन्ध मे भी रोचकता, मार्मिकता आदि गुण होने चाहिये, फिर चाहे विपय का सम्यक् प्रतिपादन हो या न हो। निवन्ध कलात्मक साहित्य का एक भाग है, अत कलात्मकता ही उसका सबसे वडा गुण माना जाने लगा है।

६—साहित्य-समालोचना

किसी रचना के गुण-दोषो पर प्रकाश डालना समालोचना का प्रमुख कार्य है। वह साहित्य को परिष्कृत रूप प्रदान करती है। समालोचना एक ओर कवि की रचना की व्याख्या सहानुभूति के साथ करती है और दूसरी ओर पाठक के विश्वास को भी अभिव्यक्त करती है। समालोचना के छ प्रमुख भेद माने जाते हैं—निर्णयात्मक, व्याख्यात्मक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, तुलात्मक और प्रभावात्मक।

समालोचना भी आजकल कलात्मक साहित्य का ही एक अङ्ग मानी जाने लगी है। उसका प्रमुख कार्य है किसी नाटक, कहानी, उपन्यास, कविता या निवन्ध के गुण-दोष का विवेचन करना। इस विवेचन के द्वारा वह पाठक को उस रचना की गहराई तक पहुँचा देना चाहती है। आलोचक को इस सम्वन्ध मे सावधानी रखनी होती है कि वह अपने को निर्णायक न मान ले। यदि उसने अपने को निर्णायक मानकर निर्णय देना आरम्भ कर दिया तो वह समालोचक नही रह जायगा। अत समालोचना मे तटस्थवृत्ति वडी आवश्यक होती है। समालोचक को कविता, नाटक, उपन्यास आदि पर तटस्थतापूर्वक विचार करना होता है। यदि उसके मन मे राग-द्वेष या आसक्ति पैदा हो गई तो समालोचना का कार्य नही हो सकेगा।

समालोचना करते समय समालोचक को वही दृष्टिकोण अपनाना होता है जो कि लेखक या कवि का रहा है और उन्ही परिस्थितियो के बीच अपने को डालकर देखना होता है जिनमे लेखक या कवि रहा है। अत रचना के साथ रचयिता को जानना भी समालोचक के लिए वडा आवश्यक होता है।

उपर्युक्त भेदो के साथ जीवनी और पत्र भी आजकल कलात्मक साहित्य के ही अग माने जाते हैं। जीवनी या आत्मकथा मे मनुष्य के अन्तर और बाह्य स्वरूप का कलात्मक निरूपण होता है। काव्य के लगभग समी गुण जीवनी मे होते हैं। किन्तु काव्य मे जहाँ कल्पना की प्रधानता होती है वहाँ जीवनी मे सत्य का प्रमुख स्थान होता है। श्रेष्ठ जीवनी वह होती है जिसमे निष्पक्षता तथा तटस्थ वृत्ति से अपने बारे मे लिखा जाता है।

पत्र व्यक्ति की मानसिक प्रतिक्रिया के चित्र होते है। उनमे लेखक पाठक के साथ अपनापन-सा स्थापित कर अपनी बात कहता जाता है।

——

हिन्दी साहित्य का इतिहास

हिन्दी भाषा और साहित्य का श्रीगणेश लगभग १००० ई० मे हुआ । इस समय हिन्दी भाषा मे जो साहित्य लिखा गया उसके बारे मे हमे बहुत कम जानकारी है। आधुनिक खोजो के अनुसार हिन्दी का आदि-कवि चन्दबरदाई माना जाता है । उसने दिल्ली-नरेश पृथ्वीराज चौहान की प्रशसा मे 'पृथ्वीराज रासो' की रचना की । पृथ्वीराज का समय ग्यारहवी शताब्दी है । इसीलिए हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास का काल भी ग्यारहवी शताब्दी मे माना जाता है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उस समय से अब-तक के समय को निम्नलिखित चार भागो मे विभाजित किया है—

(१) आदिकाल या वीरगाथा-काल स० १००० से सं० १३७५ तक
(२) पूर्व-मध्यकाल या भक्ति-काल—सं० १३७५ से सं० १७०० तक
(३) उत्तर-मध्यकाल या रीति-काल—सं० १७०० से स० १६०० तक
(४) आधुनिक काल सं० १६०० से अब तक

इन चारो कालो मे सभी प्रकार की कविताएँ हुई है तथापि प्रत्येक काल मे किसी एक ही प्रवृत्ति की प्रधानता रही है । इसी दृष्टि से मुख्य प्रवृत्तियो के आधार पर उपर्युक्त काल-विभाजन किया गया है। हिन्दी साहित्य के विकास के इसी वर्गीकरण के सम्बन्ध मे याद रखना चाहिये कि साहित्य का इतिहास भाषा का इतिहास मात्र नही होता । साहित्य विचारो और भावो का बहुत बडा भण्डार है, भाषा तो उसकी अभिव्यक्ति का साधन-मात्र है । यही कारण है कि साहित्य के इतिहास की रूपरेखा अकित करते समय उन विचार-धाराओ पर ही विशेष ध्यान देना पडता है, जिन्होने समय और परिस्थितियो की भिन्नता के कारण भिन्न-भिन्न रूपो से परिणत होकर हिन्दी साहित्य की धारा को एक दिशा से दूसरी दिशा की ओर मोड दिया है । साहित्य के इतिहास मे इसी दृष्टि के कारण हमे यह भी देखना होता है कि साहित्य की धारा

के ये मोड किन कारणो के परिणामस्वरूप आए हैं तथा उनका तत्कालीन समाज पर क्या प्रभाव पडा है ।

इस वर्गीकरण के सम्वन्ध मे दूसरी ध्यान रखने योग्य वात यह है कि साहित्य के काल विकास का वर्गीकरण ठीक नही होता, जैसा कि ऐतिहासिक दृष्टि से किया जाता है । साहित्य के विकास का इतिहास लिखते समय किसी काल का नामकरण उस काल की लोक-प्रवृत्ति से अनुसार किया जाता है । इसका यह मतलब नही कि किसी काल मे लोक-प्रवृत्ति का समान रूप ही रहता है । हिन्दी साहित्य का अध्ययन हमे यह बताता है कि जिस वीरगाथा-काल मे अनेक वीर रस के ग्रन्थ लिखे गये उसी मे विद्यापति आदि ने भक्तिरस की कविताएँ भी लिखी हैं । इसी प्रकार जिस रीतिकाल मे देव, बिहारी आदि कवियो ने शृङ्गार-रस की कविताएँ लिखी, उसी मे भूषण ने वीर-रस पूर्ण कविताएँ भी लिखी ।

वीर गाथा-काल

हिन्दी साहित्य के विकास का आदिकाल वीरगाथा-काल के नाम से विख्यात है । स० १००० से १३७५ तक अर्थात् लगभग ४०० वर्षों के समय मे जो साहित्य लिखा गया उसमे वीर रस की ही प्रधानता रही । वात यह थी कि इस समय की राजनैतिक स्थिति डाँवाडोल थी । हर्षवर्धन के वाद से देश मे किसी एक सम्राट् का अखण्ड राज्य स्थापित नही हो सका था । दिल्ली, अजमेर, कन्नौज, अनहलवाडा इस समय की राजनीति के प्रमुख केन्द्र वने हुए थे । सारे देश मे छोटे-छोटे राजा फैले हुए थे । कही चन्देलो का राज था तो कही चौहानो का और कही तोमरो का राज था तो कही परिहारो का । सबकी अपनी स्वतन्त्र सत्ता थी और सभी अपनी-अपनी शान और प्रतिष्ठा के आगे देश की प्रतिष्ठा और एकता की परवाह नही करते थे । अपनी उच्चता या वीरता के प्रदर्शन के लिए वे सदैव आपस मे लडा करते थे । किन्तु इस समय परिस्थिति ने सहसा करवट वदली और भारतीय राजनीति मे विदेशी आक्रमण के परिणामस्वरूप परिवर्तन होने लगे । मुसलमान

आक्रमणकारी धन के लोभ से आक्रमण करते थे और रुपया लूट कर चले जाते थे। वे लगभग दो सौ वर्ष तक निरन्तर आक्रमण करते रहे। लेकिन इधर भारतीय राजाओ मे पारस्परिक वैमनस्य इस सीमा तक बढ गया था कि आपस मे मिल-जुल कर मुसलमान आक्रमणकारियो का मुकाबला करना तो दूर, वे एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए आक्रमणकारियो को निमन्त्रण देकर बुलाने मे भी कोई हिचकिचाहट अनुभव नही करते थे। उस समय के लगभग सभी राज्यो मे स्वेच्छाचारी शासन था। राजा जो चाहता खुशी से करता था और कर-वसूली के अतिरिक्त उसका प्रजा से सीधा सम्बन्ध नही था। इधर प्रजा अपने हाल मे मस्त थी। उसे जैसे राजनीति से कोई मतलब ही नही था। इन दिनो धीरे-धीरे मुसलमानी साम्राज्य का श्रीगणेश भी हुआ किन्तु सौभाग्य से न तो वह विदेश के इशारे पर चलता था और न देश का रुपया ही विदेश को ले जाया जा रहा था। अत यद्यपि देश के आत्म-सम्मान को ठेस लग रही थी तथापि कोई विशेष परिवर्तन का विचार जड नही पकड रहा था।

राजनीतिक स्थिति के परिवर्तन के परिणामस्वरूप सामाजिक स्थिति मे भी कुछ परिवर्तन हुए, किन्तु विशेष नही। धार्मिक स्थिति तो बहुत अशो मे स्थिर ही बनी रही। बौद्ध-धर्म का प्रभाव कम होते-होते अब इस स्थिति मे आ गया था कि वह हिन्दू-धर्म के साथ कोई समझौता करले। इस समय हिन्दू-धर्म दो भागो मे बँटा हुआ था। पहला था वैदिक धर्म, जो वेद-पुराण सम्मत था। दूसरा था ब्रह्म-धर्म जो वेद-पुराण सम्मत नही था। ब्रह्म धर्म मे जादू-टोने और काली-पूजा की प्रधानता थी। बौद्ध-धर्म पर इस ब्रह्म-धर्म का प्रभाव पडा और उसमे भी जादू-टोने तथा तन्त्र-मन्त्र का प्रवेश हो गया। अब हिन्दू-धर्म-प्रभावित बौद्ध अपने को सिद्ध कहने लगे। इस प्रकार के सिद्धो मे गोरखनाथ का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्होने अपना एक सम्प्रदाय चलाया जो गोरखनाथ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वैदिक धर्म के अनुयायी शिव के उपासक थे और राम-कृष्ण की उपासना भी दक्षिण भारत से धीरे-धीरे उत्तर भारत मे आ रही थी।

वीरगाथा-काल का हिन्दी साहित्य तीन भागो मे बाँटा जा सकता है—(१) चारणो द्वारा लिखा गया काव्य, (२) धार्मिक साहित्य और (३) मनोरजक साहित्य। चारणो द्वारा लिखे हुए काव्य मे जहाँ 'पृथ्वीराज रासो' जैसे बड़े-बडे प्रवन्ध-काव्य हैं, वहाँ 'वीसलदेव रासो' जैसे छोटे प्रवन्ध-काव्य भी हैं। यह काव्य उन चारणो द्वारा लिखा गया था जो अपने आश्रयदाता नरेशो का गुणगान खूब वढा-चढा कर करते थे। चारण कवियो की कविता में यद्यपि काफी अत्युक्ति है यथापि उसमे ऐतिहासिकता का अश भी है। यह काव्य अधिकतर डिंगल भाषा मे है। डिंगल राजस्थानी हिन्दी का एक रूप है। इस युग मे राजाओ के दो प्रमुख कार्य थे—आपस मे लडना और दूसरे राजाओ की कन्याओ का अपहरण करना। अत जहाँ युद्ध के कारण इस युग की कविता मे वीर रस की प्रधानता थी, वहाँ कन्याओ के अपहरण के कारण उसमे मूल भावना शृङ्गार की थी। इस कारण से इस समय कविता मे शृङ्गार के साथ वीर रस का जैसा सुन्दर समावेश हुआ है वैसा अन्यत्र मुश्किल से ही मिलेगा। इस युग के चारण कवियो मे प्रमुख हैं—दलपत विजय, नरपत नाल्ह, चन्दवरदाई, भट्ट केदार, मधुकर, जगनिक और श्रीधर। इन कवियो मे केवल श्रीधर और नरपत नाल्ह की कविताएँ ही प्रामाणिक रूप से मिलती हैं। भट्ट केदार और मधुकर के ग्रन्थ तो बिल्कुल ही नही मिलते। जगनिक का आल्हा और दलपत विजय का खुमान-रासो आज जिस रूप में प्राप्त है वह शका का विषय ही वना हुआ है। पृथ्वीराज-रासो इस युग का बहुत वडा प्रवन्ध-काव्य है। कहा जाता है कि उसका रचयिता चन्द-बरदाई पृथ्वीराज का साथी और मित्र था किन्तु इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता भी सदिग्ध ही बनी हुई है। श्रीधर के 'रणमल्ल छन्द' नामक ग्रन्थ में ईडर के राजा रणमल्ल की उस विजय का वर्णन है जो उसने पाटन के सूबेदार जफरखाँ पर प्राप्त की थी। 'बीसलदेव-रासो' में राजा बीसलदेव के विवाह, प्रवास एव पुनरागम की कहानी है।

इस काल का धार्मिक साहित्य दो प्रकार का है—भक्ति-मूलक और योग-मूलक। विद्यापति भक्ति-मूलक साहित्य के मुख्य प्रणेता हैं। वे

शिव और गगा के साथ-साथ दुर्गा के उपासक थे । उनके भक्ति सम्बन्धी पद अपनी मार्मिकता के लिये प्रसिद्ध हैं । उनकी भाषा मैथिली-हिन्दी थी । उनके गीत आज तक मिथिला में गाये जाते है । योग-मूलक साहित्य के प्रमुख रचयिता हैं गोरखनाथ । गोरखनाथ की भापा सधुक्कडी है। सधुक्कडी से हमारा आशय उस भापा से है जो उस समय के साधु बोलते थे । ये साधु सारे देश में घूमते रहते थे । अत इनकी भाषा पर सभी प्रान्तो की भाषाओ का प्रभाव रहता था ।

इस काल का मनोरजक साहित्य भी दो प्रकार का है—(१) शृङ्गार-मूलक और (२) पहेली, मुकरी आदि के रूप में । शृङ्गार-मूलक साहित्य में गीत-गोविन्द की छाया पर विद्यापति द्वारा लिखा हुआ राधा-कृष्ण की प्रेम-क्रीडा का वर्णन प्रमुख है । विद्यापति की कोमलकान्त पदावली प्रसिद्ध है । कोमल भाषा के कारण इस शृङ्गार-मूलक काव्य में वडी रमणीयता आ गई है । पहेली-मुकरी-साहित्य के प्रमुख रचयिता है अमीर खुसरो । अमीर खुसरो की पहेलियाँ आज तक प्रसिद्ध है । उनकी भाषा-खडी वोली थी । वे खडी-वोली के सबसे पहले कवि हैं । कह नही सकते कि अमीर खुसरो के नाम से आज जितना साहित्य मिलता है वह सब उन्ही का है या और किसी कवि का । ऐसा अनुमान है कि पीछे से कुछ और कवियो ने भी जो कुछ लिखा उसे अमीर खुसरो का ही लिखा हुआ बताने का यत्न किया गया । इस प्रकार उस काल की राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक स्थिति का प्रतिबिम्ब पूरी तरह उस समय के काव्य मे दिखाई दे जाता है ।

भक्ति-काल

भक्ति-काल स० १३७५ से आरम्भ होकर स० १७०० तक चला जाता है । यद्यपि इस काल में भी सभी प्रकार का काव्य लिखा गया तथापि इस काल में भक्त-कवि पर्याप्त सख्या में हुए । इसी कारण इसे भक्ति-काल कँहा जाता है । वीर-गाथा-काल की अपेक्षा इस काल की राजनीतिक स्थिति कुछ अधिक स्थिर हो गई थी । मुसलमानी राज्य अब देश के प्रमुख भागो मे फैल गया था और अब उसे पराजित कर हटा देना हिन्दू राजाओ के वश की बात नही थी । हिन्दू राजा अब भी

आपस मे लडते थे, किन्तु पहले से कम। जनता ने मुसलमानी राज्य के विरुद्ध कोई विद्रोह नही किया। वह उससे कोई विशेष रूप से असन्तुष्ट नही थी। जनता मे राष्ट्रीयता का अभाव-सा था। राज्य का गाँवो से कर देने का ही सम्बन्ध था। कर देने के वाद ग्रामवासी पूर्णत: स्वतन्त्र थे।

इस प्रकार राजनीतिक क्षेत्र मे यद्यपि स्थिरता थी, तथापि सामाजिक क्षेत्र मे विद्रोह के चिह्न दिखाई दे रहे थे। शूद्र अव अधिक अत्याचार सहने के लिये तैयार नही थे और स्त्रियाँ भी अपने सम्मान को और ज्यादा गिरने देना नही चाहती थी। ब्राह्मणों के निर्वाह का साधन पुरोहित कार्य ही था तथापि उसका प्रभाव उत्तरोत्तर घटता जा रहा था। हिन्दू-मुसलमानो मे मेल-मिलाप बढ रहा था लेकिन पारस्परिक विवाद अच्छे नही समझे जाते थे। आर्थिक दृष्टि से समाज मे यद्यपि धनी और गरीब वर्ग था तथापि उसके पारस्परिक सम्बन्धो मे कटुता नही थी। धनी लोग गरीबो की सहायता करते थे और उसके प्रति सहानुभूति रखते थे। तक्षशिला और नालन्दा के शिक्षा-केन्द्र टूट गये थे। अब काशी ही शिक्षा का केन्द्र था। शिक्षा बहुत अशो मे धार्मिक होती थी और पुरोहित ही शिक्षा देने का कार्य करता था। लोगो का नैतिक स्तर साधारणत सन्तोषजनक था।

किन्तु देश की धार्मिक स्थिति डाँवाडोल थी। इस्लाम भूमि-विजय की लालसा के साथ-साथ धर्म-विजय की लालसा भी लाया था और भूमि-विजय के बाद मुसलमानी सन्त, जिनमे चिश्ती, सुहरावर्दी एव नक्शबन्दी तीनो सम्प्रदाय के लोग शामिल थे अपने आदर्श जीवन तथा सच्चे-झूठे प्रचार के द्वारा हिन्दुओ को प्रभावित कर रहे थे। इनका सवसे ज्यादा प्रभाव पडा शूद्र वर्ण पर। वात यह थी कि शूद्रो को हिन्दू-धर्म मे कोई आदर का स्थान प्राप्त नही था। न तो समाज मे उनका आदर होता था न उन्हे मन्दिरो मे ही जाने दिया जाता था। वे चाहते थे कि कम से कम धर्म के क्षेत्र मे तो उनको बरावरी का दर्जा मिले। किन्तु हिन्दू-धर्म मे तो ऐसा हो नही सकता। अत वे मुसलमान वनने लगे। फिर तो कुछ सवर्ण भी उसी रास्ते पर जाते हुए दिखाई

देने लगे । यह सब देख हिन्दू-धर्म चौंका । उसने यह अनुभव किया कि कम से कम धार्मिक वातो का ज्ञान तो जनता को देना ही चाहिये ताकि वह इस्लाम के प्रवाह से बच सके । अत इस काल मे हिन्दी-भाषा मे धर्म-ग्रन्थ लिखे गये और सस्कृत का स्थान हिन्दी को मिलने लगा ।

वैदिक हिन्दू-धर्म इस समय दो भागो मे बँट गया था—शैव और वैष्णव । वैष्णव विष्णु की उपासना करते थे, शैव शिव की । वैष्णव राम-कृष्ण की भी उपासना करने लग गये थे क्योकि राम और कृष्ण विष्णु के ही अवतार थे । व्रात्य धर्मावलम्वी अधिकतर तान्त्रिक थे और शिव के भैरव स्वरूप एव दुर्गा, चण्डी आदि की उपासना करते थे । वौद्ध और जैन-धर्म हिन्दू-धर्म के सामने झुक गया था और मुसलमानो के सामने वे भी अपने को हिन्दू कहने लगे थे । अव इन सम्प्रदायो मे से कट्टरता निकल गई थी, निकलती जा रही थी । वैष्णव शिव का सम्मान करने लगे थे, शैव विष्णु का ।

दर्शन के क्षेत्र मे इस काल मे कुछ महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व आये । शङ्कराचार्य तो वीरगाथा-काल मे हो ही चुके थे, पर उनका प्रभाव अव पड रहा था । इस युग के दार्शनिको मे निजामुद्दीन चिश्ती, रामानन्द और वल्लभाचार्य प्रमुख थे । निजामुद्दीन चिश्ती सूफी दरवेश थे । उनका कहना था कि खुदा एक है । वह अद्वैत है, निर्गुण निराकार है । मूर्ति पूजा व्यर्थ है । हमे उसके साथ ऐसा ही प्रेम करना चाहिये जैसा स्त्री-पुरुष के साथ करती है या पुरुष स्त्री के साथ । उन्होने कुरान को मानने और नमाज पढने पर काफी जोर दिया । उनके सम्प्रदाय ने इस्लाम के प्रचार में वहुत वडा कार्य किया । रामानन्द ने विशिष्टाद्वैत दर्शन का प्रचार किया और राम-भक्ति पर जोर दिया । वल्लभाचार्य ने पुष्टि-मार्ग का प्रचार किया और कृष्ण-भक्ति पर जोर दिया ।

इस धार्मिक, राजनीतिक, दार्शनिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थिति के परिणामस्वरूप इस काल में हिन्दी-साहित्य मे चार प्रमुख धारा दिखाई देती हैं—(१) धार्मिक, (२) चारण, (३) रीति और (४) मनोरञ्जक । यद्यपि ये चार अलग-अलग धाराए हैं तथाति इन

मे धार्मिक काव्य का ही प्रमुख स्थान है। इस काल का धार्मिक काव्य चार उप-धाराओ मे विभक्त है—(१) सन्त-काव्य, (२) सूफी-काव्य, (३)कृष्ण-काव्य और (४) राम-काव्य।

१—सन्त-काव्य

कबीर, नानक, मीराँ, रैदास, दादू, सुन्दरदास आदि सन्त-काव्य धारा के प्रमुख कवि हैं। इनमे अधिकाँश या तो स्वामी रामानद के शिष्य थे या उनके शिष्यो के शिष्य थे। ये सन्त उस निर्गुण निराकार के उपासक थे जो सर्वव्यापी है। वे नाम के झगडे मे पडना उचित नही समझते थे। चाहे उसे राम कहो या रहीम वह एक ही है। लगभग सभी सन्त गुरु को भगवान् से अधिक मानते थे। वे धर्मों के आडम्बरो का खण्डन करते थे और साधारण मनुष्य-जाति के धर्म को ही धर्म मानते थे। वे सब अहिंसा, साधना और सदाचार मे विश्वास रखते थे।

वे जाति-पाँति के बन्धन को व्यर्थ मानते थे। उन्होने परमात्मा को पुरुष और आत्मा को स्त्री मानकर रहस्यवाद का निरूपण किया है। अपने मधुर उपदेशो से सन्तो ने मुसलमान तथा हिन्दू जनता को ईश्वरोपासना की ओर उन्मुख किया। उन्होने सामाजिक कुप्रथाओ एव धार्मिक आडम्बरो का विरोध किया और उनके लिये न हिन्दू को माफ किया न मुसलमाम को। उन्होने हिन्दू-मुसलमान को एकता और प्रेम के सूत्र मे बाँधने का प्रयत्न किया। उनके इस प्रयत्न का भारतीय जनता पर बडा अच्छा प्रभाव पडा।

सन्त कवियो मे महात्मा कबीर का स्थान सबसे ऊँचा है। इनका जन्म सन् १३९९ मे होना माना जाता है। जन-श्रुति है कि वे किसी विधवा स्त्री की सन्तान थे जिसने लोक-लाज के भय से उन्हे जन्म होते ही लहर-तारा नामक तालाब के पास डाल दिया। एक नीरू और नीमा नाम के जुलाहा दम्पत्ति ने उन्हें उठा लिया और उनका पालन-पोषण किया। अत मुसलमान हो जाने पर भी उनमे हिन्दू-धर्म के सस्कार शेष थे। कबीर का व्यक्तित्व बडा अनोखा था। वे हिन्दू

कुल मे जन्म लेकर भी हिन्दू न थे और मुसलमान परिवार मे पालित-पोषित होकर भी मुसलमान नही थे। उनमे विभिन्न सस्कृतियो, धर्मों और विचार-धाराओं का अद्भुत सम्मिश्रण था। वे एक साथ योगी, भक्त, साधु, गृहस्थी, हिन्दू और मुसलमान थे। वे सच्चे अर्थ मे भक्त थे। उनकी भक्ति-भावना भगवान् के प्रति सम्पूर्ण समर्पण चाहती थी।

सन्त रैदास जाति के चमार थे। वे भी स्वामी रामानन्द के शिष्य थे। रैदास के परिवार के लोग काशी के ही निकट पशु चराने का कार्य करके अपना निर्वाह करते थे। रैदास की कुछ फुटकर वाणियाँ ही प्राप्त हैं। उनके आधार पर कहा जा सकता है कि वे निर्गुणोपासक थे किन्तु सगुणोपासना के विरोधी भी नही थे। उनकी शैली सरल और आडम्बरहीन थी।

सन्त दादू दयाल (१५४४-१६०३) निर्गुण-सम्प्रदाय के उच्चकोटि के सन्त थे। इन्होने दादू-सम्प्रदाय के नाम से एक अलग सम्प्रदाय भी चलाया था। इनका जन्म अहमदाबाद मे हुआ था। कोई इन्हें मोची कहता है, कोई धुनियाँ और कोई ब्राह्मण। इनकी रचनाओ पर कबीर का प्रभाव स्पष्टत. परिलक्षित होता है।

सन्त कवियो मे गुरु नानक का भी महत्वपूर्ण स्थान है। उनका जन्म सन् १४६६ ई० मे पजाव के तलवण्डी नामक ग्राम मे हुआ था जिसे अब ननकाना साहव कहते हैं। उन्होंने सन् १५३८ ई० मे शरीर छोडा। सिक्ख-सम्प्रदाय उन्ही का चलाया हुआ है। गुरु नानक के पद 'ग्रन्थ साहव' मे सग्रहीत हैं। भक्ति-भावना के साथ-साथ साहित्य की भी वे अमूल्य निधि हैं। सुन्दरदास और मलूकदास भी इतिहास-प्रसिद्ध सन्त हैं। सुन्दरदास का जन्म स० १६५३ मे हुआ था। इनकी जन्म-भूमि जयपुर के निकट दौसा नामक स्थान वताया जाता है। ये दादू के शिष्य थे। इनका 'सुन्दर-विलास' एक अच्छा ग्रन्थ है। मलूकदास का जन्म स०१६३१ मे इलाहावाद मे पास कडा नामक ग्राम मे हुआ था। इन्होंने दूर-दूर तक अपनी गद्दियाँ स्थापित की। इनके ग्रन्थो मे रत्नवोध और ज्ञान-वोध प्रमुख हैं। इनके अलावा अक्षर अनन्य, यारी साहब, चरनदास,

जगजीवनदास, सहजोबाई, तुलसीसाहब, पलटूसाहब आदि भी इस धारा के प्रमुख कवि हुए हैं।

२—सूफी-काव्य

सन्तो के उपदेशो मे वेदान्त के दार्शनिक विचारो की गम्भीरता थी। उनकी वाणियो के दिव्य-सन्देश मे इतनी गहराई थी कि मानसिक दृष्टि से पराजित जनता उसे ग्रहण करने मे असमर्थ थी। जनता जीवन का माधुर्य चाहती थी। उसकी प्रवृत्ति ऐसी उपासना की ओर थी जिसमे हृदय की कोमलता हो। वह ऐसा ईश्वर चाहती थी जो उसकी करुण पुकार सुन सके, उसका दु ख बँटा सके और उसके प्रति समवेदना प्रकट कर सके। ईश्वर की कृपा उसे इष्ट थी। लेकिन साथ ही साथ वह न तो जीवन से विरक्त होना चाहती थी, न ससार से। यह कमी पूरी की सूफी कवियो ने। सूफी कवियो ने तत्कालीन समाज को आख्यान काव्य लिख कर लौकिक-प्रेम द्वारा परमात्मा के प्रेम का दिग्दर्शन कराना चाहा। सभी सूफी कवियो ने एक ही प्रकार का काव्य रूप अपनाया। सबने अवधी-भाषा का प्रयोग किया और छन्द मे दोहा-चौपाई को अपनाया। मलिक मुहम्मद जायसी, कुतबन, मझन, उस्मान, नूरमोहम्मद इस धारा के प्रसिद्ध कवि थे। ये सब एक खुदा मे विश्वास रखते थे। इनकी मान्यता थी कि खुदा सब जगह व्याप्त है। उसके न रूप है न रेखा। वह इस ससार का कर्त्ता है। उसी ने धरती, स्वर्ग, पाताल, अग्नि, पवन, जल, मिट्टी बनाये है। जीव ईश्वर का अश है और यह ससार उस ईश्वर ने खेल के लिये बनाया है। सूफी कवियो के अनुसार ससार स्वप्न है। जो कुछ ससार मे है वह सब मनुष्य के अन्दर मौजूद है। माया को ये लोग नारद कहते थे। इनके अनुसार कुरान पढने से नारद से मुक्ति मिल सकती है। माया से बचना जीवन का लक्ष्य है। उसके तीन मार्ग हैं—प्रेम-पथ, हठ-योग और इस्लाम। प्रेम अदृश्य आकाश से भी ऊँचा है। प्रेम मे डूबे हुए मनुष्य को जितना सचेष्ट करने का प्रयत्न किया जाता है, उसकी प्रेम की पीर उतनी ही बढती जाती है। हठयोग

के बारे मे इन कवियो को पूरा ज्ञान नही था। इन्होंने हठ-योग की बातें सुन ली थी और उस पर विश्वास करने लग गये थे। इनका विश्वास था कि खुदा एक है। मुहम्मद साहब को खुदा ने अपनी ज्योति से बनाया है। खुदा ने उनके हाथ मे इस्लाम का दीपक दिया जिससे उन्होने ससार को सच्चा रास्ता दिखाया। अगर मुहम्मद साहब न होते तो सारा ससार अंधेरे मे भटकता रहता। कुरान को खुदा ने लिखकर भेजा है जोकि दोनो ससार मे एक प्रमाणिक ग्रन्थ है।

ये कवि भारत मे इस्लाम का प्रचार करना चाहते थे। हिन्दू और इस्लाम-धर्म मे जिन बातो का अन्तर था, उनका इन्होंने जम कर विरोध किया तथा जिन बातो का साम्य था उनको इस ढग से रखा कि हिन्दू-मुसलमानो मे एकता हो सके। धार्मिक क्षेत्र मे ये कुछ भी हो किन्तु साहित्यिक क्षेत्र मे इनकी कविता इतनी ऊँची है कि जायसी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ विरह-काव्यकार ठहरते है। इनका बारहमासा तो बहुत ही प्रसिद्ध है। यह रत्नसेन की पत्नी नागमती को लेकर लिखा गया है। रत्नसेन पद्मावती के रूप का वर्णन सुनकर घरबार, राजपाट और पत्नी को भी छोडकर सिंहलद्वीप चला गया है। इसीलिये नागमती की विरह-वेदना बढ गई है। विरह-वर्णन मे इन कवियो ने अवश्य अत्युक्ति की है लेकिन उसे अस्वाभाविक नही बनने दिया है। इन्होंने युद्ध का भी सुन्दर वर्णन किया है। इन कवियो ने अधिकाश प्रबन्ध-काव्य ही लिखे हैं। इनकी शैली भारतीय है किन्तु इनके काव्यो के प्रथम खण्ड पर फारसी की मसनवी शैली का भी प्रभाव है।

३—कृष्ण काव्य

यद्यपि सन्तो और सूफी कवियो ने हिन्दू-मुसलमानो के बीच की दीवार हटाकर उन्हे पास-पास लाने की दिशा मे बडा महत्त्वपूर्ण कार्य किया तथापि उनकी उपासना व्यक्तिगत साधना ही थी। उसमे लोक-सग्रह और लोक-रजन की शक्ति कम थी। लोक-सग्रह की शक्ति प्रस्फुटित हुई सगुण-उपासना के द्वारा। तुलसी और सूर ने राम एव कृष्ण मे विष्णु की शक्ति का आरोप करके हिन्दू जन-समूह के सामने

जो आदर्श उपस्थित किया उसने भौतिक कल्याण के साथ-साथ आध्यात्मवाद का पाठ भी पढाया। अनेक अच्छाइयाँ होते हुए भी निर्गुण-भक्ति हिन्दू-जनता को छू नही सकी थी—उनमे आशा और विश्वास का सचार नही कर पाई थी। लोगो को यह विश्वास ही नही हो पाता था कि निराकार ईश्वर उनकी कैसे सहायता कर सकता है। उन्हे तो ऐसे भगवान् की आवश्यकता थी जो दैनिक जीवन मे उनका सहारा बन सके। अत समय की इस माँग ने सगुण उपासना का श्रीगणेश किया और साकार भगवान् के दो प्रमुख रूप—राम और कृष्ण—सामने आये। राम की भक्ति करने वाले राम-भक्त और कृष्ण की भक्ति करने वाले कृष्ण-भक्त कहे गये। राम-भक्ति का प्रचार रामानुजाचार्य के मत के आधार पर स्वामी रामानन्द ने किया और कृष्ण-भक्ति का स्वामी वल्लभाचार्य के मत के अनुसार स्वामी विट्ठलनाथ ने।

इस समय कृष्ण-भक्तो के चार सम्प्रदाय थे। मध्वाचार्य ब्रह्म-सम्प्रदाय के सस्थापक थे। उनका मत द्वैतवाद के आधार पर था। वे कृष्ण को ही ब्रह्म मानते थे। रुद्र-सम्प्रदाय के प्रवर्तक विष्णु स्वामी थे। वे शुद्धाद्वैत के अनुयायी थे। सनकादि-सम्प्रदाय के सस्थापक स्वामी निम्बकाचार्य थे जो द्वैताद्वैत सिद्धान्त को मानते थे। स्वामी वल्लभाचार्य पर विष्णु स्वामी का ही प्रभाव अधिक पड़ा था। उनका मार्ग पुष्टिमार्ग कहलाया। इस सम्प्रदाय के अनुयायियो ने कृष्ण के वात्सल्य-भाव और सख्य-भाव की ओर अधिक ध्यान दिया। इस मार्ग के कवियो में अष्टछाप के आठ कवि—सूरदास, परमानन्ददास, नन्ददास, कुम्भनदास, कृष्णदास, छीतर स्वामी, गोविन्द स्वामी और चतुर्भुजदास—बडे प्रसिद्ध हैं। कृष्ण-काव्य के कवियो की विशेषता यह है कि उन्होंने कृष्ण भगवान् की लीलाओ का ही गान किया। उन्होने वात्सल्य और शृङ्गार की उपासना की। तुलसीदासजी इस धारा के प्रमुख कवि थे। उन्होंने तत्कालीन हिन्दू-समाज की नाडी को भली-भाँति पहचाना और उसके आधार पर सगुणोपासना का जो भव्य प्रासाद बनाया वह युगो तक अमर रहेगा। उन्होंने राम को परमात्मा मानकर उपासना की और

भक्ति-भावना से भरा हुआ उच्च कोटि का काव्य लिखा।

कृष्ण-काव्य के प्रमुख कवि सूरदासजी हैं। उनका जन्म स० १५३५ मे आगरा-मथुरा सडक पर स्थित रुनकता ग्राम मे हुआ था। उन्होने सूरसागर नामक एक विशाल ग्रन्थ की रचना की। वात्सल्य और विप्रलम्भ शृङ्गार के तो वे सम्राट् माने जाते है। कृष्ण-काव्य-धारा के कवियो की रचनाओ का और उसमे भी सूरदास के पदो का साहित्यिक सौंदर्य उत्कृष्ट है। सूर के चुने हुए पद ससार के श्रेष्ठ पदो मे गिने जाते हैं। सूर की सच्ची अनुभूति और भावनाओ की सत्यता ने उनकी रचनाओ को बडा ही मार्मिक बना दिया है।

नन्ददास सूरदास के समकालीन थे। वे भी इस धारा के प्रमुख कवियो मे से हैं। उनके बारे मे तो प्रसिद्ध है कि 'और सब गडिया, नन्ददास जडिया।' नन्ददास का भ्रमर-गीत एक अमर कृति है। कृष्ण-काव्य के कवियो मे मीराँ का स्थान भी कम महत्त्वपूर्ण नही है। पुष्टि-मार्गी कवि यह प्रयत्न करते थे कि वे गोपी जैसे बन जायँ और गोपियाँ कृष्ण के प्रेम मे जो सुख-दुःख अनुभव करती थी वही वे भी करें। इस आदर्श के अनुरूप मीराँ एक गोपी ही बन गई। उसने कृष्ण के लिए अपना सब कुछ छोड दिया था। स्वामी वल्लभदास ने मीराँ के पास कई सन्देशे भेजे कि वह पुष्टि-मार्ग की दीक्षा ले ले किन्तु मीराँ को कृष्ण के अनुग्रह की नही प्रेम की आवश्यकता थी, उसने उसे स्वीकार नही किया। कृष्ण-काव्य मे अलकारो का प्रचुर प्रयोग हुआ है। किन्तु अनुभूति की गहराई, भावो की सत्यता आदि ऐसी बातें भी थी जिन्होने उसे अमर बना दिया।

४—राम-काव्य

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि राम-भक्ति का श्रीगणेश स्वामी रामानन्द ने किया था। उन्होने राम को भगवान् मानकर दास्यभाव से उपासना की। तुलसीदासजी इस धारा के प्रमुख कवि थे। उन्होंने तत्कालीन हिन्दू-समाज की नाडी को भलीभाँति पहिचाना और उसके आधार पर सगुणोपासना का जो भव्य प्रासाद बनाया वह युगो तक

अमर रहेगा। उन्होंने राम को परमात्मा मानकर उपासना की और उनमे शक्ति, शील एव सौन्दर्य की प्रतिष्ठा करके जैसे राम-चरित्र को जगमगा दिया। जनता वस्तुत राम का यही रूप चाहती थी। अतः उसने पूरे हृदय से राम को अपना लिया और वे जनता के हृदय-हार वन गये। तुलसीदास के राम का जीवन आदर्श था। उनके राम ने पतितो का उद्धार किया, अत्याचारो का साहसपूर्वक मुकावला किया, दुष्टो का दमन किया, पीडितों की सहायता की, प्रजा का पालन किया और गृहस्थ-जीवन की मर्यादा स्थापित की। उस काल की जनता के लिये ऐसा ही आदर्श चाहिये था। अत. तुलसीदास की रामचरित-मानस ने वह कार्य किया जो न सन्त कर सके न सूफी और न कृष्ण भक्त-कवि।

गोस्वामी तुलसीदासजी का जन्म स० १५५४ मे हुआ था। उनकी बाल्यावस्था बडे कष्ट मे बीती। विवाह हुआ लेकिन उन्हे लौकिक प्रेम से शीघ्र ही विरक्ति हो गई। उन्होंने वैराग्य ले लिया और राम की भक्ति मे मग्न होकर सारा जीवन उपासना मे ही बिता दिया। वे कुछ समय अयोध्या मे रहे, कुछ समय काशी। उन्होंने सारे देश का भ्रमण किया था और इतने अच्छे-अच्छे ग्रन्थो की रचना की कि वे हिन्दी के कवियो मे सर्व-श्रेष्ठ माने जाने लगे। यद्यपि उन्होने विनय-पत्रिका, गीतावली, कवितावली, रामलला नहछू, दोहावली, जानकी-मङ्गल, पार्वती-मङ्गल, वैराग्य-सदीपनी आदि कई अच्छे ग्रन्थ लिखे तथापि रामचरित-मानस उनका सबसे सुन्दर ग्रन्थ है। यह पुराणो की शैली मे लिखा गया है। जैसे पुराणो मे एक व्यक्ति कथा का वक्ता और दूसरा श्रोता होता है उसी प्रकार इस ग्रन्थ मे भी कुछ कथा कहने वाले हैं और कुछ सुनने वाले। सारी कथा सवाद के रूप मे कही गई है। साहित्य की दृष्टि से यह वडा ही सुन्दर महाकाव्य है। रामचरित-मानस का कथानक प्राचीन ग्रन्थो से लिया गया है। फिर भी उसका सकलन इस प्रकार किया गया हैं कि मौलिकता वनी रहती है। कथानक की चारो इकाइयाँ सतुलित हैं। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह ग्रन्थ पूर्णत आदर्शात्मक है। इसमे आदर्शात्मक तत्त्व की कसौटी है

राम-भक्ति। जो राम के भक्त है तुलसीदासजी ने उनके अवगुणो को भी गुण मान लिया है और जो राम के भक्त नही हैं उनके गुणो को भी अवगुण मान लिया है। विभीषण जैसे घर के भेदी का भी चरित्र उन्होने वहुत ऊँचा चित्रित किया है। इसी प्रकार, यद्यपि बालि-सुग्रीव के झगड़े मे अपराधी सुग्रीव ही था तथापि राम-भक्ति होने से तुलमीदासजी ने उसकी प्रशसा ही की।

कविता की दृष्टि से तुलसीदास एक भावुक और सरस कवि थे। उनके राम-चरित-मानस और विनय-पत्रिका को पढते-पढते कौन ऐसा पाषाण-हृदय व्यक्ति होगा जो रो न पडेगा। राम-वन-गमन के समय अयोध्या-काण्ड मे करुण रस का जो परिपाक हुआ है वह निश्चय ही उच्च-कोटि का है। तुलसी का काव्य-सौंदर्य उनके आदर्शवाद मे है। राम-पक्ष के सारे पात्र इतने आदर्शवादी है कि हम वाह-वाह किये विना नही रहते। इसमे कोई सदेह नही कि तुलसीदास की काव्य-कला और प्रतिभा अपने आदर्शों को भली-भाँति अभिव्यक्त करने मे पूरी तरह सफल हुई है। तुलसी के 'रामचरित-मानस' का हिन्दुओ के घर मे वही आदर है जो मुसलमानो के घर मे कुरान का और ईसाइयो के घर मे वाइविल का। वेद-पुराण का तो हमारे वहुत से लोग नाम ही जानते हैं, यदि वे श्रद्धापूर्वक किसी को पढते और उसके सामने सिर झुकाते हैं तो वह राम-चरित-मानस ही है। उसका अनुवाद ससार की वहुत सी भाषाओ मे हो चुका है। इसमे कोई सदेह नही कि इस्लाम और ईसाई धर्म से हिन्दू-संस्कृति की जितनी रक्षा इस ग्रन्थ ने की उतनी और किसी ने नही। हिन्दी-साहित्य पर भी इस ग्रन्थ का काफी प्रभाव पडा है। तुलसीदास ने न अपनी रचना मे अलकार ठुसेडने की चेष्टा की, न रस-परिपाक की। उन्होंने न भाषा सँवारने की ओर ध्यान दिया न भावो को मार्मिक वनाने की ओर, फिर भी उनके काव्य मे अलकार, रस, भाषा, भाव सवका उच्चतम रूप मिलता है।

तुलसीदासजी के अतिरिक्त नाभादासजी भी राम-काव्य के प्रसिद्ध कवि हैं। उन्होने भक्तमाल की रचना की थी। प्राणचद चौहान

का रामायण महानाटक तथा हृदय का हनुमन्नाटक भी प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। रीवानरेश विश्वनाथसिंह और रघुराजसिंह ने भी राम-भक्ति काव्य की रचना की है और केशवदासजी की रामचन्द्रिका भी राम-भक्ति काव्य के अन्तर्गत ही आती है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है इस काल मे यद्यपि धार्मिक साहित्य की धारा ही प्रमुख थी तथापि अन्य प्रकार का साहित्य भी लिखा गया था। चारण काव्य की पुस्तक है केशवदासजी की 'वीरसिंह देव चरित्र'। काव्य की दृष्टि से यह कोई ऊँची पुस्तक नही है। इस काल के रीतिकाव्य के कवियो मे केशवदास और अब्दुर्रहीम खानखाना प्रमुख हैं। केशवदास की 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' रीतिग्रन्थ हैं, किन्तु इनमे मौलिकता का अभाव है। रहीम ने नायिका भेद पर एक ग्रन्थ लिखा जो साधारण ही है। मनोरजक काव्य के रचयिताओ मे सेनापति, केशवदास और नरोत्तमदास प्रमुख हैं।

रीति-काल

रीतिकाल १७०० ई० से प्रारम्भ होकर १८५० तक चला जाता है। रीति शब्द का अर्थ है साहित्य-शास्त्र। इस काल मे साहित्य-शास्त्र की रचना पर विशेष ध्यान दिया गया। अत इसे रीतिकाल कहा जाता है। इस काल के उदय के समय मुगल-साम्राज्य पतन की ओर बढता जा रहा था। हिन्दू राजा अपने खोये हुए गौरव को प्राप्त करने का यत्न करने लगे थे। दक्षिण मे मराठे प्रबल हो रहे थे और पजाब मे सिक्ख। औरगजेब के अत्याचारो से जनता असन्तुष्ट थी और विदेशी व्यापारी इसे उपयुक्त अवसर देखकर अपनी जडें जमाने मे लगे हुए थे। इन विदेशी व्यापारियो मे प्रमुख थे—अग्रेज, फ्रासीसी, डच और पुर्तगीज। धीरे-धीरे अग्रेज शक्तिशाली सिद्ध होने लगे और अपना शासन स्थापित करने के कार्य मे वे सबसे आगे बढ गये।

अग्रेजो ने अपने साम्राज्य का विस्तार किया लेकिन उसमे केवल सैनिक शक्ति से ही काम नही लिया। अत लोगो के मन मे अग्रेजो के प्रति वह कटुता पैदा नही हुई जो मुसलमानो के प्रति पैदा हो गई थी।

उल्टे कुछ लोग तो इससे खुश हुए कि मुसलमानों के हाथ से सत्ता छिन गई। अत इस राजनीतिक परिवर्तन का कोई बहुत बडा प्रभाव सामाजिक स्थिति पर नही पडा। सामाजिक स्थिति लगभग वैसी ही बनी रही। हाँ, नैतिक पतन बढता जा रहा था। बहु-विवाह ज्यादा हो रहे थे और वेश्याओ की सख्या भी बढती जा रही थी। राज-दरबारो का वातावरण विलासी था। राजा लोग राजनीति की अपेक्षा इस बात मे ज्यादा दिलचस्पी लेते थे कि उनके हरम मे चुनी हुई सुन्दरियाँ हो।

धार्मिक कट्टरता अब बहुत अशो मे कम हो गई थी किन्तु हिन्दुओ के सम्प्रदाय बढते जा रहे थे। मठ-मन्दिरो मे देवदासी की प्रथा चल पडी थी। यद्यपि ये वे स्त्रियाँ होती थी जो भगवान् की आराधना मे अपना पूरा जीवन अर्पित कर देना चाहती थी तथापि कुछ चतुर पुजारी उनसे वेश्यावृत्ति करवाकर धन कमाने का भी प्रयत्न करने लग गये। इस काल मे सिक्ख धर्म तेजी के साथ पनपा। औरगजेब के अत्याचारो से क्षुब्ध होकर सिक्ख उसके प्रबल शत्रु हो गये थे। आर्थिक स्थिति बडी तेजी से बदल रही थी। अग्रेजो के द्वारा चलाया हुआ आर्थिक शोषण का चक्र तेजी से घूमने लगा। लेकिन प्रारम्भिक समय होने से न तो शासको ने उसे अनुभव किया न शासितो ने।

इस काल की प्रमुख धारा थी शास्त्रीय-काव्य। इस समय कवियो ने ऐसा काव्य लिखा जिसमे रस, अलकर, नायक-नायिका भेद आदि की ही प्रमुखता थी। इस काल के रीति-ग्रन्थो मे पहले दोहे, सवैया आदि मे रस, अलकार आदि की परिभाषा दी जाती थी और उसके बाद कवित्त, सवैये आदि मे उदाहरण देकर उसे स्पष्ट किया जाता था। इस समय के कवियो ने इस कार्य मे सस्कृत के काव्य-शास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थो का सहारा लिया। सस्कृत के ग्रन्थो मे रस, अलकार, नायक-नायिका भेद की जैसी परिभाषा दी गई थी वैसी ही इन लोगो ने दी। इनके ग्रन्थो मे इस प्रकार की रचनाओ से कोई मौलिकता नही आ सकी। इन कवियो की कविता मे शृङ्गार रस की विविध अवस्थाओ का बडा सुन्दर चित्रण है।

इस काव्य-धारा मे एक वर्ग ऐसे कवियो का भी था जो रस, अलकार और नायक-नायिका भेद के शास्त्रीय लक्षण न देकर केवल उदाहरण ही लिखता था। ऐसे कवियो मे विहारी का स्थान सवसे ऊँचा था। विहारी ने केवल ७०० दोहे लिखे लेकिन वे हिन्दी-साहित्य मे अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। इन कवियो की भाषा व्रज थी। फारसी और अरबी के शब्द भी उसमे जहाँ-तहाँ आ जाते थे। यद्यपि रस के विविध विभाव-अनुभावो का इन्होने वडा सुन्दर चित्रण किया तथापि इनकी कविता का पूरा आनन्द तव तक नही आता जव तक कि हमे काव्य-शास्त्र का अच्छा ज्ञान न हो। हाँ, विरह की विभिन्न अवस्थाओ का चित्रण हम अवश्य विना काव्य-शास्त्र के ज्ञान के समझ सकते है, किन्तु इसका आनन्द भी तव तक अधूरा रहता है जव तक कि यह मालूम न हो कि किस अवस्था का अथवा नायिका भेद की किस नायिका का वर्णन इस काव्य मे है। बिहारी ने दोहे जैसे छोटे छन्द मे बड़े मार्मिक विचारो को सरलता-पूर्वक व्यक्त कर दिया है। यह उनकी काव्य-कुशलता का परिचायक है। विहारी का शब्द-चयन और वाक्य मे शब्दो का क्रम वडा सयत है। उनके दोहो मे न तो एक भी शब्द वदला जा सकता है न उसके क्रम मे ही हेर-फेर किया जा सकता है।

अन्य कवियो ने अधिकतर कवित्त और सवैया छन्द का प्रयोग किया है। इन कवित्त और सवैयो मे उन्होंने भावो की व्यञ्जना इस प्रकार की है कि अत्यन्त मार्मिक भाव अन्तिम पक्ति मे ही आया है। कभी-कभी तो इस अन्तिम पक्ति को समझे विना पूरा छन्द ही समझ मे नही आ पाता। इस काव्य-धारा का अधिकाश काव्य शृङ्गारी है। दरबारो के विलासी वातावरण मे शृगारी रचनाएँ वडी उपयुक्त रहती थी। पहले मुसलमानो से और अग्रेजो से पराजित हो जाने के कारण इस काल के राजाओ को अपनी वीरता की प्रशसा सुनने मे तो क्या आनन्द आ सकता था, उसे सुनते हुए तो वे लजाते ही। अत शृगारी कविताएँ ही उनके मनोरजन का साधन थी। देव, बिहारी, केशव, भूषण, चिन्तामणि आदि इस धारा के प्रमुख कवि थे।

इस काल के सन्त कवियो मे जीवनदास, तुलसी साहव, पलटू साहब और भीखा साहव के नाम उल्लेखनीय है। लेकिन इनकी रचनाएँ बहुत सावारण कोटि की हैं। कृष्ण-भक्त कवियो के चाचा हितवृन्दावन दास और घनानन्द के नाम विशेष उल्लेखनीय है। इस काल मे सूदन और गोरेलाल आदि ने सुन्दर चारण-काव्य लिखा। यह वीर-गाथा-काल की अपेक्षा अधिक ऐतिहासिक है। वृन्द कवि और गिरिधरदास की रचनाएँ इस काल की उपदेशमूलक कविता मे से है। ये कविता बडी स्पष्ट शैली मे लिखी गई है।

साराश यह कि रीतिकाल की कविता मे लौकिक प्रेम की प्रधानता है। इस काल के कवि लौकिक प्रेम मे इतने वहे कि उन्होने लोक-मर्यादा तक की पर्वाह नही की। इस काल की अधिकाश कविता एक जैसी है। यदि कवि का नाम छिपा दिया जाय तो साधारण व्यक्ति के लिये कवि को पहिचानना कठिन हो जाएगा। इस समय के सभी कवि राज्याश्रय प्राप्त करने की चेष्टा मे रहते थे। अत उनकी कविता ऐसी है जिसे राज-दरवार मे सम्मान मिल सके। इस काल की कविता मे तुलसी, सूर, मीरां और कवीर जैसा जीवन का गम्भीर विश्लेषण नही है।

आधुनिक-काल

आधुनिक काल १८५० ई० से प्रारम्भ होता है। इसे कुछ लोग गद्यकाल के नाम से भी पुकारते है। इस काल की परिस्थिति अन्य कालो की अपेक्षा विल्कुल वदल गई थी। राजनीतिक क्षेत्र मे मुसलमानी और हिन्दू सामतशाही राज्य लगभग समाप्त हो गये थे। अव सात समुद्र पार के लोगो का राज्य जम गया था। भारत को गुलाम बनाने का उनका उद्देश्य आर्थिक था। वे राजनीतिक दृष्टि से देश को गुलाम बनाये विना आर्थिक लाभ नही उठा सकते थे, इसीलिये उन्होने राजनीतिक विजय प्राप्त करने का प्रयत्न किया था।

इधर १८८५ मे राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म हुआ। धीरे-धीरे यह सस्था शक्तिशाली बनती गई और लोकमान्य वाल गङ्गाधर तिलक, लाला लाजपतराय, दादाभाई नौरोजी, महात्मा गाधी, मोतीलाल नेहरू, देशबन्धु

चितरजनदास, सरदार पटेल और राजेन्द्रबाबू जैसे तपस्वी व्यक्तियो ने उसे आजादी के लिये लडने वाली सस्था बना दिया। गाधीजी ने राजनीति मे अहिंसक प्रतिकार की नई प्रणाली सत्याग्रह और असहयोग को जन्म दिया तथा देश मे नई चेतना का सचार कर दिया। इसी काल मे प्रथम महायुद्ध के बाद रूस मे क्रान्ति हुई और वह साम्यवादी बन गया। उसने साम्यवादी बनने के बाद थोडे ही समय मे इतनी तेजी से प्रगति की कि दुनियाँ के अन्य देशो को दाँतो तले उगली दबाने के लिये विवश होना पडा। इससे दुनियाँ के सभी देशो मे साम्यवादी दलो का सगठन बनने और मजबूत होने लगा। भारत पर भी इसका प्रभाव पडे बिना न रहा।

इधर अग्रेजो ने आजादी की माँग को कुचलने के लिये हिन्दू-मुसलमानो के बीच फूट डालने का प्रयत्न किया तथा अवर्ण-सवर्ण आदि के प्रश्न पैदा किये। परिणामस्वरूप मुसलमानो की एक अलग सस्था मुस्लिम-लीग के नाम से स्थापित हुई और अवर्णों का भी एक सगठन बना जिनके नेता क्रमश मुहम्मदअली जिन्ना और डाक्टर अम्बेडकर बने। समझौते की बहुत कोशिश हुई, लेकिन जब अग्रेजो को विवश होकर भारत छोडना ही पडा तो उन्होने देश के दो टुकडे—हिन्दुस्तान और पाकिस्तान—करवाकर प्रस्थान किया।

धार्मिक क्षेत्र मे काफी उथल-पुथल हुई। ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, रामकृष्ण मिशन और थियोसोफिकल सोसाइटी ने अपने-अपने ढङ्ग की धार्मिक चेतना लाने का प्रयत्न किया और प्राचीन धर्म की त्रुटियो को दूर करने की चेष्टा की। धार्मिक कट्टरता मिटती जा रही थी और लोग धर्म के प्रति उदासीन-से बनते जा रहे थे। जिनकी धर्म मे श्रद्धा बची थी वे भी बाह्याचार से आगे नही जा पाते थे। फिर भी धर्म के नाम पर हिन्दू-मुस्लिम झगडे और सिया-सुन्नी के झगडे काफी होते रहे। प्रारम्भ मे सिक्ख अपने को हिन्दू-धर्म से अलग मानते रहे। लेकिन जब सन् १९४६ मे हिन्दू-मुस्लिम दगे अपनी चरम-सीमा पर पहुँच गये तो वे हिन्दुओ मे आ मिले।

इस काल मे सामाजिक क्षेत्र मे भी काफी उथल-पुथल हुई। पर्दा प्रथा कम हुई और स्त्रियो मे शिक्षा का प्रचार प्रारम्भ हुआ। बाल-विवाह को रोकने और विधवा-विवाह प्रारम्भ करने के प्रयत्न हुए तथा अछूतो को बराबरी का दर्जा देने का आन्दोलन तेजी से चलने लगा। सयुक्त-परिवार की प्रथा मिटने लगी और वर्ण-व्यवस्था की नीव भी हिलने लगी।

आर्थिक अवस्था मे तो इस काल मे जबरदस्त परिवर्तन हुआ। पहले देश ग्रामोद्योग और खेती-प्रधान था किन्तु अब एक वर्ग, जो पढा-लिखा था, सरकारी नौकरियो मे गया और बड़े-बडे कारखानो तथा विदेशी माल के भारी आयात से खेती और ग्रामोद्योग पर निर्भर रहने वालो की आर्थिक स्थिति बहुत बिगड गई। ग्राम नष्ट होने लगे और शहरो की आबादी बढने लगी। इस अवस्था ने पूँजीवाद को पनपाया और इधर साम्यवादी प्रभाव के कारण हडताल के अस्त्र से उसे कमजोर बनाने के प्रयत्न भी हुए। पश्चिमी सभ्यता और शिक्षा के प्रसार से लोगो का जीवन-मान ऊँचा होने लगा और वे अच्छे कपडे पहिनने तथा सजधज के साथ रहना पसन्द करने लगे। उस काल के हिन्दी-साहित्य पर इस सारी स्थिति का ज्ञात और अज्ञात दोनो ही प्रकार से प्रभाव पडा।

१—कविता

आधुनिक हिन्दी-कविता का श्रीगणेश सन् १८५० से माना जाता है। उसके उत्तरोत्तर विकास को भली-भाँति समझने के लिये हम उसे निम्नलिखित चार अवस्थाओ से विभाजित कर रहे हैं

प्रथम अवस्था	१८५०	से	१९०० तक
द्वितीय अवस्था	१९००	से	१९१८ तक
तृतीय अवस्था	१९१८	से	१९३६ तक
चतुर्थ अवस्था	१९३६	से	आज तक

इस काल मे सबसे बडा परिवर्तन यह हुआ कि कविता के आधार ही बदल गये। अब न तो कवि लोग चारणो की तरह राजाओ की

प्रशसा करते थे न भक्तो की तरह 'स्वान्त. सुखाय' या उपदेश देने के लिये ही लिखते थे । रीति-काल की भाँति राजाओ और उनके सामन्तो की वासनात्मक प्रवृत्ति को भडका कर उन्हे प्रसन्न करना भी अब उनका उद्देश्य नही था । अब कविगण जनता के बीच थे और उन्हे जनता को ही प्रसन्न करना था । यह इतना बडा परिवर्तन था कि इसने कविता के सारे स्वरूप को ही बदल दिया । आधारो के इस परिवर्तन के परिणाम-स्वरूप कविता की विषय-वस्तु बदली । अब ऐसे विषयो पर कविताएँ लिखी जाने लगी जो जनता के थे । प्रारम्भ मे अग्रेजी शासन की अच्छाइयो से प्रभावित होकर कवियो ने विदेशी शासन की प्रशशा की और राजभक्ति के गीत भी गाये, लेकिन उन्हे यह बात समझते देर नही लगी कि यह शासन तो हमारे मूल पर ही कुठाराघात कर रहा है । परिणाम यह हुआ कि धीरे-धीरे दबी जबान मे बोलते-बोलते आगे स्पष्ट रूप से अग्रेजी शासन का विरोध हो गया । अब कवियो ने शासन से मोर्चा लेना प्रारम्भ किया । इसके लिये एक ओर जहाँ उन्होने अग्रेज सरकार के अत्याचारो और अन्यायो की पोल खोली, वहाँ देशवासियो को अपनी भूलें मिटाने के लिये भी प्रेरणा दी । राष्ट्रीयता की भावना प्रबल होने लगी । इस प्रथमावस्था के कवियो मे प्रतापनारायण मिश्र, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालमुकुन्द गुप्त, श्रीधर पाठक आदि प्रमुख थे । इस समय भी यद्यपि ब्रजभाषा ही काव्य की भाषा रही तथापि इस समय की ब्रजभाषा खडी-बोली के बिल्कुल निकट थी ।

द्वितीयावस्था के प्रमुख कवि थे महावीरप्रसाद द्विवेदी और अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' । अब हिन्दी-कविता ने प्राचीनकाल की कविता से अपना सम्बन्ध तोड-सा दिया और वह नये रूप-रङ्ग मे सामने आने लगी । प्रथमावस्था के कवि कोई अच्छा काव्य नही लिख पाये थे और वे यह भी कहते थे कि खडी-बोली काव्य की भाषा बनने योग्य नही है । महावीरप्रसादजी द्विवेदी ने अपनी शक्ति इन दोनो आरोपो के निराकरण मे लगाई । उन्होने खडी-बोली मे कविता लिखी तथा दूसरो को भी उसकी प्रेरणा दी । परिणामस्वरूप इस द्वितीयावस्था में खडी-बोली काव्य-भाषा के आसन पर आसीन हो गई । द्विवेदीजी

अच्छे आलोचक भी थे। अत. उन्होंने भाषा को व्याकरण-सम्मत बनाया और नवीन कवियो को नया मार्ग दिखाया। अयोध्यासिंह उपाध्याय ने इसी समय अपने 'प्रिय-प्रवास' नामक ग्रन्थ की रचना की। उन्होंने इस ग्रन्थ मे कृष्ण को एक नये रूप मे चित्रित किया। रीति-काल मे कृष्ण और राधा के प्रेम को इतना लौकिक बना दिया गया था कि वह अश्लीलता की सीमा छूने लग गया था। अयोध्यासिंहजी ने कृष्ण का देशोन्नायक लोक-कल्याणकारी रूप सामने रखा और उसे इतना सुन्दर बनाया कि रीतिकाल की बुराई उसमे बिल्कुल नही रह गई। 'प्रिय-प्रवास' के कृष्ण ब्रह्म के अवतार नही हैं, वे तो महापुरुष हैं। इसी प्रकार राधा भी वह राधा नहीं है जो कृष्ण के मथुरा चले जाने पर रोती रहती थी। लेकिन वह, वह राधा है जो कृष्ण को लोक-कल्याण मे मग्न देखकर स्वयं भी उसी मे लग जाती है। हरिऔधजी ने भी खड़ी-बोली मे ही कविता लिखी लेकिन संस्कृत का सहारा बहुत अधिक लिया। छन्द भी उन्होने सस्कृत के ही अपनाये।

तृतीयावस्था प्रथम महायुद्ध के बाद प्रारम्भ होती है। महायुद्ध के पूर्व ही विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीताञ्जलि पर नोबल-पुरस्कार मिल चुका था और ससार भर मे उसकी प्रशसा हुई थी। हिन्दी-कविता अभी प्रारम्भिक अवस्था मे थी। अतः रविबाबू की कविताएँ और उनकी रहस्य-भावना उसके लिए बडी आदर की वस्तु बन गई तथा उसके अनुकरण की ओर अधिकाश कवि जाने लगे। इस समय के प्रधान कवि हैं—जयशकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, सुमित्रा-नन्दन पन्त और सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'। इन सब की कविताओं पर रहस्यवाद का प्रभाव है। इस धारा की कविताएँ युग-परिवर्तन-कारी सिद्ध हुईं। इस समय के कवियो ने छायावादी शैली का प्रयोग किया जो उनके काव्य-स्तर को बहुत ऊँचा ले गई। बगला भाषा के प्रभाव से उनकी भाषा भी कोमल बन गई।

इस तृतीयावस्था मे राष्ट्रीय-धारा के प्रमुख कवि थे मैथिली शरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी व सुभद्राकुमारी चौहान। माखनलाल

चतुर्वेदी की 'कैदी और कोकिल' तथा सुभद्राकुमारी चौहान की 'झाँसी की रानी' बडी प्रसिद्ध कविताएँ हैं। रहस्यवादी कविता तो साधारण जनता की पहुँच के बाहर की चीज थी; अतः राष्ट्रीयधारा की कविताएँ ही बड़ी लोकप्रिय हुईं। कांग्रेस का आन्दोलन इन दिनो बड़े जोर पर था अत इनकी लोकप्रियता स्वाभाविक ही थी। मैथिलीशरण गुप्त ने ऐतिहासिक और पौराणिक काव्य प्रमुख रूप से लिखे। उनके ग्रन्थो मे, जो इस समय प्रकाशित हुए, साकेत, द्वापर, यशोधरा, सिद्धराज प्रमुख थे। गुप्तजी की भाषा खडी-बोली है। उस पर न तो छायावादी शैली का प्रभाव है न बङ्गला भाषा का। उनके ग्रन्थ प्रबन्धात्मकता और काव्य दोनो दृष्टि से उच्चकोटि के हैं। उन्होने पौराणिक आख्यानो को अलौकिकता से बचाया। परिणाम-स्वरूप उनके ग्रन्थ बडे लोकप्रिय हुए। सक्षेप मे, इस युग मे पन्त, गुप्त, निराला आदि के प्रयत्न से खडी-बोली मे कविता बैठने लगी। इतना ही नही, आधुनिक कविता ने एक मञ्जिल समाप्त की और वह आदर के स्थान पर प्रतिष्ठित होने योग्य बनने लगी।

सन् १९१९ से १९३६ तक के समय मे काग्रेस ने जो आन्दोलन किया उसके परिणामस्वरूप उसका ध्यान गाँवो की ओर गया। इधर साम्यवाद का प्रभाव भी बढ़ा। अत चतुर्थावस्था की कविता मे प्रगतिवाद की आवाज प्रबल बनने लगी। अब किसान-मजदूरो के प्रति सहानुभूति से भरी हुई कविताएँ लिखी जाने लगी। पन्तजी जैसे कवियो ने इस दिशा मे बड़े मनन-पूर्वक विचार किया और उन्हे ऐसा लगा कि अभी तक हम मानवता के प्रति बहुत बडा अपराध करते आये हैं। उनकी 'युगान्तर', 'ग्राम्या', 'युगवाणी' इसी प्रकार की रचनाएँ हैं। इस धारा के अन्य कवियो मे शिवमगलसिह 'सुमन', रामेश्वर शुक्ल, 'अञ्चल', भगवतीचरण वर्मा और नरेन्द्र शर्मा मुख्य हैं। इस धारा ने हिन्दी को बगला के प्रभाव से मुक्त किया। इन्होने छायावादी शैली के अत्यन्त सरलस्वरूप को अपनाया और अपनी भाषा को ये जनता के निकट ले आये। इनके छन्दो मे भी प्रवाह है अत. इनकी रचनाएँ छायावादी कवियों की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय हुई।

इस समय एक और परिवर्तन यह हुआ कि अब यथार्थवादी विचार-धारा का प्रभाव बढने लगा। कुछ तो विश्वविद्यालय की शिक्षा के कारण और कुछ विदेशियो के साथ बढते हुए सम्पर्क से इस प्रकार के विचारो का प्रभाव कुछ-कुछ बढता हुआ प्रतीत होने लगा। इधर कांग्रेस के आन्दोलन के परिणामस्वरूप स्त्रियो को पुरुषो के साथ कधे से कधा मिलाकर काम करना पड़ा। अत. पार्थिव प्रेम की कविताएँ खुले आम लिखी जाने लगी। इस धारा के प्रमुख कवि हैं—बच्चन, नरेन्द्र शर्मा आदि। बच्चन की मधुशाला, मधुबाला, एकान्त सगीत, निशा-निमत्रण आदि रचनाएँ बडी मार्मिक हैं। किन्तु उससे भी ज्यादा मार्मिक हैं नरेन्द्र शर्मा के गीत। इस धारा की कविताएँ बहुत चलती हुई एव परिष्कृत भाषा मे लिखी गई हैं।

रहस्यवादी कवियो की सख्या इस युग मे कम हो गई। फिर भी महादेवी वर्मा की 'साध्यगीत' और 'दीपशिखा' नामक पुस्तके अनुभूति की तीव्रता एव भावुकता की उच्चता से ओत-प्रोत हैं। उनकी कविता मे बडी मार्मिकता है। इस युग मे राष्ट्रीय कविताएँ भी लिखी गईं। गाधीजी और उनके रचनात्मक-कार्यों की प्रशसा इस युग मे काफी हुई। इस राष्ट्रीय-धारा के प्रमुख कवि हैं—सोहनलाल द्विवेदी और रामधारीसिंह 'दिनकर'। स्वतन्त्रता के बाद तो इस धारा की कविता बडी तेजी से बढने लगी। लेकिन इन दिनो इस धारा की कविता मे वह तेजस्विता नही आ सकी जो सन् १६३२ की कविता मे थी। अन्य कविताओं मे कामायनी का उल्लेख करना आवश्यक है। यद्यपि इसकी रचना तृतीयावस्था मे ही हो चुकी थी तथापि इसका प्रकाशन चतुर्थावस्था मे हुआ। 'कामायनी' सृष्टि के आदि से आज तक के मानवता के संघर्ष की कहानी है। मनुष्य बुद्धि और हृदय से प्रेरित होकर किस प्रकार काम करता है और अपने कर्मों के परिणाम-स्वरूप किस प्रकार बन्धनो मे फँसता है इसका सुन्दर चित्रण इस काव्य मे मिलता है। विद्वानो द्वारा इस ग्रन्थ का बड़ा आदर हुआ। इस प्रकार हिन्दी-कविता आधुनिक-काल मे बडी तेजी से आगे बढ़ी। यह प्रगति उसके उज्ज्वल भविष्य की परिचायक है।

२—गद्य

गद्य का विकास हिन्दी मे बहुत देर से प्रारम्भ हुआ । इसका एक बहुत बडा कारण तो यह था कि १६ वी शताब्दी के पहले हमारे देश मे प्रेस की व्यवस्था नही हो पाई थी । कविता जबानी याद की जा सकती है किन्तु गद्य तो याद नही किया जा सकता । उसका आनन्द तभी लिया जा सकता है जब कि वह लिखित रूप में पास रखा जा सके । अत॰ जब प्रेस की व्यवस्था हो गई तो १६ वी शताब्दी से गद्य का विकास प्रारम्भ हुआ । एक और बात यह है कि जब तक सभ्यता का विकास नही होता तब तक मनुष्य प्राय. भावुक रहते हैं । वे उस समय तक कविता ही पसन्द करते है । किन्तु सभ्यता का विकास होने पर मनुष्य भावुकता छोड़ कर बौद्धिक होने लगता है । वह भावनाओं को छोडकर विचारो से काम लेना प्रारम्भ करता है । विचार गद्य का क्षेत्र है, अत. सभ्यता के साथ ही साथ गद्य का विकास होता है । भारतवर्ष मे पहले भी कुछ न कुछ बौद्धिक सभ्यता थी ही, अत. गद्य-साहित्य तो था, किन्तु प्रेस के अभाव मे उसको विकास का पर्याप्त अवसर नही मिला था । प्रेस के साथ उसका विकास १६ वी शताब्दी से प्रारम्भ हुआ ।

प्रारम्भिक गद्य-साहित्य के रूप मे राजस्थान का ऐतिहासिक साहित्य, सूफियो द्वारा लिखा हुआ साहित्य, जैन और नाथ-पथियो द्वारा लिखा हुआ साहित्य, चौरासी वैष्णव की वार्ता, बावन वैष्णव की वार्ता, नाभादास का अष्टयाम तथा रमाप्रसाद निरजनी का योगवशिष्ठ प्रमुख है । चौरासी वैष्णव की वार्ता तथा बावन वैष्णव की वार्ता गोकुल दासजी ने लिखी हैं जो वल्लभदासजी के पौत्र थे । इनकी भाषा बड़ी ही परिष्कृत है । योगवशिष्ठ की भाषा तो बडी साफ-सुथरी खडी-बोली का नमूना है । यह ग्रन्थ सन् १७४१ मे लिखा गया था ।

इसके बाद के गद्य साहित्य मे मु शी सदासुखलालजी, इशा-अल्लाखाँ, लल्लूलालजी और सदलमिश्र का साहित्य प्रमुख है । सदा सुखलालजी ने 'सुख-सागर' की रचना की थी जो कि श्रीमद्भागवत

पुराण का अनुवाद-सा है। इसके गद्य मे प्रवाह है और भाषा खडी-बोली है। इशाअल्लाखाँ ने रानी केतकी की कहानी लिखी है। यह सारी पुस्तक ठेठ हिन्दी मे लिखी हुई है। लल्लूलालजी ने प्रेमसागर की रचना की। इनकी भाषा पर ब्रज-भाषा का बडा प्रभाव है। सदल मिश्र की प्रमुख पुस्तक है नासिकेतोपाख्यान। इनकी भाषा ब्रज और पूर्वी हिन्दी के प्रभाव से काफी प्रभावित है।

इनके बाद के लेखको मे बाबू शिवप्रसाद सितारेहिन्द, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र प्रमुख हैं। अब गद्य मे से व्रजभाषापन कम होता जा रहा था और खडी-बोली अपने परिष्कृत रूप मे सामने आ रही थी। हिन्दी-साहित्य मे गद्य की जो कमी अब रही थी उसे पूरा करने के उद्देश्य से लिखा जाने लगा था। इससे-गद्य की काफी उन्नति होने लगी। इन्हीं दिनो पत्र-पत्रिकाएँ भी निकली और उनकी उत्तरोत्तर बढ़ने वाली सख्या ने हिन्दी-गद्य को वैविध्य प्रदान करना प्रारम्भ कर दिया। इस समय के लेखकों ने बडा रोचक साहित्य लिखकर अपने पत्र-पत्रिकाओ की ग्राहक-सख्या बढाने मे सफलता प्राप्त की। अब भाषा व्याकरण-सम्मत और परिष्कृत बन रही थी। इसके बाद महावीर प्रसादजी द्विवेदी ने रही-सही कमी पूरी करदी। अब कहानियाँ, उपन्यास, निबन्ध, समालोचना, नाटक सभी लिखे जाने लगे। द्विवेदीजी के बाद बाबू श्यामसुन्दर दास, रामचन्द्र शुक्ल, जयशकर प्रसाद, प्रेमचन्द तथा धीरेन्द्र वर्मा जैसे लेखको ने तो गद्य-साहित्य के भण्डार को भरने का बहुत बडा कार्य प्रारम्भ कर दिया और अन्त मे उन्हे सफलता मिली। अब गद्य मे साफ सुथरापन आ गया और भाषा स्थिर बन गई। इस समय हिन्दी-गद्य ने आश्चर्यजनक प्रगति की।

आजकल के लेखको मे आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, नन्ददुलारे वाजपेयी, बेचैन शर्मा 'उग्र', भगवती प्रसाद वाजपेयी, यशपाल, विष्णु प्रभाकर, जैनेन्द्रकुमार, उपेन्द्रनाथ अश्क, अज्ञेय, मन्मथनाथ गुप्त और डॉ० नगेन्द्र प्रमुख हैं। अब गद्य का प्रचार और तेजी के साथ प्रारम्भ हुआ

तथा प्रान्तो मे कांग्रेसी मन्त्री-मण्डल बनने से उसे और गति मिली। गद्य के प्रमुख अग—निबन्ध, उपन्यास, नाटक, कहानी, समालोचना, जीवनी एव पत्र-पत्रिकाओ के विकास पर आगे की पंक्तियो में हम अलग-अलग विचार करेंगे।

(अ) नाटक

हमारा सस्कृत भाषा का नाट्य-साहित्य बडा समृद्ध है। कालिदास, भवभूति आदि प्रसिद्ध नाटककारो ने उसे समृद्ध बनाया था। किन्तु उनके बाद मध्यकाल मे देश की बदली हुई राजनीतिक एव शासन-सम्बन्धी अवस्था तथा राजाओ की परिवर्तित रुचि के कारण नाटको को राज-दरबार मे आश्रय नही मिल सका। अत सन् १८५० तक हमे कोई अच्छा नाट्य-साहित्य नही मिलता। सन् १८५० से अब तक नाट्य-साहित्य का विकास तीन स्पष्ट अवस्थाओ से गुजरता हुआ दिखाई देता है। प्रथमावस्था के नाटको मे भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के 'चन्द्रावली', 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'अंधेर-नगरी', लाला श्रीनिवासदास का 'रणधीर प्रेम मोहिनी', मथुरा प्रसाद का 'साहसेंद्र-साहस', राधाकृष्णदास के 'पद्मावती', 'महाराणा प्रताप', बालकृष्ण भट्ट के 'जैसा काम वैसा परिणाम' और किशोरीदास गोस्वामी का 'चौपट चपेट' प्रमुख हैं। राधाकृष्णदास के 'राणा प्रताप' और 'पद्मावती' नामक नाटक ऐतिहासिक हैं। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का 'चन्द्रावली' पौराणिक तथा 'भारत-दुर्दशा', 'अंधेर-नगरी' और 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' कल्पना की उपज हैं। 'अंधेर-नगरी', 'चौपट-चपेट' तथा 'जैसा काम वैसा परिणाम' हास्यरस पूर्ण हैं। कथा-सगठन की दृष्टि से भारतेन्दु बाबू के नाटक बड़े सफल हुए हैं। नाटक की सन्धियो, अवस्थाओ तथा प्रकृतियो का भी उन्होने पूरा-पूरा ध्यान रखा है। किन्तु चरित्र-चित्रण की दृष्टि से इस काल के नाटक महत्त्वपूर्ण नही हैं। लगभग सभी पात्रो का चरित्र परम्परागत है। इन नाटको मे मुख्य सवेदना बडे स्पष्ट रूप मे दिखाई देती है जिससे नाटक की रोचकता और कलात्मकता को आघात लगा है।

द्वितीयावस्था के, जो सन् १९१८ से प्रारम्भ होकर सन् १९३५ तक

रहती है, जयशकर प्रसाद सबसे बड़े नाटककार है। उनके प्रधान नाटक हैं—चन्द्रगुप्त, स्कदगुप्त, अजात-शत्रु, जनमेजय का नागयज्ञ तथा ध्रुवस्वामिनी। प्रसाद के सभी नाटको का कथानक ऐतिहासिक है। इनकी सबसे बडी सुन्दरता है चरित्र-चित्रण। परिवर्तनशील पात्रो और आदर्शवादी स्थिर पात्रो के सघर्ष के कारण चरित्रो मे बड़ा उभार आ गया है। प्रसादजी के नाटक रङ्गमच के योग्य नही हैं।

तृतीयावस्था के प्रमुख नाटककार है—लक्ष्मीनारायण मिश्र और भुवनेश्वर प्रसाद सिंह। इस काल के नाटकों का कथानक अपेक्षाकृत छोटा हो गया किन्तु सघर्ष बढ गया। अब एकाकी नाटको का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से इस समय के नाटक बहुत उन्नत हैं। इनमे स्थिर और परिवर्तनशील पात्रो का जो सघर्ष दिखाया जाता है, वह दर्शको को गम्भीर चिन्तन की प्रेरणा देता है। मुख्य संवेदना और ज्यादा दुरुह होती जा रही है जिससे नाटक क्लिष्ट बनते जा रहे हैं।

(आ) उपन्यास

हिन्दी उपन्यासो के विकास की चार स्पष्ट अवस्थायें हमे दिखाई देती हैं। पहली अवस्था सन् १८०० से १६०० तक की है। इस अवस्था के उपन्यासकार हैं—इशाअल्लाखाँ, लाला श्रीनिवासदास और बालकृष्ण भट्ट। इशाअल्लाखाँ ने रानी केतकी की कहानी लिखी है जो कि लक्षणो की दृष्टि से उपन्यास होने पर भी एक कहानी ही बन गई है। लाला श्रीनिवासदास के 'परीक्षा गुरु' उपन्यास मे आधुनिक उपन्यास के बीज मिलते हैं। बालकृष्ण भट्ट का 'सौ अजान एक सुजान' भी इसी प्रकार का उपन्यास है। इस काल के उपन्यास कला की दृष्टि से बहुत नीचे स्तर के हैं।

द्वितीयावस्था के प्रमुख उपन्यासकार हैं देवकीनन्दन खत्री। इनके 'चन्द्रकान्ता सन्तति' और 'भूतनाथ' नामक उपन्यास बड़े लोकप्रिय हुए। इन उपन्यासो मे देवकीनन्दनजी ने प्रारम्भ से ही कथावस्तु को बिखेरना प्रारम्भ किया और आगे उसे निरन्तर बिखेरा और बढाया है। एक रहस्य खुलने के पहले ही दूसरे रहस्य का श्रीगणेश कर दिया है। किन्तु

लेखक मे कथा को सँजोने की इतनी क्षमता है कि अन्त मे सारे रहस्यों का उद्‌घाटन कर कथा के बिखरे सूत्रों को एक साथ बाँध देता है। कथानक को सँजोने की इतनी क्षमता बहुत कम उपन्यासकारो मे मिलेगी। खत्रीजी का चरित्र-चित्रण बडा साधारण कोटि का था। इसी प्रकार मुख्य सवेदना की दृष्टि से भी ये उपन्यास बहुत साधारण हैं।

तृतीय अवस्था १९१८ से १९३३ ई० तक मानी जा सकती है। इस समय के प्रमुख उपन्यासकार हैं—प्रेमचन्द, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, वृन्दावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा तथा जैनेन्द्रकुमार। इस युग में काफी उपन्यास लिखे गये हैं। इन उपन्यासों का कथानक सर्वथा आधुनिक है। कथानको मे आधुनिक समस्याये आधुनिक ढङ्ग से चित्रित की गई हैं। प्रेमचन्द के 'सेवासदन' मे वेश्या-वृत्ति का चित्र है तो 'कर्मभूमि' में असहयोग आन्दोलन का। उनके अन्य उपन्यासो मे, जिनमे गोदान, गबन, रङ्गभूमि, निर्मला, कायाकल्प आदि प्रमुख हैं, आधुनिक समस्याओ की प्रधानता है। भगवतीचरण वर्मा के 'तीन-वर्ष' नामक उपन्यास मे आधुनिक भारतीय विश्वविद्यालयो के विद्यार्थियो का जीवन अकित किया गया है। जैनेन्द्रकुमार ने ऐसे कथानक लिये हैं जिनमे घटनाओं का कुछ महत्त्व नही है। महत्त्व है तो पात्रो के चरित्र-चित्रण और मनोविज्ञान का। वृन्दावनलाल वर्मा के 'गढ-कुण्डार' और 'विराटा की पद्‌मिनी' नामक दोनो उपन्यासो के कथानक निराले है। उनका कथानक ऐतिहासिक है। इस युग के लगभग सभी उपन्यासो मे चरित्र-चित्रण की प्रधानता है। लेखक का ध्यान पात्रो की ओर अधिक रहता है, घटनाओ की ओर कम। पात्रो के मनोविज्ञान पर जोर दिया गया है। मुख्य सवेदना की दृष्टि से भी ये उपन्यास कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण हो गये हैं।

प्रेमचन्दजी की मृत्यु के बाद से हिन्दी-उपन्यासो की चतुर्थावस्था प्रारम्भ होती है। इस समय के प्रमुख उपन्यासकार हैं—अज्ञेय, अश्क, यशपाल, भगवतीप्रसाद वाजपेयी और इलाचन्द्र जोशी। इस काल के उपन्यासो मे घटनाओ का महत्त्व और भी कम हो गया। अब उपन्यास-कारो ने विदेशी भाषाओ के उपन्यासों का गहरा अध्ययन करके रचना

की दिशा में नया कदम बढाया था। अत. उनका कथानक अधिक रोचक और गम्भीर बन गया। अज्ञेय के 'शेखर-एक जीवनी' नामक उपन्यास मे इस बात का बहुत ही कम प्रयत्न किया गया है कि उसमें कोई कथानक हो। उसमे शेखर के जीवन के विकास को ही दिखाने का प्रयत्न किया गया है। अश्क की 'गिरती हुई दीवारें' में कथानक अधिक है, किन्तु लेखक का ध्यान समाज की प्रवृत्तियो और पात्रो के चरित्र पर ही अधिक रहा है। यशपाल के 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही' आदि कथानक की दृष्टि से अच्छे हैं। किन्तु लेखक का ध्यान देश की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक प्रवृत्तियो पर इतना अधिक है कि कथावस्तु गौण हो गई है। इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासो मे भी कथानक की अपेक्षा मानव मनोविज्ञान को अधिक स्थान मिला है। इस युग में चरित्र-चित्रण के स्थान पर समाज की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक स्थिति के परिणामस्वरूप व्यक्तियों की जो मनोवृत्ति बनी है उसी का चित्रण अधिक है। तृतीयावस्था से ही पात्र अपने वर्ग के प्रतिनिधि होने लग गये थे। 'गोदान' के 'होरी' मे भारतीय किसानवर्ग छिपा हुआ था। अब तो उपन्यास के पात्र अपने वर्ग के प्रतिनिधि और अधिक होने लगे। इस समय के उपन्यासो के पात्र अधिकाश मे साधारण-जनता के वर्ग के होने लगे हैं। मुख्य सवेदना की दृष्टि से भी ये उपन्यास अधिक सशक्त हैं। इस प्रकार पिछले ५० वर्षों मे उपन्यासो का जो विकास हुआ वह सचमुच बडा आश्चर्यजनक है।

(इ) कहानी

कहानी का श्रीगणेश २० वी शताब्दी के प्रारम्भ से ही हुआ। हिन्दी-कहानी प्रारम्भ से ही ऊँचे स्तर पर है और अब तक उसमें कोई विशेष परिवर्तन नही हुआ। आधुनिक युग के प्रमुख कहानी लेखक हैं—प्रेमचन्द, जयशकर प्रसाद, विशम्भर नाथ शर्मा, कौशिक, सुदर्शन, जैनेन्द्रकुमार, विष्णुप्रभाकर यशपाल, और गुलेरीजी। प्रेमचन्दजी की कहानियाँ सामाजिक एव आदर्शवादी हैं। उनकी कहानियो मे यह रहता है कि हमारा समाज कैसा है। इस प्रकार की कहानियों मे समाज-सुधार की भावना रहती है।

वेचनशर्मा उग्र तथा चन्द्रकिरण सोनरिक्सा की कहानियाँ प्राय. सामाजिक यथार्थवाद लिए हुए हैं। उग्र ने तो यथार्थ के नाम पर नग्न चित्रण ही कर डाला है। चन्द्रकिरण सोनरिक्सा की कहानियाँ कई दृष्टियो से ऊँची हैं। विष्णुप्रभाकर और मन्मथनाथ गुप्त भी इसी कोटि के कहानीकार है। उनकी प्रतिभा भी इसी प्रकार की है। राजनीतिक विषयो और समस्याओ को लेकर भी बहुत सी कहानियाँ लिखी गई हैं लेकिन कला की दृष्टि से इस प्रकार की कहानियाँ विशेष ऊँची नहीं हैं। आर्थिक विषयो को लेकर ग्राम और नगर दोनो का चित्रण हुआ है। काँग्रेस के आन्दोलन के परिणाम-स्वरूप किसान-मजदूर के प्रति जनता मे जो सहानुभूति पैदा हुई वही कहानियो मे दिखाई देती है। लेकिन इस प्रकार के कहानी-लेखको ने बिगडी हुई आर्थिक स्थिति के लिए सरकार, जमीदार, जागीरदार आदि को ही उत्तरदायी ठहराया है। उन्होने यह नही बताया कि इसमे किसानो का स्वय भी कुछ उत्तरदायित्व है। इस प्रकार की बहुत सी कहानियाँ भावुक सहानुभूति के कारण ही लिखी गई है।

मनोवैज्ञानिक कहानी के लेखको मे भगवतीप्रसाद वाजपेयी और मन्मथनाथ गुप्त के नाम उल्लेखनीय है। यद्यपि ये कहानियाँ भी राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक विषय से सम्बन्धित हैं तथापि लेखक का ध्यान इन समस्याओ की ओर न रह कर प्रमुख पात्रो के मनोविज्ञान की ओर ही रहता है। ये कहानियाँ आधुनिक युग की बहुत बडी देन है। इन कहानियो मे यह दिखाया जाता है कि—यद्यपि मनुष्य मे सद्-प्रवृत्तियाँ हैं और असद् प्रवृत्तियाँ भी हैं किन्तु कौन कब जाग उठेगी और उनसे प्रभावित होकर मनुष्य कब क्या करने लग जायगा। प्रेमचन्द की कहानियों मे मनोविज्ञान का पूरा ध्यान रखा गया है लेकिन उनका ध्यान मनुष्य की सद्प्रवृत्तियो पर ही अधिक था। इस काल मे समाज के पतित और पद-दलितवर्ग पर भी कहानियाँ लिखी गई हैं और उनका भी मनोविश्लेषण किया गया है। इन कहानियो मे प्राय. यह बताया जाता है कि वे व्यक्ति कोई बहुत बडा बुरा या अनुचित कार्य नही करते। यदि सद्प्रवृत्तियो वाले हम जैसे लोग भी उनकी परिस्थिति मे होते तो वैसा ही करते।

इस युग मे प्रेम-सम्बन्धी कहानियो की तो जैसे बाढ ही आ गई है। ये कहानिया कभी-कभी सामाजिक होती हैं, लेकिन प्रायः इनका सामाजिक पहलू बडा दबा हुआ रहता है। साराश यह है कि पिछले ५० वर्षों में ही हिन्दी-कहानी ने बहुत प्रगति की है और वह अब किसी भी भाषा के कहानी-साहित्य से पीछे नही है।

(ई) निबन्ध

कहानी की भाँति निबन्ध भी एक आधुनिक देन है। उसका आरम्भ कहानी से कुछ पूर्व सन् १८५० मे हुआ। उसके विकास की तीन अवस्थाएँ हमे स्पष्ट दिखाई देती हैं। प्रथम अवस्था के निबन्धकार है भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र और बालकृष्ण भट्ट। इस समय के निबन्ध प्राय. मनोरजक होते थे। प्रतापनारायण मिश्र ने आँख, नाक, पचपरमेश्वर आदि विषयो पर निबन्ध लिखे हैं। ये लोग प्राय किसी न किसी पत्र के सम्पादक होते थे और पत्र की ग्राहक सख्या बढाने के लिये लोगो के मनोरजन और रुचि का ध्यान रखते थे। मिश्रजी के निबन्धो मे अध्ययन की कमी अवश्य है किन्तु विचारो मे वे बडे निर्भीक हैं। इस समय के लेखको की तरह उनकी भाषा व्याकरण की दृष्टि से दुर्बल है। इस काल के लेखको के व्यक्तित्व की गहरी छाप उनके लेखो मे मिलती है।

द्वितीयावस्था के लेखको के सामने हिन्दी-साहित्य का भण्डार भरने की भावना रहती थी। इस समय के लेखको मे महावीरप्रसादजी द्विवेदी प्रमुख थे। वे सरस्वती के सम्पादक थे। उन्होंने एक ओर स्वय निबन्ध लिखे और दूसरी ओर अन्य लोगो से भी लिखवाये। उनके निबन्धो मे कुछ मौलिकता है, कुछ छायानुवाद। इस युग के निबन्धो की भाषा व्याकरण की दृष्टि से बहुत सुधर गई। लेखो मे गम्भीरता बढ गई और लेख प्रबन्ध का रूप धारण करने लगे।

तृतीयावस्था के प्रमुख निबन्धकार हैं—रामचन्द्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी, धीरेन्द्र वर्मा आदि। शुक्लजी के निबन्ध बड़े गम्भीर होते हैं। वे अनुच्छेद के पहले वाक्य मे सूत्ररूप मे अपने विचार कह कर फिर पूरे

अनुच्छेद में उसकी व्याख्या करते हैं। शुक्लजी के निवन्ध क्रोध, श्रद्धा-भक्ति, लोभ, प्रीति आदि मनोवैज्ञानिक विषयो पर हैं। इन निबन्धों ने हिन्दी-साहित्य के निबन्धो के स्तर को काफी ऊँचा उठा दिया। उनके सब निबन्ध मौलिक और गहरे हैं। भाषा गठी हुई एव प्रौढ है।

हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबन्ध अधिक रोचक हैं। वे निबन्ध का प्रारम्भ और अन्त दोनो ही बडे मनोरंजक ढग से करते हैं। विषय वस्तु की गम्भीरता की दृष्टि से भी वे शुक्लजी से आगे हैं। उनके संस्कृत-साहित्य के ज्ञान ने निवन्धो को अधिक कलात्मक बना दिया है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा के निबन्ध विषय-वस्तु और शैली दोनो ही दृष्टियो से अधिक ऊँचे हैं। उनके प्रत्येक निवन्ध मे कुछ मौलिक विचार रहते हैं। कठिन से कठिन विषय पर क्लिष्ट से क्लिष्ट विचार वे ऐसी सरल शैली में रखते हैं कि पढने वाले को क्लिष्टता नहीं लगती। उनके विचार बडे सुलझे हुए हैं। आजकल पत्र-पत्रिकाओ के बढते हुए प्रचार के कारण प्रतिमास सैकड़ो निबन्ध निकलते जा रहे है और निबन्ध-साहित्य की प्रगति हो रही है।

(उ) समालोचना

समालोचना हिन्दी मे नई वस्तु है। यद्यपि सस्कृत भाषा में और पीछे से रीति-काल मे भी समालोचना के सिद्धान्तो पर पुस्तकें लिखी गई थी, तथापि उनमे यह नही दिया गया था कि किस कवि ने कैसे अलकारों का प्रयोग किया और उसकी रचनाओ मे रस का परिपाक कितना हुआ। हिन्दी समालोचना का प्रारम्भ २० वी शताब्दी से होता है। महावीर प्रसादजी द्विवेदी हिन्दी के सबसे पहले आलोचक कहे जा सकते हैं। उन्होने समालोचना इस दृष्टि से की कि लेखको के दोष दूर हो और गुण बढें। द्विवेदीजी सम्पादक थे और इस नाते समालोचना करना उनका कर्त्तव्य था। उन्होंने सदैव यह ध्यान रखकर समालोचना की कि वह साहित्य के विकास मे सहायक हो।

द्विवेदीजी के बाद हिन्दी मे पण्डित रामचन्द्र शुक्ल का आगमन हुआ। शुक्लजी ने प्रमुख रूप से तुलसी, सूर और जायसी की समालोचना की। इन आलोचनाओ मे हमे एक ऊँचे आलोचक के दर्शन होते है

सनकी जायसी की आलोचना तो बडी ही सुन्दर है। भ्रमर-गीत-सार की भूमिका मे उन्होंने सूर की आलोचना की है। इस आलोचना से भ्रमर-गीत का आनन्द कई गुना बढ जाता है। शुक्लजी के युग मे हिन्दी आलोचना-साहित्य मे गम्भीरता और गुरुता आई। अब लेखको के दृष्टिकोण को पूरी तरह समझने के लिए आलोचको ने उनके धार्मिक और साम्प्रदायिक विचारो का अध्ययन प्रारम्भ किया। इसी प्रकार लेखक के जीवन की घटनाओ और परिस्थितियो को भी जानने का प्रयत्न किया गया।

इस काल मे साहित्य की प्रवृत्तियो की भी आलोचना प्रारम्भ हुई। प्रवृत्तियो की आलोचना मे सामाजिक धार्मिक एव दार्शनिक प्रवृत्तियो का विशद विवेचन किया जाने लगा। डॉ० पीताम्बरदास बडथ्वाल ने अपने ग्रन्थ 'निर्गुण-काव्य-धारा' मे सत-साहित्य की समालोचना की। डॉ० केसरीनारायण शुक्ल ने 'आधुनिक-काव्य-धारा' मे आधुनिक हिन्दी कविता का सुन्दर अध्ययन प्रस्तुत किया। डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने 'आधुनिक-हिन्दी-साहित्य' नामक ग्रन्थ मे सन् १८५० से १६०० ई० तक के लिखे हुए हिन्दी-साहित्य की आलोचना की। इसी प्रकार डॉ० श्रीकृष्णलाल, परशुराम चतुर्वेदी, नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ० नगेन्द्र आदि ने भी इस दिशा मे महत्वपूर्ण कार्य किया। इस युग में साहित्य-समालोचना के सिद्धान्तो पर भी पुस्तकें लिखी गईं जिनमे श्यामसुन्दरदास का 'साहित्यालोचन' उल्लेखनीय है। यद्यपि अभी तक शुक्लजी जैसी प्रतिभा-किसी अन्य आलोचक मे दिखाई नही देती, तथापि प्रवृत्तियों और युगो की पृष्ठभूमि के विश्लेषण मे कुछ व्यक्ति समर्थ हुए हैं। इनमें हजारीप्रसादजी द्विवेदी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनकी 'हिन्दी-साहित्य की भूमिका' तथा 'कबीर' नामक पुस्तकें इस दृष्टि से बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं। 'साहित्य-सदेश', 'आलोचना' जैसे कुछ ऐसे पत्र भी आजकल निकलने लगे हैं जिनमे केवल समालोचना ही निकलती है। पूर्व व पश्चिम के साहित्य-शास्त्र पर भी ग्रन्थ निकलते जा रहे हैं। तुलसी व सूर पर तो दर्जनो पुस्तकें निकल चुकी है।

[ऊ] पत्र-पत्रिकाएँ

सन् १७३५ मे 'उदन्त मार्त्तण्ड' नामक पहला पत्र निकला, उसके वाद भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने तीन पत्र निकाले। वालकृष्ण भट्ट एवं प्रतापनारायण मिश्र ने भी पत्र निकाले। पत्र-कला की दृष्टि से प्रारम्भिक अवस्था के इन पत्रो का स्तर काफी नीचा था। २० वीं शताव्दी के प्रारम्भ मे 'सरस्वती' और 'नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका' नामक दो साहित्यिक पत्र निकले जो अव तक चल रहे हैं। सरस्वती ने प्रारम्भ मे हिन्दी की वडी सेवा की। इसके सम्पादक श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी ने इस पत्रिका के द्वारा कई लोगो को लेखक वनाया। 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' ने साँस्कृतिक शोध की दिशा मे अच्छा कार्य किया।

सन् १९१० के वाद से तो जैसे पत्र-पत्रिकाओ की वाढ ही आगई। अब कई दैनिक, साप्ताहिक, मासिक और त्रमासिक पत्र निकलने लगे। दैनिक-पत्रो मे समाचारो की प्रधानता रहती है, किन्तु इनमे निवन्ध भी निकलते रहते हैं। साप्ताहिक पत्रो मे समाचार-समीक्षा, कहानी, कविताएँ तथा सामाजिक विषयो पर साधारण निबन्ध रहते हैं। इनमे महिलाएँ और बालको के लिए भी कुछ पृष्ठ सुरक्षित रहते है। मासिक पत्रिकाओ मे निबन्ध, समालोचना, कविता, कहानी, धारावाहिक उपन्यास, एकांकी, सस्मरण एव रेखाचित्र सब कुछ रहते हैं। विश्ववाणी, हिमालय, वीणा, नया समाज, कल्पना, ज्ञानोदय, नया जीवन, सरस्वती, माधुरी, जीवन-साहित्य, माया, आजकल, नवनीत आदि वर्तमान युग के अच्छे मासिक पत्रो मे से हैं। कुछ बालको और स्त्रियो के पत्र भी निकलते हैं। जैसे—बाल-भारती, बालक, खिलौना, नटखट, दीदी, शिशु, पराग आदि। कविता-सबन्धी पत्रो मे कानपुर का 'सुकवि' तथा कहानी सम्बन्धी पत्रो मे इलाहाबाद के 'माया', 'मनोहर कहानियाँ' आदि प्रमुख हैं। साहित्य समालोचना मे 'साहित्य-सदेश' उल्लेखनीय है। इसके अलावा विज्ञान, भूगोल, इतिहास, प्राकृतिक चिकित्सा एव ललित-कलाओ पर भी अलग-अलग पत्र निकलने लगे है। सन् १९४७ तक हिन्दी मे ७७ दैनिक, २९२ साप्ताहिक, ३५१ मासिक एव १,१२,८४४ अन्य पत्र-पत्रिकाएँ निकल रहे थे। अब तो इनकी संख्या और स्तर और भी ऊँचे होते जा रहे है।

कवि-परिचय

१—कबीरदास

महात्मा कबीरदास की जन्म-तिथि, माता-पिता, जाति, धर्म आदि के बारे मे अभी तक कोई स्पष्ट बात मालूम नही हुई। 'भक्तिसिन्धु' के अनुसार उनका जन्म स० १४५१ मे तथा 'कबीर एण्ड दी कबीर पन्थ' के अनुसार १४५७ मे माना जाता है। 'कबीर कसौटी' मे उनका जन्म-सवत् १४५५ दिया गया है। जन्म-तिथि की ही तरह उनके माता-पिता का भी पता नही मिलता। जनश्रुति यह है कि वे किसी विधवा ब्राह्मणी के पुत्र थे। लोक-लाज से उसने उन्हे काशी के लहरतारा तालाब के पास छोड दिया था। नीरू और नीमा नामक जुलाहा दम्पत्ति वहाँ से निकले और उन्होंने इस परित्यक्त बालक को उठा लिया तथा अपने बालक की ही भाँति पालन-पोषण किया। जुलाहा-परिवार मे पालित-पोषित होने के कारण वे जुलाहा कहलाये—'तू बामन मैं कासी का जुलाहा'।

कबीर पढे-लिखे नही थे लेकिन वे अक्षर ज्ञान से बहुत आगे थे। वे सच्चे अर्थों मे ज्ञानी, कर्मठ और उपासक थे। उनकी कविता मे ज्ञान का प्रकाश पर्याप्त है। यह ज्ञान उन्होंने सत्सग और शास्त्र-चर्चा से प्राप्त किया था। उन्होने विवाह किया था और उनकी पत्नी का नाम लोई था। लोई से उनके एक पुत्र और एक पुत्री हुए थे। उनके नाम थे—कमाल और कमाली।

कबीर रामानन्द के शिष्य थे। यद्यपि तुलसीदासजी और रैदासजी भी उन्ही रामानन्द के ही शिष्य थे, तथापि कबीरदास ने अपना एक पृथक पन्थ चलाया था, जिसमे निर्गुण-निराकार की उपासना प्रधान थी। कबीर ने राम-नाम की दीक्षा रामानन्दजी से ली थी किन्तु इनके राम तुलसी और रामानन्द के साकार अवतारी राम से भिन्न निर्गुण-निराकार राम थे। इधर कबीर के मुसलमान अनुयायी उन्हें सूफी फकीर शेख तकी के शिष्य मानते हैं और कहते हैं कि उन्होने शेख तकी से दीक्षा ली थी।

कवीर लोदी-वश के सुलतान सिकन्दर शाह के समकालीन थे। कई विरोधियो ने सुलतान को उनके विरुद्ध भड़का दिया। अतः वादशाह ने उन्हें अनेक कष्ट दिये, लेकिन कवीर का वाल भी वाँका नहीं हुआ। कवीरदास जन्म से हिन्दू किन्तु कर्म से मुसलमान थे। उन्होंने अपनी वाणी मे भी हिन्दू-मुसलमान की एकता का सन्देश दिया है। पूजा-पाठ, रोजा-नमाज, तीर्थ-हज आदि आडम्वर का वे हमेशा विरोध करते रहते थे। अतः न हिन्दू उनसे पूरी तरह सन्तुष्ट रहे न मुसलमान। लोगो के इस विश्वास को गलत सिद्ध करने के लिये—कि काशी में मरने से स्वर्ग और मगहर मे मरने से नरक मिलता है—वे मृत्यु के समय स्वय मगहर गये और वहाँ शरीर छोडा। उनकी मृत्यु सवत् १५७५ मानी जाती है। कवीर की वाणियो का सग्रह कवीर वीजक नामक ग्रन्थ मे है। उसके तीन खण्ड हैं—रमेनी, सवद, साखी। उनके पदो को सवद कहा जाता है और दोहो को साखी।

यद्यपि कवीरदासजी ने रामानन्द से दीक्षा ली थी, तथापि रामानन्द की भाँति उनके राम 'दुष्ट-दलन रघुनाथ' नही थे। राम से उनका तात्पर्य निर्गुण-ब्रह्म से था। उन्होने 'निर्गुण राम, निर्गुण राम जपहु रे माई' का उपदेश दिया है। उनकी राम-भावना भारतीय ब्रह्म-भावना से मिलती-जुलती है। वे केवल शब्दो को लेकर झगडा खड़ा करने वालो में नहीं थे। अपने भाव व्यक्त करने के लिये उन्होंने उर्दू, फारसी, संस्कृत आदि सभी शब्दो का उपयोग किया है। उन्होने अपने भाव प्रकट करने भर से मतलव रखा है, शब्दो की चिन्ता नही की। ब्रह्म के लिये उन्होने राम, रहीम, अल्ला, सत्य, गोविन्द, नाम, साहव आदि अनेक शब्दो का प्रयोग किया है। उन्होने कहा भी है—'अपरम्पार का नामु अनन्त'। यद्यपि उनकी रचनाओ मे भारतीय ब्रह्मवाद का ही पूरा पूरा ढाँचा पाया जाता है तथापि उन्होंने उसकी प्रायः वही बातें कही हैं जो मुसलमानी एकेश्वरवाद से मेल खाती हैं। उनका ध्येय सर्वदा हिन्दू-मुस्लिम एकता रहा। धर्म के मूल सिद्धान्तो का पक्ष लेकर उन्होने मूर्ति-पूजा, नमाज, छापा, तिलक आदि वाह्याचारो का कड़ा विरोध किया है।

सामान्य स्वाभाविक वृत्ति के कारण उसके वाक्य छोटे-वडे सभी के हृदय को स्पर्श करने वाले बन गये हैं ·

वाट असूझ अथाह गभीरी। जिउ बाउर भा फिरे भँभीरी ।।
जग जल बूढ जहाँ लगि ताकी। मोरि नाव खेवक बिनु थाकी ।।
जेठ जरे जग चले लुवारा। उठहि बवण्डर परहि अगारा ।।
उठे आगि औ आवे आँधी। नैन न सूझ, मरौ दुख बाँधी ।।

३—सूरदास

महात्मा सूरदास की जन्म और मृत्यु तिथि के बारे मे भिन्न-भिन्न मत है। उनका सही जीवन-वृत्त अब तक भी मालूम नही हो सका है। उनका जन्म सवत् १५३५ और मृत्यु सवत् १६४२ के आस-पास माना जाता है। इसी प्रकार उनके जन्म-स्थान, माता-पिता, जाति, कुल, गौत्र आदि के बारे मे भी कोई निश्चित तथ्य प्राप्त नही हो सका है। यह सब अभी अनुसधान का ही विषय वना हुआ है। कहा जाता है कि उन का मूल नाम सूरजदास था और सूरदास उपनाम। जब महात्मा वल्लभाचार्य से उनकी भेंट हुई तब वे आगरा-मथुरा के बीचो-बीच यमुना के गऊ घाट पर रहा करते थे। महात्मा वल्लभाचार्य ने सूरदासजी से भगवान् की लीला का वर्णन करने के लिये कहा तो सूरदासजी ने विनय के दो पद गाये। इन पदो मे भक्त का दैन्य था, वल्लभाचार्यजी को वह अच्छा नही लगा और उन्होने भगवान् की लीला का वर्णन करने के लिये कहा। वल्लभाचार्यजी के इस प्रबोध से सूरदासजी को नवीन प्रेरणा मिली और उनकी रचना की धारा उसी दिशा मे मुड गई।

महात्मा वल्लभाचार्यजी ने सूरदासजी को श्रीनाथजी के मन्दिर मे कीर्त्तन करने का काम सौंपा। बस, यही कीर्त्तन करते-करते उहोने हजारो गीतो की रचना कर डाली जो 'सूरसागर' मे सग्रहीत किये गये हैं। कहा जाता है कि इन गीतो के कारण सूरदासजी की कीर्ति-पताका दूर-दूर तक फहराने लगी। बादशाह अकबर के पास भी उनकी प्रशसा की वात पहुँची और उसने उन्हें मिलने के लिये बुलाया। सूरदासजी ने उसे दो पद गाकर सुनाये। अन्तर्साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य दोनो से ही यह बात मालूम होती है कि सूरदास अन्धे थे। पता नही वे जन्मान्ध थे या

बाद मे अन्धे हुए । जनश्रुति के अनुसार वे जन्मान्ध नही थे । उनके गीतो मे रूप-सौन्दर्य के जो चित्र हैं उन्हे देखकर भी यह नही कहा जा सकता है कि वे जन्मान्ध रहे होंगे ।

सूरदास हिन्दी के जयदेव और विद्यापति हैं । यद्यपि सूरदास का स्वर्गवास हुए शताब्दिया बीत चुकी हैं, तथापि उन्होने जो कुछ गाया उसकी स्वर-लहरी अब तक वायुमण्डल मे व्याप्त है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उनके बारे मे लिखा है—"जयदेव की देव-वाणी की स्निग्ध पीयूषधारा, जो काल की कठोरता मे दब गई थी,अवकाश पाते ही लोक-भाषा की सरसता मे परिणित होकर मिथिला की अमराइयो मे विद्यापति के कोकिल-कण्ठ से प्रकट हुई और आगे चलकर ब्रज के करील-कुन्जो के बीच मुरझाये मनो को सीचने लगी । आचार्यों की छाप लगी हुई आठ वीणाएँ श्रीकृष्ण की प्रेम-लीला का कीर्तन कर उठी, जिनमे सबसे ऊँची, सुरीली और मधुर झकार अन्धे-कवि सूरदास की वीणा की थी ।"

कृष्ण-भक्त कवियो के काव्य मे सूरदास के पद अपना सर्वोच्च स्थान रखते हैं । सूरदास पुष्टिमार्ग के प्रतिष्ठाता महाप्रभु वल्लभाचार्यजी के शिष्य थे और उन्ही की प्रेरणा से उन्होने भगवान कृष्ण की लीला का वर्णन किया था । भगवान् कृष्ण के जीवन प्रसङ्गो को गीतो मे ढालकर उन्होंने बडा ही सरस और मधुर बना दिया है । सूरदास की दार्शनिक विचारधारा वही है जो महाप्रभु वल्लभाचार्य की थी । उन्होने भगवान् की सगुण लीला के पद लिखे हैं ।

उनकी कविता मे भक्ति,वात्सल्य और शृङ्गार की त्रिवेणी के दर्शन होते हैं । वे प्रेम के कवि हैं । उनका प्रेम ही भक्ति, वात्सल्य और शृङ्गार की तीन विभिन्न धाराओ मे समान गति के साथ बहा है । प्रारम्भ मे सूरदासजी की भक्ति दास्य भाव की थी । भगवान् को महान् और अपने को तुच्छ मानकर उहोंने बडी कातर वाणी मे विनय निवेदन किया था । यह भक्ति तुलसीदास की भक्ति से मिलती जुलती है । किन्तु महाप्रभु वल्लभाचार्य के सम्पर्क से वे श्रीकृष्ण की प्रेम-लीला के गायक बन गये । उनकी दास्य-भक्ति अब सख्य-भाव मे परिणित हो गई । सूर के विनय के पद एक आत्म-विस्मृत, आत्म-समर्पित, प्रेमोन्मत्त भक्त के हार्दिक

उद्‌गार है। वे अपने को अधम से अधम और पापी से पापी मानकर भगवान् की शरण मे गये हैं—

पापी कौन वडो है मो ते, सब पतितन मे नामी।
सूर पतित को ठौर कहाँ है, सुनिये श्रीपति स्वामी ।।

सूरदास ने कृष्ण के प्रेममय जीवन के गीत गाए हैं। वे वाल-जीवन के सर्वोत्तम गायक, कवि और चित्रकार हैं। उनके पदो मे वाल-भावना, वाल-रूप, वाल क्रीडा और वाल-व्यापार का जो मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है वह हिन्दी काव्य मे ही नही अन्यत्र भी मुश्किल से मिलेगा। तुलसी जैसे महाकवि का वाल-लीला वर्णन भी सूर के आगे निस्तेज प्रतीत होता है। सूर के चित्रण मे इतनी स्वाभाविकता है कि वह आखो मे रम जाता है। उन्होने वात्सल्य-भाव के आलम्वन (कृष्ण) और आश्रय (यशोदा) के अन्तरङ्ग और वहिरङ्ग का जो चित्रण किया है उसे देखकर वरवस यह कहना पडता है कि उनमे जहाँ एक वालक के हृदय का स्पन्दन है, वहाँ माता के हृदय का स्पन्दन भी है।

श्रीकृष्ण के वाल्यजीवन के क्रीडा-कौतुक के साथ-साथ उनकी युवावस्था के प्रेम-प्रणय का भी उन्होने मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। यद्यपि इस प्रेम-चित्रण के पीछे वल्लभाचार्य का भक्ति-दर्शन था तथापि उन्होंने इसमे जो तन्मयता दिखाई है उससे वह एक दम नया और निराला वन गया है। कृष्ण-राधा और कृष्ण-गोपियो का प्रेम आध्यात्मिक अर्थ मे भगवान् का अपनी शक्ति और अपने भक्तों की आत्माओ से प्रेम है। लेकिन लौकिक अर्थ मे वह मानव-हृदयो का ही प्रेम है। उनका चित्रण उन्होंने यथार्थवादी सच्चाई के साथ किया है। उनके वर्णन मे शारीरिक स्पर्श अवश्य है लेकिन ग्राम्यता या अश्लीलता नही है। उनके विरह-गीत भी हिन्दी-साहित्य मे अद्वितीय हैं। उनको देखकर तो हमे मीराँ की याद आ जाती है। जिस प्रकार मीराँ ने अपना हृदय ही पिघाल कर गीतो मे ऊँडेल दिया है, उसी प्रकार सूर ने भी विरहिणी गोपिकाओ से एकरूप होकर अपने हृदय को पिघाल कर गीतो मे उँडेल दिया है। सूर का एक विरह-गीत विरह की एक-एक अनुभूति, एक-एक वेदना और एक-एक अनुभव से व्यञ्जित हुआ है। सूर ने विरह की एक-एक

स्थिति को लेकर अनेक पद गाये हैं। तुलसीदास ने भी अच्छे गीत लिखे हैं लेकिन उनमे और सूर मे यही अन्तर है कि सूरदास के पास वीणा थी, तुलसीदास के पास लेखनी। सूर गायक थे, तुलसीदास कवि। तुलसीदास के पास जीवन का समूचा चित्र था, सूरदास के पास केवल प्रेम-पक्ष। महान् कवि होते हुए भी तुलसीदास मे गीत की वह कोमलता नही, जो सूरदास मे है। सूरदास के गीत हृदय को तडफा देते थे। सूर के पदो से रस छलका पडता है।

सूरदास के ग्रन्थो मे सूर सागर, सूर-सारावलि और साहित्य-लहरी प्रमुख है। उनके लगभग छ हजार पद ही अब प्राप्त हैं। उनका सारा काव्य मुक्तक है। उनकी भाषा ब्रज है। उसमे सरलता और व्यंजकता के साथ स्निग्धता और धारावाहिकता भी है। उन्होने साधारण बोलचाल के शब्दो का ही प्रयोग किया है। फिर भी कही-कही फारसी और पजाबी आदि के शब्दो का प्रयोग मिल जाता है। अत्यानुप्रास के लिए जहाँ-तहाँ सूरदास ने शब्दो को तोड़ा-मरोडा है और उनका रूप बदल डाला है। फिर भी उनकी भाषा ब्रजभाषा का उज्ज्वलतम नमूना है।

सूर का एक विरह गीत देखिये

देखियत कालिन्दी अति कारी।
अहो पथिक कहियो उन हरि सो, भई विरह जुर कारी॥
मनु पर्यक ते परीं धरनि धुकि तरङ्ग तलफ तनु भारी।
तट बारू उपचार चूर जल मनो प्रस्वेद पनारी॥
विगलित कच कुस कास पुलिन पर पङ्कजु कज्जल मारी।
मनहुँ भ्रमरि मिस भ्रमति फिरती हैं, दिसि-दिसि दीन दुखारी॥
निसिदिन चकई व्याज बकति है, प्रेम मनोहर हारी।
'सूरदास' प्रभु जोई जमुन गति सोइ गति भई हमारी॥

४—तुलसीदास

सूरदास की भाँति महाकवि तुलसीदासजी का भी प्रामाणिक जीवन-वृत्त प्राप्त नही है। कहा जाता है कि उनका जन्म सवत् १५५४ मे हुआ

कबीरदासजी ने कविता के लिये कविता नही लिखी। वे सत्य-शोधक थे। अत उनकी विचारधारा सत्य की खोज मे बही है। उसी का प्रकाश करना उनका ध्येय रहा है। उनकी विचारधारा का प्रवाह जीवनधारा के प्रवाह से अलग नही है। उनकी प्रतिभा हृदय-समन्वित है। अत उनकी बातो मे एक ऐसी शक्ति है जो दूसरो पर प्रभाव डाले बिना नही रहती। यद्यपि उन्होंने अक्खड ढङ्ग से बेलाग बातें कही हैं, तथापि उनकी बातो मे एक ऐसा मिठास है जो खरी-खरी कहने वालो की ही बात मे होता है। इसीलिये उनकी बहुत सी उक्तियाँ लोगो की जबान पर चढ गई हैं। हार्दिक उमङ्ग की लपेट मे जो सहज विदग्धता उनकी उक्तियो मे आ गई है, वह अत्यन्त भावापन्न है। यही उनकी प्रतिभा का चमत्कार है।

कबीरदासजी ने अपनी उक्तियो पर बाहर-बाहर से अलङ्कारो का मुलम्मा चढ़ाने का प्रयत्न नही किया। मानसिक कलाबाजी और कारीगरी वाली कला उनमे ढूँढने से भी नही मिलेगी। सत-कवियो मे कबीरदासजी का स्थान सर्वोञ्च है। उनका काव्य मुक्तक क्षेत्र के अन्तर्गत है। उसमे भी उन्होंने कुछ ज्ञान पर कहा है, कुछ नीति पर। नानक, दादू, सुन्दरदास आदि निर्गुण भक्त-कवियो मे वे सहज ही सबसे बढ़कर हैं। रहस्यवादी कवियों मे भी उनका स्थान सबसे ऊँचा है। शुद्ध रहस्यवाद केवल उन्ही की कविताओ मे मिलता है। उनकी रचनाओ के कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं—

दिनभर रोजा रहत है, राति हनत है गाय।
यह तो खून वह बन्दगी, कैसे खुशी खुदाय॥
बकरी पाती खात है, ताकी काढी खाल।
जो बकरी को खात है, तिनको कौन हवाल॥
मूड मुँडाये हरि मिले, तो हर कोइ लेय मुँडाय।
बार-बार के मूँडते, भेड न बैकुण्ठ जाय॥
जल मे कुम्भ कुम्भ मे जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना, यह तत कथो गियानी॥

———

२—जायसी

मलिक मुहम्मद जायसी प्रथम से जायस नामक स्थान पर आकर रहने लग गये थे। इसीलिये उन्हें जायसी कहा जाने लगा। ६०० हिजरी अर्थात् स० १३६३ उनका जन्म संवत् माना जाता है। अपने 'पद्मावत' नामक ग्रन्थ में उन्होंने स्वयं 'भा अवतार मोर नौ सदी' कह कर अपने इस जन्म संवत् की पुष्टि की है। इनका काव्य-काल बाबर और शेरशाह का शासन-काल माना जाता है।

जायसी कुरूप और काने थे। उन्होंने स्वयं 'एक नयन कवि मुहम्मद गुनी' कह कर अपने काने होने का उल्लेख किया है। इसी तरह उन्हें बायें कान से कम सुनाई भी देता था। कहा जाता है कि वे एक बार शेरशाह के दरबार में गये। शेरशाह उनके भद्दे चेहरे को देख कर हँस पड़ा। जायसी ने बड़े शांत भाव से पूछा—"मोहिका हँससि कि कोहरहि?" अर्थात् तुम मेरे ऊपर हँसे या मुझे बनाने वाले कुम्हार पर? इस पर शेरशाह बड़ा शर्मिन्दा हुआ और उसने क्षमा मांगी।

जायसी एक किसान गृहस्थ के रूप में जायस में रहते थे। ये बड़े ईश्वर-भक्त और साधु प्रकृति के व्यक्ति थे। वे जब खेतों में काम करते थे तब खाना वहीं मँगा लिया करते थे और जो भी आस-पास होता उसे बुलाकर उसके साथ खाते थे। अकेले खाना उन्हें अच्छा ही नहीं लगता था। कहा जाता है कि एक बार जब उन्हें आस-पास कोई दिखाई न दिया तो बड़ी देर तक इन्तजार करते रहे। अन्त में उन्हें एक कोढ़ी दिखाई दिया। उन्होंने उसी को अपने पास बिठा लिया और खाना खाने लगे। उसके शरीर से कोढ़ चू रहा था और जब थोड़ा मवाद भोजन पर भी गिर पड़ा तो जायसी ने उसकी चिन्ता नहीं की और उसे भी खाने लगे। इस पर उस कोढ़ी ने उनका हाथ पकड़ लिया। किन्तु जायसी न माने और उसे खा गये। इसके बाद वह कोढ़ी अदृश्य हो गया। इस घटना के बाद से ईश्वर-भक्ति की ओर उनका रुझान और ज्यादा हो गया। जायसी के पुत्र थे, किन्तु वे किसी दुर्घटना में मर गये। तब से तो वे संसार से और भी अधिक विरक्त हो गये और घरबार छोड़ कर फकीर की तरह रहने लगे।

जायसी बड़े भावुक और भगवद्भक्त थे। वे अपने समय के बडे सिद्ध और पहुँचे हुए फकीर माने जाते थे। लेकिन कबीरदासजी की तरह अपना एक निराला पथ निकालने का प्रयत्न उन्होंने कभी नही किया। अपने धर्म मे आस्था रखने के साथ-साथ वे मानव-धर्म के सच्चे अनुयायी थे। सच्चे भक्त का गुण दैन्य उनमे पूरा-पूरा था। उन्होने कभी अपने को पहुँचा हुआ व्यक्ति नही समझा। उनमे इतनी उदारता थी कि उनसे कट्टर-पथियो को भी कोई चोट नही पहुँचती थी। वीरता, धीरता, रूप, गुण, शील, ऐश्वर्य सब पर मुग्ध होने वाला हृदय उन्हें प्राप्त था। यही कारण था कि उनके मन मे पद्मावत जैसा महाकाव्य लिखने की प्रेरणा हुई।

अमेठी के राजघराने से जायसी का बडा अच्छा सम्बन्ध था। जीवन के अन्तिम दिनो मे जायसी अमेठी से दो मील दूर एक जङ्गल मे रहा करते थे। वही उनकी मृत्यु हुई। काजी नसरुद्दीन ने अपनी याददाश्त से उनका मृत्यु सवत् १५४२ बताया है। कह नही सकते कि यह सही है या नही।

मलिक मुहम्मद जायसी के द्वारा लिखी हुई तीन पुस्तकें बडी प्रसिद्ध हैं—पद्मावत, अखरावट और आखरी-कलाम। आखरी-कलाम मे धार्मिक सिद्धान्त हैं। अखरावट में वर्णमाला के अनुसार सिद्धान्त सूक्तियाँ हैं। पद्मावत मे दोहे चौपाई की शैली मे चित्तौड की रानी पद्मिनी का वृत्तान्त है। यह वृत्तान्त फारसी की मसनवी शैली पर लिखा गया है। ग्रन्थ के प्रारम्भ मे कवि ने खुदा, रसूल, गुरु और शाहेवक्त की बन्दना की है। यह प्रेमाख्यान कल्पना और इतिहास के मेल से बडा ही सुन्दर बन गया है। जायसी ने इस ग्रन्थ में यह बताया है कि ब्रह्म की प्राप्ति अनन्य प्रेम के द्वारा ही की जा सकती है। जायसी की रहस्य-भावना का भी दर्शन इस ग्रन्थ मे बडे सुन्दर ढग से हो जाता है।

जायसी ने अपने ग्रन्थो की रचना बोल-चाल की सीधी-सादी भाषा मे की है। उन्होने ठेठ पूर्वी-अवधी का प्रयोग किया है। इसलिये भाषा मे कुछ दुरूहता दिखाई देती है। कही-कही प्राकृत शब्दो का प्रयोग भी किया गया है। जायसी ने जबरदस्ती अलङ्कार ठूसने का

प्रयत्न नही किया है । वे तो स्वाभाविक रूप से उनकी कविता मे आ गये है और इससे उनके काव्य का सौदर्य खिला है । उत्प्रेक्षा अलङ्कार का प्रयोग जायसी ने वडी निपुणता से किया है । उनके युद्ध-वर्णन वड़े सजीव हैं । हिन्दी-भाषा का साहित्यिक ज्ञान न होने से उनकी भाषा मे व्याकरण की अनेक अशुद्धियाँ पाई जाती है । इसी प्रकार हिन्दू-देवी-देवताओ का भी पूरा-पूरा ज्ञान न होने से उन्होने कैलाश को स्वर्ग तथा इन्द्र का घर वता दिया है तथा हनुमानजी को शिवजी का सेवक कह दिया है । अत साधारण पाठको को ये भूलें खटकती हैं । फिर भी इसमे कोई सन्देह नही कि पद्मावत एक उच्चकोटि का साहित्यिक ग्रन्थ है ।

जायसी ने पद्मावत मे रानी नागमती के विरह का जो वर्णन किया है वह हिन्दी साहित्य मे बेजोड है । कवि ने बारहो महीनो का वर्णन करके नागमती की विरहावस्था का वडा मार्मिक चित्रण किया है और इस विरह-वर्णन के पीछे आत्मा और परमात्मा के वियोग की जो ध्वनि छिपी हुई है वह तो वडी ही अलौकिक है । हिन्दी-साहित्य मे अन्यत्र एक पतिव्रता का इतना पवित्र, इतना मार्मिक और इतना हृदयस्पर्शी वियोग-वर्णन कठिनाई से ही मिल सकेगा । इस प्रकार के स्थलो पर कवि की भाषा भी वड़ी सरस, मधुर और आकर्षक हो गई है । प्राकृतिक वस्तुओ के समन्वय से यह वियोग-वर्णन और भी ज्यादा चमत्कारपूर्ण और हृदयग्राही बन गया है । परिचित प्राकृतिक दृश्यो के साहचर्य द्वारा और कवियो की वाणी द्वारा जो मर्मस्पर्शी प्रभाव प्राप्त होता है उसका अनुभव उनकी ओर सकेत करने मात्र से ही हो जाता है । इस प्रकार का सुन्दर सकेत इस बारह-मासा मे देखिये .

चढा असाढ, गगन घन गाजा । साजा विरह दुन्द दल बाजा ।।
धूम, साम, घोरे घन धाए । सेत धजा बग पाँति देखाए ।।
खडग वीजु, चमके चहुँ ओरा । वुन्द बान बरसहि चहुँ ओरा ।।

जायसी ने अपनी भावुकता का वडा ही सुन्दर परिचय यह बात बता कर दिया है कि नागमती विरह-दशा मे अपना रानीपन ही भूल जाती है । वह अपने को साधारण स्त्री के रूप मे देखती है । इस

यह भी कहा जाता है कि मीराँ द्वारका चली गई थी और अन्तिम समय तक वही रहीं। वहाँ वे रणछोडजी की पुजारिन बन गईं और अन्त मे उन्ही की मूर्ति मे समा गईं।

मीराँ वैष्णव-भक्ति सम्प्रदाय के सूरदास, कुम्भनदास, परमानन्ददास आदि कृष्ण-भक्त कवियो मे तो नही थी, किन्तु प्रणय-निवेदन मे उनसे किसी प्रकार कम नही थी। मीराँ पर कबीर, दादू, रैदास आदि निर्गुण सन्त-कवियों की वाणी का काफी प्रभाव था।

मीराँ कृष्ण की भक्त थी। यद्यपि उनका विवाह राणा के साथ हुआ था तथापि उन्होंने अपने प्राणो मे तो कृष्ण को ही बैठा रखा था। वही उनका पति और सर्वस्व था .

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई॥

जब लौकिक दृष्टि से वे विधवा हो गईं तब भी वे अपने को विधवा नही मानती थी। उनकी उपासना माधुर्य-भाव की थी। वे कृष्ण की पति या प्रियतम के रूप मे आराधना करती थी। यही कारण है कि उनके गीतो मे विरह की वेदना और प्रेम की पीडा बडी तीव्र है। वे भगवान् के प्रति अपने प्रेम को लौकिक प्रतीको के द्वारा ही व्यक्त करती थी। उनकी विरह-वेदना यद्यपि उस परोक्ष-सत्ता के प्रति ही निवेदित है तथापि उसमे लौकिक-तीव्रता है। मीराँ भक्त अवश्य थी लेकिन तुलसी और सूर की तरह भगवान् की दास या सखा बनने वाली नही थी। उन्हे तो अपने प्रभु की प्रणयिनी बनकर रहना ही ज्यादा पसन्द था।

मीराँ के विरह-गीतो मे ऐसी करुणा है जो पत्थर के प्राणो को भी पिघला देती है। उनकी कविता अनुभूति की कविता है, हृदय की कविता है। वह जितनी ही सरल है उतनी ही मर्मस्पर्शी है। उनके प्रेम मे जो मर्मस्पर्शी वेदना है, हृदय मे जो विकलता है वह अन्यत्र कठिनाई से ही मिलेगी। वह कविता के रूप मे गाने वाली गायिका है, विरहिणी है, राधा है। राधा उनकी भक्ति का आध्यात्मिक आदर्श है। उनकी भक्ति मे प्रणय की सभी अनुभूतियाँ समा गई हैं। उनकी कविता कल्पना का

विलास नही । वह यथार्थ की अनुभूति से प्रतिध्वनित है । उसमे अनन्य प्रेमासक्ति है ।

मीरॉं के गीतो की भाषा राजस्थानी है । राजस्थानी भाषा वीर-काव्य की भाषा रही है । लेकिन मीरॉं की मधुर कोमल भावना ने उस भाषा को भी अपने अनुरूप बना लिया है । वह नारी थी, अत. नारी स्वभाव के अनुरूप उनकी कविता मे सरसता और सरलता का सागर लहराता हुआ दिखाई देता है । गुजरात मे जाकर रहने से उनके गीतो पर गुजराती का भी प्रभाव पडा है । मीरॉं का एक पद देखिये .

भज मन चरण कँवल अविनाशी ।
जे ताई दीसे धरणि गगन विच, ते ताईं सब उठि जासी ।
कहा भयो तीरथ व्रत कीन्हे, कहा लिये करवत कासी ।। १ ।।
इस देही का गरब न करना, माटी मे मिल जासी ।
यो ससार चहर की बाजी, साँझ पड्याँ उठ जासी ।। २ ।।
कहा भयो है भगवा पहरियाँ, घर तज भये सन्यासी ।
जोगी होय जुगत नहि जाणी, उलट जनम फिर आसी ।। ३ ।।
अरज करे अबला कर जोरे, श्याम तुम्हारी दासी ।
मीरॉं के प्रभु गिरधर नागर, काटो जम की फाँसी ।। ४ ।।

६—नरोत्तमदास

नरोत्तमदासजी का जन्म स० १६०२ मे सीतापुर जिले के बाडी नामक कस्बे मे हुआ था । इनके माता-पिता, जाति-पाँति और वश-परम्परा के सम्बन्ध मे कुछ विशेष मालूम नही हुआ है । इनके दो काव्य ग्रन्थ हैं—सुदामा चरित्र और ध्रुव-चरित्र । इनमे से ध्रुव-चरित्र अभी तक अप्राप्य बना हुआ है । फिर भी अकेला सुदामा-चरित्र ही इतना सुन्दर प्रबन्ध-काव्य है कि वह हिन्दी के अमूल्य ग्रन्थो मे गिना जा सकता है । इस ग्रन्थ मे श्रीकृष्ण और सुदामा की आदर्श मित्रता तथा सुदामा की दीन दशा का बडा ही सुन्दर चित्रण हुआ है ।

नरोत्तमदासजी की भाषा बडी परिमार्जित और प्रसाद-गुण-सम्पन्न है । उसमे बड़ी सरसता और सरलता है । कविता मे प्रवाह तो इतना

सुन्दर है कि एक भी शब्द निरर्थक प्रतीत नही होता और मन उस धारा मे बहे विना नही रहता। उनकी भाव-व्यञ्जना भी कमाल की है। सुदामा-चरित्र एक खण्ड-काव्य है। कृष्ण-सुदामा की मित्रता की कथा के आधार पर कवि ने प्रबन्ध-काव्य की ऐसी सुन्दर योजना की है कि कोई भी व्यक्ति भाव-धारा मे बहे विना नही रहता। अलकारो का प्रयोग बडा स्वाभाविक है। उसमे कविता के सौन्दर्य की वृद्धि हुई है। उन्होंने दोहा, कविता और सवैया मे ही इस ग्रन्थ की रचना की है लेकिन इन छन्दो पर उनका अधिकार भी आश्चर्यजनक है। उनके एक सवैये मे सुदामा की स्त्री द्वारा वर्णित, अपनी दीन दशा का चित्र देखिये

कोदो सवाँ जुरतो भरि पेट तो चाहति ना दधि दूध मठौती।
सीत व्यतीत भयो सिसियात ही हो हठती पै तुम्हे न हठौती ॥
जो जानती न हितू हरि सो तो मैं काहे को द्वारिका पेलि पठौति।
या घरते कबहूँ न गयो पिय टूटो तवो अरु फूटि कठौती ॥

७—रसखान

रसखान दिल्ली के पठान सरदार थे। वे शाही-परिवार के व्यक्तियो मे से थे, लेकिन कृष्ण-भक्ति का उनके ऊपर ऐसा रङ्ग चढा कि शाही-परिवार का वैभव-बिलास छोड कर स्वामी विट्ठलनाथ की शरण मे गये और उनके शिष्य बनकर कृष्ण-भक्ति मे तल्लीन हो गये। कहा जाता है कि वे एक बनिये के लडके पर आसक्त थे। पीछे से उनका यह प्रेम भगवान् श्रीकृष्ण के प्रेम मे बदल गया। कोई यह भी कहते हैं कि वे एक ऐसी स्त्री से प्रेम करते थे जो उनको नही चाहती थी। इसी कारण विरक्त होकर ब्रज आ गये थे। कुछ भी हो, इतना तो सत्य है कि वे एक रसिक व्यक्ति थे। उनकी कृतियो का रचना-काल स० १६४० से माना जाता है। उनके दो ग्रन्थ प्रमुख हैं—'सुजान-रसखान' और 'प्रेम-वाटिका'। प्रेम-वाटिका का रचना-काल स० १६७१ माना जाता है। रसखान ने मुसलमान होते हुए भी ब्रज-भाषा मे कृष्ण-भक्ति की जो माधुरी घोली है, वह अपूर्व है। उनकी भाषा बड़ी सरस, मधुर और प्रवाहपूर्ण है। अलकारो का प्रयोग भी बडा स्वाभाविक है। उनका

निम्नलिखित पद तो साधारण हिन्दी जानने वाले व्यक्ति के मुँह से भी सुनाई दे जायगा

मानुष हो तो वही रसखान, बसो ब्रज-गोकुल गाँव के ग्वारन ।
जो पसु हो तो कहा बस मेरो, चरो नित नन्द की धेनु मँझारन ।
पाहन हो तो वही गिरि को जो कियो हरि छत्र पुरन्दर धारन ।
जो खग हो तो बसेरो करो नित कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन ।।

प्रेम वाटिका मे दोहे हैं । उनका एक दोहा देखिये :

प्रेम फाँस सो फँसि मरे, सोई जिये सदाहि ।
प्रेम मरम जाने बिना, मरि कोउ जीवत नाहि ।।

८—रहीम

रहीम कवि का पूरा नाम है—अब्दुर्रहीम खानखाना । ये प्रसिद्ध मुगल-सरदार बैरामखाँ के पुत्र और अकबर के दरबारी कवि थे । इनका जन्म स० १६१० मे हुआ था । ये अरबी-फारसी के साथ-साथ सस्कृत-भाषा के भी बडे विद्वान् थे । ये हमेशा विद्वानो से घिरे रहते थे और दान-वीरता मे तो अपने समय के कर्ण ही कहे जाते थे । इतने उदार हृदय और दानी होने पर भी इनकी विनयशीलता कमाल की थी । इन्होने गङ्ग कवि को एक बार बत्तीस लाख रुपये दान मे दिये थे । समय के फेर से बादशाह जहाँगीर इन पर क्रुद्ध होगया और उसने इन्हे जेल मे डाल दिया । इनकी सारी सम्पत्ति भी जब्त करली गई । जब मुक्त हुए तो बडी गरीबी का जीवन बिताना पडा । लेकिन फिर भी लोग उनका पीछा नही छोडते थे । इन माँगने वालो से उन्हें अब कहना पडा .

ये रहीम दर दर फिरे, माँगि मधुकरी खाँहि ।
यारो यारी छोडिये, अब रहीम वे नाहिं ।।

रहीम का देहान्त स० १६८३ मे हुआ । इनके लिखे ग्रन्थो मे 'रहीम-सतसई', 'बरवै', 'नायिका-भेद', 'शृङ्गार-सोरठा', 'मदनाष्टक' और 'रासपचाध्यायी' बताये जाते हैं । भाषा पर रहीम का पूरा अधिकार था । उन्होंने ब्रज और अवधी दोनो भाषाओ मे ही काव्य-रचना की है । उनके दोहे साधारण जनता मे बडे लोकप्रिय हुए । उनमे रहीम के हृदय

होगा और मृत्यु सवत् १६८० मे। उनकी मृत्यु के सम्बन्ध मे यह दोहा प्रचलित है

सवत सोलह सौ असी, असी गङ्ग के तीर।
श्रावण श्यामा तीज शनि, तुलसी तज्यो शरीर॥

इसी प्रकार उनके जन्म के सम्बन्ध मे यह दोहा प्रचलित है .

पद्रह सौ चौवन विषै, कालिंदी के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी धर्‌यो शरीर॥

पता नही ये दोनो तिथियाँ कहाँ तक सत्य हैं।

उनके जन्म स्थान के विपय मे भी मत-भेद है। कोई सोरो को उनका जन्म-स्थान बताते हैं और कोई राजापुर को। कोई कहते हैं कि वे पैदा तो सोरो मे हुए थे लेकिन बाद मे राजापुर रहने चले गये थे। किन्तु इतना सत्य है कि उनका जन्म दरिद्र कुल मे हुआ था। अभुक्त मूल नक्षत्र मे जन्म होने के कारण माता-पिता ने उन्हे भाग्य के भरोसे छोड दिया था। द्वार-द्वार भटकते और माँगते खाते ही उनका बाल्यकाल बीता था। अपने बाल्यकाल के सम्बन्ध मे उन्होंने लिखा है

बारे ते ललात बिललात द्वार द्वार दीन,
जानत हो चारिफल चारिहि चनक को।

बाल्यावस्था मे उनका नाम तुलाराम था, लेकिन लोग रामबोला भी कहते थे। अनुमान है कि उनके गुरु का नाम 'नरहरिदास' होगा। कहा जाता है कि जब उनका विवाह हो गया तो वे अपनी स्त्री मे बहुत अधिक अनुरक्त रहने लगे। एक दिन जब वह बिना कहे-सुने ही अपने पिता के घर चली गई तो ये उससे मिलने के लिये रात मे ही चल पड़े और बाढ से उन्मत्त नदी को पार कर ससुराल पहुँच गये। इतनी रात गये इनको आया देखकर पत्नी ने भर्त्सना भरे शब्दो मे कहा .

अस्थि चर्ममय देह यह, तामहँ ऐसी प्रीति।
होती जो श्रीराम मह, होति न तो भव भीति।

बस, ये शब्द तुलसीदासजी को चुभ गये और वे विषय-वासना से विरक्त होकर साधु बन गये। तुलसीदासजी ने यद्यपि सारे देश की ही यात्रा की, तथापि उनका अधिक समय काशी और अयोध्या मे बीता।

काशी मे सवत् १६३१ मे उन्होने 'रामचरित मानस' की रचना प्रारम्भ की। उनके प्रबन्ध-काव्य मे रामचरितमानस, पार्वतीमङ्गल, जानकी-मङ्गल, बरवै-रामायण प्रमुख हैं, गीति-काव्य मे रामगीतावली, कृष्ण-गीतावली और विनय-पत्रिका तथा मुक्तक-काव्य मे दोहावली और सतसई प्रमुख हैं।

गोस्वामी तुलसीदासजी एक सच्चे भक्त और कवि थे। वे एक राष्ट्रीय महापुरुष और द्रष्टा थे। उनकी रचनाये भक्ति-भावना से तो ओत-प्रोत हैं ही, उनमे समाज, देश और विश्व के कल्याण की भावना भी कूट-कूट कर भरी हुई है। उन्होंने स्वान्त सुखाय लिखा था। उनका काव्य, काव्य-कला की दृष्टि से खरा होने के साथ साथ लोक-जीवन को भी ऊँचा उठाने वाला था। उनके रामचरित-मानस की अनेक चौपाइयाँ एवम् दोहे साधारण से साधारण व्यक्ति के मुँह से भी सुनने को मिल जायँगे। वह एक ऐसा नीति-काव्य है जो हमारे समाज को पिछली तीन-चार शताब्दियो से नैतिक-जीवन की दिशा दिखाता रहा है। आज रामचरित-मानस हमारा प्रमुख धर्म ग्रन्थ और राम का नाम हमारा तारक-मन्त्र बन गया है। इन सबके मूल मे तुलसीदास का पवित्र जीवन, भक्ति-भावना, कडी साधना और लोक कल्याण की जबरदस्त इच्छा थी। रामचरित-मानस के रूप मे उन्होंने आर्य-सस्कृति की ही प्रतिष्ठा की है। इसमे उन्होंने एक ऐसे आदर्श-समाज का चित्र खींचा है जो हमारी सस्कृति का सबसे सुन्दर और सबसे ऊँचा स्वरूप है।

परिवार के सदस्यो के पारस्परिक सम्बन्धो से लेकर राजा-प्रजा तक के सम्बन्धो का एक आदर्श-स्वरूप रामचरित-मानस मे तुलसीदासजी ने खीचा है। एक ओर समाज की बुराइयो को अपने नग्न-रूप मे प्रस्तुत कर दूसरी ओर उन्होंने उन्हें मिटाने की जबरदस्त प्रेरणा और बल भरने का भी प्रयत्न किया है। भारतीय सस्कृति के गायक, लोक-नायक और लोक-नीति के प्रतिष्ठाता के रूप मे उनकी ख्याति भारत मे ही नही, विश्व के साहित्यकारो मे अजर-अमर रहेगी।

हिन्दी-साहित्य मे वे बेजोड और बे-मिसाल हैं। यदि उनकी कोटि मे किसी को रखा जा सकता है तो सूरदास को। दोनो ही रस-सिद्ध

कवि और उच्च कोटि के भक्त हैं। दोनो ही सगुण साकार ब्रह्म के उपासक, गायक और कवि हैं। सूरदास कृष्ण काव्य के सर्व-श्रेष्ठ कवि हैं तो तुलसीदास राम-काव्य के। किसी भावुक कवि ने यमक के लोभ से ही 'सूर-सूर तुलसी ससी, उडगन केशवदास' कहकर सूरदास को सूर्य और तुलसी को चन्द्रमा कह दिया है, किन्तु वास्तव मे काव्य-जगत के सूर्य तुलसीदास ही हैं। सूर ने जीवन के प्रेम-पक्ष को ही देखा और कविता मे चित्रित किया, लेकिन तुलसीदास ने तो जीवन का एक-एक पक्ष अपनी प्रतिभा से जगमगा दिया है। सूरदास केवल प्रेम के, सौंदर्य के कवि हैं, किन्तु तुलसीदास सौंदर्य के साथ-साथ सत्य और शिव के कवि है। तुलसी का कवि-कौशल चरम सीमा पर पहुँचा हुआ दिखाई देता है। उन्होने राम-कथा के माध्यम से एक ऐसे जीवन का इतिहास लिख दिया है जो युगो तक मानव-समाज को आलोकित करता रहेगा।

तुलसीदास ने उस समय प्रचलित काव्य की तीनो शैलियो को अपनाया। प्रबन्ध-काव्य की शैली मे उन्होने रामचरित-मानस, बरवै-रामायण, जानकी-मङ्गल, पार्वती-मङ्गल आदि की रचना की। गीति-काव्य की शैली मे उन्होने विनय पत्रिका, रामगीतावली, कृष्णगीतावली आदि की रचना की तथा मुक्तक-काव्य की शैली मे कवितावली, दोहावली, वैराग्य-सन्दीपनी आदि की। इन तीनो शैलियो पर उनका जबरदस्त अधिकार उनकी उच्च-कोटि की प्रतिभा का परिचायक है। उन्होने सभी रसो के चित्रण मे सफलता प्राप्त की है। उनका प्रकृति वर्णन भी बडा सजीव और प्रेरक है। उन्होने यद्यपि अवधी भाषा मे रामचरितमानस की रचना की है, तथापि ब्रज-भाषा पर भी उनका उतना ही अधिकार है। इस प्रकार क्या—कला-पक्ष और क्या भाव-पक्ष—दोनो ही क्षेत्रो मे उनकी समान गति है। दोनो को उन्होने अपने पावन स्पर्श से जगमगा दिया है। उनका एक गीत देखिए :

हाथ मीजिबो हाथ रह्यो।
लगी न सग चित्रकूटहिं ते, ह्याँ कह जात बह्यो।
पति सुरपुर, सिय राम लखन बन, मुनि व्रत भरत लह्यो॥

हौं रहि घर मसान पावक ज्यो, चाहति मृतक दह्यो ।
मेरोहि हिय कठोर करिवै कहँ, विधि कँह कुलिप रह्यो ।।

५—मीरॉबाई

मीरॉबाई चोकडिया मेडता के राठौड दूदाजी के पुत्र रत्नसिह की पुत्री थी। इनका जन्म सवत् १५५५ माना जाता है। इनका विवाह मेवाड के वीर सिसोदिया राणा साँगा के पुत्र भोजराज के साथ हुआ था। लेकिन वे तो कृष्ण के रङ्ग मे रग गई थी। उन्हे ही अपना पति, प्रभु, सर्वस्व मान चुकी थी। अत कृष्ण-भक्ति मे ही तल्लीन रहती थी। राणा ने गृहस्थी के काम-काज मे प्रवृत्त करने के लिए वहुत प्रयत्न किया, कष्ट भी दिया लेकिन सब निष्फल। राणा के भेजे हुए साँप मीराँ के गले मे हार वन गये और जहर का प्याला अमृत। कुछ समय वाद जव राणा की मृत्यु हो गई तो रहा सहा वन्धन भी समाप्त हो गया। वे मुक्त रूप से भक्ति, वैराग्य और ज्ञान की त्रिवेणी मे स्नान करने लगी। उस युग के सभी महान् भक्तो और सन्तो के सम्पर्क मे वे आई। तुलसीदासजी से भी वे मिली और कहा जाता है कि भक्त रैदास तो उनके गुरु ही थे। उन्होने स्वय भी अपने एक पद मे लिखा है

'गुरु मिलिया रैदासजी दीन्ही ज्ञान की गुटकी।'

कहते हैं कि उन्होने अपनी पारिवारिक समस्या तुलसीदासजी को एक पत्र द्वारा लिख भेजी थी। तुलसीदासजी ने उसके उत्तर मे उनको लिखा था .

जाके प्रिय न राम-वैदेही।
तजिये ताहि कोटि वैरी सम, यद्यपि परम सनेही ।।
तज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषण वन्धु, भरत महतारी।
वलि गुरु तज्यो, कन्त व्रज बनितनि भये मुद मगलकारी ।।
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लो।
अञ्जन कहा आँखि जेहि फूटे, बहुतक कहौं कहाँ लो ।।
तुलसी सो सव भाँति परमहित, पूज्य प्राण ते प्यारो।
जासो होय सनेह राम-पद, एतो मतो हमारो ।।

की पवित्रता, गहरा अनुभव और नैतिक मूल्य समाये हुए है। रहीम के कुछ दोहे देखिये

रहिमन वे नर मर चुके जे कहुँ माँगन जाँहि।
उनते पहले वे मुए जिन मुख निकसत नाँहि ॥
सर सूखे पछी उड़े औरे सर न समाँहि।
दीन मीन दिन पख के, कहु रहीम कहँ जाँहि ॥
रहिमन निज मन की व्यथा मन ही राखो गोय।
सुनि इठलैहै लोग सब बाँटि न लै है कोय ॥

६—केशवदास

महाकवि केशवदास का जन्म स० १६१२ मे ओरछा के पास किसी ग्राम मे हुआ था। वे सनाढ्य जाति के विद्वान् पण्डित काशीनाथ के सुपुत्र थे। काशीनाथजी सस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे और उन्होने 'शीघ्र-बोव' की रचना की थी। उनके कुल के सभी लोग सस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। अत हिन्दी बोलना भी उनके वश मे तुच्छ बात मानी जाती थी

भाषा बोलि न जानही, जिनके कुल के दास ॥
तिन भाषा कविता करी, जडमति केशवदास।

केशवदास ओरछा (बुन्देल-खण्ड) निवासी थे। मधुकर शाह के पुत्र दूलहराय के भाई राजा इन्द्रजीतसिंह के वे आश्रित राज-कवि थे। राजा इन्द्रजीतसिंह ने इनका वडा मान-सम्मान किया था। इन्हे उनसे २२ ग्राम जागीर मे मिले थे। उसकी समृद्धि की झलक इस छन्द मे दिखाई देती है :

भूतल को इन्द्र इन्द्रजीत राजै जुग जुग,
केशवदास जाके राज राज सो करत है।

केशवदास राजा इन्द्रजीत सिंह के तो राज-कवि थे ही, वीरसिंह देव, सम्राट् जहाँगीर और बीरबल के भी कृपापात्र थे। वीरसिंह की प्रशसा मे उन्होने 'वीरसिंहदेव-चरित' तथा जहांगीर की प्रशसा में 'जहागीर-जस-चन्द्रिका' की रचना की थी। कहते हैं कि इन्हे पुरस्कार

के रूप मे अपने आश्रयदाताओ से जितना रुपया मिला था, उतना उस समय के किसी भी कवि को नही मिल पाया था। कहा जाता है कि उन्ही के प्रयत्न से बीरवल ने अकबर द्वारा इन्द्रजीतसिंह पर किये हुए एक करोड रुपये के जुर्माने को माफ करवा दिया था। बीरवल ने भी इन्हें विपुल धनराशि दी थी। इन्द्रजीतसिंह तो इन्हे अपना गुरु मानता था। उसी के लिए इन्होने कविप्रिया लिखी थी। ये वडे रसिक व्यक्ति थे। बुढापे पर पश्चाताप करते हुए इन्होंने लिखा है :

केशव केसनि अस करी, जस अरिहूँ न कराहि।
चद्र-वदनि मृग-लोचनी, वावा कहि कहि जाहि ।।

केशवदासजी के लिखे हुए ग्रन्थो मे रतन-वावनी, रसिक-प्रिया, कवि-प्रिया, राम-चन्द्रिका, वीरसिंह-देव-चरित, विज्ञान-गीता और जहाँगीर-जस-चन्द्रिका प्रमुख है। रतन-बावनी प्रारम्भिक रचना प्रतीत होती है। रसिक-प्रिया और कवि-प्रिया काव्य-शास्त्र की पुस्तकें है जो रायप्रवीन नामक वेश्या को काव्य की शिक्षा देने के लिये उन्होंने लिखी थी। इन ग्रन्थो पर वाल्मीकि रामायण, प्रसन्नराघव, हनुमान्नाटक आदि का प्रभाव स्पष्टत दिखाई देता है। रामचन्द्रिका मे रामचरित-मानस की भाँति रामचन्द्र के जीवन की कथा लिखी गई है। काव्य-काल और पाण्डित्य की दृष्टि से केशवदास वेजोड हैं। उनके सवाद सचमुच बड़े सुन्दर वन पड़े हैं। लेकिन उनमे हृदय-तत्त्व की प्रधानता नही है। बुद्धितत्त्व की अधिकता से उनके काव्य मे अच्छी सरसता नही आई है।

उनकी भाषा क्लिष्ट और सस्कृत-गर्भित है। कही-कही तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे पूरा का पूरा वाक्याश सस्कृत का ही आ गया है। उनकी भाषा मे सस्कृत के तत्सम शब्दो का बाहुल्य है। उन्होने सयुक्ताक्षरो का भी प्रयोग किया है और लघु को दीर्घ तथा दीर्घ को लघु करके शब्दो को तोडा-मरोडा भी है। किन्तु कुल मिलाकर उनकी भाषा साहित्यिक, रोचक और माधुर्यपूर्ण है। उनके कथोपकथन तो सचमुच वडे सुन्दर हैं। वे नाटकीय शैली मे लिखे गये हैं। जहाँ तक छन्द और अलंकारो का सम्बन्ध है, केशवदासजी का उन पर असाधारण अधिकार है।

रामचन्द्रिका मे तो उन्होंने छन्दो को बार-बार बदला है, इसी प्रकार अलङ्कारो का भी प्रयोग उन्होंने बहुत किया है इससे उनकी कविता अनेक स्थानो पर अलङ्कार और छन्दो के बोझ से दबती हुई प्रतीत होती है। यह देखकर कुछ लोग तो कहते हैं कि रामचन्द्रिका छन्दो का अजायबघर और अलङ्कारो की प्रदर्शिनी है।

इसमे कोई सदेह नही कि केशवदासजी कला-पक्ष मे आचार्य है किन्तु उनकी कविता मे प्रकृति-चित्रण तथा मानव-जीवन के अध्ययन का अभाव अवश्य खटकता है। यदि बुद्धि-तत्त्व के साथ हृदय-तत्त्व का भी मेल बैठता तो उनकी समता करने वाला कठिनाई से ही मिलता। उनकी कविता का एक उदाहरण देखिये .

कुन्तल ललित नील भृकुटी, धनुष, नैन,
कुमुद कटाच्छ बान सबल सदाई है।
सुग्रीव सहित तार अङ्गदादि भूपनन,
मध्यदेश केशरी सुजग मति भाई है।
विग्रहानुकूल सब लच्छ लच्छ ऋच्छ बल,
ऋच्छराज-मुखी मुख केसोदास गाई है।
रामचन्दजू की चमूराज श्री विभीषण की,
रावण की मीचु दर कूच चलि आई है॥

१०—बिहारीलाल

महाकवि बिहारीलाल का जन्म ग्वालियर के पास बसुवा-गोविन्दपुर मे एक ब्राह्मण परिवार मे हुआ था। ये चौबे ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम केशोराय था। इनकी बाल्यावस्था बुन्देलखण्ड मे और यौवन मथुरा मे, जहाँ कि इनकी ससुराल थी, बीता। इन्होंने अपने सम्बन्ध मे लिखा है :

प्रकट भये द्विजराज कुल, सुबस भये ब्रज आय।
मेरो हरो कलेस सब, केसो केसोराय॥
जन्म ग्वालियर जानिये, खण्ड बुन्देले बाल।
तरुनाई आई सुखद, मथुरा बसि ससुराल॥

बिहारी की कर्मभूमि जयपुर थी। वे जयपुर के राजा जयसिंह के

राज-कवि थे । ऐसा प्रतीत होता है कि युवावस्था के वाद ही वे जयपुर आकर रहने लग गये होगे । कहा जाता है कि उन्हे एक-एक दोहे पर एक-एक स्वर्ण-मुद्रा मिलती थी । एक बार राजा जयसिह अपनी नव परिणीता रानी के अनुराग मे राजकाज भूल-सा गया और अन्त पुर मे ही रहने लगा । तब बिहारीलाल ने ही यह दोहा उसके पास पहुँचाया था .

नहि पराग, नहि मधुर मधु, नहि विकास यहि काल ।
अली कली ही सो बँध्यो, आगे कवन हवाल ।।

उनकी इस उक्ति ने चमत्कार कर दिखाया । राजा को जैसे इस दोहे ने झकझोर कर जगा दिया । वह अन्त:पुर से बाहर आया और पूर्ववत् कार्य करने लग गया ।

बिहारी के केवल सात सौ दोहो का एक सग्रह विहारी-सतसई के नाम से मिलता है । इन सात सौ दोहो ने ही उन्हे सदा के लिए हिन्दी साहित्य मे अमर कर दिया । विहारी-सतसई के सम्वन्ध मे यह दोहा वडा प्रसिद्ध है

सतसैया के दोहरे, ज्यो नाविक के तीर ।
देखन मे छोटे लगे, घाव करे गम्भीर ।।

बिहारी रीतिकाल के कवि थे । उस समय कविता जीवन के एक पक्ष मे सिमिट कर समा जाती थी । पुरुष-स्त्री का प्रेम, जिसे काव्य की भाषा मे शृङ्गार कहा जाता है, बिहारी की कविता का केन्द्र था । बिहारी की कविता मे एक ऐसा ससार है जहाँ पुरुष-स्त्री का काम-सम्वन्ध ही सर्वस्व है । शृङ्गार का अर्थ है—वासना-विलासपूर्ण काम । विहारी ने नारी रूप के अनेक दर्शन किये और अपनी लेखनी से उसके चित्र भी खीचे । उन्होने रस और अलङ्कार की अभिव्यजना की दृष्टि से नारी के शरीर को नख से शिख तक देखा था और उसमे कुछ ऐसी सुन्दरता की कल्पना की कि चित्त चमत्कृत हुए बिना नही रहता । उनकी कविता की नारी सहज सुन्दरी है । उसके पाँव की एडी की लाली देखकर चतुर नायन तक धोखा खा जाती है और उस लाली को ही महावर समझ बैठती है .

पाँय महावर देन को, नाइन वैठी आय ।
फिरि फिरि जान महावरी, एडी मीडति जाय ।।

विहारीलाल सुन्दरता और सुकुमारता को व्यजना करने मे उर्दू के कवियो से टक्कर लेते हैं। उन्होने स्वाभाविकता से दूर यथार्थता को ही लाक्षणिक और अलकारिक रूप देने का प्रयत्न किया है। सयोग-शृङ्गार की भाँति विरह-वर्णन मे भी विहारी ने कमाल किया है। उन्होंने अभिव्यक्तियो मे, वचनो मे, चेष्टाओ मे, क्रिया-व्यापारो में, अनुभूतियो मे—सव कही प्रेम के सयोग-वियोग दोनो पक्षो का चित्रण किया है। विहारी की प्रतिभा काल्पनिक सौन्दर्य की सृष्टि करने मे और शव्द-लालित्य के द्वारा काव्य-कौशल का पुरस्कार पाने मे ही व्यय हुई। फलत' वे उच्च-कोटि का साहित्य तो नहीं दे सके, परन्तु बौद्धिक विकास की प्रचुर सामग्री प्रस्तुत अवश्य कर गये ।

विहारी के लोक-नीति सम्वन्वी दोहे सचमुच बडे सुन्दर है। वे यद्यपि कवीर को तो नही पहुँच पाये हैं, तथापि रहीम और वृन्द के दोहो से निस्सन्देह श्रेष्ठ है। उन्होने अपने दोहो मे लोक-अनुभव को काव्योक्ति मे ढाल दिया है। अलकार विहारी का सर्वस्व है। उसी के बल पर उन्होंने अपनी कविता-कामिनी को इतना अलकृत किया है। उनके दोहे चमत्कार मे, वाग्वैचित्र्य मे, अर्थवैचित्र्य मे, शव्द-शिल्प मे उच्च-कोटि के वन पड़े हैं। दोहे के छोटे से आकार को देखकर यदि यह कहा जाय कि वे गागर मे सागर भरने वाले कवि है तो अतिशयोक्ति नही होगी। भाव-सौन्दर्य और भापा-सौन्दर्य दोनो मे ही रीति-युग का कोई कवि उनकी समता नही कर सकता। उनके कुछ दोहे देखिये

दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति ।
परति गाँठ दुरजन हिये, दई नई यह रीति ।।
भूषन भार समारि है, क्यो इहि तन सुकुमार ।
सूधे पाँव न धरि परे, सोभा ही के भार ।।
हो ही वौरी विरह बस, कै वौरो सब गाँवु ।
कहा जानिए कहत हैं, ससिहि सीतकर नाँवु ।।

११—भूषण

कवि भूषण का जन्म कानपुर जिले के तिकवापुर ग्राम मे स० १६९२ मे हुआ था। उनके पिता का नाम था रत्नाकर त्रिपाठी। भूषण के प्रथम आश्रयदाता चित्रकूट के राजा रुद्र थे। उन्होंने इनको 'भूषण' की उपाधि से विभूषित किया था। यह उपाधि इतनी प्रचलित होगई कि आज उनके असली नाम को मालूम करना ही कठिन हो रहा है। अब तक भी यह मालूम नही हो सका है कि उनका वास्तविक नाम क्या था। कहा जाता है कि भाभी के व्यग से व्यथित होकर ये घर छोड कर चले गये थे। एक दिन दाल मे नमक ज्यादा हो जाने पर भूषणजी ने भाभी से कुछ कहा। इस पर वे बोली—'बडा कमाकर रख देते हो जो ऐसी बात कहते हो।' भूषणजी को यह बात चुभ गई और वे घर से चल दिये। यह भी कहा जाता है कि जब उन्होंने विपुल सम्पत्ति और प्रसिद्धि प्राप्त कर ली तो भाभी के पास बहुत-सा नमक भिजवाया था।

यह भी कहा जाता है कि वे अपने भाई चिन्तामणि के साथ बादशाह औरगजेब के दरबार मे जाया करते थे। एक दिन उसने कवियो से कहा—'आप लोग मेरी प्रशसा ही करते है। क्या मेरे अन्दर कोई बुराई नही है? यदि बुराई है तो प्रशसा ही करते रहना चापलूसी है।' इस पर भूषणजी ने उसे कवित्त सुनाये जिसमे से एक के अन्त मे था—'सौ-सौ चूहे मार के बिलारी चली हज के।' उन्होने औरगजेब का सच्चा चित्र खीच दिया। औरगजेब को यह सब कैसे सहन होता? वह मारने उठा। लेकिन कोई गिरफ्तार करे, इसके पूर्व ही वे देहली से छूमन्तर हो गये।

जब शिवाजी से उनकी भेंट पहली बार हुई तो उन्होंने उन्हे यह कवित्त सुनाया

इन्द्र जिमि जृभ पर, बाढव सुअम्ब पर,
रावण सदम्भ पर रघुकुल राज है।
पौन वारिवाह पर, शभु रतिनाह पर,
ज्यो सहस्रबाहु पर राम द्विजराज है।
दावा द्रुम दण्ड पर, चीता मृग झुण्ड पर,

भूषण वितुण्ड पर, जैसे मृगराज है।
तेज तम अस पर, कान्ह जिमि कस पर,
त्यो मलेच्छ वस पर, शेर शिवराज है।

इस कवित्त को शिवाजी ने ५२ बार सुना था और ५२ गाँव जागीर मे दिये थे। पन्ना-नरेश छत्रसाल ने तो इनका इतना आदर किया कि इनकी पालकी मे कन्धा तक दिया। इसी पर उन्होने कहा था—'शिवा को सराहूँ कि सराहूँ छत्रसाल को।' कुमाऊँ के राजा ने इन्हे एक लाख रुपया देना चाहा था लेकिन इन्होने स्वीकार नही किया। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ सिवराज-भूषण का रचना-काल स० १७३० विक्रमी है। कहा जाता है कि चिन्तामणि, नीलकण्ठ और मतिराम इनके भाई थे। ये तीनो उस समय के अच्छे कवियो मे से थे।

भूषण राष्ट्रीय कवि थे। जब अन्य कवि लोग राज-दरबार मे कविता कामिनि को नुपुर पहिनाकर नचा रहे थे और उसके रूप से राजा-महाराजाओ को प्रसन्न करने मे लगे हुए थे, तब भूषण अपने सिंहनाद से सोए हुए देश को जगा रहे थे—उसकी धमनियो मे नवीन रक्त का सचार कर रहे थे। यद्यपि वे रीतिकाल मे पैदा हुए थे और उसी वातावरण मे बडे हुए थे तथापि वे एक वीर कवि थे। उनकी कविता रीति-कालीन अति-शृङ्गारवादी कविता की प्रतिक्रिया थी। उस समय एक तो वीर रस की कविता लिखी ही नही जाती थी और यदि लिखी भी जाती थी तो आश्रयदाता के पराक्रम का अति-रञ्जित वर्णन ही उसमे होता था। ये आश्रयदाता सच्चे अर्थो मे वीर नही होते थे। अत जनता को उनके साथ पूरी सहानुभूति नही होती थी। भूषण के आश्रयदाता हिन्दू-सभ्यता, सस्कृति और धर्म के सरक्षक महाराजा शिवाजी थे। अत जनता की उनके प्रति पूरी-पूरी सहानुभूति थी और जब भूषण उनके सम्बन्ध मे कहते थे .

वेद राखे विदित, पुरान राखे सारयुत,
राम नाम राख्यो अति रसना सुघर मे।
हिन्दुन की चोटी, रोटी राखी है सिपाहिन की,
कांधे मे जनेऊ राख्यो, माला राखी गर मे॥

तो लोगो का दिल बाँसो उछलने लग जाता था। राम के गुणगान से तुलसी ने लोगो मे उनके प्रति जो श्रद्धा-भक्ति पैदा कर दी थी लगभग वैसी ही श्रद्धा-भावना भूषण ने शिवाजी के प्रति पैदा कर दी थी। छत्रसाल की प्रशसा भी उन्होने हिन्दूधर्म-रक्षक होने के कारण ही की थी। यही कारण था कि वे हिन्दू-जाति के प्रतिनिधि राष्ट्रीय-कवि बन गये। उनकी कविता मे ऐतिहासिक धर्म का समावेश है। उन्होंने तत्कालीन भारत की जातीय भावनाओ को ही प्रतिविम्बित किया है।

भूषण का प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ 'शिवराज-भूषण' है। रीति-कालीन काव्य की भाँति यह भी यद्यपि अलकारो का ही लक्षण-ग्रन्थ है तथापि रीतिकालीन-काव्य मे और भूषण की कविता मे यही अन्तर है कि उन्होंने कविता को शृङ्गार की सुरा मे न वहाकर वीर-रस की सुधा मे नहलाया है। उनके दूसरे ग्रन्थ है—'शिवा-बावनी' और 'छत्रसाल-शतक'। शिवा-बावनी मे शिवाजी की प्रशसा के ५२ कवित्त हैं और छत्रसाल शतक मे छत्रसाल की प्रशसा के कवित्त।

भूषण की कविता वीरोल्लास, ओज और दर्प से परिपूर्ण है। उन्होंने औरङ्गजेब की निन्दा और शिवाजी की प्रशसा इसलिये नही की है कि औरङ्गजेब मुसलमान था बल्कि इसलिये की कि वह हिन्दू-धर्म, सस्कृति और सभ्यता का विरोधी था। इस प्रकार जातीय या राष्ट्रीय भावना ही भूषण की कविता की प्रेरणा का स्रोत है। उनके वर्ण्य-विषय का जैसा भाव और वातावरण है वैसी ही ओजस्विनी उनकी पदावलि भी है। उनकी कविता मे पौरुषवृत्ति की प्रधानता है जो कि ओज गुण की सृष्टि करती है। उनकी भाषा मे पौरुष है। उन्होने अरवी-फारसी के भी बहुत से शब्दो का प्रयोग किया है। देखिये, यमक-अलङ्कार का सहारा लेकर उन्होने औरङ्गजेब के रनवास की दयनीय दशा, रानियो के मलिनमुख एव पलायन का कितना सुन्दर चित्र खीचा है

ऊँचे घोर मन्दिर के अन्दर रहनवारी,
ऊँचे घोर मन्दिर के अन्दर रहाती है।
कन्द मूल भोग करैं, कन्द मूल भोग करे,
तीन वेर खाती ते वे तीन वेर खाती है॥

भूषण शिथिल अंग, भूषण शिथिल अंग,
विजन डुलाती ते वे विजन डुलाती है।
भूषण भनत शिवराज वीर तेरे त्रास,
नगन जडाती ते वे नगन जडाती हैं।।

१२—मतिराम

मतिराम का जन्म स० १६६० के आसपास कानपुर जिले के तिकवापुर ग्राम मे हुआ था। कहा जाता है कि वे भूषण और चिन्तामणि के भाई थे। वे मुगल-बादशाहो के दरबारी-कवि थे। सम्राट् जहाँगीर के कहने से उन्होंने फूल-मजरी नामक पुस्तक लिखी थी। इसमें ६० दोहे थे। यही सम्भवत. उनकी पहली पुस्तक थी। उनका दूसरा ग्रन्थ 'रसराज' है। इसमे शृङ्गार रस और नायिका-भेद का वर्णन है। बून्दी के महाराज भावसिह की आज्ञानुसार उन्होंने 'छन्दसार-पिंगल' नामक ग्रन्थ लिखा था। 'ललित-ललाम' उनका चौथा ग्रन्थ है जिसमे अत्यन्त सुन्दर ढंग से अलङ्कारो का वर्णन किया गया है। बिहारी सतसई की भाँति उन्होंने भी ७०० दोहो की एक सतसई की रचना की है। इनके अतिरिक्त साहित्य-सार, अलकार पचाशिका एव लक्षण-शृङ्गार भी इनकी प्रसिद्ध रचनाओ मे से हैं।

मतिरामजी का भाषा पर पूर्ण अधिकार था। यद्यपि उन्होंने रीति-काव्य की ही रचना की है तथापि उसके उदाहरण और लक्षण के बहाने उन्होंने बडी सरस और भावपूर्ण रचनाएँ की हैं। उनकी कविताओ मे आडम्बर या बनावट नही है। इसीलिये उन्हे रीतिकाल के श्रेष्ठ कवियो मे गिना जाता है। क्या शब्द माधुर्य और क्या भाषा सौष्ठव, क्या व्यजना और क्या सरसता सभी दृष्टियो से उनकी कविता बडी सुन्दर है। उनकी शृङ्गार रस की कविताएँ तो सचमुच बहुत सुन्दर बन पडी हैं। उनके जैसी लालित्य और व्यजना मुश्किल से ही दूसरे कवियो मे मिलेगी। उनकी भाषा सरस, स्वाभाविक और शब्दाडम्बर-विहीन है। उनकी कविता का एक उदाहरण देखिये .

आपने हाथ ते देत महावर, आपहि वार सिंगारत नीके ।
आपनही पहिरावंत आनि के, वार समारि के मोलसिरी के ।।
हौं सखि लाजन जात मरी, मतिराम सुभाव कहा कहौं पी कै ।
लोग मिले घरू की अबही, है ये चेरे भये दुलही कै ।

इनके इस दोहे मे अलङ्कार की छटा भी देखिये —

पगी प्रेम नन्दलाल के भरन आयु जल जाइ ।
धरी धरी घर के तरे वरनि देत ढरकाइ ।

१३—देव

महाकवि देव या देवदत्त कश्यप गोत्रीय कान्यकुब्ज वश मे सवत् १७६० मे पैदा हुए थे । इनका जन्म-स्थान उत्तर-प्रदेश के इटावा जिले मे हुआ था । इन्होने इस सम्वन्ध मे स्वय एक स्थान पर लिखा है —

द्यौसरिया कवि देव को नगर इटायो वास ।
जीवन नवल सुवास रस, कीन्हो भाव विलास ।।
शुभ सहस्र से छयालीस चढत सोराही वर्ष ।
कढी देवमुख देवता, भाव विलास सहर्ष ।।

महाकवि देव के वशज अब भी इटावा-मैनपुरी आदि के आसपास रहते हैं । देव के प्रारम्भिक काव्यो मे 'भावविलास' और 'अष्टयाम' प्रमुख है । कहा जाता है कि इन्होने ये रचनाये आजमशाह को सुनाई थीं । दिल्ली के बादशाह आजमशाह के पास कुछ दिन रह कर ये दादरी के राजा सीताराम के भतीजे भवानीदत्त वैश्य के पास रहे । इनके तीसरे आश्रयदाता फफूँद के कुशलसिंह थे । इसके बाद इनकी भेंट राजा भोगीलाल से हुई । 'रसविलास' इन्होने राजा भोगीलाल को ही समर्पित किया । जीवन के अन्तिम वर्षो मे ये कुसुमपुरा जाकर रहने लग गये थे । ये उच्च-कोटि के रस-सिद्ध कवि थे ।

कहा जाता है कि देव ने ७२ या ५२ ग्रन्थ लिखे । किन्तु आजकल तो इनके १८ ग्रन्थ ही उपलब्ध हैं । इन ग्रन्थो मे 'भावविलास', 'अष्टयाम', 'भवानीविलास', 'रसविलास', 'वैराग्यशतक', 'शब्दरसायन', 'सुखसागर', 'तरङ्ग', 'देवमाया', 'प्रपच-नाटक', 'प्रेम-चन्द्रिका', 'पावस--

विलास', 'नीतिशतक' आदि प्रमुख है। रीतिकाल के कवियो मे सबसे अधिक रचनायें देव की ही है। उस काल के कवियो से यह आशा तो करना व्यर्थ है कि वे जीवन के सभी विषयो पर कविता लिखते थे, लेकिन यदि इस दृष्टि से देखा जाय तो इस समय के अन्य कवियो की अपेक्षा देव मे ही भाव के क्षेत्र का अधिक विस्तार दिखाई देता है। अपने यौवन-काल मे उन्होने शृङ्गार-रस की रचनायें लिखी, तो प्रौढा-वस्था मे ज्ञान और वेदान्त की।

वस्तुत देव प्रेम के कवि थे। फिर भी उन्होने जिस वस्तु को अपनी पैनी दृष्टि से देखा, जिस विषय को स्पर्श किया उसी का इतना सुन्दर चित्रण किया कि देखते ही बनता है। बिहारी के वर्णन मे नाजुक खयाली है और उसके कारण उन्होंने अत्युक्ति का सहारा लेकर जो कुछ कहा है उसमे बहुत स्थानो पर बनावटीपन दिखाई देता है, लेकिन देव की रसज्ञता से यह बनावटीपन कोसो दूर है। उनकी रसज्ञता आलोचना से परे है। भाव के साथ-साथ भाषा का समन्वय उनके इस कवित्त मे देखिये—

फलि फलि फूलि फूलि फेलि फेलि झुकि झुकि,
झपकि झपकि आई कुजें चहुँ कोदते।
हिलमिल हेलिन को केलिन करन गई,
वेलिन विलोकि वधू ब्रज की विनोद तें॥
नन्दजी की पौढि पर ठाडे है रसिक देव,
मोहनजू मोहि लीनि मोहनी वे मोद तें।
गायन सुनत भूली साथन के फूल गिरे,
हाथन के हाथन ते गोदन के गोदन ते॥

१४—सेनापति

सेनापति अनूपशहर (उत्तर-प्रदेश) के कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम गङ्गाधर था। इन्होने हीरामणि दीक्षित से दीक्षा ली थी। इन्होने अपने सम्बन्ध मे लिखा है—

दीक्षित परशुराम दादा हैं विदित नाम,
जिन कीने यज्ञ जाकी विपुल बडाई है।

गगाधर पिता गगाधर के समान जाके,
गगाधर बसति अनूप जिन पाइ है ॥
महा जानमनि विद्यादान हूँ मैं चिन्तामनि,
हीरामनि दीक्षित तें पाई पण्डिताई है ।
सेनापति सोई सीतापति के प्रसाद जाकी,
सब कवि कान दै सुनत कविताई है ॥

सेनापति का जन्म सवत् १६४६ के आसपास हुआ था । वे किसी राजा महाराजा के आश्रित नही थे । अन्तिम समय मे वे वृन्दावन जाकर रहने लग गये थे । सवत् १७०६ के बाद उनकी मृत्यु हो गई ।

सेनापति की कविता भक्ति और रीति का सगम है । वे एक भावुक कवि थे । अत उनकी कविता भावमयी और हृदयहारिणी है । उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी, उन्होने जिस मनोयोग से ऋतु-वर्णन किया है और शृङ्गार के चटकीले चित्र खीचे हैं, उसी मनोयोग से भक्ति की रस धारा भी बहायी है । वे शब्द-शिल्प के साथ-साथ भाव-शिल्प मे भी निराले हैं । शृङ्गार मे उनकी आसक्ति अधिक थी । बिहारी ने यदि शृङ्गार के सयोग-पक्ष का चित्र खीचने मे कुशलता दिखाई है तो सेनापति वियोग-पक्ष की अभिव्यञ्जना करने मे बाजी मार ले गए है । सेनापति की एक कविता मे विरहणी की मनोदशा का वर्णन देखिये —

नैना नीर बरसत, देखबे को तरसत,
लागे काम सरसत, पीर उर अति की ।
पाये न सदेसे, ताते अधिक अन्देसे बडे,
सोचे सुकुमारि मे न काहे मन गति की ।
नाहि समै काहि आनि, औचक ही चीठी दीनी,
देखत ही सेनापति पाई प्रीनि रति की ।
माथे ते चटाई, दोउ दृगन लगाई चूमि,
छाती लपटायी, राखी पाँति प्रानपति की ॥

१५—घनानन्द

घनानन्दजी का जन्म सवत् १७४६ मे हुआ था । वे कायस्थ जाति के

थे और दिल्ली-सम्राट् मुहम्मदशाह के मीर मु शी थे। कहा जाता है कि कुछ विरोधियो ने इनके विरुद्ध सुलतान के कान भर दिये। उन्होंने कहा कि ये अच्छा गाते हैं। सुलतान ने इन्हे गाने के लिये कहा पर ये तैयार न हुए। तब इन लोगो ने कहा—'ये तो केवल अपनी प्रेयसि सुजान (दरवार की वैश्या) के ही सामने गा सकते हैं।' सुजान को बुलाया गया और उसके कहने से घनानन्दजी ने एक ऐसा गाना सुनाया कि सुल्तान मुग्ध हो गया। लेकिन घनानन्दजी ने गाना गाया था, वादशाह की ओर पीठ करके। अतः वह रुष्ट हुआ और इन्हे निष्कासन दे दिया। नगर छोडते समय इन्होंने सुजान से साथ चलने के लिए कहा लेकिन उसने इन्कार कर दिया। इस पर इन्हे बड़ा आघात हुआ और तभी से वृन्दावन जाकर कृष्ण-भक्ति के रग मे रग गये। इनकी अधिकाश कविताएँ सुजान के प्रति निवेदित हैं।

वृन्दावन मे जब नादिरशाह के सिपाही लूटमार कर रहे थे तब कुछ लुटेरो ने इन्हे भी घेर लिया और 'जर-जर' (धन-धन) पुकारने लगे। घनानन्द ने 'रज-रज' करते हुए तीन मुट्ठी धूल उनके ऊपर फेंक दी। सिपाहियो ने इनके हाथ काट लिए।

घनानन्द रीतिकाल के कवि थे, किन्तु युग की परम्परा के अनुसार लक्षरा-ग्रन्थ लिखने के स्थान पर उन्होने अपने हृदय की प्रेमानुभूति को ही पूरी मार्मिकता के साथ चित्रित किया। वे चमत्कारवादी नही, हृदय वादी कवि थे। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है अपनी प्रेमिका की प्रेम पीडा से आहत होकर ही वे वैष्णव बने थे। अत उन्हें पूरी तरह भक्त तो नही कह सकते, प्रेमोन्मत्त कवि ही कह सकते हैं। प्रेम का अर्थ विकृत वासना-विलास नही है। उन्होने उस प्रेम का वर्णन किया है जो हृदय की प्राकृत वृत्ति है। सयोग और वियोग दोनो पक्षो की अभिव्यञ्जना उनकी कविता मे सहज अनुभूति के रूप मे मिलती है।

घनानन्द की काव्य-कृतियाँ इस प्रकार हैं—'सुजान-सागर', 'घनानन्दकवित्त', 'सुजान-राग-माला', 'वियोग-वेली', 'प्रीति-प्रवाह', 'प्रेम-पत्रिका', 'नेह-सागर' और 'इश्क-लता'। प्रेम की पीड़ा से व्यथित हृदय की एक झलक देखिये—

मन जैसे कछू तुम्हे चाहत है, सुबखानिये कैसे सुजान ही हौ ।
इन प्राननि एक सदा गति रावरे, बावरे लो लगियै नित लौ ।।
बुधि औ सुधि नैननि बैननि मे, करि बास निरन्तर अन्तर गौ ।
उधरो जग छाय रहे घन आनन्द, चातिक त्यो तकिये अब तौ ।।

१६—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म स० १९०७ मे काशी के एक प्रसिद्ध सेठ परिवार मे हुआ था । इतिहास प्रसिद्ध सेठ अमीचन्द उनके पूर्वज थे । भारतेन्दु के पिता का नाम गोपालचन्द था । गोपालचन्दजी ब्रज-भाषा मे कविता करते थे । अत घर का वातावरण काव्यकला के लिये बडा ही अनुकूल था । लेकिन दुर्भाग्य से उनकी माता की मृत्यु बाल्या-वस्था मे ही हो गई और कुछ समय बाद पिता भी चल बसे । बाल्या-वस्था से ही वे बडे अध्ययनशील थे । हिन्दी, अग्रेजी के साथ-साथ वे सस्कृत, उर्दू, गुजराती, मराठी और वङ्गला भाषा भी जानते थे । उन्होने कई स्कूल, क्लब, सभा, वाचनालय तथा इसी प्रकार की सस्थाओ की स्थापना की और अनेक पत्र-पत्रिकाएँ भी निकाली । उनका सारा जीवन साहित्य-सेवा मे व्यतीत हुआ । स० १९४१ मे ३४ वर्ष की आयु मे ही वे चल बसे ।

भारतेन्दु की रचनाओ की सख्या इतनी है कि उन्हे देखकर आश्चर्य होता है । १६-१७ वर्ष की आयु से ही वे जीवन-पर्यन्त लिखते रहे । मृत्यु तक इस १६-१७ वर्ष के समय मे उन्होने जो कुछ लिखा वह युगान्तर-कारी था । उनके मौलिक नाटक नौ हैं—'सत्य-हरिश्चन्द्र', 'चन्द्रावली', 'भारत-दुर्दशा', 'नीलदेवी', 'अन्धेर-नगरी', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'विपस्य विषमोषधम्', 'सतीप्रताप' और 'प्रेम-योगिनी', । इनमे अन्तिम दो अपूर्ण हैं । उनके अनुदित नाटको के 'मुद्राराक्षस', 'घनञ्जय-विजय', 'रत्नावली नाटक', 'कर्पूर-मजरी', 'विद्यासुन्दर', 'भारत-जननी', 'पाखड-विडम्बन' और 'दुर्लभ-बन्धु' हैं । नाटको की भाँति उनका काव्य साहित्य भी विशाल है । उनके भक्ति-काव्य सम्वन्धी ४१ ग्रन्थ हैं । ये सब छोटे-छोटे हैं और भक्ति-भावना से भरे हुए हैं । उनका शृङ्गार

काव्य भी कम नही है। इसी प्रकार राष्ट्रीय काव्य सम्बन्धी ग्रन्थ है—'वैजन्ती', 'भारत-वीणा', 'सुमनाञ्जलि', 'विजयिनी विजय' आदि। 'सुलोचना', 'मदालय' और 'लीलावती' उनके लिखे हुए आख्यान है। 'परिहास पञ्चक' और 'परिहासनी' हास्य सम्बन्धी गद्य-ग्र थ है।

हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे भारतेन्दु ही पहले व्यक्ति थे जिन्होने अपना पूरा समय, पूरा पैसा और पूरी शक्ति सरस्वती के चरणो मे चढा दिये थे। वे हिन्दी के महान् व्रती थे। जब देश मे राष्ट्रीय-भावना थी ही नही तब उन्होंने अनेक बाधाओ के बावजूद देश के एक कोने से दूसरे कोने तक उसे फैलाने का प्रयत्न किया। भारतेन्दु-युग हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे नव-जागरण का युग माना जाता है। इस युग मे रीतिकालीन परम्पराओ का अवसान और नवीन प्रवृत्तियो का प्रादुर्भाव हुआ। भारतेन्दुजी ने विविध प्रकार का साहित्य प्रस्तुत करके हिन्दी को समृद्ध और लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न किया। उन्होंने अपने युग के सभी साहित्यकारो के साहित्य मे परिमार्जन और परिवर्तन करके उत्तम साहित्य का मार्ग प्रशस्त किया।

भारतेन्दु के पहले गद्य-साहित्य का सर्वथा अभाव था। उन्होने गद्य के लिये खडी-बोली को अपनाया और उसी का प्रचार किया। भारतेन्दु ने इतिहास, निबन्ध, कथा, उपन्यास, नाटक आदि की रचना कर जैसे हिन्दी-साहित्य की समृद्धि का द्वार ही खोल दिया। भारतेन्दु के नाटक बडे मर्मस्पर्शी हैं। उनमे जीवन को उठाने की पर्याप्त शक्ति है। उनका काव्य साहित्य भी विस्तृत और विविधतापूर्ण है। उनकी समस्त कविताएँ चार भागो मे विभक्त की जा सकती हैं—भक्ति-प्रधान, शृङ्गार प्रधान, देश-प्रेम प्रधान और सामाजिक-समस्या प्रधान। उनके भक्ति-प्रधान पदो का विषय राधा-कृष्ण की लीला है। उनका यह कृष्ण-काव्य सूर की शैली से प्रभावित हैं। उनकी शृ गार-प्रधान रचनाए कवित्त-सवैयो मे हैं। इस दृष्टि से वे पद्माकर, घनानन्द और रसखान की श्रे णी मे आते हैं। उन्होंने इन कवियो की तरह शुद्ध व्रजभाषा का प्रयोग किया है, इस क्षेत्र मे उनके काव्य का विषय है—राधा-कृष्ण का प्रेम। उनकी

कविता मे प्रेम की सरिता का अजस्र प्रवाह है। उनकी देशभक्ति-प्रधान रचनाएँ भी बडी मार्मिक हैं। चाहे जैसा अवसर हो वे देश को नही भूलते थे। वे जानते थे कि विदेशी शासन देश के लिए घातक है। अतः उसका अन्त होना चाहिये। उन्होने अपनी रचनाओ मे अनेक स्थानो पर विदेशीपन के विरुद्ध आवाज उठाई है। इसी प्रकार विधवा-विवाह, बाल-विवाह, अन्ध-विश्वास, समुद्र-यात्रा-निषेध आदि उस समय की सभी समस्याओ पर उन्होने विचार किया था और अपने विचारो के अनुसार उन्हें सुलझाने का प्रयत्न किया था।

यद्यपि भारतेन्दु के पूर्व ही इन्शाअल्लाखाँ, सदलमिश्र, लल्लूलाल और सदासुखलाल ने हिन्दी-गद्य का श्रीगणेश कर दिया था तथापि गद्य की भाषा मे जो चुस्ती होनी चाहिये वह नही थी। इनमे से किसी मे पण्डिताऊपन था तो किसी मे व्रजभाषापन। भारतेन्दुजी ने गद्य के लिए खडी-बोली को अपनाया और उसका परिमार्जन और परिष्कार किया। उनकी शैली मे न तो उर्दू-फारसी के शब्दो की भरमार रहती थी, न सस्कृत के तत्सम शब्दो की। इसमे कोई सन्देह नही कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आधुनिक हिन्दी-भाषा के निर्माताओ के निर्माता थे। उस समय जनता मे जो शब्द जिस रूप मे प्रचलित थे उन्हे उन्होने उसी रूप मे स्वीकार कर लिया। यही उनका भाषा-सम्बन्धी दृष्टिकोण था। उनकी भाषा प्रवाहपूर्ण, सरल, सरस, चुटीली और बोधगम्य होती थी। उन्होने कोमल शब्दो को अधिक अपनाया है। उनकी कविता मे रूपक अलङ्कार की छटा देखिये —

पल पटुला पै प्रेम डोर की लगाय चारु,
आसा ही के खम्भ दोय गाड के धरत हैं।
सुमका ललित काम पूरन उछाह भरयो,
लोक बदमानी भूमि झालर झरत है॥
हरिचन्द्र आँसू दृग नीर बरसाई प्यारे,
पिया गुण गान सो मलार उचरत है।
मिलन मनोरथ के झोटन वढाई सदा,
विरह हिंडोरे नैन झूल्योई करत हैं॥

१७—बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

कविवर जगन्नाथदासजी रत्नाकर का जन्म स० १६०३ मे काशी मे हुआ। उनके पूर्वज पानीपत निवासी थे और मुगल-सम्राटो के दरबार मे उच्च पदो पर कार्य करते थे। मुगल-सम्राटो के पतन के बाद वे लखनऊ चले आये और फिर लखनऊ से काशी। उनके पिता का नाम पुरुषोत्तमदास था। वे अग्रवाल जाति के थे। हिन्दी, फारसी के अच्छे ज्ञाता और काव्य-रसिक होने के कारण उनके घर पर कवियो का जमघट लगा रहता था। भारतेन्दुजी से भी उनका अच्छा परिचय था। अतः रत्नाकरजी को सहज ही भारतेन्दुजी जैसे चोटी के साहित्यिक का सम्पर्क प्राप्त हो गया। सन् १८६१ मे उन्होने बी० ए० पास किया और उसके बाद फारसी लेकर एम० ए० के प्रथम वर्ष की परीक्षा दी किन्तु किसी कारणवश दूसरे वर्ष की परीक्षा न दे सके। उन्होंने अयोध्या-नरेश के यहाँ प्राइवेट सैक्रेटरी के स्थान पर नौकरी की। वे बडे काव्य-रसिक और विद्वान् थे।

रत्नाकरजी प्राचीन काव्य-धारा के कवियो की परम्परा मे अन्तिम बडे कवि थे। वे हिन्दी के वैष्णव कवि थे। उनकी प्रकृति प्राचीन काव्य-धारा के साँचे मे ढली हुई थी। स० १६७६ मे वे कलकत्ता के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति भी हुए थे। उनकी विशेषता यही थी कि वे प्राचीन लीक पर ही चलते रहे थे, उन्होंने आधुनिक युग मे भी पहले के सुने हुए गान फिर से सुनाये। यद्यपि उनके काव्य मे जीवन की कोई मौलिकता नही है तथापि उनकी अलङ्कार योजना, उक्ति कौशल, भाषा की कारीगरी एव छन्दकौशल हिन्दी-भाषा को एक विशिष्ट देन है।

रत्नाकरजी के ग्रन्थो मे हिंडोला, समालोचनादर्श, साहित्य-रत्नाकर, घनाक्षरी, नियम-रत्नाकर, हरिश्चन्द्र, शृङ्गार-लहरी, गंगाविष्णु-लहरी, रत्नाष्टक, वीराष्टक, गङ्गावतरण तथा उद्धवशतक प्रमुख है। इसके अलावा रत्नाकरजी ने अंग्रेजी की एक-दो पुस्तको का पद्यबद्ध अनुवाद, कुछ पुस्तकों का सम्पादन और कुछ की टीका भी लिखी है। उन्होंने 'साहित्य-सुधानिधि' नामक एक पत्रिका का सम्पादन भी किया था।

रत्नाकरजी ने शुद्ध पौराणिक विषयो पर ही लिखा है। यद्यपि उन्होंने सूर, घनानन्द आदि भक्त-कवियो की तरह पौराणिक कथाओ को ही अपनाया तथापि अपने उक्ति-चमत्कार और भावो की नवीनता से उसे ओजपूर्ण बना दिया। वे प्राचीन कवियो की तरह भक्त तो नही हैं, लेकिन कलाकार अवश्य है। उन्होने भक्तिकालीन भावनाओ को रीतिकालीन अलङ्कारिकता के साथ अभिव्यक्त किया। उनकी रचनाओ में धार्मिक भावना के साथ-साथ राष्ट्रीय भावना भी है। रत्नाकरजी ने प्रबन्धकाव्य और मुक्तककाव्य दोनो ही लिखे हैं। हरिश्चन्द्र, गगावतरण और उद्धव-शतक प्रबन्धकाव्य हैं, शेष मुक्तककाव्य। हरिश्चन्द्र मे सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र की कथा है और गगावतरण मे गगा के स्वर्ग से आने की कथा। उद्धव-शतक मे गोपियो का उद्धव से सवाद है। यह रत्नाकरजी की सर्व-श्रेष्ठ रचना है। इसमे भावो की मौलिकता और उक्तियो की नवीनता देखते ही बनती है। रत्नाकरजी के मुक्तक-काव्य मे भी उनकी यह कला स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। वे भावालोक के चित्रकार थे, उन्होने भावो का चित्रण फोटोग्राफर की तरह किया है।

वे काव्यकला के पण्डित थे। भाषा के साथ-साथ भाव पर भी उनका अधिकार था। रत्नाकरजी की रस एव अलङ्कार योजना भी बडी सुन्दर थी। उन्होने रीतिकालीन कवियो की तरह केवल अलङ्कार की छटा दिखाने के लिये भावो का हनन नही किया था। उनकी भाषा ब्रजभाषा थी। वह उन्हे बडी प्रिय थी। वे खडी-बोली के सामने एक बार फिर ब्रजभाषा का माधुर्य, कोमलता और सरसता को लाना चाहते थे। इसके लिये उन्होने भूले हुए मुहावरो को अपनाया, लोकोक्तियो को स्थान दिया और भाषा को बोलचाल के शब्दो से सज्जित बनाया। वे भाषा के जौहरी थे, शब्द के शिल्पी थे। उनकी भाषा मे सस्कृत के तत्सम शब्द अधिक आये हैं, पर उससे ब्रजभाषा का सौन्दर्य कम नही हुआ है। उर्दू-फारसी के विद्वान् होते हुए भी उन्होने उसके चलते हुए शब्दों का ही प्रयोग किया है। उनकी भाषा पद्माकरजी की भाषा से मिलती-जुलती है। पद्माकरजी की भाषा मे कही-कही हलकापन है किन्तु रत्नाकरजी की भाषा गम्भीरता लिये हुए है। उनका बसन्त वर्णन देखिये—

पथिक तुरन्त जाइ कतहि जताइ दीजो,
आइगो बसन्त उर अधिक उछाह लै ।
कहे रत्नाकर न चटक गुलाबन की,
कोप के चढत तोप मैन बादशाह लै ।
कोकिल के कूकनि की तुरही रही है बाजि,
बिरहिन भाजि कह्यो कौनसी पनाह लै ।
सीतल समीर पै सवार सरदार गन्ध,
मन्द मन्द आवत मलिन्द को सिपाह लै ।।

१८—अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध'

महाकवि पं० अयोध्यासिह उपाध्याय का जन्म सं० १६२२ मे आजमगढ जिले के निज़ामाबाद स्थान पर हुआ। उनके पिता भोलासिह विशेष पढ़े-लिखे नही थे, किन्तु उनके चाचा ब्रह्मासिह ज्योतिष के विद्वान् थे। वे नि.सन्तान थे, अत अपने भतीजो को बहुत चाहते थे। उन्ही की देख-रेख मे अयोध्यासिहजी की शिक्षा-दीक्षा प्रारम्भ हुई। प्रारम्भ मे उन्होंने फारसी पढी। मिडिल पास करने के बाद वे काशी के क्वीन्स कॉलेज में पढने गये लेकिन स्वास्थ्य बिगड जाने से आगे न पढ सके। अत. वे घर पर ही सस्कृत, उर्दू और फारसी का अध्ययन करते रहे। स० १६४१ में उन्होंने अध्यापक की नौकरी की। कुछ समय बाद वे बन्दोवस्त के समय कानूनगो हो गये। धीरे-धीरे अपने अध्यवसाय के कारण वे रजिस्ट्रार-कानूनगो और फिर सदर कानूनगो हो गये। ३४ वर्ष इन पदो पर कार्य करने के बाद उन्होने पेंशन लेली और शेष जीवन साहित्य-सेवामे लगा दिया। सन् १६२३ मे काशी-विश्वविद्यालय मे उन्होंने अवैतनिक अध्यापक के रूप मे कार्य करना स्वीकार कर लिया और सन् १६४१ तक यह कार्य करते रहे।

हरिऔधजी की रचनाओ मे 'प्रियप्रवास' और 'वैदेही-वनवास' नामक दो महाकाव्य, स्फुट काव्य-सग्रहो मे—'चोखे चौपदे', 'चुभते चौपदे', 'बोलचाल', 'रसकलश', 'पद्य-प्रसून', 'कल्पलता', 'पारिजात' आदि तथा उपन्यासो में 'ठेठ हिन्दी का ठाट' और 'अधखिला फूल' प्रमुख है। इसके

अतिरिक्त उनके आलोचनात्मक ग्रन्थो मे 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास' तथा 'कबीर-वचनावली' की आलोचना प्रमुख हैं। हरिऔधजी ने अपने दीर्घ जीवन मे हिन्दी-साहित्य के तीन युग देखे—भारतेन्दु युग, द्विवेदी-युग और आधुनिक-युग। अत उनके साहित्य मे तीनो युगो की समस्याएँ हैं, तीनो युगो की चेतनाएँ एव मान्यताएँ हैं। अपनी प्रतिभा के प्रखर आलोक मे उन्होंने इन तीनो युगो की मान्यताओ को अपनी साहित्य-साधना के साथ घुला-मिला लिया है, उनका साहित्य भाषा और भाव के उतार-चढाव का साहित्य है। अपने साहित्य मे वे कभी नीचे से ऊपर गये हैं, कभी ऊपर से नीचे आये हैं। युग के परिवर्तन के साथ उनकी काव्यधारा मे भी मोड आता गया जो कभी उन्हे ऊपर ले गया, कभी नीचे।

हरिऔधजी की प्रारम्भिक रचनाएँ भारतेन्दुकाल की हैं। अत उस काल की समस्त विशेषताओ से प्रभावित हैं। इस समय वे ब्रज-भाषा मे लिखते थे लेकिन जब द्विवेदी-युग आया तो उन्होंने खडी बोली को अपना लिया और उसी मे प्रिय-प्रवास की रचना की। इसके बाद ही उन्होने वैदेही-वनवास की रचना की। काव्य-कला की दृष्टि से 'वैदेही-वनवास' 'प्रिय-प्रवास' की बराबरी नही कर सकता, किन्तु उसका भाषा-सौष्ठव देखने योग्य है। उन्होंने अपने साढे तीन हजार चौपदो में लोक-परलोक, नीति, धर्म और सभ्यता-सस्कृति आदि जीवन के सभी पक्षो पर सुन्दर सूक्तियाँ लिखी है। इन चौपदो मे भाषा के लालित्य के साथ सामाजिक कुरीतियों पर कटु व्यग है। प्रिय-प्रवास का भावुक कवि चौपदो मे उपदेशक बन गया है और इसके आगे रसकलश के हरिऔध प्राचीन रीति-काव्य के आचार्य से प्रतीत होते हैं। इस प्रकार उनकी प्रतिभा आचश्चर्यजनक है। वे प्रत्येक युग की माँग को अपनी प्रतिभा के बल पर पूरा करने का प्रयत्न करते रहे।

हरिऔधजी स्वय अपनी शैली के जन्मदाता थे। उनकी शैली पर किसी का स्पष्ट प्रभाव नही दिखाई देता। उन्होंने जहाँ उर्दू की मुहावरेदार शैली मे लिखा है वहाँ हिन्दी की रीतिकालीन शैली मे भी। इसी प्रकार जहाँ उन्होंने सस्कृत काव्य की शैली में लिखा हैं, वहाँ

वर्तमान शैली मे भी। उनकी भाषा भाव के पीछे-पीछे चलती है। वे जहाँ सरल से सरल भाषा लिख सकते है, वहाँ कठिन से कठिन भी। बोलचाल, चुभते-चौपदे, चोखे-चौपदे आदि मे उनकी भाषा उर्दू शैली से प्रभावित है। यह बडी सरल, सरस और मुहावरेदार है। उनका सारा साहित्य ही मुहावरो का कोष है। रस-कलश मे उनकी भाषा ब्रजभाषा है। यद्यपि वह अपने शुद्ध रूप मे नही है तथापि उस पर खडी बोली का काफी प्रभाव है। 'प्रिय-प्रवास' और 'वेनिस का बाँका' को छोड कर उनके शेष खडी-बोली के ग्रन्थो मे सरल हिन्दी भाषा है। प्रिय-प्रवास की भाषा सस्कृत के तत्सम शब्दो से वहुत वोझिल है। उसमे कही-कही तो हिन्दी जैसे खो गई है। उनकी कविता के दो उदाहरण देखिये—पहले मे उर्दू की शैली का प्रभाव है, दूसरे मे सस्कृत के तत्सम शब्दो की प्रधानता वाली शैली का—

१ मदिरो मस्जिदो कि गिरजा मे,
खोजने हम कहाँ कहाँ जाये।
वह तो फैले हुए जहाँ मे हैं,
हम कहाँ तक निगाह फैलाएँ॥

२ रूपोद्यान-प्रफुल्ल प्राय कलिका राकेन्दु विम्बानना।
तन्वगी कलहासिनी सुरसिका क्रीड़ाकला पुत्तली॥

१६—श्री मैथिलीशरण गुप्त

गुप्तजी का जन्म स० १६४७ मे चिरगाँव जिला झाँसी मे हुआ। उनके पिता सेठ रामचरणजी हिन्दी कविता के प्रेमी थे। उनकी रचनाएँ भक्ति-भावना से भरी रहती थी। गुप्तजी को बाल्यावस्था मे अग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने के लिए झाँसी भेजा गया लेकिन वहाँ उनका मन नही लगा और लौट आये। पिता ने घर पर ही उनकी शिक्षा का प्रबन्ध कर दिया और वे घर पर ही पढने लगे। कुछ समय बाद वे काव्य की ओर झुके तथा थोड़े ही समय मे अच्छी कविताएँ लिखने लग गये। गुप्तजी पाँच भाई हैं, जिनमे से तीन व्यापार मे लगे हुए हैं और स्वय तथा सियारामशरणजी साहित्य की साधना मे। अब दोनो ही स्वर्गवासी हो चुके हैं।

गुप्तजी अपनी प्रारम्भिक रचनाएँ कलकत्ते के एक जातीय पत्र मे भेजते रहते थे। बाद मे जब वे महावीरप्रसादजी द्विवेदी के सम्पर्क मे आये तो अपनी रचनाएँ सरस्वती मे भेजने लगे। द्विवेदीजी ने उनका उचित मार्ग-दर्शन किया और थोडे ही समय मे वे अच्छे कवियो मे गिने जाने लगे। उनके मौलिक काव्य-ग्रन्थो मे—'रग मे भग', 'जयद्रथ-वध', 'पद्मप्रबन्ध', 'भारत-भारती', 'शकुन्तला', 'पत्रावली', 'वैतालिक-पद्मावली', 'किसान', 'अनघ', 'पचवटी', 'स्वदेश-सगीत', 'गुरु तेगबहादुर', 'हिन्दू-शक्ति', 'सैरन्ध्री', 'वन-वैभव', 'वक-सहार', 'साकेत', 'यशोधरा', 'द्वापर', 'सिद्धराज', 'नहुष', 'कुणाल-गीत', 'अर्जन और विसर्जन', 'विश्ववेदना', 'काबा और कर्बला', 'प्रदक्षिणा', 'पृथ्वी-पुत्र', 'हिडिम्बा', 'अजलि', 'अर्घ्य' आदि प्रमुख हैं।

हिन्दी-काव्य मे गुप्तजी का उदय एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लेकर हुआ है। उन्होंने प्राचीन खण्डहरो की महत्त्वपूर्ण सामग्री लेकर केवल जीर्णोद्धार ही नही किया लेकिन मूर्तियो को जोड-तोड कर उनमे नया रग भी भर दिया। गुप्तजी की रचनाओ मे मानव के लिये एक सदेश है। उनकी प्रत्येक रचना सोद्देश्य है। उनका साहित्य जीवन का साहित्य है। वह जीवन को ऊँचा उठाता है। समाज-सेवा और राष्ट्र-सेवा के द्वारा उन्होंने मानव को मानव बनने की प्रेरणा दी है। उनके साहित्य मे अपने समय के समाज की सभी शक्तियां, सभी दुर्बलताएँ और सभी आकाक्षाएँ प्रतिबिम्बित होती रही है। गुप्तजी की यह विशेषता रही है कि उन्होने प्राचीन पृष्ठभूमि पर नवीन युग का अकन किया। उनके सारे खण्ड-काव्य और महाकाव्यो के कथानक प्राचीन हैं। राम, कृष्ण, सीता, अर्जुन, उर्मिला, यशोधरा आदि उस युग के पात्र है। हिन्दू होने के नाते गुप्तजी को अपनी प्राचीन सस्कृति पर गर्व है और उसी काल से उन्होने अपने काव्य की सामग्री एकत्रित की है। उनका विश्वास था कि राम और कृष्ण के समय के भारत की आज भी आवश्यकता है। इसी कारण उन्होने बार-बार पीछे देखा और उसी से स्फूर्ति ग्रहण की। यद्यपि उन्होंने अपनी काव्य-सामग्री के लिये प्राचीन कथानको का आश्रय लिया है

तथापि उन्हे नवीन युग के साँचे मे ढाल कर उन्हे नवीन रूप ही दे दिया है। यही उनकी मौलिकता है। उनकी दिशा नवीन है, भाव नवीन हैं, छन्द-योजना नवीन हैं। उनके साहित्य मे सर्वत्र प्रेम और त्याग का स्वर मिलता है। वे विकासशील कवि थे। राष्ट्रीय दृष्टि से भारतेन्दु-युग निराशा का युग था। इस समय 'भारत-भारती' की रचना कर उन्होने नवजागरण की सूचना दी। द्वितीय युग मे राष्ट्रीय आन्दोलनो की प्रगति से राष्ट्रीय भावना का विकास हुआ। अब उनकी प्रतिभा भी इस के साथ विकसित होकर बहुत से खण्डकाव्यो और महाकाव्यो तक पहुँची। अब हम उनकी कविताओ मे सत्याग्रह, अहिंसा, विश्व-प्रेम, किसानो और श्रमजीवियो के प्रति प्रेम और सहानुभूति की झलक देखते हैं।

गुप्तजी खडी-बोली के आचार्य माने गये हैं। शब्दो की जैसी विस्तृत योजना उनकी है वैसी वर्तमान युग के और किसी कवि की नही है। शैली उनकी अपनी है। वे अलकार-प्रिय नही हैं फिर भी उनकी रचनाओ मे अलकारो का विधान मिलता है। गुप्तजी की भाषा खडी बोली है और उस पर उनका पूरा अधिकार है। जैसे जैसे उनकी रचनाओ का विकास हुआ वैसे-वैसे उनकी भाषा भी प्रौढ, प्रसाद-पूर्ण और भावानुकूल बन गई। उनकी भाषा मे खरापन है। चाहे तुक मिलाने की बात हो चाहे चरित्र-चित्रण की और चाहे बाह्य दृश्य चित्रण की और चाहे वाद-विवाद की, उनकी भाषा उनके भावो के पीछे-पीछे चलती है। अनुभूति का वेग प्रबल होने पर उनकी भाषा का प्रवाह भी सुन्दर बन जाता है। उन्हे अपने भावो के अनुकूल शब्द चुनने की आवश्यकता नही पड़ती। भाव स्वय अपने लिये उपयुक्त शब्द खोज लेते हैं। सक्षेप मे उनकी भाषा मे हमे खडी-बोली का अत्यन्त सयत, शिष्ट और प्रौढ रूप मिलता है। वक-सहार मे प्रजातन्त्र के रूप का वर्णन देखिये:—

राजा प्रजा का पात्र है।
वह लोक प्रतिनिधि मात्र है।

यदि वह प्रजापालक नही तो त्याज्य है ।
हम दूसरा राजा चुने ।
जो सब तरह अपनी सुने ।
कारण प्रजा का ही असल मे राज्य है ।

२०—रामनरेश त्रिपाठी

श्री रामनरेश त्रिपाठी का जन्म जौनपुर जिले के कोझीपुर ग्राम मे स० १६४६ मे हुआ था । अयोध्यासिहजी उपाध्याय की भाँति आपने भी स्कूल मे नियमित रूप से शिक्षा प्राप्त नही की । घर पर ही रहकर अपने प्रयत्न से उर्दू, अग्रेजी, फारसी और सस्कृत भाषा का अच्छा अभ्यास कर लिया ।

आपके काव्य-ग्रन्थो मे 'पथिक', 'मिलन', 'स्वप्न' तीन खण्ड-काव्य एव 'मानसी' प्रमुख हैं । आपने 'प्रेम-लोक' नामक एक नाटक की भी रचना की है । उसके अतिरिक्त आपने राम-चरित-मानस की टीका लिखी है और कविता कौमुदी छ भाग एव ग्राम-गीतो के सग्रह का सपादन भी किया है । आपकी अन्य रचनाओ मे तरकस, जयन्त, स्वप्न के चित्र और मालवीयजी के साथ तीस दिन भी उल्लेखनीय है ।

त्रिपाठीजी की भाषा शुद्ध और परिष्कृत है । उन्होने सस्कृत के तत्सम शब्दो का प्रयोग काफी किया है लेकिन प्रिय-प्रवास की भाँति अपनी रचनाओ को उससे बोझिल नही बनने दिया है । यही कारण है कि उनकी भाषा मे प्रवाह के साथ-साथ प्रसाद गुण भी है । उनकी भाषा भावानुकूल है । भावो की व्यञ्जना उन्होने बडी कुशलता से की है । उनकी भाषा व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध होती है और सरलता के साथ सरसता और सुन्दरता का गुण भी उसमे होता है ।

उनकी रचनाओ मे देश-प्रेम, जातीय और राष्ट्रीय भावना पर्याप्त-मात्रा मे रहती है । उन्होने गुप्तजी की भाँति अपने खण्ड-काव्यो की कथा-वस्तु पुराणो अथवा प्राचीन इतिहास से ग्रहण नही की है वल्कि कल्पना के सहारे नवीन कथावस्तु की ही सृष्टि की है । उनके चरित्र-चित्रण मे स्वाभाविकता और शैली मे रोचकता है । उनके प्रकृति-वर्णन

मे कल्पना और अनुभूति का सुन्दर सामजस्य है । वे गुप्तजी की ही भाँति आदर्शवादी हैं । उनकी एक कविता 'अन्वेषण' की प्रारम्भिक पक्तियाँ देखिये —

मैं ढूँढता तुझे था जब कुञ्ज और वन मे,
तू खोजता मुझे था तब दीन के वतन मे ।
तू आह बन किसी की मुझको पुकारता था,
मैं था तुझे बुलाता सगीत मे, भजन मे ।।
मेरे लिए खडा था दुखियो के द्वार पर तू,
मैं बाट जोहता था तेरी किसी चमन मे ।।
बनकर किसी के आँसू मेरे लिए बहा तू,
आँखें लगी थी मेरी तब मान और धन मे ।।

२१—बाबू जयशकर प्रसाद

प्रसादजी का जन्म काशी के एक प्रतिष्ठित कान्यकुब्ज वैश्य परिवार मे स० १९४६ मे हुआ । उनके पिता देवीप्रसाद साहू और पितामह शिवरत्न साहू थे । कहा जाता है कि **शिवरत्नजी** बडे दयालु और दानी व्यक्ति थे । पिताजी भी बडे व्यवसाय-कुशल और साहित्य-प्रेमी थे । बहुत से साहित्यकार उनके पास आते रहते थे और काव्य-चर्चा होती रहती थी । इस साहित्यिक वातावरण का उनके भावी जीवन पर बडा प्रभाव पडा । कुछ समय बाद उन्होने अपनी माता के साथ धारा क्षेत्र, ओकारेश्वर, पुष्कर, उज्जैन, जयपुर, व्रज और अयोध्या की यात्रा की जिसका उनके मन पर बडा प्रभाव पडा । इसे वे अपने जीवन मे कभी नही भूले । यह उनकी बहुत बडी यात्रा थी । इस यात्रा के बाद पिताजी का स्वर्गवास हो गया और उसके चार वर्ष बाद माताजी भी चल बसी । उन दिनो वे सातवी कक्षा मे थे । परिस्थिति से विवश होकर पढना छोड दिया और वे घर पर ही वेद, उपनिषद् तथा हिन्दी-साहित्य का अध्ययन करने लगे । फिर वे कविता करने लगे । उनकी समस्या पूर्ति की जब कवि-समाज मे प्रशसा होने लगी, तो उनका उत्साह बढा । किन्तु दुर्भाग्य से इसी समय बड़े भाई की मृत्यु हो गई । अब तो घर की भी पूरी जिम्मेदारी उन

पर ही आ गई। परन्तु साहित्य-साधना चलती रही।

उनकी रचनाएँ निम्नप्रकार हैं—

(१) काव्य—चित्राधार, कानन-कुसुम, करुणालय, महाराणा का महत्त्व, झरना, आँसू, लहर और कामायनी।

(२) नाटक—राज्य-श्री, अजातशत्रु, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, ध्रुव-स्वामिनी, जनमेजय का नाग-यज्ञ।

(३) कहानी सग्रह—छाया, प्रतिध्वनि, आकाश-दीप, आँधी और इन्द्रजाल।

(४) उपन्यास—कङ्काल और तितली।

(५) निबन्ध—काव्य और कला।

प्रसादजी के उपन्यास मानव-जीवन से सीधा सम्बन्ध रखते हैं उनके कथानक मे मौलिकता और पात्रो मे स्पष्टवादिता है। उन्होने हिन्दी उपन्यास को आश्चर्यजनक घटनाओ के दलदल से निकाल कर उच्च भाव-भूमि पर खडा किया। उन्होने मानव-जीवन के पाप-पुण्य की चर्चा इतने स्पष्ट और खुले हुए रूप से की है कि समाज के पीडित, पतित लोगो के प्रति सहज सहानुभूति पैदा होती है। उनके पात्र अपना पाप-पुण्य छिपा कर घृणा के पात्र नही बनते, बल्कि पाठक की महज सहानुभूति प्राप्त कर लेते है। दूसरी महत्त्व की बात उनके उपन्यासो मे यह है कि उन्होने मानसिक-द्वन्द्व के सुन्दर शब्द-चित्र उपस्थित किये हैं। उनके दृश्य-वर्णन भी बडे सुन्दर है।

ऐतिहासिक दृष्टि से कहानीकारो मे उनका पहला स्थान है। उनकी रहस्यवादात्मक और यथार्थवादी कहानियाँ बडी सुन्दर बन पडी है। अपनी कहानियो मे उन्होंने साधारण कोटि के व्यक्तियो के प्रति भी सहानुभूति जाग्रत की है। उनकी कहानियो का कथानक प्राय एक मनोवृत्ति का, प्रेम की एक झलक का, निष्ठुरता के एक सकेत का अथवा हृदय की भावुकता का एक चित्र मात्र होता है। उनकी कहानियाँ उनकी तन्मयता का परिणाम है। उन्होने जो कुछ लिखा है वह तन्मयता मे, धुन मे लिखा है। अपनी कहानियो मे उन्होने कही-कही वास्तविक चित्र भी उतारे है। अपनी अद्भुत व्यजना-शक्ति, प्राजल-भाषा और

भावो की तीव्रता के कारण सहज ही पाठक को आकर्षित कर लेते हैं। वे हिन्दी कहानी-साहित्य के अग्रदूत है।

कहानीकार और उपन्यासकार के साथ-साथ प्रसादजी एक कुशल नाटककार भी थे। उन्होने लगभग १३ नाटको की रचना की थी। यद्यपि उनके नाटक अभिनयशील नही हैं तथापि काव्य और कला की दृष्टि से वेजोड है। उनके नाटको की कथावस्तु सम्बन्धी सामग्री प्राय ऐतिहासिक और पौराणिक तथ्यो से ग्रहण की गई है। किन्तु कुछ नाटको की कथावस्तु भावात्मक भी है। उन्होंने प्राचीन सभ्यता, सस्कृति और वैभव का एक नवीन स्वप्न देखा था और उसे अपनी कोमलतम भावनाओ से अनुरजित किया था। इन नाटको मे भावो की इतनी प्रबल प्रेरणा है कि उनके सामने कथावस्तु गौण हो जाती है। वस्तुत. प्रसाद के नाटको मे एक ही सन्देश नही है। कथावस्तु की विभिन्नता के साथ सन्देश भी बदलते गये है, पर ऐसे सभी सन्देश एक उद्देश्यसूत्र मे बंधे हुए हैं। उनके नाटको का उद्देश्य है पतितो को उठाना, निराश लोगो मे आशा का सचार करना, पीडित मानव को विश्व-मगल का आशा-भरा सन्देश देना। उनके नाटको मे स्त्री-पात्रो की प्रधानता है। उनके पुरुष-पात्र जीवन के विशाल रङ्ग-मच पर स्त्री-पात्रो के इशारो पर ही नृत्य करते हुए दिखाई देते है। किन्तु उनके नारी-पात्र निम्न कोटि के नही हैं। बडे ही सुकुमार, विशाल एव उदात्त मनोवृत्ति वाले हैं। वे पुरुषो को कर्त्तव्य के मार्ग के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित करते हैं। वे कभी प्रेम के वासन्ती कुजो मे विहार करती हुई दिखाई देती है तो कभी समरागण मे तलवारो के साथ खेलती हुई और कभी गृहस्थ-जीवन की शोभा वढाती हुई। वे एक ओर गायिका है तो दूसरी ओर जादूगरनी भी। उनकी भाषा सजीव, स्वाभाविक, शिष्ट और संयत होती है और पाठको की उत्सुकता अन्त तक वनी रहती है।

प्रसादजी की प्रतिभा वहमुखी है। वे एक अच्छे नाटककार, कहानीकार और उपन्यासकार तो है ही परतु उच्च-कोटि के कवि भी है। हिन्दी-साहित्य मे एक कवि के रूप मे ही उनका अधिक मान है। उनके

साहित्यिक जीवन का श्रीगणेश.काव्य-रचना से प्रारम्भ हुआ था। अत काव्य-साधना उनके साहित्य के अग-अग मे रक्त की भाँति समाई हुई है और उसे पुष्ट बनाती है। प्रसादजी ने हिन्दी-काव्य मे नवीन विषयो का सन्निवेश किया। उन्होने कविता को मस्ती भावुकता के भवर से निकाल कर एक स्वस्थ एव दृढ मानसिक धरातल पर खडा किया। उनका काव्य मनोवैज्ञानिक भीति पर खडा है। वे अशरीरी और अमूर्त भावनाओ के कवि हैं। कामायनी महाकाव्य मे उन्होने शुद्ध मानव-सौन्दर्य का चित्रण किया है। मानव-सौन्दर्य के साथ प्राकृतिक सौन्दर्य के चित्रण से भी उनका सारा काव्य ओत-प्रोत है। उनके काव्य मे प्रकृति के अनेक रूपो के रहस्यात्मक चित्र हैं। वस्तुत प्रसादजी यौवन और प्रेम के कवि हैं। उनके काव्य मे यौवन के बडे मार्मिक और सजीव चित्र मिलेंगे। उनके सौंदर्य और प्रेम मे ऐहिक भावना के साथ-साथ उदात्त भावनाएँ भी हैं जो मानवीय मनोवृत्तियो को उन्नत बनाती हैं।

प्रारम्भ मे प्रसादजी की भाषा सरल थी लेकिन जैसे-जैसे उनका अध्ययन बढता गया और विचारो मे परिपक्वता आती गई त्यो-त्यो उनकी भाषा गम्भीर होती गई। सस्कृत की तत्सम शब्दावली अपना-लेने से उनकी भाषा क्लिष्ट अवश्य हो गई, लेकिन उन्होने तत्सम शब्दा-वली को ऐसा अपना लिया है कि भाषा उनके विचारो के पीछे-पीछे चलती है तथा प्रवाह मे कोई बाधा नही आती। उनका शब्द-चयन बडा अद्वितीय है। उनकी रचनाओ मे एक-एक शब्द नगीने की भाँति जडा हुआ है और गूढ-वाक्य सूत्र जैसे प्रतीत होते हैं। उनकी भाषा मे अन्य भाषाओ के शब्द बहुत कम हैं। यद्यपि उनकी भाषा का उद्देश्य पाण्डित्य प्रदर्शन नही है तथापि उसे वे ही लोग समझ सकते हैं जिनकी पहुँच गम्भीर विषयो मे है। वस्तुत उनकी रचनाएँ साधारण पाठको के लिए नही हैं। उन्होने छोटे-छोटे वाक्यो मे भी गम्भीर भाव भर दिए हैं और फिर इसमे सगीत और लय का विधान भी कर दिया है। उनकी शैली मे काव्यात्मक चमत्कार है। चित्रोपमता उनकी शैली की विशेषता है। इस प्रकार यदि यह कहा जाय कि 'प्रसाद' हिन्दी के

रवीन्द्रनाथ थे तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी। उनके 'लहर' नामक काव्य-सग्रह से सूर्योदय का एक सुन्दर चित्र देखिये —

अन्तरिक्ष मे अभी सो रही है ऊषा मधुबाला।
अरे खुली भी नही अभी तो प्राची की मधुशाला॥
सोता तारक किरण पुलक रोमावलि मलयज वात।
लेते अँगडाई नीडो मे अलस विहँग मृदु गात।
रजनी रानी की बिखरी है म्लान कुसुम की माला॥
अरे भिखारी तू चल पडता है लेकर टूटा प्याला॥

२२—सुमित्रानन्दन पन्त

अलमोडा से २५ मील उत्तर की ओर कौसानी नामक एक रमणीक स्थान मे स० १९५७ मे प० सुमित्रानन्दन पन्त का जन्म हुआ। उनके पिता गगादत्तजी पन्त जमीदार थे और कौसानी राज्य के कोषाध्यक्ष थे। पन्तजी उनके सबसे छोटे पुत्र हैं। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव की पाठशाला मे ही हुई। इसके बाद वे अलमोडा के गवर्नमेट हाई स्कूल मे भर्ती हुये। यहा ९ वी कक्षा तक पढ कर वे काशी चले गये और वहाँ सन् १९१७ मे हाई स्कूल परीक्षा पास की। सन् १९१९ मे वे प्रयाग आये। यहाँ वे प० शिवाधार पाडे के सम्पर्क मे आये और पाडेजी की प्रेरणा से उन्होंने अग्रेजी-कवियो का अध्ययन प्रारम्भ किया। सन् १९२२ मे पढना छोडकर वे अलमोडा चले गये और वहाँ स्वतन्त्र रूप से दर्शन, उपनिषद् और इसी प्रकार के सस्कृत-ग्रन्थो के साथ विदेशी साहित्यकारो के श्रेष्ठ ग्रन्थो का भी अध्ययन करते रहे। उन्होंने कवीन्द्र रवीन्द्र के बगला-साहित्य का अध्ययन भी मनोयोगपूर्वक किया।

पन्तजी की प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं —

(१) काव्य—उच्छ्वास, पल्लव, वीणा, ग्रन्थि, गुजन, युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्ण-किरण, स्वर्ण-धूलि, मधुज्वाल, युगपथ, उत्तरा।
(२) नाटक—परी, क्रीडा, रानी, ज्योत्स्ना।
(३) उपन्यास—हार।

(४) कहानी-सग्रह—पाच कहानियाँ ।

(५) अनुवाद—उमर खय्याम की रुबाइयाँ ।

प्राकृतिक सौंदर्य से पूर्ण स्थान मे जन्म लेने के कारण वे बड़े प्रकृति प्रेमी है । यह प्रकृति प्रेम ही उनकी काव्य-प्रेरणा का रहस्य है । इस प्रकृति प्रेम के कारण ही वे बडे चिन्तनशील, सौम्य और दार्शनिक बन गये है । यदि खडी-बोली को काव्य की भाषा बना देने का श्रेय किसी को है तो वह पतजी को ही है । ब्रज-भाषा ने मध्य-युग से लेकर द्विवेदी-युग तक के दीर्घ समय मे, जो प्राञ्जलता, कोमलता और चित्र-चारुता प्राप्त की थी, वह पतजी ने खडी-बोली को अपने २०—२५ वर्ष के काव्य-जीवन मे ही प्रदान करदी । लोग कहते थे कि खडी-बोली मे खड-खडाहट है । उसमे ब्रजभाषा का माधुर्य नही आ सकता । लेकिन पतजी ने वह खड-खडाहट दूर करके उसे कोमलकान्त बना दिया । उनकी भाषा मे ऐसा कोमल सगीत है जो किसी अन्य कवि की रचना मे नही मिलता । उन्होने खडी-बोली के नीरस शरीर मे रस का सचार किया । उनकी रचनाओ मे भाषा के सौंदर्य के साथ-साथ भावो का माधुर्य भी है । उनके भावो का क्षेत्र बडा विशद और विस्तृत है । भावो के क्षेत्र मे कल्पना पतजी के आकर्षण का रहस्य है । कल्पना उनकी कविता का मेरुदण्ड है । कल्पना की बाल-सुलभ उडानो से लेकर अत्यन्त गहन कल्पना अनुभूतियो मे ही उनका विकास निहित है । उनकी कल्पना-शक्ति को सौंदर्यानुभूति से बडा बल मिला है । उनकी एक विशेषता है—उनका स्वतन्त्र चिन्तन । उन्होने अपने स्वतन्त्र-चिन्तन, काव्य, सगीत, चित्र और शिल्प के द्वारा जीवन की उन्नत मानवी मूर्तियो की स्थापना की है ।

पतजी हिन्दी-साहित्य के एक जागरूक कलाकार है । वे प्रेम और सौंदर्य के कवि है । उनकी पहली रचना 'वीणा' मे ही हमे प्रकृति के सुन्दर रूपो का, आह्लादमयी अनुभूतियो का चित्रण बडी ललित भाषा मे मिलता है । 'ग्रन्थि' उनकी दूसरी रचना है । इसमे प्रेम की अनुभूति का प्रवेश दिखाई देता है । 'पल्लव' उनकी प्रौढ रचना है । इसमे प्रस्फुटित यौवन का अन्तर्बाह्य दर्शन और भाषा का सौंदर्य देखने योग्य

है। 'गुंजन' मे उनकी सौंदर्यानुभूति और प्रेमानुभूति को प्रौढता प्राप्त हो गई है। अब वे चिन्तक के रूप मे भी दिखाई देने लगते हैं। गुञ्जन से आगे बढकर 'युगांत', 'युग-वाणी' और 'ग्राम्या' मे तो वे जीवन के कवि बन गये है। उनकी रचनाओ मे लोक-मङ्गल की आशा के साथ-साथ परिवर्तनवाद का स्वर भी भरा हुआ है। वे गतयुग के अवशेषो को समूल नष्ट कर नव-निर्माण करना चाहते है। इस प्रकार वे क्रान्ति और शान्ति तथा संहार और सृजन दोनो साथ-साथ चाहते हैं।

पंतजी का गीतिकाव्य अत्यन्त उत्कृष्ट है। उन्होंने हिन्दी-साहित्य को ऐसे गीत दिये हैं, जो भाषा और भाव दोनो ही दृष्टियो से वेजोड है। हिन्दी मे वे स्वच्छन्दतावाद के पहले कवि है। उनकी रचनाओ मे क्या प्रकृति का सौंदर्य और क्या जीवन का सौंदर्य, क्या जगत् का सौदर्य और क्या भावो का सौंदर्य सब अपनी चरमसीमा पर अंकित हुआ प्रतीत होता है।

पंतजी अपनी भाषा के स्वय निर्माता है। उन्होंने अपनी काव्य-भाषा को अधिक से अधिक लय, ताल और संगीत के निकट लाने का प्रयत्न किया है। इस काम मे उन्हें पूरी सफलता मिली है और वे अपनी भाषा कोमल बनाकर मधुकर भावनाएँ वहन करने योग्य बनाने मे समर्थ हो सके हैं। उनकी भाषा चित्र-भाषा है। शब्द-चयन पर उनका असाधारण अधिकार है। उनका प्रत्येक शब्द साधना और चिन्तन का परिणाम है। संस्कृत की तत्सम शब्दावली यद्यपि उनकी भाषा मे प्रचुर मात्रा मे मिलती है तथापि अपनी रचना के लिये उन्होने ब्रजभाषा, फारसी, उर्दू और अंग्रेजी के शब्द कोषो से भी सहायता ली है और उन्हे काव्योचित साँचे मे ढालकर कोमल, चित्रमय और मधुर बना दिया है। उनकी रहस्य भावना निम्न पंक्तियो मे देखिये—

दीर्घ भरता समीर निश्वास।
प्रखर झरती जब पावस धार॥
न जाने तडप तड़ित मे कौन।
मुझे इंगित करता तब मौन॥

क्षुब्ध जल शिखरो को जब वात, सिन्धु मे मथकर फेनाकार ।
बुलबुलो का व्याकुल ससार, बना विथुरा देता अज्ञात ।।
उठा तब लहरो के कर कौन ।
न जाने मुझे बुलाता मौन ।।

२३—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

महाकवि निराला का जन्म बगाल के मेदिनीपुर ग्राम मे स० १९५३ मे हुआ था । उनके पिता पण्डित रामसहाय त्रिपाठी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । वे उन्नाव जिले के रहने वाले थे और जीविका के लिए यहाँ आये थे । यही निरालाजी का जन्म और शिक्षा-दीक्षा हुई थी । निरालाजी बाल्यावस्था से ही स्वतन्त्र प्रकृति के थे । अत नियमित विद्याभ्यास के लिए पाठशाला की चहार-दीवारी मे बन्द होने के स्थान पर सगीत, कुश्ती और अश्वारोहण आदि मे उन्होंने बडी दिलचस्पी ली और इनमे दक्ष बन गये । बगला तो वहाँ की भाषा थी ही अत. उन्होंने उसका अच्छा अध्ययन किया । इसके बाद उन्होने सस्कृत और अग्रेजी का भी अध्ययन किया । दर्शन मे उनकी विशेष रुचि रही ।

१३ वर्ष की अवस्था मे उनका विवाह हो गया । उनकी दो सताने हुईं, जिनमे से लडकी जीवित न रह सकी । दुर्भाग्य से २२-२३ वर्ष की अवस्था मे ही उनकी पत्नी मनोहरा देवी स्वर्गवासिनी हो गई । बस इसी समय से निरालाजी के जीवन मे एक बडा मोड आ गया । उन्होने नौकरी छोड दी और जीवन-सघर्ष मे अकेले आ खडे हुए । आचार्य महावीरप्रसादजी द्विवेदी की प्रेरणा से उन्होंने राम-कृष्ण मिशन के प्रधान-मठ बेलूर केन्द्र से समन्वय नामक पत्रिका का सम्पादन किया और उसके बाद एक वर्ष तक 'मतवाला' नामक पत्रिका का भी सम्पादन किया । उनमे जबरदस्त शक्ति थी और भावुकता तो इतनी थी कि किसी को भी दीन विपन्न देखकर, अपने पास जो कुछ होता दे डालते थे । इस औदार्य ने उन्हे साधु-सन्यासी-सा बना दिया था पर वे अपनी मस्ती मे डूबे रहते थे । लोग उन्हे पागल कहते थे, लेकिन दुनियाँ के प्रवाह के सामने अकेले खडे होने वाले वे एक महामानव थे । अपनी सीमित

शक्ति से वे भले ही उस प्रवाह को बदल न सके, पर उनका साहस अजेय था। उनका स्वर्गवास इलाहाबाद मे रहते हुए सन् १९६२ में हो गया।

निरालाजी की रचनाएँ निम्न प्रकार हैं—

(१) काव्य—परिमल, गीतिका, तुलसीदास, अनामिका, कुकुरमुत्ता, अणिमा, वेला, नये पत्ते, अपरा और अर्चना।

(२) उपन्यास – अप्सरा, अलका, प्रभावती, निरुपमा, उच्छृङ्खल, चोटी की पकड, काले कारनामे और चमेली।

(३) कहानी-सग्रह—लिली, सखी, चतुरी चमार तथा सुकुल की बीबी।

(४) रेखाचित्र—कुल्ली भाट, बिल्लेसूर, बकरिहा।

(५) निबध सग्रह—प्रबध-पद्म, प्रबध-प्रतिमा, प्रबध-परिचय और रवीन्द्र-कविता-कानन।

(६) जीवनियाँ—राणाप्रताप, भीम, प्रह्लाद, ध्रुव, शकुन्तला।

(७) अनुवाद—महाभारत, रामकृष्ण-वचनामृत (चार भागो मे), परिव्राजक स्वामी विवेकानद के भाषण, देवी चौधरानी, आनन्द मठ, चन्द्रशेखर, कृष्णकांत का विल, दुर्गेश-नन्दिनी, रजनी, युगलागुलीय, राधारानी, तुलसीकृत रामायण की टीका, वात्सायन कृत काम-सूत्र आदि।

निरालाजी का लौकिक और साहित्यिक जीवन सघर्षमय रहा। उन्होने प्रत्येक चोट का, प्रत्येक आक्रमण का साहसपूर्वक मुकाबला किया। निर्भीकता उनकी नस-नस मे भरी हुई थी। उनके व्यक्तित्व की भाँति उनकी साहित्यिक सर्जना भी शक्तिशाली है। उन्होंने हिन्दी के काव्य-क्षेत्र मे आँधी की तरह प्रवेश किया और एक क्राति उपस्थित कर दी। उन्होने हिन्दी-काव्य को रूढिगत बधनो से मुक्त करने के लिए विद्रोह किया। इस विद्रोह का हिन्दी-ससार मे बडा विरोध हुआ लेकिन वे अडिग रहे।

निरालाजी की 'अनामिका' ने अपने प्रकाशन के साथ ही उन्हें हिन्दी का कवि घोषित कर दिया। अनामिका के स्वच्छद छन्दो ने प्राचीन रूढियो का तिरोभाव-सा कर दिया और नवीन-धारा का स्वागत करने

वालो का आत्म-विश्वास बढाया । इसके बाद 'परिमल' मे उनके विकास की दूसरी रेखा दिखाई देती है । इसकी बहुत सी रचनाएँ छन्दोवद्ध है । इन कविताओ मे शुद्धि और भावना का सुन्दर समन्वय परिलक्षित होता है । उनके विकास की तीसरी रेखा गीतो मे दिखाई देती है। इसमे बुद्धि तत्त्व की अपेक्षा हृदयतत्त्व की प्रधानता है । भाव, कल्पना, बुद्धि और हृदय का सुन्दर समन्वय इन गीतो की विशेपता है । इसके बाद की रचनाएँ प्रगतिवाद की विचारधारा से प्रभावित दिखाई देती हैं ।

निराला हिन्दी के दार्शनिक कवि हैं । उनकी दार्शनिकता मे भक्ति का सुन्दर समन्वय है । दूसरी ओर वे सौदर्योपासक कवि भी हैं । उन्होंने जीवन की शृङ्गारिक भावना के बडे सुन्दर चित्र खीचे हैं । किन्तु उनकी शृङ्गारिकता मे अश्लीलता नही है । उनकी भापा सगीतात्मक, शब्द चित्रपूर्ण और भावना मधुर है । सगीत की दृष्टि से उनके गीत अत्यन्त सुन्दर और बेजोड हैं । उनके गीतो मे पीडित मानवता के प्रति जबरदस्त सहानुभूति की भावना है ।

निरालजाजी की भाषा सस्कृत के तत्सम शब्दो से पूर्ण खडी-बोली है । उस पर बगला का प्रभाव भी है । बगला के साथ-साथ उर्दू, फारसी के शब्दो का भी उन्होने प्रयोग किया है । वे भापा के प्रयोग मे बडे समर्थ हैं । उन्होने खडी-बोली को सगीतात्मक बनाने का सफल प्रयत्न किया । उनकी सध्या-सुन्दरी का मोहक चित्र देखिये —

दिवसावसान का समय,
मेघमय आसमान से उतर रही है,
वह सध्या सुन्दरी परी-सी,
धीरे-धीरे-धीरे,
तिमिराञ्चल मे चचलता का नही कही आभास
मधुर मधुर हैं दोनो उसके अधर—
किन्तु गम्भीर, नहीं है इनमे हास-विलास ।
हँसता है तो केवल तारा एक
गुँथा हुआ उन घुँघराले काले बालो से
हृदय-राज्य की रानी का वह करता है अभिषेक ।

सरलता की-सी लता किन्तु कोमलता की वह कली
सखी, नीरवता के कधे पर डाले बाँह
छाँह-सी अम्बर पथ से चली ।

२४—महादेवी वर्मा

श्रीमती महादेवी वर्मा का जन्म स० १९६४ मे फर्रुखाबाद मे हुआ था । उनके पिता श्री गोविन्दप्रसाद वर्मा भागलपुर के एक कॉलिज मे प्रिंसिपल थे । महादेवीजी का विवाह स० १९७३ मे डॉ० स्वरूपनारायण वर्मा के साथ हुआ । विवाह से उनकी शिक्षा का क्रम टूट गया । लेकिन कुछ वर्ष बाद उन्होंने उसे फिर प्रारम्भ किया और स० १९८१ मे प्रथम श्रेणी मे हाई-स्कूल परीक्षा पास की । इसके वाद उन्होंने इटर, बी ए पास करके सस्कृत मे एम ए. भी पास कर लिया । कविता की ओर प्रारम्भ से ही उनकी रुचि थी; लेकिन वे प्रारम्भ में कविताएँ लिखकर फाड दिया करती थी—किसी को दिखाती नही थी । धीरे-धीरे उन्होंने अपनी कविताएँ 'चाँद' आदि मासिक-पत्रो मे भेजी और लोगो ने उन्हे पसद किया । उनकी रचनाएँ निम्न प्रकार है —

(१) कविता—नीहार, रश्मि, नीरजा, सान्ध्यगीत और दीपशिखा ।
(२) निवन्ध—अतीत के चल-चित्र, शृङ्खला की कडियाँ ।
(३) आलोचना—हिंदी का विवेचनात्मक गद्य ।

महादेवीजी के जीवन मे सादगी और विचारो मे उच्चता है । वे स्पष्ट वक्ता हैं और उन्हे जो कुछ कहना होता है, थोडे से शब्दो मे कह देती हैं । उनका जीवन साधनामय है । उन्होने अपने आत्मिक आदर्शों के अनुकूल अपना जीवन बना लिया था । उनकी काव्य-साधना एक साधिका का अपने आराध्य के प्रति आत्म-समर्पण है । महादेवीजी रहस्यवादी कवियित्री हैं । रहस्यवाद मे उस स्थिति का चित्रण होता है जव ससीम आत्मा विश्व के सौंदर्य मे असीम परमात्मा के चिर सुन्दर रूप का दर्शन कर उससे तादात्म्य स्थापित करने के लिए व्याकुल हो उठती है और माधुर्य भाव पर आधारित प्रेम की साधना से उस असीम

के साथ तदाकार होने का प्रयत्न करती है। रहस्यवाद के मूल मे अद्वैतवाद रहता है। चिन्तन के क्षेत्र मे जो अद्वैतावाद है, भावना के क्षेत्र में वही रहस्यवाद हो जाता है। रहस्यवाद दो प्रकार का होता है—साधनात्मक और भावनात्मक। महादेवीजी का रहस्यवाद भावनात्मक है और उसमे उसके चारो रूपो—प्रेम-परक, चिन्तन-परक, भक्ति-परक और प्रकृति-परक—का सुन्दर समन्वय हुआ है। उनकी काव्य-वेदना आध्यात्मिक है। उसमे आत्मा का परमात्मा के प्रति आकुल प्रणय निवेदन है—

बीन भी हूँ मै तुम्हारी रागिनी भी हूँ।
× × × × ×
उतरो अब पलको मे पाहुन।

महादेवीजी की भाषा सस्कृत गर्भित खड़ी-बोली है किन्तु उसमें मधुरता और कोमलता पर्याप्त मात्रा मे है। भाषा पर उनका पूरा अधिकार है। भाषा उनके भावो के पीछे पीछे चलती है। शब्दों का लाक्षणिक प्रयोग वे बडी सुन्दरता से करती हैं। उनकी शैली मे अमूर्त वस्तुओ के लिये मूर्त-योजना बहुत मिलती है। भावो और प्राकृतिक रूपो के मानवीकरण मे वे सिद्धहस्त है। वे अपनी बात प्रतीको के माध्यम से कहती हैं। उनकी रहस्य-भावना की झलक देखिये—

हुए शूल अक्षत मुझे धूलि चन्दन।
अगरु धूम सी सांस, सुधि गन्ध सुरभित,
बनी स्नेह लौ, आरती चिर अकम्पित,
हुआ नयन का नीर अभिषेक जलकण।
सुनहले, सजीले, रगीले, छबीले,
हँसित कण्टकित अश्रु मकरद गीले,
बिखरते रहे स्वप्न के फूल अनगिन।

२५—ठाकुर गोपालशरणसिंह

ठाकुर गोपालशरणसिंह का जन्म स० १९४८ में रीवा राज्य में हुआ था। आपकी शिक्षा-दीक्षा रीवा मे हुई। किन्तु हाई स्कूल परीक्षा

पास करके आपने पढना छोड दिया और घर पर ही सस्कृत और हिन्दी साहित्य का अध्ययन करते रहे। लगभग बीस वर्ष की आयु मे आपने कविता लिखना प्रारम्भ किया। प्रारम्भ मे आपकी रचनाएँ 'सरस्वती' मे निकलती रही। आचार्य महावीरप्रसादजी द्विवेदी से आपको इस दिशा मे बडा प्रोत्साहन मिला। उस समय लोगो की यह धारणा थी कि खडी-बोली मे कविता नही की जा सकती, लेकिन गोपालशरणसिंह ने खडी-बोली की कविता मे भी उतना ही माधुर्य लाकर दिखा दिया कि उनकी धारणा गलत है।

ठाकुर साहब के काव्य-ग्रन्थो मे माधवी, कादबिनी, मानवी, ज्योतिष्मती, विश्वगीत और सागरिका प्रमुख है। उनकी भाषा सरस, सरल और मधुर है। माधुर्य तो उसमे जैसे कूट-कूट कर भरा है। यद्यपि आपने पुराने छन्दो को ही अपनाया है और मध्यकालीन कवियो की कृष्ण-भक्ति के ही दर्शन आपके काव्य मे होते है तथापि उसमे एक नवीनता है जो हृदय को प्रभावित किये बिना नही रहती। आपकी शैली वर्णनात्मक है। प्रकृति-चित्रण मे तो आप बड़े कुशल हैं। विन्ध्य-प्रदेश का प्राकृतिक सौंदर्य आपकी रचनाओ मे स्पष्ट झलकता है। ग्रामो से आपको बडा प्रेम है और वहाँ बहुत-सा समय बिताते है। अतः ग्रामो मे प्रकृति और जीवन का जो सामञ्जस्य दिखाई देता है उसका काफी प्रभाव उनकी रचनाओं मे परिलक्षित होता है। उनका शब्द-चयन सुन्दर और पद-विन्यास चमत्कारपूर्ण है। उनकी रचनाओ मे अलकार का स्वाभाविक प्रयोग भी देखने योग्य होता है।

आपकी प्रारम्भिक रचनाएँ कृष्ण-भक्ति से परिपूर्ण है। माधवी मे माधुर्य के दर्शन होते हैं तो कादम्बिनी मे प्रकृति का अनूठा चित्रण है। विश्वगीत और सागरिका दूसरे महायुद्ध के समय लिखी गई है। अत. उनके गीतो पर युद्ध-सम्बन्धी विचारो का प्रभाव है। उनकी अधिकाश रचनाओ मे रहस्यवाद और भक्ति की झलक दिखाई देती है। उनकी कविताओ मे सरलता तो गजब की होती है। उनका ब्रज वर्णन देखिये —

अकिन ब्रजेश की छटा है सब ओर यहाँ,
लता द्रुम बल्लियो मे और फल-फूल मे।

भूमि ही यहाँ की सब काल बतला सी रही,
ग्वाल-बाल सङ्ग वह लोटे इस धूल मे ।।
कल-कल रूप मे है बशी रव गूज रहा,
जाके सुनो कलित कलिन्दजा के कूल मे ।।
ग्राम-ग्राम धाम-धाम मे है घनश्याम यहाँ,
किन्तु वे छिपे है मजु मानस दुकूल मे ।।

२६—डॉ० रामकुमार वर्मा

डॉ० रामकुमार वर्मा का जन्म स० १९६२ मे मध्यप्रात के सागर जिले मे हुआ था। आपकी उच्च शिक्षा प्रयाग मे हुई। प्रयाग विश्व-विद्यालय से आपने एम० ए० पास किया और वही अध्यापक हो गये। इसके बाद आपने पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की। वर्माजी को केन्द्रीय सरकार ने पद्म भूषण की उपाधि से अलकृत किया है। वर्माजी एक सुकवि, नाटककार और समालोचक हैं। उनके समालोचात्मक ग्रन्थ और एकाकी नाटको के सग्रह तो काफी प्रसिद्ध हुए है। कविता की ओर वर्माजी की रुचि प्रारम्भ से ही थी। आपकी चित्र-रेखा नामक पुस्तक पर, जो कि कविताओ का सग्रह है, आपको २००० रु० का देव-पुरस्कार प्राप्त हुआ था। आधुनिक कवियो मे वर्माजी की गिनती भी प्रसाद, पत, और निराला की कोटि मे होने लगी थी, किन्तु इन दिनो उन्होने कविता लिखना बन्द-सा कर दिया है और एकाकी नाटक तथा समा-लोचनात्मक ग्रन्थ ही अधिक लिखे है।

'निशीथ', 'चन्द्रकिरन', 'चित्ररेखा', 'आकाश गङ्गा' आपके काव्य-सग्रह हैं। 'पृथ्वीराज की आँखें', 'रेशमी टाई', 'चारु-मित्रा', 'विभूति', 'सप्तकिरण' और 'कौमुदी-महोत्सव' एकाकी नाटको के सग्रह हैं। कबीर का रहस्यवाद और हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास आलोचना सबधी ग्रन्थ हैं। इन दिनो उनके एकाकी नाटको के अच्छे सग्रह निकले हैं। 'चित्ररेखा' की तरह 'चन्द्रकिरन' पर भी उन्हे चक्रधर-पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

डॉ० रामकुमार वर्मा के ऊपर आधुनिक युग के रहस्यवादी और छायावादी कवियो का काफी प्रभाव पड़ा है और उनकी कविताएँ उनकी

ही भाँति सरस और मधुर हैं। उनकी भाषा मे सस्कृत की तत्सम पदावली अधिक मात्रा मे पाई जाती है, किन्तु उससे भाषा बोझिल बनने के स्थान पर मधुर और कोमल ही बनी है। भाषा पर वर्माजी का जबरदस्त अधिकार है और उनकी भाषा भावो के पीछे-पीछे चलती है। उन्होंने कोई प्रबन्ध-काव्य नही लिखा है। उनकी रुचि मुक्तक-काव्य मे ही है। उनके गीतो मे तीव्र अनुभूति के साथ बुद्धितत्व का सुन्दर समन्वय है। उनकी कल्पना और भावना दोनो ही उच्च कोटि की होती हैं। उनकी 'चचाई-प्रपात' नामक कविता मे कल्पना और भावना का सुन्दर चित्र देखिये.—

यह जल प्रताप क्या जग मे है,
सौंदर्य पतन का सूत्रधार।
यह कितना गौरवपूर्ण पतन,
जिसमे न हार रह गई हार॥
मेरा उत्थान न करण पर भी,
पा सका पतन का यह प्रताप॥
चेतन पर जड़ की विजय,
आज मैं देख रहा हूँ मौन आप॥

२७—सुभद्राकुमारी चौहान

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान का जन्म स० १९६१ मे प्रयाग मे हुआ था। आपकी शिक्षा-दीक्षा प्रयाग मे हुई। स० १९७६ मे आपका विवाह खण्डवा के वकील ठाकुर लक्ष्मणसिंह के साथ हुआ। बाल्यावस्था से ही सुभद्राकुमारीजी मे देश-भक्ति की बडी प्रबल भावना थी। आपने असहयोग-आदोलन मे भाग लिया था और सारा जीवन ही राष्ट्रीय कार्य करते-करते व्यतीत किया था। आपकी मृत्यु भी इसी प्रकार के कामो मे सलग्न रहते हुये मोटर-दुर्घटना से हुई।

श्रीमती सुभद्राकुमारी की निम्नलिखित रचनाएँ प्रसिद्ध है—मुकुल, बिखरे मोती, त्रिधारा। मुकुल पर आपको ५०० रु० का सेक्सरिया पुरस्कार प्राप्त हुआ था। खडी-बोली की हिन्दी कवियित्रियो मे आपका महत्वपूर्ण

स्थान है। आप नारी थी। अत नारी मनोविज्ञान और मातृहृदय आप की कविताओ मे से छलका पडता है। आपकी रचनाओ मे राष्ट्रीयता भी कूट-कूट कर भरी हुई है। 'झाँसी वाली रानी' तो आपकी अमर कविता है। आपकी रचनाओ ने स्वतन्त्रता-सग्राम के दिनो मे हजारो-लाखो व्यक्तियो को प्रेरणा और बल दिया है। कविता आपके हृदय का गीत है। भावनाओ से भर कर ही आप ने स्वाभाविक रूप से रचनायें लिखी है। अत आपकी कविता मे भाषा का सौष्ठव और शब्द-साधना उतनी नही है जितना भावो का सौंदर्य है। स्वाभाविकता और सरलता आप की कविताओ का सबसे बडा गुण है। कहानियो पर भी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग की ओर से आपको सेक्सरिया-पुरस्कार मिला था। आप मे एक अच्छी कवियित्री की सम्भावनाये छिपी हुई थी। यदि आप जीवित रहती तो हिंदी-साहित्य को बहुत कुछ मिलता। आपकी 'वीरो का वसत' नामक कविता की प्रारम्भिक पक्तियाँ देखिये —

वीरो का कैसा हो वसत।
आ रही हिमालय से पुकार,
है उदधि गरजता बार बार,
प्राची पश्चिम, भू, नभ, अपार,
सब पूछ रहे है दिग-दिगन्त,
वीरो का कैसा सो वसत !
फूली सरसो ने दिया रङ्ग,
मधु लेकर आ पहुँचा अनङ्ग,
वधु-वसुधा पुलकित अङ्ग-अङ्ग,
है वीर वेश मे किन्तु कन्त
वीरो का कैसा हो वसत !
भर रही कोकिला इधर तान,
मारू बाजे पर इधर गान,
है रङ्ग और रण का विधान,
मिलने आये है आदि अन्त
वीरो का कैसा हो वसन्त !

गल वाहे हो या हो कृपाण,
चल चितवन हो या धनुषवाण,
हो रस विलास या दलित त्राण,
अब यही समस्या है दुरन्त,
वीरो का कैसा हो वसन्त !

२८—श्यामनारायण पाण्डेय

पण्डित श्यामनारायण पाण्डेय का जन्म आजमगढ जिले के डुमराव ग्राम मे स० १९६७ मे हुआ था। आपके पिता पण्डित रामाज्ञा शास्त्री सस्कृत के विद्वान् और साहित्यिक व्यक्ति थे। अत घर के वातावरण से ही साहित्यिकता आपको प्राप्त हो गई थी। आपने सस्कृत भाषा का अच्छा अध्ययन किया और गवर्नमेंट सस्कृत कॉलेज काशी मे शोधकार्य भी किया। आजकल आप माधव सस्कृत विद्यालय सारङ्ग, काशी मे प्रधान-अध्यापक हैं।

पाण्डेयजी की रचनाओ मे 'त्रेता के दो वीर', 'रिमझिम', 'आँसू के कण', 'माधव', 'हल्दी-घाटी' और 'जौहर' प्रमुख हैं। 'हल्दी-घाटी' पर आपको पुरस्कार भी मिल चुका है। पाण्डेयजी वस्तुत वीर रस के कवि है। उनकी रचनायें राष्ट्रीय-कवि भूषण का स्मरण कराती हैं। राजपूतो का त्याग, रण-कौशल, बलिदान और राजपूत बालको का जौहर जैसे ओजपूर्ण विषय ही आपके काव्य के विषय है। युद्ध का वर्णन, शस्त्र-सचालन और वीरो की मानसिक अवस्था का जितना सुन्दर चित्र आपने खीचा है वह मुश्किल से ही अन्य हिन्दी-कवियो की रचना मे मिलेगा। यद्यपि आपकी रचनाओ मे यत्र तत्र अत्युक्ति मिलती है तथापि वह खटकती नही है। आपकी भाषा शुद्ध परिमार्जित खडी-बोली है। आपकी भाषा का ओज तो दर्शनीय है। वह जैसे नवीनता लिए हुए है। प्रवाह तो इतना है कि कोई भी व्यक्ति उससे प्रभावित हुए बिना नही रहता। आपकी भाषा ताल, गति, प्रवाह और प्रसग के अनुसार बदलती रहती है। हल्दी-घाटी के युद्ध का एक वर्णन देखिये —

बन गये वीर मतवाले थे, आगे वे बढते चले गये।
राना प्रताप की जय करते, तोपों तक बढते चले गये॥
उन आग बरसती तोपो के, मुँह फेर अचानक टूट पड़े।
वैरी सेना पर तडप तडप, मानो शत शत पवि छूट पडे॥
फिर महा-समर छिड गया तुरन्त, लोहू-लोहित हथियारो से।
फिर होने लगे प्रहार-वार, बरछे, भाले, तलवारो से॥
शोणित से लथपथ ढालो से, कर के कुन्तल करवालो से।
खर छुरी कटारी भालो से, भू भरी भयानक भालो से॥

२६—श्री रामधारीसिह 'दिनकर'

दिनकरजी का जन्म मुँगेर जिले के सिमिरिया नामक गाँव मे सवत् १९६५ मे हुआ था। आपकी शिक्षा गाँव की पाठशाला मोकामा घाट एच० ई० स्कूल तथा पटना कॉलेज मे हुई। सन् १९३१ मे आपने इतिहास मे आनर्स के साथ बी० ए० पास किया। सन् १९३३ मे पहले आप एक एच० ई० स्कूल मे हैडमास्टर, इसके बाद सब-रजिस्ट्रार और फिर प्रचार-विभाग के उप-निर्देशक बने। इसके बाद आप लगटसिह पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज, मुजफ्फरपुर मे हिन्दी के विभागाध्यक्ष हुए। सन् १९५२ मे नौकरी से त्याग-पत्र देकर राज्य-सभा के सदस्य निर्वाचित हुए। सन् १९५५ मे आप पोलैण्ड के राष्ट्रकवि अदममित्स केविच के शती-समारोह मे भारतीय काव्य-लोक का प्रतिनिधित्व करने वारसा गये और इसी अवसर पर आपने यूरोप और मिश्र का भ्रमण किया।

दिनकरजी की मुख्य रचनाएँ इस प्रकार हैं—

(१) काव्य—'रेणुका', 'हुँकार', 'रसवन्ती', 'द्वन्द्वगीत', 'कुरुक्षेत्र', 'साम-धेनी', 'धूप-छाँह', 'इतिहास के आँसू', 'रश्मिरथी', 'नीलकुसुम', 'दिल्ली', 'बापू', 'नीम के पत्ते' और 'उर्वशी'।

(२) गद्य—'मिट्टी की ओर', 'अर्द्धनारीश्वर', 'रेती के फूल', 'सस्कृति के चार अध्याय', 'हमारी सास्कृतिक एकता' और 'आधुनिक काव्य की भूमिका'।

दिनकरजी राष्ट्रीय धारा के नवीन कवियो मे प्रमुख है। वे

क्रान्ति-मूलक राष्ट्रवाद के कवि है। उन्होने राष्ट्रवाद को सामाजिक धरातल दिया है। वे उगते राष्ट्र के वैतालिक है। उनकी काव्य-कला जीवन के गतिशील तत्वो को लेकर चली है, किन्तु उनमे उद्वोधन अधिक है। वे शोषितो की करुण कथा के गायक है। वे अत्याचार और अन्याय, शोषण और उत्पीडन तथा साम्राज्यवाद और सामन्तीय सस्कृति के विरोधी हैं। काव्य-रचना उनके लिए राष्ट्रीय-प्रेम के प्रकाशन का माध्यम है। उनकी भाषा मे प्रवाह और शैली मे ओज है। गुप्तजी भी राष्ट्र-कवि है, लेकिन उनकी जन-भावना जहाँ करुण है वहाँ दिनकरजी की जन-भावना परुष है। 'भारत का यह रेशमी नगर' नामक कविता की कुछ पक्तियाँ देखिये.—

जलते हैं तो ये गाँव देश के जला करे,
आराम नई दिल्ली अपना कब छोडेगी ?
क्या रक्खेगी मरघट मे भी रेशमी महल,
या आँधी की खाकर चपेट सब छोडेगी ?
चल रहे ग्राम कुञ्जो मे पछिया के झकोर,
दिल्ली लेकिन ले रही लहर पुरवाई मे।
है विकल देश सारा अभाव के तापो से,
दिल्ली सुख से सोई है नरम रजाई मे !

३०—श्री हरिवशराय 'बच्चन'

श्री बच्चन का जन्म सन् १९०७ मे प्रयाग के एक कायस्थ परिवार मे हुआ है। बच्चन आपका प्यार का नाम है। आपकी प्रारम्भिक से लेकर उच्च शिक्षा तक इलाहाबाद मे हुई। प्रारम्भ मे आप अग्रवाल इण्टर-मीजियेट कॉलेज मे अध्यापक के स्थान पर कार्य करने लगे। उसके बाद प्रयाग विश्वविद्यालय मे ही अध्यापक हो गये। आप शोधकार्य के सिलसिले मे इगलैण्ड गये और वहा से पी-एच० डी० करके आ गये। आजकल आप दिल्ली मे भारत सरकार के विदेशी विभाग मे कार्य कर रहे हैं।

आपकी प्रमुख रचनाएँ हैं—'तेरा हार', मधुशाला', 'मधुबाला',

'निशा-निमन्त्रण', आकुल-अन्तर', 'एकान्त-सगीत', 'सतरगिनी', 'सोपान', 'हलाहल', 'वगाल का काल' आदि । श्री वच्चन ने कला को नया मोड दिया है । पत्नी की असामयिक मृत्यु ने उन्हे सन् १६३६ मे शोक मे डुवो दिया था । उस समय की उनकी रचनाओ मे जवरदस्त निराशावाद दिखाई देता है । वे हिन्दी-साहित्य मे हालावाद की अभारतीय परम्परा लेकर उपस्थित हुए थे, पर वाद मे प्रेम और जीवन की साफसुथरी अभिव्यक्ति करने लगे । निशा-निमन्त्रण उनकी व्यक्तिवादी, निराशाग्रस्त, असफल प्रेम और मनस्त जीवन की काव्य-कला का उत्कृष्ट उदाहरण है ।

उनकी भाषा शुद्ध खडी-वोली है । उर्दू के शब्दो का कही-कहीं प्रयोग भी उन्होने किया है । उनकी हालावादी कविताओ मे वडी जवरदस्त मस्ती है । मधुशाला की कुछ पक्तियाँ देखिये —

लालायित अधरो से चूमी, हाय नही जिसने हाला ।
हर्ष विकम्पित कर से जिसने हाय न छुआ मधु का प्याला ।।
हाथ पकड लज्जित साकी का हाय नही जिसने खीचा ।
व्यर्थ सुखा डाली उसने ही इस जीवन की मधुशाला ।।

गद्य-लेखक-परिचय

१—बालकृष्ण भट्ट

श्री बालकृष्णजी भट्ट का जन्म स० १६०१ विक्रमी मे प्रयाग मे हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा सस्कृत मे हुई। इसके बाद आप प्रयाग के मिशन स्कूल मे भर्ती हुए लेकिन हैड-मास्टर साहब से झगडा हो जाने के कारण आपने स्कूल छोड दिया। आपने घर पर ही सस्कृत का अध्ययन चालू रक्खा और यमुना मिशन स्कूल मे अध्यापक हो गये। भट्टजी स्वतन्त्र प्रकृति के निर्भीक व्यक्ति थे। अत. आपकी वहाँ नही बनी और नौकरी छोडनी पडी। अब आपने व्यापार मे ध्यान लगाया, लेकिन उसमे भी सफलता नही मिली। अन्त मे आपने साहित्य-सेवा का कार्य प्रारम्भ किया और 'हिन्दी-प्रदीप' नामक पत्र निकाला। वे इस पत्र का सम्पादन लगातार ३२ वर्ष तक करते रहे।

भट्टजी की रचनाओ मे साहित्य सुमन (निबन्ध सग्रह), सौ अजान एक सुजान, नूतन ब्रह्मचारी (उपन्यास) तथा बाल-विवाह (नाटक) प्रमुख हैं।

भट्टजी और प्रतापनारायणजी मिश्र हिन्दी के प्रारम्भिक निबन्ध-कारो मे से हैं। उनके प्रयत्न से हिन्दी-भाषा मे भावो को मार्मिक, सरल और अर्थवान ढङ्ग से व्यक्त करने की क्षमता आई। भट्टजी के निबन्धो ने हिन्दी की गद्यशैली को एक नवीन रूप दिया। उनके निबन्धो मे न अलकारिता है न दुरूहता। छोटे-छोटे सयत वाक्यो मे उन्होने अपने भाव व्यक्त किये हैं। उनकी भाषा मे प्रौढता और शैली मे मार्मिकता है। भट्टजी सस्कृत के विद्वान् थे। अत उनके निबन्धो मे सस्कृत के तत्सम शब्दो की अधिकता है। किन्तु उन्होने उर्दू, फारसी और अरबी भाषा के शब्दो का भी एक-दम बहिष्कार नही किया। सस्कृत और पाश्चात्य साहित्य के अवतरण भी आपके निबन्धो मे पर्याप्त मात्रा मे मिलते हैं। निबन्धो में उनके व्यक्तित्व की छाप स्पष्टत दिखाई देती है। उन्होने कही-कही बडे तीखे व्यग

प्रहार भी किये है। निबन्ध उनके आन्तरिक भावो के सच्चे प्रतिनिधि है और उनमे उनका जीवन झलकता है। उनकी भाषा और शैली मे अकृत्रिमता, स्निग्धता और सरसता है। उन्होने अपने भाव बडी स्पष्टता के साथ व्यक्त किये हैं। भट्टजी की शैली का नमूना देखिये.—

'कुई की कलियो को विकसित करते मृगनयनियो के मान को समूल उन्मूलित कर छिटकी हुई चांदनी से दशो दिशाओ को धवलित करते, अन्धकार को निगलते, सीढी पर सीढी शिखर के समान आकाश रूपी विशाल पर्वत के मध्य भाग मे वह चढा चला आ रहा है। क्षपात सस्फाणु को हटाने वाला यह चन्द्रमा ऐसा मालूम होता है मानो आकाश महा-सरोवर मे श्वेत कमल खिल रहा है। उनमे बीचबीच मे कलक की कलियाँ है सो मानो भौंरे गूँज रहे है।"

२—प्रतापनारायण मिश्र

मिश्रजी का जन्म स० १९१३ मे कानपूर मे हुआ था। उनके पिता उन्नाव के रहने वाले थे। वे कानपुर आकर बस गये थे। मिश्रजी को शिक्षा के लिये कानपुर के मिशन स्कूल मे भेजा गया लेकिन वहाँ इनका मन नही लगा और पढना छोड दिया। इसके बाद घर पर ही आपने सस्कृत, बगला, फारसी, उर्दू आदि भाषाओ का ज्ञान प्राप्त किया। स० १९५१ मे आपका देहान्त हो गया। मिश्रजी ने अपनी अल्पायु मे ही लगभग ४० ग्रन्थो की रचना की। उनकी रचनाओ मे 'हठी हमीर', 'कलि-प्रभाव' और 'गौ-सकट' नामक तीन निबन्ध सग्रह प्रमुख हैं। उनके नाटको मे 'भारत-दुर्दशा' और 'कलि-कौतुक' उल्लेखनीय हैं।

भट्टजी की भाँति मिश्रजी को भी खडी-बोली भाषा को मार्मिक, सरस, साधु और सयत बनाने का श्रेय है। उनके निबन्धो ने हिन्दी की गद्य-शैली को नवीन रूप प्रदान किया। मिश्रजी के निबन्ध न तो अलङ्कारिता के बोझ से दबे हुए हैं, न सस्कृत की क्लिष्ट पदावली से। उनमे सरलता के साथ मार्मिकता समाई हुई है। छोटे-छोटे और संयत वाक्यो में ही उन्होंने अपनी बात कहने का प्रयत्न किया है। यद्यपि मिश्रजी के निबन्धो मे प्रान्तीयता, स्वभाव-वैचित्र्य और मनोरजन काफी

मात्रा मे है, तथापि उनकी शैली मे भाषा की प्रौढता और भावो की मार्मिकता है। मिश्रजी के व्यग बडे ही तीखे होते हैं। उनके निबन्ध मानो उनके आन्तरिक भावो के चित्र ही हैं। उनमे उनका सारा जीवन झलकता हुआ प्रतीत होता है। कुछ अपवाद छोडकर उनकी भाषा और शैली मे स्वाभाविकता, सरसता और माधुर्य है। उनका शब्दचयन बडा सुरुचिपूर्ण और विचारो मे बडी ही स्पष्टता है। निबधो मे उनके व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। हास्य-विनोद का पुट उनकी शैली की विशेषता है। उनकी भाषा का एक नमूना देखिये —

"दैवयोग से यदि कोई विशेष खेद का कारण उपस्थित हो जिसे नित्य के उपाय दूर न कर सके, तो उस दशा मे भी उतनी घबराहट उपयोगी नही जितनी अभ्यासियो को होती है। क्योकि विचारशक्ति इतना अवश्य समझायेगी कि सुख-दुख. सदा आया ही करते हैं।"

३—बालमुकुन्द गुप्त

गुप्तजी का जन्म स० १९२२ मे रोहतक जिले के गुरयानी नामक ग्राम मे हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा अरबी, फारसी और उर्दू मे हुई। बाल्यावस्था से ही उनकी रुचि साहित्य मे थी। स० १९४४ मे उन्होंने 'अखबारे चुनार' के सम्पादन का कार्य प्रारम्भ किया। इसके बाद उन्होंने लाहौर से निकलने वाले एक अन्य पत्र 'कोहनूर' का सम्पादन प्रारम्भ किया। अब तक वे उर्दू मे लिखते थे। लेकिन प्रतापनारायणजी मिश्र से प्रभावित होकर हिन्दी के क्षेत्र मे आ गये। लेखक तो थे ही, हिन्दी-भाषा पर शीघ्र ही अधिकार प्राप्त कर लिया और थोडे ही दिनो मे हिन्दी के अच्छे लेखको मे उनकी गणना होने लग गई।

कालाकाकर से निकलने वाले हिन्दी-पत्र 'हिन्दुस्तान' के सम्पादक का कार्य उन्होंने पहले किया, उसके बाद 'भारत-मित्र' का। जीवन भर पत्रो के सम्पादन का कार्य करते हुए ही स० १९६४ मे वे परलोकवासी हुए। उनके निबध-सग्रह मे 'गुप्त-निबधावली' और नाटको मे 'रत्नावली नाटक' प्रसिद्ध हैं।

उर्दू के अच्छे विद्वान् होने के कारण गुप्तजी की शैली मे सस्कृत के

व्यावहारिक तत्सम शब्दो के साथ उर्दू के शब्दो का सुन्दर समन्वय दिखाई देता है। मुहावरो और कहावतो के प्रयोग से भाषा आकर्षक हो गई है। उनके वाक्य छोटे किंतु मार्मिक होते हैं। मिश्रजी की तरह उनका व्यग भी बडा तीखा होता है। उनकी भाषा अपेक्षाकृत अधिक सरल और व्यावहारिक होती है। अखबारो मे जिस प्रकार की भाषा होती है वैसी ही भापा उनकी थी। उनकी शैली नाटकीय है। भावो की अभिव्यक्ति विषय के अनुकूल हुई है। बीच-बीच मे हास्य और विनोद ने उनकी भाषा को चुटकीला बना दिया है। उनके वाक्य छोटे, दृढ और सयत होते हैं तथा चोट गहरी करने वाले। वे सीधे-सादे शब्दो मे अपनी बात कहने की कला मे दक्ष हैं। उनकी भाषा का एक नमूना देखिये —

"हरिश्चन्द्रजी ने उत्तर देकर बहुत कुछ समझाया-बुझाया, पर वहाँ यार लोगो ने जो रगा चढा दिया वह न उतरा। यहाँ तक कि बाबू हरिश्चन्द्रजी की चलाई हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका और बाल-बोधनी नामक दो मासिक-पत्रिकाओ की जो १००-१०० कापियाँ प्रान्तीय गवर्नमेण्ट लेती थी, वह भी बद हो गई।"

४—महावीरप्रसाद द्विवेदी

आचार्य महावीरप्रसादजी द्विवेदी का जन्म रायबरेली जिले के दौलतपुर नामक गाँव मे स० १९२१ मे हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा सस्कृत मे हुई। इसके बाद फतेहपुर तथा उन्नाव मे वे अग्रेजी स्कूल मे भी पढे। अग्रेजी की यह शिक्षा पूरी न हो सकी और उन्हे बीच मे ही स्कूल छोडना पडा। स्कूल छोडकर उन्होने तार का काम सीखा और तारबाबू बन गये। महावीरप्रसादजी स्वतन्त्र प्रकृति के व्यक्ति थे। यहाँ एक ऑफीसर से अनबन हो गई। आपने तुरन्त नौकरी छोड दी। नौकरी के दिनो मे भी द्विवेदीजी का अध्ययन चलता रहता था। उन्होने इन दिनो मराठी, बगला आदि भाषाओ का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। नौकरी छोडने के कुछ समय बाद आप सरस्वती के सम्पादक हो गये। स० १९९५ मे आपका देहावसान हुआ।

हिन्दी भाषा को सुस्थिर रूप देने के काम मे आचार्य महावीरप्रसादजी

ने जो महत्त्वपूर्ण योग दिया उसके कारण वे हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे सदैव अमर रहेगे। उन्होंने सस्कृत और अग्रेजी दोनो साहित्यो के शब्द और भाव-भण्डार लेकर हिन्दी की सेवा की। उन्होंने अग्रेजी-गद्य के आदर्श पर हिन्दी-गद्य की व्यवस्था की। विराम-चिह्नो के साथ अनुच्छेद बनाकर लिखने की ओर उन्होने सबसे पहले ध्यान दिया। वे ही पहले व्यक्ति थे जिन्होने व्याकरण की शुद्धि, भाषा की स्थिरता और शब्द-भण्डार की वृद्धि पर जोर दिया। गद्य के क्षेत्र मे उन्होंने अग्रेजी-साहित्य के अनुकरण की बात कई बार कही और पद्य के क्षेत्र मे सस्कृत साहित्य के अनुकरण की। द्विवेदीजी के अथक परिश्रम से भाषा की अर्थव्यञ्जना और तार्किकता मे स्पष्टता आ गई।

द्विवेदीजी के पहले बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र ने शैली को जन्म दे दिया था लेकिन इनकी शैली मे व्यक्तित्व की छाप अधिक थी। वह साधारण जनता के लिये आकर्षक नही थी। साधारण जनता को आकर्षित करने वाली मनोमुग्धकर शैली को जन्म देने का श्रेय महावीरप्रसादजी को ही है। कठिन से कठिन और जटिल से जटिल समस्या को भी वे अपनी घरेलू और चित्ताकर्षक शैली मे प्रकट कर देते थे। ध्यान से देखने पर हमे द्विवेदीजी की तीन प्रकार की शैलियाँ दिखाई देती है—व्यग्यात्मक या परिचयात्मक, आलोचनात्मक और गवेषणात्मक। उनकी इन तीनो शैलियो मे भाषा तीन प्रकार की ही है। व्यग्यात्मक शैली की भाषा सावारण जनता की व्यावहारिक और आकर्षक भापा है। इसके वाक्य सीधे और सरल है। आलोचनात्मक शैली मे उनकी भाषा सयत तथा गम्भीर है। ओज भी उनकी भाषा मे पर्याप्त है। इस शैली मे सस्कृत और उर्दू के तत्सम शब्दो का प्रयोग किया गया है। गवेपणात्मक शैली मे विशुद्ध हिन्दी का प्रयोग किया गया है।

इस प्रकार द्विवेदीजी ने सरल और सुबोध भाषा को ही अपनाया। उन्होने सस्कृत-गर्भित शैली और उर्दू-मिश्रित शैली के बीच का मार्ग अपनाया। जब उन्हे कवित्वपूर्ण और गम्भीर बात कहनी होती थी तब

वे उसमे एक प्रकार का घरेलू वातावरण उपस्थित कर देते थे। वे इस प्रकार के सकेत और ध्वनि ले आते थे, बात को इस प्रकार घुमा-फिरा कर कहते थे कि पाठक उसे सरलतापूर्वक समझ लेते थे और उसका पूरा आनन्द उठाते थे। देखिये कालिदास के 'मेघदूत' का एक प्रसग वे अपनी शैली मे किस प्रकार समझा रहे हैं —

"जरा इस यक्ष की नादानी तो देखिये। आग, पानी, धुएँ और वायु के सयोग से बना हुआ कहाँ जड मेघ और कहाँ बड़े ही चतुर मनुष्यो के द्वारा भेजा जाने वाला सन्देशा। परन्तु वियोग-जन्य दु ख से व्याकुल हुए यक्ष ने इस बात का कुछ भी विचार नही किया। उत्सुकता और आतुरता के कारण उसे इस बात का ध्यान ही न रहा कि बेचारा मेघ भला किस तरह सन्देशा ले जायगा। बात यह है कि जिस दशा मे यक्ष था उस दशा को प्राप्त होने पर लोगो की बुद्धि मारी जाती है। वे चेतन-अचेतन पदार्थों का भेद नही जान सकते। अतएव जो काम जिसके करने योग्य नही उससे भी करने के लिये वे प्रार्थना करने लगते हैं।"

५—बाबू श्यामसुन्दरदास

बाबू श्यामसुन्दरदास का जन्म स० १९१४ मे बनारस में हुआ था। आपकी शिक्षा-दीक्षा आधुनिक ढङ्ग से हुई। आपने बी० ए० पास किया और उसके बाद सेण्ट्रल-हिन्दू-कॉलेज मे अग्रेजी के अध्यापक हो गये। यहाँ से नौकरी छोड कर कुछ दिनों आपने नहर-विभाग तथा कश्मीर-नरेश के दफ्तर में काम किया। इसके बाद आप यह काम छोडकर लखनऊ के कालीचरण हाई स्कूल मे प्रधानाध्यापक हो गये। लेकिन हिन्दी-सेवा की दृष्टि से आपके जीवन का वह समय बडा महत्त्वपूर्ण है जब कि आप काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष बने। यहाँ आपने सं० १९९२ तक कार्य किया। स० २००२ मे आप परलोकवासी हुए।

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा बाबू श्यामसुन्दरदासजी की ही संगठन शक्ति का परिणाम है। 'हस्त लिखित पोथियो की खोज', 'हिन्दी शब्द सागर', 'सूरसागर', 'कबीर-वचनावली', 'पृथ्वीराज-रासो' आदि अनेक

महत्त्वपूर्ण प्राचीन ग्रन्थों का सम्पादन आपके प्रोत्साहन एव प्रत्यक्ष सहयोग के द्वारा हुआ। 'साहित्यालोचन', 'भाषा-विज्ञान', 'तुलसीदास', 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र', 'हिन्दी भाषा और साहित्य', 'भाषा-रहस्य', 'रूपक-रहस्य' आदि आपके प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। आपका सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य यह है कि आपने अपने ५० वर्ष के सेवा-काल मे हिन्दी-साहित्य और हिन्दी भाषा के प्रचार मे महत्त्वपूर्ण योग दिया। आपने विश्वविद्यालयो मे हिन्दी भाषा और साहित्य के पठन-पाठन की व्यवस्था कराई। आपकी हिन्दी सेवाओ के फलस्वरूप सरकार ने आपको 'राय-बहादुर' की, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने डी० लिट्० की तथा अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने 'साहित्यवाचस्पति' की उपाधि प्रदान की थी।

श्यामसुन्दरदासजी की भाषा सस्कृत के तत्सम शब्दो से पूर्ण है। उसमे उर्दू आदि विदेशी भाषाओ के शब्दो का बहिष्कार रहता है। विषय को बोधगम्य बनाने के लिये वे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा का सहारा लेते हैं और अन्त मे 'साराश यह है' अथवा 'सक्षेप मे' लिखकर सूत्र रूप मे सारी बात को कहने का प्रयत्न करते हैं। विषय की गम्भीरता तथा गम्भीर स्वभाव के कारण आपकी भाषा मे चुटीलापन नही है। आपने लोकोक्तियो और मुहावरो का प्रयोग बहुत कम किया है। आपकी भाषा सगठित, व्यवस्थित और प्रभावपूर्ण है। आपकी शब्द-योजना सयत और सुन्दर होती है। आपकी रचनाओ मे दो प्रकार की शैलियो के दर्शन होते हैं—विचारात्मक और गवेषणात्मक। गवेषणात्मक शैली मे उन्होने जो कुछ लिखा है उसमे प्रवाह नही है। उसमे प्राय क्लिष्टता दिखाई देती है। किन्तु विचारात्मक शैली मे उन्होने जो कुछ लिखा उसमे प्रवाह है, सरलता है, व्यावहारिकता है। उनकी शैली का एक नमूना देखिये —

"यह सब होते हुए भी तुलसीदासजी ने जो कुछ लिखा है 'स्वातः सुखाय' लिखा है। उपदेश देने की अभिलाषा से अथवा कवित्व-प्रदर्शन की कामना से जो कविता की जाती है, उसमे आत्मा की प्रेरणा न रहने के कारण स्थायित्व नही होता। कला का जो उत्कर्ष हृदय से सीधी निकली हुई रचनाओ मे होता है, वह अन्यत्र मिलना असम्भव है।

गोस्वामीजी की यह विशेषता उन्हे हिन्दी-कविता के शीर्षासन पर ला रखती है ।'

६—प्रेमचन्द

उपन्यास-सम्राट् बाबू प्रेमचदजी का जन्म स० १९३७ मे काशी के पास पाण्डेपुर नामक ग्राम मे हुआ था । आपका असली नाम धनपतराय था । आपकी प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू में हुई । १४ वर्ष की आयु में ही आपके माता-पिता चल बसे । लेकिन सब परेशानियो का सामना करते हुए भी आपने हाई स्कूल परीक्षा पास करली और अध्यापक हो गये । इसके बाद आप अध्यापन के साथ-साथ अध्ययन भी करते रहे और बी० ए० पास हो गये । अब आप डिप्टी-इन्सपेक्टर-ऑफ-स्कूल्स हो गये । लेकिन स्वतत्र प्रकृति के व्यक्ति होने के कारण ऑफीसरो से नही पट सकी और आपने त्याग-पत्र दे दिया ।

प्रेमचदजी का साहित्यिक जीवन उर्दू से प्रारम्भ हुआ । उन दिनों आपने नवाबराय के नाम से कहानियाँ और उपन्यास लिखे थे । लेकिन बालमुकुदजी गुप्त की भाँति आप भी सन् १९१६ में उर्दू का क्षेत्र छोडकर हिन्दी में आ गये । प्रेमचद के नाम से आपकी पहली कहानी 'सरस्वती' मासिक-पत्रिका में निकली । फिर तो आपने हिन्दी-साहित्य को लगभग ४०० कहानियाँ और ९-१० उपन्यास दिये और उसे समृद्ध बनाने का अथक परिश्रम किया । आपने 'मर्यादा', 'माधुरी', 'हस', 'जागरण' आदि पत्रो का सम्पादन भी किया । स० १९९३ मे आपका देहावसान हो गया । आपकी रचनाएँ निम्न प्रकार हैं—

(१) कहानी-सग्रह—प्रेम-पूर्णिमा, प्रेम-पच्चीसी, प्रेम-प्रसून, प्रेम-द्वादशी, प्रेम-प्रमोद, सप्त-सरोज, नव-निधि, ग्राम्यजीवन की कहानिया आदि ।

(२) उपन्यास—सेवा-सदन, गोदान, गबन, काया-कल्प, रंग-भूमि, कर्म-भूमि, निर्मला, प्रेमाश्रम आदि ।

(३) नाटक—कर्बला, सगम और प्रेम की वेदी ।

प्रेमचदजी ने हिंदी के कथा-साहित्य में एक नया युग ला दिया । आपने समाज के पीडित-पतित तथा पिछडे हुए लोगों को ही अपनी

रचनाओ के पात्र बनाये। आप ग्राम्य-जीवन और ग्राम्य वातावरण के एक सफल कलाकार है। पुरुप-पात्रो का चरित्र-चित्रण आपने बड़ी सफलता के साथ किया है। वे लिखना अपना धर्म समझते थे और उसी मे उनको सतोष मिलता था। वे साहित्य के गाधी थे। जीवन भर लोक-कल्याण की तीव्र भावना से साहित्य-सेवा करते रहे।

प्रेमचदजी की भाषा में गभीरता के साथ प्रवाह है। उसमे भाव-व्यञ्जकता के साथ-साथ मधुरता और सरलता है, लय और सगीत है। उनकी इस शैली मे सस्कृत, बङ्गला, मराठी, उर्दू और अग्रेजी भाषा के सभी गुण मिलते है। प्रेमचदजी मनोवैज्ञानिक भावो के अत्यंत सूक्ष्म और स्पष्ट चित्रण मे अद्वितीय हैं। उनकी उपमाएँ और रूपक साधारण जीवन के भावमय तथा चित्ताकर्षक चित्र उपस्थित करती हैं।

उनकी भाषा सरल, बोधगम्य और व्यावहारिक है। उसका प्रयोग सदैव पात्रो के अनुकूल हुआ है। उर्दू और अग्रेजी के बहुत से शब्दो का प्रयोग उन्होने बड़े स्वाभाविक रूप से किया है और उससे प्रवाह मे कोई बाधा नही आने पाई है। मुहावरो, कहावतों और सूक्तियो का प्रयोग उन्होने खुलकर किया है। इससे उनकी भाषा सजीव, चुटीली और आकर्षक बन गई है। यद्यपि उन्होंने साधारणत पात्रो के अनुकूल भाषा का ही प्रयोग किया है, तथापि जहाँ वे कुछ अधिक भावुक बन गये वहाँ उनकी भाषा कवित्वमय हो गई है। ऐसे स्थानो पर सस्कृत के तत्सम शब्दो की अधिकता भी पाई जाती है। उनकी शैली लोकप्रिय है किन्तु कही-कहीं व्याकरण की शिथिलता और देहाती प्रयोग भी मिलते है।

प्रेमचदजी की दृष्टि बडी पैनी थी। मानव-जीवन को उन्होंने बडी बारीकी से देखा था। अत उनकी रचनाओ मे मानव-जीवन की सूक्ष्मतम बातो का भी सुन्दर चित्रण मिलता है। वे अतिशयोक्ति से दूर रहते थे और सभी वस्तुओ का ठीक-ठीक चित्रण और वास्तविक लय-सगीत प्रस्तुत कर देते थे। वर्णनात्मक शैली के तो वे प्रमुख लेखक थे। उनकी 'आत्माराम' नामक कहानी मे एक वास्तविक सुन्दर चित्र देखिये.—

"वह अपने सायबान मे प्रात से सध्या तक अँगीठी के सामने बैठा हुआ खटखट किया करता था। लगातार वह ध्वनि सुनने के लोग इतने अभ्यस्त हो गये थे कि जब किसी कारण से वह बद हो जाती तो जान पड़ता था कोई चीज गायब हो गई है। वह नित्यप्रति एक बार प्रातःकाल अपने तोते का पिंजरा लिए हुए कोई भजन गाता हुआ तालाब की ओर जाता था। उस धुँधले प्रकाश मे उसका जर्जर शरीर, पोपला मुँह और झुकी हुई कमर देखकर किसी अपरिचित मनुष्य को उसके पिशाच होने का भ्रम हो सकता था। ज्योंही लोगो के कानो मे आवाज आती 'सतगुरुदत्त शिवदत्त दाता' लोग समझ जाते कि भोर हो गया।"

७—पण्डित रामचन्द्र शुक्ल

आचार्य रामचन्द्रजी शुक्ल का जन्म बस्ती जिले के अगोना नामक ग्राम मे स० १९४१ मे हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा सस्कृत भाषा मे हुई। स० १९५८ मे आपने एंट्रेंस परीक्षा पास की और स० १९६० मे इटरमीजिएट। इसके बाद आप मिर्जापुर के मिशन स्कूल मे अध्यापक हो गये। श्री बद्रीनारायणजी चौधरी "प्रेमघन" के प्रोत्साहन से आपने निबध लिखना प्रारम्भ किया। पहले पहल ये निबध 'आनन्द-कादम्बिनी' नामक पत्रिका मे निकालने लगे और उसके बाद 'सरस्वती' मे। इन निबधो से आपकी कीर्ति चारो ओर फैलने लगी। सन् १९०६ मे आप हिन्दी-शब्द सागर के सहकारी-सम्पादक नियुक्त हुए और लगभग ९ वर्ष तक नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका के सम्पादन का कार्य करते रहे। बाबू श्यामसुन्दरदासजी के बाद आप काशी हिन्दूविश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष बनाये गये। स० १९९८ मे आपका देहावसान हो गया।

शुक्लजी अच्छे कवि और उत्कृष्ट गद्य-लेखक थे। किन्तु आपने गद्य ही अधिक लिखा। प्रकृति से ही आप गम्भीर थे। अत यह गम्भीरता आपके निबधो, समालोचनाओ तथा कविताओ मे सर्वत्र दिखाई देती है। आपने सूरदास, तुलसीदास और जायसी पर बडी ही सुन्दर समालोचनाएँ लिखी हैं। इन समालोचनाओ मे आपका गहन अध्ययन और प्रकाण्ड

पाडित्य स्पष्ट झलकता है । इनके अतिरिक्त 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', 'वुद्धचरित', 'आदर्श जीवन', 'हिंदी काव्य मे रहस्यवाद', 'चिन्तामणि', 'रस मीमासा' आदि आपके बड़े उच्च कोटि के ग्रंथ हैं ।

शुक्लजी ने अपने निवधो में सदैव एक विचार का दूसरे से सम्वन्ध रखने का प्रयत्न किया है । उनके निवधो में विचारो की परम्परा कही टूटती हुई नही दिखाई देती । वे व्यक्ति प्रधान होने के साथ-साथ विषय-प्रधान भी हैं । उन्होने लोक या समाज की स्थिति एव रक्षा पर सर्वत्र ध्यान दिया है । उनके निवधो मे वुद्धि-तत्त्व के साथ हृदय-तत्त्व का भी सुन्दर समन्वय हुआ है । यद्यपि शुक्लजी के निवधो में वुद्धि का उपयोग प्रधान रूप से किया गया है तथापि हृदय भी वुद्धि के साथ-साथ रहा है । शुक्लजी की शैली पर उनके व्यक्तित्व की जवरदस्त छाप है । उनकी भाषा विशुद्ध-प्रौढ और सयत है । भाषा पर उनका असाधारण अधिकार है । वह इतनी मँजी हुई, गम्भीर एव परिष्कृत है कि मुश्किल से अन्यत्र मिलेगी । उनकी भाषा में एक भी शब्द व्यर्थ नही मिलेगा । उनके वाक्य यद्यपि लम्बे हैं, तथापि जैसे एक सूत्र में पिरोये हुए हैं । वे पहले सूत्र रूप में एक वात कहते है और पूरे अनुच्छेद में उसे स्पष्ट करने का प्रयत्न करते हैं । अन्त मे श्यामसुन्दरदासजी की ही भाँति 'साराश यह कि' या 'सक्षेप में' कहकर सार रूप में सारी वात कह देते हैं । उनकी भाषा में व्याकरण के नियमो, विराम-चिह्नो आदि का पूरा-पूरा निर्वाह हुआ है । उनके गद्य का एक उद्धरण देखिये —

"यह ठीक है कि मनोवेग उत्पन्न होना और वात है और मनोवेग के अनुसार क्रिया करना और वात । पर अनुसारी परिणाम के निरन्तर अभाव से मनोवेगो का अभ्यास भी घटने लगता है । यदि कोई मनुष्य आवश्यकता-वश कोई निष्ठुर-कार्य अपने ऊपर ले ले तो पहले दो-चार वार उसे दया उत्पन्न होगी, पर जब वार-वार दया का कोई अनुसारी परिणाम वह उपस्थित न कर सकेगा तव धीरे-धीरे उसका दया का अभ्यास कम होने लगेगा ।

८—वियोगी हरि

श्री वियोगी हरिजी का जन्म सन् १८६६ मे छतरपुर रियासत मे हुआ था। आपकी शिक्षा वही पर हुई। शिक्षा प्राप्त करके आप वहीं महारानी के प्राइवेट सेक्रेटरी हो गये। प्रारम्भ से ही आप हिन्दी के पक्षपाती रहे है। आपने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन मे कुछ वर्ष कार्य किया और कराची सम्मेलन मे अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति चुने गये। आप उच्च-कोटि के कवि और लेखक हैं।

आपके प्रमुख ग्रन्थो मे 'वीर-सतसई', 'व्रजमाधुरी-सार', 'अन्तर्नाद', 'पगली', 'प्रार्थना', 'प्रेमयोग', 'साहित्य-विहार', 'मेरा जीवन-प्रवाह' और 'सन्त सुधासार' प्रमुख हैं। वस्तुत वियोगी हरिजी कवि-हृदय हैं। उनके गद्य मे भी काव्य की धारा बहती हुई दिखाई देती है। उन्होंने अच्छे गद्य-काव्य लिखे हैं। उनके प्रारम्भिक गद्य-काव्य पाण्डित्यपूर्ण थे, उनमे दीर्घ समासात पदावली तथा सानुप्रासिकता पाई जाती थी जिससे भाव-व्यञ्जना दुर्बोध हो गई थी। लेकिन बाद के गद्य-काव्यो मे वाक्य अपेक्षाकृत छोटे है और भाषा मे प्रवाह और माधुर्य पर्याप्त मात्रा मे दिखाई देने लगा है। उन्होने दूसरे कवियो की सूक्तियो का स्थान-स्थान पर प्रयोग किया है, जिससे भावो को मूर्तरूप प्राप्त हुआ है। आपकी शैली का नमूना देखिये —

"इन मदिरो मे वह राम नही मिलेगा, इन मस्जिदो मे अल्लाह का दीदार मुश्किल है, इन गिर्जों मे ईश्वर का वास कहाँ है ? इन तीर्थों मे वह मालिक रमने का नही।"

९—बाबू गुलाबराय

बाबू गुलाबरायजी का जन्म मैनपुरी मे हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा यहाँ के मिशन स्कूल मे हुई। उसके बाद आप आगरा कॉलेज, आगरा मे भर्ती हुए और वही से एम० ए० किया। विद्याध्ययन समाप्त करके आप छतरपुर रियासत के प्रबन्धक हो गये। वहाँ से अवकाश ग्रहण कर आप आगरा आ गये। वहाँ सेण्ट जॉन्स कॉलेज मे कुछ वर्षों

तक आपने अध्यापन का कार्य किया और 'साहित्य-सन्देश' नामक मासिक-पत्र का सम्पादन भी किया। आप एक उच्च-कोटि के समालोचक, निबन्धकार और दर्शन तथा तर्क के विद्वान् हैं।

आपके ग्रन्थो मे प्रमुख है—'नवरस', 'हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास', 'सिद्धान्त और अध्ययन' और 'काव्य के रूप'। 'ठलुआ' और 'मेरी असफलतायें' आपकी परिहासपूर्ण रचनायें हैं।

गुलाबरायजी की भाषा संस्कृत गर्भित, परिष्कृत और परिमार्जित है। व्यंजना, लक्षणा से आपकी भाषा मे एक प्रकार का माधुर्य आ गया है। मुहावरो के प्रयोग तथा नपे-तुले वाक्यो ने आपकी भाषा को सजीव, चुटीली और प्रवाहपूर्ण बना दिया है। आपकी भाषा मे अंग्रेजी, फारसी, उर्दू, बंगाली, संस्कृत आदि भाषाओ की कहावते भी मिलती हैं और उनसे आपकी रचनाये पाण्डित्यपूर्ण बन गई हैं। आपकी शैली समालोचना मे गम्भीरतापूर्ण है तो हास्य-व्यङ्ग मे चुटीली, मार्मिक और आकर्षक। शैली पर उनके व्यक्तित्व की छाप है और वह विषय के अनुरूप होती है। 'मित्रमिलन' मे ही कविता के सब गुण दिखाते हुए वे अपने एक व्याख्यात्मक निबन्ध मे लिखते है.—

"सुहृदय सान्निध्य ही सबसे बडा गुण है। मित्र की प्रेम-भरी चितवन ही पीयूष-धारा-टीका है। बारम्बार हृदयालिंगन करना ही आद्य एव अन्त्यानुप्रास है। प्रेम-प्रतीक्षा अलङ्कार है और परमानन्द ही उसका स्वच्छन्द छन्द है।"

१०—जैनेन्द्र कुमार

श्री जैनेन्द्र कुमार का जन्म सन् १९०५ मे अलीगढ में हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा वही पर हुई। उसके बाद आप दिल्ली आगये और वही रहने लगे। आधुनिक हिन्दी कलाकारो मे आपका महत्त्वपूर्ण स्थान है। आप निबंध-लेखक, कहानीकार, उपन्यासकार और दार्शनिक हैं।

आपके उपन्यासो में सुनीता, कल्याणी, परख, त्यागपत्र, स्पर्धा, सुखदा और विवर्त्तन प्रमुख हैं। कहानी-संग्रहो मे नीलम देश की राजकुमारी, आधी रात, वातायन और पायजेब प्रमुख है।

जैनेन्द्रजी की भाषा सरल, सरस और व्यावहारिक होती है लेकिन जहाँ दार्शनिक विचारो को व्यक्त करना होना है वहाँ वडी गम्भीर और क्लिष्ट भी हो जाती है। समाज की दीन अवस्था के सुन्दर चित्र आपकी रचनाओ मे मिलते हैं। आप एक उच्च-कोटि के विचारक और दार्शनिक भी है। अत आपकी रचनाओ पर उसकी स्पष्ट छाप मिलती है। आपके भाव उच्च-कोटि के होते हैं और भाषा भी उसी के अनुरूप सरस, मार्मिक, परिष्कृत एव सवेदनशील। 'अपना अपना भाग्य' नामक कहानी मे भारतीय और अग्रेज जनता का एक चित्र देखिये—

"अविकार गर्व मे तने अग्रेज उसमे थे और चिथडो से सजे और घोडो की वाग थामे वे पहाडी उसमे थे जिन्होने अपनी प्रतिष्ठा और सन्मान को कुचल कर शून्य बना लिया है और जो बडी तत्परता से दुम हिलाना सीख गये हैं।

"भागते,खेलते, हँसते, शरारत करते लाल अग्रेज बच्चे थे और पीली पीली आँख फाडे पिता की अगुली पकडकर चलते हुए अपने भारतीय नौनिहाल भी थे।"

११—वृन्दावनलाल वर्मा

वर्तमान युग के उपन्यास सम्राट् बाबू वृन्दावनलालजी वर्मा का जन्म झाँसी जिले के मऊरानी नामक ग्राम मे स० १९४७ मे हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा झाँसी मे ही हुई। आपने बी०ए०,एल-एल०बी० पास कर झाँसी मे ही वकालत करना प्रारम्भ कर दिया। सगीत और शिकार मे आपकी विशेष दिलचस्पी है। आप कहानीकार, उपन्यासकार और नाटककार है। आप हिन्दी-साहित्य के 'स्काट' कहे जाते हैं।

आपके उपन्यासो मे गढकुण्डार, विराटा की पद्मिनी, सोना, कुण्डली-चक्र, कचनार, मुसाहिबजू, अमरबेल, झाँसी की रानी, मृगनयनी आदि प्रमुख है।

वर्माजी भारतीय इतिहास के गौरवमय अतीत से बड़े प्रभावित हैं और उसकी झलक ही उन्होंने अपने उपन्यासो, नाटको और कहानियो मे दिखाई है। उन्होने भारतीय इतिहास के ऐसे उज्ज्वल अध्यायो को

अपने उपन्यासो के कथानक के लिए चुना है जो अतीत के गौरव, शौर्य, राष्ट्रीयता, सास्कृतिक उत्थान आदि के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। अपनी कल्पना और कला से आपने इन अतीत के खण्डहरो मे नवीन जीवन और प्रेरणा का सचार कर दिया है । आपकी भाषा सरल, सरस और व्यावहारिक है । न तो उसमे सस्कृत की क्लिष्ट तत्सम शब्दावली है, न उर्दू-फारसी शब्दो की भरमार । आपकी भाषा सर्वसाधारण की चलती हुई भाषा है । उसी मे आपने सगीत, माधुर्य और मार्मिकता का समावेश कर दिया है । आपका चरित्र-चित्रण मनोवैज्ञानिक होता है और कथानक कौतूहलपूर्ण । मनुष्य स्वभाव और मानव-जीवन को आपने बारीकी से देखा है और उसे यथार्थ रूप मे चित्रित किया है । यही कारण है कि आपकी भाषा सुबोध, सरल और प्रवाहपूर्ण है । आपकी भाषा का एक नमूना देखिये—

ठाकुर ने प्रश्न किया—"कौन लोग हो ?"

"हूँ तो कसाई" रञ्जन ने सीधा उत्तर दिया। चेहरे पर उसके बहुत गिडगिड़ाहट थी ।

ठाकुर की बडी आँखो मे कठोरता छा गई । बोला—"जानता है यह किसका घर है ? यहाँ तक आने की हिम्मत कैसे की तूने ?"

रञ्जन ने आशा भरे स्वर मे कहा—"यह राजा का घर है । इसलिए शरण मे आया हूँ ।"

शब्द-शक्ति

शब्द की सार्थकता उसके अर्थ मे है। वस्तुत अर्थवान शब्द ही शब्द कहे जाते है। सस्कृत के आचार्यो ने 'शब्दार्थ सम्बन्ध शक्ति' कहकर बताया है कि शब्द की जिस शक्ति के द्वारा उसके अर्थ का बोध होता है उसे 'शब्द-शक्ति' कहते हैं। स्पष्ट है कि जितने प्रकार के अर्थ होते हैं उतनी ही प्रकार की शक्तियाँ होती है। अर्थ तीन प्रकार के होते है—(१) वाच्यार्थ या अभिधार्थ (२) लक्ष्यार्थ और (३) व्यग्यार्थ। वाच्यार्थ से हमारा आशय शब्द के मूल अर्थ से है। जैसे—वारिवाह का अर्थ है वादल और पकज का अर्थ है कमल। शब्द के ये अर्थ किसी पदार्थ, भाव या क्रिया की ओर सकेत करते हैं। लक्ष्यार्थ से हमारा आशय है शब्द के लाक्षणिक अर्थ से। जैसे—हम कहे कि 'यह आदमी शेर है' तो हमारा आशय यही होता है कि 'वह वीर' है। जहा शब्द किसी भौतिक घटना की ओर सकेत करता है किन्तु उसका अन्य अर्थ भी ध्वनित होता है वहा उसे व्यग्यार्थ कहा जाता है। उदाहरणार्थ, यदि कहा जाय कि 'घण्टी वज गई' तो यह एक भौतिक घटना का सकेत है। लेकिन इससे विद्यार्थियो के लिए एक अन्य अर्थ भी ध्वनित होता है अर्थात् पाठशाला प्रारम्भ हो रही है। इसी प्रकार नाटक देखने वालो के लिये इसका अर्थ होगा 'नाटक प्रारम्भ हो रहा है' और टेलीफोन के पास बैठे हुए व्यक्ति के लिये इसी का अर्थ होगा 'कहीं से कोई व्यक्ति वात करना चाहता है, रिसीवर उठाओ।'

अभिधा—जिस शक्ति के द्वारा शब्द का मूल अर्थ मालूम किया जाता है उसे अभिधा कहते है। इससे शब्द के वाचक अर्थ का बोध होता है अर्थात् इससे उन वस्तुओ, भावो और क्रियाओ का ज्ञान होता है जो उससे द्योतित होती है। षट्-दर्शनो मे न्याय ने अभिधा मे शब्द और अर्थ-सम्बन्ध साकेतिक माना है और इसे ईश्वरेच्छा पर निर्भर रखा है। नव्य-न्याय इच्छा शब्द को व्यापक बनाकर उसका मतलब केवल ईश्वरेच्छा नही लेता। वह उसमे मनुष्येच्छा भी सम्मिलित करता है। मनुष्येच्छा से उसका आशय यही है कि मनुष्य भी अपनी इच्छा से नये शब्दो का निर्णय करता है। किन्तु केवल इच्छा को ही शब्द-निर्णय का

एक-मात्र कारण मानना सही नही हो सकता, क्योकि शब्दो का निर्णय मनुष्यो के किसी समझौते पर निर्भर नही है। शब्द और अर्थ का मेल स्वाभाविक रूप से ही हो जाता है। शब्द और अर्थ को नित्य मानने का मतलब होगा भाषा की परिवर्तनशीलता को स्वीकार न करना। आज-कल शब्द की स्वाभाविक अर्थ-बोधता पर ही ध्यान देते है। शब्द और अर्थ को इसी अर्थ मे हम नित्य कहते हैं कि मनुष्य मे शब्द बनाने और उसके द्वारा अर्थ घोषित करने की शक्ति स्वाभाविक है। यह शक्ति काल क्रम में विकसित हो जाती है।

प्रश्न यह होता है कि अर्थ बोध मे सकेत किसकी ओर होता है? मीमांसक लोग अर्थ-बोध जाति का मानते हैं। उनका कहना है कि 'अश्व' कहने से सारी अश्व जाति का बोध होता है। किन्तु उनकी मान्यता पूरी तरह ठीक नही है। जब यह कहते हैं कि 'अश्व लाओ' तब हमारा आशय किसी विशेष अश्व को बुलाने का होता है, सारी जाति को बुलाने का नही है। इसलिये न्याय का कहना है कि शब्द जाति के आधार पर व्यक्ति-विशेष की ओर सकेत करता है। इस मत मे व्यक्ति और जाति का समन्वय हो जाता है। वैयाकरण लोग साकेतिक अर्थ, जाति, गुण, क्रिया और इच्छा चारो प्रकार का मानते हैं। उदाहरणार्थ, मोती नामक काला कुत्ता भौंकता है, इस वाक्य मे 'मोती' इच्छापूर्वक रखा हुआ नाम है। काला गुण है और 'कुत्ता' जाति। 'भौंकता है' क्रिया है। इस प्रकार इस सम्बन्ध मे अन्य मत भी हैं किन्तु वस्तुत शब्द का सकेत या तो जाति विशिष्ट व्यक्ति मे मानना चाहिये अथवा अवसर या प्रसग के अनुकूल व्यक्ति, जाति, आकृति, क्रिया आदि मे।

लक्षणा—शब्द की जिस शक्ति मे लक्ष्यार्थ ग्रहण किया जाता है उसे लक्षणा कहते हैं। अर्थ अनेक बार शब्द मे ही सीमित होकर नही रह जाता। वह उससे भी आगे जाता है। जहाँ मुख्य अर्थ मे बाधा आती है और उस बाधा के कारण उससे ही सम्बन्धित कोई दूसरा अर्थ रुढि या प्रयोजन के आधार पर लगाया जाता है वहाँ वह अर्थ लक्ष्यार्थ कहा जाता है। यह परिभाषा लक्षणा के व्यापार की बातें स्पष्ट करती हैं—(१) मुख्य अर्थ मे बाधा उपस्थित होना, (२) मुख्यार्थ से

सम्बन्धित दूसरा अर्थ और (३) इस अर्थ का रूढि या प्रयोजन के आधार पर लगाया जाना। उदाहरणार्थ—

पुरी सफल मन कामना, लूटेउ अगनित चैन।
आज अँचइ हरिरूप सखि, भये प्रफुल्लित नैन॥

—**भिखारीदास**

यहाँ पहली ही पक्ति मे मनकामना के फलने की बात कही गई है। वस्तुत वृक्ष फलते हैं, मनकामना नही। इसी प्रकार चैन प्राप्त किया जाता है, लूटा नही जाता और रूप का दर्शन किया जाता है, वह अँचाया नही जाता। तीनो स्थानो पर मुख्य अर्थ मे बाधा होती है और रूढि या प्रयोजन के आधार पर दूसरा अर्थ ग्रहण किया जाता है। इन प्रयोगो से अर्थ मे एक सौंदर्य, एक चमत्कार आ गया है। मनोकामना के फलने मे कुछ समय तक प्रतीक्षा करने की बात तथा बाहुल्य, पूर्णता, सरसता आदि के भाव व्यञ्जित हो जाते हैं। इसी प्रकार लूटने मे जो भाव हैं वह प्राप्त करने मे नही। लूटने मे बाहुल्य, प्रसन्नता, उत्साह, शीघ्रता और लुटेरो का अनाधिकार व्यञ्जित होता है। यही बात 'अँचइ' के साथ है। भाषा के बहुत से शब्द और मुहावरे लक्षणा के ऊपर ही आश्रित होते हैं। लाक्षणिक प्रयोगो से मूर्तिमत्ता आ जाती है और प्रभाव अधिक तीव्र हो जाता है। जैसे रेशमीनगर, अपने पैर पर खडा होना, कान देना आदि।

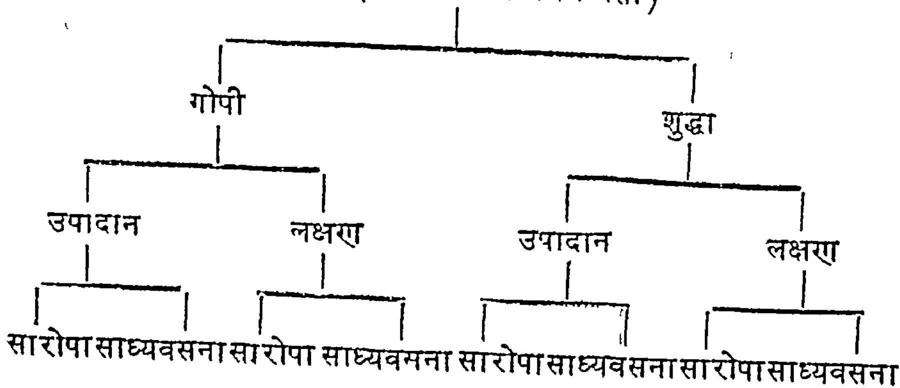
लक्षणा दो प्रकार की होती है। जो लक्षणा रूढि के आधार पर लगाई जाय वह रूढि लक्षणा कही जाती है और जो प्रयोजन के आधार पर लगाई जाती है, वह प्रयोजनवती। जब हम कहते हैं कि 'मोहनदास डेढ पसली का आदमी है' तो हमारा आशय यह नही होता है कि उसमे साधारण व्यक्ति की भाँति २४ पसलियाँ नही है। डेढ पसली कहने से हमारा प्रयोजन दुबले-पतले-पन पर बल देना होता है। अत इस प्रकार के प्रयोग प्रयोजनवती के उदाहरण हैं और 'पजाब वीर है' जैसे वाक्य रूढि लक्षणा के। क्योकि यहा पजाब का अर्थ है पजाब के निवासी।

मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ के सम्बन्ध को ध्यान मे रखकर उसके दो और प्रकार माने गये है—गोणी और शुद्धा। जहाँ पर सम्बन्ध सादृश्य का होता

है, वहाँ लक्षणा गोणी कहलाती है और जहा सादृश्य के अतिरिक्त और कोई सम्बन्ध होता है जैसे आधार-आधेय या अगी-अग वहाँ वह शुद्धा कहलाती है। 'कर कमल' मे जो लक्षणा है वह सादृश्य के आधार पर होने के कारण गोणी है। किन्तु जब हम कहते हैं कि 'लाठियाँ जा रही है', तो सादृश्य का सम्बन्ध न होने से वह शुद्धा लक्षणा कही जायगी।

मुख्यार्थ के बनाये रखने या छोडने के आधार पर उसके दो और भेद किये जाते है—उपादान लक्षणा और लक्षण लक्षणा। जहाँ मुख्यार्थ बना रह कर अपनी सिद्धि के लिये दूसरी वस्तुओ को भी लेता है, वहाँ उपादान लक्षणा होती है। उपादान का अर्थ है सामग्री। उदाहरणार्थ, 'लाठियाँ आती हैं' इस वाक्य मे लाठी के साथ लाठी को ग्रहण करने वाले लोग भी सम्मिलित कर अर्थ की पूर्ति करली जाती है। जहाँ मुख्यार्थ लक्ष्यार्थ की सिद्धि के लिये अपने को समर्पण कर देता है और लक्ष्यार्थ की ही प्रधानता हो जाती है वहाँ उसे लक्षण लक्षणा कहा जाता है। उदाहरणार्थ—'आप तो बडे भले आदमी निकले।' यहाँ अर्थ बिल्कुल पलट गया है और 'भले' का अर्थ 'बुरा' हो गया है। उपमेय पर उपमान का जहाँ आरोप होता है वहाँ यह देखकर कि उसमे उपमेय और उपमान दोनो रहते है अथवा केवल उपमान से ही काम चलाया जाता है लक्षणा के दो और भेद किये जाते हैं—

(१) सारोपा और (२) साध्यवसना। लक्षणा के भेदो को समझने के लिये यह चक्र उपयोगी रहेगा—



भाषा मे लक्षणा का महत्त्व बहुत पुराना है। हमारे सारे मुहावरे, रूपक आदि लक्षणा पर ही आश्रित है। कल्पना के लिए मूर्तिमत्ता आवश्यक होती है। जैसे—चोटी के विद्वान्, गगन-चुम्बी अट्टालिकाएँ, काला मुँह करना, बात फेरना, दांत दिखाना आदि। इसीलिए भाषा मे मुहावरो का बडा महत्त्व है। उनसे शैली मे सजीवता और मूर्तिमत्ता आती है।

व्यञ्जना—अभिधा और लक्षणा के विराम लेने पर जो एक विशेष अर्थ निकलता है उसे व्यञ्जना कहते है। उदाहरणार्थ,'सीटी यहाँ बजी।' अभिधा का काम सीटी बजने की सूचना देने के बाद समाप्त हो जाता है, किन्तु इससे कुछ विशेष अर्थ निकलते है। मिल-मजदूर के लिए इसका अर्थ होगा मिल का प्रारम्भ होने जा रहा है। साधारण नागरिक के लिए इनका अर्थ होगा—६ बज रहे हैं। स्टेशन पर खडे व्यक्तियो के लिए इसका अर्थ होगा ट्रेन आने वाली है अथवा जाने वाली है। व्यञ्जना के भी अनेक भेद हैं। उसके मुख्य भेद हैं–शाब्दी और आर्थी। शाब्दी व्यञ्जना मे शब्दो की प्रधानता रहती है अर्थात् व्यञ्जना तभी होती है जबकि वे ही शब्द रहे। आर्थी मे यह प्रतिबन्ध नही होता।

शाब्दी व्यञ्जना के भी दो भेद है—अभिधा-मूलक शाब्दी व्यञ्जना और लक्षणा मूलक शाब्दी व्यञ्जना। अभिधा-मूलक शाब्दी व्यञ्जना के द्वारा भिन्नार्थक शब्दो का अर्थ निश्चित किया जाता है। अभिधा तो विभिन्न अर्थ देकर विराम लेती है किन्तु व्यञ्जना ही यह निश्चित करती है कि उनमे से कौन-सा अर्थ लिया जायगा। लक्षणा मूल मे व्यञ्जना के वे रूप आते हैं जो लक्षणा मे व्यञ्जित होते है। जितने प्रकार की लक्षणा होती है उतने ही उनके रूप हो जाते हैं। भिन्नार्थक शब्दो मे जो अर्थ लगते है उनके नियम आचार्यों ने दिये हैं। उनके दिये हुए नियम अर्थ-ग्रहण-भरी व्याख्या मे बडे सहायक होते है। आचार्य भिखारीदास ने काव्य-निर्णय मे सयोग, वियोग, विरोध, देश, प्रकार, काल आदि कुछ नियम दिये है।

१ **संयोग**—'हरि' शब्द के अनेक अर्थ हैं। जैसे बन्दर, शेर, विष्णु भगवान् आदि । किन्तु जब कहा जाता है कि 'शख-चक्र धारण किये हुए हरि कितने अच्छे लगते हैं'—तो 'हरि' का अर्थ शख-चक्र के सयोग से विष्णु भगवान् ही होता है।

२ **वियोग**—'नग' के दो अर्थ होते हैं पहाड और नगीना। जब यह कहा जाता है बिना अगूठी के नग सूना है तो अगूठी से उसका वियोग दिखाकर उसका अर्थ नगीना ही निश्चित किया जाता है।

३ **विरोध**—द्विजराज ब्राह्मण को कहते हैं और चन्द्रमा को भी, किन्तु जब कहा जाय कि द्विजराज को ग्रस लिया, तो वहाँ उसका अर्थ चन्द्रमा ही होगा।

४ **प्रकाश**—सैन्धव शब्द का अर्थ नमक होता है और घोडा भी; किन्तु घुडसाल मे उसका अर्थ घोडा ही लगाया जायगा, नमक नही।

५. **सामर्थ्य**—व्याल हाथी को कहते हैं और सर्प को भी। किन्तु जब कहा जाता है कि व्याल ने वृक्ष तोड दिये, तो उसका अर्थ हाथी ही लगाया जायगा।

६ **देश**—जीवन का अर्थ जिन्दगी होता है और जल भी, किन्तु जब कहा जाता है कि 'मरुस्थल मे जीवन कहाँ ?' तो जीवन का अर्थ पानी ही होगा।

७ **काल**—चित्रभानु का अर्थ सूर्य और अग्नि दोनो होते हैं; किन्तु जब यह कहा जाय कि 'रात मे चित्रभानु शोभा देता है', तो उसका अर्थ अग्नि ही होगा।

व्यङ्ग्यार्थ वाले शब्द का अर्थ लगाना कई बातो पर निर्भर रहता है। कही वह वक्ता पर निर्भर रहता है, कही प्रसग पर और कही देश पर, तो कही काल पर। यदि कोई धोबी कहता है कि नदी मे जोर की बाढ आई है तो उसका आशय यही होता है कि आज वह कपडे नही धो सकेगा। किन्तु यदि यही बात कोई समाज-सेवी कहता है, तो उसका आशय यह होता है कि राहत-कार्य प्रारम्भ करना चाहिए।

इसी प्रकार यह वात यदि कोई ड्राइवर कहता है तो उसका आशय यह होता है कि यातायात वन्द है और यही वात यदि कोई पोस्ट-मैन कहता है, तो उसका आशय यह होगा कि आज चिट्ठियाँ नही आई हैं। इस प्रकार की व्यञ्जना को वक्तृ वैशिष्ट्योत्पन्न वाक्य-समवा कहेगे। इसके दस प्रकार हैं।

(१) वक्तृ वैशिष्ट्य (वक्ता की विशेषता) के कारण, (२) जिससे वात कही जाय उसकी विशेषता के कारण, (३) कण्ठध्वनि की विशेषता के कारण, (४) वाक्यार्थ की विशेषता के कारण, (५) जिस वाक्य मे वात कही गई है उसकी विशेषता के कारण, (६) दूसरे व्यक्ति के सान्निध्य की विशेषता के कारण, (७) प्रसग की विशेषता के कारण, (८) देश की विशेषता के कारण, (९) काल की विशेषता के कारण। इन सब कारणो से लोगो के मन मे जो दूसरा अर्थ स्फुरित होता है उसे व्यग्यार्थ कहते है और जिस व्यापार द्वारा यह अर्थ स्फुरित होता है उसे व्यञ्जना शक्ति।

पत्र

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । वह समाज मे पैदा होता है और समाज मे ही उसका विकास होता है । अपनी सारी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए उसे समाज का मुँह देखना पडता है । चाहे विवाह, उत्सव आदि खुशी के मौके हो, चाहे दुर्घटना, मृत्यु आदि दु ख के, सभी अवसरो पर उसे सामाजिक सहयोग और सहायता की आवश्यकता होती है । समाज की सहायता से उसका हर्ष वढता है और दु ख घटता है । पैदा होते ही माता-पिता, भाई-वहिन, चाचा-चाची आदि से उसका सम्बन्ध जुडता है और फिर जैसे-जैसे वह बड़ा होता है वैसे-वैसे पास-पडौसी, अध्यापक, दुकानदार, नौकर, स्वामी, मित्र, सहपाठी, सहयोगी आदि के रूप मे समाज के अन्य कई लोगो से भी उसका सम्पर्क वढता जाता है । आयु के साथ परिचितो और मित्रो का क्षेत्र विस्तृत होता जाता है और वह अनेक लोगो से जान-पहिचान और परिचय प्राप्त कर लेता है । अत जव कभी वह किसी परेशानी मे होता है तो उसकी स्वाभाविक इच्छा होती है कि दूसरे उसकी सहायता करें और जव कभी वह आनन्द और सुख की स्थिति मे होता है तव भी उसकी यही इच्छा होती है कि दूसरे सहायता करके उसके आनन्द को बढावें । फिर पग-पग पर उसे अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये भी तो दूसरो का मुँह देखना पडता है । दुकानदार से प्रतिदिन की चीजें मिलती है, अध्यापक से शिक्षा, मित्र से कई प्रकार के काम निकलते है और आफीसर की कृपा से नौकरी का बोझा नही लगता । अत अपने सुख और आनन्द को बढाने के लिए उसे सवसे सम्पर्क रखना होता है, सबके सुख-दु ख मे शामिल होना पडता है । सव की सहायता प्राप्त करके जो आनन्द उसे होता है वही आनन्द सव की सहायता करके भी उसे प्राप्त करना होता है । ये दोनो ही बातें आनन्द-दायक हैं और आवश्यक भी ।

आज विज्ञान की प्रगति से जहाँ मनुष्य की सुविधाएँ बढी हैं वहाँ जटिलताएँ भी बढी हैं । पिता किसी शहर मे व्यापार करता है तो बेटा

किसी दूसरे शहर मे पढता है। एक भाई किसी शहर मे नौकरी करता है तो दूसरा किसी दूसरे शहर मे वकालत करता है। अपने काम-काज के सिलसिले मे कई वार हमें दूर जाना पडता है। वाहर से कितावे, अखवार, दवाइयाँ आदि मँगानी होती हैं और वहाँ के लोगों को अपने यहाँ की चीजें भेजनी होती हैं। इस प्रकार चूँकि परिस्थिति-वश परिवार के लोगो को अलग-अलग रहना पडता है इसलिये उनसे सम्पर्क भी साधे रहना होता है ताकि समय पर उनकी सहायता प्राप्त की जा सके। पत्र इस कार्य मे सब से ज्यादा सहायता करते हैं। पत्र के द्वारा अपनी वातें दूसरो को लिखकर प्रकट कर देना और दूसरो की वातें मालूम कर लेना सरल हो जाता है। आजकल सरकार ने छोटे-छोटे ग्रामो मे भी डाकघर खोल दिये हैं और देश के एक कोने से दूसरे कोने तक चिट्ठी चार-पाँच दिन मे ही पहुँच जाती है। कई स्थानो पर तो पाँच सौ और हजार मील दूर के स्थानो की चिट्ठियाँ भी एक या दो दिन मे ही मिल जाती हैं। अत' आजकल पत्रो के द्वारा रिश्तेदारो की कुशलता मालूम करना, व्यापार-व्यवसाय करना, उद्योगधन्धो मे सहायता प्राप्त करना, चीजें मँगाना और भेजना तथा जीवन के अन्य आवश्यक कार्य करना वडा सरल हो गया है। पत्र के रूप मे हमे एक ऐसा साधन उपलव्ध हो गया है जिससे एक ही स्थान पर बैठकर वाहर के स्थानो से सम्पर्क साधा जा सकता है।

पत्रो का महत्त्व आजकल के जीवन मे वहुत हो गया है। अत. पत्र लिखना भी एक कला वन गया है। एक अच्छा पत्र-लेखक अपनी भाषा और शैली से पाठक को शीघ्र ही आकर्पित कर सकता है और जो कुछ चाहता है, करवा सकता है। पत्रो के द्वारा एक प्रकार से मिलन ही हो जाता है। अपने मन की वातें दूसरो को वता देना और दूसरो के मन की वातें जान लेना एक प्रकार का मिलन ही होता है। इस मिलन मे यद्यपि शारीरिक दृष्टि से मिलना नही हो पाता तथापि विचार और भावना का मिलना तो हो ही जाता है।

पत्र-लेखन का उद्देश्य है अपने मन की बात दूसरो तक पहुँचाना। अत अच्छा पत्र लिखने मे सवसे अधिक इसी बात का ध्यान रखना

पड़ता है कि हमारी भावनाएँ ठीक तरह व्यक्त हो जायें और वह पाठक पर वही प्रभाव डाले जो हम चाहते हैं। इस दृष्टि से पत्र मे सरलता और स्वाभाविकता होनी चाहिये। क्लिष्टता से हमारी बात समझने मे पाठक को कठिनाई होगी और अस्वाभाविकता या बनावटीपन से वह प्रभाव नही पड़ सकेगा जो हम डालना चाहते हैं। दूसरी बात यह है कि पत्र मे विचारो को क्रमवद्ध रूप मे उपस्थित करना चाहिये। एक के बाद दूसरा विचार क्रम के अनुसार रखने से पाठक को सारी बात समझने मे बडी सरलता होती है। तीसरी बात है सुलेख, विरामादि चिह्नो का प्रयोग और आकर्षक शैली। इन सबके द्वारा अपने विचारो को ठीक तरह पहुँचाने मे बडी सहायता मिलती है।

मोटे रूप मे किसी पत्र को तीन भागो मे बाँटा जा सकता है। इस विभाजन से पत्र के सम्बन्ध मे सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेना सरल हो जाता है। पत्र के पहले या प्रारम्भिक भाग मे भेजने वाले का पता और पत्र भेजने की तिथि होती है। उसके दूसरे या मध्यभाग पर पत्र पाने वाले के लिए सम्बोधन तथा पत्र लिखने का आशय होता है। यह पत्र का प्रधान भाग होता है। तीसरे या अन्तिम भाग मे भेजने वाले का नाम आदि होता है।

पत्रो का वर्गीकरण अनेक प्रकार से किया जाता है। लेकिन मुख्यत पत्र तीन प्रकार के ही होते हैं। पहली प्रकार के पत्रो मे हम उन व्यक्तिगत पत्रो को लेते हैं, जिनमे सम्वन्धियो और रिश्तेदारो के पत्र आते हैं। दूसरे प्रकार के पत्रो मे वे व्यापारिक पत्र आते हैं जो व्यापार-व्यवसाय की दृष्टि से व्यापारियो और दूकानदारो को लिखे जाते है। तीसरी प्रकार के पत्र वे है जो अधिकारियो को लिखे जाते हैं। इनमे आवेदन-पत्र प्रमुख होते हैं। यहाँ हम तीनो प्रकार के पत्रो के कुछ नमूने दे रहे हैं, जिससे उसका अनुसरण करने मे सरलता हो।

पत्र मे पता वडा महत्त्व रखता है। पोस्ट-कार्ड, लिफाफे और अन्तर्देशीय पत्रो मे पत्ते का एक निश्चित स्थान होता है। उसी स्थान पर स्पष्ट अक्षरो मे पता लिखा जाना चाहिये। पता गलत और अस्पष्ट

लिखने से पत्र ही उलझन मे पड़ जाता है और डाकघर के कर्मचारी समझ नही पाते कि उसे कहाँ भेजा जाय। पता लिखते समय सबसे पहले उस व्यक्ति का नाम लिखा जाता है, जिसे पत्र भेजा जा रहा है। उसके नीचे दूसरी पक्ति मे उसके मकान का नाम या नम्बर तथा मुहल्ले का नाम लिखा जाता है। तीसरी पक्ति मे डाकखाने का नाम तथा अन्तिम पक्ति मे जिले, तहसील या प्रान्त का नाम लिखा जाता है।

पोस्ट-कार्ड पर पता इस प्रकार लिखा जाता है—

टिकिट

श्रीयुत् किशोरीरमणजी वाजपेयी, एम. ए.,

साधना-सदन, लूकरगज,

इलाहाबाद।

(उत्तर प्रदेश)

लिफाफे पर—

टिकिट

श्रीमती महादेवी वर्मा,

प्रयाग महिला विद्यापीठ,

इलाहाबाद।

(उत्तर प्रदेश)

प्रेषक:—

नवीन जोशी,

हाथी-भाटा,

अजमेर।

यदि पत्र किसी बालक या स्त्री को लिखा गया है तो उसके सरक्षक का नाम दूसरी पक्ति मे देना चाहिये। उसके नाम के पूर्व 'द्वारा' लिखना चाहिये। जैसे—

		टिकिट
प्रेषक:— डॉ० कन्हैयालाल, नेहरू हॉस्पिटल, दोमलगुडा, हैदरावाद। (आन्ध्र)		श्रीमती सरला देवी द्वारा श्री विनय मोहन रस्तोगी एडवोकेट, मकान न० ५४२, किनारी वाजार, आगरा। (उत्तर प्रदेश)

(अ) व्यक्तिगत पत्र

१—पिता को—

साधना-सदन,
चौडा रास्ता, जयपुर।
४ जनवरी, १९६५

पूज्य पिताजी,

सादर प्रणाम! परसों प्रात काल ही आपका कृपा पत्र मिल गया था लेकिन अर्द्ध-वार्षिक परीक्षा के अन्तिम प्रश्न-पत्रो मे व्यस्त होने के कारण उत्तर न दे सका। आशा है इस विलम्ब के लिये क्षमा करेंगे।

गणित को छोडकर शेष प्रश्न-पत्रो के उत्तर सतोषजनक ढग से दिये हैं। अन्य विषयो मे प्रथम श्रेणी के अक प्राप्त कर लेना कठिन नही लगता। गणित मे केवल ३५-४० अक ही मिल सकेंगे। अब मैं गणित मे अधिक श्रम करना प्रारम्भ कर रहा हूँ। आशा है वार्षिक परीक्षा तक यह कमी पूरी कर लूँगा। इस परीक्षा का परीक्षाफल ५-७ दिन बाद ही निकल जायगा तब आपको प्राप्ताको की सूचना दूँगा।

आपका भेजा हुआ कोट मिल गया है। उसकी सिलाई और रग दोनो ही मुझे अच्छे लगे। अब इस वर्ष के लिये तो कपडे पर्याप्त हो गये हैं। रुपये भी अभी हैं। इस मास के अन्त तक ५०)रु० भेज दीजियेगा।

आपका आज्ञाकारी पुत्र
नगेन्द्र कुमार।

२—माता को—

थामसन होस्टल, आगरा कॉलिज,
आगरा
५ अक्टूबर, १९६५

पूज्य माताजी,

सादर प्रणाम। आपका पत्र एक महीने से नही मिल पाया अतः चिन्ता हो रही है। आशा है अब जल्दी पत्र देने की कृपा करेंगी।

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि यहाँ २ अक्टूबर के दिन गाधी जयन्ती के उपलक्ष मे एक भाषण प्रतियोगिता हुई थी। उसमे मुझे द्वितीय पुरस्कार मिला है। लगभग सभी अध्यापको ने मेरे भाषण की प्रशसा की। अब कॉलिज के बहुत से अध्यापको और विद्यार्थियो से मेरा परिचय हो गया है और मन भी लगने लगा है।

दीपावली के अवसर पर लगभग १० दिन की छुट्टियाँ होगी। तब मैं वहाँ आऊँगा। आशा है कुमुद और शशि अच्छी होगी। मुझे शशि की तो वार-वार याद आती है। उससे कहिये कि मैंने उसके लिये एक अच्छा-सा ताजमहल खरीद लिया है जो दीपावली पर आते समय लाऊँगा।

आपका आज्ञाकारी पुत्र,
बद्री प्रसाद।

३—पुत्र को—

आग्रे का वाजार,
लश्कर।
३ फरवरी, १९६५

प्रिय सूर्यकुमार,

आशीष! तुम्हारा पत्र मिला। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि गणित को छोडकर शेष विषयो मे तुम्हे प्रथम श्रेणी के अक प्राप्त

हो गये हैं। अभी परीक्षा के दो महीने वाकी हैं। यदि तुम मन लगा कर प्रयत्न करो तो गणित मे भी प्रथम श्रेणी के अङ्क लाना कठिन न होगा। लेकिन एक बात की ओर मैं तुम्हारा ध्यान खीचना चाहता हूँ। वह यह कि प्रथम श्रेणी लाने की धुन मे अपने स्वास्थ्य को बिगाड न लेना। नियमित रूप से व्यायाम करना और सन्ध्या समय दूध पीना न भूलना। मुझे लिखना कि यह सब नियमित रूप से कर रहे हो या नहीं।

५० रुपये भिजवा रहा हूँ। परीक्षा समाप्त होने तक ५० रुपये और भिजवा दूँगा। अब तुम इधर-उधर से ध्यान हटाकर पढने मे ही पूरी शक्ति लगा दो। कौशल और मुन्नी तुम्हारी याद करते हैं।

शुभेषी,
मदनमोहन जोशी।

४—बड़े भाई को—

मसूदा (विजयनगर)
१२ जुलाई, १९६५.

मान्यवर भाई साहब,

प्रणाम! आपका पत्र कल मिला। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपका स्थानान्तरण ब्यावर हो गया है। ब्यावर तो हम लोगो को बडा अनुकूल रहेगा। वहाँ मामा साहब हैं और पिताजी का आना जाना भी बना ही रहता है। आपका यह सुझाव अच्छा है कि मैं अगले वर्ष ब्यावर के गवर्नमेण्ट कॉलिज मे ही प्रवेश प्राप्त कर लूँ तो खर्च का बोझ कम होने के साथ-साथ पिताजी की चिन्ता भी कम हो जायगी। मेरी स्वय की यह इच्छा रहती है कि उन पर कम से कम बोझ डाला जाय। आपके स्थानान्तरण से अनायास ही यह प्रश्न हल हो गया।

मेरी शिक्षा ठीक तरह चल रही है। आदरणीय भाभीजी को प्रणाम कहिए। सुरेश को प्यार। उसके लिये पिताजी के साथ कुछ नई पुस्तकें भेजूँगा। आशा है उसे वे पसन्द आएँगी।

विनीत,
राधामोहन।

५—छोटे भाई को—

म्युनिसिपल कमेटी,
केकडी ।
१२ अगस्त, १९६५

प्रिय राघवेन्द्र,

आशीष ! तुम्हारा पत्र मिला । मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि तुम्हे पिताजी की कठिनाइयो का पूरा ध्यान है और उन्हे यथासम्भव कम करना चाहते हो । मैं ५-७ दिन मे ब्यावर जा रहा हूँ । वहाँ बाजार मे २० रुपये मासिक किराये पर मकान मिल गया है । मामाजी का घर वहाँ से पास है और स्टेशन भी दूर नही है । कॉलेज अवश्य दूर पडता है तो तुम्हारे लिये साइकिल की व्यवस्था कर लेंगे ।

इस वर्ष तुम्हे अच्छी मेहनत करके कम से कम द्वितीय श्रेणी तो प्राप्त करनी ही चाहिये । तुम्हारी भाभी आशीष कह रही है । पिछले ५-६ दिनो से उन्हे सिर दर्द की शिकायत थी । अब ठीक है । सुरेश को तुम्हारी पुस्तकें बडी अच्छी लगी । घण्टो पढता रहता है ।

शुभेच्छु,
कमला शकर ।

६—पति को,

हैप्पीवेली,
मसूरी ।
१५ नवम्बर, १९६५

प्राणाधार,

सादर प्रणाम ! आपसे विदा होकर परसो मैं यहाँ सकुशल आगई । मार्ग मे पिताजी को कुछ सिर-दर्द की शिकायत रही, लेकिन मेरे पास गोलियाँ थी, उससे दर्द कम हो गया । यहाँ माताजी और मौसी अच्छी हैं ।

आपके भोजन का क्या प्रबन्ध हुआ ? मेरे विचार से अन्नकूट होटल मे ही प्रबन्ध कर लीजिये । ऑफिस के काम के साथ साथ

प्रतिदिन दोनो समय भोजन बनाना कठिन ही रहेगा। रात्रि को दूध लेना न भूलिये। मैं यहाँ के वैवाहिक कार्य को पूरा कर जल्दी ही उधर आने का प्रयत्न करूँगी।

माताजी और मौसी दोनो ने ही बारबार आपकी याद की। आपके न आने से उनको बड़ी निराशा हुई।। यदि विवाह के दिन ही आप आ सकें तो उनको बडा सन्तोष होगा। मेरा विचार है तीन चार-दिन की छुट्टी तो मिल ही जायगी।

सुधीर बारबार आपको याद करता है। उसका प्रणाम !

आपकी चरण-सेविका,
शकुन्तला।

७—पत्नी को—

राजघाट,
काशी।
१९ नवम्बर, १९६५

प्राणप्रिये,

प्रसन्न रहो। तुम्हारा पत्र कल मिला। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि तुम सब सकुशल मसूरी पहुँच गये। मसूरी की सर्दी प्रसिद्ध है। अत सुधीर का पूरा ख्याल रखना।

एक दिन के लिये तो मैं आ सकता हूँ लेकिन तीन दिन की छुट्टी लेनी पड़ेगी। एक दिन जाने मे और एक दिन आने मे लग जायगा। फिर ६०-७० रुपये भी खर्च हो जायेंगे। तुम विचार करके लिखना तो आने का प्रयत्न करूँगा।

विवाह मे सभी रिश्तेदार आयेंगे। उनमे से किसी को कुछ देना हो तो लिखना। मैं आते समय वे चीजें ले आऊँगा। भोजन का प्रबन्ध अन्नकूट मे ही कर लिया है। तुम मेरी चिन्ता न करना। अपनी माताजी, मौसीजी और पिताजी को प्रणाम कहना। उनके काम-काज को हल्का करने का प्रयत्न करना। सुधीर को प्यार।

शुभेच्छु,
बृहस्पति मिश्र।

८—मित्र को—

हाथीपोल,
उदयपुर।
१५ मार्च, १९६५

प्रिय मित्र सुरेश,

सस्नेह वन्दे ! तुम्हारा पत्र मिला। बडी प्रसन्नता हुई। पिछले एक मास से मैं ज्वर से पीडित था, इसीलिये तुम्हे पिछली वार भी पत्र नही दे सका। क्षमा करना। मुझे लगभग २०-२२ दिन तक ज्वर आता रहा है। छ-सात दिन तक तो मैंने कुछ परवाह ही नही की। लेकिन जब चलना-फिरना कठिन हो गया तो हमारे पडौसी हरिमोहन चाचा के आग्रह पर अस्पताल गया। यो ५–७ दिन तक दवाई लेने का क्रम चला और अब बुखार ठीक हो गया है। कमजोरी काफी आ गई। स्वस्थ होने मे १०–१२ दिन का समय और लग जायगा। कल माताजी आ गई हैं। अब कोई चिन्ता की वात नही है।

तुम्हारी नौकरी का क्या हुआ? लिखना। यदि जहाज-रानी मे काम करने का अवसर मिल जाय तो मेरे विचार से चला जाना अच्छा होगा। यहाँ अध्यापक वने रहने से वह अच्छा रहेगा। देश-विदेश की यात्रा और अच्छे वेतन के साथ वहाँ विकास करने का भी तो अवसर है। पत्र देना।

तुम्हारा मित्र,
गोवर्द्धन दिवाकर

९—विवाह का निमन्त्रण-पत्र—

जेहि सुमिरत सिद्धि होय, गण-नायक करिवर वदन।
करहु अनुग्रह सोय, बुद्धिराशि शुभ गुण सदन॥

श्रीमान्,

आपको यह सूचित करते हुए अपार हर्ष है कि मङ्गलमय जगदीश्वर की असीम अनुकम्पा से मेरे कनिष्ठ-पुत्र चिरजीव राधावल्लभ का शुभ-विवाह मेरठ-निवासी प० वासुदेव शर्मा की सुपुत्री कुमारी रागिनी के साथ शुभ मिति वैशाख शुक्ला ५ स० २०१७ वि० तदानुसार गुरुवार तारीख १० मई १९६४ को होना निश्चित हुआ है।

अतः आप से सानुरोध प्रार्थना है कि इस शुभ अवसर पर सपरिवार पधार कर वर-वधू को आशीर्वाद देने की कृपा कीजिये ।

केशव-निवास,
जोधपुर }

आपका दर्शनाभिलाषी,
केशवदेव मिश्र ।

कार्यक्रम

प्रीति-भोज	.... ८ मई १९६४ मध्याह्न
बारात-प्रस्थान	.... ९ मई „ प्रात.काल
पाणि-ग्रहण-संस्कार	....१० मई „ सायकाल
बढहार	....११ मई „ मध्याह्न
विदा	....११ मई „ सायकाल

१०—प्रीतिभोज का निमन्त्रण-पत्र—

प्रेम कुञ्ज,
तिलक नगर, दिल्ली
२८ अगस्त, १९६४ ।

प्रिय महोदय,

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि मेरे पुत्र चिरजीव कमल किशोर की १० वी वर्ष गांठ आगामी ३ सितम्बर को है । इस अवसर पर एक प्रीतिभोज और संगीत का कार्यक्रम रखा गया है । प्रीतिभोज का समय है सायकाल ७ बजे । प्रीतिभोज के बाद ही ८—३० बजे से सगीत का कार्य-क्रम रखा गया है जिसमे दिल्ली के प्रसिद्ध सगीताचार्यो के पधारने की आशा है । आशा है आप उस दिन निश्चित समय पर पधार कर बालक को आशीर्वाद देंगे और कार्य-क्रम मे सम्मिलित होकर अनुगृहीत करेंगे ।

भवदीय,
बाँकेबिहारी सक्सेना ।

११—स्वीकृति-पत्र—

अशोक-भवन,
कनाट प्लेस, नई दिल्ली ।
३० अगस्त, १६६४

प्रिय भाई सक्सेनाजी,

वन्दे ! चिरजीव कमलकिशोर की वर्षगांठ के अवसर पर आयोजित प्रीतिभोज और सगीत के कार्य-क्रम का निमन्त्रण पाकर वडी प्रसन्नता हुई । अनेक धन्यवाद । मैं उस दिन अवश्य आने का प्रयत्न करूँगा ।

भवदीय,
इन्द्रसेन ।

१२—खेल का निमन्त्रण-पत्र—

डी० ए० वी० कॉलेज,
अजमेर ।
१२-१२-१६६५

प्रिय भाई,

हमारे कॉलेज की फुटबाल टीम आपके कॉलेज की टीम से १५ दिसम्वर को सायकाल साढे चार वजे हमारी क्रीडा-भूमि (ग्राउण्ड) पर एक फुटवाल मैच खेलना चाहती है । आशा है आप इस प्रार्थना को स्वीकार कर उक्त दिन आने का कष्ट करेंगे । आपके स्वीकृति-पत्र से हमे प्रवन्ध करने मे सुविधा रहेगी ।

आपका,
सोहनसिह ।
(कप्तान)

१३—साहित्यिक-गोष्ठी का निमन्त्रण-पत्र—

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन भवन,
सयोगिता गज, इन्दौर ।
१२ दिसम्वर, १६६५

श्रीयुत चन्द्रजी,

मुझे यह सूचित करते हुए प्रसन्नता है कि हमारे नगर मे तारीख १५ सितम्वर १६६५ को एटा के प्रसिद्ध कवि श्री वलवीरसिंह

'रंग' और ग्वालियर के गीतकार श्री वीरेन्द्र मिश्र पधार रहे है। उनके स्वागत मे उस दिन रात्रि को साढे आठ बजे एक कवि-गोष्ठी का आयोजन किया गया है। अत. आपसे सानुरोध प्रार्थना है कि ठीक समय पर पधारने का कष्ट करे।

आपका—
श्यामसुन्दर शर्मा 'कमल'।

१४—बधाई-पत्र—

छोटा सर्राफा,
उज्जैन।
२५ अक्टूबर, १९६४

प्रिय रवीन्द्र,

आज तुम्हारी १८ वी वर्ष-गाँठ पर बधाई भेजते हुए मुझे अतीव हर्ष और प्रसन्नता है। ईश्वर करे आगामी वर्ष तुम्हारे जीवन मे नवीन प्रेरणा, उत्साह और आनन्द का सचार करने वाला सिद्ध हो।

शुभेच्छु—
धर्मवीर शुक्ल।

१५—शोक-पत्र अथवा सवेदना-पत्र—

राजामण्डी,
आगरा।
८ नवम्बर, १९६५

प्रिय भाई शिवराम,

कल ही मुझे यह दुखद सदेश मिला कि परसो तुम्हारे पूज्य पिताजी का हृदय की गति रुक जाने से स्वर्गवास हो गया। इस समाचार से हम सबको बडा शोक हुआ। अभी एक मास पूर्व ही तो जब मैं अजमेर आया था, उनसे मिला था। जब वे अपने मालवे के सस्मरण सुनाने लगते थे तो मैं सब कुछ भूलकर घटो सुनता रहता था। स्नेह तो उनमे इतना था कि कभी भोजन किये बिना जाने नही देते थे। आज उनका बोलने व बात करने का ढग, स्नेहालु हृदय और भव्य चेहरा बारबार मेरी आँखो मे घूम रहा है।

पिताजी की मृत्यु से तुम्हे जो शोक हो रहा होगा उसकी कल्पना से ही मुझे वडा दु ख हो रहा है। लेकिन ऐसे अवसर हमारे धर्म की परीक्षा लेने वाले होते हैं। मृत्यु एक ऐसा कठोर सत्य है जिसके ऊपर हमारा किसी का वश नही है। इस अवसर पर मैं हार्दिक सवेदना भेजता हूँ और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह आपको यह असह्य वेदना सहन करने की शक्ति दे तथा दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

शुभेच्छु,
गोवर्द्धन वर्मा।

(आ) व्यावसायिक-पत्र

१—पुस्तक मँगाने के लिये आदेश-पत्र—

नेहरू वाचनालय,
अलवर।
१० जुलाई, १९६५

श्री मन्त्री महोदय,
सस्ता साहित्य मण्डल,
कनाट-सर्कस, नई दिल्ली।

प्रिय महोदय,

मुझे निम्नलिखित पुस्तको की आवश्यकता है। अत उचित कमीशन काटकर वी० पी० पार्सल द्वारा भेजने का कष्ट करें।

१	तपोधन विनोवा	(श्री वावूराव जोशी)	१—५०
२	भारतीय नव जागरण का इतिहास	,,	३—००
१	सवके वापू	,,	०—५०
१	जनता के जवाहर	,,	०—७५
१	राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद	,,	०—७५
१	सन्त विनोवा	,,	०—७५

अपने अन्य प्रकाशनो की एक सूची अवश्य भेजिये।

भवदीय—
जयकृष्ण अग्रवाल।

२—पत्र का ग्राहक बनने के लिये—

५०, सिविल लाइन्स,
जयपुर।
४ अप्रेल, १९६६

श्री कन्हैयालालजी मिश्र 'प्रभाकर',
सम्पादक 'नयाजीवन',
विकास लिमिटेड, सहारनपुर।

प्रिय महोदय,

कल स्थानीय सुभाष-वाचनालय से 'नया-जीवन' के पिछले ३–४ अङ्क देखकर बडी प्रसन्नता हुई। 'नया-जीवन' सचमुच नये जीवन का सन्देश-वाहक है। उसका प्रत्येक पृष्ठ नये सन्देश और नई प्रेरणा से ओतप्रोत है। उसका वार्षिक मूल्य ५ रु० मैं मनीआर्डर से भेज रहा हूँ। कृपया इसी मास से मुझे उसका ग्राहक बना लीजिये और अङ्क भेजना प्रारम्भ कर दीजिये।

भवदीय,
सुधाकर द्विवेदी।

३—समाचार-पत्र के सम्पादक को—

गाधी अध्ययन केन्द्र,
बीकानेर।
८ मार्च, १९६०.

श्री सम्पादकजी, 'हिन्दुस्थान' दैनिक,
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस,
कनाट-सर्कस, नई दिल्ली।

प्रिय महोदय,

वन्दे! आपके सुप्रसिद्ध दैनिक पत्र के द्वारा मैं सरकारी अधिकारियों का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूँ कि यह शहर धीरे-धीरे जुएबाजी का केन्द्र बनता जा रहा है। प्रत्येक होटल, सराय और कुछ दुकानो पर भी प्राय नियमित रूप से जुआ होता रहता है। अभी आपके तारीख २ मार्च के पत्र मे ही १२ हजार रुपये हार जाने के कारण आत्महत्या कर लेने वाले रामचरणदास के दुखद अन्त का समाचार छपा था। कल इसी प्रश्न को लेकर दो दलो मे दङ्गा हो गया जिसमे दोनो ओर से खुलकर लाठी, तलवार और छुरो का प्रयोग हुआ। पुलिस की

उपेक्षा से इस प्रकार की घटनाएँ बढती ही जा रही हैं। आशा है, पुलिस के अधिकारी इस सम्बन्ध मे कडाई से काम लेंगे और इस सामाजिक अपराध मे लगे हुए लोगों के प्रति कडाई का व्यवहार करेंगे ताकि लोगो मे शान्ति और सुरक्षा की भावना पैदा हो सके। सभी सभ्य नागरिको मे इस बढ़ती हुई जुआ-खोरी से बेचैनी है।

भवदीय,
रामकिशोर व्यास।

४—शिकायत-पत्र—

भोमियों का रास्ता,
जयपुर।
१० दिसम्बर, १९६५

पोस्ट मास्टर साहब,
जनरल पोस्ट आफिस, अजमेर।

प्रिय महोदय,

निवेदन है कि मैंने २७ अक्टूबर १९६५ को इलाहाबाद में इण्डियन प्रेस के मैनेजर को ७५ रु० का एक मनीआर्डर भेजा था। मनीआर्डर आपके सब-पोस्ट-आफिस, नयाबाजार से करवाया था। उसकी रसीद, जिसका न० ३२४ है, मेरे पास है। लेकिन वह मनीआर्डर अब तक इलाहाबाद नही पहुँचा है। आशा है, आप इस सम्बन्ध में जाँच करके मुझे यह सूचना देने का कष्ट करेंगे कि उसमें इतना विलम्ब क्यो हो गया। मनीआर्डर समय पर न मिलने से मेरी किताबो का आदेश-पत्र वैसे ही पड़ा हुआ है और व्यवसाय को क्षति पहुँच रही है।

आपका विश्वासपात्र,
रामास्वामी अय्यर।

५—स्मरण-पत्र—

जौहरी बाजार,
जयपुर।
५ मार्च, १९६४

प्रिय महोदय,

वन्दे! मुझे यह स्मरण दिलाते हुए बडा खेद है कि हमारे बिल न० ४२८ और ५१७ के क्रमश १५ रुपये और २७ रुपये, कुल

४२ रुपये आपकी ओर पिछले छः मास से बाकी निकल रहे हैं। इस सम्बन्ध मे पहले दो बार भी आपको लिखा जा चुका था और आपने लिखा था कि जनवरी के अन्तिम सप्ताह मे आप रुपया भिजवा देंगे। लेकिन दुःख है कि अब तक रुपया नही मिला। इस पत्र के द्वारा मैं फिर आपको उक्त रुपये का स्मरण दिला रहा हूँ। आशा है आप शीघ्र ही वह रुपया भिजवा देंगे।

भवदीय,
गोपालप्रसाद शर्मा।

६—पूछताछ सम्बन्धी पत्र—

शान्ति कुटीर,
भरतपुर।
२८ मई, १९६६

श्री व्यवस्थापक महोदय,
आगरा बुक स्टोर, आगरा।

प्रिय महोदय,

बन्दे! मुझे निम्नलिखित चार पुस्तको की आवश्यकता है—'देवदासी' (बा० भ० वरेरकर), 'कांग्रेस का इतिहास' (डॉ० पट्टाभिसीतारमैया), 'मेरी कहानी' (नेहरूजी), तथा 'हिन्दी शब्द सागर' (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी)। कृपया लिखिये कि इनमे से सब पुस्तके आपके यहाँ से मिल सकेंगी या नहीं और यदि मिल सकेंगी तो उनका क्या मूल्य होगा तथा उन पर कितना कमीशन दिया जायगा। आशा है आप लौटती डाक से सूचना देंगे।

भवदीय,
विनोद शंकर व्यास।

७—पूछताछ का उत्तर—

आगरा बुक स्टोर,
हॉस्पिटल रोड, आगरा।

प्रिय महोदय,

वन्दे! आपका पत्र मिला। धन्यवाद! उपर्युक्त चारो पुस्तकें हमारे पास हैं। 'देवदासी' का मूल्य २-५०, शब्द-कोष का ५ रु० तथा 'कांग्रेस का इतिहास' (दो भागो मे) का २० रु० है। 'मेरी कहानी' का

मूल्य १० रु० है। उसका एक संक्षिप्त संस्करण भी अभी निकाला है, जिसका मूल्य २ रु० है। सब पुस्तको पर कमीशन २५ प्रतिशत दिया जाता है। आपका आदेश-पत्र प्राप्त होते ही पुस्तके वी० पी० पार्सल से भेज दी जायेंगी।

कृपा बनाये रखिये और हमारे योग्य सेवा लिखिये।

भवदीय,
जयनारायण गुप्त।

(इ) अधिकारियो को पत्र

१—छुट्टी के लिये प्रार्थना पत्र—

श्री प्रधानाध्यापक महोदय,
गवर्नमेंट हायर सेकण्डरी स्कूल, सराधना।

प्रिय महोदय,

सविनय निवेदन है कि कल रात से मैं ज्वर से पीडित हूँ और इस कारण विद्यालय मे उपस्थित होने मे असमर्थ हूँ। यदि स्वास्थ्य ठीक हो गया तो जल्दी ही उपस्थित होने का प्रयत्न करूँगा अन्यथा चार दिनो की (तारीख ५ दिसम्बर से ८ दिसम्बर १९६५ तक) छुट्टी स्वीकार करने की कृपा कीजिये।

ग्राम तबीजी
५ दिसम्बर, १९६५

आपका आज्ञाकारी शिष्य,
नरेन्द्र भटनागर, कक्षा ९ अ.

२—नौकरी के लिये प्रार्थनापत्र—

श्री सञ्चालक महोदय,
शिक्षा-विभाग, बीकानेर (राजस्थान)

मान्यवर,

'हिन्दुस्तान टाइम्स' के १७ मई के अंक मे प्रकाशित विज्ञापन से ज्ञात हुआ है कि आपके कार्यालय मे लेखा-निरीक्षक के दो स्थान रिक्त हैं। अत. उनमे से एक के लिए मैं यह-प्रार्थना-पत्र प्रेषित कर रहा हूँ।

जहाँ तक मेरी योग्यता का प्रश्न है, मैंने राजस्थान विश्वविद्यालय से इसी वर्ष एम० कॉम० की परीक्षा पास की है। टाइप का कार्य मैं कुशलतापूर्वक कर लेता हूँ। इस कार्य मे मेरी गति प्रति मिनट ५० शब्द

है। मेरा स्वास्थ्य अच्छा है और विद्यार्थी-जीवन के प्रारम्भ से ही खेलो मे अच्छी दिलचस्पी लेता रहा हूँ। महाराजा कॉलेज जयपुर की हॉकी टीम का एक वर्ष मैं कप्तान रहा था और एक वर्ष विद्यार्थी-परिषद् का मन्त्री भी चुना गया था।

इस समय मेरी आयु २२ वर्ष की है। बी० कॉम० पास करने के बाद मैंने एक वर्ष तक आगरा के बलवन्त राजपूत कॉलेज मे लेखा-निरीक्षक के स्थान पर कार्य किया था। अत मुझे इस कार्य का व्यावहारिक अनुभव भी प्राप्त है।

इस प्रार्थना-पत्र के साथ हाई स्कूल से लेकर बी० कॉम० तक के प्रमाण-पत्रो की प्रतिलिपियाँ भेज रहा हूँ। एम० कॉम० मे मुझे जो अक मिले हैं उसकी प्रतिलिपि भी प्रार्थना-पत्र के साथ सलग्न है। बलवन्त राजपूत कॉलेज के प्रिन्सिपल डॉ० रामकरणसिंह और महाराजा कॉलेज के कामर्स-विभाग के अध्यक्ष डा० सेन के प्रमाण-पत्र भी भेज रहा हूँ।

अन्त मे, मैं श्रीमान् को यह विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि यदि सेवा का अवसर दिया गया तो मैं अपने कार्य और व्यवहार से अपने अधिकारियो को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करूँगा। आशा है मेरे प्रार्थना-पत्र पर सहानुभूति-पूर्वक विचार किया जायगा और मुझे उक्त स्थान पर नियुक्त किया जायगा। इस कृपा के लिये मैं श्रीमान् का सदैव आभारी रहूँगा।

राधा निवास,
सी० स्कीम, जयपुर
२२ मई, १९६५

आपका आज्ञाकारी सेवक—
यादवेन्द्र शर्मा।

३—चिकित्सालय खोलने के लिए प्रार्थना-पत्र—

श्री चेयरमैन साहब,
डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, अजमेर।

महोदय,

सविनय निवेदन है कि हमारे ग्राम खाजपुरा (अजमेर) मे एक चिकित्सालय की अत्यन्त आवश्यकता है। यहाँ आसपास ६-७ मील तक कोई औषधालय नही है जिसके कारण बीमारो को समय पर डॉक्टरी सहायता उपलब्ध नही हो पाती। पिछले छ महीनो मे एक व्यक्ति साँप के काटने से, एक कुए मे डूब जाने से, दो जलने से, तथा तीन स्त्रियाँ प्रसूति-रोग के कारण असमय मे ही मर गईं। इस ग्राम की

जनसंख्या लगभग डेढ हजार है। इसके अतिरिक्त यहाँ से दो-दो, तीन-तीन मील के फासले पर अन्य दो ग्राम हैं जिनकी जनसख्या लगभग दो हजार है। इस प्रकार यहाँ चिकित्सालय खुलने से लगभग साढे तीन हजार व्यक्तियो को डाक्टरी सहायता का लाभ मिल सकता है।

आशा है श्रीमान् एक बार इस ग्राम मे पधार कर सारी स्थिति स्वय देखने का कष्ट करेंगे और शीघ्र ही एक चिकित्सालय खोलने की आज्ञा प्रदान करेंगे। औषधालय के लिए भूमि हम ग्रामीण देने के लिए तैयार हैं तथा औषधालय के निर्माण मे श्रमदान द्वारा सहायता भी करना चाहते है।

हम हैं,

खाजपुरा,
१५ जनवरी, १९६६

श्रीमान् के आज्ञाकारी सेवक,
ग्राम खाजपुरा के निवासी।

४—चोरी की सूचना—

श्री कोतवाल साहब
शहर कोतवाली, जोधपुर।

श्रीमान्,

निवेदन है कि कल रात मेरे मकान मे चोरी हो गई। चोरो ने ताला तोड दिया और बहुत-सा सामान ले गये। हम सब घर के लोग बेलनगज मे पण्डित रामकिशोर त्रिपाठी के घर विवाह मे सम्मिलित होने गये थे। चोरी मे कुल मिलाकर १८०० रुपये का सामान गया है। सामान का विवरण निम्न प्रकार है—

वस्तुएँ	मूल्य
रेडियो	३५० रु०
साइकिल	१५० रु०
कपडे सीने की मशीन	२०० रु०
कपडे	३५० रु०
नकद रुपये	१५० रु०
गहने सोने-चादी के	४०० रु०
बरतन	२०० रु०
	१८०० रु०

मुझे इस सम्बन्ध में घासीराम और किशन कहार पर सदेह है। आशा है आप चोरी का पता लगाने मे सहायता करेंगे।

राजामण्डी, आगरा प्रार्थी,
१५ मार्च, १९६६ मोहनसिंह।

(ई) अन्य प्रकार के पत्र

१—प्रमाण-पत्र—

बाबूराव जोशी, एम० ए०, एल० टी०, साहित्यरत्न,
आचार्य, महिला शिक्षा सदन,
हायर सेकण्डरी स्कूल,

हटूण्डी (अजमेर)
७ जुलाई, १९५७

मुझे यह लिखते हुए प्रसन्नता है कि कुमारी सुशीला पारीख ने इस विद्यालय मे लगभग चार वर्ष तक शिक्षा प्राप्त की। ७ वीं कक्षा मे प्रवेश प्राप्त कर उसने इस वर्ष हाई स्कूल परीक्षा द्वितीय श्रेणी मे पास की है। इसके अतिरिक्त कताई, बुनाई और सिलाई के काम मे उसकी विशेष रुचि रही है और इसके लिए समय-समय पर उसे पुरस्कार मिलते रहे हैं। खेल-कूद मे भी वह सदैव अग्रणी रही है और तैरने, साइकिल चलाने आदि मे भी उसने अच्छी कुशलता प्राप्त करली है। वह एक विनम्र, आज्ञाकारी, परिश्रमी और उत्साही छात्रा है। उसे जो भी कार्य सौंपा जाता है, उत्तरदायित्व के साथ पूरा करती है। मैं उसकी हार्दिक सफलता चाहता हूँ।

७-७-१९५७ बाबूराव जोशी।

२—सूचना-पत्र—

सर्व साधारण को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि हमारे शहर में होलिकोत्सव के उपलक्ष्य मे दिनाक ८ मार्च, १९६६ को साहित्यकार ससद् की ओर से एक वृहत् कवि-सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है। कवि सम्मेलन की अध्यक्षता प्रगतिशील कवि रामधारीसिंहजी 'दिनकर' ने करना स्वीकर कर लिया है। उनके अतिरिक्त सर्वश्री शिवमंगलसिंहजी 'सुमन', गोपालदासजी 'नीरज', वीरेन्द्र मिश्र, बलबीर-

सिंह, 'रंग', भगवतीचरण वर्मा, गोपालप्रसाद व्यास, देवराज दिनेश, रामानन्द दोषी, बालस्वरूप 'राही', रामावतार त्यागी, मेघराज 'मुकुल' और गजानन्द वर्मा की भी स्वीकृति प्राप्त हो गई है। अत. प्रार्थना है कि अपने मित्रों सहित उक्त दिन रात्रि को ८ बजे रामलीला मैदान मे पधारने का कष्ट करें।

विनीत—
रमाशंकर त्रिवेदी,
मन्त्री,
साहित्यकार संसद्,
भीलवाडा।

३—शोक-प्रस्ताव—

हिन्दी साहित्य परिषद्, पाली के सदस्यो, विद्यार्थियो एव सहायको की यह सभा हिन्दी के सुप्रसिद्ध आलोचक, निबन्धकार और कवि आचार्य रामचन्द्रजी शुक्ल के असामयिक निधन पर हार्दिक शोक प्रकट करती है। उनके निधन से सरस्वती का एक वरद पुत्र उठ गया और हिन्दी के आलोचनात्मक साहित्य को जो क्षति पहुँची है उसकी पूर्ति होना तो असंभव हो गया है। आचार्यजी के परिवार के साथ संवेदना प्रकट करती हुई यह सभा परम पिता परमेश्वर से प्रार्थना करती है कि वह दिवगत आत्मा को शांति प्रदान करे।

४—निबंधात्मक-पत्र (पिता का पुत्र पुत्री के नाम, विषय—सच्चरित्रता)

प्रेम कुञ्ज,
काशी।
८ अगस्त, १९६६

प्रिय पुष्पा,

सस्नेह आशीष! तुम्हारा पत्र मिला। मेडिकल कॉलेज मे तुम्हे प्रवेश मिल गया है और अब तुम्हारा मन भी छात्रावास मे लगने लगा है इस समाचार से प्रसन्नता हुई। तुम्हारे द्वारा मगाई गई पुस्तको को यहाँ से शीघ्र ही भेजूँगा।

पुष्पा, अब तक तुम हमारे संरक्षण मे थी और तुम्हारी बहुत सी बातो की देखभाल हम कर लेते थे, किन्तु अब तुम पहली बार घर से

बाहर गई हो और अपरिचित वातावरण में पहुँची हो। वहाँ तुम्हें लगातार पाँच वर्ष तक रहना पडेगा अत कुछ बातें मैं लिख देना चाहता हूँ ताकि उनके प्रकाश मे तुम अपने रहन-सहन और व्यवहार को ऐसी सही दिशा मे मोड़ सको जहाँ से फिर न मुडने की आवश्यकता हो न किसी प्रकार का पश्चाताप ही पल्ले पड सके।

सबसे पहली बात यह है कि इस समय हमारा समाज नवीनता और प्राचीनता के सन्धि-स्थल पर खडा है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से ही समाज के शैक्षणिक, सास्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रो मे तेजी से परिवर्तन होता जा रहा है। एक ओर एक बहुत बडा समुदाय पुरानी रुढि-रीतियो और विश्वास-परम्परा से ही चिपका हुआ है। दूसरी ओर एक बडा समुदाय समय के अनुसार अपने कदम रखने का प्रयत्न कर रहा है। तुम्हारे अपने घर मे ही तुम्हारी माताजी चौथी कक्षा से ज्यादा नही पढ सकी थी, किन्तु तुम डॉक्टरी की शिक्षा प्राप्त करने जा रही हो। हमारे समाज मे अब भी पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह और दहेज जैसी कुरीतियाँ हैं और शिक्षा की ओर तो २० प्रतिशत लोगो का भी ध्यान नही गया है। अत हम प्राचीनना और नवीनता के सन्धि-स्थल पर खडे हैं। ऐसे अवसरो पर हम जैसे लोगो के लिए न तो यही उचित होता है कि उसे तिलाजलि देकर एकदम आधुनिक बन जाय न पुरानी बातो से ही चिपके रहे। हमे दोनो की अच्छाइयो को लेकर दोनो का समन्वय करते हुए आगे बढना है।

आधुनिक युग की अच्छाई—शिक्षा और स्त्रियो के समानाधिकार की बात—को हमने स्वीकार किया है और इसी विचार से तुम्हे मेडिकल कॉलेज मे भेजा है। लेकिन हमे यह भी याद रखना है कि कही आधुनिकता के अन्धानुकरण मे हम न पड जायँ। उसकी बुराइयो के प्रति हमे सजग रहना है। आज मैं उसकी सबसे बडी बुराई स्वच्छन्दता की ओर तुम्हारा ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। आधुनिक नारी समता और स्वतन्त्रता की झक मे स्वच्छन्द और उच्छृ खल-सी बनने लग जाती है। वह न नीति-मर्यादा की परवाह करती है न सच्चरित्रता की। चरित्र

जीवन का सच्चा सौंदर्य है। उसमे जीवन को शिव की ओर, अमरत्व की ओर ले जाने की अपार शक्ति है। यदि जीवन मे यह नही तो फिर जीवन शून्य है, खोखला है।

हमारे समाज के प्राचीनता-वादी लोग चरित्र को बहुत ज्यादा महत्त्व देते हैं। यद्यपि उनकी चरित्र की परिभाषा सकुचित है तथापि उनकी बात मे एक बहुमूल्य सच्चाई निहित है। उस सच्चाई को तुम्हे स्वीकार करना चाहिये। मैं चाहता हूँ कि तुम उस सत्य का सदैव ख्याल रखो। तुम्हारी बोल-चाल, तुम्हारा रहन सहन, तुम्हारा आचरण-व्यवहार सब कुछ सच्चरित्रता और सदाचरण की सीमा से बाहर न हो। सच्चरित्रता की परिभाषा तुम्हे नये सिरे से समझाने की आवश्यकता नही है। सच्चाई, ईमानदारी, विनयशीलता, आज्ञाकारिता, उदारता, सयम, नियमपालन, सादगी आदि अनेक गुण उसमे आ जाते है। ये सभी गुण जीवन को ऊँचा उठाने वाले है और तुम्हारी डाक्टरी की शिक्षा से भी ज्यादा महत्त्व के हैं। ऐसा न हो कि शिक्षा की धुन मे तुम इनके महत्त्व को भूल जाओ।

इस बात पर आज मैं इसलिये भी ज्यादा जोर दे रहा हूँ कि हमारे समाज के हजारो व्यक्ति तुम्हे अलग-अलग दृष्टिकोण से देखेंगे। कोई तुम्हारी प्रगति पर खुश होगा, कोई आलोचक की दृष्टि से तुम्हे देखेगा और कोई तुम्हारा दोष ढूँढकर यह बताने का प्रयत्न करेगा कि लडकियाँ शिक्षा प्राप्त करके बिगडती ही है। अत. शिक्षा के आदर्शों, आधुनिक युग के जीवन मूल्यो और अपने परिवार की प्रतिष्ठा का एक बहुत बडा उत्तरदायित्व तुम्हारे ऊपर है। सच्चरित्रता का ध्यान रखकर तुम इन सब की रक्षा कर सकती हो और अपनी प्रतिष्ठा बढा सकती हो। मेरा विश्वास है कि तुम इसका पूरा-पूरा ध्यान रखोगी।

शुभाकांक्षी,
विजयकरण शारदा।

५—अभिनन्दनपत्र—

सेवामे,

श्रद्धेय रामगोपालजी अग्निहोत्री,
आचार्य,
राजकीय हायर सेकण्डरी स्कूल,
विजयनगर ।

महोदय,

कोटा जिला के विद्यालय-निरीक्षक के स्थान पर आपकी नियुक्ति के कारण आज इस विदाई-समारोह मे हमारे हृदय हर्ष और विषाद से एक साथ उद्वेलित हो रहे हैं। हर्ष इस बात का है कि वेतन-वृद्धि और पद वृद्धि के कारण आप एक उज्ज्वल भविष्य की ओर जा रहे हैं और शोक इस बात का है कि आपके स्वस्थ मार्ग दर्शन से अपने जीवन के निर्माण और उचित दिशा दर्शन का सुयोग हमे नही मिल सकेगा ।

आदरणीय !

आपके मार्ग-दर्शन मे शिक्षा प्राप्त करने का सुयोग हमे पिछले तीन वर्षों से मिल रहा है । यह तीन वर्ष का समय हमारे जीवन मे अविस्मरणीय रहेगा । इन दिनो विद्यालय ने जो प्रगति की वह इस नगर की शैक्षणिक प्रगति के इतिहास मे अमर रहेगी । विद्यालय मे छात्रो की सख्या ३०० से ७०० हो गई और अध्यापको तथा अन्य कर्मचारियो की सख्या भी १२ से २५ हो गई । इसके अतिरिक्त, पिछले दो वर्ष से इस विद्यालय का परीक्षाफल ८० और ६० प्रतिशत रहा तथा दोनो वर्ष इस विद्यालय के ३-३ छात्र प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण हुए । इस वर्ष तो एक विद्यार्थी सारे बोर्ड मे ही प्रथम रहा ।

गुरुवर !

आपके मार्ग-दर्शन से विद्यालय की शैक्षणिक दृष्टि से तो प्रगति हुई ही लेकिन उसके साथ साथ खेल-कूद और अन्य प्रवृत्तियो मे भी आश्चर्यजनक प्रगति हुई । गतवर्ष इस विद्यालय की वॉलीबाल टीम जिला टूर्नामेंट में विजयी हुई और इस वर्ष हाकी और फुटबाल की टीमें भी विजयी हुई

इसके अलावा वसन्त-व्याख्यान-माला के द्वारा आपने पिछले दो वर्षों से जिस ज्ञान-भोज का आयोजन किया वह विद्यार्थियो और जनता दोनो मे ही बडा लोकप्रिय सिद्ध हुआ है। गणेशोत्सव तथा राष्ट्रीय सप्ताह का आयोजन करके आपने जैसे विद्यालय के प्रत्येक छात्र मे नये जीवन का ही सचार कर दिया।

मान्यवर !

आपके हृदय मे मानवता और विशेषकर पीडित मानवता के प्रति जो प्रेम है वह किसी भी प्रकार व्यक्त नही किया जा सकता। आपके प्रयत्न से असमर्थ छात्रो को छात्रवृत्ति के रूप मे काफी रुपया प्राप्त हुआ। लगभग ५० विद्यार्थियो को शुल्क-मुक्ति का लाभ मिला और लगभग १५० बालको को आर्थिक सहायता मिली। आपके स्वभाव की कोमलता और औदार्य ने हम सब लोगो को जैसे निर्भय बना दिया था। हमे कभी भी किसी भी समय आपके पास पहुँचने मे संकोच नही होता था। जब जब हम आपके पास पहुँचे, आपने हमारी कठिनाइयो को इसी प्रकार हल किया, जिस प्रकार पिता पुत्र की कठिनाइयो को हल करता है। इसमे कोई सन्देह नही कि इस अवधि मे हमसे ऐसी अनेक त्रुटियाँ और भूलें हुई होगी जिनसे आपको पीडा पहुँची हो। अतः इस अवसर पर हम उन सबके लिये क्षमा-याचना करते हैं।

अन्त मे, हम सब ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि वह आपको उज्ज्वल भविष्य, धवल यश तथा सुन्दर स्वास्थ्य प्रदान करे जिससे आपकी सेवा-शक्ति बढे तथा हजारो-लाखो लोगो को उसका लाभ प्राप्त हो।

हम हैं आपके छात्रगण,
राजकीय हायर सेकण्डरी स्कूल,
विजयनगर।

विजयनगर,
१८-१२-६३

निबन्ध और उसके भेद

निबन्ध शब्द का अर्थ है—बँधा हुआ। विद्वानो के अनुसार निबन्ध उस गद्य रचना को कहते हैं जिसमे कुछ चुने हुए शब्दो मे किसी विषय को बाँधा जाता है। सक्षेप मे कहें तो निबन्ध एक गठी हुई रचना है। प्राचीन आचार्य गद्य को कवियो की कसौटी कहा करते थे। आचार्य रामचन्द्रजी शुक्ल कहते थे कि यदि गद्य कवियो की कसौटी है तो निबन्ध गद्य की कसौटी है। वस्तुत निबन्ध मे ही गद्य का निजी रूप देखने को मिलता है, क्योकि वैसे तो कहानी, उपन्यास, जीवनी, समालोचना आदि भी गद्य मे ही लिखे जाते हैं लेकिन उनमे गद्य भाषा का माध्यम भर होता है। गद्य का स्वरूप अपनी सारी साज-सज्जा और शक्ति-मत्ता के साथ निबन्ध मे ही प्रकट होता हुआ दिखाई देता है।

हिन्दी मे निबन्ध शब्द अग्रेजी के 'ऐसे' (Essay) शब्द के अर्थ मे प्रयुक्त होता है, जिसका अर्थ है प्रयत्न । प्रारम्भ मे अग्रेजी निबन्ध किसी कल्पनाशील मन का विचरणमात्र होते थे। लेकिन जैसे जैसे समय बीतता गया निबन्ध मे शृ खलाबद्धता और बुद्धि-तत्त्व की प्रधानता होती गई। आधुनिक निबन्ध की सबसे बडी विशेषता यह है कि यह कहानी की तरह आकार मे छोटा होता है, उसमे एक भी शब्द अनावश्यक नही होता । दूसरी महत्त्व की बात यह है कि निबन्ध मे लेखक का व्यक्तित्व झलकता रहता है, उसके विचारो मे अपनी स्वय की प्रेरणा होती है, अपना स्वय का दृष्टिकोण। जैसा कि ऊपर कहा गया है निबध का आकार छोटा होता है, अत यद्यपि उसमे विचारो के पूर्ण प्रतिपादन की अपेक्षा नही की जा सकती तथापि उसमे गीतिकाव्य की तरह निजी-पन और पूर्णता होती है। उसमे लेखक के दृष्टिकोण की एक झाँकी होती है। निबन्ध साधारण गद्य की अपेक्षा अधिक रोचक और अधिक सजीव होता है। उसमे लेखक की प्रतिभा की चमक होती है। श्री गुलाबरायजी के अनुसार—"निबन्ध उस गद्य रचना को कहते हैं जिसमे एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रपिपादन एक निजीपन, स्वच्छन्दता, सौष्ठव, सजीवता तथा आवश्यक सगीत एव

सम्बद्धता के साथ किया हो।" निबन्ध के विषयो की कोई सीमा नही होती। चीटी से लेकर आकाश-कुसुम तक सब निबन्ध के विषय बन सकते हैं। निबन्ध-लेखक की कला इसी मे होती है कि वह किसी भी विषय या वस्तु की ओर आकर्षित होकर उसे अपने स्पर्श से रुचिकर, आकर्षक और सुन्दर बना दे। अत निबन्ध मे विषय के साथ शैली का महत्त्व भी कम नही होता है।

यद्यपि सारे निबन्ध का रूप एक ही होता है तथापि मोटे रूप मे वह आदि, मध्य और अन्त नामक तीन भागो मे बँटा रहता है। उसका प्रारम्भ जितना आकर्षक होगा उतना ही पाठको की उत्सुकता जाग्रत कर सकेगा। दूसरे, प्रारम्भ मे ही पाठक को इस बात की झलक मिल जानी चाहिए कि निबन्ध मे मौलिक ढग से लिखी हुई मनोरजन एव विचारपूर्ण बाते पढने को मिलेंगी। साथ ही इस प्रारम्भिक भाग मे विषय की सक्षिप्त व्याख्या भी मिल जानी चाहिए ताकि पाठक का उस दिशा मे बढना सुगम हो जाय।

निबन्ध का मध्य-भाग अपेक्षाकृत विस्तृत होता है उसमे लेखक के अपने तर्क होते हैं। वह एक-एक करके उन्हे क्रमपूर्वक पाठक के सामने रखता है और उन्हे ऐसा मोड देता है कि वे एक दिशा की ओर सकेत करते हैं। यदि लेखक इस मध्य-भाग को ठीक तरह से सवार ले तो फिर अन्त अपने आप ठीक हो जाता है। निबन्ध के अन्तिम भाग मे इस बात का ध्यान रखना आवश्यक होता है कि अन्त अनायास न हो जाय। वह इस प्रकार समाप्त हो कि समाप्त हो जाने पर भी उसके भाव पाठक के मस्तिष्क मे गूँजते रहे।

ऊपर कहा जा चुका है कि निबन्ध का क्षेत्र बडा विशाल होता है। अत इस विशालता के कारण उसके भेद भी अनेक किये जा सकते हैं। फिर भी सुविधा की दृष्टि से उसके चार मुख्य भेद किये जा सकते हैं— (१) वर्णनात्मक (२) विवरणात्मक (३) भावात्मक और (४) विचारात्मक।

(१) **वर्णनात्मक निबन्ध**—इस प्रकार के निबन्धो मे वर्णन की

प्रधानता होती है। वे पाठक के सामने किसी विषय, वस्तु या व्यापार का चित्र उपस्थित करते हैं अथवा उनके प्रति भय, आनन्द या करुणा की भावना जागृत करते है। ऐसे निबन्धों मे लेखक अपने विषय की व्यापक रूप-रेखा बनाकर उसके अनुसार प्रत्येक भाग का वर्णन विस्तार के साथ करता है। इस प्रकार निबन्धो मे वस्तु का वर्णन इस ढग से किया जाता है कि उसका चित्र-सा उपस्थित हो जाय। अपने वर्ण्य विषय का अधिक व्यापक रूप प्रस्तुत करने के लिये वह कभी-कभी भिन्न-भिन्न दृष्टि कोणो से भी वर्णन करता है। इस प्रकार के निबन्धो की भापा विषय के अनुसार वदलती रहती है। शोभा और सौन्दर्य के लिये सस्कृत की कोमल कान्त पदावली उपयुक्त रहती है तो करुण दृश्यो के लिये वेदना प्रकट करने वाली शब्दावली।

(२) **विवरणात्मक निबन्ध**—इस प्रकार के निबन्धो का प्रसार किसी घटना या वृत्तान्त को लेकर किया जाता है। इनमे किसी युद्ध या दुर्घटना का वर्णन होता है तो कभी यात्रा या मेले का। कभी किसी महापुरुष के जीवन वृत्तान्त का वर्णन होता है तो कभी किसी कथा का। विवरणात्मक निबन्धो मे विपय-वस्तु या व्यापार के सब अङ्ग उपाङ्गो का सविस्तार यथातथ्य वर्णन रहता है। इनमे पहले कालक्रम के अनुसार घटनाओ का सजीव वर्णन रहता है फिर उनका उत्तरोत्तर विकास चित्रित किया जाता है। घटनाओ का क्रमानुसार वर्णन करने मे उनके कारणो पर स्पष्ट रूप से विचार किया जाता है और घटनाओ से उनका फल निकाला जाता है। अन्त मे यदि आवश्यकता हुई तो वर्णित घटनाओ से सन्वन्ध रखने वाले पात्रो का चरित्र-चित्रण भी आलोचनात्मक ढग से किया जाता है। इस प्रकार के निबन्धो मे लेखक दर्शक के साथ-साथ आलोचक का भी काम करता है।

(३) **भावात्मक निवन्ध**—इस प्रकार के निवन्धो मे रस और भावो की व्यजना का प्रमुख स्थान रहता है। लेखक भावावेश मे अपने आह्लाद, प्रेम, क्रोध, घृणा, हर्ष, विषाद, विस्मय अथवा इसी प्रकार के किसी अन्य भावो की व्यजना इतनी तीव्रता से करता है कि पाठक उसके प्रवाह

मे बह जाय । ऐसे निवन्धो में लेखक अत्युक्ति की सहायता भी लेता है ताकि भावो को तीव्रतापूर्वक व्यक्त कर सके । गद्य-काव्य इस प्रकार के निबन्धो के बहुत निकट होते हैं । भावात्मक निबन्धों मे रागात्मकता होती है जिससे उनकी शैली अपने आप कवित्वपूर्ण हो जाती है ।

(४) **विचारात्मक निबन्ध**—इस प्रकार के निबन्धो मे बौद्धिक विवेचन की प्रधानता रहती है । उनमे प्राय अमूर्त विषयो पर विचार प्रकट किये जाते हैं । उनके अन्तर्गत प्रेम, उत्साह, वीरता, सौन्दर्य, क्रोध, चिन्ता, निराशा, आशा, अहिंसा, बेकारी, शिक्षा, परोपकार देश-प्रेम और सत्सग जैसे विषय आते हैं । इनमे इस प्रकार के विषयो पर बुद्धि-सगत विचार करके उनके गुण और दोषो का गम्भीर विवेचन किया जाता है। वस्तुत हमारा समाज जिन मूल तत्त्वो पर टिका हुआ है, लेखक उन्हे बारीकी से देखकर उनका रहस्य पाठको के सामने प्रकट करता है । लेखक का प्रयत्न यही रहता है कि वर्णित विषयो के सम्बन्ध मे उसका अपना जो विचार या मत हो वही पाठक का भी बन जाय । उसे पाठक को क्रमश अपनी विचार-परम्परा पर लाना होता है और विषय का स्पटीकरण करने के लिए भावो की स्पष्टता का भी ध्यान रखना होता है । लेखक को शब्दो का उपयोग नाप-तोल कर करना होता है तथा भाषा को परिष्कृत एव प्रवाहपूर्ण बनाना होता है ।

इस प्रकार वर्णनात्मक निबन्धो का सम्बन्ध अधिकतर देश से होता है, उसमे विषय या वस्तु को स्थिर रूप से देखा जाता है । विवरणात्मक निबन्ध का सम्बन्ध काल से होता है और उसमे वस्तु को उसके गतिशील रूप मे देखा जाता है । विचारात्मक निबन्धो मे तर्क की प्रधानता होती है तो भावात्मक निबन्धो मे भावना की । एक मे बुद्धि-तत्त्व प्रमुख होता है, दूसरे मे हृदय-तत्त्व ।

१—सिनेमा या चित्रपट

१—प्रस्तावना
२—सिनेमा के आविष्कार का इतिहास
३—उसकी वैज्ञानिक जानकारी
४—सिनेमा के लाभ
५—हानियाँ
६—उपसहार

आधुनिक युग विज्ञान की उन्नति का युग है। विज्ञान ने आज ऐसे चमत्कार करके दिखा दिये हैं कि दाँतो तले उङ्गली दबानी पडती है। हवाई जहाज से हम कुछ ही घण्टो मे हजारो मील की यात्रा कर लेते हैं, बेतार के तार से सुदूर देश मे बैठे हुए किसी व्यक्ति से बातचीत कर सकते हैं, रेडियो के द्वारा प्रतिदिन की घटनाओ के समाचार तथा सगीत, भाषण, नाटक आदि के कार्य-क्रम सुन सकते है और एटम एव हाइड्रोजन बम उपलब्ध हो जाय तो बडे से बडे देश को देखते ही देखते विनाश के गर्त मे ढकेल सकते हैं। मतलब यह है कि विज्ञान के युग ने हमे वरदान और अभिशाप साथ-साथ दिये हैं। सिनेमा भी एक ऐसा ही आविष्कार है जो बहुत लोकप्रिय हुआ है और उसमे भी लोक-हित या लोक-अहित की बहुत-सी सम्भावनाये समाई हुई है। आज मुश्किल से कोई ऐसा शहर मिलेगा जहाँ २-४ सिनेमा-हॉल न हो। धनी-गरीब, मालिक-मजदूर, विद्वान्-मूर्ख, स्त्री-बालक सभी हजारो की तादाद मे प्रतिदिन सिनेमा देखने जाते हैं, मानो सिनेमा उनके जीवन की आवश्यकता ही हो गई हो।

सिनेमा का आविष्कार सन् १८७० मे अमेरिका के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक एडीसन ने किया था। अपने जन्म के २०-२५ वर्ष बाद ही सिनेमा भारत मे आ गया। पहले पहल यह मूक चित्रपट के रूप मे दिखाया जाता था। लोगो को ठीक प्रकार से कथा समझाने के लिए बीच-बीच मे कुछ लिख दिया जाता था अथवा कोई व्यक्ति बोल कर बता दिया करता था। सन् १९२८ मे यह कमी दूर हो गई और ऐसे बोलते

चित्रपट बनाए जाने लगे जिनसे अभिनय के साथ-साथ बात-चीत और सगीत आदि का भी आनन्द आने लगा। अब रूप के साथ शब्द का आनन्द प्राप्त होने लगा। अभी पाँच-सात वर्ष से एक और आविष्कार हुआ है और रगीन चित्रपट भी तैयार-होने लग गये हैं।

सिनेमा-घरो मे जो चलचित्र दिखाये जाते हैं उन्हे बनाने का काम बडी-बडी कम्पनियाँ करती है। इन कम्पनियो के पास लाखो-करोडो रुपयो की पूँजी होती है और चित्र बनाने मे ही वे बहुत-सा पैसा और समय खर्च करते है। जिस स्थान पर ये चित्र बनाये जाते हैं उसे स्टूडियो कहते हैं। वैसे चित्र बनाने का काम यही होता है; किन्तु पहाड़, नदी, समुद्र, वन आदि के चित्र लेने के लिये बाहर भी जाना पडता है। एक ओर अभिनय होता रहता है और दूसरी ओर शीघ्रगामी कैमरा चित्र लेता रहता है। इस प्रकार विभिन्न मानवी-चेष्टाओ और भावव्यजनाओ और गतियो के अनेक चित्र लिए जाते हैं। एक-एक मानवी-चेष्टा और गतिविधि को प्रदर्शित करने के लिए सहस्रो चित्र लेने पडते हैं। इस प्रकार एक साधारण-सी घटना दिखाने के लिये करोडो चित्रो की आवश्यकता होती है। इन चित्रो का सामूहिक नाम ही फिल्म है। ध्वनि का रिकार्ड लेने के लिये पास ही दूसरे यन्त्र होते हैं। फोटोग्राफी की कला के अनेक चमत्कार चलचित्र मे देखने को मिलते हैं। ऊँचे पहाड से उठाकर मनुष्य समुद्र मे फैंक दिया जाता है। ऊँचे-ऊँचे मकानो पर आदमी बन्दर की तरह चढता हुआ दिखाया जाता है। इस प्रकार जब पूरी रील तैयार हो जाती है तो उसे सिनेमा-घरो मे प्रदर्शन के लिये भेज दिया जाता है। जब यह चित्र शीघ्रगामी मशीनो के द्वारा पर्दे पर दिखाये जाते है तो हम यह भूल जाते हैं कि जो कुछ देख रहे हैं वह वास्तविक है या नही। यन्त्र इतनी तेजी से चलता है कि हमे यह सोचने का अवसर ही नही मिलता कि एक के बाद एक अनेक चित्र हम एक साथ देखते जा रहे हैं।

सिनेमा की दुनियाँ बडी अनोखी है। वहाँ बड़े विचित्र ढग से बात-चीत होती है; विचित्र तरह की हँसी हँसी जाती है और विचित्र तरह से दुःख प्रकट किया जाता है। सिनेमा के हाव-भाव, बात-चीत और

संगीत गली-गली मे सुनाई और दिखाई पड जाते हैं। क्या बालक और क्या युवा, क्या तांगे वाला और क्या रिक्षावाला, क्या मजदूर और क्या व्यापारी सभी की जबान पर सिनेमा का सगीत बैठा हुआ प्रतीत होता है। उसने बडे-बड़े नाटक-घरो मे और सगीत-शालाओ के ताले बन्द करवा दिये हैं। वह निरन्तर अधिकाधिक लोकप्रिय बनता जा रहा है। अमेरिका इसमे सबसे आगे है। भारत मे भी पिछले १०-१५ वर्षों मे ही उसने काफी प्रगति करली है। एक के बाद एक अच्छी-अच्छी फिल्मे बन रही है जिससे कि भारतीय फिल्म-व्यवसाय का भविष्य बडा उज्ज्वल प्रतीत होता है।

सिनेमा बडा उपयोगी सिद्ध हुआ है। वह मनोरजन का एक सस्ता और अच्छा साधन है। एक बार फिल्म तैयार हो गई कि वह कई शहरो मे एक साथ दिखाई जा सकती है। लाखो व्यक्ति उसका लाभ उठा सकते है। दिन के काम से थके हुए व्यक्ति सिनेमा मे चले जाते है और वहाँ एक साथ सगीत, नृत्य, अभिनय और हास्य-विनोद का आनन्द प्राप्त करते है। थकावट दूर करने के साथ-साथ वह रुचि का परिष्कार भी करता है। वह निम्न कोटि के विनोद और मनोरजन से ऊपर उठाकर व्यक्ति को सभ्य और सस्कृत बनाता है।

सिनेमा शिक्षा का एक बड़ा अच्छा साधन है। जितनी जानकारी कक्षा मे अध्यापक नही दे पाता है उतनी जानकारी सरलतापूर्वक सिनेमा के द्वारा मिल जाती है। ऐतिहासिक, धार्मिक और सामाजिक चित्रो मे बहुत से ऐसे दृश्य दिखाये जाते हैं जिनसे सहज ही भूगोल, इतिहास, राजनीति, विज्ञान, साहित्य, कला आदि का ज्ञान हो जाता है। कक्षा मे प्राय. भाषण के द्वारा ही बहुत-सी बाते बताई जाती हैं लेकिन सिनेमा मे ये सब प्रत्यक्ष दिखाई जाती हैं। प्रताप की वीरता की या राजा हरिश्चद्र की सत्यप्रियता की कहानी कहने मे उतनी प्रभावशाली नही होती जितनी अभिनय के द्वारा। महात्मा गाधी पर सत्य हरिश्चन्द्र नाटक देख कर ही उसकी सत्यप्रियता का अमिट प्रभाव पडा था, जो अन्त तक उसके जीवन को प्रकाशित करता रहा। इसी प्रकार

ऐतिहासिक एव भौगोलिक महत्त्व के स्थान तो प्रत्येक बालक को दिखाना कठिन होता है। उन्हे चित्रपट के द्वारा प्रत्येक बालक को दिखाया जा सकता है और उनके ज्ञान को अधिक तेजस्वी, शक्तिशाली और पूर्ण बनाया जा सकता है। आजकल भारत-सरकार कुछ 'डाक्यूमेण्ट्री फिलम्स' तैयार करती है जो प्रत्येक खेल के प्रारम्भ मे दिखाई जाती है। देश-विदेश की बहुत-सी अच्छी-अच्छी बातो का ज्ञान इनसे होता है और जिन समारोहो मे हम सम्मिलित नही हो पाते उनकी झलक इनमे देख लेते हैं। सिनेमा के द्वारा खेती तथा ग्रामोद्योगो की विविध प्रक्रियायें बडी सफलता से दिखाई जाती हैं और नवयुवको तथा किसानो के लिए बडी लाभदायक सिद्ध होती हैं। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न देशो और कालो की वेषभूषा, रीतिरिवाज एवं रहन-सहन का ज्ञान सहज ही हो जाता है और वहाँ के पशु-पक्षियो की बोली तथा स्वरूप का परिचय भी प्रत्यक्ष रूप से हो जाता है।

सिनेमा या चिपट मानव-आचरण के सस्कार का एक बहुत अच्छा साधन है। उसके द्वारा मानव भावनाओ और अनुभवो को प्रत्यक्ष रूप से देखने व सुनने का अवसर मिलता है। वहाँ मानव-हृदय के उस हर्ष, शोक, भय, प्रेम आदि को भी प्रत्यक्ष रूप से देखने और अनुभव करने का अवसर मिलता है जिसे हम साधारणत अनुभव तो करते हैं, लेकिन अभिव्यक्त नही कर पाते। सिनेमा मे कथानक, सगीत, अभिनय, वातावरण आदि की योजना एक विशिष्ट उद्देश्य से की जाती है और पूरा खेल देखने के बाद उसका उद्देश्य मन पर प्रभाव डाले बिना नही रहता। सिनेमा का यह प्रभाव ही आचरण का सस्कार करता है।

सिनेमा से जहाँ इतने लाभ हैं, वहाँ हानियाँ भी होती हैं। आजकल सिनेमा का व्यवसाय लाभ की मनोवृत्ति पर चल रहा है, उच्च-आदर्शों के प्रसार और प्रचार की दृष्टि से नही। परिणाम यह होता है कि उससे जो लाभ मिलना चाहिये वह साधारणत नही मिल पाता। आजकल बहुत से चित्रपट निम्न-स्तर के निकलते है और वे कामुकता पैदा करने वाले नृत्य, गीत और अभिनय के द्वारा निम्न कोटि

की भावनाओ को परितुष्ट करके पैसा कमाने की धुन मे रहते हैं । इसके लिये साहित्य, कला, इतिहास, धर्म, नैतिकता आदि सब की हत्या करने मे वे हिचकिचाते नही है । परिणाम यह होता है कि "जिया भरमाके, हिया तरसा के चले नही जाना", "दिल के टुकडे हजार हुए", "आवारा हूँ आवारा हूँ" जैसे निम्न-कोटि के गीत दिन-रात गली-गली और घर-घर मे सुनने को मिल जाते है । अच्छाई के प्रचार के स्थान पर अब तक तो बुराई का ही प्रभाव ज्यादा पडा है । समय और धन की बर्बादी के साथ-साथ बहुत से विद्यार्थियो ने उससे बनाव-शृङ्गार और प्रेम-प्यार की बातें ही सीखी है । बहुत से आवारा लोगो ने लूट-मार के तरीके तथा धोखा-धड़ी के उपाय सीखे हैं । यह सब देख कर हम उसकी ओर से निश्चिन्त या चुपचाप नही रह सकते ।

सिनेमा मे बहुत से वरदानो के साथ अभिशाप भी छिपे हुए हैं । उनके स्वस्थ विकास के लिये हमे इन अभिशापो के प्रति सजग रहना पडेगा । चित्रपट मे पहली महत्त्वपूर्ण वस्तु कहानी होती है । आजकल के डायरेक्टर अधिकाँश कहानियाँ इधर-उधर की कहानियो को हिन्दी का चोला पहिना कर तैयार कर लेते हैं । हिन्दी के अच्छे कहानी-कारो और उपन्यास-लेखको को यह काम सौंपना चाहिये और उनकी सहायता से अच्छी कहानियाँ तैयार करवानी चाहिये । इससे कथावस्तु के साथ कथोपकथन मे भी सुधार होगा । कला की कुछ विशेष बातें भले ही बाहर से ली जाय लेकिन भारतीय सस्कृति की अपेक्षा कभी भी वाछनीय नही हो सकती । दूसरी बात यह है कि प्राय फिल्म कम्पनियाँ एक तरह के ही चित्रपट तैयार करती हैं । ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, काल्पनिक, सभी प्रकार के चित्र तैयार करने चाहिये ताकि जीवन के सब पक्षो का चित्र दर्शको के सामने आता रहे । तीसरे बच्चो के चित्रपट तैयार करने की ओर हमारे फिल्म-निर्माताओ ने ध्यान नही दिया है अत उस ओर बहुत अधिक ध्यान देना चाहिये । उसी के द्वारा देश का सच्चा निर्माण हो सकता है । सबसे अन्तिम और महत्त्व की बात यह है कि चित्रपट के व्यवसाय को पूँजीपतियो की लाभ की

मनोवृत्ति से वचाना चाहिये । यदि यह हो सके तो वह अनेक बुराइयो से बच जायगा ।

२—वायुयान

१—आकाश मे उडने की चिरपोषित इच्छा
२—वायुयान के आविष्कार की कहानी
३—वायुयान की प्रगति और विकास का इतिहास
४—वायुयान से लाभ
५—वायुयान और विनाश
६—उपसहार—वायुयान के सहयोग की दिशा

एक समय था जब मनुष्य सभ्य नही हुआ था। वांछित स्थान पर जल्दी ही पहुँच जाने के कोई अच्छे साधन उसके पास नही थे । ज्यादा से ज्यादा हुआ तो वह घोड़े, ऊँट, हाथी, बैल, भैंसा या खच्चर जैसे चौपायो से सवारी का काम लेता था । मध्य-युग तक वह इन्ही के द्वारा दूर देशो की यात्रा करने का प्रयत्न करता था । आगे चल कर अपनी वुद्धि का कुछ अधिक उपयोग करके उसने रथ, गाड़ी आदि का आविष्कार कर लिया और इन वाहनो की सहायता से यात्रा को कुछ अधिक सुलभ बना लिया । लेकिन थोडे से समय मे ही दूर-दूर के देशो मे पहुँच जाने की इच्छा उसकी चिरपोषित इच्छा रही है । किसी सकट-काल मे प्रेम, क्रोध, घृणा आदि भावनाओ के आवेग मे, किसी कवि की तरह वह भी कहता रहा है—'काश मैं पछी होता । फिर तो मुझे अपनी वांछित जगह पहुँचने मे देर न लगती । पक्षियो की तरह उड कर जल्दी से जल्दी अपने अभीप्सित स्थान पर पहुँच जाता ।' अपनी इस इच्छा की पूर्ति के लिये उसने वायुयान जैसे वाहन की कल्पना की । हिन्दू-पुराणो मे वायुयान का उल्लेख अनेक स्थानो पर मिलता है । सभी वड़े-बडे देवताओ के पास पुष्पक-विमान थे और उनकी सहायता से वे जहाँ चाहते थे शीघ्र पहुँच जाते थे । रावण इसी प्रकार के विमान मे बैठाकर सीताजी को लका ले गया था और लका विजय करके रामचन्द्रजी ऐसे ही पुष्पक विमान से अयोध्यापुरी पहुँचे थे । यूरोप मे यूनान की सभ्यता

बड़ी प्राचीन मानी जाती है। यहाँ की धर्म-पुस्तको मे भी इस प्रकार के वर्णन मौजूद हैं। उनमे कहा गया है कि डेडल्स नामक एक चतुर व्यक्ति अपने पुत्र के साथ उडकर क्रीट से इटली तक गया था। उसने अपने कन्धो पर मोम से बड़े-बड़े पख चिपका लिये थे और उन्ही के सहारे उड गया था। इसी प्रकार "अरेबियन नाइट" नामक प्राचीन कहानी मे भी एक ऐसे घोडे का वर्णन आता है जो उडता है। जादू से उडने वाली एक परी का भी वर्णन इन कहानियो मे है। इस प्रकार हम देखते है कि आकाश मे उडना मनुष्य की चिरपोषित इच्छा है। वायुयान के आविष्कार से ही उसकी इच्छा को साकार रूप मिला है।

आकाश मे उडने की इच्छा ने सबसे पहले १८ वी शताब्दी के अन्त मे साकार रूप लिया। उस समय यूरोप के कुछ लोगो ने हल्की गैस से भरे हुए गुब्बारे मे बैठकर आकाश की सैर की और सकुशल धरती पर लौट आये। लेकिन इतने भर से उनको सन्तोष नही हुआ। वायुयान बनाने के काम मे सब से पहले अमेरिका के राइट ब्रदर्स ने एक सफल प्रयास किया। उन्होने पक्षी के आकार का एक बहुत हल्का चौखटा तैयार किया और उसके आर पार दो पख लगा दिये। उन्होने इस चौखटे के नीचे दो पहिये लगाकर मोटर की शक्ति से पृथ्वी पर दौडाया। फिर मशीन के सामने बिजली के पखे की तरह पत्ते लगाये जो उपर्युक्त पखो के सहारे यान को मध्य आकाश मे साध सकें। इस प्रकार वायुयान का आविष्कार हो गया। यह पहला वायुयान पहली बार सन् १९०३ मे १७ दिसम्बर के दिन उडा। आगामी २-३ वर्षों मे इसमे सुधार हुए और सन् १९०६ मे एक वायुयान २५ मील प्रति घण्टे की गति से आकाश मे उडा। इसे देखकर लोग चकित रह गये। सचमुच उस जमाने मे यह चकित होने जैसी ही बात थी। धीरे-धीरे वायुयान की गति मे और सुधार होता गया तथा सन् १९१३ मे ऐसे वायुयान बन गये जो एक घण्टे मे १२६ मील की चाल से उडते थे। इसके बाद जर्मनी के एक जेपलिन नामक व्यक्ति ने "जेपलिन" नाम के वायुयान का आविष्कार किया। इसमे पहले वायुयानो की अपेक्षा बहुत

ज्यादा आदमी बैठ सकते थे और वहुत ज्यादा बोझा लादा जा सकता था ।

प्रथम महायुद्ध के साथ वायुयान का विकास आरम्भ हुआ । पहले-पहल शत्रु की गति-विधि की जानकारी प्राप्त करने के काम मे उसका उपयोग होने लगा और वाद मे वम गिराने के काम मे । वायुयान के आविष्कार से शत्रु के शहरो पर सफलतापूर्वक बम गिराये जा सकते थे तथा उसकी सारी व्यवस्था को नष्ट-भ्रष्ट किया जा सकता था । अत वायुयान की कीमत वढी । नतीजा यह हुआ कि जहाँ पहले युद्ध के समय ब्रिटेन के पास केवल १३० वायुयान थे वहाँ युद्ध का अन्त होते होते वीस हजार हो गये । अव राजनीतिज्ञो ने अनुभव कर लिया है कि वायुयान की शक्ति के विना वर्तमान युद्ध मे विजय प्राप्त करना कठिन है ।

प्रथम महायुद्ध के समाप्त होते ही वायुयान की उपयोगिता की दिशा बदली । अव कही बम तो वरसाना था नही । अत. नागरिक उड्डयन की ओर लोगो का ध्यान गया । रेल और बस-सर्विस की भाँति वायुयान भी दुनियाँ के एक देश से दूसरे देश की यात्रा के काम मे लिये जाने लगे । दूसरे देशो की यात्रा सकुशल करने की दृष्टि से वायुयान मे और कुछ सुधार किया गया और कुछ ही समय बाद उस की यात्रा आनन्ददायक वनने लगी । वायुयान ने समय और दूरी दोनो को ही ब्रहुत घटा दिया । एक तो वायुयान की गति बहुत तीव्र थी, दूसरे रेल, मोटर आदि की तरह उसे किसी बँधे-बँधाये मार्ग पर चलना आवश्यक नही था । वायुमण्डल मे न कोई पहाड है, न नदी । वहाँ तो सीधा रास्ता मिलता है । अत इस उपयोगिता के कारण वायुमार्ग निश्चित हुए और उन पर वायु-यात्राएँ होने लगी । वायुयान के ठहरने के लिए एरोड्रम बनाए गए । थोडे ही दिनो मे नागरिक उड्डयन के केन्द्र दुनियाँ के सभी वडे शहरो मे खुल गये । आजकल वहुत से लोग विदेशो की यात्रा हवाई-जहाजो के द्वारा ही करते है ।

वायु-यात्राओ की लोकप्रियता शीघ्रता से वढती जा रही है । आजकल इतने वडे वायुयान वन गये हैं कि १०० यात्रियो तथा ६-७

कर्मचारियो को ले जा सके। इनमे लगभग ५० आदमियो के सोने की जगह भी होती है। इनकी गति भी कम नही होती। ये ८० मील प्रति घण्टे के हिसाब से उड़ते हैं। दूसरे महायुद्ध के पहले जर्मनी ने एक ऐसा वायुयान वना लिया था जो दुनिया का सबसे बडा वायुयान था। उसमे लगभग १७० यात्री यात्रा कर सकते थे। सन् १९१९ मे एक जर्मन वायुयान ने २१ दिन ७ घण्टे तक उडकर सारी दुनियाँ का चक्कर लगा डाला। उसके बाद एक अमेरिकन चालक ने ७ दिन मे ही यह काम कर लिया। अब तो इस दिशा मे और प्रगति हुई है और इससे भी कम समय मे कुछ लोगो ने विना रुके ही पृथ्वी का चक्कर लगा दिया है।

वायुयान की गति मे भी इन दिनो आश्चर्यजनक प्रगति हुई है। १९३४ में एक इटेलियन उडाकू ने ४४० मील प्रति घण्टा उडकर पुराने रेकार्ड तोड दिये। आजकल ४५० मील प्रति घण्टे के हिसाब से यात्रा करना तो साधारण-सी बात हो गई है। बडे-बडे वायुयान भी आजकल ३०० मील प्रति घण्टे की गति से उड लेते है। जेट वायुयानो ने गति की दिशा मे और भी प्रगति की है। वह ६१० मील प्रति घण्टे के हिसाब से उड लेते हैं। गति को बढाने के साथ-साथ ज्यादा से ज्यादा ऊँचाई पर उडने की ओर भी चालको का ध्यान गया है। सन् १९३६ मे स्विन नामक एक अँग्रेज चालक ४९९६७ मील की ऊँचाई तक उडा। खूब ऊँचाई पर जाकर उडने की दिशा मे अभी वहुत प्रगति होने की सम्भावना है, क्योकि जितनी ज्यादा ऊँचाई पर जाते है उतना ही वायु का दबाव कम पडता है और वायुयान तेज चाल से उड सकता है। यदि इस दिशा मे काफी प्रगति हुई तो लन्दन से न्यूयार्क कुछ घण्टो मे ही पहुँचा जा सकेगा।

वायुयान एक वरदान है। उसने दुनियाँ का नक्शा ही बदल दिया है। उसकी सहायता से कुछ घण्टो मे ही दुनियाँ के एक देश से दूसरे देश मे पहुँचा जा सकता है। इसकी सहायता से किसी भी सकट का सामना किया जा सकता है। सामान को शीघ्रतापूर्वक ले जाने मे योग देकर इसने व्यापार को वढाया है और इसी के कारण राष्ट्रीयता का युग

समाप्त होकर अन्तर्राष्ट्रीयता का युग प्रारम्भ हो रहा है। इसने बडी-बडी सेनाओ, बड़े-बड़े किले और अनेकानेक शस्त्रास्त्रो के खर्च को अनुपयोगी सिद्ध कर दिया है। अब लडाई मे केवल बम की ही उपयोगिता रह गई है। उसके द्वारा दुनियाँ के लोगो का एक दूसरे के सम्पर्क मे आना सुलभ हो गया है। साँस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक आदान-प्रदान मे सहायता मिली है। पारस्परिक शान्ति और सहयोग का मार्ग प्रशस्त हुआ है।

लेकिन दु ख की बात है कि वायुयान का जितना सदुपयोग होना चाहिए उतना नही हुआ है। साम्राज्यवादियो के हाथ मे पडकर वह उनके शोषण, साम्राज्य-लिप्सा एव अत्याचार का साधन ही अधिक बना है। उसने अपनी प्रलयकारी शक्ति से मानवता के अस्तित्व को ही चुनौती दे दी है। बेचारी मानवता त्रस्त होकर त्राहि-त्राहि कर उठी है। आज प्रत्येक राष्ट्र ज्यादा से ज्यादा वायुयान बनाने की होड कर रहा है। जिसके पास ज्यादा और अच्छे वायुयान हो आज वही शक्तिशाली समझा जाता है। सभी राष्ट्र वायुसेना की शक्ति को अपनी स्वतन्त्रता, शक्तिमत्ता और समृद्धि की कुञ्जी मानते हैं, अत: उसके विकास मे अन्धाधुन्ध प्रयत्न किये जा रहे हैं। यूरोप के राष्ट्रो मे यह प्रतिद्विन्द्विता बड़े भयकर रूप से प्रारम्भ हो गई है।

युद्धकाल मे तो वायुयान एक जबरदस्त अभिशाप सिद्ध होता है। उसने प्राचीन युद्ध-कला को, जिसमे लोग आमने-सामने खड़े होकर लड़ते थे, एकदम अनुपयुक्त और अनुपयोगी सिद्ध कर दिया है। देखते ही देखते वह शत्रु के प्रदेश मे पहुँच जाता है और उसकी भव्य इमारतो, कारखानो, लहलहाते खेतो, सैनिक-अड्डो और हाट-बाजारो के साथ समूचे नगर को ही दूर-दूर तक नष्ट कर देता है। जिन इमारतो, कारखानो, स्मारको आदि के बनाने मे सैकडो वर्षों का समय लग गया था वे देखते ही देखते आग की भेंट हो जाते है। बेचारे निरीह नागरिक, जिनका युद्ध से कोई मतलब नही होता, बमो के निशाने बनते हैं और हजारो घर जमीन पर धराशायी हो जाते हैं। पिछले महायुद्ध मे नागासाकी पर ही एटमबम गिरा था और उसने भयकर विनाश का दृश्य

उपस्थित कर दिया था। किन्तु अब तो और ज्यादा विनाशकारी बम तैयार हो गये है और मनुष्यता के खतरो को बढा ही रहे है।

इस प्रकार वायुयान वरदान और अभिशाप दोनो का मिला-जुला रूप लेकर हमारे सामने उपस्थित हुआ है। उससे जितने लाभ हैं उससे कम हानियाँ नही हैं। उसकी बढती हुई शक्ति प्रत्येक शान्ति प्रेमी-व्यक्ति के लिए विचारणीय विषय बन गया है। यह ठीक है कि इसमे दोष वायुयान का नही, उन साम्राज्यवादियो का है जो अपने हित के नशे मे चूर होकर उसके द्वारा बड़े से बडा अहित करते हुए भी शकित नही होते। किन्तु वायुयान के सदुपयोग का प्रश्न मानव की स्वार्थ-लिप्सा पर विजय पाने का ही प्रश्न है। हम ईश्वर से प्रार्थना करें कि या तो वह इन साम्राज्यवादियो को सुबुद्धि दे या दुनियाँ के कोटि व्यक्तियो को इतना जागृत बना दे कि वे शान्ति के दुश्मनो के जहरीले दाँत उखाड दें ताकि उनके बुरे इरादे कभी पूरे नही हो सके।

३—रेडियो

१—आधुनिक युग के चमत्कार और रेडियो
२—निर्माण तथा सचालन
३—रेडियो का बढता हुआ प्रभाव
४—रेडियो के लाभ
    (अ) ससार की सन्निकटता (आ) मनोरजन (इ) शिक्षा प्रसार (ई) ज्ञान प्राप्ति (उ) सकट मुक्ति (ऊ) व्यापार विकास
५—रेडियो का दुरुपयोग
६—उसके प्रचार की आवश्यकता।
७—रेडियो का भविष्य।

आधुनिक युग विज्ञान का युग कहा जाता है। विज्ञान ने ऐसी आश्चर्यजनक बातें करके दिखाई हैं जिनकी पहले कभी कल्पना भी नही की जा सकती थी। क्या कभी किसी ने सोचा होगा कि जिन प्रदेशो की यात्रा बडी कष्टसाध्य है और जहाँ पहुचने मे आदमी को वर्षों लग सकते है, वही वह घण्टो मे पहुँच जायगा? जिस काम को करने मे

हजारो व्यक्ति लग जाते है आगे कभी उसी को एक दो आदमी सरलतापूर्वक कर सकेंगे। क्या कभी आदमी ने पहले यह सोचा होगा कि जिस प्रकृति के रहस्यो को देखकर वह चकित रह जाता है और जिसके आगे उसकी कुछ भी न चल पाती है वही प्रकृति एक दिन उसकी दासी बन जायगी? सचमुच विज्ञान ने जादू जैसा ही चमत्कार कर दिखाया है। उसने समय और दूरी दोनो पर अपना अधिकार जमा लिया है, प्रकृति के अगम्य रहस्यो का पता लगा है और जल, थल आकाश तीनो पर अपनी सत्ता कायम कर ली है।

विज्ञान के चमत्कारो मे रेडियो के आविष्कार का बडा महत्त्वपूर्ण स्थान है। वह बीसवी सदी की एक बहुत बडी देन है। हिन्दी मे हम उसे आकाशवाणी के नाम से पुकारते हैं। उसने आधुनिक युग मे एक क्रान्ति ही करदी है। मनुष्य के सुख और आनन्द उसने कई गुना बढा दिये हैं तथा उसको बहुत-सी परेशानियो और कठिनाइयो से बचा लिया है। रेडियो-सेट आजकल दो सौ-तीन सौ से लेकर पाँच सौ-सात सौ तक मे मिल जाते हैं तथा देश-विदेश की बहुत-सी खबरें घर बैठे ही उनके द्वारा सुनी जा सकती है।

रेडियो वेतार के तार का ही विकसित रूप है। जब हम बोलते हैं या किसी अन्य तरीके से कोई ध्वनि उत्पन्न करते है तो वायुमण्डल मे उनसे ध्वनि-तरगें उत्पन्न होती हैं। ये तरगें धीरे-धीरे पतली बनती हुई सारे ब्रह्माड मे व्याप्त हो जाती हैं। वायु के द्वारा ध्वनि बहुत दूर-दूर तक पहुँच जाती है। रेडियो का निर्माण इसी सिद्धान्त के आधार पर हुआ है। प्रत्येक ब्राडकास्टिग स्टेशन पर माइक्रोफोन लगाया जाता है। जिस व्यक्ति की आवाज प्रसारित करनी होती है उसे माइक्रोफोन के सामने वोलने, नाचने, गाने आदि के लिए कहा जाता है। जब वह अपना कार्यक्रम आरम्भ करता है तो माइक्रोफोन उसकी ध्वनि को ग्रहण करता है और ट्रासमीटर नामक यन्त्र बिजली की शक्ति से उन ध्वनि-तरगो को वायु मे फैंक देता है। इससे उस व्यक्ति की आवाज चारो ओर सारे भूमण्डल मे फैल जाती है। आपने तालाव मे कभी कोई पत्थर फैंका होगा। पत्थर के गिरते ही उस स्थान पर तरगें पैदा होती

हैं और वे धीरे-धीरे छोटी-छोटी होती हुई किनारो तक पहुँच जाती हैं। बस यही बात ट्रासमीटर द्वारा फैंकी हुई आवाज की भी होती है। वह भी ध्वनि तरगो को दूर-दूर तक सारे भूमण्डल मे फैला देती है। बस जिस स्थान पर रेडियो लगा रहता है वहाँ ठीक वही आवाज सुनाई देती है जो ब्राडकास्टिग स्टेशन पर बोली जा रही है। रेडियो के काम मे बिजली का बहुत महत्त्व है। यदि वह न हो तो रेडियो बेकार रहता है। मकान की छत पर लगे हुए ऊँचे-ऊँचे बाँसो पर जुड़े हुए दो तारो के द्वारा मनुष्य निर्मित बिजली से प्राकृतिक बिजली का सम्बन्ध स्थापित कर दिया जाता है। बिजली आवाज को पकड़ती है और रेडियो मे लगा हुआ लाउड-स्पीकर ध्वनि को सुनने योग्य बना देता है। रेडियो मे हवा की दिशा बदलने के लिए सुइयाँ लगी रहती हैं। रेडियो का दैनिक कार्यक्रम पहले ही समाचार-पत्रो मे छप जाता है। उसे पढकर जो प्रोग्राम आप सुनना चाहे सुई घुमाकर सुनिये। कमरे मे बैठे-बैठे किसी भी देश की खबर सुन लीजिये। आपको ऐसा लगेगा जैसे कोई व्यक्ति रेडियो के अन्दर बैठा है और वही बोल रहा है।

रेडियो के आविष्कार ने समाचार-पत्र, तार और टेलीफोन आदि आविष्कारो के महत्त्व को कम कर दिया है। समाचार-पत्र हमे हर देश मे घटने वाली बडी-छोटी सभी प्रकार की घटनाओ की खबर एक दो दिन बाद ही देते हैं। लेकिन रेडियो मे इतनी भी देर की जरूरत नही है। समाचार-पत्र की तरह उसकी खबरें रेल, मोटर या हवाई-जहाज के ऊपर बैठकर नही आती। वह तो वायु के अत्यन्त द्रुतगामी पखो पर बैठकर आती हैं। उसमे समाचारो को इकट्ठा करके छापने की भी जरूरत नही रहती। उधर माइक्रोफोन पर आदमी ने बोलना शुरु किया और इधर आवाज आने लगी। फिर समाचार-पत्र की जडता रेडियो मे नही होती। उसकी खबरें जिन्दा आदमी की आवाज-सी सुनाई देती हैं। अत उसमे जिन्दादिली होती है। टेलीफोन पर अवश्य जल्दी बात हो सकती है लेकिन वह केवल दो आदमियो की ही बात होती है। दूर देशो के सभी प्रकार के समाचार अनेक विषयो पर भाषण, नृत्य, सगीत, वाद्य आदि सबका आनन्द उसमे फौरन प्राप्त हो

सकता है। और तार, वह तो रेडियो के मुकाबले मे कुछ नही। उसके मुकाबले मे रेडियो का कार्य बहुत ही द्रुतगति से होता है। उसमे वह विविधता और आनन्द कहाँ ?

रेडियो ने जैसे सारी दुनियाँ को ही हमारे सन्निकट ला दिया है। आज दुनियाँ के सभी सभ्य देशो मे एक दो नही, अनेक रेडियो-स्टेशन बन गये है। लन्दन, न्यूयार्क, पेरिस, बर्लिन, मास्को, पेकिंग, रोम, टोकियो आदि सभी बडे-बडे शहरो मे रेडियो-स्टेशन हैं। अकेले भारत मे ही कलकत्ता, पटना, इलाहाबाद, लखनऊ, जालधर, जयपुर, अजमेर, पूना, इन्दौर, नागपुर, बडौदा, बम्बई, मद्रास, हैदराबाद आदि अनेक शहरो मे रेडियो-स्टेशन है और नये-नये स्टेशन खोले जा रहे हैं। प्रत्येक स्टेशन का अपना पूर्व निश्चित कार्यक्रम होता है और आप समाचार-पत्रो से उनकी जानकारी प्राप्त करके किसी भी स्थान का समाचार सुन सकते हैं। इस प्रकार दुनियाँ का कोई देश, कोई शहर अब हमसे दूर नही रहा है। घर बैठे हम उससे रेडियो द्वारा सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं।

रेडियो से दूसरा बडा लाभ है मनोरजन। उसकी सहायता से अच्छे से अच्छे कलाकार का सगीत, विद्वानो के भाषण, नृत्यकारो का नृत्य, वाद्य-विशेषज्ञ का वादन और अभिनेता का अभिनय हमे सुनने का सुअवसर मिल जाता है। न तो किसी गायक, नाटककार या नृत्यकार को अपने घर बुलाने का आयोजन करना पडता है न किसी सिनेमा घर मे ही जाने की जरूरत पडती है। पैसा भी खर्च नही करना पडता। 'हीग लगे न फिटकरी और रग चोखा आ जाय' वाली कहावत पूरी तरह चरितार्थ होती है। रेडियो के कार्य-क्रम मे विविधता होती है। बच्चो का कार्य-क्रम अलग होता है, महिलाओ का अलग, सैनिको का अलग और ग्रामीणो का अलग। उत्सवो, त्यौहारो के मौके पर उनसे सम्बन्ध रखने वाला कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है। इस प्रकार रेडियो हमारे मनोरजन का एक बहुत बडा साधन बन गया है।

वैसे रेडियो के लगभग सभी कार्यक्रम शिक्षाप्रद होते हैं। सभी आचरण, सस्कार और व्यक्तित्व का विकास करते हैं। क्या व्याख्यान

और क्या नाटक, क्या बालको का कार्यक्रम और क्या महिलाओ का कार्यक्रम, क्या समाचार और क्या मौसम का हाल सब कुछ लोक-शिक्षण का महत्त्वपूर्ण कार्य करते है। किन्तु विदेशो मे आजकल रेडियो द्वारा अध्ययन-अध्यापन का कार्य भी होने लगा है। रेडियो-स्टेशन से अध्यापक अपना भाषण देता रहता है और सैकडो मील दूर अपने अपने घरो मे बैठे हुये विद्यार्थी उसे सुनते रहते है। हमारे देश मे भी कृषको को ग्रामीण प्रोग्राम के अन्तर्गत इस प्रकार की बातें बताना प्रारम्भ कर दिया गया है जिनसे उनके ज्ञान की अभिवृद्धि होती है। वह दिन दूर नही है जब उसके शैक्षणिक पक्ष का और ज्यादा विकास होगा तथा वह और भी अधिक शिक्षा-प्रदायक बन जायगा।

रेडियो ज्ञान-प्राप्ति का बहुत बडा साधन है। बडे-बडे ग्रन्थो मे जो बातें लिखी होती है और आधुनिक युग के व्यस्त मानव को जिन्हें पढने का समय नही मिल पाता वही बातें रेडियो द्वारा भाषणो के रूप मे सरलता-पूर्वक सुनने को मिल जाती हैं। उसके द्वारा प्रत्येक देश के समाचार और वहाँ की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सास्कृतिक सभी प्रकार की गति-विधियो का परिचय मिलता है जो हमारे ज्ञान की वृद्धि मे सहायक होता है। सगीत की अलग-अलग रागें, वाद्यो की विभिन्न ध्वनियाँ, विद्वानो के विभिन्न विषयो पर दिये गये भाषण इतने मनोरंजक और लुभावने रूप मे हमारे सामने आते हैं कि हम उनकी बारीकियो को पहचानने लगते है और कम समय और कम पैसे मे हमारा ज्ञान कितने ही गुना बढ जाता है।

सकटो से मुक्त कराने के काम मे भी रेडियो ने हमारी बडी सहायता की है। पहले जब कोई जलयान किसी सकट मे पड जाता था तो कई दिनो तक पता ही नही लग पाता था कि वह कब और कहाँ डूबा है। उसको सहायता पहुँचाना तो बहुत दूर की बात होती थी। लेकिन आज रेडियो के आविष्कार से कोई भी जलयान खतरे के समय पास के बन्दरगाह को समाचार भेज सकता है और समय पर सहायता उपलब्ध हो जाने से सारे खतरे टल सकते हैं। वायुयानो को इस प्रकार इसमे बडी सहायता मिलती है।

व्यापार के विकास मे भी रेडियो मे बहुत लाभ मिल रहे है। वह विज्ञान का एक आधुनिकतम तरीका तो है ही, उसके द्वारा सारे ससार के व्यापार सम्बन्धी समाचार—जैसे वस्तुओ के मूल्य आदि भी घोषित किये जाते हैं। इससे सब वस्तुओ के मूल्य प्रत्येक स्थान पर समान हो जाते हैं और गाहक और बेचने वाले को किसी वस्तु का सौदा करने मे असुविधा नही होती। भावो के समाचार शीघ्र सुलभ हो जाने से व्यापार के क्षेत्र मे बडा लाभ हुआ है।

रेडियो से जहाँ बहुत से लाभ हुए हैं वहाँ कुछ हानियाँ भी हुई हैं। रेडियो मे स्वय वस्तुत कोई बुराई नही है। उसका सदुपयोग किया जाय तो जहाँ बहुत लाभ हो जाते है वहाँ दुरुपयोग करने पर बहुत सी हानियाँ भी हो जाती हैं। रेडियो का सबसे बडा दुरुपयोग युद्ध के दिनो मे किया जाता है। उन दिनो उस पर सरकार कब्जा कर लेती है और अपनी सफलता की कहानी लम्बे-चौड़े शब्दो मे कहती रहती है। वह अपनी असफलता को छिपाती है और झूंठ बोलने की होड-सी करने लगती है। बेचारी जनता को अन्धकार मे रखा जाता है और उसी को उसका मूल्य चुकाना पडता है। दूसरी बात यह है कि रेडियो की नीति सचालको के हाथ मे होती है और वे जैसा चाहते है वैसा प्रचार करते हैं। यदि उसका दृष्टिकोण थोडा भी विकृत हुआ तो लोगो को उससे नुक्सान उठाना पडता है। तीसरे रेडियो ने अच्छे कलाकार, अच्छे वादक और अच्छे वाद्यो का महत्त्व कम कर दिया है। जब लोगो को बिना पैसे खर्च किये अच्छे से अच्छा सगीत प्राप्त हो जाता है तो फिर वे कलाकार, वाद्य-यन्त्रो और महफिलो के आयोजन की चिन्ता क्यो करे? परिणाम यह हुआ कि कलाकारो का महत्त्व कम होता जा रहा है। हो सकता है कि नाटक-घरो और सिनेमाओ की भी आगे कोई पूछ न रहे। टेलिविजन के आविष्कार से तो अब माइक्रोफोन पर बोलने वाले का चित्र भी दिखाई देता है। वहाँ पर नृत्य और अभिनय भी दिखाई देने लगते हैं। अत निश्चय ही सिनेमा और नाटकघरों का महत्त्व कम हो जायगा।

रेडियो का आगामी ५०-६० वर्षों का भविष्य निश्चय ही बडा उज्जवल दिखाई देता है। एक ओर जहाँ रेडियो-सेट अधिकाधिक सस्ते

होगे तथा वह साधारण से साधारण परिवार मे भी पहुँच जायेंगे वहाँ दूसरी ओर शिक्षा-प्रसार, ज्ञान-प्राप्ति, मनोरजन तथा सकट-मुक्ति के काम मे ज्यादा से ज्यादा योग देकर मानव-जाति के लिये अधिक उपयोगी सिद्ध होगे। टेलीविजन से उसकी उपयोगिता तथा आनन्द और बढ जायगा। अब तक सुनने का ही लाभ मिलता था। अब देखने का लाभ भी मिलने लगेगा। ईश्वर करे, वह दिन जल्दी आए और रेडियो के लाभ साधारण व्यक्ति को प्राप्त होने लगें।

४—समाचार-पत्र

१—भूमिका—समाचार-पत्र आधुनिक युग की एक आवश्यकता
२—समाचार-पत्र—उनका जन्म तथा विकास
३—समाचार-पत्रो की व्यवस्था
४—समाचार-पत्रो की उपयोगिता एव कार्य
५—समाचार-पत्रो की कमजोरियाँ
६—समाचार-पत्र तथा रेडियो
७—उनकी सही दिशा

सभ्यता के विकास के साथ समाचार-पत्र मानव-जीवन के लिए इतने ही आवश्यक होते जा रहे है जितने कि वायु, जल और भोजन। भोजन हमारी शारीरिक भूख शान्त करता है तो समाचार-पत्र मानसिक भूख शान्त करते हैं। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज मे पैदा होता है और समाज मे ही उसका विकास होता है। आगे चलकर समाज ही उसका कार्यक्षेत्र बनता है। ऐसी स्थिति मे हमारी प्रगति दुनियाँ का ज्ञान प्राप्त करने, दूसरो के अनुभव से लाभ उठाने तथा जो कुछ अपने पास है उसका लाभ दूसरो को देने मे ही समाई हुई है। हमे दुनियाँ से बहुत कुछ प्राप्त करना है और उसे बदले मे बहुत कुछ देना भी है। समाचार-पत्र हमारे इस आदान-प्रदान के माध्यम हैं। यही कारण है कि चाय के साथ-साथ हम अपनी टेबुल पर समाचार-पत्र की भी प्रतीक्षा करते हैं और जिस दिन वह नही मिल पाता नाश्ता फीका-फीका लगने लगता है। आज दुनियाँ इतनी तेजी के साथ बदल रही है, घटनाएँ इतनी तीव्रता के साथ घट रही है तथा दुनियाँ का प्रभाव हमारे ऊपर इतनी शीघ्रता से पड़ रहा है कि हम उससे अलग-अलग नही रह सकते।

उससे अलग, उससे उदास रहना मानो अन्धकार मे खो जाना है—हमेशा के लिए मृत्यु के पाश मे जकड जाना है। अतः समाचार-पत्र सफलता के प्रहरी हैं, प्रगति के मार्गदर्शक है। उनके सम्पर्क के बिना प्रगतिशील जीवन की कल्पना नही की जा सकती।

समाचार-पत्र प्रमुखत तीन प्रकार के होते हैं—दैनिक, साप्ताहिक और मासिक। बडे-बड़े शहरो मे दैनिक-पत्रो के प्रात.कालीन और सायकालीन सस्करण भी निकलते हैं। इसी प्रकार साप्ताहिक-पत्रो मे कुछ अर्द्ध-साप्ताहिक होते हैं और कुछ पाक्षिक। मासिक-पत्रो मे भी कुछ त्रैमासिक और कुछ अर्द्धवार्षिक होते हैं। दैनिक-पत्र समाचार-प्रधान रहते हैं, मासिक-पत्र विचार-प्रधान। साप्ताहिक पत्रो मे समाचार और विचार दोनो होते हैं।

समाचार-पत्रो के जन्म की कहानी बडी पुरानी है। उनका जन्म सन् ६१९ मे हमारे ही पडौसी देश चीन मे हुआ। कहा जाता है कि "पेकिंग गजट" सबसे पहला पत्र था। किन्तु ९ सौ वर्षो तक इस दिशा मे कोई प्रगति नही हुई। वस्तुत आधुनिक समाचार-पत्रो को जन्म देने का श्रेय इटली के वेनिस प्रान्त को सोलहवी शताब्दी मे प्राप्त हुआ। इग्लैंड मे इन्हे पहुँचते-पहुँचते लगभग सौ वर्ष का समय लग गया। बस वही से भारत मे समाचार-पत्र आए। भारत का सबसे पहला पत्र "इण्डिया गजट" था। फिर ईसाइयो ने धर्म-प्रचार की दृष्टि से 'समाचार दर्पण' नामक पत्र निकाला। समाचार-दर्पण के बाद राजा राममोहनराय ने 'कौमुदी' तथा विद्यासागरजी ने 'प्रभाकर' नामक पत्र निकाले। इस प्रकार समाचार-पत्रो के जन्म के बाद उनके विकास मे शताब्दियाँ लग गईं। इनके समुचित विकास का काल १९ वी शताब्दी का उत्तरार्ध कहा जा सकता है। सन् १८९० मे इग्लैंड मे ६४७ पत्र निकलते थे। १९०० मे उनकी सख्या १२२६ हो गई। अमेरिका तो मानो समाचार पत्रो का घर ही है। वहाँ लगभग १३,००० समाचार-पत्र प्रकाशित होते है। इधर हमारे देश मे भी समाचार-पत्रो की सख्या बढती जा रही है। किन्तु यूरोप और अमेरिका के मुकाबले मे हमारा देश अभी बहुत पीछे है। बात यह है कि अभी हमारे देश मे साक्षरो की सख्या २५ प्रतिशत ही है।

जैसे-जैसे शिक्षा का प्रसार होगा समाचार-पत्रो का भी विकास होता जायगा। हमने हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार कर लिया है। फिर भी हिन्दी तथा किसी अन्य भाषा के समाचार-पत्रो का उतना आदर नही है जितना अंग्रेजी के पत्रो का। अंग्रेजी-पत्र हिन्दुस्तान-टाइम्स, अमृत-बाजार पत्रिका, हिन्दू, स्टेट्समैन, नेशनल-हरेल्ड, लीडर, टाइम्स-आफ-इण्डिया आदि आज भी एक बडी सख्या मे लोगो द्वारा पढे जाते हैं। हिन्दी के पत्रो मे हिन्दुस्तान, नवभारत-टाइम्स, विश्वामित्र, आज, सन्मार्ग आदि धीरे-धीरे लोकप्रिय बनते जा रहे हैं।

समाचार-पत्र विज्ञान की देन है। यही कारण है कि प्रत्येक पत्र हजारो की सख्या मे प्रतिदिन छपता और दूर-दूर तक पहुँच जाता है। यूरोप, अमेरिका ही नही अब तो हमारे देश मे भी कुछ अंग्रेजी पत्र दिन मे दो बार प्रकाशित होने लगे हैं। समाचार-पत्र का कार्यालय एक बड़े कारखाने जैसा होता है। उसमे सैकडो व्यक्ति काम करते हुए दिखाई देते है। वहाँ कम्पोजिटरो से लेकर सम्पादको तक सबका काम बँटा हुआ रहता है और काम चौबीसो घण्टे होता रहता है। छपाई का काम प्राय रोटरी मशीनो से होता है जिनमे एक ओर कागज के भारी-भारी रोलर चढा दिये जाते हैं और दूसरी ओर से छपे तथा मुड़े और कटे हुए समाचार-पत्र निकलते जाते हैं।

समाचार-पत्र समाचारो के बल पर चलते हैं और समाचार एकत्र करने के लिए ससार भर मे बडी-बडी समाचार-सस्थाएँ बनी हुई हैं। ये सस्थाएँ बड़े-बड़े शहरो और नगरो मे अपने प्रतिनिधि रखती हैं। इसमे कोई विश्वव्यापी है, कोई देशव्यापी और कोई प्रान्तव्यापी। प्रतिनिधि लोग अपने नगर और शहर की खबरें प्रतिदिन अपनी समाचार सस्थाओ को भेजते रहते हैं जो उसे एकत्र करके समाचार-पत्रो को भेजता हैं। बहुत से पत्र अपने स्वय के सम्वाददाता भी रखते हैं जो सीधे ही अपने पत्र को समाचार भेजते हैं। कई बार तो अपने प्राणो को सकट मे डालकर भी ये सम्वाददाता भूकम्प, बाढ, युद्ध, दगो आदि के समाचार भेजते हैं। सम्वाददाता बडे पढे-लिखे और विद्वान् होते हैं तथा समाज मे उनका बडा आदर होता है। राजनीतिक क्षेत्र मे भी इन लोगो

का बडा आदर होता है और कभी-कभी तो नेतागरा उनके विचार प्रकट करने के लिये सवाददाताओ की विशेष सभाएँ आमन्त्रित करते हैं। समाचार भेजने का कार्य आजकल टेलीप्रिण्टर नामक मशीन से होता है जो सभी बड़े-बड़े पत्रो के कार्यालयो मे लगी रहती है और उसमे से टाइप किये हुए कागज अपने आप निकलते रहते हैं।

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है—समाचार-पत्रो का प्रमुख काम सब प्रकार के समाचार देना है। विभिन्न क्षेत्रो मे कार्य करने वाले व्यक्ति अपने-अपने क्षेत्र की नवीनतम प्रगति से परिचित रहना चाहते हैं। सभी राजनीतिज्ञ राजनीति की खबरो से परिचित होना चाहते हैं और व्यापारी वस्तुओ के भावो से। इसी प्रकार वकील मामले-मुकदमो के हाल जानना चाहता है और डॉक्टर नवीन औषधियो, नवीन बीमारियों तथा इलाज के। साधारण आदमी तो सभी प्रकार की खबरे जानना चाहता है। अतः आजकल वे ही पत्र अच्छे माने जाते हैं जिनमे कला, दर्शन, विज्ञान, अर्थ-शास्त्र, राजनीति, सिनेमा खेल, व्यापार आदि सभी विषयो की खबरें दी जाती है।

समाचार-पत्र लोगो के सामने वस्तु-स्थिति रखने का कार्य करते हैं। उन्हे हम सत्य के साधक और शोधकर्त्ता कह सकते हैं। सत्य का उद्घाटन ही उनका प्रमुख कार्य होता है। लेकिन यह एक बहुत ही कठिन कार्य है। पत्र की अपनी कोई न कोई नीति होती है। अत इस नीति के अनुरूप समाचार को तोड़-मरोड कर या रङ्ग चढाकर लोगो के सामने रखा जाता है। वस्तुत समाचारो को सही रूप मे प्रस्तुत कर देना ही सबसे अच्छी नीति हैं। समाचार पत्रो का बहुत बडा दायित्व है। हजारो-लाखों व्यक्ति उन पर विश्वास करते हैं। अत लोगो को गलत बात बताना उन्हे धोखा देना है। वह कार्य, कुछ समय बाद जब सचाई प्रकट होती है, स्वय पत्र की प्रतिष्ठा को भी धक्का पहुँचाता है।

समाचार-पत्र एक प्रकार से वर्तमान काल के इतिहास ही है। वे जनता के सघर्ष और उसके उत्साह को वाणी देते हैं। एक मूल सेवक की भाँति द्वार-द्वार पर पहुँचते है और लोगो की सेवा करते हैं। वे व्यापार-व्यवसाय की प्रगति मे भी बडा योग दे रहे है। समाचार-पत्रो मे

आजकल विज्ञापनो का बडा महत्त्वपूर्ण स्थान बनता जा रहा है। उनके द्वारा माल बेचने-खरीदने के काम को बहुत गति मिली है। बाजार भावो की दैनिक जानकारी से भी व्यापारियो को बहुत लाभ मिलता है।

आज जनतन्त्र का युग है। जनता अपने विचार, अपनी माँगे शासको के सामने रखना चाहती है और शासक अपनी परिस्थिति जनता के सामने रखना चाहते हैं। अत दोनो ही पत्रो का सहारा लेते हैं। ये जनमत बनाने के बहुत बड़े साधन हैं और इसलिए किसी भी देश मे उसका स्थान बडा महत्त्वपूर्ण होता है। यद्यपि किसी भी समाचार-पत्र को यह अधिकार नही होता कि वह घटनाओ को तोड-मरोडकर या सत्य को विकृत करके लोगो के सामने रखे तथापि वे किसी भी घटना पर अपना मत या दृष्टिकोण प्रस्तुत कर सकते है। पत्र का यह अभिमत उसके सम्पादकीय लेख से प्रकट होता है। सम्पादकीय लेख ही किसी पत्र का प्राण कहा जा सकता है। उसमे सरकार की किसी आर्थिक, राजनीतिक या सामाजिक नीति की आलोचना की जाती है। इस प्रकार जहाँ एक ओर समाचार-पत्र अपने अभिमत या दृष्टिकोण के विस्तृत प्रचार के द्वारा जनमत का निर्माण करते है वहाँ दूसरी ओर अपने पत्र मे जनमत की वाणी भी देते है। समाचार-पत्रो को जनमत का आयना कहा जा सकता है। यही कारण है कि कोई भी जनतन्त्रीय सरकार समाचार पत्रो की अवहेलना नही कर सकती।

इस प्रकार समाचार-पत्रो का महत्त्व इस युग मे काफी बढ गया है और निरन्तर बढता ही जा रहा है। किन्तु जिस प्रकार किसी भी वस्तु का सदुपयोग होता है और दुरुपयोग भी, उसी प्रकार समाचार-पत्र की बहुत बडी शक्ति का भी दुरुपयोग अनेक स्थानो पर दिखाई दे जाता है। अनेक सरकारें उन पर कडा प्रतिबन्ध लगा देती है और वे जो कुछ कहना चाहते है उसे नही कहने देती। दूसरी ओर बहुत से ऐसे पत्र भी है जिनका उद्देश्य ही कुछ लोगो को बदनाम करके अपना हित साधन करना होता है। इसमे कोई सन्देह नही कि यह बहुत बडा अपराध है।

समाचार-पत्रो की एक और कमजोरी यह है कि वे बहुत अशो मे परावलम्बी रहते हैं। ऐसे बहुत कम पत्र मिलेंगे जो स्वावलम्बी हो। नतीजा यह होता है कि उनकी नीति पूंजीपतियो के इशारो पर निर्धारित होती है, फिर पूंजीपति जैसा नाच नचाते हैं वैसा ही उन्हे नाचना पड़ता है। समाचार-पत्रो की तीसरी कमजोरी यह है कि वे किसी विषय का शास्त्रीय या गहरा ज्ञान नही देते। वे सभी विषयो का थोडा-थोडा एव उथला-पुथला ज्ञान देते हैं। कुछ समाचार-पत्र ऐसे भी निकलने लगे हैं जो कामुकतापूर्ण लेख, चित्र तथा अन्य सामग्री प्रकाशित करके सस्ती लोकप्रियता प्राप्त करना चाहते है। इससे उनकी ग्राहक-सख्या अवश्य बढ जाती है, किन्तु इसमे कोई सन्देह नही कि वे समाज और देश के लिए अभिशाप हैं। इसी प्रकार बहुत से समाचार-पत्र झूठे विज्ञापन देकर भी लोगो को धोखे मे डालते हैं और बहुत से भोले-भाले व्यक्ति उनके शिकार बनते रहते हैं। ये सब कमजोरियाँ किसी भी स्वस्थ समाज के शरीर पर कोढ के धब्बो की तरह अशोभनीय और अहितकर हैं।

समाचार-पत्रो के प्रतिद्वन्द्वी के रूप में रेडियो का प्रभाव आजकल बढता जा रहा है। वह जो खबरे प्रसारित करता है वह बहुत पहले ही पाठको के पास पहुँच जाती है और फिर समाचार-पत्रो को पढने मे दिलचस्पी कम हो जाती है। इसमे कोई सन्देह नही कि समाचार-पत्रो को इससे धक्का लगा है। लेकिन रेडियो उनका अस्तित्व नही मिटा सकेगा। रेडियो के समाचार काफी सक्षिप्त होते हैं, अत विस्तार से उन्हे पढने के लिए समाचार पत्रो की आवश्यकता रहेगी ही। दूसरे रेडियो केवल समाचार प्रसारित करता है। केवल समाचार से हमारा काम नही चलता। हमे किसी भी घटना पर लोगो की प्रतिक्रिया, विभिन्न दृष्टिकोण और राय जानने की आवश्यकता रहती है। अत समाचार-पत्रो का महत्त्व कम होता हुआ प्रतीत नही होता।

यदि विदेशो की पत्रकार-कला से हम अपने देश की तुलना करें तो स्पष्टत हमे ऐसा लगता है कि अभी हमारा देश काफी पीछे है। जहाँ हमे अभी बहुत से नये-नये पत्रो का विकास करना है वहाँ पत्रो के स्तर को भी ऊँचा उठाना है। उसके लिए पत्रो की स्वतन्त्रता पर हमे कोई

प्रतिबन्ध सहन नही करना चाहिए। लेकिन इसका यह अर्थ नही कि हम उन्हे उच्छृङ्खल बनने दें। दूसरी बात यह है कि समाचार-पत्रो को पैसे के प्रभाव से भी मुक्त रखना चाहिए। पैसे के प्रभाव से सत्य कहने की शक्ति कम हो जाती है और पत्र का उद्देश्य पैसा कमाना या इसी प्रकार और कुछ हो जाता है। इससे समाज का सही हित नही हो पाता। समाचार-पत्र लोक-हित के प्रहरी हैं। उन पर बहुत बडा उत्तरदायित्व है। अत उन्हे बहुत सयम से काम लेना चाहिये और स्वेच्छा से ही अपने ऊपर कुछ प्रतिबन्ध लगाने चाहिए, तभी वे समाज का हित साधन कर सकेंगे। यही उनकी सही दिशा होगी।

५—सयुक्त-राष्ट्र-संघ

१—भूमिका
२—सयुक्त-राष्ट्र-सघ का उद्देश्य
३—उसका सगठन
४—सफलताएँ
५—असफलताएँ
६—उपसहार

विज्ञान की प्रगति से जहाँ मनुष्य की सुविधाएँ बढी है वहाँ बहुत से खतरे भी पैदा हो गये हैं। इससे जहाँ रेडियो, टेलीफोन, रेलवे, मोटर, जहाज, बिजली, टेलीविजन, अणुशक्ति आदि का आविष्कार हुआ है, वहाँ एटम और हाइड्रोजन बम तथा राकेट्स का आविष्कार भी हुआ है। लडाई की ही बात लें तो पहले जमाने मे लडाइयाँ बार-बार और जगह-जगह होती रहती थी, उनसे इतनी हानि नही होती थी जितनी आजकल होती है। प्रथम महायुद्ध लगभग पाँच वर्ष चला और उसमे दुनियाँ के अधिकांश राष्ट्र सम्मिलित हुए। इस युद्ध मे लगभग एक करोड व्यक्ति मारे गये और आर्थिक दृष्टि से तो इतनी हानि हुई कि कितने ही राष्ट्र वर्षों तक प्रयत्न करके भी अपनी समृद्धि नही पा सके। इस महायुद्ध मे जो क्षति हुई उसने दुनियाँ के राजनीतिज्ञो को यह अनुभूति करवाई कि यदि आगे भी इस प्रकार के महायुद्ध होते रहे तो दुनियाँ का विनाश

निश्चित हो जायगा। उन्होने पारस्परिक झगडो को वातचीत और समझौतो के द्वारा तय करने की दृष्टि से 'लीग-ऑफ-नेशन्स' नामक एक सस्था की स्थापना की। इस सस्था ने कार्य आरम्भ किया। किन्तु राष्ट्रो के पारस्परिक स्वार्थों मे टक्कर हुई और लीग-ऑफ-नेन्शस के निर्णयो की उपेक्षा होने लगी। फलत थोडे ही समय वाद द्वितीय महायुद्ध का सूत्र-पात हुआ जो पहले से भी ज्यादा विनाशकारी और भयकर सिद्ध हुआ। उसका अन्त होने पर दुनियाँ के राजनीतिज्ञो ने फिर बडी तीव्रता के साथ वही वात अनुभव की कि यदि पारस्परिक समझौते और वातचीत के द्वारा आपसी झगडो का निर्णय नही किया गया तो आगे चलकर तीसरा महायुद्ध इतना भयकर रूप ग्रहण कर लेगा कि सारी मानवता का ही अन्त हो जायगा। इस वहुत बडे खतरे को सामने देखकर उस समय के तीन बडे राजनीतिज्ञो—सर्व-श्री चर्चिल, रूजवेल्ट और स्टालिन—ने 'सयुक्त-राष्ट्र-सघ' नामक सस्था को जन्म दिया। यह निर्णय सेन्फ्रासिस्को के उस ऐतिहासिक सम्मेलन मे लिया गया जो ससार के ५१ राष्ट्रो के प्रतिनिधियो की उपस्थिति मे २५ अप्रेल से लेकर २६ जून सन् १९४५ तक सम्पन्न हुआ था।

स्पष्ट है कि सयुक्त-राष्ट्र-सघ का जन्म दुनियाँ के राष्ट्रो मे पारस्परिक एकता, प्रेम और सहयोग की भावना पैदा करने के उद्देश्य से हुआ। वह राष्ट्रो के पारस्परिक झगडे शान्ति से हल करना चाहता है और विश्व शान्ति की बुनियाद मजबूत बनाना चाहता है। सयुक्त-राष्ट्र-सघ का विधिवत् उद्घाटन २४ अक्टूवर १९४५ को हुआ जब इसके चार्टर को चीन, फ्रांस, रूस, ब्रिटेन और अमेरिका तथा अन्य हस्ताक्षर करने वाले देशो ने अपनी पक्की मजूरी दी थी। इसलिए २४ अक्टूबर का दिन प्रति वर्ष सयुक्त-राष्ट्र-सघ की वर्षगाँठ के रूप मे ससार भर से मनाया जाता है।

सयुक्त-राष्ट्र-सघ के उद्देश्यो की घोषणा निम्नलिखित रूप मे की गई—

(१) दुनियाँ मे शान्ति स्थापित करना।
(२) राष्ट्रो मे समानता और मित्रता पैदा करना।
(३) निर्बल राष्ट्रो के हितो की रक्षा करना ताकि शक्तिशाली राष्ट्र उनका शोषण न कर सके।

(४) सभी राष्ट्रो के जीवन-मान को ऊँचा करना।

इसमे कोई सन्देह नही कि ये उद्देश्य बडे ही अच्छे है। यदि ईमानदारी के साथ इनका पालन किया जाय तो विश्व-शान्ति आकाश-कुसुम न रहेगी। अपने इन उद्देश्यो को पूरा करने के लिए सयुक्त-राष्ट्र-सघ का सगठन निम्न प्रकार किया गया है—

साधारण परिषद्—साधारण-परिषद् का निर्माण दुनियाँ के ६० देशो के प्रतिनिधियो से हुआ है। इस परिषद् मे प्रत्येक सदस्य राष्ट्र पाँच प्रतिनिधि और पाँच पर्याय-प्रतिनिधि भेज सकता है। किन्तु प्रत्येक राष्ट्र का वोट एक ही माना जाता है। इस परिषद् की वर्ष मे एक बैठक अनिवार्य रूप से होती है। यह परिपद् सयुक्त-राष्ट्र-सघ की व्यवस्थापिका सभा ही है। यदि दुनियाँ का कोई सबल राष्ट्र किसी निर्बल राष्ट्र पर आक्रमण करता है तो यह परिपद् उस पर विचार करती है। परिषद् अपनी सिफारिसें कार्यकारिणी को भेजती है और सुरक्षा-परिषद् उन्हे कार्य रूप मे परिणत करने का प्रयत्न करती है।

सुरक्षा-परिषद्—यह सयुक्त-राष्ट्र-सघ का दूसरा महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। इसमे ११ स्थायी सदस्य हैं, जिनमे पाँच सदस्य—अमरीका, इङ्गलैंड, फ्रांस, रूस और कनाडा—स्थायी सदस्य हैं। शेष अस्थायी साधारण-परिषद् द्वारा दो वर्षों के लिए चुने जाते हैं। इस परिषद् का प्रमुख कार्य है दुनियाँ मे शान्ति और सुरक्षा स्थापित करना। परिषद् मे निर्णय बहुमत के द्वारा होते हैं किन्तु किसी भी निर्णय को कार्यान्वित करने के लिए पाँचो स्थायी सदस्यो की सम्मति आवश्यक है। पाँचो को निषेधाधिकार (वीटो) प्राप्त है और यदि उनमे से एक भी सदस्य असहमत होने के कारण निषेधाधिकार का प्रयोग करता है तो निर्णय कार्यान्वित नही किया जा सकता। सुरक्षा-परिषद् आवश्यकता होने पर सैनिक-शक्ति का भी प्रयोग कर सकती है।

आर्थिक और सामाजिक परिषद्—यह सगठन सयुक्त-राष्ट्र-सघ के सदस्य राष्ट्रो को उनकी आर्थिक, सामाजिक, सास्कृतिक, शैक्षणिक एव स्वास्थ्य सबधी विपयो की उन्नति का उपाय बताती है। इस परिषद्

की सदस्य सख्या १८ है। वे साधारण-परिपद् द्वारा तीन वर्ष के लिये चुने जाते हैं। इसकी बैठक वर्ष मे तीन बार होती है और इसका अध्यक्ष एक वर्ष के लिए चुना जाता है। इस परिपद् ने अपना काम सुचारू रूप से चलाने के लिए कई आयोग और समितियाँ बनाई हैं।

संरक्षण-परिषद्—जो देश स्वतन्त्र नही हैं और जिनका प्रबन्ध दूसरे देशो को दे दिया है, उनके प्रबन्ध की देख-रेख का काम यह परिषद् करती है। ये देश वे हैं जो दूसरे महायुद्ध मे हारे हुए देशो से पृथक करके दूसरे देशो को व्यवस्था के लिए सौंप दिये गये हैं। इसमे १२ सदस्य हैं जो साधारण परिपद् द्वारा तीन वर्ष के लिए चुने जाते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय—स्वतन्त्र देशो के पारस्परिक झगडे निबटाने के लिए इस न्यायालय की स्थापना की गई है। इस न्यायालय मे १५ न्यायाधीश होते हैं, जिन्हे साधारण-सभा ९ वर्षों के लिए चुनती है। यह न्यायालय राष्ट्रो के पारस्परिक झगडो का निपटारा करता है।

कार्यालय—सयुक्त-राष्ट्र-सघ का मुख्य कार्यालय न्यूयार्क मे है। इसका अध्यक्ष सेक्रेटरी-जनरल होता है। साधारण-परिषद् द्वारा उसका चुनाव पाँच वर्ष के लिए होता है। आजकल इस पद पर श्री यू० थाण्ट हैं। इनके पूर्व, प्रथम सेक्रेटरी-जनरल के रूप मे श्री हेमरशोल्ड कार्य कर चुके है। सेक्रेटरी-जनरल साधारण-परिपद्, सुरक्षा-परिपद्, सरक्षण-परिषद् आदि की बैठको मे कार्य करता है।

उपर्युक्त विभागो के अतिरिक्त सघ के करीब एक दर्जन से अधिक अन्य विशेष सगठन हैं जिनमे खाद्य एव कृषि सघ, श्रम सगठन, विश्व स्वास्थ्य सगठन मुद्रा कोष, व्यवसाय सगठन आदि प्रमुख हैं।

सयुक्त-राष्ट्र-सघ को स्थापित हुए अभी थोडा-सा ही समय हुआ है। किन्तु इस बीच उसने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। पिछडे हुए देशो को आर्थिक सहायता पहुँचाने, उन्हे कर्ज देने और वहाँ के लोगो के स्वास्थ्य को सुधारने की दिशा मे उसने उल्लेखनीय कार्य किया है। वह दुनियाँ के देशो को पारस्परिक एकता और प्रेम के सूत्र मे बाँधने मे भी एक सीमा तक सफल हुआ है। कोरिया के युद्ध को रुकवाने, स्वेज की समस्या हल करने आदि कार्यों मे भी उसने उल्लेखनीय कार्य किया है।

किन्तु इतनी सफलता पर गर्व नही किया जा सकता। अभी सयुक्त-राष्ट्र-सघ को बहुत कार्य करना है। वह कुछ समस्याएँ तो अब तक भी हल नही कर सका है। दक्षिण-अफ्रीका मे जातीय भेदभाव का प्रश्न वर्षों से राष्ट्र-सघ के सामने है और उसके बार-बार कहने के बावजूद दक्षिण-अफ्रीका उसकी बात मानने के लिए तैयार नही हुआ है और सयुक्त-राष्ट्र-सघ उस पर दबाव डालने मे हिचकिचाहट दिखा रहा है। चीन जैसे महान् राष्ट्र को अपने अस्तित्व मे आ जाने के १५-१६ वर्ष बाद तक भी मान्यता नही मिली है और वह चागकाई शेक की फारमोसा सरकार को ही चीन की प्रतिनिधि सरकार मानता है। काश्मीर का प्रश्न १८ वर्षो से उसके सामने है और उसका कोई फैसला नही हो सका है। वियतनाम की समस्या भी उलझी हुई पडी है। इस तरह के और भी कई उदाहरण दिये जा सकते हैं। इन सबके मूल मे सघ के सदस्य राष्ट्रों की गुटबन्दी, पारस्परिक अविश्वास और सत्ता प्राप्ति की बातें हैं। जब तक वे अपने सकुचित स्वार्थों से ऊपर उठकर शुद्ध विश्व कल्याण और न्याय का दृष्टिकोण नही अपनाएँगे, तब तक राष्ट्र सघ एक महान् सस्था होते हुए भी कमजोर बना रहेगा।

भारत आरम्भ से ही इस सस्था को विश्व की सस्था बनाने के सद्प्रयत्न मे कोशिश करता रहा है। २४ दिसम्बर १९५५ तक केवल ६० देश ही इस सस्था के सदस्य थे, पर उसी तारीख की रात्रि को साधारण-परिषद् के एक विशेष अधिवेशन मे ससार के सोलह नये देशो को सयुक्त-राष्ट्र-सघ की सदस्यता देने का निर्णय हुआ। ये सोलह देश हैं—अलबानिया, जार्डन, आयरलैंड, पुर्तगाल, हगरी, इटली, आस्ट्रिया, रूमानिया, बल्गेरिया, फिनलैंड, लका, नेपाल, लिबिया, कम्बोडिया, लाओस और स्पेन। ससार मे एशिया व अफ्रीका आदि महाद्वीपो के वे राष्ट्र, जो अब तक साम्राज्यवादी-ताकतो के आधीन रहते आये है, धीरे-धीरे स्वतत्र हो रहे हैं। वे भी सयुक्त-राष्ट्र-सघ की सदस्यता प्राप्त करते आ रहे हैं। वस्तुत सयुक्त-राष्ट्र-सघ दिन-प्रति-दिन सबल होता जा रहा है।

इस प्रकार यद्यपि राष्ट्र-सघ ने कुछ सफलता प्राप्त की है तथा कुछ

असफलता भी उसके पल्ले पडी है, तथापि वह एक महान् सस्था है। उसका उद्देश्य महान् है। वस्तुत: उसकी सफलता एक दो राष्ट्रो के सहयोग पर नही सभी राष्ट्रो के सहयोग पर निर्भर है। यदि अधिकाश राष्ट्र उसकी बात मानने लगें तो कोई आश्चर्य नही कि उसे अपने उद्देश्यो मे सफलता मिलने लगे और वह दुनियाँ के लिए वरदान सिद्ध हो।

६—बालचर-संस्था

१—सस्था का जन्म और विकास।
२—बालचर-सस्था का महत्त्व।
३—सस्था का सगठन।
४—बालचर की वेशभूषा।
५—बालचर-सस्था के नियम और नीति।
६—बालचर-सस्था का भविष्य।
७—बालचर और लोक-कल्याण।

बालचर शब्द अग्रेजी भाषा मे 'बॉय स्काउट' शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। अग्रेजी की ही भाँति इसका अर्थ है—देखने वाले, निरीक्षण करने वाले, चलने वाले या सेवा करने वाले बालक। बालचर सस्था बालको की एक ऐसी सस्था है जो उनमे सेवा-भावना पैदा करती है और उसका उपयोग राष्ट्र एव समाज के कल्याण के कार्यों मे करती है।

इस सस्था का जन्म सन् १९०९ मे अफ्रीका मे हुआ था। इसके जन्म और सगठन का श्रेय लार्ड बैडेन पावल को है। उन दिनो वहाँ बोअर-युद्ध चल रहा था। सैनिको का अभाव था। इतने सिपाही नही थे जो भेदिये के रूप मे शत्रु के प्रदेश मे भेजे जा सकें और वहाँ का भेद प्राप्त करके ला सकें। अत लार्ड बैडेन पावल ने छोटे-छोटे बालको का सगठन किया और उनको थोडा सा प्रशिक्षण देकर सेना के आगे आगे शत्रु के प्रदेश की गुप्त बातो का पता चलाने का कार्य सौंपा। बालको ने यह कार्य बडी कुशलता से किया। इस सफलता से लार्ड बैडेन पावल को बडा प्रोत्साहन मिला और उन्होने शान्ति के समय भी बालको, नवयुवको और किशोरो की समितियाँ सगठन करके देश

श्रौर समाज के हित के कार्यों मे उन्हे लगाया। बालको की इन समितियो ने शान्ति के समय भी बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया। चारो श्रोर उनके कार्य की प्रशसा हुई श्रौर श्रव तो देश-देश मे उनकी समितियाँ सगठित हो गई है।

श्राज ससार मे ऐसा कोई सभ्य देश नही है जिसमे स्काउट सस्था न हो। चाहे मेले हो, चाहे उत्सव श्रौर चाहे बाढ श्रा रही हो, चाहे भूकम्प श्राया हो, सब जगह उसके स्वय सेवक पहुँच जाते हैं श्रौर नागरिको की सहायता करते हैं। छोटे-छोटे बालको मे समाज-सेवा की भावना पैदा करने तथा उन्हे प्रत्यक्ष सेवा कार्य मे लगाने के कारण यह सस्था-शिक्षा के कार्य मे बडा जबरदस्त योग देती है। यह बालको के व्यक्तित्व का विकास करती है श्रौर चरित्र-निर्माण का मार्ग प्रशस्त बनाती है। यह नागरिको की सेवा का एक महान् उद्देश्य लेकर कार्य करती है श्रौर बालको में नई चेतना, नई जागृति पैदा करती है।

भारतीय बालचर-सस्था का जन्म पिछले महायुद्ध के समय हुश्रा। यहाँ उसको प्रारम्भ करने का श्रेय श्रीमती एनी बीसेन्ट को है। श्रायु के श्रनुसार इस सस्था मे तीन प्रकार के स्वयसेवक होते हैं। श्राठ से बारह वर्ष तक के बालको को शेरबच्चा कहा जाता है। १२ से १८ वर्ष तक के बालक स्काउट कहे जाते हैं श्रौर १८ से श्रधिक के रोवर। यद्यपि ये भेद श्रायु के श्राधार पर बनाये गए है तथापि साधारणत. सभी स्वयसेवको को स्काउट कहा जाता है। स्काउटो का समुदाय बालचर-संघ कहा जाता है। यह सघ टोलियो मे विभाजित रहता है। एक-एक टोली मे श्राठ-श्राठ बालचर होते हैं। टोली मे एक टोली-नायक श्रौर एक सहायक टोली-नायक होता है जो उसे श्रनुशासन मे रखता है। चार-छः टोलियो का पूरा समुदाय एक श्रधिनायक के श्राधीन रहता है। स्काउट-मास्टर इस पूरे समुदाय का श्रध्यक्ष होता है। एक जिले मे इस प्रकार के जितने भी समुदाय होते है ये सब जिला-कमिश्नर की देखरेख मे कार्य करते है। जिले की सारी सस्थाएँ प्रान्तीय-कमिश्नर की तथा प्रान्तो की सब सस्थायें राष्ट्रीय-कमिश्नर की देखरेख मे कार्य करती हैं। प्रान्तीय श्रौर राष्ट्रीय कमिश्नर श्रपनी प्रान्तीय श्रौर

राष्ट्रीय समितियो की सलाह से कार्य करते है। सारे संसार की भी एक समिति है, जिसकी स्थापना लार्ड बैडेन पॉवल ने की है। वह सारे विश्व की स्काउट-सस्थाओ का सचालन करती है और समय-समय पर उनका मार्ग-दर्शन करती रहती है।

बालचर-सस्था का संगठन सैनिक आधार पर हुआ था। अत उनकी वेष-भूषा सैनिको से मिलती-जुलती है। साधारणत. सारे स्काउटो की वेष-भूषा लगभग समान होती है। प्रत्येक बालचर को खाकी कमीज और खाकी नेकर पहिनना होता है। पैरो में घुटनो तक खाकी मौजे और काले रङ्ग के बूट होते है। सिर पर टोपी या साफा पहना जाता है। उनका रङ्ग भी खाकी या मूँगिया होता है। गले के आस-पास एक विशेष रङ्ग का स्कार्फ या रूमाल बँधा रहता है। इसका रङ्ग अलग-अलग समुदाय का अलग-अलग हो सकता है। प्रत्येक बालचर के पास एक सीटी, एक लाठी और एक रस्सी का होना अनिवार्य होता है। उसके पास प्राथमिक चिकित्सा की चीजे तथा दवाये भी रहती हैं। कमीज और नेकर के अलावा अन्य चीजो के रङ्ग मे थोडा भेदभाव हो सकता है किन्तु एक समुदाय के सब बालको की वेषभूषा समान होती है।

प्रत्येक बालचर को ईश्वर-भक्ति, राज-भक्ति व देश-भक्ति की प्रतिज्ञा लेनी पडती है। राजभक्ति के प्रश्न को लेकर हमारे देश मे दो दल हो गये थे। एक दल राजभक्ति पर जोर देता था दूसरा देशभक्ति पर। उस समय हमारा देश परतन्त्र था। अत ऐसा होना स्वाभाविक ही था। स्वतन्त्रता के बाद राजभक्ति का प्रश्न नही रहा और दोनो दल एक हो गये। प्रत्येक बालचर को अपनी सस्था के कुछ नियमो का पूरी तरह पालन करना पडता है। जो बालक इन नियमो का पालन नही करता उसे उस बालचर-सस्था मे रहने का कोई अधिकार नही रहता। सस्था के नियम के अनुसार स्काउट को विश्वसनीय, उदार, आज्ञाकारी, विनम्र, दयालु, निष्कपट, धैर्यवान तथा उद्योगी होना चाहिये। उसे तीन प्रतिज्ञायें लेनी होती हैं—(१) मैं सबकी सहायता करूँगा। (२) ईश्वर और देश का भक्त रहूँगा। (३) स्काउट के नियमो का पालन करूँगा।

स्काउट या वालचर का प्रणाम ३ उङ्गलियो से होता है। ये तीन उङ्गलियाँ उसे अपनी तीन प्रतिज्ञाओ की याद दिलाती रहती है। उसके स्कार्फ मे प्रतिदिन प्रात काल एक गाँठ लगाई जाती है जो उसे सेवा कार्य की याद दिलाती है। कोई सेवा कार्य करके वह अपनी गिठान खोल देता है। उसका झण्डा भी उसी प्रकार वनाया गया है कि वह ३ प्रतिज्ञाएँ, ग्यारह नियम तथा अन्य आवश्यक वातो की याद दिलाता रहता है।

वालचरो का राजनीति से कोई सम्वन्ध नही होता। वह तो लोक-कल्याण की भावना से कार्य करने वाली सस्था है। समाज की सेवा करना ही उसका एक मात्र कार्य होता है। वडी-वडी सस्थाओ, मेलो तथा इसी प्रकार के अन्य अवसरो पर वालचर सेवा-कार्य करते हैं। जहाँ कही आग लग जाती है, महामारी फैल जाती है, वाढ से हानि होने लगती है, भूकम्प से कोई प्रदेश क्षतिग्रस्त हो जाता है तो वालचर सेवा-कार्य के लिये टूट पडते है। जो कार्य पुलिस के सिपाही अपनी डाँट-फटकार और डण्डो से नही कर पाते वही काम स्काउट अपनी विनम्रता, सेवा-भावना और उत्साह से कर लेते है। उनकी उपयोगिता अनेक वार सिद्ध हो चुकी है और उन्होंने देशो की अमूल्य सेवाएँ की हैं।

वालचरो को लोक-कल्याण के ये कार्य कर सकने योग्य वनाने के लिये प्रतिदिन नियमित रूप से खेल, कवायद, लाठी चलाना, तैरना, प्राथमिक सहायता आदि की शिक्षा देनी पडती है। उनको सकेत भेजने, विभिन्न प्रकार की गाँठें लगाने, सीटी के इशारे से अपने साथियो को सूचना भेजने तथा किसी दल को खोजने का प्रशिक्षण भी दिया जाता है। इस प्रकार के प्रशिक्षण के द्वारा किसी भी सकट का मुकावला करने की क्षमता उनमे आ जाती है और वे विशुद्ध सेवा-भावना से उस कार्य मे जुट जाते हैं। इससे जहाँ देश मे शान्ति और सुख की अभिवृद्धि होती है वहाँ वालको के व्यक्तित्व का विकास भी होता है। वचपन मे ही उनको जीवन की कला सीखने को मिल जाती है जो उनके भावी जीवन को सुखी वनाती है।

वालचर-सस्था एक निर्दोष सेवाभावी सस्था है। किसी भी देश की

उन्नति के लिये नैतिक गुणो का विकास आवश्यक होता है। बालचर-सस्था नैतिक गुणो का विकास करके देश के नवयुवको को इतनी अच्छी शिक्षा-दीक्षा देती है कि उनका भविष्य उज्ज्वल बने बिना नही रहता। उसके साध्य और साधन दोनो ही बडे पवित्र है। अत. इसमे कोई सन्देह नही कि उसका भविष्य बडा उज्ज्वल है। हमारा देश अभी स्वतन्त्र हुआ है। उसकी प्रगति बालको के नैतिक विकास मे ही समाई हुई है। अतः आज बालचर-सस्था का विकास देश का विकास बन गया है। प्रसन्नता की बात है कि इस सस्था का काम धीरे-धीरे प्रगति करता जा रहा है। अब तो लडकियो को भी इसी प्रकार का प्रशिक्षण दिया जाने लगा है। उन्हे गर्ल्स गाइड के नाम से पुकारा जाता है। हमे आशा है कि हमारे देश के बालक बालचर-सस्था की शिक्षा के द्वारा अपना विकास करेंगे और देश व जाति की सेवा करके शाति के सच्चे सैनिक बनेंगे। विश्व-शाति के महत्त्वपूर्ण कार्य मे उनका बहुत बडा योग रहेगा।

७—किसी यात्रा का वर्णन

१—यात्रा का उद्देश्य
२—आवश्यक तैयारियाँ
३—रेल-यात्रा का वर्णन
४—हरिद्वार और ऋषिकेश के दृश्य
५—बस द्वारा हिमालय की यात्रा
६—पैदल-यात्रा
७—बद्रीनाथ का दृश्य
८—उपसहार

धार्मिक दृष्टि से किसी भी हिन्दू के लिए तीर्थ-यात्रा का बडा महत्त्व है। पुरानी परम्परा और धार्मिक विश्वास के कारण हमारा यह विश्वास बन गया है कि तीर्थ-यात्रा हमारे पापो का क्षय करके धर्म का उदय करती है। धर्मपरायण लोगो के लिए तो तीर्थ-यात्रा जीवन के सबसे बड़े लाभ की प्राप्ति ही है। मेरी माताजी स्वभाव से ही बड़ी धार्मिक वृत्ति की हैं। इस वृद्धावस्था मे तो वे भजन-पूजन के अलावा और किसी काम

मे दिलचस्पी ही नही लेती । पिताजी भी धार्मिक वृत्ति के है और माताजी के धार्मिक कार्यों मे सदैव सहयोग देते हैं । माताजी की कुछ दिनो से तीर्थ-यात्रा की इच्छा वडी उत्कट हो गई है । जैसे-जैसे वृद्धावस्था आ रही है वे जल्दी से जल्दी यह कार्य कर लेना चाहती है । वे वनारस, प्रयाग, अयोध्या, चित्रकूट, मथुरा, वृन्दावन, द्वारका आदि अनेक तीर्थ-स्थानो की यात्रा कर चुकी हैं किन्तु वद्रीनाथ की यात्रा लम्बी दूरी और मार्ग की कठिनाइयो के कारण नही हो सकी थी । पिछले दो-तीन वर्षों से विचार होता था लेकिन एक न एक वाधा आ जाती थी और विचार स्थगित करना पडता था । वद्रीनाथ की यात्रा गर्मी के दिनो मे ही सम्भव होती है । मई का महीना इसके लिये उपयुक्त होता है । उसके पहले तो भारी वर्षा के कारण रास्ता ही बन्द रहता है और जून-जुलाई मे यद्यपि रास्ता खुला रहता है तथापि वर्षा के कारण वहाँ की यात्रा कष्टपूर्ण हो जाती है । अत इस वर्ष तो पिताजी ने यात्रा का निश्चय कर ही लिया और आवश्यक छुट्टियाँ भी प्राप्त करली । मेरी तो गर्मी की छुट्टियां थी ही अत. यात्रा मे मुझे भी सम्मिलित होने का अवसर मिल गया ।

वद्रीनाथ की यात्रा वडी कठिन है । लगभग ४० मील पैदल जाना पडता है । मार्ग पहाड़ी होने के कारण बडा दुर्गम है और वद्रीनाथ मे तो वडी जोर की सर्दी पडती है । अत इसी दृष्टि से हमे तैयारी करनी थी । हमने गरम कपडे पर्याप्त मात्रा मे अपने पास रखे, केनवास के जूते खरीदे और लाठियाँ ली । लोगो ने कहा था कि वहाँ शुद्ध आटा, घी तथा मिर्च-मसाले नही मिल पाते हैं । अत एक स्टोव और ये सामग्रियाँ भी पर्याप्त मात्रा मे रख ली ।

यात्रा की पूरी तैयारी करके हम लोग १० मई के दिन रवाना हुए । रेल मे अधिक भीड नही थी । दूसरे दिन प्रात.काल हम दिल्ली पहुँचे । वहाँ पास की ही एक धर्मशाला मे ठहर गये । दिल्ली की धर्मशालाओ मे वडी भीड रहती है । हमे स्थान नही मिला । हमने आँगन मे ही सामान रख दिया और सामान के पास वारी-बारी से एक आदमी को बैठाकर शौच, स्नान, भोजन आदि से निवृत्ति पा ली । सन्ध्या समय हम

लोग राजघाट पर गाँधीजी की समाधि देख आये। यमुना के किनारे शान्ति के देवदूत अपने राष्ट्रपिता की समाधि देखकर मुझे तो रोमांच ही हो आया। माताजी ने तो समाधि के सामने खड़े होकर इतनी श्रद्धा से प्रणाम किया जैसे वे कोई देवता ही हो। समय कम था अत. हम लोग जल्दी ही वहाँ से लौट आये और गाडी मे बैठ गये। दिल्ली से हरिद्वार जाने वाली गाडी मे प्राय बहुत भीड रहती है, फिर वह तो यात्रा का समय था। अत. पहले से ही सैकण्ड क्लास का टिकिट ले लिया था। रात भर यात्रा करके प्रात कल हम हरिद्वार पहुँच गये।

पहाडो से घिरा हुआ गगा के किनारे पर स्थित हरिद्वार छोटा-सा किन्तु सुन्दर स्थान है। हजारो यात्री यहाँ भारत के कोने-कोने से तीर्थ-यात्रा के लिये आते रहते है। बङ्गाली, मद्रासी, असमी, बिहारी, गुजराती, महाराष्ट्री, राजस्थानी, पजाबी सभी प्रकार के लोग यहाँ अपनी-अपनी वेशभूषा मे मिल जाते हैं। उन दिनो हरिद्वार मानो भारत का एक छोटा सा प्रतिरूप ही बन जाता है। ऐसी अनुभूति होती है कि हम सब भारतवासी एक ही हैं। प्रान्त और भाषा के भेद ऊपरी हैं, हम सबमे एक ही भारतीय आत्मा है, हम सब एक ही भारत माता की सन्तान है।

हरिद्वार कोई बडा शहर नही है लेकिन प्राकृतिक शोभा ने उसे सुन्दर बना दिया है। गङ्गा के किनारे लोगो की भीड बनी रहती है। लोग श्रद्धा-भक्ति से स्नान-दर्शन करते है। घण्टो उसके किनारे बैठकर जल के प्रवाह को देखते रहते हैं। गङ्गा का पानी बहुत ठण्डा रहता है। हिमालय बर्फ का पहाड है। बर्फ के पिघलने के कारण ही इस जल मे इतनी शीतलता है कि किसी भी फल को कपडे मे बाँध कर थोडी देर जल मे पडा रहने दीजिये, बस वह इतना ठण्डा हो जायेगा मानो रेफ्रीजरेटर मे रखकर ही ठण्डा किया गया हो। ठण्डा किया हुआ यह फल बडा स्वादिष्ट हो जाता है। कई लोग इस प्रकार फल ठण्डा करते हुए दिखाई देते हैं। कही कथाएँ होती हैं, कही कीर्तन। कही मालिश हो रही है, कही मुण्डन। कही पूजा-पाठ होता है, तो कही पिण्डदान। सध्या समय तो यहाँ की शोभा और भी बढ जाती है। रङ्ग-बिरङ्गी पोशाक पहने हुए भारत के कोने-कोने से आये हुए नर-नारी किनारो पर बैठ जाते हैं

और दो-दो चार-चार पैसो मे पत्तो से बनी हुई नाव खरीदते हैं। इन नावो मे फूल होते है और एक दीपक। दीपक को जला कर नाव को नदी मे छोड देते हैं और गङ्गा के प्रवाह मे उसे बहते हुए दूर तक देखते रहते है। आकाश मे तारे और नदी मे ये अगणित दीप जैसे एक दूसरे से होड करते हुए प्रतीत होते हैं। बडा ही सुन्दर दृश्य होता है।

हरिद्वार मे हम तीन दिन रहे। इस बीच हमने कनखल के मन्दिर और गुरुकुल काँगडी का विद्यालय भी देखा। चौथे दिन हम ऋषिकेश पहुँचे। ऋषिकेश भी धार्मिक स्थान है। वहाँ से लगभग दो मील के ऊपर लक्ष्मण-झूला और स्वर्गाश्रम हैं। यद्यपि हमने वहाँ के दूसरे सब स्थान भी देखे तथापि हमे स्वर्गाश्रम ही सबसे अधिक पसन्द आया। यहाँ ठहरने की अच्छी इमारतें तो हैं ही, बिजली व नल आदि की भी व्यवस्था है। बड़े व्यापारी और मध्यम-वर्ग के बहुत से धार्मिक व्यक्ति गर्मी के दिनो मे यहाँ आते हैं और दो तीन महीने तक अच्छा सत्सग होता रहता है। 'कल्याण' मासिक का सम्पादक-मण्डल इस सारे आयोजन का सचालन करता है। बडे-बडे विद्वानो के भाषण, सुमधुर कीर्तन तथा धार्मिक ग्रन्थो का अध्ययन सुबह से शाम तक चलता रहता है। एक दिन हमने स्वर्गाश्रम मे ही बिताया। यहाँ जितना आनन्द मिला उतना अभी तक और कही नहीं मिल पाया था।

ऋषिकेश मे भी तीन दिन रह कर हम लोग आगे रवाना हुए। आगे रेल नही जाती। लगभग १५० मील की यात्रा पहाडो मे बस के द्वारा ही करनी पडती है। मार्ग बहुत सँकडा होता है और नदी के किनारे किनार बनाया गया है। नीचे ३००-४०० फुट पर नदी और ऊपर ५००-७०० फुट ऊँचा पहाड तथा बीचो-बीच पहाड काट कर बनाई हुई सँकडी सडक। सडक इतनी सँकडी कि एक ही बस चल सकती है। यदि सामने से कोई दूसरी बस या बैलगाडी आ जाय तो मार्ग नही। अत यहाँ गेट की प्रणाली है। निर्धारित समय पर किसी स्थान के लिए पुलिस बसो को जाने देती है और उसके बाद वह मार्ग बन्द कर दिया जाता है। पहाड पर एक के पीछे एक चलती हुई ये

बसे एक लम्बे काफिले जैसी लगती हैं। जब ये आगामी स्थान पर पहुँच जाती हैं तो वहाँ रेल के क्रासिंग की तरह दोनो ओर की बसो का क्रासिंग होता है और फिर वे झुण्ड के झुण्ड बना कर एक के पीछे एक चल पड़ती हैं। एक बस मे खराबी हुई कि पीछे की सब बसे रुक जाती हैं। बडा ही भयानक दृश्य है। एक तो बस का रास्ता बहुत घुमावदार है, दूसरे इतना सकडा है कि यदि ड्राइवर थोडा भी चूका कि नीचे नदी मे। यहाँ बहुत सावधानी रखने के बाद भी प्रतिवर्ष-२–३ दुर्घटनायें हो ही जाती है। अत मैदान मे रहने वाले लोगो को इन मार्गों मे बहुत डर लगता है। नीचे नदी को एक फर्लाङ्ग की दूरी पर बहते हुए देखकर चक्कर से आने लगते है। ७० प्रतिशत यात्रियो को कै आने लगती है और रास्ते भर जी घबराता रहता है। मार्ग मे एक-एक दिन देव-प्रयाग, श्रीनगर और रुद्र-प्रयाग ठहरते हुए पाँच-छ दिन बाद हम लोग पीपल-कोटी पहुँचे। बस यही से पैदल-यात्रा प्रारम्भ होती है। पीपल-कोटी के आगे मोटर की सड़क नही है। जोशी मठ तक अब और सडक बन गई है।

पीपल-कोटी पहुँच कर हमने एक कुली किया। यहाँ सामान ले जाने के लिये बहुत से कुली मिल जाते है। कुली पहाडी लोग हैं और ये पहाडो पर रह कर ही खेती करते हैं। ज्यादा जमीन तो यहाँ है नही, अत. कुछ अधिक उत्पादन नही हो पाता। यही कारण है कि ये लोग बडे गरीब होते हैं। किन्तु गरीबी इनको बेईमान, चोर या कपटी नही बना सकी है। सीधा-साधापन, सरलता और ईमानदारी इनकी विशेषता होती है। ५० रुपये प्रति मन के हिसाब से ये बोझा ले जाते हैं। हमारा बोझ-लगभग एक मन ही था। अत हमने अपने साथ एक कुली ले लिया। कुली मार्गदर्शक, नौकर और सहायक तीनो रूपों मे काम आता है। लगभग ३ बजे हम लोग पीपलकोटी से चले। चार मील पैदल चलकर हम लोग गरुड-गगा नामक चट्टी पर संध्या-समय पहुँचे। धर्मशाला मे सामान रखकर मैंने माताजी और पिताजी को बैठाया। मैं कुली के साथ बरतन तथा अन्य सामान लेने गया। सब चीजे इकट्ठी करके हमने भोजन बनाया। भोजन करके रात भर विश्राम

किया। प्रात काल उठे और शौच आदि से निवृत्त होकर चल पडे। यहाँ मार्ग मे जगह-जगह २-३ मील पर चट्टियाँ मिलती हैं। चट्टियाँ एक प्रकार से छोटे-छोटे गाँव ही होते है जहाँ दुकाने, धर्मशालाएँ, अस्पताल, पोस्ट-आफिस आदि होते है। ७ बजे तक हम लगभग ६ मील चले और एक चट्टी पर ठहरे। स्नान-भोजन और विश्राम के वाद लगभग तीन वजे फिर चल दिये। हमने हरिद्वार मे ही एक पुस्तक ले ली थी जिसमे यात्रा के स्थानों की जानकारी, नक्शे आदि थे। अत कोई कठिनाई नही हुई। मार्ग मे साथी भी वहुत मिल जाते हैं। उत्तर-प्रदेश की सरकार ने सफाई, डाक्टरी सहायता व पुलिस आदि की अच्छी व्यवस्था की है ताकि यात्रियो को कष्ट न हो। हैजे के टीके लगाना अनिवार्य होता है। इसके विना हरिद्वार से आगे ही नही वढने दिया जाता। प्रतिदिन १०-१२ मील चलते हुए हम लोग चौथे दिन सन्ध्या समय वद्रीनाथ पहुँचे। हम जैसे-जैसे आगे वढ रहे थे मार्ग कठिन होता जा रहा था। ऊँची चढाई ज्यादा थी। थोडा ही चलने से साँस फूल जाता था। पिताजी तो जैसे-तैसे चल रहे थे लेकिन ऊँची चढाई और वर्फ ढके पहाडो की सर्द हवा के कारण माताजी का चलना कठिन हो गया। मार्ग भी बडा कठिन था। कहीं-कहीं तो दो सौ गज वर्फ पर चलना पडता था। ऐसी स्थिति मे एक कण्डी वाले को वुलाया और माताजी को कण्डी मे बैठाया। हम सध्या समय वद्रीनाथ पहुँचे।

वद्रीनाथ नर-नारायण नामक दो वर्फ से ढके पहाडो के वीच मे अलकनन्दा के किनारे वसा हुआ है। यह स्थान समुद्र-तल से ११,००० फुट की ऊँचाई पर है। अत इन दिनो भी यहाँ वडी सर्दी रहती है। काफी गर्म कपडो के विना यहाँ रहना कठिन होता है। हमारे कपड़े इस सर्दी के लिये अपर्याप्त रहे। अत पण्डेजी से भी कपडे लेने पडे। दूसरे दिन हम प्रात काल पण्डेजी के साथ स्नान-दर्शन के लिए निकले। पहले गरम कुण्ड मे स्नान किया। इस सर्द वातावरण मे यह कुण्ड एक आश्चर्य की ही वात है। पानी इतना गरम है कि शरीर जलने लगता है। लेकिन स्नान करने के वाद तो जैसे यात्रा की थकावट ही चली जाती है। जी होता है कि घण्टो इसमे बैठे रहे। स्नान के वाद पिताजी

ने पिण्ड-दान किया और माताजी ने वस्त्र, बरतन आदि का दान किया। फिर हम लोग मन्दिर मे दर्शन करने गये। कोई वडी इमारत मन्दिर की नही है। लेकिन वातावरण बडा पवित्र और प्रभावशाली है। हम तीन दिन तक यहाँ ठहरे। चौथे दिन वापिस लौटे।

उत्तर भारत के और विशेषकर हिमालय के दर्शन के लिये यह यात्रा बडी महत्त्वपूर्ण है। आध्यात्मिक शान्ति और आनन्द भी इस यात्रा मे मिलता है। जीवन को पवित्र वनाने की प्रेरणा मिलती है लेकिन पण्डो की छीना-झपटी, चट्टी के दुकानदारो के अनाप-सनाप भाव तथा पहाडी लोगो की गन्दगी मन मे क्षोभ भी पैदा करते हैं। यदि इनमे सुधार हो सके और मार्ग कुछ और ठीक हो सके तो यात्रा आनन्दमय हो जाय।

८—प्रजातन्त्र दिवस

१—प्रस्तावना।

२—प्रजातन्त्र-दिवस की पृष्ठ-भूमि।

३—इस दिन के विशेष आयोजन।

४—प्रजातन्त्र-दिवस और नवीन विधान।

५—उपसहार।

किसी कवि ने कहा है—'पराधीनता दु ख महा, सुख जग मे स्वाधीन।'

दुनियाँ मे सवसे वडा सुख यदि कोई है तो वह स्वतन्त्रता और यदि कोई सवसे वडा दु ख है तो वह है परतन्त्रता। तुलसीदासजी ने भी कहा था—'करि विचार देखहु मन माही, पराधीन सपने हु सुख नाही।' जव तक व्यक्ति पराधीन है, तव तक वह किसी सुख की कल्पना नही कर सकता। अत सुखेच्छु मानव ने जव-जब भी मौका पाया परतन्त्रता की बेडियो को काटने का प्रयत्न अपनी पूरी ताकत लगाकर किया। प्रजातन्त्र-दिवस उस दिन की ही वर्षगाँठ है, जव हमारे देश के व्यक्ति स्वतन्त्र हुए। १५ अगस्त १९४७ को हमारा देश अंग्रेजी शासन से मुक्त हुआ। अत हम उसे स्वतन्त्रता दिवस के नाम से पुकारते हैं। वह वडा खुशी का दिन है किन्तु इससे भी ज्यादा खुशी का दिन है २६ जनवरी १९५० जवकि हमारे प्रतिनिधियो ने अपना विधान वनाया और देश मे प्रजातन्त्र की स्थापना की। उस दिन किसी एक व्यक्ति या किसी एक

वर्ग का शासन समाप्त हुआ तथा जनता का जनता के द्वारा, जनता के हित के लिये शासन प्रारम्भ हुआ। प्रतिवर्ष २६ जनवरी के दिन उत्सव मनाकर हम उसी की वर्षगाँठ मनाते है। हम उसे अपना मुक्ति-पर्व कह सकते हैं।

प्रजातन्त्र-दिवस बहुत बड़े त्याग, बहुत बड़े बलिदान और एक लम्बी साधना का परिणाम है। एक सुन्दर इमारत देखते समय हमारा ध्यान उन नीव के पत्थरो पर नही जाता जो दूसरो को ऊँचा उठाने, मान-सम्मान पाने और सिर ऊँचा कर गौरव देने के लिए अपने को नीव के गहरे अन्धेरे मे हमेशा के लिये छिपा लेते है। किन्तु यदि वे नीव के पत्थर इतना त्याग न करते तो शायद यह इमारत तैयार न हो पाती। अत. हमारे प्रजातन्त्र के जिस भव्य-भवन को आज हम देखकर खुशी से फूल उठते हैं उनकी नीव के उन पत्थरो का इतिहास भी हमे जान लेना चाहिये जो विशुद्ध देशभक्ति के उद्देश्य से अपने जीवन को स्वतन्त्रता-देवी के चरणो मे चढा गये।

जब हमारे देश पर अंग्रेजो का शासन हो गया तो सबसे पहले उसे उखाड फेंकने का एक मजबूत प्रयत्न सन् १८५७ के विद्रोह के रूप मे हुआ। उत्तरी एव मध्य-भारत के एक बहुत बडे भाग मे विद्रोह की लपटें उठी और विदेशी शासक और सैनिको के एक बहुत बडे भाग को निगल गईं। अंग्रेजी सत्ता हिलने लग गई लेकिन दुर्भाग्य से सगठन के अभाव, कुछ देशवासियो की उदासीनता और कुछ की गद्दारी के कारण वह प्रयास सफल न हो सका। इसके बाद, धार्मिक जागरण के रूप मे स्वतन्त्रता का आन्दोलन फिर जन्म लेने लगा। राजा राम-मोहनराय, रामकृष्ण परमहस, श्रीमती एनीबीसेन्ट तथा स्वामी दयानन्द जैसे धार्मिक वृत्ति के महापुरुषो ने धार्मिक जागरण का ऐसा शख फूँका जिसमे राजनीतिक जागरण के शक्तिशाली बीज मौजूद थे। ये बीज उगे और स्वतन्त्रता का स्पष्ट उद्देश्य अपने सामने रख कर कॉंग्रेस का जन्म और विकास प्रारम्भ हुआ। प्रारम्भ मे उनमे नरम विचार के लोगो का आधिपत्य रहा, लेकिन जैसे-जैसे समय बीता गरम दल के लोग उसमे घुसते गये और उसका कार्यक्रम क्रान्तिकारी बनता गया। बीसवी

शताब्दी के प्रारम्भ मे ही दादाभाई नौरोजी, लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय तथा विपिनचन्द्रपाल जैसे नेताओं ने आजादी की लडाई खुले-आम प्रारम्भ करदी। अग्रेजी सरकार ने जी भर कर दमन किया लेकिन स्वतन्त्रता की आग तोप-तलवार से बुझ न सकी। वह तो और प्रज्ज्वलित हुई और आगे चल कर गाँधीजी के नेतृत्व ने उसे इतना शक्तिशाली रूप दे दिया कि सन् १९४७ मे अग्रेजो को विवश होकर भारत छोडना ही पडा। गरोशशकर विद्यार्थी, मालवीयजी, नेताजी, मोतीलाल नेहरू, देशबन्धु चितरजनदास, चन्द्रशेखर आजाद, भगतसिह आदि कितने ही व्यक्तियो ने लडते-लडते अपने प्राण होम दिये। उनके बलिदान का ही परिणाम १५ अगस्त १९४७ का दिन है।

इस दिन हम आजाद अवश्य हो गये लेकिन हमारी आजादी अभी अधूरी थी। हमारे देशवासियो ने इतना बडा बलिदान केवल दो-चार आदमियो को कुर्सी पर बिठाने के लिये नही किया था। वे प्रत्येक व्यक्ति की आजादी चाहते थे। अत उसके लिये विधान-परिषद् बैठाई गई। उसने कठिन परिश्रम से दो-ढाई वर्ष के समय मे विधान तैयार किया। २६ जनवरी १९५० को वह विधान लागू हुआ। बस, उस विधान के अनुसार इस दिन से जनता का राज्य प्रारम्भ हुआ। प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार और समान कर्त्तव्य प्रदान किये गये और समता, स्वतन्त्रता एव बन्धुत्व के सिद्धान्तो को साकार रूप देने की घोषणा की गई। इसलिए तो प्रजातन्त्र-दिवस जनता की स्वतन्त्रता का पर्व है, जनता के आनन्द-उल्लास का दिन है। यह वही दिन है जब हमारे देशवासियो ने परतन्त्रता, वैषम्य और वैमनस्य की सदियो पुरानी बेडियो को काट फैंका था। यही कारण है कि प्रजातन्त्र-दिवस सारे देशवासियो के लिये बहुत बडी खुशी का दिन है।

हमारे देशवासी अपने हृदय के इस उल्लास और आनन्द को इस दिन उत्सव मना कर प्रकट करते हैं। इस वर्ष भी २६ जनवरी को हमेशा की तरह देश के कोने-कोने मे उत्सव मनाये गये। प्रात काल ही सारी राजकीय इमारतो पर झण्डे फहराये गये। हमारे अजमेर शहर मे प्रात ७ बजे पटेल मैदान के विशाल प्रागण मे सैनिको की परेड हुई।

पुलिस, फौज, वायुसेना, जलसेना, एन० सी० सी० व ए० सी० सी० के जवानो ने झण्डे को सलामी दी और जिलाधीश ने झण्डा फहराया। जिलाधीश ने इस अवसर पर सामयिक भाषण भी दिया। अपने भाषण मे उन्होने प्रजातन्त्र के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए सही अर्थो मे उसकी स्थापना करने की अपील की। इसके बाद विभिन्न सरकारी महकमो, विद्यालयो तथा सस्थाओं की ओर से तैयार की हुई सास्कृतिक झाँकियाँ निकली। किसी ने वीरागना लक्ष्मीबाई की तो किसी ने प्रेम-दिवानी मीराँ की, किसी ने एवरेस्ट की विजय की, तो किसी ने राम के वनवास की झांकी प्रस्तुत की। एक से एक सुन्दर २० झाँकियाँ जिलाधीश के सामने से गुजरी और सैनिक, विद्यार्थी, नागरिक सभी उन झांकियो के साथ जुलूस बनाकर नगर के मुख्य बाजारो मे से गुजरे। लगभग सभी स्कूलो मे मिठाई बाँटी गई। रात्रि को नृत्य, अभिनय, सगीत आदि के कार्यक्रम हुए और प्रत्येक इमारत पर दीपक या बिजली की रोशनी की गई। नगर मे सभी लोगो ने अपने घरो और बाजारो को सजाया था। कही पताकाएँ लगाई गई थी, कही झण्डे। कई जगह दरवाजे बनाये गये थे और अनेक स्थानो पर सभाओ, चायपार्टियो और भोजो का आयोजन किया गया था। सर्वत्र लाउड-स्पीकरो की ध्वनि से आकाश गूँज रहा था और प्रत्येक बालक, बूढा, स्त्री-पुरुष और युवक-युवतियो के चेहरे पर प्रसन्नता नाच रही थी।

रात्रि के समय प्रत्येक घर जब रोशनी से चमक उठा तो ऐसा लगा मानो दूसरी दीपावली ही आ गई। कोई इमारत ऐसी नही थी जो दीपको के प्रकाश से जगमगा न रही हो। सरकारी इमारतो पर खूब रोशनी हो रही थी। सार्वजनिक इमारतो पर भी जी भरकर दीपक जलाये गये थे। कही सगीत-सम्मेलन हो रहा था तो कही कवि-सम्मेलन। कही प्रदर्शिनी हो रही थी तो कही नाटक-सिनेमा। ऐसा प्रतीत होता था जैसे आनन्द-उल्लास का समुद्र ही उमड पडा हो।

प्रजातन्त्र-दिवस के साथ हमारी कई स्मृतियाँ जुडी हुई है। इस दिन नया विधान लागू हुआ था। यह विधान जनतन्त्रीय आदर्शो के आधार पर बना था। इस विधान ने पुरानी व्यवस्था को मिटाकर नई

व्यवस्था का निर्माण किया था। अब बडे-बड़े कर्मचारी, पुलिस, फौज तथा मन्त्रीगण मालिक नही जनता के सेवक बन गये थे। एक मनो-वैज्ञानिक परिवर्तन हुआ था। दिल्ली मे ब्रिटिश मुकुट के स्थान पर अशोक की सिंह-प्रतिमा को राजचिह्न का गौरव प्राप्त हुआ था। नये प्रकार के नोट, नये प्रकार के टिकिट तथा नये प्रकार के सिक्के प्रचलित हुए थे। पार्को, बाजारो, सडको, स्कूल-कॉलेजो और सार्वजनिक सस्थाओ के अग्रेजी नाम हटा कर भारतीय नेताओ और हुतात्माओ के नाम से उन्हे विभूषित किया गया था। प्रजातन्त्र के दिन इस सारे परिवर्तन का स्मरण किये नही होता।

इस विधान से भारतीय जनता को नये-नये अधिकार प्राप्त हुए थे। हमारे देश का दर्जा दूसरे सब राष्ट्रो की बराबरी का बन गया था। हमारी विदेश-नीति स्वतन्त्र हो गई थी। हम दुनियाँ के सारे राष्ट्रो के आगे मैत्री का हाथ बढाने के लिये मुक्त थे। हमारे प्रत्येक वयस्क व्यक्ति को मताधिकार प्राप्त हो गया था और प्रत्येक नागरिक को समानता के अधिकार मिल गये थे। अब न हिन्दू-मुसलमान का भेद शेष रह गया था न अवर्ण-सवर्ण का। राष्ट्रपति से लेकर पचायत के मुखिया तक का चुनाव जनता के मत से होने की घोषणा हो गई थी। यह जनता की विजय थी। इस उत्सव के रूप मे हम जनता या यो कहे कि अपनी स्वय की ही जयजयकार करते हैं।

जनतन्त्र की स्थापना के साथ हमारे सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक क्षेत्र मे जबरदस्त क्रान्ति हो गई। अब पुरानी परम्पराएँ, पुरानी व्यवस्थाएँ, पुरानी मान्यताएँ और पुरानी रूढि रीतियाँ छिन्न-भिन्न हो गई हैं तथा उनका स्थान नई व्यवस्था ने लेना प्रारम्भ कर दिया है। अब प्रति पांचवें वर्ष चुनाव होते हैं और जनता की स्वीकृति से कोई दल या व्यक्ति शासन की कुर्सी पर बैठता है। शासक अपने अच्छे बुरे काम के लिये जनता के प्रति उत्तरदायी हैं और उसी को अपना स्वामी मानकर कार्य करते हैं।

सामाजिक क्षेत्र मे स्त्री-पुरुष, अवर्ण-सवर्ण, धनी-गरीब, सबको समानता का दर्जा मिल गया है। अब न कोई किसी पर अत्याचार

कर सकता है न कोई किसी को दवा सकता है। सवको आगे वढने और उन्नति करने के समान अवसर दिये जाते है। न जाति-पाति के कारण किसी से कोई भेद किया जाता है न धर्म-पन्थ के कारण। आर्थिक क्षेत्र मे अभी विपमता है किन्तु पिछले १३-१४ वर्षो मे वह कम हुई है और हमारी सरकार का रुख उसे और ज्यादा कम करने की ओर है। साँस्कृतिक क्षेत्र मे तो वहुत अधिक प्रगति हुई। सदियो से उपेक्षित कलाओ को प्रोत्साहन मिल रहा है और क्या साहित्य, क्या सगीत, क्या नृत्य और क्या अभिनय सभी का समुचित विकास हो रहा है। शिक्षा की ओर भी लोगो एव सरकार दोनो का ध्यान गया है। यद्यपि अभी इस क्षेत्र मे वहुत-सा काम करना वाकी है तथापि पिछले कुछ वर्षो मे सन्तोषजनक कार्य हुआ है। इसमे कोई सन्देह नही कि जनतन्त्र की प्रगति हमारी प्रगति है। ईश्वर हमारे जनतन्त्र को चिरायु करे।

९—दीपावली--एक त्यौहार

१—भूमिका
२—दीपावली का दृश्य
३—उसका पौराणिक और मौसम सम्वन्धी आधार
४—उत्साह-पूर्ण आयोजन
५—वैश्य जाति का प्रमुख त्यौहार और उसके आनन्द
६—दीपावली के साथ जुडी हुई अप्रिय वातें
७—उपसहार

दार्शनिको का कहना है कि जीवन दु खमय है। कभी वीमारी, कभी अभाव और कभी कलह उसके ऊपर इतनी तीव्रता से चोट करते है कि सुख की सास लेना ही कठिन हो जाता है। यदि वह शरीर से स्वस्थ, पैसे से सम्पन्न और कलह से ऊपर उठ भी जाय तो सगे-सम्वन्धियो और पास-पडोसियो का कष्ट परेशानी का विषय वन जाता है। मानव-हृदय ही ऐसा है कि वह मनुष्य ही नही पशु-पक्षियो की पीडा भी सहन नही कर पाता है। यदि इन सब परेशानियो से भी कोई आँख मूँद ले तो दैनिक जीवन की परेशानी भी कम नही होती। अध्यापक प्रति-दिन पढाते

पढाते थक जाता है और विद्यार्थी पढते-पढते, व्यापारी व्यापार करते करते और वकील वकालत करते करते। सभी नई शक्ति, नई स्फूर्ति और नवीन चेतना के लिये परिवर्तन चाहते हैं, आनन्द चाहते है। यह ससार दु खमय है, शायद इसीलिए यहाँ सुख और आनन्द का बहुत बडा महत्त्व है। हममे ऐसा कौन है जो सुख और आनन्द नही चाहता ? कदाचित् इस सुख और आनन्द की इच्छा ने ही मनुष्य को त्यौहार मनाने की प्रेरणा दी है। त्यौहार के दिन वह स्वय तो जी भर आनन्द मनाता ही है अपने पास-पडौसियो और समाज के सब लोगो को भी उसकी धारा मे स्नान करता हुआ देखता है। इससे उसका आनन्द परिपूर्ण बनता है। उसमे जैसे चार चाँद लग जाते है। दुःख से भरे हुए ससार मे अपनी सुखेच्छा की तृप्ति के लिए वह वर्ष मे दो चार दिन तो ऐसे मना ही लेता है जब वह आनन्दमय बने, समाज आनन्दमय और प्रकृति भी उसके आनन्द मे सहायक बने।

दीपावली का त्यौहार ऐसे आनन्द का ही त्यौहार है। दीपावली शब्द 'दीप' और 'अवली' से बना है। दीप का अर्थ है दीपक और अवली का अर्थ है पक्ति। दीपावली त्यौहार की सबसे बडी विशेपता या पहिचान यही है कि उस दिन रात के समय घर-घर अनेक दीप जलाये जाते हैं। जिधर देखो उधर दीपमालिकाएँ ही दिखाई देती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अमावस्या की इस रात्रि मे आकाश के तारे पृथ्वी पर ही उतर आये हैं। दीपावली के दिन प्रत्येक हिन्दू नये कपड़े पहिनता है, अच्छा भोजन करता है और रात्रि को लक्ष्मीजी की पूजा कर उसके प्रसाद के रूप मे मिठाई बाँटता है। धनी व्यक्ति यदि बिजली के अनेक बल्ब जलाकर अपने मकान को जगमगा देता है तो गरीब भी तेल के १०-२० दीपक अवश्य जलाता है। धनी व्यक्ति के मकान मे यदि सफेदी और वार्निश का काम महीने भर पहले से प्रारम्भ हो जाता है तो गरीब के घर भी यह काम ४-५ दिन तो होता ही है। धनवान के घर यदि १०-२० तरह की मिठाइयाँ बनती हैं और कई लोगो को बाँटी जाती हैं तो गरीब के घर भी १-२ अवश्य बनती हैं और इष्ट-मित्रो को बाँटी जाती है। दीपावली लक्ष्मी-पूजा का त्यौहार है, सम्पन्नता की उपासना का उपक्रम है। अत

इस दिन ग्राम-ग्राम, नगर-नगर मे सफाई, चमक-दमक और हँसी-खुशी की धूम रहती है। अपने-अपने घरो को सब अनेक तरह से सजाते हैं और सम्पन्नता की देवी का आह्वान करते है। इस दिन रात्रि का दृश्य तो देखते ही बनता है। कुछ मकानो की सजावट तो देखते ही बनती है। पत्रकार इन स्थानो का चित्र लेते हैं और पत्रो मे छापते हैं। लोगो की मान्यता है कि इस दिन रोशनी जितनी तेज होती है, आगामी वर्ष उतनी ही सम्पन्नता लेकर आता है।

दीपावली की इस हँसी-खुशी और आनन्द के दो प्रमुख आधार हैं। एक पौराणिक कथा इस प्रकार है कि नरकासुर के अत्याचार से जब लोग परेशान हो गये तो उन्होने श्रीकृष्णजी से उसका वध करने को कहा। भगवान् ने सबके सहयोग से उसका वध किया और लोगो को उसके अत्याचारों से मुक्त किया। पता नही पहले कोई नरकासुर नाम का राक्षस हुआ या नही और भगवान् श्रीकृष्ण ने उसका वध किया या नही, लेकिन इतना तो सत्य है ही कि दीपावली का त्यौहार वर्षा ऋतु के समाप्त होने पर मनाया जाता है। उन दिनो वर्षा ऋतु के कारण गड्ढे भर जाते हैं और उनका पानी सडता रहता है। घर भी धूप के अभाव मे खराब होने लगता है। गन्दगी सडने लगती है और वायु मण्डल दूषित करके अनेक बीमारियाँ पैदा करती है। नरकासुर नाम का राक्षस किसी युग मे एक बार पैदा हुआ होगा लेकिन गन्दगी का नरकासुर प्रत्येक वर्षा ऋतु के बाद जन्म लेता है और यदि समय पर उसका वध न किया जाय तो वह नरकासुर की ही भाँति विनाशक सिद्ध हो सकता है। अत. यह आवश्यक है कि वर्षा के समाप्त होते ही इस गन्दगी को समाप्त किया जाय। एक और महत्त्व की बात इस त्यौहार के सम्बन्ध मे यह होती है कि वर्षा ऋतु की फसल इस समय तक तैयार हो जाती है और उसकी शोभा मन मे प्रसन्नता पैदा करती है। अन्न पर हमारा जीवन निर्भर है। नही तो जीवन की सुरक्षा कैसे सम्भव हो सकती है। अत खेतो मे पका हुआ अनाज देखकर किसका मन-मयूर प्रसन्नता से नही नाच उठेगा। दीपावली का आनन्द इसी प्रसन्नता का प्रतीक है। यही इस त्यौहार का प्रमुख आधार है।

इन्ही कारणो से दीपावली का त्यौहार बडे आनन्द और उत्साह मे मनाया जाता है। खेतों की हरियाली और शस्य-श्यामता मन में प्रसन्नता का सचार किये विना नही रहती। लोग १०-१०, १५-१५ दिन पहले से दीपावली की तैयारी प्रारम्भ कर देते हैं। मकानो मे सफेदी होने लगती है। नया रग-रोगन किया जाता है। खिडकी, दरवाजे वारनिश लगाकर चमकाये जाते हैं। घर का कूडा-कचरा साफ किया जाता है और इस प्रकार चारों तरफ की गन्दगी को समाप्त करने का सामूहिक प्रयत्न भी अपने आप ही हो जाता है। धनी लोग इस काम मे ज्यादा पैसा खर्च करते हैं, गरीब अपने हाथ से ही सारा काम कर लेता है। लेकिन उत्साह की मात्रा किसी मे भी कम नही होती है। उत्साह के वातावरण मे मकानों की मरम्मत हो जाती है और उनकी आयु बढ जाती है तथा वरसात के कारण पैदा हुए कीटाणुओं का भी नाश हो जाता है।

दीपावली के दिन नये कपड़े तो पहने ही जाते हैं और मिठाइयाँ भी बनती ही हैं, लेकिन मन की खुशी अन्य तरीको से भी अभिव्यक्त होती है। इस दिन नये वर्तन खरीदना वडा शुभ माना जाता है। बहुत से लोग इस दिन कोई न कोई नया वर्तन खरीदते हैं। बच्चो के लिए नये-नये खिलौने खरीदे जाते हैं और आतिशबाजी तो इस दिन की प्रमुख विशेषता ही है। इस दिन प्रत्येक बालक पटाके खरीदता और चलाता है। उनकी रग-बिरगी रोशनी और आवाज से सारा वातावरण आनन्द-मय हो जाता है। बच्चे-बूढे, स्त्री-पुरुष, धनी-गरीब, युवक-युवतियाँ सबके चेहरे पर प्रसन्नता दिखाई देती है। सब सजे हुए, सभी प्रसन्न मन प्रतीत होते हैं। मिठाईवालो, खिलौनेवालो और पटाखेवालो की इस त्यौहार पर खूब बन आती है। दो-चार दिन मे ही वे सैकडो रुपयों की चीजें वेच लेते हैं। गरीब से गरीब व्यक्ति भी कुछ न कुछ मिठाई, खिलौने और पटाखे खरीदता है।

यद्यपि हिन्दुओ के चारो बड़े त्यौहार—दिवाली, दशहरा, रक्षा-बन्धन और होली—राष्ट्रीय त्यौहार है तथा प्राचीन वर्ण-व्यवस्था के अनुसार एक-एक वर्ण का एक-एक प्रमुख त्यौहार है। रक्षा-बन्धन ब्राह्मणों

का त्योहार है तो दशहरा क्षत्रियो का। होली शूद्रों का त्योहार है तो दीपावली वैश्यो का। रक्षा-बन्धन मे यज्ञोपवीत धारण करने की बात मुख्य है तो दशहरे मे शस्त्र-पूजा की। इसी प्रकार होली मे हँसी-खुशी और विनोद की प्रमुखता है तो दीपावली मे लक्ष्मी-पूजा की। वैश्यजाति व्यापारी है और उनकी आराध्य-देवी लक्ष्मी ही है। अत यह जाति इस अवसर पर खूब पैसा खर्च करती है और इसे बडे उत्साह से मनाती है। इस दिन वे वर्ष का हिसाब तैयार करते हैं और देखते हैं कि उन्हे लाभ रहा है या हानि। इस दिन से नया वही-खाता रखा जाता है और नवीन वर्ष का नया हिसाव आरम्भ किया जाता है। लक्ष्मी जी की पूजा वडी धूम धाम से होती है। अपनी सव सम्पत्ति लक्ष्मीजी के चित्र के पाम रखकर पूजी जाती है और मित्रों को प्रसाद के रूप मे मिठाइयाँ भेजी जाती हैं। कही-कही तो लक्ष्मीजी के सामने का दीपक तीन दिन और तीन रात लगातार जलता हुआ रखा जाता है।

दीपावली के त्योहार की इसी खुशी और उत्सव के साथ कुछ अप्रिय वातें भी जुडी हुई हैं। इनमे सबसे पहली बात है जुए की प्रथा। दीपावली की रात को जुआ खेलना बुरी बात नही मानी जाती। इस दिन सव कोई अपनी अपनी तकदीर आजमा लेना चाहते हैं और इस दिन की हार वर्ष भर हार तथा इस दिन की जीत वर्ष भर की जीत मानी जाती है। अभी कुछ वर्षो पहले तक सरकार भी इन दिनो जुआ खेलना बुरा नही मानती थी। तीन दिनो तक खूब जुआ चलता था। देशी राज्यो मे तो यह बुराई और भी भयङ्कर रूप मे विद्यमान थी। जो वर्ष मे एक दिन भी जुआ नही खेलता था वह भी इस दिन जुआ खेलना बुरा नही मानता था। जुआ कोई अच्छी वात तो है नही, अत उसका वडा दुष्परिणाम सामने आता था। हजारो लाखो रुपये की हार-जीत एक ही वैठक मे हो जाती थी। कुछ लोग तो अपना अमूल्य धन गवाकर अनेक दिनो तक कष्ट का जीवन व्यतीत करने के लिये विवश हो जाते थे और बदमाश गुण्डे लोगो को लूट-खसोट और मारपीट का अच्छा अवसर मिल जाता था। दूसरी बात है आतिशवाजी। आतिशबाजी मे एक तो कुछ ही समय मे वहुत-सा पैसा बर्बाद हो जाता है, दूसरे हर शहर मे २-४ जगह आग

लगने या जलने के समाचार भी मिल जाते हैं। बच्चे खुशी से आतिश-बाजी छोड़ते हैं लेकिन थोडी-सी असावधानी से दुर्घटना घट जाती है और कोई न कोई जख्मी हुए बिना नही रहता।

इस प्रकार दिवाली का त्यौहार बहुत कुछ खुशी और आनन्द के साथ कुछ अप्रिय बातो के साथ जुडा हुआ है। यदि ये बुराइयाँ न रहें तो त्यौहार सर्वाङ्ग सुन्दर बन जाय। होली के त्यौहार मे भी इतनी ही खुशी रहती है लेकिन यह काम-भावना को जागृत करता है। किन्तु दीपावली सौन्दर्य भावना को ही जागृत करती है और इस प्रकार उसमे कोई विशेष बुराई नही रह जाती। दशहरा भी हमारा एक बडा त्यौहार है लेकिन उसमे इतनी चमक-दमक नही होती जितनी दीपावली मे। ऐसी स्थिति मे यदि हम सच्चे अर्थों में उसकी चमक-दमक बढाना चाहते है तो उसमे से जुए और आतिशबाजी की बुराई हटानी चाहिये।

१०—विद्यालय का वार्षिकोत्सव

१—वार्षिकोत्सव की तैयारी।
२—खेलकूद प्रतियोगिताएँ।
३—वाद-विवाद, निबन्ध एव कविता सम्बन्धी प्रतियोगिताएँ।
४—मुख्य समारोह (नाटक, सभा, पुरस्कार-वितरण आदि)।
५—उपसहार।

हमारे विद्यालय की स्थापना गाँधी-जयन्ती के अवसर पर २० वर्ष पूर्व हुई थी। अत प्रतिवर्ष गाँधी-जयन्ती के अवसर पर ही हम उसका वार्षिकोत्सव मनाया करते हैं। वार्षिकोत्सव का कार्य-क्रम प्रायः तीन दिन तक चलता है। पहले दिन खेल-कूद की प्रतियोगिताएँ होती हैं, दूसरे दिन निबन्ध, वाद-विवाद, सगीत, कविता, सुलेख आदि की प्रतियोगिताएँ होती हैं। तीसरे दिन मुख्य समारोह होता है जिसमे प्रधानाध्यापक अपनी रिपोर्ट सुनाते हैं, अध्यक्ष भाषण देते हैं, पुरस्कार-वितरण होता है तथा रात्रि के समय नाटक-सगीत आदि का कार्य-क्रम होता है। अत सभी विद्यार्थियो को उसकी जानकारी रहती है और अगस्त माह से ही उत्सव की तैयारी प्रारम्भ हो जाती है। इस वर्ष के वार्षिकोत्सव

के लिये भी तैयारी आरम्भ हो गई थी। कोई दौडने का अभ्यास कर रहा था तो कोई कूदने का। कोई गोला फेंकने का अभ्यास कर रहा था, तो कोई साइकिल दौड का। कोई निबन्ध-प्रतियोगिता की तैयारी मे व्यस्त था, तो कोई नाटक की वेशभूषा मे।

इस प्रकार जहाँ विद्यार्थी लोग प्रतियोगिता के कार्यों मे व्यस्त थे वहाँ स्कूल के अधिकारीगण सफाई तथा व्यवस्था के कार्य मे जुटे हुए थे। दीवारो पर सफेदी की जा रही थी। फर्नीचर पर वारनिश हो रहा था और जगह-जगह सिद्धान्त-वाक्य नये सिरे से लिखे जा रहे थे। दीपावली के अवसर पर ग्राम-ग्राम और नगर-नगर मे जिस प्रकार की तैयारी होती है, उसी प्रकार की तैयारी इस समय हो रही थी। कही से फर्श मँगवाई जा रही थी, कही से क्रॉकरी। कही स्कूल के सामान की प्रदर्शिनी लगाने की व्यवस्था हो रही थी, तो कही सजावट के लिए कागज के फूल-झण्डियाँ, वन्दनवार आदि तैयार किये जा रहे थे। सब अपने-अपने कार्य मे जुटे हुए थे।

हमारे विद्यालय की ड्रेस खाकी नेकर और सफेद कमीज है। अतः विद्यालय के वार्षिकोत्सव के पहले दिन प्रधानाध्यापकजी के आदेशानुसार सब लोग वही ड्रेस पहिन कर आये। चारो ओर उत्साह था। सबसे पहले प्रातःकाल झण्डाभिवादन हुआ। हमारे बालचर-ग्रुप ने झण्डे को सलामी दी और झण्डाभिवादन के अवसर पर प्रधानाध्यापक महोदय ने एक प्रेरणादायक भाषण दिया। झण्डाभिवादन के बाद सब क्रीडास्थल पर पहुँचे और प्रतियोगिताएँ प्रारम्भ हो गईं। १०० गज की दौड, ४४० गज की दौड, आध मील की दौड, मीलभर की दौड़, ऊँची कूद, लम्बी कूद, बाधा दौड, गोला फैंकना, गेंद फैंकना आदि प्रतियोगिताएँ हुईं। दूसरी ओर छोटे बालको की तीन टाग की दौड, चम्मच दौड, अमरूद दौड, कुर्सी की दौड, कबड्डी आदि होने लगे। सध्या समय हॉकी, फुटबाल, वॉलीबाल आदि के फायनल मैच प्रारम्भ हुए। सारा कार्यक्रम बडे उत्साह के वातावरण मे हो रहा था। मैं अपनी कक्षा की हॉकी टीम का कप्तान था। हमारी क्लास की टीम विजयी हुई। इसके साथ साइकिल की दौड मे मैं प्रथम तथा ४४० गज की दौड मे द्वितीय आया। सन्ध्या

समय लगभग ७ बजे खेलो का कार्यक्रम समाप्त हुआ। एक बार फिर से सब प्रतियोगिताओ के विजेताओ की घोषणा की गई।

दूसरे दिन का कार्यक्रम विद्यालय के हाल मे प्रात.काल साढे सात बजे से ही प्रारम्भ हो गया। आज भी विद्यार्थियो मे बड़ा उत्साह था। सबसे पहले निबन्ध प्रतियोगिता प्रारम्भ हुई। विषय था 'कृत्रिम उपग्रह' या 'पञ्चशील'। समय १ घण्टा रखा गया। लगभग पचास विद्यार्थियो ने इसमे भाग लिया। निबन्ध-प्रतियोगिता साढे आठ बजे समाप्त हो गई। अब वाद-विवाद की प्रतियोगिता प्रारम्भ हुई। वाद-विवाद का विषय था—"विज्ञान की प्रगति मानव-जाति के लिए कल्याणकारी सिद्ध होगी।" विषय पक्ष-विपक्ष मे बहुत से विद्यार्थियो ने बडे ओजपूर्ण भाषण दिये। वाद-विवाद इतना आकर्षक हुआ कि अन्त मे हमारे विज्ञान के अध्यापक और प्रधानाध्यापकजी को भी अपने विचार प्रकट करने पड़े। उनके भाषणो से वाद-विवाद का आनन्द दूना हो गया। वाद-विवाद दस बजे समाप्त हुआ। उसके बाद कविताओ की प्रतियोगिता हुई। लगभग बारह विद्यार्थियो ने अपनी-अपनी रचनाएँ सुनाईं। अपराह्न मे ३ बजे गल्प-प्रतियोगिता प्रारम्भ हुई। इसमे केवल सात विद्यार्थी ही सम्मिलित हुए। सध्या समय सङ्गीत और अभिनय की प्रतियोगिता हुई, इसमे कुछ विद्यार्थियो ने तो कमाल कर दिया। श्री राधाकृष्ण शर्मा का मूक-अभिनय और रेवतीशरण का नृत्य सबने बहुत पसन्द किया।

वार्षिकोत्सव का अन्तिम और सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम तीसरे दिन प्रारम्भ हुआ। अध्यक्ष-पद के लिये प्रान्त के शिक्षा-मन्त्रीजी से प्रार्थना की गई थी और उन्होने स्वीकार भी कर लिया था। वे प्रात काल दस बजे आने वाले थे। अतः सुबह आठ बजे से ही स्कूल को झण्डियो, पत्तियो, फूलो, सुभाषितो आदि से सजाने का कार्यक्रम प्रारम्भ हो गया। हम लोगो ने अपने-अपने काम बाँट लिये थे और सब अपने काम मे जी जान से लगे हुए थे। कोई दरियाँ बिछा रहा था तो कोई गुलदस्ते तैयार करने मे व्यस्त था। कोई सुभाषित लगा रहा था तो कोई पानी की व्यवस्था कर रहा था। लगभग दो घण्टे

तक यह कार्य चलता रहा। साढे नौ बजे घण्टी बजी और हम सब लोग अपनी-अपनी ड्रेस पहन कर मन्त्री-महोदय के स्वागत के लिए विद्यालय के द्वार पर आ गये। ठीक दस बजे मन्त्री-महोदय आये। एन० सी० सी० के विद्यार्थियो ने 'गार्ड-ऑफ-ऑनर' दिया। उसके बाद उन्होने विद्यालय की प्रदर्शनी का उद्घाटन किया और कताई, बुनाई, हस्तकला, चित्र-कला, विज्ञान एव कृषि के कमरो का निरीक्षण किया। सब कमरे अच्छी तरह सजाये गये थे और उनमे हम विद्यार्थियो के हाथ से बनाई गई चीजें रखी गई थी। हमारा एक सग्रहालय भी था जिसमे हमारे द्वारा सग्रह किये हुए चित्र, पुस्तकें, सिक्के, टिकिट, शख, घोंघे तथा इसी प्रकार की अन्य चीजें थी। इन सबको देखने मे लगभग एक घण्टे का समय बीत गया। प्रदर्शनी देखकर मन्त्रीजी डाक-बगले पर चले गये और हम में से कुछ विद्यार्थी प्रदर्शनी की चीजें नागरिको को दिखाते रहे। बारह बजे प्रदर्शनी बन्द कर दी गई।

वार्षिकोत्सव की मुख्य-सभा तीन बजे प्रारम्भ हुई। सबसे पहले स्वागत गीत गाया गया। फिर हमारे प्रधानाध्यापक महोदय ने मन्त्रीजी का स्वागत करते हुए उन्हे फूल-माला पहनाई। अब पिछले वर्ष के कार्य की रिपोर्ट पढ़ी गई। रिपोर्ट मे गत वर्ष पास होने वाले विद्यार्थियो की सख्या, नई-नई प्रवृत्तियाँ, उनकी प्रगति, विद्यालय की भावी योजनाओ आदि के ऊपर प्रकाश डाला गया था। इसके बाद पुरस्कार वितरण हुआ और अन्त मे अध्यक्ष महोदय का भाषण हुआ। रात्रि के समय हमारे प्रधान अध्यापकजी के द्वारा लिखा गया 'मझधार और किनारा' नामक नाटक खेला गया। नाटक सब लोगो ने बडा पसन्द किया।

इस प्रकार विद्यालय का वार्षिकोत्सव बडी धूमधाम के साथ सम्पन्न हुआ। चौथे दिन हमारे प्रधानाध्यापकजी ने सब अध्यापको और विद्यार्थियो की एक सभा की जिसमे वार्षिकोत्सव के ऊपर सबके विचार मालूम करने का प्रयत्न किया गया। सबने अपने-अपने विचार प्रकट किये और बताया कि उनकी दृष्टि से उत्सव की व्यवस्था मे क्या कमी रह गई। एक कमी हम सब लोगो ने यह अनुभव की कि यदि तीसरे दिन की कार्यवाही के बाद व्यायाम के प्रदर्शन रखे जाते, सामूहिक ड्रिल रखी

जाती अथवा चाय-पान का कार्यक्रम होता तो ज्यादा अच्छा रहता। किन्तु कुल मिलाकर कार्यक्रम सन्तोषजनक रहा, उससे सभी लोगो को प्रसन्नता हुई।

११—मेरे जीवन का सबसे अधिक आनन्दमय दिन

१—प्रस्तावना
२—पिताजी द्वारा डाकुओ के मारे जाने का समाचार
३—मैच मे खेलने का निमन्त्रण
४—परीक्षा मे प्रथम आने की सूचना
५—हॉकी मैच मे विजय
६—उपसहार

मैं जीवन मे परिश्रम को ही सदैव महत्त्व प्रदान करता आया हूँ। मेरी मान्यता है कि परिश्रम या अध्यवसाय मे कठिन से कठिन समस्या को हल कर देने की शक्ति है। अत कोई विशेष प्रतिभा न होते हुए भी मैंने जीवन के अनेक कठिन कार्यों को परिश्रम के बल-बूते पर ही पूरा करने का प्रयत्न किया। इसमे कोई सन्देह नही कि मुझसे कम परिश्रम करके भी बहुत से विद्यार्थी मुझसे ज्यादा अक प्राप्त करते हैं। मुझसे कम खिलाडी होते हुए भी, प्रथम ११ खिलाड़ियो मे नाम लिखाकर स्कूल की तरफ से शहर मे और शहर के बाहर मैच खेलने जाते रहते हैं और मुझसे बहुत कम परिश्रम करके चुनावो मे जीतते रहे हैं। इससे मुझे कभी-कभी निराशा और उदासीनता के अन्धड़ मे भी बहना पड़ा है, लेकिन मैंने अपने विश्वास को अडिग बनाये रखा है। यद्यपि कभी मेरा परिश्रम बिलकुल व्यर्थ नही गया, तथापि ४ जनवरी १९५७ का दिन मेरे जीवन मे ऐसा आया जब कि परिश्रम ने भाग्य का रूप ग्रहण कर लिया और चारो ओर से सफलता, आनन्द और हर्ष की वर्षा हो उठी।

मेरे पिता जैसलमेर मे सब इन्सपेक्टर-पुलिस हैं। इन दिनो वहाँ डाकुओ का बड़ा जोर है। परसो पिताजी का पत्र आया। लिखा था कि

वे एक कुख्यात डाकू को पकडने के लिए भेजे जा रहे हैं। उस डाकू को पकडने या मार डालने के लिये सरकार ने दस हजार रुपये का इनाम रखा है। पिताजी ने लिखा था कि काम वडा खतरनाक है किन्तु उसे करना ही है। मैं अपनी पूरी ताकत लगाकर उसे पकडने का प्रयत्न करूँगा। पत्र पाते ही मेरी चिन्ता वढ गई थी। सोचता था यदि पिताजी उसका मुकावला करते मारे गये तो परिवार का क्या होगा? मेरी पढाई-लिखाई तो समाप्त ही हो जायेगी। माँ का क्या होगा! वहिन की शादी का प्रश्न जटिल हो जायगा। भगवान् उनकी रक्षा करे! अत ४ जनवरी को जव सुवह मैं उठा तो मैंने जानवूझ कर समाचार पत्र नही देखा। मैं नाश्ता करने वैठा। मैं नाश्ता कर ही रहा था कि मेरा मित्र विनयकुमार दौड़ता हुआ आया और वोला—"मिठाई खिलाओ तो एक समाचार सुनाऊँ।" मैंने कहा—"खिला दूँगा।" तव कुछ मिन्नत करने के वाद वोला—"अभी सुवह रेडियो मे खबर थी कि जैसलमेर से २७ मील के फासले पर तुम्हारे पिताजी के नेतृत्व मे एक पुलिस-दल ने कुख्यात डाकू हजारासिह को उसके सात साथियो के साथ मार डाला और उसके तीन अन्य साथियो को गिरफ्तार कर लिया है। कहा जाता है कि हजारासिह तुम्हारे पिताजी की गोली से मारा गया। उन्होने जान पर खेल कर उसे मार डाला। राज्य सरकार ने उन्हे १० हजार रुपये का इनाम दिया है और डिप्टी-सुपरिण्टेण्डेण्ट-ऑफ-पुलिस वना देने की घोषणा की है।" इसी समय मेरा एक चचेरा भाई भी दौड़ता हुआ आया और उसने भी यही वात कही। अव तो इस वात की सत्यता मे कोई शका नही रही। मैं प्रसन्नता मे डूव-सा गया।

प्रसन्न मुद्रा मे ही जव मैं वाजार की ओर जाने के लिए कमरे से निकला और छात्रावास के वाहर जा रहा था तो मुझे स्कूल की हॉकी टीम का कप्तान मोहनसिह मिल गया। वोला—"भाई मैं तुम्हारे पास ही आ रहा था। आज हमारी टीम सिन्धिया स्कूल की टीम से फाइनल मैच खेलने जा रही है। करीमवख्श को तो परसो पैर मे चोट आ गई थी और वह खेल नही सकेगा। अत आज तुमको खेलना है।" मैंने कहा—"भाई, मैं तो कोई अच्छा खिलाडी नही, किसी और को

चुनते तो अच्छा रहता।" मोहनसिह मेरा व्यग समझ गया,बोला—"भाई, मैं अपनी गलती अनुभव करता हूँ। तुम्हारे साथ अवश्य अन्याय हुआ है लेकिन हमारे स्कूल की प्रतिष्ठा का प्रश्न है। ऐसे समय हमे आपसी मतभेद और झगडे भूल जाना चाहिये। तुमको आज खेलना होगा और वह भी पूरी ताकत से। पिछले चार साल से सिन्धिया स्कूल कप ले जा रही है। इस साल हम उसे न ले जाने देंगे। बोलो आओगे न ?" मुझे 'हाँ' कहना पडा। मुझे याद आ गया कि पहले ग्यारह खिलाडियो मे आने के लिए मैंने कितना प्रयत्न किया, लेकिन खेल के शिक्षक अपने कुछ चापलूसो को हमेशा मौका देते रहे हैं और उन्होने दो साल तक लगातार परिश्रम करने के बाद भी मुझे आगे नही आने दिया। वे जिन लडको को चुन चुके थे वे मुझसे अच्छा तो क्या मेरे बराबर भी नही खेल पाते थे, लेकिन मेरी कौन सुनता था ? कप्तान, मास्टर साहब तथा दो तीन और लडको ने एक दल बना लिया था। वे किसी को आगे आने ही नही देते थे। अचानक अवसर मिल जाने पर मुझे अपना खेल दिखाने का बडा अच्छा मौका मिल गया। मैं प्रसन्न मन से कमरे मे लौट आया और खेल के लिए तैयारी करने लगा।

साढे दस बजते ही मैं स्कूल पहुँचा। ,आज अर्द्ध-वार्षिक-परीक्षा का परीक्षा-फल बताया जाने वाला था। मैं लगातार डेढ वर्ष से कक्षा मे प्रथम आने का प्रयत्न कर रहा था, लेकिन कभी दूसरा आता कभी तीसरा और कभी चौथा। हरीश, नरेश और सोहन मुझे आगे बढने न देते थे। इस बार मैंने खूब तैयारी की थी लेकिन अग्रेजी के दूसरे प्रश्न-पत्र मे अच्छे नम्बर मिल सकने की आशा नही थी। अत. मन मे फिर वही विचार आ रहे थे कि इस बार भी तीसरा-चौथा नम्बर ही रह जायगा। लेकिन जब जाते ही नोटिस-बोर्ड पर परीक्षा-फल देखा तो उछल पड़ा। मैं सर्व-प्रथम आया था और मैंने गणित एव विज्ञान मे विशेष योग्यता प्राप्त की थी। मित्रो ने मुझे घेर लिया और बधाइयो की झड़ी लगा दी। अब यह निश्चित हो गया कि स्कूल के वार्षिकोत्सव मे इस वर्ष के सबसे अच्छे छात्र के रूप मे मुझे ही स्वर्ण-पदक मिलेगा।

स्कूल का समय बडे आनन्द मे बीता । सन्ध्या समय मैच खेलने जाना था । टूर्नामेंट का फाइनल-मैच था । अत अच्छी से अच्छी तैयारी की जा रही थी । आज प्रान्त के राज्यपाल आने वाले थे और उनके हाथ से पुरस्कार वितरण किया जाने वाला था । चारो ओर उत्साह था । मैच साढे चार बजे प्रारम्भ होने वाला था, किन्तु साढे तीन बजे से ही भीड बढती जा रही थी । मैदान के चारो ओर अपार जन-समूह जमा हो गया था । मैदान के बीचो-बीच पश्चिम दिशा मे जिले के कलेक्टर, राज्यपाल, एक मन्त्री और अन्य अतिथि लोग बैठे हुए थे । ठीक साढे चार बजे खेल प्रारम्भ हुआ । कभी सिन्धिया स्कूल की टीम आगे बढती और कभी हमारी । दोनो ओर से शक्ति-भर प्रयत्न हो रहा था । आधा समय पूरा होने आया और किसी भी ओर से गोल नही हो सका । जब केवल पाँच मिनिट ही रह गये तो मैं गेंद लेकर आगे बढा । मैंने विपक्षियो से बचाकर अपने साथी को पास दिया । वह सरलता से गोल कर सकता था लेकिन विपक्ष के बैक ने बाधा दी और जानबूझ कर गेंद रोकने के स्थान पर हमारे खिलाडी के पैर को चोट पहुँचा दी । हमारे खिलाडी उत्तेजित हो गये । दर्शको ने भी हो-हल्ला मचाया । रेफ्री ने पेनेल्टी दी और शाट लगाने का काम कप्तान मोहन सिंह ने अपने ऊपर लिया । पेनल्टी के बाद प्राय गोल निश्चित रूप से हो ही जाता है । लेकिन मोहनसिंह ने कुछ इतनी असावधानी का परिचय दिया कि गोलकीपर ने शाट बचा दिया । कप्तान की असावधानी से एक अच्छा अवसर खो दिया गया । पाँच मिनिट के विश्राम के बाद फिर खेल प्रारम्भ हुआ । खेल प्रारम्भ होने के १० मिनिट बाद ही सिन्धिया स्कूल ने हमारी तरफ एक गोल कर दिया । चारो ओर से हर्ष-ध्वनि हुई । हमारे खिलाडी निराश होने लगे । कप्तान ने हमारे २-३ खिलाडियो को कुछ कडे शब्द कह दिये, जिससे उनका दिल टूट गया । सिंधिया स्कूल का साहस बढ गया । ३-४ मिनिट बाद उन्होंने दूसरा गोल कर दिया । अब तो हमारी बडी बुरी हालत हो रही थी, जीतने की कोई आशा नही रही । मैंने भगवान् का नाम लेकर साहस के साथ आगे बढने का इरादा किया और दो तीन खिलाडियो से

१३ वर्ष की आयु मे ही उनका विवाह कस्तूरबा से हो गया। इस समय वे बडे सकोचशील और लजालू वृत्ति के थे। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा राजकोट मे हुई। वही से उन्होने हाई स्कूल परीक्षा पास की। उस समय वे १७ वर्ष के थे। पिता की मृत्यु हो चुकी थी। बड़े भाई ने यह निश्चय किया कि उन्हे कानून की शिक्षा पास करने के लिए इङ्गलैंड भेजा जाय। लेकिन माँ इसके लिए तैयार नही थी। उनको भय था कि मोहनदास विदेश के स्वच्छन्द एव अधार्मिक वातावरण मे भ्रष्ट हो जायेंगे। मोहनदास ने साहस करके माँ को यह विश्वास दिलाया कि वे ऐसा नही होने देंगे। उन्होने शराब न पीने, मास न खाने तथा पर-स्त्रियो से दूर रहने की शपथ ली और बहुत कष्ट उठाकर भी उसे पूरा किया। कानून की शिक्षा प्राप्त कर सन् १८८८ मे वे भारत लौट आये।

शिक्षा प्राप्त करके लौटने पर उन्हे यह जानकर बहुत बडा आघात लगा कि उनकी स्नेहमयी 'माँ' अब नही रही। वे माँ को बताना चाहते थे कि उन्होने तीनो प्रतिज्ञाओ का पालन किया है। बड़े उदास मन से उन्होने वकालत प्रारम्भ की। दुर्भाग्य से उनके लजालू स्वभाव के कारण वह चल न सकी। इसी समय उन्हे दक्षिणी-अफ्रीका मे कुछ मुकदमों की पैरवी करने का काम मिला और उसे स्वीकार करके वे वहाँ चले गये। वे गये तो थे मुकदमों की पैरवी करने, लेकिन उन दिनो दक्षिण-अफ्रीका मे काले आदमियो के प्रति बडा विद्वेष और घृणा का वातावरण बना हुआ था। वहाँ के गोरे यूरोपियन अपने को श्रेष्ठ समझते थे और काले भारतवासी एव अफ्रीका निवासियो के साथ बडा ही बुरा व्यवहार करते थे। वे उन्हे न तो अपनी गाडियो मे बैठने देते थे, न अपने होटलो मे खाना खाने देते थे। अंग्रेजो के मुहल्लो और सडको तक में काले आदमियो का जाना मना था और उन्हे वहाँ जाते हुए देख लिया जाता था तो मारपीट जैसा दुर्व्यवहार करने मे सकोच न किया जाता था। गांधीजी को यह सहन नही हुआ। यह तो मनुष्यता का अपमान था—जबरदस्त अन्याय और अत्याचार था। गांधीजी ने इसके विरुद्ध अपनी पूरी ताकत लगाई। उन्होने वहाँ रहने वाले भारतवासियो को सगठित करके इस अन्याय का विरोध किया और लगभग २० वर्षों तक वे इसके विरुद्ध लड़ते रहे। यद्यपि

वह अन्याय आज भी वहाँ चल रहा है, तथापि गाँधीजी के प्रयत्नो से गोरे अंग्रेजो को अपना बहुत कुछ रवैया बदलना पडा। गाँधीजी ने जेल जाकर, कष्ट सहन करके और लोगो को यह समझाकर कि यह न्याय नही है—इस दिशा मे बडा महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

दक्षिण-अफ्रीका मे सफलता प्राप्त करके नवीन उत्साह और प्रेरणा के साथ गाँधीजी सन् १९१४ मे भारत लौटे। अपने राजनीतिक गुरु महामना गोपाल कृष्ण गोखले की इच्छानुसार उन्होने एक वर्ष तक सारे देश की स्थिति का अध्ययन किया और देखा कि किस प्रकार भारत की सेवा की जा सकती है। इन्ही दिनो प्रथम महायुद्ध प्रारम्भ हुआ। अंग्रेजो ने भारतवासियो को बड़े सब्ज-बाग दिखाये और कहा कि इस युद्ध मे विजय प्राप्त करते ही भारतवासियो को उनकी इच्छानुसार शासन करने का अधिकार दे देंगे। गाँधीजी ने उनकी बातो पर विश्वास करके महायुद्ध के दिनो मे अंग्रेजो की बडी सहायता की। वे स्वय युद्ध-स्थल मे गये और घायलो की मरहमपट्टी करते रहे, लेकिन जब महायुद्ध समाप्त हुआ तो अंग्रेज एकदम बदल गये। उन्होने अपने छोटे-से-छोटे वायदे को पूरा करने से भी इन्कार कर दिया। गाँधीजी को बडी वेदना हुई। उन्होने निश्चय किया कि अब अंग्रेजो से लडना ही चाहिये। बस सन् १९२१ मे उन्होने असहयोग आन्दोलन का बिगुल बजा दिया।

सन् १९२१ से सन् १९४७ तक का भारतीय आन्दोलन का इतिहास गाधीजी की नीति, कार्य और सघर्ष का ही इतिहास है। इन दिनो सारा राष्ट्र गाँधीजी के इशारो पर खडा होकर अंग्रेजों की जबरदस्त शक्ति से जूझा और उन्हे बता दिया कि वे जनता की इच्छा के विरुद्ध शासन नही कर सकेंगे। अंग्रेजो के पास शक्तिशाली सेना थी। अच्छे से अच्छे शस्त्रास्त्र थें। अपार धन राशि थी और विज्ञान का भी बल था। जबकि भारतवासी निहत्थे, निर्बल और गरीब थे। किन्तु गाँधीजी ने अपने अहिंसा और सत्य के अस्त्र से देश भर मे जैसे नया जीवन फूँक दिया। नवयुवक ही नही—बालक, वृद्ध और स्त्रियाँ तक मैदान मे आ खड़े हुए और गाँधीजी के इशारो पर अपना सब कुछ बलिदान

बचाता हुआ गेंद को आगे ले गया। मैंने पास दिया और सेन्टर-फॉरवार्ड ने उसे खो दिया। एक अच्छा अवसर चला गया। उपस्थित जन-समूह ने सेण्टर-फारवर्ड की बडी भर्त्सना की। मैंने फिर साहस किया और अब की बार मैं अकेला ही उसे विरोधियो से बचाता हुआ ले गया और गोल कर दिया। जन-समूह ने जोर से हर्ष-ध्वनि की। हमारे खिलाडियो मे उत्साह आ गया। फिर तो ४ मिनिट बाद ही मैंने दूसरा गोल कर दिया। अब दोनो पक्ष बराबरी की स्थिति मे आ गये। जन-समूह ने मुझे प्रोत्साहित किया। मैंने पूरी ताकत लगाकर फिर गेद बढाई और खेल समाप्त होने के तीन मिनिट पूर्व एक गोल और कर दिया। अब तो सारा पासा ही पलट गया। खेल समाप्त होने पर राज्यपाल ने मुझे अपने पास बुलाया और शाबासी दी। हमारे हैड-मास्टर साहब ने कहा—"कल इस लडके के पिताजी ने ही राजस्थान के कुख्यात डाकू हजारासिंह को मारा है", तब तो मन्त्री महोदय भी प्रसन्न हो गये और उन्होंने अपने पास बुलाकर मुझे २५ रुपये अपनी ओर से पुरस्कार के रूप मे दिये। अब अपने स्कूल की टीम का पुरस्कार लेने के लिये कप्तान के स्थान पर मुझे ही बुलाया गया और पुरस्कार दिया गया। फिर तो स्कूल के लडको ने मुझे फूल-मालाओ से लाद दिया और जुलूस बनाकर स्कूल तक ले गये। एक ही दिन मे मैं अपने स्कूल ही नही, नगर और प्रात मे प्रसिद्ध हो गया। मुझे प्रान्त के हॉकी के खिलाडियो मे चुन लिया गया और शहर के पत्रकार मेरा चित्र लेने आ पहुँचे। समझ नही पडता था कि इसे मैं भाग्य कहूँ या अपने परिश्रम का फल !

१२—महात्मा गाधी

१—भूमिका
२—जन्म और बाल्यकाल
३—विदेश यात्रा
४—दक्षिण अफ्रीका मे
५—भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन

६—गाधी का सन्देश

७—उपसंहार

तुलसीदासजी ने रामायण मे लिखा है '—

जब जब होय धर्म की हानी, बाढहि असुर महा अभिमानी।
तब तब प्रभु धरि मनुज शरीरा, हरहि कृपानिधि सज्जन पीरा।।

श्रीमद्भगवद् गीता मे भी लगभग यही बात "यदा यदाहि धर्मस्य" कह कर कही गई है। इसका आशय यह है कि जब-जब ससार मे धर्म की हानि होने लगती है और अधर्म बढने लगता है, तब-तब भगवान मनुष्य का शरीर धारण करके सज्जनो की पीर हरते है। पता नही गाधीजी ईश्वर का अवतार थे या साधारण मानव ! लेकिन इतना निश्चित है कि उन्होने अधर्म को मिटाने और धर्म की स्थापना मे अपना पूरा जीवन, अपनी पूरी शक्ति लगा दी थी। वे भगवान् का अवतार हो या न हो यह इतना महत्त्व नही रखता, जितना यह कि उन्होने गीता और रामायण के उपर्युक्त वाक्यो के अनुसार ही कर्म किया।

गाँधीजी का जन्म २ अक्टूबर सन् १८६९ मे काठियावाड प्रदेश के पोरबन्दर नामक स्थान मे एक उच्च घराने मे हुआ था। उस समय कौन जानता था कि यह बालक भारत की चालीस करोड जनता का भाग्य विधाता बनेगा और दुनियाँ के ऐसे महापुरुषो मे गिना जाएगा जो हमेशा के लिए इतिहास मे अमर हो जाते हैं। उनका नाम था मोहनदास। उनके पिता कर्मचन्द गाँधी पोरबन्दर के दीवान थे और माता पुतली बाई बडी धार्मिक प्रवृत्ति की स्त्री थी। बाल्यावस्था मे गाँधीजी मे ऐसी कोई बात नही लगती थी जिससे यह प्रकट हो सके कि वह आगे महापुरुष बनेंगे। न तो पढने-लिखने मे वे बहुत आगे रहते थे, न खेलने-कूदने मे। चोरी, माँस खाने जैसी बडी-बडी भूलें भी उनसे हो गई थी। लेकिन एक बात उनमे विशेष थी—सद्प्रवृत्ति। उन्होने भूलें अवश्य की लेकिन उस चिनगारी को भयङ्कर रूप ग्रहण न करने दिया। एक बार भूल करके उसी क्षण उसके लिए गहरा पश्चाताप किया और आगे उसे न होने देने का दृढ निश्चय किया।

करते रहे। गाँधीजी का अस्त्र था असहयोग। उन्होने भारतवासियो से कहा कि अग्रेजो के अन्याय और अत्याचार की गाडी आपके ही सहयोग से चल रही है। आप लोग ही बैलो की तरह उसमे जुत कर उसे चला रहे है। यदि आप अपना सहयोग बन्द कर देते हैं तो उसका चलना असम्भव हो जाएगा। लोगो ने गाँधीजी की वात मानी और विदेशी चीजो का वहिष्कार किया। सरकारी नौकरी, सरकारी स्कूल, कॉलेज तथा सरकारी अदालतो से अपना सम्वन्ध तोडा और रचनात्मक कार्यों के द्वारा देश का नया निर्माण प्रारम्भ किया। भारत की आजादी की लडाई मे अनेक ज्वार-भाटे आये। असहयोग आन्दोलन तेजी से छिडा और बन्द हुआ, हजारो लोग जेल गये और मुक्त हुए, कांग्रेस ने प्रान्तो की बागडोर सम्हाली और अग्रेजो को त्यागपत्र दिया, सैकडो नवयुवको ने अपना सर्वस्व बलिदान किया और हजारो-लाखो लोगो ने जीवन-भर देश का कार्य करने की प्रतिज्ञा ली। तब कही सन् १९४७ मे अग्रेज गये। यह सव लाखो-करोडो देशवासियो के सहयोग और वलिदान से हुआ। किन्तु गाँधीजी सबकी प्रेरणा के स्रोत थे—सवके मार्ग-दर्शक और अग्रणी थे। इसीलिए हम उन्हे राष्ट्र-पिता कहते हैं।

गाँधीजी एक व्यक्ति तो थे लेकिन इससे भी अधिक वे कुछ आदर्शों और सिद्धातो के प्रतीक थे। वे उन्ही आदर्शों के लिये जिये और उन्ही के लिये मरे। ये आदर्श थे सत्य, अहिंसा, त्याग और बलिदान। उनका सारा जीवन सत्य एव अहिंसा के प्रकाश से जगमग था। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे उन्होने सत्य और अहिंसा के प्रयोग किये और दुनियाँ को दिखा दिया कि हिंसा, असत्याचरण, प्रतिद्वन्द्विता और केन्द्रीयकरण दुनियाँ को विनाश की ओर ही ले जायेंगे। चाहे राजनीति हो, चाहे अर्थनीति और चाहे समाजनीति हो, चाहे धर्मनीति—सब ओर सत्य और अहिंसा का प्रकाश लेकर जाइये आप कभी पथ-भ्रष्ट या गुमराह नही हो सकेंगे। उन्होंने दुश्मन से भी प्रेम करने की बात कही और कहा कि उसके शरीर को जीतने के बजाय मन को जीतिये। फिर उसमे आपका भी कल्याण होगा और उसका भी। उन्होने खादी-ग्रामोद्योग, हरिजन-सेवा, सर्व-धर्म-समभाव, आर्थिक-क्षमता, गौ-सेवा, कुष्ट-सेवा, विद्यार्थी-सगठन आदि

उनका पालन किया और एक आयरलैंड-निवासी शिक्षक की देख-रेख मे उनकी शिक्षा का श्रीगणेश हुआ। पन्द्रह वर्ष की अवस्था मे वे अपने पिताजी के साथ इङ्गलैंड गये और वहाँ हेरो के प्रसिद्ध स्कूल मे भर्ती हुए। इसके बाद वे केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के ट्रेनिग कॉलेज मे भर्ती हुए और वही से उन्होने विज्ञान मे आनर्स की डिग्री प्राप्त की। अब उन्होने कानून का अध्ययन प्रारम्भ किया और वेरिस्ट्री पास करके भारत आगये।

अपने पिता की इच्छानुसार अब आपने वकालत प्रारम्भ की लेकिन वकालत के काम मे उनकी रुचि नही थी। देश की राजनीतिक स्थिति से प्रभावित होकर वे श्रीमती एनीवेसेण्ट और गोपालकृष्ण गोखले द्वारा सचालित होमरूल आन्दोलन की ओर आकर्षित हुए। सन् १९१४ मे पहला महायुद्ध प्रारम्भ हुआ और लोकमान्य तिलक जेल से मुक्त हुए। नेहरूजी राजनीतिक क्षेत्र मे कूद पडे। सन् १९१६ मे लखनऊ कांग्रेस के समय गांधीजी से उनकी भेंट हुई। गाँधीजी दक्षिण-अफ्रीका मे प्रवासी भारतीयो के आन्दोलन का सचालन सफलतापूर्वक कर कुछ दिनो पहले ही आकर भारतीय राजनीति मे भी अपना महत्त्व-पूर्ण स्थान बना रहे थे। वे गाँधीजी से प्रभावित होकर उनके अनुयायी बन गये। इसके बाद तो वे जीवन-भर गाँधीजी आदर्शों के अनुसार कार्य करते रहे। वे अनेक बार जेल गये और उन्होने और भी कई कष्ट सहन किये, लेकिन एक अच्छे सैनिक की तरह एक भी कदम पीछे हटाये बिना वे निरन्तर आजादी की लडाई मे जुटे रहे।

सन् १९१८ मे वे होमरूल लीग के मन्त्री बनाये गये। सन् १९२२ मे इस आन्दोलन के सिलसिले मे वे पहली बार जेल गये। पण्डितजी की देशभक्ति उच्च-कोटि की थी। उन्होने सदैव देशहित को सब से ऊँचा स्थान दिया। पहले असहयोग-आन्दोलन के समय जब कौंसिल-प्रवेश के प्रश्न को लेकर देश मे दो दल हो गये, तो नेहरूजी ने एकता कराने के लिये शक्ति भर प्रयत्न किया। उनका सारा जीवन ही एक देशभक्त और तपस्वी व्यक्ति का जीवन

था। उनके जीवन का इतिहास राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास-सा बन गया था। उन्होंने जीवन का एक-एक क्षण देशहित के कार्यों मे ही व्यतीत किया। एक ओर जहाँ वे कांग्रेस और राष्ट्रीय आन्दोलन के कार्य मे निरन्तर जुटे रहे वहाँ दूसरी ओर वे समय-समय पर इलाहाबाद तथा अन्य स्थानो के ग्रामो मे जाकर ग्रामीणो के बीच रहे और उनकी ही तरह रूखा-सूखा खाकर उन्हे देशभक्ति का पाठ पढाते रहे। नेहरूजी दीन-हीन, पीडित और पददलित लोगो के मसीहा थे। वे उनके लिये सदैव लडते रहे। वे इस बात का भेद नही करते थे कि ऐसे लोग देश के है या विदेश के, हिन्दू हैं या मुसलमान अथवा गोरे हैं या काले। यही कारण है कि देश-विदेश की पीडित, पददलित जनता उनको अपना हृदय-सम्राट् मानती रही। वे ही नही, उनका सारा परिवार इस प्रकार के त्याग और बलिदान से ओत-प्रोत था। उनकी पत्नी कमला नेहरू और उनके पिता मोतीलाल नेहरू कष्टमय जीवन से सदा दूर रहते थे लेकिन नेहरूजी के कारण उन्होंने बड़े-बड़े कष्ट उठाये और देश के लिये बलिदान हो गये। उनकी बहिन विजयलक्ष्मी पण्डित तो आधुनिक काल के स्त्री-रत्नो मे गिनी जाती हैं और उनकी पुत्री इन्दिरा गाँधी तो आजकल हमारी प्रधानमन्त्री हैं। स्वतन्त्रता-सग्राम मे पूरी शक्ति से जुट जाने वाला नेहरू-परिवार अपने इन गुणो के कारण भारत की जनता को प्राणो से भी ज्यादा प्यारा है।

नेहरूजी की राष्ट्रीय सेवायें हमारे इतिहास मे सदैव अमर रहेगी। राजनीतिक कार्यों मे सलग्न रहते हुए भी वे इलाहाबाद नगरपालिका के चेयरमैन बने और बडे ही सुचारू रूप से उसका सचालन किया। कांग्रेस के सभापति तो वे अनेक बार रहे। लाहौर कांग्रेस मे सन् १९२९ में रावी नदी के किनारे उन्ही के सभापतित्व मे आधी रात के समय देशभक्तो ने सबसे पहले स्वतन्त्रता प्राप्ति का लक्ष्य घोषित किया और उसके लिये प्रतिज्ञा ली। कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य तो वे एक लम्बे अर्से तक रहे। वे गाँधीजी के निकटतम साथियो और शिष्यो मे रहे तथा आजादी की लड़ाई मे हमेशा एक अच्छे सेनापति की भाँति आगे रहे। जब सन् १९४७ मे देश स्वतन्त्र हो गया तो पहले प्रधान-

मन्त्री बनाये गये। पहले जहाँ वे विदेशी-शासन से देश को मुक्त कराने में अपनी पूरी ताकत लगा रहे थे वहाँ स्वतन्त्रता के वाद वे उसके निर्माण और समृद्धि के कार्यों मे जुट गये।

सन् १९४७ मे जब नेहरूजी प्रधानमन्त्री वने, देश की हालत बहुत बुरी थी। चारो ओर हिन्दू-मुस्लिम दगे हो रहे थे, लोग एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने के लिये वाध्य हो रहे थे और बडी ही अस्थिरता फैली हुई थी। बडा ही कठिन समय था। नेहरूजी ने इस परिस्थिति का सामना कुशलता से किया। धीरे-धीरे देश मे शान्ति स्थापना करके उन्होने शरणार्थियो के पुनर्वास तथा अन्न-समस्या को हल कर लिया। इन्ही दिनो गाधीजी की मृत्यु हुई। देश की विषम स्थिति अपनी चरम-सीमा पर पहुँचती हुई प्रतीत हुई। लेकिन नेहरूजी ने उसे भी सभाला। इस अवसर पर उन्होने जिस आत्म-सयम, धैर्य और साहस का परिचय दिया वह अद्वितीय है। उनके ही नेतृत्व मे देश के नव-निर्माण का कार्य नाना क्षेत्रो मे बडी तेजी के साथ आरम्भ हुआ। वे भ्रष्टाचार समाप्त करने, देश की आर्थिक-स्थिति मजबूत बनाने तथा देश को सुखी, महान् और उन्नत वनाने के कार्य मे तन-मन से जुटे। अपने प्रधान मन्त्रित्व काल मे उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे भारत का स्थान वनाया और दुनियाँ के लोगो का आदर और स्नेह प्राप्त किया। अपने उदार दृष्टिकोण के कारण उन्होंने एक ऐसी विदेश-नीति अपनाई जिसके कारण भारत का गौरव वढा। उन्होने सयुक्तराष्ट्रसघ की प्रवृत्तियो को प्रोत्साहित किया और अमेरिका तथा रूस के बीच चले आ रहे शीतयुद्ध को कम करने मे महत्त्वपूर्ण योग दिया। कोरिया, इण्डोनेशिया तथा स्वेज-नहर के प्रश्न पर उन्होंने जो दृष्टिकोण अपनाया उससे भारत की प्रतिष्ठा वढने के साथ-साथ दुनियाँ मे शान्ति भी वढी। पचशील को जन्म देकर तथा उसका प्रचार करके तो वे एशिया ही नही, दुनियाँ के महापुरुष वन गये।

नेहरूजी कोई वडे कूटनीतिज्ञ नही थे। उनकी सफलता का मुख्य कारण यही था कि वे एक सच्चे देशभक्त थे, उदार दृष्टिकोण के व्यक्ति थे तथा सत्य और अहिंसा के राजमार्ग पर चलते थे। वे गाँधीजी के पक्के शिष्य थे और उन्ही के आदेशो के अनुसार

जीवन भर चलते रहे। गोआ के प्रश्न पर गोआ-सरकार के अनेक अत्याचारो के बावजूद भी शान्त रहना उनकी इसी नीति का परिणाम था। इसी से गोआ बिना रक्त-पात के भारत मे शामिल कर लिया गया। उनके कार्य और विचारो मे बडा सुन्दर मेल था। वे जो बोलते थे वही करते थे और जो कर सकते थे वही बोलते थे। डर और कुटिलता तो जैसे उन्हे छू तक नही गये थे। जीवन के अन्तिम क्षण तक वे उतने ही परिश्रमी, उत्साही और तत्पर रहे जितने युवक। इसके अतिरिक्त वे एक अच्छे वक्ता और लेखक भी थे। बाल-गोपालो और प्रकृति के प्रति उनका प्रेम अगाध था।

इन सब विशेषताओ के साथ-साथ एक मानव होने के कारण उनमे कुछ कमजोरियाँ भी थी। वे छोटी-छोटी बातो पर बिगड उठते थे और विरोध सहन नही कर पाते थे। फिर भी वे डिक्टेटर या सर्वेसर्वा नही थे। वे सच्चे जनतन्त्रवादी थे। देश का नव-निर्माण उनकी बहुत बडी महत्वाकाँक्षा थी। कौन नही जानता कि वे देश के लिये वरदान थे।

इस युग मे इस महान्-विभूति का व्यक्तित्व इतना विराट् हो चला था कि 'जवाहर' भारत और भारत 'जवाहर' हो गया था। 'जवाहर' के बिना भारत की कल्पना ही नही की जा सकती थी ···वही विभूति सन् १९६४, मई की सत्ताइसवी तारीख को हमारी धरती से लुप्त हो गई। समस्त राष्ट्र शोक-सागर मे डूब गया। यह विधाता का देश पर बडा क्रूर आघात था। पराधीन भारत के स्वतन्त्रता-सग्राम और स्वतत्र भारत के निर्माण-काल के प्रथम-चरण का इतिहास समाप्त हो गया। करोड-करोड जनता की अश्रु धारा और गुलाब-वर्षा के बीच देश के प्रिय नेता जवाहर का राज-घाट पर गाँधीजी की समाधि से कुछ ही दूर दाह-सस्कार सम्पन्न हुआ और वह अग्नि-शिखा सदा-सदा के लिए ब्रह्माण्ड मे विलीन हो गई।

वे सच्चे अर्थो मे हमारे नेता थे। उनकी एक झलक, एक शब्द, एक इशारे पर भारत की जनता झूम उठती थी। आज उनकी स्मृति ही शेष है। अत. उनकी याद मे हम इससे बढकर और कोई श्रद्धाँजलि अर्पित नही कर सकते कि उनके स्वप्नो को साकार करने के लिए अपने को समर्पित कर दें।

१४—महात्मा सूरदास

१—जीवन वृत्त ।
२—रचनाएँ और शैली ।
३—सूर और वात्सल्य ।
४—सूर का शृङ्गार वर्णन ।
५—सूर की भाषा ।
६—उपसहार ।

सूरदास जैसे महात्मा को जन्म देने का श्रेय ब्रज-भूमि को है। उनका जन्म स्थान सीही नामक एक ग्राम है जो आगरा-मथुरा-रोड पर स्थित है। दुःख की बात है कि उनके जन्म स्थान से लेकर माता-पिता, जाति, परिवार आदि तक के बारे मे बहुत-सी बाते अब तक विवादास्पद बनी हुई है। बात यह है कि महात्मा सूरदास ने अपने बारे मे कही कुछ नही लिखा। दूसरो ने भी उनके बारे मे बहुत कम लिखा और जो कुछ लिखा वह विवाद का ही विषय बना हुआ है। अत उनका सही जीवन-चरित्र लिखना बडा कठिन है। इधर-उधर से प्राप्त जानकारी के आधार पर बहुत से लोगो की यह मान्यता बन गई है कि उनका जन्म सवत् १५४० मे हुआ था। वे सारस्वत ब्राह्मण थे। कहा जाता है कि वे गऊघाट पर रहा करते थे। वही महाप्रभु वल्लभाचार्यजी से उनकी भेंट हुई। सूरदासजी ने उन्हे स्वरचित विनय के पद सुनाये जिन्हे आचार्यजी ने पसन्द किया और अपने मत की दीक्षा दे दी।

सूरदासजी के प्रामाणिक जीवन-चरित्र के अभाव मे उनके सम्बन्ध मे अनेक किवदन्तियाँ प्रचलित हैं। कुछ लोग उन्हे जन्मान्ध मानते हैं और कोई कहते है कि वे बाद मे अन्धे हुए थे। उनके काव्य का अध्ययन यह बताता है कि जो कुछ उन्होंने लिखा है वह अन्धे आदमी का कार्य नही हो सकता। उन्होंने प्रकृति के नाना रूपो का जो स्वाभाविक, सजीव और विशद वर्णन किया है, वह किसी भी जन्मान्ध व्यक्ति का कार्य नही हो सकता। महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने अष्ट-छाप की स्थापना की थी। इस अष्ट-छाप मे उस समय के बड़े-बडे आठ कवि थे। सूरदासजी इन आठ कवियों मे सबसे प्रथम थे। उनके पद

शीघ्र ही चारो ओर प्रसिद्ध हो गये और लोग ऐसा मानने लग गये थे कि वे उद्धव के अवतार हैं।

कहा जाता है कि सूरदासजी ने सवा लाख पदो की रचना की थी। किन्तु दुर्भाग्य से अब उनमे से केवल दस हजार पद ही उपलब्ध हैं। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी की खोज के अनुसार उनके १६ ग्रन्थ हैं जिनमे सूरसागर, सूरसारावली और साहित्य-लहरी आदि प्रमुख है। उनका एक-एक पद सगीत, साहित्य और भक्तिभावना के रस से लबालब है। उन्होने सस्कृत के प्रसिद्ध कवि जयदेव और मैथिलि-कवि विद्यापति की शैली का अनुकरण कर गीति-काव्य की रचना की है। वे स्वय एक अच्छे गायक थे, अत उनके पद राग-रागनियो से भरे हुए है। सूरदासजी इन्हे गाते-गाते तन्मय हो जाते थे। आज भी उनके पद जगह-जगह गाये जाते हैं और भक्तो को तन्मय बना देने की जबरदस्त शक्ति उनमे निहित है।

सूर बडे रससिद्ध कवि थे। उन्होंने केवल शृङ्गार और वातसल्य को ही अपने काव्य मे स्थान दिया है किन्तु इन क्षेत्रो मे वे अपना सानी नही रखते। अपनी पैनी दृष्टि से उन्होने बाल्यकाल और यौवन का कोना-कोना देख लिया था। अत कृष्ण के बाल्यकाल और युवावस्था के सम्बन्ध मे उन्होने कोई बात बाकी नही छोड़ी। उन्होने कृष्ण का जन्म, पालने मे झूलना, बाल-क्रीडा करना, माता-पिता का हर्षित होना, लोरियो के साथ सोना, साथियो के साथ लडना-झगडना, खेलना, कूदना, मचलना, बहाने बनाना आदि अनेक बाल-क्रीडाओ का सुन्दर, आकर्षक और विषद वर्णन किया है। इसके साथ-साथ माता-पिता के हृदय मे और विशेषकर माँ के हृदय मे बालक के प्रति जो स्नेह, औत्सुक्य, उत्साह, क्षोम, चिन्ता, मोह आदि पैदा होते हैं, उनका चित्रण भी गजब का किया है। सूरदासजी का सूरसागर मानो इन सुन्दर चित्रो की एक बहुत बडी नुमाइश ही है। उनकी बाल-लीला के तीन चार चित्र देखिये.—

(क) मैया हौं न चरै हो गाय।
सिगरे ग्वाल घिरावत मौसो मेरी पाय पिराय॥

(ख) मैया मेरी मैं नही माखन खायो ।
भोर भयो गैयन के पीछे मधुवन मोहि पठायो ॥

(ग) चन्द्र खिलौना लै हो, मैया मेरी, चन्द्र खिलौना लै हो ।
घोरी को पय पान न करिहौं, वैनी सिर न गुथै हो ॥

(घ) सिखवत चलन जसोदा मैया ।
अरबराय करि पानि गहावत डगमगाय धरे पैया ॥

शृङ्गार के दो पक्ष हैं—सयोग शृङ्गार और विप्रलम्भ शृङ्गार । सूरदासजी ने दोनो ही पक्षो पर खूब कौशल के साथ लिखा है । उनका शृङ्गार वर्णन अन्य कवियो की अपेक्षा बहुत सुन्दर है । आचार्य रामचद्र शुक्ल के शब्दो मे शृङ्गार का रस-राजत्व यदि किसी ने दिखाया है तो सूरदास ने । उनका शृङ्गार-वर्णन सरसता, स्वाभाविकता और मनोहरता से ओत-प्रोत है । एक लम्बे साहचर्य और सौंदर्य से कृष्ण के मन मे गोपियो और राधा के प्रति सहज ही स्नेह हो जाता है । एक बार उन्होने यमुना के तीर पर एक नील-वस्त्र समावृता बालिका को देखा । नैन से नैन मिले और कृष्ण उसे देखते ही रीझ गये । "सूर श्याम देखते ही रीझे नैन नैन मिलि परि ठगौरी ।" इस ठगौरी मे न कही झिझक थी; न सकोच । श्याम ने उससे परिचय पूछा—'क्योजी तुम कौन हो ? किसकी लडकी हो ? तुम्हे तो कभी ब्रज की गलियो मे खेलते ही नही देखा ।' राधिका बोली—'हम ब्रज की गलियो मे खेलने क्यो आवें ? हम तो अपनी ही पौर मे खेलती रहती है । सुना है नन्द का ढोठा बडा चोर है किसी का दही चुरा लेता है तो किसी का मक्खन ले भागता है ।' श्याम ने हँसते हुए कहा—'भला मैं तुम्हारा क्या ले भागूँगा ? चलो न खेलने चलें । तुम्हारी हमारी जोडी अच्छी रहेगी ।' बस रसिक-शिरोमणि श्याम की बातो मे राधा भूल-सी गई । उसे पता ही नही रहा कि बातो ही बातो मे इस अजीब चोर ने उसका हृदय ही चुरा लिया है । यह है प्रेम का भोला-भाला और स्वाभाविक श्रीगणेश । राधा के साथ गोपियो से भी कृष्ण की प्रणय-लीला चलती है । रास, कुंजलीला, दानलीला, मानलीला, पनघटलीला, हिंडोला, होली, वसन्त आदि सयोग शृङ्गार के अनेक प्रसङ्गो द्वारा सूर ने प्रेममय जीवन का हृदयहारी चित्र खीचा है ।

सयोग शृङ्गार की भाँति सूर का वियोग वर्णन भी बडा करुण, मर्मस्पर्शी और हृदय-विदारक है। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर सारा वातावरण वियोगमय हो जाता है। सभी गोपियाँ कहती है—श्रीकृष्ण के बिछुडते ही हमारा हृदय फट क्यो नही गया ? सयोग मे उन्हे जो वस्तुएँ आनन्ददायक प्रतीत होती थी, अब वियोग मे वे ही दाहक बन गई। वृन्दावन के हरे-हरे कु ज, यमुना का मनोहर तट, मधुबन की लताएँ और पुष्प सब कुछ उन्हे दु ख देने वाले बन गये। रात सर्पिणी-सी लगती है और दिन भयानक। इधर उद्धव निर्गु ण-भक्ति का सन्देश लेकर श्रीकृष्ण के पास से आते हैं। गोपियाँ उनकी बात बडे ध्यान से सुनती है और ऐसी फबतियाँ कसती है कि ऊधो को लेने के देने पड़ जाते है। उनकी कुछ उक्तियाँ देखिये.—

(क) आयो घोष बडो व्यापारी।
लादि खेप यह ज्ञान जोग की ब्रज मे आनि उतारी।

(ख) बिन गोपाल बैरिन भई कु जे।
तब ये लता लगति अति शीतल, अब भई विषम ज्वाल की पु जे।

(ग) निर्गु न कौन देश को वासी ?
मधुकर, हँसि समझाय, सौह दे, बूझत बात न हाँसी।

सूरदासजी की भाषा शुद्ध ग्रामीण ब्रजभाषा है किन्तु वह साहित्यिकता लिए हुए है। उस पर सस्कृत का अधिक प्रभाव नही है। सूरदासजी ने अपने पदो मे कही-कही अन्य प्रचलित भाषाओ के शब्दो का भी प्रयोग किया है, किन्तु बहुत कम। उनकी भाषा मे कही-कही अरबी, फारसी और सस्कृत भाषा के शब्द भी मिल जाते हैं। वह ओज, प्रसाद और माधुर्य गुण से पूर्ण है। मुहावरो के सामयिक प्रयोग से तो जैसे उनकी भाषा मे जबरदस्त शक्ति और प्रवाह आ गया है। वह सरस, सजीव और प्रवाह-पूर्ण है। उन्होंने जबरदस्ती अलङ्कार ठूँसने का प्रयत्न कही भी नही किया। अलङ्कार स्वाभाविक रूप से उनके पदो मे आये हैं।

और उन्होने सुन्दरता बढाई है। अलङ्कारो मे उपमा और रूपक का प्रयोग उन्होने विशेष रूप से किया है। वे जनता के कवि थे, अत· उनकी भाषा भी जनता की ही भाषा थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूरदासजी मानव-हृदय की सरल, सरस और कोमल भावनाओ के कवि हैं। वे अपने क्षेत्र के सर्वोत्कृष्ट कवि है। उनकी इस महान् सफलता को देखकर ही किसी ने लिखा है—

सूर सूर तुलसी ससी, उडगन केशोदास।
अब के कवि खद्योत सम, जहँ तहँ करत प्रकाश ॥

१५—गोस्वामी तुलसीदास

१—तत्कालीन सामाजिक दशा
२—जीवन वृत्त
३—रचनाएँ
४—भाषा, शैली और अलकार-योजना
५—लोकप्रियता
६—उपसहार

जिस समय गोस्वामी तुलसीदासजी का जन्म हुआ उस समय भारत पर मुसलमानो का आधिपत्य जम चुका था। हिन्दुओ के मन मे 'हार की मनोवृत्ति' घर कर चुकी थी। न आत्म-गौरव बचा था, न आत्माभिमान। विजयाभिमानी मुसलमान हिन्दुओ के साथ बुरा व्यवहार करते थे—उन्हे अपमानित और लज्जित करते थे और दीन-हीन बने हुए हिन्दू कडवी घूँट पीकर रह जाते थे। हिन्दुओ का जीवन निराशामय बन गया था। न जीवन मे कोई आनन्द था, न आशा। तुलसीदास ने इस स्थिति को देखा। उन्होने हिन्दुओ के भग्न होते हुए हृदय को सम्भाला और उन्हे दुष्टो का सहार करने वाले भगवान् राम की झाँकी दिखाकर आश्वस्त किया। उनके जीवन मे फिर से नवीन आशा, नवीन विश्वास, नवीन आनन्द और नवीन माधुर्य का सचार किया। इतना ही नही, उन्होने हिन्दी-साहित्य को प्रौढता की चरम-सीमा पर पहुँचा कर उसे अपनी अलौकिक प्रतिभा से दैदीप्यमान बना दिया।

तुलसीदासजी का जन्म स० १५५४ वि० मे श्रावण शुक्ला सप्तमी को बाँदा जिले के राजापुर ग्राम मे हुआ। उनके पिता का नाम आत्माराम और माता का नाम हुलसी था। वे सरयूपारीण ब्राह्मण थे। उनके जन्म का नाम रामबोला था। अभुक्त-मूल-नक्षत्र मे पैदा होने के कारण माता-पिता ने उन्हे त्याग दिया और बाल्यावस्था मे ही उन्हे द्वार-द्वार भटकना पड़ा। उनकी बाल्यावस्था दरिद्रता मे बीती। उन्होंने गुरु नरहरिदास से राम की कथा सुनी और वेद-शास्त्रो का अध्ययन किया।

कहते हैं कि भारद्वाज गोत्र के एक ब्राह्मण की कन्या रत्नावली से गोस्वामी तुलसीदासजी का विवाह हुआ था। वे अपनी पत्नी पर बडे अनुरक्त थे। एक बार तुलसीदासजी की अनुपस्थिति मे वह बिना कुछ कहे सुने अपने पीहर चली गई। तुलसीदासजी जब घर लौटे तो उसे न पाकर बडे बेचैन हुए और रातो-रात उसके ग्राम पहुँचे। पत्नी को उनकी यह आसक्ति बहुत बुरी लगी और उसने कहा—

"अस्थि चर्ममय देह मम, यासो जैसी प्रीति।
तैसी जो श्री राम महँ, होति न तो भव भीति॥"

यह बात तुलसीदासजी को इतनी चुभी कि उनके जीवन की दिशा ही बदल गई। उनके मन मे ससार के प्रति जबरदस्त वैराग्य और भगवान् राम के प्रति अपूर्व भक्ति का उदय हुआ। वे सन्यासी हो गये और काशी मे रहने लगे। वहाँ से वे अयोध्या गये और कुछ दिन वहाँ रहकर जगन्नाथपुरी, रामेश्वरम्, द्वारका होते हुए बद्रिकाश्रम पहुँचे। इसके बाद वे चित्रकूट गये और वहाँ कुछ समय तक रहे। कहते हैं कि स० १६१६ मे सूरदासजी उनसे मिले थे और उन्होने गीतावली तथा कृष्ण-गीतावली की रचना की थी। स० १६३१ मे उन्होंने अपनी प्रसिद्ध रचना राम-चरित-मानस को प्रारम्भ किया और दो वर्ष सात माह मे उसे पूरा कर दिया।

तुलसीदासजी ने अनेक ग्रन्थो का निर्माण किया। उनके प्रमुख ग्रन्थ हैं—रामचरित-मानस, विनय-पत्रिका, कवितावली, दोहावली, गीतावली, रामललानहछू, बरवै-रामायण, पार्वती-मगल, जानकी-मगल, वैराग्य-सन्दीपनी, रामाज्ञाप्रश्न आदि। रामचरित-मानस और विनय-पत्रिका तुलसीदासजी के

उच्च कोटि के ग्रन्थ हैं। रामचरित-मानस मे उन्होने हिन्दू-धर्म का सच्चा स्वरूप व्यक्त किया है। यह एक अलौकिक पुरुष की अलौकिक कृति है। इस पुस्तक मे सम्पूर्ण जीवन का चरित्र अकित है। भाई का भाई के साथ, माता का पुत्र के साथ, पुत्र का माता के साथ, पिता का पुत्र के साथ, पुत्र का पिता के साथ, राजा का प्रजा के साथ, प्रजा का राजा के साथ, गुरु का शिष्य के साथ और शिष्य का गुरु के साथ किस प्रकार का सम्बन्ध होना चाहिये इसकी एक बडी ही मनोरम और आदर्श झाँकी रामचरित-मानस मे मिलती है। भारतीय सस्कृति के सभी गुणो से समन्वित, सभी शास्त्र और पुराण सम्मत यह ग्रन्थ हिन्दी-भाषा-भाषी जनता का कण्ठहार ही बन गया है। विनय-पत्रिका भक्ति का एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। भक्ति-रस का जैसा पूर्ण परिपाक विनय-पत्रिका मे देखा जाता है वैसा अन्यत्र नही। यह तुलसीदासजी की पवित्र अनुभूतियो, आध्यात्मिक विचारो और भक्ति-भावना का भण्डार-सा ही है। इसमे भक्त का दैन्य और भगवान् की महानता की ऐसी पुनीत भागीरथी बही है कि कोई भी पाठक उस धारा मे बहे बिना नही रहता। गीतावली मे राम के जीवन के कोमल, सुन्दर और मधुर भाग का वर्णन है, कवितावली मे उनके शौर्य और वीरता का। कवितावली मे लका-दहन और राम-रावण-युद्ध का बडा ही सजीव वर्णन हुआ है। इधर दोहावली मे चातक की अनन्यता कमाल की है। दोहावली मे भक्त और भगवान् के अनन्य सम्बन्ध की बड़ी ही विशद व्याख्या मिलती है।

तुलसीदासजी की भाषा अवधी थी। इस समय सूफी कवि जायसी ने अवधी भाषा मे ही पद्मावत नामक ग्रन्थ की रचना की थी, किन्तु पद्मावत मे अवधी का ग्रामीण स्वरूप आ सका था। गोस्वामी तुलसीदासजी सस्कृत भाषा के पण्डित और शास्त्रवेत्ता थे। अत उनकी भाषा ठेठ अवधी होते हुए भी कही-कही पर सस्कृत मिश्रित बन गई है। उनके रामचरित-मानस मे अवधी भाषा का बडा ही परिमार्जित और साहित्यिक रूप दिखाई देता है। सस्कृत की कोमल-कात पदावली का समावेश करके उन्होने अवधी मे अपूर्व माधुर्य का सचार कर दिया है। तुलसीदासजी का जितना अधिकार अवधी-भाषा पर था उतना ही व्रजभाषा

पर भी था । उन्होने कवितावली, गीतावली और विनय-पत्रिका की रचना ब्रजभापा मे की है । उनकी ब्रजभाषा भी बडी परिष्कृत और लालित्यपूर्ण है । भाषा उनके भावो की अनुगामिनी है । भावो के अनुसार वह कर्कश और मधुर बन गई है ।

तुलसीदासजी के ग्रन्थो मे उस समय की सभी प्रचलित शैलियो के दर्शन होते हैं । रामचरित-मानस की रचना जायसी की दोहा-चौपाई वाली शैली मे हुई है, तो दोहावली की कबीरदासजी की दोहा-पद्धति मे । गीतावली और विनयपत्रिका की रचना विद्यापति की पदावली शैली मे हुई है तो कवितावली की रचना गग आदि भाटो की कविता शैली मे । शैली के अनुरूप छन्दो का प्रयोग भी उन्होंने अपनी रचनाओ मे किया है । रामचरित-मानस दोहे-चौपाई मे लिखी है, तो गीतावली दोहे मे । कवितावली कवित्त-सवैये मे लिखी है, तो गीतावली पदो मे, जैसे सभी प्रकार के छन्दो, शैलियो और उस समय की सभी काव्य भाषाओ पर तुलसीदासजी का समान अधिकार हो ।

उनकी रचनाओ मे अलकारो का समावेश भी बडे स्वाभाविक रूप मे हुआ है । केशवदासजी की तरह उन्होने अलकारो का प्रयोग पाडित्य-प्रदर्शन के लिये नही किया है । उनकी रचनाओ मे सर्वत्र अर्थालकारो के साथ-साथ शब्दालकारो का प्रयोग भी बड़े सुन्दर रूप मे मिलता है । यमक, श्लेष उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, अतिशयोक्ति, असगति, उल्लेख आदि सभी अलकारो का प्रयोग उनकी रचनाओ मे मिलता है । उनकी रचनाएँ उपमा मे तो अपना सानी नही रखती ।

तुलसीदासजी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं । उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी । उनको जितनी लोकप्रियता और आदर प्राप्त हुआ उतना किसी भी हिन्दी-कवि को नही हुआ । जो व्यक्ति कविता के गुण-दोषो का विवेचन करना नही जानता वह भी तुलसीदासजी की भावना पर मुग्ध होता है । तुलसीदासजी की भक्ति मे हिन्दू-धर्म के सब पक्षो का सामजस्य हुआ है । उन्होने शैवो, वैष्णवो व भक्तो के झगडे समाप्त करके सारी हिन्दू-जाति को एकता के सूत्र मे बाँधा । विनय-पत्रिका मे उन्होंने शिवजी, गणेशजी, भैरवजी, देवीजी, सूर्य भगवान्, हनुमानजी आदि

सभी देवी-देवताओ की वन्दना की है। अत हिन्दू-समाज के सभी अंगो ने उनका आदर किया है। तुलसीदासजी ने समाज मे नई चेतना पैदा की। उन्होने वर्णाश्रम धर्म की प्रतिष्ठा की, वेद-शास्त्र का महत्त्व जनसाधारण के सामने रखा और धर्म के वास्तविक स्वरूप को प्रकट किया। उन्होने दुष्ट-दलनकारी भगवान् का मगलमय रूप जनता को दिखाकर उसमे नवीन जीवन का सचार किया।

गोस्वामी तुलसीदासजी की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। वे दार्शनिक थे, कवि थे, समाज-सुधारक थे, विचारक थे, नीतिज्ञ थे। किन्तु इन सबसे अधिक वे एक भक्त थे। उनकी भक्ति-भावना इतनी प्रबल थी कि वही उनके जीवन और ग्रन्थो मे उसी प्रकार समाई हुई है जैसे शरीर मे प्राण। उन्होने समाज और देश के विरोधी तत्त्वो का परिहार करके समन्वय की भावना जनता के सामने रखी तथा सच्चे लोक-धर्म की प्रतिष्ठा की। उन्होने समाज का सही पथ-प्रदर्शन किया और उसे पतन के गर्त मे जाने से बचाया। अपनी वाणी का उपयोग उन्होंने जन-कल्याण के पवित्र कार्य मे किया। उन्होंने अपनी रचनाओ मे भक्ति और ज्ञान का, निर्गुण और सगुण का तथा आदर्श और व्यवहार का बडा सुन्दर समन्वय किया। अपने जीवन का एक-एक क्षण उन्होने लोक-कल्याण के कार्यों मे ही व्यतीत किया है। हमारे समाज पर उनका जबरदस्त ऋण है। ऐसे महात्मा हजारो वर्षों मे एक बार जन्म लेते हैं। उनके बारे मे एक कवि ने ठीक ही लिखा है—

"भारी भवसागर उतारतौ कवन पार,
जो पै यह रामायण तुलसी न गावतो।"

१६—ग्राम-सुधार

१—भूमिका.—'भारत की मुक्ति ग्रामो की मुक्ति मे ही निहित है।'

२—प्राचीन-काल मे ग्रामो की स्थिति।

३—वर्तमान-काल मे ग्रामो की दुर-व्यवस्था।

४—ग्राम-सुधार की योजना ।

५—उपसहार ।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी कहा करते थे कि 'भारत की मुक्ति ग्रामो की मुक्ति मे ही निहित है ।' यह बात उन्होने अपने लम्बे अनुभव, दूर-दर्शिता और देशहित की तीव्र भावना के कारण कही थी । वस्तुत कृषि प्रधान होने के कारण भारतवर्ष ग्रामो का देश है । यहाँ सात लाख गाँव हैं और हमारी कुल आबादी का ८० प्रतिशत भाग ग्रामो मे ही रहता है । यही कारण है कि हमारे देश की सच्ची प्रगति ग्रामो की प्रगति के बिना सभव नही । इस बात को सबसे पहले गाँधीजी और राष्ट्रीय काँग्रेस ने अनुभव किया तथा उन्होंने इनकी उन्नति का नारा लगाया । तभी से देश के अन्य लोगो का ध्यान गाँवो की दयनीय स्थिति की ओर गया । उस समय की अग्रेज सरकार तो शोषण और उत्पीडन पर ही टिकी हुई थी, वह चाहती ही नही थी कि भारतीय जनता का कल्याण हो । फिर भी, उसे काँग्रेस और गाँधीजी की बात सुनने और मानने के लिए विवश होना पडा तथा उसने ग्राम-सुधार नामक एक अलग विभाग खोला । यद्यपि इस विभाग ने कोई उल्लेखनीय कार्य नही किया, तथापि सरकार का भी ध्यान इस ओर आकृष्ट अवश्य हुआ । वस्तुत ग्रामीण जनता सब प्रकार से शोषण और अत्याचार की शिकार बनी । लोगो के उद्योग-धन्धे चौपट हो गये । विदेशी कपडो ने बुनकर और कत्तिनो का धन्धा समाप्त कर दिया । औजार बाहर से आने लगे । तेल, साबुन, शक्कर और इसी प्रकार की अन्य चीजें बाहर से आने लगी । यहा तक कि खेती के अलावा कोई धन्धा ही किसानो के पास नही बचा । खेती मे बहुत काम करने पर भी उन्हे कोई लाभ नही मिलने लगा । नतीजा यह हुआ कि लोग गाँव छोड-छोड कर शहरो की ओर भागने लगे । गाँव मे न पढाई-लिखाई का प्रबन्ध रहा, न पचायतो का । आपसी लडाई-झगडे और लूट-मार होने लगी । गाँव के लोग कई कुरीतियो के दास बन गये । वे कर्जदार रहने लगे और उनकी दुरावस्था का लाभ उठाकर साहूकार उनसे बहुत-सा पैसा वसूल करने लगे । सरकार को तो टैक्स से मतलब था । वह सख्ती के

साथ टैक्स वसूल कर लेती थी और उनकी स्थिति सुधारने का विचार तक नही करती थी। परिणाम यह हुआ कि गाँवो का जीवन नरक बन गया। वे अशिक्षा, अज्ञान, शोषण, अनाचार, गरीबी और कुरीतियो के केन्द्र बन गये।

आज आप किसी भी गाँव में जाइये, घर के पास ही कूडे का ढेर दिखाई देगा और उससे निकलती हुई बदबू आपका वहाँ खड़ा रहना मुश्किल बना देगी। जिधर देखो यही बात मिलेगी। प्राचीन इतिहास बताता है कि उस समय हमारे ग्राम काफी उन्नत स्थिति मे थे। बड़े-बडे लोग भी ग्रामो मे रहना पसन्द करते थे तथा ग्रामो का जीवन बडे आनन्द का जीवन था। अपनी आवश्यकता के लिये बाहर के लोगो का मुँह ताकते रहने की जरूरत नही रह जाती थी। अनाज तो ग्राम मे पैदा होता ही था। गाँव के सब लोग सूत कात लेते थे और जुलाहे से कपडा बुनवा लेते थे। कुम्हार मिट्टी के बर्तन बना देता था, चर्मकार जूते तैयार कर देता था। खाती लकडी का सामान तैयार करता था, लौहार लोहे का। गाँव के मामले मे मुकदमे पचायतों के द्वारा गाँव मे ही तय होते थे। उसके लिये न तो शहरो मे भटकते रहना पडता था, न वकीलो की खुशामद करनी पडती थी। पढाई-लिखाई का प्रबन्ध भी ग्राम मे ही हो जाता था। उन दिनो लोग ईमानदार और सहृदय होते थे। अपने घरो मे ताला तक नही लगाते थे और बाहर के लोगो का जी भर कर आतिथ्य सत्कार करते थे। इस प्रकार सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से लोग सुखी थे। उन्हे किसी प्रकार का कष्ट नही था।

किन्तु मध्ययुग मे जब मुसलमान राजाओ का राज्य हुआ, तो यह व्यवस्था धीरे-धीरे बिगडने लगी। अग्रेजो के समय मे तो यह व्यवस्था और भी ज्यादा खराब होगई। जगह-जगह कचरे के ढेर मिलेगे, न मकानो के सामने का भाग साफ मिलेगा, न गलियो का। रास्तो के आस-पास बच्चे शौच के लिये बैठ जाते हैं और चारो तरफ मक्खियाँ भिनभिनाती हुई दिखाई देती हैं। प्राय सभी घरो के आस-पास चौपाये बाँधने की जगह होती है। उनके गोबर और पेशाब की दुर्गन्ध से घर मे बैठना

कठिन हो जाता है। गन्दा पानी इधर-उधर बहता रहता है। न नालियाँ होती हैं न हौज। सफाई की कोई व्यवस्था ही नही। न गाँव वाले मिल-जुल कर सफाई का प्रबन्ध करते हैं और न कोई मेहतर ही रखते हैं। बरसात के बाद गाँव के आस-पास कई गड्ढे भर जाते हैं और उनका पानी सडता रहता है—गन्दगी के कारण मच्छर और मच्छरो के कारण मलेरिया तो प्रतिदिन की बात है। लोग न तो इसे समझते हैं न इसका इलाज ही कर पाते हैं। लोगो मे अन्ध-विश्वास और कुरीतियो का इतना जोर होता है कि पैसा मिलते ही या तो ब्याह-शादी और मृत्यु-भोज मे उडा दिया जाता है या शराब जुए आदि मे। क्या कोई भी देश-भक्त अपने देश की यह दुर-व्यवस्था सहन कर सकता है ? इस स्थिति के रहते हुए कोई देश कैसे प्रगति कर सकता है !

इस स्थिति को सुधारने के लिये हमे बडा परिश्रम करना होगा। सबसे पहली बात यह करनी होगी कि शहर के लोगो मे गाँव के प्रति फैली हुई हीनता की भावना मिटानी ही होगी और शहर के लोगो मे उनसे मिलने-जुलने तथा उनके सुधार की इच्छा जागृत करनी होगी। इस मेल-जोल से ग्रामीणो की हीन भावना तथा शहर के लोगो की श्रेष्ठता की भावना मिटेगी। इससे हमे शिक्षा-प्रसार मे बडी सहायता मिलेगी और ग्राम-सुधार का श्रीगणेश हो सकेगा। आज हमारे नवयुवक शहरो की चमक-दमक से इतने अभिभूत हो गए हैं कि गाँवों का दर्शन तक पसन्द नही करते। जब पढे-लिखे लोग गाँवो मे जायेंगे तो लोगो को सफाई सभ्यता और शिष्ट आचरण और आधुनिक ज्ञान देंगे तथा परिश्रम, ईमानदारी, सरलता आदि गुण सीखेंगे और इस आदान-प्रदान से देश उन्नति की ओर अग्रसर होगा। गाँवो से सम्पर्क साधने के लिए आवागमन के साधनो का भी सुधार और विस्तार करना होगा। पक्की सडको का निर्माण इस कार्य में बडा सहायक होगा। इनके अभाव मे वर्षा के तीन-चार महीनो तक बहुत से गाँव शेष दुनियाँ से कट जाते हैं। आस-पास के गाँवो और शहरो से सम्पर्क बढ़ने के

कारण अपने ही गाँव के लोग बहुत-सी बातें सीखेंगे और अपने सुधार की ओर अग्रसर होगे।

ग्राम-सुधार के लिए आर्थिक-सुधार सबसे ज्यादा महत्त्व रखता है। इसके लिए किसानो को जमीन का स्वामित्व प्रदान करना होगा। हमारे बहुत से किसान आजकल खेतो मे मजदूरी करते हैं और जमीन के मालिक उनके श्रम का लाभ उठाते हैं। यह स्थिति अच्छी नही है। किसानो मे परिश्रम और लगन के साथ खेती करने की भावना पैदा करने के लिये भूमि का स्वामित्व उनके हाथ मे सौपने के बाद इस बात के लिए प्रोत्साहित करना होगा कि गाँव के सभी लोग मिल-जुल कर सहकारिता से खेती करे और एक परिवार की तरह रहे। उनकी सहायता के लिए अच्छे बीज, खाद, बैल तथा सिंचाई का प्रबन्ध करना होगा और इस काम मे जितनी आवश्यकता हो उतनी मदद उन्हे देनी होगी। एक बार स्वावलम्बी बन जाने पर फिर उन्हे बाहर की मदद की जरूरत नही रहेगी। यह कार्य करते हुए स्वावलम्बन की दृष्टि प्रमुख होनी चाहिए। लाभ की दृष्टि से यदि खेती और ग्रामोद्योग अपनाए जायेंगे तो उनसे लाभ के स्थान पर हानि ही होगी।

केवल खेती से लोगो की आर्थिक स्थिति नही सुधर सकेगी। उसके लिए बहुत से ग्रामोद्योग भी प्रारम्भ करने होंगे। हमारे गाँवो मे बहुत से ग्रामोद्योग सरलता से प्रारम्भ किये जा सकते है और अवकाश के समय गाँव के लोग उन्हे कर सकते हैं। उदाहरण के लिए रस्सी बनाना, तेल निकालना, साबुन बनाना, गुड-शक्कर तैयार करना, फल की खेती करना, शहद की मक्खी पालना, रेशम के कीड़े पालना, कातना, बुनना, कपडे सीना, मिट्टी के खिलौने बनाना, चमडे का काम आदि ऐसे धन्धे हैं जो थोडे-बहुत हेर-फेर के साथ सब गाँवो मे हो सकते हैं। इनसे एक ओर गाँव बहुत-सी आवश्यकताओ के मामले मे स्वावलम्बी बनेंगे तथा दूसरी ओर कला-कौशल की उन्नति होगी। उन्हे पूरे समय काम मिलेगा और गरीबी का कोई कारण ही नही रह जायगा।

शिक्षा, खेती तथा ग्रामोद्योग के सुधार के बाद गाँव की सफाई

का कार्यक्रम भी ग्राम-सुधार मे वडा महत्त्व का स्थान रखता है। यदि गाँवो को फिर से वसाया जा सके तो अच्छा हो। प्रत्येक घर ऐसा हो जिससे उसमे रोशनी और स्वच्छ वायु अच्छी तरह आ सके। गाँव की सडकें चौडी हो तथा हर एक मकान के आगे पीछे वगीचा लगाने के लिए जमीन हो। गन्दे पानी को निकालने के लिए नालियो की व्यवस्था हो और ग्राम के रास्तो तथा नालियो की सफाई की समुचित व्यवस्था हो। अच्छा हो कि गाँव के लोग ही वारी-वारी से यह व्यवस्था करलें। पशुओ के वाँधने की व्यवस्था मकान से दूर हो। उनका खाद गड्ढे मे डालकर सडाया जाय ताकि उनकी वदवू वातावरण को गन्दा न बना सके। गाँव मे एक अस्पताल हो जहाँ रोगियो का इलाज कराया जा सके। उसी के साथ जुडा हुआ एक प्रसूतिगृह भी हो तो बहुत अच्छा। जहाँ गाँव छोटे हो वहाँ चलते-फिरते औषधालय होने चाहिये। शौचालय पक्के हो तथा लोग इधर-उधर शौच करने के वजाय उन्ही का उपयोग करें और मैले का खाद तैयार किया जाय। कुएँ पक्के बनाये जायँ तथा गन्दे पानी के गड्ढे आस-पास न रहने दिये जाएँ ताकि मलेरिया फैलने का डर न रहे।

ग्राम-सुधार की योजना मे पचायत का वडा महत्त्वपूर्ण स्थान है। ग्राम-पचायत मानो ग्राम का प्राण ही है। वही ग्राम की व्यवस्था करने वाली मुख्य सस्था होती है। आपसी झगडे का फैसला करने, गाँव मे सफाई, शिक्षा आदि की व्यवस्था करने, लोगो को खाद, बीज तथा रुपया आदि देने और इसी प्रकार के ग्राम-हित के कार्य का उत्तरदायित्व उसी पर होना चाहिये ताकि वह समय पर लोगो की सहायता और उनका मार्ग-दर्शन कर सके।

जीवन को सुखी और आनदमय वनाने मे मनोरजन का वडा महत्त्व है। अत ग्राम-सुधार की योजना मे मनोरजन की उपेक्षा नही की जा सकती। जव मनोरजन के अच्छे साधन उपलब्ध नही होते तो मनुष्य बुरे साधनो के जाल मे फँस जाता है और जीवन सुखी बनाने के स्थान पर दुखी बना लेता है। मद्यपान, जुआ, सट्टा आदि मनोरजन के बुरे साधन हैं। अतः इनसे वचने के लिये ग्राम मे वाचनालय, रामलीला, नाटक, खेलकूद,

रेडियो, सिनेमा आदि का प्रवन्ध होना चाहिये। इन साधनो से मनोरंजन के साथ ज्ञान-वृद्धि भी होगी।

प्रसन्नता की बात है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से हमारी राष्ट्रीय सरकार इस सम्बन्ध मे विशेष रूप से प्रयत्नशील है। पचवर्षीय योजनाओ के द्वारा उसने इस दिशा मे एक अच्छा कदम उठाया है लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि यह कार्य भी पूरे मन और पूरी शक्ति से नही हो रहा है। प्राय. ग्रामीण लोगो का सहयोग इन कामो मे नही मिल पाता है। हमारी दृष्टि मे एक तो सरकारी कर्मचारी विशुद्ध देश-भक्ति की भावना से काम नही करते, दूसरे उनका सुधार-कार्य क्रान्तिकारी नहीं है। वह बधी-बधाई लकीर पर ही चलता है। अत. लोगो के मानस को स्पर्श नही कर पाता। हमारा विचार है कि ग्राम-सुधार का कार्य गैर-सरकारी सस्थाओ को अपने हाथ मे लेना चाहिये और विशुद्ध देश-भक्ति की दृष्टि से उसे प्रारम्भ करना चाहिये। भूदान आन्दोलन इसी प्रकार का एक आन्दोलन है और उसके कार्यकर्त्ता इस दृष्टि से अच्छा कार्य कर रहे है।

१७—बेकारी की समस्या

१—भूमिका
२—समस्या का इतिहास
३—उसके कारण
४—समस्या का हल
५—उपसहार

१५ अगस्त १९४७ के दिन हमारा देश स्वतन्त्र हुआ। हमारे मन में आजादी की नई-नई और रङ्गीन कल्पनाएँ थी। हम समझते थे कि विदेशी शासन के अन्त के साथ ही हमारी सब समस्याओ का भी अन्त हो जायगा। लेकिन हम देखते हैं कि हमारी राष्ट्रीय सरकार के १८ वर्ष के कडे परिश्रम के बाद भी हमारी बहुत-सी समस्याएँ अभी तक बहुत अशो मे वैसी ही है। हमारी इन समस्याओ मे प्रमुख है—अशिक्षा, निर्धनता, बेकारी, अनैतिकता और बीमारियाँ। अब भी हमारे देश मे ७५ फी सदी

व्यक्ति अशिक्षित हैं। चाहे शहरो मे जाइये, चाहे गाँवो मे, सैकडो नगे-भिखमगे मिल जायेंगे। किसी सरकारी कर्मचारी से मिलिये, चाहे किसी व्यापारी से, भ्रष्टाचार की शिकायत करता हुआ ही मिलेगा। और बीमारियो का प्रकोप अब भी साधारण-सी बात है। यदि इस बेकारी की समस्या को ही लें, तो वह हमारी जनता और सरकार दोनो का ही बहुत बडा सिरदर्द बनी हुई है। आज देश मे लाखो व्यक्ति बेकार हैं और 'बुभुक्षित किं न करोति पाप' अथवा 'Empty mind is devil's workshop' वाली कहावत के अनुसार हमारे देश के बेकार नवयुवक अपनी शक्ति देश के नव-निर्माण और उत्थान मे लगाने के स्थान पर अनैतिक कार्यों मे लगाते हैं। जो लाखो हाथ और लाखो मस्तिष्क देश का नक्शा बदल सकते हैं आज इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं। यह हमारी राष्ट्रीय शक्ति की जबरदस्त हानि है। इसकी अवहेलना बडी घातक हो रही है।

बेकारी की समस्या का श्रीगणेश तो तभी से हो गया था जब हमारे देश मे अंग्रेजी राज्य की नींव जमी और उन्होंने हमारे उद्योग-धन्धो को नष्ट करना प्रारम्भ किया। अंग्रेजी शिक्षा ने प्रारम्भिक वर्षों मे ऐसी कोई समस्या पैदा नही की। किन्तु जब बहुत से नवयुवक पास होकर विश्वविद्यालयो मे से निकलने लगे और देश के उद्योग-धन्धे पूरी तरह नष्ट हो गये तो यह समस्या तीव्र बनी। दूसरे महायुद्ध के समय हजारो नवयुवक फौज मे भर्ती हुए तथा अन्य विभागो मे भी उनको काम मिल गया। लेकिन महायुद्ध की समाप्ति, शरणार्थियो के आगमन, आर्थिक सकट आदि के कारण यह समस्या निरन्तर उग्र रूप धारण करती गई। अब सरकार अपनी पूरी शक्ति लगाकर भी एक वर्ष मे एक लाख से अधिक आदमियो को काम नही दे पाती है जब कि देश मे बेकारो की सख्या लगभग एक करोड है।

बेकारी की समस्या के प्रमुख कारण चार हैं—(१) भारतीय उद्योग-धन्धो का विनाश, (२) बड़े-बडे कारखानो और उद्योग-धन्धो का श्रीगणेश, (३) वर्तमान शिक्षा-प्रणाली तथा (४) हमारी बढती हुई जनसख्या। हमारे देश का आर्थिक सगठन प्राचीनकाल से ही बडा मजबूत रहा है।

मध्यकाल मे अनेक राजनीतिक उथल-पुथल और मुसलमानो के आक्रमण के वावजूद भी वह अस्त-व्यस्त नही हुआ। उस समय हमारा प्रत्येक ग्राम और प्रत्येक शहर अनेक दृष्टियो से स्वावलम्वी होता था। गाँवो मे एक बडा वर्ग किसानों का होता था जो खेती का काम करता था। उसके साथ प्रत्येक ग्राम मे एक दो परिवार चमार या रैंगर के होते थे। जो चमड़े का काम, जैसे जूते वनाना, चरस बनाना आदि करते थे। एक दो परिवार लुहार के होते थे जो लोहे का काम करते थे। इसी प्रकार कुम्हार का परिवार मिट्टी के वरतन, खिलौने, इंट आदि तैयार करता था, धोबी कपडे धोता था, तेली तेल निकालता था और बढई लकडी का काम करता था। इस प्रकार गाँव अपनी सब आवश्यकताओ के लिये स्वावलम्बी था। गाँव मे न कोई वेकार था न निर्धन। किन्तु अग्रेजी हुकूमत ने कपडे का धन्धा चौपट कर लाखों-करोडो बुनकरो, सूत कातने वालो, रगरेजो और छपाई के काम करने वालो को वेकार वना दिया। वाटा जैसी कम्पनियो ने चमारो का धन्धा छीन लिया, बडी-वड़ी पॉट्रीज ने कुम्हारो के लिये कोई धन्धा नही छोडा और आइल मिल्स ने तेलियो का काम समाप्त कर दिया। इस प्रकार अग्रेजो की साम्राज्यवादी नीति ने भारतीय जनता के उद्योग-धन्धे छीन कर उन्हे वेकार बना दिया।

अब कपडा मिलो मे बनने लगा, जहाँ सौ आदमियो का काम एक ही कर लेता है। तेल मिलो मे निकलने लगा। साबुन, जूते, औजार, फर्नीचर, आटा, खिलौने सब कुछ बड़े-बडे कारखानो मे तैयार होने लगे। बडे कारखानो मे यद्यपि काम ज्यादा होता है और वह सस्ता भी पडता है, किन्तु वहा सौ-दौ-सौ आदमियो का काम एक ही आदमी कर लेता है। परिणाम यह होता है कि वहाँ एक आदमी को काम मिलता है शेष ९९ वेकार हो जाते हैं। अत बडे कारखानो की उन्नति के साथ-साथ वेकार फिरने वाले लोगो की सख्या भी बढती जा रही है।

तीसरा कारण है हमारी दूषित शिक्षा-प्रणाली। श्री मैकाले इस शिक्षा-प्रणाली के जन्मदाता थे। उद्देश्य था कि शासन के कार्य मे भारतवासियो से सहायता प्राप्त करने के लिये उन्हे शिक्षा दी जाय

और ऐसी शिक्षा दी जाय जिससे अच्छे क्लर्क मिल सकें। अत. इसी प्रकार की शिक्षा-प्रणाली आरम्भ हुई और आज हम देखते है कि हमारे विश्वविद्यालयो से उत्तीर्ण होकर निकलने वाले नवयुवक प्रार्थनापत्र लेकर आफिसो का चक्कर काटने के अलावा और कोई काम नही कर पाते। उन्हे किसी ऐसे उद्योग-धन्धे की शिक्षा नही मिलती है कि जिससे वे अपना निर्वाह कर सकें। अत. वे नौकरी के अभाव मे घूमते रहते है। फिर नौकरियो की सख्या तो निश्चित है। प्रतिवर्ष कुछ थोडी-सी जगहे खाली होती हैं जबकि हजारो विद्यार्थी विश्वविद्यालयो से पास होकर निकलते रहते हैं। चौथा कारण है जनसख्या की वृद्धि। हमारी जनसख्या तेजी के साथ बढती जा रही है। जनगणना के अङ्क बताते हैं कि एक वर्ष के समय मे ही हमारे देश की जनसख्या एक करोड के आसपास बढ जाती है। जितनी तेजी से जनसंख्या बढती है उतनी तेजी से उद्योग-धन्धो का ऐसा विकास नही हो पाता कि बढती हुई जनसख्या को काम मिलता रहे। अत जनसख्या की वृद्धि से बेकारो की सख्या बढती जाती है।

प्रश्न यह है कि इस समस्या का हल किस प्रकार किया जाय? यदि हम कारणो का बारीकी के साथ अध्ययन करे तो उनमे ही हमे उनके हल भी दिखाई दे जायेंगे। सबसे पहला और सबसे अच्छा हल तो यही है कि पुराने उद्योग-धन्धो को फिर से जीवित किया जाय। उनमे भी बडे बडे उद्योग-धन्धो को छोडकर छोटे-छोटे कुटीर-उद्योग आरम्भ किये जायें ताकि ग्राम-ग्राम और शहर-शहर मे प्रत्येक व्यक्ति को काम मिल सके। हो सकता है कि ग्रामो मे कुटीर-उद्योगो के द्वारा बना हुआ माल कारखानो का मुकाबला न कर सके और वह न तो उसके मुकाबले सस्ता पड सके न उतना सुन्दर ही बन सके, तथापि उससे प्रत्येक व्यक्ति को काम मिल सकेगा और प्रत्येक व्यक्ति व्यवसायी बन सकेगा। जहाँ तक बडे कारखानो का प्रश्न है उन्हे उखाड फेंकना तो ठीक नही है, तथापि उनकी और सख्या बढाना न तो बेकारी की समस्या के हल की दृष्टि से ठीक है न अन्य दृष्टियो से। बड़े-बड़े कारखाने केन्द्रीयकरण की ओर ले जाते हैं जोकि एक बहुत बडा खतरा है। वे मालिक मजदूर के बीच की खाई को बढाते हैं, पूंजीवाद को प्रश्रय देते हैं और मजदूरो का जीवन भी दु खमय

ही बनाते है। अतः उनको और बढाना ठीक नही। अब तो ग्रामोद्योगो के विकास से ही यह समस्या अच्छी तरह हल की जा सकती है।

जहाँ तक शिक्षा का प्रश्न है अब क्लर्क बनाने वाली शिक्षा बन्द की जानी चाहिये और उसके स्थान पर इस नये युग की आवश्यकताओ के अनुसार नवीन शिक्षा आरम्भ की जानी चाहिये। हमारे प्राचीन शिक्षा शास्त्रियो ने शिक्षा का आदर्श बताते हुए कहा था—"सा विद्या या विमुक्तये"। अर्थात् वही विद्या है जो मुक्त करे। मुक्त बनाना विद्या का सबसे बडा गुण होना चाहिये। अत. अब नवीन शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जिससे बालक उद्योग-धन्धे सीखें और स्वावलम्बी बनें। हाई स्कूल परीक्षा पास करने के बाद बालक इस योग्य अवश्य हो जाय कि वह किसी भी प्रकार के काम मे लग कर कम से कम अपनी जीविका कमा सके। जहाँ तक बढती हुई जनसख्या का प्रश्न है उसका उपाय तो यही है कि उसे रोकने का प्रयत्न किया जाय। हाँ, इस बात का ख्याल अवश्य रखना चाहिये कि उसके लिए सन्तति-नियमन के आधुनिक तरीको की ओर जाना अच्छा नही होगा। वे बहुत-सी बुराइयो को जन्म देते है। हमारा तो विचार है कि जब उद्योग-धन्धो का समुचित विकास हो जायगा तब जनसख्या की समस्या, समस्या ही नही रहेगी। इङ्गलैण्ड और जापान का उदाहरण हमारे सामने है। वहाँ हमारे देश की अपेक्षा प्रति वर्गमील जनसख्या का औसत काफी ज्यादा है। लेकिन उद्योग-धन्धों के विकास के कारण वहाँ यह समस्या पैदा ही नही होती।

प्रसन्नता की बात है कि हमारी राष्ट्रीय-सरकार इस समस्या और इसके दुष्परिणामो से बेखबर नही है। वह तेजी के साथ कुटीर-उद्योगो को प्रोत्साहन दे रही है और पचवर्षीय योजनाओ के द्वारा उनके विकास मे महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही है। बडे-बडे उद्योग-धन्धो को भी यद्यपि वह रोक नही रही है, तथापि इस बात का ध्यान अवश्य रख रही है कि छोटे उद्योगो और बड़े उद्योगो मे होड़ न होने पाये। सहकारी समितियों के द्वारा वह छोटे-छोटे उद्योगो को बडा सरक्षण और प्रोत्साहन दे रही है। शिक्षा के क्षेत्र मे उसने गाँधीजी द्वारा निर्देशित बुनियादी तालीम को अपना लिया है जिसमे बालको को प्रत्यक्ष रूप से व्यावहारिक शिक्षा दी

जाती है और वालक १५ १६ वर्ष की आयु तक स्वावलम्वी वन सकता है। वहु-उद्देशीय विद्यालय खोलकर भी सरकार ने पुरानी शिक्षा के दोषो से मुक्ति पाने का ही प्रयत्न किया है। इस प्रकार सरकार इस दिशा मे सचेष्ट है। इसमे कोई सन्देह नही कि यह कार्य काफी वडा है तथापि इस प्रकार के प्रयत्नो से उसके हल होने मे वहुत ज्यादा समय नही लगेगा।

१८—सह-शिक्षा

१—भूमिका
२—सहशिक्षा का जन्म और विकास
३—लाभ
४—हानियाँ
५—भारत मे सह-शिक्षा की स्थिति
६—उपसहार

सह-शिक्षा शब्द दो शब्दो से मिलकर वना है—सह और शिक्षा। इसका अर्थ है लडके और लडकियो को अलग-अलग पाठशालाओ मे शिक्षा देने के स्थान पर एक ही पाठशाला मे शिक्षा की व्यवस्था। हमारे देश मे सह-शिक्षा विवाद का विषय वना हुआ है। कोई उसे अच्छा कहता है कोई वुरा। प्राय रूढिवादी लोग उसका विरोध करते हैं और नवीन प्रगतिशील विचारो के व्यक्ति उसका समर्थन करते हैं।

हमारे देश मे यद्यपि वहुत प्राचीन काल मे लडके-लडकियो को साथ-साथ शिक्षा दी जाती थी तथापि मध्य-काल मे यह व्यवस्था वदली और लडके-लडकियो के अलग-अलग स्कूलो की व्यवस्था प्रारम्भ हुई। यूरोप मे सबसे पहले स्विट्जरलैण्ड मे उसका जन्म हुआ। फिर तो वह सारे यूरोप मे फैल गई और इङ्गलैण्ड जैसे रूढिवादी देश के कैम्ब्रिज एव ऑक्सफोर्ड जैसे सुप्रसिद्ध विद्यालयो मे अव लडको के साथ-साथ पढने वाली लडकियो की सख्या कम नही है। अमेरिका मे भी यह प्रणाली इतनी लोकप्रिय हुई है कि वहाँ लडके और लडकियो के अलग-अलग स्कूल वहुत कम मिलेंगे। हमारे देश मे अभी शिक्षा का प्रचार ठीक तरह नही हो पाया है और हमारी जनता भी रूढिवादी है। अत यहाँ

इस दिशा मे कोई उल्लेखनीय प्रगति नही हो सकी। हमारे देश का साधारण व्यक्ति पहले तो स्त्री-शिक्षा को आवश्यक ही नही मानता, फिर लडके और लडकियो का साथ पढाना तो वह बिलकुल ही अहितकर एव अनर्थकारी ही मानता है। स्त्रियो के प्रति यह दृष्टिकोण मुसलमानो के आगमन के बाद बना। १९वी शताब्दी मे तो इसका यह प्रभाव हुआ कि हमारे देश मे लडकियो को पढ़ाना ही बुरा समझा जाने लगा, किन्तु अब समय बदल गया है। अब स्त्रियो को पढाना बुरा नही माना जाता। शिक्षित समुदाय इस दिशा मे आगे बढ रहा है। उसने अपनी लडकियो को कॉलेज स्कूलो मे भेजना प्रारम्भ कर दिया है। कही यह बात स्वेच्छा से हुई है, कही विवशता से; क्योकि जब उच्च शिक्षा के लिये लड़कियो के लिये लडको से अलग विद्यालय नही मिलते तो विवश होकर सरक्षक उन्हे लडको के विद्यालय मे भर्ती करवाते है। फिर भी इतना निश्चित् है कि सह-शिक्षा का प्रचार और प्रसार बढता जा रहा है।

सह-शिक्षा से अनेक लाभ हैं। सबसे बडा और सबसे पहला लाभ यह है कि वह भारत जैसे गरीब देश के लिए मितव्ययता-पूर्ण प्रणाली है। यदि लडके और लडकियो के अलग-अलग स्कूल बनाये जायँ तो उसमे खर्च बहुत अधिक आता है और भारत जैसा गरीब देश इतना खर्च उठा नही पाता। परिणाम यह होता है कि शिक्षा के क्षेत्र मे प्रगति रुक जाती है। अत स्पष्ट है कि शिक्षा के प्रसार मे सह-शिक्षा बहुत बडा योग दे सकती है। वह कम पैसे मे ज्यादा काम करके दिखा सकती है। जरा सोचिये तो एक इजीनियरिंग या मेडिकल कॉलेज के निर्माण मे कितना पैसा लगता है। आज भी हमारे देश मे इस प्रकार की शिक्षा देनेवाले कॉलेज कुछ बडे-बडे शहरो मे ही हैं। यदि स्त्रियो के लिये ये अलग-अलग खोले जायँ तो खर्च कितना ज्यादा बढ जायगा ? सह-शिक्षा के द्वारा कम पैसे मे हमारा काम चल जाता है। अत वह एक सुविधाजनक प्रणाली है। मितव्ययतापूर्ण होने के साथ-साथ वह लडके-लडकियो के बीच स्वस्थ वातावरण का निर्माण करती है। जहाँ लडके-लडकियाँ अलग-अलग पढते हैं वहाँ उनके सम्बन्धो मे शालीनता और स्वस्थता नही होती। वे एक दूसरे को कामुकता

की दृष्टि से देखते हैं । आखिर स्त्री-पुरुष परस्पर साधक हैं, पूरक हैं। बाधक तो हैं नही जो उन्हे एक दूसरे से अलग रखा जाय । जब अपने आगामी जीवन मे उन्हे विवाह के बन्धन मे बधकर रहना है तो फिर विवाह के पहले अलग-अलग रखने से क्या लाभ ? समाज मे ही जब स्त्रियो और पुरुषो के अलग-अलग हाट, बाजार, दुकानें, कारखाने, घर, सडक आदि नही तो स्कूल ही अलग-अलग क्यो बनाये जाते हैं ? अलग-अलग स्कूल बनाकर तो मानो हम उनके बीच भेद की दीवार खडी करते हैं, जो उचित नही कही जा सकती । इससे लडकियो मे लजीलापन बढता है और लडको मे शालीनता का अभाव उत्पन्न होता है । एक दूसरे के सम्पर्क मे आने से लडकियाँ निर्भय बनती हैं और लड़के सभ्य एव सुशील। वे एक दूसरे को समझते है तथा एक दूसरे का आदर करते है । इसके अतिरिक्त, सह-शिक्षा उनमे स्पर्धा की भावना पैदा करती है और वे एक-दूसरे से आगे बढने का प्रयत्न करते हैं । इस प्रकार की स्पर्धा दोनो के लिए हितकारी होती है ।

सह-शिक्षा का एक और लाभ यह होता है कि उन्हे अपना जीवन साथी चुनने मे सरलता होती है । एक दूसरे के साथ रहते-रहते वे एक दूसरे के स्वभाव से परिचित होते हैं और फिर जिसे साथी चुनते हैं वह सच्चे अर्थों मे उनका जीवन साथी बन जाता है । इस प्रकार सह-शिक्षा स्त्री-पुरुष के समानाधिकार का नारा है। वह दोनो को समानता की भूमिका मे खडा करता है जो कि इस युग की माँग है । वर्षों से नारी पीडित और पददलित रही है, अब उसे जीवन के सब क्षेत्रो मे पुरुष के बराबरी का दर्जा देना है । उसमे आत्म-विश्वास और आत्म-सम्मान पैदा करना है । सह-शिक्षा इसी दिशा मे प्रयत्नशील है ।

लेकिन हमारे देश मे ऐसे लोगो की भी कमी नही है जो सह-शिक्षा के विरोधी हैं । जो उसे समाज की प्रगति के लिये अहितकर समझते है । उनका कहना है कि जिन स्कूलो मे सह-शिक्षा की व्यवस्था की जाती है वहाँ व्यवस्था का काम बडा कठिन और पेचीदा बन जाता है । लडको की रुचि और आवश्यकता के अनुकूल अलग विषयो की व्यवस्था करनी

पडती है और लडकियो की रुचि और आवश्यकता के अनुसार अलग विषयो की। क्योकि एक ही पाठ्यक्रम तथा एक ही प्रकार के विषय उनकी रुचि के अनुकूल नही होते। उनका कहना है कि तर्कशास्त्र, ग्रीस और रोम का इतिहास तथा इसी प्रकार के अन्य विषय लडकियो को उनके भावी जीवन मे कोई लाभ नही पहुँचाते। उनके लिए बाल-मनोविज्ञान, गृह-विज्ञान, स्वास्थ्य-विज्ञान, बालसगोपन आदि विषय ही उपयोगी सिद्ध होते हैं। अत दोनो को एक ही प्रकार के विषय पढ़ाना मानो दोनो का विकास रोकना है जो शिक्षा का सही लक्ष्य नही हो सकता।

सह-शिक्षा के विरोधियो का दूसरा बडा तर्क यह है कि यह लडके-लडकियो की नैतिक भावना पर बडा विषैला प्रभाव डालती है। सह-शिक्षा उनको स्वतन्त्रता-पूर्वक मिलने-जुलने का अवसर देती है जिससे चारित्रिक पतन का काम सरल हो जाता है। लडको के बीच मे लडकियो की उपस्थिति उन्हे आगे बढने की प्रेरणा देने के बजाय नीचे गिराने की ही प्रेरणा देती है। यह आयु ही ऐसी होती है जिसमे विवेकशीलता कम होती है, आवेग अधिक। अब पतन का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। १५-१६ वर्ष से लेकर २०-२२ वर्ष तक की आयु ही ऐसी है, जिसमे उन्हे एक-दूसरे से अलग रखना हितकारी होता है। उनका यह भी कहना है कि सह-शिक्षा के द्वारा लडके-लडकियो को एक दूसरे के सम्पर्क मे आने का अवसर मिलता है और उसके परिणामस्वरूप जो प्रेम-विवाह होते है वे प्राय असफल होते हुए ही देखे गये है। ऐसे विवाह मे निकट सम्पर्क के कारण अधिक आकर्षण और प्रेम की तीव्रता नही होती। नतीजा यह होता है कि वे एक दूसरे से ऊबने लगते है और थोडे दिन बाद तलाक देने के लिए तैयार हो जाते हैं।

इस प्रकार सह-शिक्षा के पक्ष और विपक्ष मे और भी बहुत कुछ कहा जा सकता है। लेकिन उसक विपक्ष मे जो कुछ कहा जाता है, उसमे केवल एक ही तर्क महत्त्वपूर्ण है और वह यह कि उससे बालक-बालिकाओ के नैतिक पतन का मार्ग खुल जाता है। इस तर्क मे भी इतना बल

इसलिये दिखाई नही देता कि जो लोग यूरोप-अमेरिका मे स्त्री-पुरुषो को विना भेद-भाव के एक साथ रहते हुए देख चुके है, वे बताते हैं कि हमेशा साथ रहने पर काम-भावना पैदा नही होती। अत कुल मिलाकर सह-शिक्षा का विचार बुरा नही है।

हमारे देश मे जो कुछ चल रहा है उसको सही अर्थ मे सह-शिक्षा नही कहा जा सकता। वह तो पश्चिम की अन्धी नकल मात्र है। हमारे देश के विद्यालयो मे लडके-लडकियाँ साथ-साथ पढने अवश्य लगे है लेकिन उनके वीच की दूरी वनी ही रहती है। लडकियाँ अपने निश्चित् स्थान पर वैठती हैं और क्लास समाप्त होते ही लाज मे सिमटी हुई अपने स्थान पर चली जाती हैं। इससे लडके-लडकियो के बीच विचारो के आदान प्रदान और सम्पर्क नही हो पाता। परिणाम यह होता है कि उन्हे एक-दूसरे को समझने का मौका नही मिलता और वे एक-दूसरे के प्रति अजनवी बने रहते हैं। उनमे एक दूसरे के प्रति प्रेम, सहयोग और आदर पैदा होने के स्थान पर अनुदारता और कठोरता बनी रहती है। यह स्थिति सह-शिक्षा के हेतु पर ही कुठाराघात करती है। हाँ, सह-शिक्षा की कुछ झलक कलकत्ता, वम्वई, दिल्ली आदि शहरो तथा ईसाई-मिशनरियो द्वारा सचालित स्कूल, कॉलेजो मे अवश्य दिखाई देती है।

इस प्रकार सह-शिक्षा हमारे देश मे अभी प्रयोगावस्था मे ही है। आज यद्यपि हम उसे एकदम अच्छी और ग्राह्य नही कह सकते तथापि इतना तो अवश्य कह सकते हैं कि वह एकदम अग्राह्य और वुरी भी नही है। वह अभिशाप कम, वरदान अधिक है। जव तक उसका पूरा-पूरा विकास न हो, तव तक वडी सावधानी रखने की आवश्यकता है। यह सावधानी एक ओर अध्यापको को रखनी होगी, दूसरी ओर विद्यार्थियो को। हमारी दृष्टि मे यदि प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा की आयु के वालको के लिये सह-शिक्षा का प्रवन्ध किया जाय और इण्टर तथा वी० ए० के छात्रो के लिए अलग-अलग शिक्षा का, तो वह अभी वीच के समय के लिए हितकर होगा। एम० ए० तथा आगे फिर उनको साथ शिक्षा ग्रहण करने का अवसर दिया जाय तो कोई बुराई नही होगी। चारित्रिक पतन की सम्भावनाओ वाली आयु १६ से २० वर्ष तक है।

यदि उस समय सावधानी रखी गई तो आगे उसके लिए ज्यादा खतरा नही रहेगा। यह एक मध्यम मार्ग है तथा जब तक हमारा देश सह-शिक्षा के आदर्श को पूरी तरह समझ नही पाता तब तक के लिये यह तरीका हितकर हो सकता है। हमारा देश जनतन्त्र है और जनतन्त्र में स्त्री-पुरुष का दर्जा समान होता है। सह-शिक्षा लड़कियो को समानता के स्तर पर लाना चाहती है। अत हमें उसका स्वागत करना चाहिए।

१६—ग्रामोद्योग

१—भूमिका
२—ग्राम-विकास और ग्रामोद्योग
३—ग्रामो के अलग-अलग उद्योग-धन्धे
४—ग्रामोद्योग ही क्यो ?
५—लाभ
६—उपसहार

यद्यपि हमारे देश मे जमशेदपुर, कानपुर, अहमदाबाद, बम्बई, कलकत्ता आदि बडे-बडे औद्योगिक शहर हैं, तथापि देश की औद्योगिक स्थिति बडी असन्तुलित है। बात यह है कि हमारा देश कृषि-प्रधान है, अत. उसके उद्योग कृषि से सम्बन्धित होने चाहिये और छोटे-छोटे ग्राम तक उनका प्रसार होना चाहिये। भारत जैसा विशाल देश कुछ शहरो मे बडे कारखाने चलाकर अपने समूचे देश की आर्थिक स्थिति ठीक नही कर सकता। जब ग्रामों में हमारी जनसख्या का एक बहुत बडा भाग रहता है और देश के लगभग ८० प्रतिशत व्यक्ति कृषि के उद्योग से ही अपनी जीविका कमाते हैं, तब ग्रामो से दूर कुछ शहरो के उद्योग सारे देश का कोई महत्त्वपूर्ण हित-साधन नही कर सकते। भारत-सरकार की पन्द्रह वर्षीय-पुर्ननिर्माण-योजना तथा द्वितीय-पचवर्षीय-योजना की रूप-रेखा तैयार करने वाले लोगो ने इस तथ्य को स्वीकार किया है तथा अपनी योजनाओ मे इस बात पर जोर भी दिया है।

हमारी राष्ट्रीय कांग्रेस और उसके एक सबसे बडे नेता महात्मा गांधी ने इस तथ्य को बहुत पहले ही अनुभव कर लिया था कि देश का विकास

तब तक नही हो सकता जब तक कि ग्रामो का विकास न किया जाय। गांधीजी तो बार-बार कहा करते थे कि भारत की मुक्ति ग्रामो मे निहित है। अत' उन्होंने आजादी की लडाई के अनेक कार्यक्रमो मे व्यस्त रहते हुए भी ग्रामो मे चलने वाले उद्योग-धन्धो के विकास की बात दृढता से उठाई थी और उसे अपने रचनात्मक कार्यो का एक महत्त्वपूर्ण अग बनाकर उतना ही महत्त्व प्रदान किया था, जितना स्वतन्त्रता प्राप्ति को। अखिल-भारतीय-चर्खा-सघ और अखिल-भारतीय ग्रामोद्योग-सघ के कार्यों से कौन परिचित नही है? यद्यपि ये दोनो सघ सारे देश के ग्रामो मे खादी ग्रामोद्योग को फैला नही पाये हैं तथापि उन्होंने इस दिशा मे बडा महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। खादी तो बडी तेजी के साथ देश मे फैली थी और आजादी के दीवानो की पोशाक ही बन गई थी। उन दिनो ग्रामोद्योग भी विकास की दिशा मे बढे थे।

वर्तमान भारत का आर्थिक ढाँचा बडे विरोधी तत्त्वो से बना है। एक ओर हमारे यहाँ वायुयान चलते है, दूसरी ओर बैलगाडी। बडे-बडे उद्योग-धन्धो के साथ यहाँ छोटे-छोटे ग्रामोद्योग भी चलते रहे हैं। हमारी राष्ट्रीय सरकार भी यह तय नही कर पा रही है कि देश मे बड़े-बड़े उद्योग ही चलें या छोटे-छोटे। वह वायुयान और बैलगाडी दोनो को ही साथ-साथ चलाना चाहती है, किन्तु यह बहुत ही आवश्यक है कि इन दोनो प्रणालियो मे से किसी एक को अपनाया जाय। दो घोडो की सवारी सदैव खतरनाक ही रहती है। सरकार की इस अनिश्चित और अस्पष्ट नीति के कारण हमारे ग्रामो का भी शहरीकरण हो रहा है। गाँव उजडते जा रहे हैं और अनाज तक हमे बाहर से ही मगाना पड रहा है। क्या यह हमारे लिए शर्म की बात नही है? जब देश के ८० प्रतिशत लोगो को खेती से जीविका मिलती है तो खेती और ग्रामोद्योगो को प्रोत्साहित करने से ही देश की उन्नति हो सकती है। हमारे ग्राम पहले स्वावलम्बी थे। कुम्हार गाँव के लिये बरतन बना देता था और बढई लकडी की चीजें। लुहार लोहे की चीजें तैयार कर देता था और सुनार सोने-चांदी की। किसान खाली समय मे रस्सी बट लेते थे, गुड तैयार कर लेते थे, साग-भाजी व फल बो लेते थे तथा सूत कातने,

कपडा बुनने, कम्बल बनाने आदि का कार्य भी कर लेते थे। किन्तु आज कपडा, कम्बल, शक्कर, बरतन सब कुछ बड़े-बड़े कारखानो मे तैयार होकर ग्रामो मे पहुँचते हैं, जिससे गाँववाले बेरोजगार होते हैं और परावलम्बी भी। अत हमारे गाँवो की परम्परा ग्रामोद्योग ही कायम रख सकते हैं।

ग्रामोद्योग के पक्ष मे एक सबल कारण यह है कि हमारा किसान वर्ष मे लगभग छ महीने खाली रहता है। यदि उसे इस अवधि के लिए कोई काम मिल जाय तो वह अपनी आर्थिक स्थिति निश्चय ही ठीक बना सकता है। लेकिन देश के इतने किसानो को काम देने का प्रश्न सरल नही है। उसका एक ही हल हो सकता है और वह है ग्रामोद्योग। ग्रामोद्योग के द्वारा ऐसी चीजें पैदा की जा सकती हैं जो किसान की दैनिक आवश्यकताओ से सम्बन्ध रखती हैं। जैसे कपडा, ऊन की चीजें, शहद, दूध, घी, मक्खन, फल, सब्जी, गुड, कागज, माचिस, तेल, साबुन आदि। उद्योग उसे स्वावलम्बी बनाने के साथ साथ आलस्य, फिजूलखर्ची, कर्जदारी तथा चोरी-डकैती आदि बुराइयो से दूर रखेंगे।

ग्रामोद्योगो का दूसरा बडा लाभ यह है कि वे बड़े-बडे उद्योगो की बहुत-सी बुराइयो से मुक्त हैं। उदाहरणार्थ—उनमे शोषण के लिए स्थान नही है वे मालिक-मजदूर की खाई पैदा नही करते, मजदूरो की स्थिति-दयनीय नही बनाते और केन्द्रीयकरण के अनेक दोषो से बचाते हैं। ग्रामोद्योग ऐसे उद्योग हैं जो सीधे-साधे ढग से ग्रामो मे किये जा सकते हैं। उनके लिए न लम्बी-चौडी जमीन की आवश्यकता है, न बडी-बडी मशीनो की। न लाखो रुपयो की आवश्यकता है, न हजारो मजदूरो की। उन्हे तो एक-दो व्यक्ति ही बडी सरलता से बिना कोई विशेष पूँजी लगाये चला सकते हैं। उनमे मुनाफे-खोरी के लिए कोई स्थान नही। वे बडे उद्योगों की तरह मालिक को धनी और मजदूर को गरीब नही बनाते। ग्रामोद्योग से बनी हुई चीजे स्वास्थ्य के लिए अच्छी होती हैं। हाथ का पिसा आटा मिल के आटे की अपेक्षा अधिक स्वास्थ्यवर्द्धक होता है। इसी प्रकार घानी का तेल, मिल के तेल से अच्छा होता है। यही बात हाथ-कुटे

चावल, गुड, घी, शहद आदि की होती है। यह ठीक है कि बहुत-सी चीजे मशीन की बनी हुई चीजो की भाँति सुन्दर नही हो पाएँगी। किन्तु यदि ग्रामोद्योगो को पर्याप्त अवसर मिले तो वह दिन दूर नही रहेगा जब हाथ का कपडा मिल के कपडे की बराबरी करने लगेगा। प्राचीन काल मे हमारे देश मे इतना ही सुन्दर कपडा बनता था अत इस सम्बन्ध मे भी शका करने की आवश्यकता नही है।

ग्रामोद्योग ग्रामो की उन्नति का मूल मन्त्र है। उसकी उन्नति मे ग्रामो का विकास छिपा हुआ है। वे आर्थिक उन्नति के साथ शैक्षणिक उन्नति मे भी योग देंगे। वे ग्रामो की स्थिति सुदृढ बना कर हमारे देश को एक स्वावलम्बी और समृद्ध देश बनाएँगे। किन्तु इसके लिए ग्रामोद्योगो को सगठित स्वरूप प्रदान करना होगा। यदि ग्रामोद्योग पंचायतो की देखरेख मे चलें अथवा प्रत्येक ग्रामोद्योग किसी सहकारी-समिति के द्वारा चले तो उससे उसका अधिक लाभ मिल सकेगा। सहकारिकता के द्वारा चलनेवाले ग्रामोद्योग विश्रृखलित न रहने पाएँगे। कुछ ज्यादा लोगो के सहयोग के कारण उनका कौशल, सगठन, कला, मूल्य सब कुछ उन्नत बनेंगे और उसका लाभ भी ज्यादा लोगो मे वितरित होगा।

२०—भूदान-यज्ञ

१—भूमिका
२—भूदान-यज्ञ का जन्म
३—उसका विकास
४—भूदान का उद्देश्य
५—उसके लाभ
६—उपसहार

गाँधीजी हमारे देश की ही नही, विश्व की एक बहुत बडी विभूति थे। उन्होंने यद्यपि हमारे देश को विदेशी शासन के बन्धन से मुक्त किया तथापि उनकी सबसे बडी विशेषता यही नही थी। उनकी विशेषता यह भी थी कि उन्होंने अन्याय और अत्याचार के प्रतिकार का एक नया

मार्ग हमे दिखाया और उस पर हमे चलाकर यह सिद्ध कर दिया कि वह अवश्य सफल हो सकता है। उन्होंने सत्य, अहिंसा, त्याग, बलिदान आदि के द्वारा जहाँ व्यक्ति को शुद्ध और पवित्र जीवन की ओर ले जाने का प्रयत्न किया वहाँ इन्ही सब के द्वारा समाज, राष्ट्र और विश्व को भी इस दिशा मे ले जाने का प्रयत्न किया। पाप-ताप से जलती हुई दुनियाँ के लिए यह एक बहुत बडा सन्देश था। उनकी मृत्यु के बाद उनके बहुत से साथी शासन के कार्यों मे लग गये और उनमे इतनी बुरी तरह से उलझ गये कि गांधीजी के बताये हुए मार्ग से देश की अन्य बहुत-सी समस्याओ का हल सोचने और उस दिशा मे कार्य करने का प्रयत्न ही शिथिल-सा हो गया। ऐसे कठिन समय मे गाँधीजी के एक निकटतम साथी श्री विनोबा भावे आगे आये। उन्होने गाँधीजी के ही सिद्धान्तो के अनुसार हमारी आर्थिक नैतिक, सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं का बडा ही सुन्दर हल बताया।

सन् १९५१ के अप्रैल माह मे विनोबाजी सर्वोदय सम्मेलन के तीसरे अधिवेशन मे सम्मिलित होने शिवरामपल्ली, हैदराबाद गये। उन दिनो साम्यवादियो ने हैदराबाद राज्य के ३–४ जिलो मे बडा आतक फैला रखा था। उन्होंने बडे-बडे जमीदार, जागीरदार और धनपतियो को मारकर या लूटकर उनकी सम्पत्ति पर जबरदस्ती अधिकार कर लिया था। सरकार तो दूर, कांग्रेस के कार्यकर्त्ता तक उस क्षेत्र मे जाने से डरते थे। अतः वहाँ के कुछ व्यक्तियो ने विनोबाजी का ध्यान उस ओर आकर्षित किया और कहा कि यदि वे उस प्रदेश का दौरा करके वहाँ शान्ति स्थापित कर सके तो बडा अच्छा रहे। विनोबाजी ने इसे स्वीकार कर लिया और उस प्रदेश की पैदल यात्रा प्रारम्भ की। वे वहाँ के गाँव-गाँव मे घूमकर सारी स्थिति समझने का प्रयत्न कर रहे थे ताकि उसका कोई अच्छा हल निकाला जा सके। १८ अप्रैल के दिन जब वे तेलगाना के एक ग्राम मे यात्रा कर रहे थे तो उन्होने ग्रामवासियो से मिलकर वहाँ की सारी स्थिति समझने का प्रयत्न किया। वहाँ के हरिजनो ने अपनी कष्ट-कथा उनके सामने रखी और कहा

यदि हमे कुछ जमीन मिल जाय तो हमारी सारी समस्या हल हो जाय। तब हम लोग मन लगाकर खेती करेंगे और अपनी जीविका कमा लेंगे। लेकिन आज तो हमारे पास जीविका का कोई मावन ही नही है। हम ईमानदारी, सच्चाई, न्याय और सहयोग से जीवन विताना चाहते हैं लेकिन हमारे पास उसका कोई साघन नही है। विनोवाजी को उनकी वात ठीक लगी। उन्होने सायकाल प्रार्थना-समा में उस हरिजन की वात को दुहराया और कहा कि क्या इस समस्या का हल गांव के भाई ही आपस मे मिलकर ढूँढ नही सकते? यहाँ कुछ लोगो के पास अधिक जमीन भी होगी। अत क्या वे अपने गरीब ग्रामवासी भाइयो को सुख और ईमानदारी का जीवन विताने के लिये कुछ नही दे सकेंगे? एक भाई ने, जो वकील थे, अपनी जमीन मे से १०० एकड जमीन हरिजन-भाइयो को स्वेच्छापूर्वक देना स्वीकार कर लिया। वस विनोबा को अचानक ही इस समस्या का हल सूझ गया।

अपनी आगे की यात्रा मे उन्होंने प्रत्येक ग्राम मे ग्रामवासियो से कहा कि हवा और पानी की तरह जमीन भी ईश्वर से ही हमे प्राप्त हुई है। उस पर किसी एक व्यक्ति का अधिकार होना और शेप व्यक्तियो को उससे वचित रखना न्यासगत नही है। जो खेती करना चाहता है उसे निर्वाह योग्य भूमि देना ही चाहिये। उनकी इन वातो का वडा असर हुआ और वे जहाँ-जहाँ गये उन्हे गरीव भूमिहीन लोगो के लिए भूमि मिली। इस यात्रा मे उन्हे प्रतिदिन २०० एकड़ भूमि औसतन प्राप्त हुई। हैदरावाद की यात्रा के वाद प्रवान-मन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू के निमन्त्रण पर वे देहली गये। वे मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर-प्रदेश आदि मे से गुजरते हुए देहली पहुँचे और इस डेढ-दो मास की यात्रा मे उन्हें ग्राम-ग्राम से लगभग ४०० एकड भूमि प्रतिदिन के हिसाब से प्राप्त हुई। यह एक अच्छी सफलता थी। अत वे वर्घा लौटने के वजाय उत्तर-प्रदेश की ओर मुड गये और उन्होने एक ही वर्ष मे एक लाख एकड़ भूमि प्राप्त करने का निश्चय किया। यह निश्चय पूरा हुआ और उसके वाद पांच लाख एकड भूमि प्राप्त करने का निश्चय किया गया। ईश्वर की कृपा से वह भी सफल हुआ और उन्होंने विहार मे होने वाले

चाण्डिल सम्मेलन तक २५ लाख एकड भूमि प्राप्त करने का निश्चय किया। यह निश्चय भी पूरा हो गया तो उन्होने सन् १६५७ के अन्त तक देश की भूमि-समस्या ही हल करने का सकल्प किया और उसी कार्य मे जुट गये। वे पैदल यात्रा करते हुए विहार से वगाल, वगाल से उडीसा, उडीसा से आन्ध्र और आन्ध्र से मद्रास, केरल, महाराष्ट्र, मैसूर आदि का दौरा करते हुए सारे देश मे पैदल घूम रहे है और अव तक उन्हे पचहत्तर लाख एकड़ से अधिक भूमि प्राप्त हो गई है। लगभग पन्द्रह हजार ग्राम ग्रामदान मे प्राप्त हो गये है और पाच हजार निष्ठावान कार्यकर्त्ताओ ने जीवन-दान देकर इस कार्य मे अपनी पूरी शक्ति लगा दी है। सम्पत्तिदान मे वहुत-सी सम्पत्ति भी मिली है जो उन्होने किसानो को हल, वैल, कुआँ तथा कृपि के औजार प्राप्त करवाने मे खर्च की है। इस प्रकार भूदान का आन्दोलन अपने जीवन के १२-१३ वर्षों मे ही एक शक्तिशाली आन्दोलन वन गया है और उसने वहुत सफलता प्राप्त करली है।

भूदान एक क्रान्तिकारी आन्दोलन है। वह अहिंसक समाज का निर्माण करना चाहता है। इसका उद्देश्य है—सर्वोदय। वह सवका उदय, सवकी उन्नति करना चाहता है और अपने कार्यक्रम का प्रारम्भ अन्त्योदय से करता है। जो सवसे ज्यादा पिछड़े हुए हैं, सवसे ज्यादा दरिद्र, असहाय और पीडित है उन्ही को सबसे पहले उठाना उसका लक्ष्य है। वह समाज मे आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से समता, सहयोग, भ्रातृत्व और प्रेम का वातावरण पैदा करना चाहता है। वह ऐसे जनतन्त्र की स्थापना करना चाहता है जिसमे केन्द्र की सत्ता कम से कम हो, जिसमे प्रत्येक ग्राम स्वशासित, स्वावलम्वी और स्वय पूर्ण हो, जहाँ सव व्यक्तियो के समान अधिकार और समान कर्त्तव्य हो, जहाँ आर्थिक दृष्टि से कोई किसी का शोपण न करता हो और जीवन की आवश्यकताये सवको प्राप्त हो। सव प्रेम, एकता और सौहार्द्र के सूत्र मे वधे हुए हो। इसीलिये भूदान-आन्दोलन किसी भी प्रकार की जवरदस्ती और वल-प्रयोग से दूर है। वह विचार-परिवर्तन के द्वारा समाज-परिवर्तन करता है। यही उसकी क्रान्ति की प्रक्रिया है। वह नवीन मूल्यो

की प्रतिष्ठा का आन्दोलन है। समाज से हिंसा, अनैतिकता, अन्याय और दुराचार को पूरी तरह मिटाकर अहिंसा, नैतिकता, न्याय और सदाचार की स्थापना करना चाहता है।

भूदान-आन्दोलन के बहुत से सुपरिणाम हमारे सामने पिछले छ. सात वर्ष के समय मे ही स्पष्ट रूप मे आ गये हैं। सबसे पहला सुपरिणाम यह हुआ है कि अब ज्यादा सम्पत्ति जमा करना और उसके वल पर समाज मे प्रतिष्ठा प्राप्त करना बुरा माना जाने लगा है। अब उसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा समाज मे होती है जो ज्यादा त्याग करता है और सबके लिये जीता है, जो सबके सुख मे सुख तथा सबके दु ख मे दु ख मानता है। अब बड़े से बडे कर्मचारी भी स्वेच्छापूर्वक अपना वेतन कम कर रहे हैं और ज्यादा वेतन लेना बुरा माना जा रहा है। भूदान के द्वारा गरीबो के प्रति सहानुभूति का एक अच्छा वातावरण तैयार हुआ है और बड़े से बडे व्यक्ति से लेकर छोटे से छोटा व्यक्ति भी उनको ऊँचा उठाना अपना कर्त्तव्य मानने लगा है। भूदान-आन्दोलन ने भूमि के समान वितरण की भूमिका तैयार कर दी है। अब कोई भी सरकार सरलतापूर्वक कोई कानून बनाकर जमीन का समान वितरण कर सकती है। भूदान ने नैतिक वातावरण बनाया है और देश को शान्ति और समृद्धि की दिशा मे अग्रसर किया है।

२१—स्त्री-शिक्षा

१—भूमिका
२—स्त्री-शिक्षा का स्वरूप
३—वर्तमान शिक्षा के दोष
४—कुछ सुझाव
५—उपसहार

वर्षों से स्त्री-शिक्षा हमारे देश मे एक विवाद का विषय रहा है। कुछ लोग स्त्रियो की शिक्षा पर जोर देते रहे हैं, जबकि दूसरे बहुत से लोग उसका विरोध करते रहे हैं। किन्तु आज स्त्री-शिक्षा का विरोध करने वाले लोगो की सख्या नगण्य रह गई है। अब लगभग सभी लोग उसकी आवश्यकता अनुभव करते है। प्राचीन काल मे समाज मे नारी

का कोई महत्त्वपूर्ण स्थान नही था। वह पुरुष की दासी या विलास-सामग्री मात्र समझी जाती थी। किन्तु गाँधीजी और राष्ट्रीय-आन्दोलन के परिणामस्वरूप उसे समाज मे पुरुष की बराबरी का दर्जा प्राप्त हो गया और उसे शिक्षा प्राप्त करने का पूरा-पूरा अधिकार प्राप्त हो गया। इतना ही नही, अब तो विचारशील लोग पुरुषो की शिक्षा की अपेक्षा स्त्रियो की शिक्षा को और भी ज्यादा महत्त्व देने लग गये हैं। वे कहते हैं कि एक लडके को शिक्षा देने से केवल एक लडका ही शिक्षित बनता है, जब कि एक लडकी को शिक्षा देने से सारा परिवार शिक्षित बनता है। क्योकि लडकी जब माँ बनती है तो उसके बच्चे उससे ही बहुत-कुछ सीखते है और यदि वह शिक्षित होती है तो प्रारम्भ मे ही बहुत अच्छे सस्कार उसके द्वारा बालको को मिल जाते हैं। इस प्रकार स्त्री-शिक्षा का महत्त्व आज तीव्रता के साथ अनुभव किया जाने लगा है।

यद्यपि आज स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता और उसके महत्त्व के बारे मे कोई शका नही रह गई है तथापि स्त्री-शिक्षा के स्वरूप के बारे मे अब भी अस्पष्टता, मतभेद और विवाद ही बना हुआ है। जो लोग स्त्रियो के समानाधिकार की वकालत करते हैं, उनका कहना है कि स्त्रियो और पुरुषो की शिक्षा समान होनी चाहिए। जो विषय लडको को पढाये जाते है, वे ही लडकियो को भी पढाये जाने चाहिए। वे इस विचार को बिल्कुल पसन्द नही करते कि पुरुष का कार्यक्षेत्र घर के बाहर है और स्त्री का घर के अन्दर। वे कहते हैं कि स्त्री-पुरुष मे कोई भेद नही है। अत चाहे घर हो, चाहे विद्यालय—सब जगह स्त्री को समानता का दर्जा मिलना चाहिए और पढ-लिख लेने के बाद स्त्री को भी पुरुष की ही भाँति व्यापार-व्यवसाय या नौकरी का चुनाव करने का अवसर मिलना चाहिए। दूसरी ओर कुछ ऐसे लोग भी हैं जो कहते हैं कि स्त्री शारीरिक एव मानसिक दृष्टि से पुरुष से भिन्न है। वह माँ है, उसे बच्चे को जन्म देना और उसका पालन-पोषण करना होता है। उसका कार्यक्षेत्र घर है। अत. स्त्री-शिक्षा पुरुषो की शिक्षा से भिन्न होनी चाहिए।

वस्तुत जो लोग स्त्रियो के समानाधिकार की बात करते है और स्त्रियो को भी पुरुषो के ही समान शिक्षा देने की बात कहते हैं वे नही

जानते कि आज व्यवहार मे वही सब हो रहा है जैसा वे चाहते है। आज विद्यालयो मे लडकियो का वही पाठ्यक्रम है जो लडको का। यदि कोई अन्तर है तो केवल इतना ही कि लडकियो के लिए गृह-विज्ञान, सिलाई, स्वास्थ्य-रक्षा जैसे एक दो विपयो को विशेष रूप से पढाने की व्यवस्था कर दी गई है। कुल मिलाकर आज लडके और लडकियो की शिक्षा मे कोई अन्तर नही है। यदि हम विचारपूर्वक देखें तो यह बात स्पष्ट हुए बिना नही रहती कि लडके और लडकियो मे बहुत कुछ समानता है। दूसरी ओर यह भी सत्य है कि उनमे पूरी तरह समानता भी नही है। लडके और लडकियो के जीवन का उद्देश्य, उनके स्वभाव, प्रकृति और रुचि का अध्ययन बताता है कि उनमे बहुत कुछ समानता के साथ-साथ कुछ असमानता भी है। अत उनकी शिक्षा मे भी बहुत कुछ समानता और थोडीसी असमानता अवश्य रखनी होगी। भाषा, गणित, इतिहास, भूगोल, स्वास्थ्य-विज्ञान, साधारण-विज्ञान आदि ऐसे विषय हैं जिनके ज्ञान की जितनी आवश्यकता लडको को है उतनी ही लडकियो को भी है। किन्तु आगे चलकर विश्वविद्यालयो मे दर्शन-शास्त्र, भौतिक-शास्त्र, रसायन-शास्त्र, भूगर्भ-शास्त्र आदि का जो ज्ञान दिया जाता है वह लडकियो के लिए उतना उपयोगी नही होता जितना लडको के लिए। यदि कोई लडकी इन विषयो की प्रोफेसर बनना चाहे तो बात दूसरी है। अन्यथा साधारण लडकी के लिए इनका ज्ञान अनावश्यक-सा ही है।

बहुत से लोगो की यह धारणा है कि जिस प्रकार अलकार शरीर को सजाने के लिए पहने जाते हैं, उसी प्रकार शिक्षा भी एक प्रकार का अलकार है। शिक्षा से लडकी की सुन्दरता और कीमत बढ जाती है और अच्छा दूल्हा प्राप्त करना सरल हो जाता है। किन्तु उनकी यह धारणा भ्रान्तिपूर्ण है। शिक्षा जीवन का प्रशिक्षण देती है, आचरण का सस्कार करती है, या यो कहे कि वह जीवन की कला सिखाती है। यदि शिक्षा से ये बातें नही आती हैं तो वह शिक्षा शिक्षा नही है। अत जहाँ तक आचरण का सस्कार करने या जीवन की कला सिखाने का प्रश्न है, प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा तो प्रत्येक लडकी के लिए अनिवार्य होनी ही चाहिये। विश्वविद्यालय की शिक्षा उन्ही लडकियो को देना

चाहिये जो वकील, डॉक्टर, प्रोफेसर बनना चाहे या सरकारी नौकरी मे प्रविष्ट होना चाहे। हमारे देश मे प्राय. कम लडकियाँ ही इस दिशा मे जाना पसद करती हैं। अत. सभी लडकियो को दर्शन, विज्ञान और साहित्य की उच्च-शिक्षा देना व्यर्थ है। अधिकाश लडकियों को तो एक अच्छी माँ, पत्नी और नागरिक बनना है। ऐसी स्थिति मे उन्हे इसी प्रकार की शिक्षा देनी चाहिये जिससे इस दिशा मे उनका मार्ग सुगम बन सके। इसमे कोई सन्देह नही कि हमारे देश मे इस प्रकार की शिक्षा की अच्छी व्यवस्था नही है।

आजकल विज्ञान एव उद्योग-धन्धो की प्रगति ने स्त्री-शिक्षा की समस्या को एक नया ही रूप दे दिया है। अब सयुक्त-परिवार-प्रणाली तेजी के साथ समाप्त हो रही है और छोटे-छोटे कुटुम्ब वनते जा रहे हैं। इससे जहाँ व्यक्ति को अपनी आय का पूरा-पूरा लाभ स्वय उठाने और ज्यादा सुख-सुविधा का जीवन बिताने का अवसर मिल रहा है वहाँ उसका जीवन अरक्षित भी हो रहा है। सयुक्त-परिवार मे परिवार के सदस्यो की आय सारे परिवार मे वँट जाती थी, किन्तु अन्धे, लूले, लगडे, बेकार व्यक्ति अथवा विधवा माँ-बहनो का जीवन सुरक्षित रहता था। किन्तु आजकल एक ओर तो इस सुरक्षा के अभाव के कारण तथा दूसरी ओर बढती हुई महगाई तथा बढते हुए जीवनमान के कारण परिवार की स्त्रियो को भी नौकरी या कोई अन्य काम करने के लिये विवश होना पडता है। शहरो मे बहुत-सी विवाहित स्त्रियाँ क्लर्क, अध्यापिका, नर्स तथा इसी प्रकार के अन्य कार्य करती हुई दिखाई देती है। इधर ग्रामो मे भी स्त्रियाँ पति के कार्य मे हाथ वँटाती हैं। वे खेती और ग्रामोद्योगो का वहुत-सा कार्य सँभालती हैं। इस प्रकार प्रत्येक स्त्री के लिए कोई-न-कोई स्वतन्त्र कार्य करना अनिवार्य होता जा रहा है। अब उनके लिए पुराने जमाने की तरह घर की चहार-दीवारी मे बन्द रहना सम्भव नही रहा है। यही कारण है कि हमारे स्कूल और कॉलेजो मे लडकियों की सख्या वढती जा रही है। अव समय ही कुछ इस प्रकार का आ गया है कि विना कोई काम किये जीवन विता देना सम्भव नही। आज

हमारे देश मे सैकडो-हजारो स्त्रियाँ डॉक्टर, वकील, प्रोफेसर, अध्यापक, सिपाही, विधान-सभा की सदस्या, मन्त्री और उच्च-अधिकारी है। जैसे-जैसे समय बीतेगा इन क्षेत्रो मे उनकी सख्या बढती ही जायगी। यह परिवर्तन भले ही हमे पसन्द न हो, किन्तु वह आ रहा है और आकर रहेगा। अत यह आवश्यक है कि हमारे देश की स्त्रियाँ उसके योग्य बनें। शिक्षा को ही यह कार्य करना है।

दूसरे देशो की भाँति हमारे देश मे भी स्त्रियो की शिक्षा का काम पिछडा हुआ है। बड़े-बडे शहरो मे लडकियाँ अवश्य पढती हैं। किन्तु ग्रामो और कस्बो मे तो प्राय लडकियो की शिक्षा का अभाव-सा ही है। लडकियो के नये-नये स्कूल, कॉलिज प्रत्येक नगर और ग्राम मे खोलना वस्तुत बडा खर्चीला होगा। अत सह-शिक्षा ही इस प्रश्न का एक मात्र हल हो सकती है। यदि लडके-लडकियाँ प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा एक ही स्कूल मे प्राप्त करते हैं तो उसमे कुछ बुराई भी नही है। ऐसी स्थिति मे लडकियो की शिक्षा की बढती हुई माँग को देखते हुए सह-शिक्षा प्रारम्भ करना लाभदायक होगा। जहाँ तक उच्च-शिक्षा का प्रश्न है, स्त्रियो को कुछ विषयो की शिक्षा विशेष रूप से दी जा सकती है, जैसे—परिवार-नियोजन, शिशु-कल्याण, सामाजिक स्वास्थ्य और सफाई, बाल-शिक्षा आदि। इस प्रकार के विषयो की शिक्षा से स्त्रियाँ समाज की उपयोगी सेवा करने के साथ-साथ स्वतन्त्र रूप से जीविका कमाने का साधन भी प्राप्त कर सकेंगी।

स्त्री-शिक्षा का काम हमारे देश मे बहुत पिछडा हुआ है। उसे आगे बढाने के लिए अभी बहुत काम करना है। सरकार को भी उस पर पैसा खर्च करना पड़ेगा। हमारी तीनो पचवर्षीय योजनाओ मे उसके लिए पर्याप्त पैसा खर्च करने की व्यवस्था नही है। अभी सरकार के सामने उत्पादन बढाने की समस्या प्रमुख है। यह महत्त्वपूर्ण भी है किन्तु उसके हल होते ही इस प्रश्न पर सबसे ज्यादा ध्यान देना होगा। अन्यथा इसके अभाव मे हमारा देश पूरी-पूरी प्रगति नही कर सकेगा।

२२—श्रमदान

१—श्रमदान का अर्थ ।

२—श्रम-आधारित व्यवस्था का उद्देश्य—समता, स्वतन्त्रता और बन्धुत्व ।

३—श्रमदान का महत्त्व ।

४—लाभ ।

५—श्रमदान और गांधीजी ।

६—उपसहार ।

श्रमदान दो शब्दो से मिलकर वना है—श्रम और दान । श्रम का अर्थ है परिश्रम या मेहनत और दान का अर्थ है देना । अत: साधारणत: श्रमदान का अर्थ है 'परिश्रम देना' । जिस प्रकार हम किसी दीन, दुखी या अभाव-ग्रस्त व्यक्ति को रुपये-पैसे या अनाज-कपड़े दान के रूप मे देते हैं उसी प्रकार जहा आवश्यकता हो वहाँ बिना कुछ पारिश्रमिक लिए हुए श्रम करें और उसका लाभ समाज या किसी व्यक्ति को दें यही श्रमदान का प्रचलित अर्थ है । किन्तु वस्तुत श्रमदान का इतना ही अर्थ नही है । श्रमदान एकदम नया शब्द है । इसका जन्म विनोबाजी के भूदान-आन्दोलन के साथ हुआ है । विनोबाजी ने भूदान के बाद सम्पत्ति-दान, बुद्धिदान, हलदान, बैलदान, कूपदान, जीवनदान, श्रमदान आदि नये-नये शब्द दिये और उन्हे नये-नये अर्थों से प्रतिष्ठित किया । वे दान की उस भावना को अच्छा नही समझते जिसमे दानदाता को महान् और दान लेने वाले को हीन माना जाता है । दान मे जो उपकार की भावना छिपी हुई है, वह भी उन्हे पसन्द नही है । उन्होंने प्राचीन शास्त्रो मे दिये हुए 'दान सविभाग' के अनुसार दान को सम-विभाग कहा है । अर्थात् जिसके पास ज्यादा है वे बराबर हिस्सा करने के लिए अपने धन, सम्पत्ति या श्रम को उन लोगो को देते हैं जिनके पास या तो बिल्कुल नही है या कम है । इस प्रकार विनोबाजी के अनुसार दान मे कर्त्तव्य की भावना छिपी हुई है । कबीर ने लिखा है—

जो जल बाढे नाव मे, घर मे बाढे दाम ।
दोऊ हाथ उलीचिये, यहु सज्जन को काम ।

जिस प्रकार नाव मे पानी बढ़ जाने पर उसे उलीच कर फेंकना ही लाभदायक होता है, उसी प्रकार घर मे पैसा बढ जाने पर उसे अभावग्रस्त लोगो को देना लाभदायक होता है । यहाँ पैसा देने के पीछे अपने स्वय के कल्याण की भावना है । बस इसी प्रकार की भावना विनोबाजी द्वारा प्रयुक्त दान शब्द मे है । ऊपर बताये हुए अनेक दानो मे वे चीजें किसी पर उपकार करने के लिए नही अपितु अपने स्वय के उपकार के लिये दी जाती है । अत उसमे दान लेने वाले के प्रति तुच्छता की भावना बिल्कुल नही होती ।

श्रमदान विनोबाजी के मुँह से निकला हुआ शब्द है, अत उसमे विनोबाजी के जीवन-दर्शन की झलक है । विनोबाजी चाहते हैं कि एक नये समाज की रचना की जाय जिसमे सबको समानता का दर्जा प्राप्त हो । जिसमे न कोई धनी हो न कोई गरीब, न कोई ऊँचा हो न नीचा । अत श्रमदान अन्य दानो की तरह ही इस समता को लाने का एक महत्त्वपूर्ण साधन है । हम देखते है कि किसी भी प्रकार का उत्पादन श्रम, पूजी और प्राकृतिक-साधनो के योग से होता है । यद्यपि उत्पादन मे इन तीनो का ही लगभग बराबरी का महत्त्व है तथापि पूजी सर्वोपरि हो गई है । पूजी से श्रम खरीद लिया जाता है और प्राकृतिक साधन भी । जिसके पास आज पूजी नही है उसके सारे रास्ते बन्द है । वह न तो उत्पादन कर सकता है न न्यायपूर्ण जीवन ही बिता सकता है । उसे पूजीपतियो का गुलाम बनना पडता है, तब कही जीवन की आवश्यक सामग्रियाँ मिल पाती हैं । विनोबाजी समता का उद्देश्य सामने रखकर इस व्यवस्था को बदलना चाहते हैं । वे श्रम को प्रमुख स्थान देना चाहते हैं । इसी प्रकार प्रकृति के साधन जैसे जमीन, खनिज, जल, वायु आदि भी किसी एक व्यक्ति की सम्पत्ति नही । वे ईश्वर ने सबको समान रूप से दिये हैं । इन पर किसी व्यक्ति को अपना कब्जा जमाकर बैठ जाने का अधिकार नही है । जो व्यक्ति श्रम करना चाहता है उसे जमीन,

खनिज, जल, वायु आदि समान रूप से मिलने चाहिये। अब तक उत्पादन पूंजी पर आधारित रहा है किन्तु विनोबाजी उसे श्रम-आधारित बनाना चाहते हैं। श्रम-आधारित उत्पादन के द्वारा समाज मे श्रम का महत्त्व बढेगा और उससे विषमता की भावना मिटेगी, क्योकि श्रम की शक्ति सब व्यक्तियो मे बराबर है।

श्रमाधारित व्यवस्था का दूसरा उद्देश्य है स्वतन्त्रता। जो व्यक्ति श्रम के द्वारा जीवन व्यतीत करेगा वह निश्चित रूप से स्वावलम्बी बनेगा। उसे दूसरो पर आधारित या आश्रित रहने की आवश्यकता नही रहेगी। अत व्यक्ति सच्चे अर्थों मे स्वतन्त्र बनेगा। आर्थिक स्वावलम्बन उसकी स्वतन्त्रता को मजबूत बनाएगा, फिर न उसे किसी से दबने की आवश्यकता रहेगी न किसी से भय मानने की।

श्रमाधारित व्यवस्था का तीसरा उद्देश्य है बन्धुत्व। जब सब लोग साथ साथ श्रम करेंगे तब उनमे आपसी प्रेम पैदा होगा। क्योकि प्रेम के मार्ग मे बाधा देने वाली ऊच-नीच की भावना का अन्त हो जायगा। श्रम के द्वारा कार्य करके कभी वैमनस्य या वैर पैदा नही होगा। साथ-साथ काम करने वालो मे स्वभावत. प्रेम पैदा होता है। अत यह प्रेम की भावना सब लोगो को एकता और स्नेह के मजबूत धागो मे बांधेगी। न किसी व्यक्ति को किसी दूसरे व्यक्ति से ईर्षा करने की आवश्यकता होगी, न विद्वेष।

इस प्रकार नये समाज के नये जीवन-दर्शन के अनुसार श्रम का हमारे जीवन मे बडा महत्त्वपूर्ण स्थान बनने वाला है। श्रमदान मे श्रम का वह अर्थ और वह भावना ही समाई हुई है। आज श्रमदान का महत्त्व इसलिए है कि वह ऊपर बताई हुई भावना की प्रतिष्ठा करता है। वह हममे समता, स्वतन्त्रता और बन्धुत्व की भावना पैदा करता है। यदि श्रमदान के द्वारा किसी ग्राम के निवासी कोई सडक बनाते हैं या किसी तालाब का निर्माण करते हैं तो उन्हे इन नवीन जीवन-मूल्यो की अनुभूति होती है। वे पुरानी ऊंच-नीच की भावना से ऊपर उठते हैं। सबको यह अनुभव करने का अवसर मिलता है कि वे समान हैं, एक हैं। पैसा या

सम्पत्ति का दान ज्यादा देने वाले को वडा और थोडा देने वाले को छोटा वनाता है किन्तु श्रमदान सवको समान वनाता है। फिर श्रमदान नई-नई योजनाओ को सरल वना देता है। यदि श्रम उपलब्ध हो जाता है तो निर्माण-कार्य मे कोई कठिनाई नही होती। क्योकि प्रकृति के साधन तो हमारे पास हैं ही, उसमे लगने वाला पैसा चन्दे से या सरकार से प्राप्त किया जा सकता है। वहुत से कामो मे तो पैसो की जरूरत भी प्राय वहुत थोडी ही होती है। अत स्वतन्त्रता-प्राप्ति के वाद देश के नव-निर्माण का जो कार्य हमारे सामने आया है, श्रमदान उसे सरल और मधुर वनाता है। श्रमदान हमारी एक अन्य समस्या उत्पादन की कमी का भी जवरदस्त हल है। आज हमारे देश मे अनाज की कमी है और दूसरी अनेक चीजो की कमी है। ये हमे विदेशो से मँगवानी पडती है। आखिर विदेशो की सहायता पर हमारा जीवन कव तक चलता रहेगा? श्रमदान के द्वारा उत्पादन वढाने मे जवरदस्त सहायता का कार्य भी करने लग जायेंगे तो फिर किस चीज की कमी रह जायगी? आज हाथ से काम करने वाले को छोटा और नीचा माना जाता है। इसीलिये उत्पादन करने वालो की सख्या घट रही है। कल जव उनको नीचा नही माना जायगा और प्रत्येक व्यक्ति को श्रम करना पड़ेगा, तव किसी भी वस्तु की कमी न रहेगी, देश समृद्ध वनेगा।

श्रमदान से हमारे देश और समाज को वडा लाभ मिलेगा। उससे उत्पादन वढ़ेगा—देश का नया-निर्माण होगा। वडे-वडे कार्य, जो समाज के लिए उपयोगी और हितकारक हैं, सीधे और सरल वन जायेंगे—शीघ्रता से पूरे हो जायेंगे। उसके द्वारा लोगो की शारीरिक उन्नति होगी। श्रम करने से वीमारियाँ दूर रहेगी और देश के सव लोग स्वस्थ और प्रसन्न वनेंगे। श्रमदान लोगो की मानसिक उन्नति भी करेगा। वह लोगो को सच्चे, भले और ईमानदार वनायेगा। वह न्यायपूर्ण जीवन की प्रतिष्ठा करेगा। श्रमदान समाज, व्यक्ति और देश तीनो को स्वावलम्वी वनाएगा, जिससे सवमे वन्धुत्व व स्वतन्त्रता की भावना का उदय होगा। लोगो मे आत्मविश्वास पैदा होगा कि वे वडे-वडे कार्य कर सकते है। श्रमदान

एक प्रकार से लोगो की शिक्षा का कार्य करेगा । काम करते-करते लोगो को जो अनुभव होगा, जो शिक्षा मिलेगी, वह पुस्तकें पढने या घर मे बैठे रहने से प्राप्त नही होती। उससे उनकी शारीरिक, मानसिक एव आध्यत्मिक शक्तियो का विकास होगा। श्रमदान व्यक्तियो को उदार बनाएगा। दूसरो के लिए श्रम करके उनके मन मे सन्तोष और आनन्द की भावना पैदा होगी। फिर न उनमे सकुचित भावना प्रविष्ट हो सकेगी, न स्वार्थवृत्ति। इस प्रकार श्रमदान के पीछे देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति के सुधार का मन्त्र छिपा हुआ है। वह नवीन युग की नई पुकार है। नवीन ऋषि का नया मन्त्र है।

श्रमदान का विचार एक-दम नया नही है। गाँधीजी के मस्तिष्क मे यह बात सबसे पहले आई थी। उन्होने देख लिया था कि हमारी परतन्त्रता और गरीबी का एक बहुत बडा कारण श्रमनिष्ठा का अभाव है। हम श्रम से दूर होते जा रहे हैं, उसे बुरा और नीचा समझते हैं। अत. उन्होंने खादी और ग्रामोद्योग का श्रीगरोश किया था। उन्होने स्वय प्रतिदिन चरखा चलाने का नियम बनाया था और अपने साथियो से भी वैसा ही करने के लिए कहा था। उन्होने काँग्रेस के प्रत्येक सदस्य की सदस्यता का शुल्क रुपयो मे लेने के बजाय सूत के रूप मे देने का नियम बनाया था। खादी खरीदने के लिए भी सूत देने का नियम उन्होंने इसी दृष्टि से बनाया था। अत श्रमदान का मन्त्र हमारे राष्ट्र-पिता द्वारा दिया हुआ मन्त्र है। उसमे हमारे देश की उन्नति के सारे तत्त्व समाये हुए हैं।

२३—अनुशासन

१—अनुशासन का अर्थ
२—अनुशासन के प्रकार
३—अनुशासन का महत्त्व
४—उसके लाभ
५—अनुशासन लाने के उपाय
६—उपसंहार

अनुशासन दो शब्दो से मिलकर बनता है 'अनु' और 'शासन'। 'अनु' का अर्थ है—'पीछे' और 'शासन' का अर्थ है 'आज्ञा'। इस

प्रकार अनुशासन का अर्थ है 'आज्ञा का अनुसरण', 'नियन्त्रण मे रहना', 'आज्ञा के अनुसार कार्य करना'। प्रश्न यह होता है कि आज्ञा किसकी ? अपने बडो की, गुरु की, राजा की, सरकार की, सन्त और महात्माओ की। यदि सक्षेप मे कहा जाय तो उन लोगो की जिनकी बात मे हमारे कल्याण की भावना समाई हुई है। सामाजिक प्राणी होने के कारण हमे घर मे, स्कूल मे, ग्राम मे, शहर मे, कार्यालय मे, सेना मे, सभा मे रहना और कार्य करना होता है। अत. सभी स्थानो के काम को सुचारु-रूप से चलाने के लिए, उसे नियमानुसार और व्यवस्थित बनाने के लिए कुछ निश्चित नियमो का अनुसरण करना या अपने बडो के नियन्त्रण में रहना आवश्यक होता है। यदि ऐसे नियम न हो और उनका अनुसरण न किया जाय तो समाज मे, देश मे और विश्व मे कोई व्यवस्था नही रहेगी। सब मनमानी करेंगे जिससे जीवन विशृ खल होगा, सब जगह अराजकता और अव्यवस्था होगी और जीना मुश्किल हो जायगा। अत. अनुशासन की बात जीवन को व्यवस्थित, सुचारु और सुखी बनाने की बात है। उससे व्यक्ति के चरित्र का सस्कार होता है, वह सच्चरित्र और सुसस्कृत बनता है। व्यक्ति का यह सस्कार समाज और देश का सस्कार करता है और उसे भी व्यवस्थित, समृद्ध और उन्नत बनाता है।

अनुशासन दो प्रकार का होता है—एक बाह्य, दूसरा आन्तरिक। पहला भय, आतक और शक्ति पर आधारित रहता है; दूसरा स्वेच्छा पर। पहले प्रकार के नियन्त्रण को व्यक्ति भय से मानता है जबकि दूसरे प्रकार के नियन्त्रण को स्वेच्छा से स्वीकार करता है। यद्यपि दूसरो के द्वारा कही हुई अच्छी बात को अनिच्छा से भी पालन करना अहितकर नही होता है तथापि यदि कोई अच्छी बात को स्वय अपनी बुद्धि से समझबूझकर किया जाय तो वह सबसे अच्छा है। बात यह है कि जो बात भय से, शक्ति से या जोर-जबरदस्ती से मानी जाती है उसमे उस बात के महत्त्व पर जोर नही होता है। जोर होता है जबरदस्ती, भय या शक्ति पर। जब तक भय रहता है तब तक तो अनुशासन का पालन होता है और जब भय नही रहता अनुशासन का पालन भी आवश्यक नही रह जाता। दूसरी ओर जब स्वेच्छा से अनुशासन माना जाता है उसमे

बात की अच्छाई, उसकी हितकरता का महत्त्व होता है। उसी को प्रेरणा से अनुशासन माना जाता है। अतः अनुशासन का सही रूप वही है जिसमे नियन्त्रण स्वेच्छापूर्वक माना जाता है। भय और आतक पर आधारित अनुशासन न तो सही होता है न दृढ। बाह्य अनुशासन उस शेर की तरह है जो मरा हुआ है, किन्तु जैसे मसाला भरकर खडा कर दिया गया है। देखने मे वह शेर ही दिखाई देता है, दूर से देखने वाले उसे शेर ही समझ लेते हैं, लेकिन उसमे प्राण नही होता। वह किसी को मार डालना तो दूर, चलने फिरने या साँस लेने तक की भी क्षमता नही रखता है। अत. जिस सस्था मे बाह्य अनुशासन होता है, वह खोखली होती है, और जिसमे आन्तरिक अनुशासन होता है, वह स्वस्थ और दृढ होती है। उसके विकास, समृद्धि और प्रगति का मार्ग खुला रहता है। वह सदैव उन्नति करती है।

जीवन मे अनुशासन का बडा महत्त्वपूर्ण स्थान है। स्वच्छन्दता तथा उच्छृखलता जीवन को अवनति एव पतन की ओर ले जाते हैं। जिस नदी का जल अपने किनारो को छोडकर इधर-उधर बहता है, वह खेती-बाडी और लोगो की जान-माल को क्षति ही पहुँचाता है। किन्तु जिस नदी का जल नहरो के रूप मे नियन्त्रित होकर बहता है, वह खेती-बाडी को बहुत लाभ पहुँचाता है और लोगो की शाति, सुरक्षा और समृद्धि का पोषक बनता है। जो व्यक्ति स्वेच्छापूर्वक नियमो मे बधता है, सयमपूर्वक रहता है उसकी प्रगति के मार्ग खुल जाते हैं। वह अपना कल्याण तो करता ही है, समाज के लिए भी कल्याणकारक सिद्ध होता है। अनुशासन एक बुनियादी गुण है। जिस प्रकार बुनियाद अच्छी बनने पर इमारत अच्छी बनती ही है, उसी प्रकार अनुशासन का गुण आ जाने पर दूसरे बहुत से गुण आ ही जाते हैं। जिस व्यक्ति मे अनुशासन है वह एक सच्चा मित्र होगा, आज्ञापालक पुत्र होगा, आदर्श नागरिक होगा, वह वीर सैनिक होगा और बुद्धिमान विद्यार्थी होगा। वीरता, धीरता, सन्तोष, आज्ञा-पालन, कर्त्तव्यनिष्ठा, परोपकार, सदाचार आदि बहुत अच्छे गुण उसमे अपने-आप आ जायेंगे।

अनुशासन से अनेक लाभ हैं। वह व्यक्ति की उन्नति का मार्ग प्रशस्त

करता है। पिता को वही पुत्र प्यारा होता है जो उसकी आज्ञा का पालन करता है। गुरु को वही शिष्य प्रिय होता है जो उसके बताये हुए मार्ग पर चलता है और राजा को वही नागरिक प्रिय होता है जो राज्य के नियमो का पालन करता है। मतलब यह है कि चाहे परिवार हो चाहे स्कूल और चाहे समाज हो, चाहे राज्य, सब जगह अनुशासन को पसन्द किया जाता है। जो व्यक्ति अनुशासन सीख लेता है उसे मानो अच्छे पुत्र, अच्छे विद्यार्थी और अच्छे नागरिक बनने का राज-मार्ग मिल जाता है। अपने पिता, गुरु और शासक को प्रसन्न रखकर उनके स्नेह, कृपा और आदर को अनायास ही प्राप्त कर लेता है। फिर सब जगह उसका मार्ग सुगम बन जाता है। अनुशासित व्यक्ति का अपना जीवन बडा सुखी रहता है। उसे चारो ओर से स्नेह मिलने के कारण सदैव आनन्द की अनुभूति होती रहती है। फिर जो व्यक्ति अपने को जीत लेता है—अपने ऊपर नियन्त्रण करना सीख लेता है, उसके लिए दूसरो पर नियन्त्रण करना कठिन नही होता। आत्म-नियन्त्रण या अनुशासन से एक प्रकार की शक्ति का उदय होता है। अनुशासित व्यक्ति उच्छृङ्खल या स्वच्छन्द व्यक्ति की अपेक्षा कई गुना ज्यादा शक्तिशाली रहता है। वह जो चाहे कर सकता है तथा जैसा चाहे वैसा दूसरे लोगो से करवा सकता है क्योकि जो दूसरो की बात मानता है उसकी बातें दूसरो को भी माननी ही पडती हैं। इस प्रकार अनुशासन मे रह कर दूसरो को अनुशासन मे लाने की एक जबरदस्त शक्ति अपने आप ही प्राप्त हो जाती है। एक और महत्त्व की बात है कि यह सृष्टि ही नियमो मे बधी हुई है। सूर्य नित्य समय पर उदय होता है, समय पर अस्त होता है, समय पर गर्मी पडती है, समय पर वर्षा होती है। आग जला देती है, पानी ठडा कर देता है। सारी सृष्टि नियमों का अनुसरण करती है। सृष्टि मे कही उच्छृङ्खलता नही है। अत सुखी और उन्नत जीवन का मूल मन्त्र अनुशासन ही है। नियमो से बँधी सृष्टि मे वही सुखी रह सकता है जो स्वय नियमो से बँधा हुआ है।

अनुशासन लाने के अनेक उपाय है। सबसे पहले और सबसे ज्यादा महत्त्व का उपाय यह है कि अनुशासन के महत्त्व को समझा जाय। यदि

उसका महत्त्व समझ मे आ जाता है तो फिर उसे मानना कठिन नही रहता। अनुशासन के पीछे हमारे कल्याण या हित की भावना छिपी रहती है। जो उसका दर्शन कर लेता है, उसे अनुशासन का पालन करना कठिन नही होता। इसी प्रकार जो लोग अनुशासन लाना चाहते है या अनुशासन का पालन करवाना चाहते है उन्हे भी सबसे ज्यादा प्रयत्न इसी बात का करना चाहिये कि वे अनुशासन के पीछे छिपी हुई कल्याण-भावना को स्पष्ट कर दें। अनुशासन का दूसरा उपाय है बालको के सामने अनुशासन के अच्छे-अच्छे आदर्श उपस्थित करना। यदि घर मे माता-पिता, स्कूल मे अध्यापक और समाज मे नेता-लोग अच्छे अनुशासन का नमूना पेश करें तो इस आचरण-दृष्टान्त से अनुशासन सीखने मे बडी मदद मिलेगी। क्योकि जो चीज आचरण मे होती है वह बिना कहे ही दूसरे लोग सीख लेते हैं। उसका प्रभाव भी स्थायी होता है। दूसरी ओर जो चीज व्यक्ति के आचरण मे नही होती यदि वह उसे दूसरो को करने के लिये कहे तो उसका उल्टा प्रभाव पडता है। उससे लोग अनुशासित बनने के स्थान पर उच्छृङ्खल ही बनते हैं। अनुशासन लाने का तीसरा उपाय पुरस्कार देना है। अच्छे अनुशासन का पालन करने वाले को पुरस्कार से प्रोत्साहन मिलता है। चौथा उपाय है सजा। जहाँ अनुशासन का भग हो वहाँ अनुशासन भग करने वाले को सजा मिलनी चाहिये ताकि वह आगे के लिये सचेत हो जाय। पुरस्कार और सजा अनुशासन लाने के तरीके हैं किन्तु उनका उपयोग सोच-विचार के साथ करना चाहिये। पुरस्कार बालको को लालची और दण्ड डरपोक भी बनाता है, जो अच्छा नही है।

अनुशासन एक महत्त्वपूर्ण गुण है, वह आजकल प्रथम कोटि के गुणो मे माना जाता है। रूस, अमेरिका, ब्रिटेन, जापान, जर्मनी आदि उन्नत राष्ट्र अपनी अनुशासन-प्रियता के लिये प्रसिद्ध हैं। उनकी प्रगति के मूल कारणो मे अनुशासन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारत को इस गुण की बहुत आवश्यकता है। स्वतन्त्र भारत इस गुण के अभाव मे कभी भी प्रगति नही कर सकेगा। आइये हम अपने देश मे अनुशासन लाने के लिये जुट जायँ।

२४—सत्संग

१—भूमिका
२—सत्सग का महत्त्व
३—सत्सग के साधन
४—सत्सग के अन्तराय
५—सत्सग के लाभ
६—सत्संग के चमत्कार

मनुष्य समाज मे जन्म लेता है और समाज मे ही विकास करता है। समाज से उसे अलग रखना एक वहुत वडी सजा है। समाज से दूर रह कर न मनुष्य विकास कर पाता है न उसे अलग रहना अच्छा ही लगता है। अपने जन्म से लेकर मृत्यु तक वह समाज मे रहता है। जन्म के समय वह माता-पिता और परिवार के लोगो के सम्पर्क मे आता है और तव से उसके परिचय का क्षेत्र विस्तृत होते-होते मृत्यु के समय तक वह लाखो लोगो से जान-पहचान कर लेता है। अत. समाज से दूर या अलग रहने की कल्पना अत्यन्त घातक है। समाज हमारे अस्तित्व के लिये आवश्यक ही नही, अनिवार्य है। लेकिन प्रश्न यह है कि समाज तो अच्छे वुरे का मेल है। उसमे चोर, डाकू और दुराचारी लोग हैं, तथा सयमी, सदाचारी और न्यायी भी। ऐसे लोग भी हैं जो अपने आसपास के लोगो का उपकार करने की ही वात मोचते और करते हैं तथा ऐसे भी लोग हैं जो अपने आसपास के लोगो का अकल्याण करने की बात भी सोचते और करते हैं। अत इस स्थिति मे हम क्या करे ? किन्हे चुनें ? उत्तर स्पष्ट है। हम ऐसे ही लोग पसन्द करते हैं जिनसे हमे कुछ सहारा मिले, सहायता मिले। हम ऐसे आदमियो को पसन्द नही करते जो हमे गलत रास्ते पर ले जायँ, हमारा अहित करें।

सत्सगति का अर्थ है अच्छा सग या अच्छी सगति। उसका जीवन मे बडा महत्त्व है। अच्छे लोगो का साथ मिल जाने पर जिस प्रकार यात्रा आनन्ददायक हो जाती है, उसी प्रकार अच्छे लोगो के साथ से जीवन भी आनन्ददायक हो जाता है। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि रहीम ने इसी बात को इस प्रकार कहा है—

यो रहीम सुख होत है, उपकारी के सग,
बाँटन वाले के लगे ज्यो मेहदी को रग।

अच्छे आदमियो के साथ से अनायास ही बहुत से लाभ मिल जाते हैं। जिस प्रकार मेहदी बाँटने वाले के हाथ मे अनायास ही मेहदी की लाली रच जाती है अथवा बगीचे मे बैठने वाले को सुगन्ध मिल जाती है, उसी प्रकार अच्छी सगत मे रहने वाले को अनेक लाभ अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। भला जो आदमी सदैव चोरो की सगति मे रहता है वह सदाचारी कैसे हो सकेगा? जो अत्याचारियो की सगति मे रहता है वह परोपकारी कैसे हो सकेगा? क्या कभी बबूल के पेड मे भी आम लग सकते हैं? कहावत है कि जो कुए मे नही है वह घडे मे कैसे आ सकेगा। अत बुरे आदमियो से अच्छे गुणो की अच्छाई की आशा नही की जा सकती। दूसरी ओर सत्संग उस पारस की तरह है जो अपने स्पर्श से लोहे को सोना बना देता है। तुलसीदासजी ने रामायण में सत्सग के महत्त्व पर कहा है —

"पुण्य-पु ज बिन मिलहिं न सता, सत्सगति ससृति कर अन्ता।"

अच्छे आदमियो का साथ बडे पुण्यो का परिणाम है। जब उनका साथ प्राप्त हो जाता है तो जैसे परम लाभ ही मिल जाता है, आत्म-कल्याण या मोक्ष प्राप्त हो जाता है और मोक्ष से बड़ा लाभ क्या हो सकता है? जो बात वर्षों साधना करने पर भी नही मिल सकती वह सत्सग के द्वारा क्षण भर मे ही मिल जाती है। इसीलिये तुलसीदासजी ने सन्तो के समाज को चलता-फिरता तीर्थराज कहा है। तीर्थराज प्रयाग तो उन थोडे से लोगो का उद्धार कर पाता है, जो उस तक आते हैं, किन्तु सन्तो का समाज उस चलते-फिरते हुए तीर्थराज की तरह है जो हर स्थान पर जाता है और उसे जो भी मिल जाता है उसका उद्धार कर देता है। तुलसीदासजी ही नही अनेक कवियो, विचारको, विद्वानों, दार्शनिको और भक्तो ने सत्सग का गुणगान किया है और कहा है कि एक क्षण भर का सत्सग दुनियाँ के सारे सुखो से बढकर है।

सत्सग का महत्त्व निर्विवाद है। किन्तु उसका पूरा-पूरा लाभ उठाने के लिए उसके स्वरूप को समझ लेना आवश्यक है। सबसे पहले हमे यह जान लेना चाहिए कि सत्सग के साधन क्या हैं? वे कौन से लोग हैं, कौन-सी वस्तुएँ और कौन से व्यापार हैं जहाँ से हमे सत्सग प्राप्त होता है। सत्सग के इन स्रोतो की जानकारी उसको उपलब्ध करने मे सहायक होगी। सत्सग के इन स्रोतो मे प्रमुख हैं: अच्छे-अच्छे विद्वान् और सदाचारी पुरुष, अच्छी पुस्तकें, अच्छे सम्मेलन, अच्छे विद्यालय, वाचनालय, मन्दिर, मस्जिद, गिर्जाघर आदि और इसी प्रकार की अन्य वस्तुएँ। इनका सम्पर्क मनुष्य मे सद्विचारो का ही उदय करता है। अच्छे पुरुषो से अच्छी बातें ही मिलती है, और अच्छी पुस्तकें भी सद्विचारों को ही प्रोत्साहित करती हैं। अच्छे सभा-सम्मेलन और वाचनालय, पुस्तकालय भी अच्छाई को ही जन्म देते हैं और उसे पल्लवित पुष्पित करते हैं। जिस प्रकार निर्मल जल के सोते से निर्मल जल ही मिलता है, उसी प्रकार सत्सग के इन स्रोतो से अच्छे विचार, अच्छे उपदेश और कल्याणकारक बातें ही प्राप्त होती हैं। किन्तु केवल इतना ही मान लेना पर्याप्त न होगा कि इन चीजो या व्यक्तियो से ही उद्धार हो सकता है। अपने उद्धार या कल्याण के लिए हमे एक ऐसा दृष्टिकोण विकसित करना होगा जो व्यक्तियो, पुस्तको और इसी प्रकार की अन्य वस्तुओ मे से उस अच्छाई को ढूँढ लें, जो फूल मे सुगन्ध की तरह या गुड में मिठास की तरह समाई रहती है। जिसे यह दृष्टि प्राप्त हो जाती है वह गुरु दत्तात्रेय की तरह कुत्ते और कौवो को भी अपना गुरु बना लेता है और उनसे भी कुछ प्राप्त कर लेता है। सत्संग का अर्थ ही वह सग है जो हमारे लिए कल्याणकारक सिद्ध हो। यदि हमारी दृष्टि पैनी है तो हम कौवे की सगति मे रहकर भी चौकन्नापन प्राप्त कर सकते हैं और कुत्ते की सगति मे रहकर उसकी वफादारी और निरालसता सीख सकते हैं। सत्सगति का अर्थ केवल गाँधीजी, बुद्ध या अरविन्द जैसे महापुरुषो के साथ बैठे रहना, उनके भाषण सुनना या उनकी पुस्तकें पढना नही है, बल्कि उनके जीवन से अच्छी बातें सीखना है। यदि हम उनसे ऐसी बातें नही सीखते तो उनके सम्पर्क मे घण्टो या वर्षों रहना वैसे ही

होगा जैसे किसी गधे या घोडे के द्वारा धर्म-ग्रन्थो का बोझा उठाये रहना। इस तरह के कार्य से जिस प्रकार कभी कोई गधा या घोडा धर्मात्मा नही बन सकेगा उसी प्रकार बुद्धिहीन सम्पर्क कोई लाभ नही पहुँचा सकेगा।

अब प्रश्न यह होगा कि सत्सग के अन्तराय क्या हैं ? ऐसे कौन से लोग हैं, कौनसी पुस्तकें और कौनसी वस्तुएँ हैं, जिनके सम्पर्क मे रहना खतरनाक होता है। स्पष्ट है कि बुरे व्यक्ति, बुरी पुस्तकें, बुरे स्थान, बुरे कार्य और बुरी वस्तुएँ सत्सग के अन्तराय हैं। यदि आप चोर, डाकू, लुटेरे, मद्यपी, व्यभिचारी और दुराचारी व्यक्ति के साथ रहेंगे तो बुराइयाँ सीखे बिना न रह सकेंगे। इसी प्रकार यदि आप दुराचार के अड्डो पर पहुँच जाते हैं, अश्लील और भद्दी पुस्तकें पढते है तो वहाँ से अच्छी बातें नही सीख सकेंगे। "काजल की कोठरी मे कैं तो हूँ सयानो जाय, एक लीक काजर की लागिहै पै लागिहै" वाली कहावत के अनुसार बुरे स्थानो पर पहुँचने पर आपको उस बुराई का कुछ न कुछ अश मिले बिना न-रहेगा। आप पूछेंगे कि बुराई क्या है ? प्रश्न वडा कठिन है लेकिन मैं सक्षेप मे यह बता दूँ कि जिसे आपको छिपाना पडे, जिसे आप ऊँचा सिर करके दूसरो को दिखा न सके वही बुराई है। बस इसी बुराई से बचिए। यही सत्सग के मार्ग का रोडा है।

सत्सग से अनेक लाभ हैं। वह हमे वह वस्तु, वह व्यक्ति और ज्ञान प्राप्त करा देता है जिसके द्वारा जीवन बन जाता है। वह डूबतो को सहारा देता है, उबारता है और गिरतो को खडा करता, चलाता है। उसी की कृपा से तुलसीदास को राम प्राप्त करने की जबरदस्त इच्छा हुई थी और दुनियाँ से विराग हुआ था। उसी के प्रसाद से कालिदास कवि बने और बुद्ध महात्मा। इन महापुरुषो के जीवन मे इतना जबरदस्त परिवर्तन सत्सग का ही परिणाम था। सत्सग एक चिनगारी है, उसके जलते ही अज्ञान और अकल्याण भस्म हो जाता है। वह चारो ओर प्रकाश कर देता है। फिर न तो कुछ अप्राप्य रहता है न कुछ अज्ञात। वह अज्ञानी को ज्ञानी, कायर को वीर, दुराचारी को सदाचारी, अन्यायी एव.पतित को पावन और पापी को धर्मात्मा बना देता है। इसलिए तुलसीदासजी ने कहा है—'बिनु सत्सग विवेक न होई।' और जब विवेक ही नही होता तो

कल्याण की, उद्धार की दिशा में आगे बढ़ने का कार्य किस प्रकार हो सकता है ? अतः सत्सग कल्याण का, उद्धार का द्वार है। ऐसा कोई अच्छा कार्य नही, जो उससे नही हो सकता।

सत्सङ्ग मे चमत्कार की शक्ति समाई हुई है। डाकू वाल्मीकि एक जरा-सी देर के सत्सङ्ग से आदि-कवि बन गये और नहुष स्वर्ग के राजा बनकर भी कुसङ्ग के परिणामस्वरूप सर्प बनकर पृथ्वी पर गिरे। सत्सग एक क्षण मे ही ऐसा चमत्कार कर देता है कि व्यक्ति कहाँ से कहाँ पहुँच जाता है। शङ्कराचार्य का ज्ञान और महात्मा बुद्ध की साधना सत्सग का ही तो परिणाम था। सत्सङ्ग ने ही शिवाजी को वीर और मीराँ को भक्त बनाया था। जब तक सत्सङ्ग रूपी पारस का स्पर्श न हो, व्यक्ति भले ही लोहे की तरह लोगो की उपेक्षा का पात्र बना रहे, लेकिन ज्यो ही उसे उसका स्पर्श मिल जाता है, वह सोने की तरह चमकने लगता है। दुनियाँ आश्चर्य से उसको देखने लगती है और वह अपना कल्याण करके दूसरो के लिए भी एक उदाहरण बन जाता है।

२५—वर्षा विहार

१—वर्षा के पहले
२—वर्षा का प्रथम दृश्य
३—जल का विस्तार, बाढ
४—वर्षा के बाद का दृश्य
५—वर्षा से लाभ
६—उपसहार

जून का महीना था। तेजी से गर्मी पड रही थी। न तालाबो मे पानी रहा था, न नदी नालो मे। दिन मे भगवान् भास्कर की किरणें इतनी प्रखर हो उठती थी कि शहरो का काम-काज ही जैसे ठप्प हो जाता था। सडको पर मुश्किल से कोई आदमी दिखाई पडता था। नर-नारी किसी पेड की छाया मे विश्राम लेते हुए दिखाई देते। कोई लू से परेशान था तो कोई हैजे से। सुबह शाम पनघटो और जलाशयो पर भीड लग जाती थी। पानी का सस्कृत नाम 'जीवन' पूरी तरह सार्थक हो रहा था। पशु-पक्षी

और पेड-पौधे सभी मुरझाए हुए दिखाई देते थे, मानो सभी पानी-पानी पुकार रहे थे। सुबह, शाम और रात्रि के समय ही कुछ शान्ति मिलती थी। लेकिन कई बार तो रात मे भी लू चलती और गर्म हवा के कारण नीद नही आ पाती थी।

ऐसे ही समय मे आर्द्रा नक्षत्र आया और आकाश मे बादलों की उमड-घुमड प्रारम्भ हुई। अब लोगो की आँखें मेघ की ओर लग गई। सब उसे आशापूर्ण दृष्टि से देखने लगे। यदि उसकी कृपा न हो तो अनाज कैसे पैदा हो? पानी ही कहां से मिले? फिर तो भूख-प्यास से तडप-तड़प कर सारे जीवधारी ही मर जायें। अतः उत्सुकता-भरी दृष्टि से देखना स्वाभाविक ही था। ऐसा प्रतीत होता था जैसे सारा जीवन और आनन्द बादलो में ही सिमिट कर समा गया था। और इसमें कोई सन्देह नही कि बादल ही सब का त्राता बन गया था। बादलों का यह प्रथम आगमन कितना सुखद था, कितना आनन्ददायक! धीरे-धीरे आकाश मे बादलो का जमघट-सा लगने लगा और बीच मे उनकी घुमड भी सुनाई देने लगी। एक दो दिन मे ही यह चहल-पहल और तेज हुई और जब पहली बार तवे-सी तपती हुई पृथ्वी पर वर्षा की पहली बूँदें गिरी तो वह जैसे निहाल हो गई। चारो ओर वातावरण मे मिट्टी की सोधी बास महक उठी। बच्चे नगे होकर नाचने लगे और बूढे यद्यपि ऐसा नही कर सकते थे तथापि अपने मन को शिशुओ की तरह नाचने से नही रोक पा रहे थे। युवक-युवतियाँ सैर के लिये निकल पड़े और प्रथम वर्षा के आनन्द मे खो गये।

अब तो वर्षा का प्रवाह बढने लगा। घण्टे-दो-घण्टे या एक-दो दिन मे वर्षा की बूँदें अवश्य गिरती और आकाश तो सदैव ही मेघाच्छन्न बना रहता। धीरे-धीरे तेज वर्षा का श्रीगणेश हुआ और सारी पृथ्वी पानी मे नहाने लगी। दो-तीन बार की तेज वर्षा से ही पृथ्वी की प्यास जैसे शान्त हो गई और पानी सडको, नालियो और पगडण्डियो से बहता हुआ तालाबो, नदियो और पोखरो मे सचित होने लगा। जैसे-जैसे वर्षा तेज होती नदियो मे बाढ आने लगती और वे अपने कगारो को काटती हुई तीव्र गति से बहने लगती।

अब चारो ओर हरियाली छा गई। क्या मैदान और क्या पहाड—सभी हरे-भरे दिखाई देने लगे। मोर नाचने लगे और पक्षी अपने कलरव से दिशाओ को गु जित करने लगे। धीरे-धीरे वर्षा का अतिरेक होने लगा। दो-दो चार-चार दिन तक सूर्य का दर्शन ही कठिन हो गया और वर्षा की झडी-सी लगी रहने लगी। नदियो मे जोर की बाढ आने लगी और नदी-तालाब के आसपास के निचले स्थानो को खतरा पैदा होने लगा। कही तेज आँधी और वर्षा से वृक्ष गिरने लगे तो कही मकान ढहने लगे। कही सडके टूटने लगी तो कही रेलवे-लाइन। कभी किसी पुल के टूटने का समाचार मिलने लगा, तो कभी बाँध टूटने का। किन्तु ये दुर्घटनाएँ व्यक्ति को इतनी भयभीत नही बनाती जितनी वर्षा के पूर्व की दुर्घटनाएँ।

वर्षा का आनन्द एक अनोखा आनन्द है। जब चराचर सृष्टि जीवन से उल्लसित होकर प्रफुल्ल बन जाती है तब ऐसा कौनसा व्यक्ति होगा जो प्रसन्न न हो? कोयल की कूक और मोर का नाच किसका मन न हर लेगा? कौन व्यक्ति हरे-भरे वृक्षो और मैदानो को देखकर घूमने न निकल पडेगा? वर्षा थोडी ही रुकी कि लोग पिकनिक के लिए निकल पडते हैं। तालावो और नदियो के किनारे भीड लग जाती है। मेले का दृश्य उपस्थित हो जाता है। कोई पिकनिक का आनन्द लेता है, कोई तैरने का। कोई वर्षा की बूँदो मे खुशी-खुशी भीगता है और कोई पेडो पर या मैदानो मे दो-चार साथियो के साथ खेलने-कूदने लगता है। जब चारो ओर जीवन की वर्षा हो रही हो, चारो ओर आनन्द और उल्लास छा रहा हो, तब कौन अभागा निरानन्द और उदास रह सकता है? बगीचो, झरनो, कुजो तथा ,इसी प्रकार के अन्य रमणीक स्थानो का सौन्दर्य इस समय चौगुना हो जाता है। हवा के झोको और वर्षा की बून्दो मे नहाते वृक्ष एव लता-गुल्म इतने सुन्दर लगते हैं कि मन उनकी हरितिमा मे रङ्ग जाता है, पत्तों के ऊपर पडी हुई पानी की बूंदे मोती जैसी लगती हैं और जब वे हवा के झोके से पृथ्वी पर गिर पडती हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानो प्रकृति मुक्त हस्त से मोती लुटा रही है। जो व्यक्ति वर्षा की बूदो को ईश्वर का आशीर्वाद मानकर देखते है या उनमे नहाते हैं, वे धन्य हैं। वर्षा का सच्चा आनन्द वे ही प्राप्त कर पाते हैं।

वर्षा के लाभो की कोई गिनती नही, कोई सीमा नही। उससे सबसे वडा लाभ तो यही है कि अनाज पैदा करने का उपक्रम शुरु हो जाता है। किसान खेतो मे बीज वोता है, पौधे लहलहाते है और फसल तैयार होती है। वर्षा न हो तो हम भूखो मर जायँ। इधर पशु-पक्षियो को चारे-दाने के रूप मे भोजन मिलता है वह सब भी तो वर्षा का ही परिणाम होता है। वर्षा से नदी, तालाब और कुए भर जाते हैं तथा पीने का पानी उपलब्ध हो जाता है। हमारी दो वडी आवश्यकताएँ—अन्न तथा जल—उसी से पूरी होती हैं। तीसरी आवश्यकता है शुद्ध वायु। हरे वृक्ष वायु को शुद्ध बनाते हैं और हरे वृक्ष वर्षा के ही कारण तो लहलहाते हैं। इस प्रकार वर्षा हमारे जीवन का सारा सुख और आनन्द अपने अन्दर समेटे हुए आती है। उससे लाभ ही लाभ हैं कोई हानि नही। यदि हानि है तो उसकी अति से। जब उसके पूरे वरदान को, पूरे आशीर्वाद को हम ग्रहण नही कर पाते तो बाढ के रूप मे उसके क्रोध का शिकार बनते है। यदि इस वरदान को हम नदियो पर बाँध बाँध कर समेट सकें अथवा बड़े-बडे तालाब बनाकर उसमे सचित कर सके तो वर्ष भर चैन से गुजार सकते हैं। बाँधो और तालाबो से नहर निकाल कर वर्ष भर अपने खेतो को सीच सकते हैं और अभाव एव गरीबी के जीवन से हमेशा के लिए मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं।

अँग्रेजो के शासनकाल मे हम परतन्त्र थे। सरकार अपने स्वार्थों मे खोई हुई थी, उसे जनता की कोई परवाह नही थी। अत वह प्रकृति के इस वरदान को प्राप्त करने का क्यो प्रयत्न करती ? परिणाम यह होता था कि हमे बार-बार प्रकृति के क्रोध का शिकार होना पडता था। प्रतिवर्ष बाढ़ मे हजारो व्यक्ति बह जाते या बेघरबार हो जाते। सड़के, रेलवे लाइन और पुल टूट जाते तथा फसलो और पशुधन की जबरदस्त क्षति होती थी। किन्तु प्रसन्नता की बात है कि अब भारत स्वतन्त्र है। अब जनता की सरकार है और वह वर्षा इस वरदान को पूरी तरह समेट लेने के लिए प्रयत्नशील है। भाखरा नागल, दामोदर घाटी, चम्बल आदि बड़े-बडे बाँधो के द्वारा वह वर्षा का जल सचित कर लेने के कार्य कर रही है। इन अठारह वर्षो के समय मे इस कार्य मे आश्चर्यजनक प्रगति

हुई है और कौन नही जानता कि ईश्वर ने इस वरदान को समेट कर थोडे ही समय मे हमारा देश भी दुनियाँ के समृद्ध और उन्नत राष्ट्रो मे गिना जाने लगे। आइये,हम ईश्वर के वरदान के रूप मे वर्षा का स्वागत करें और उससे पूरे-पूरे लाभ प्राप्त करें।

२६—सहकारी खेती

१—भूमिका

२—युग की आवश्यकता

३—एक गलतफहमी और उसका निराकरण

४—सहकारी खेती के लाभ—(१) उत्पादन की वृद्धि (२) जमीन के छोटे टुकडे होने पर रोक (३) प्रेम और एकता की वृद्धि (४) पूँजीवाद का अन्त

५—उपसहार

भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। यही कारण है कि आजकल हमारे देश मे विकास की जो भी योजनाएँ चल रही हैं उनमे भूमि सुधार एव अधिक अन्नोत्पादन के कार्यों का प्रमुख स्थान है, किन्तु स्वतन्त्रता के बाद हमारे अनवरत श्रम के बावजूद भी अन्न की समस्या हल नही हो सकी है और अब भी हमें अन्न के लिए विदेशो का मुँह ताकना पडता है। हमारे देश मे ७० प्रतिशत लोग खेती का काम करते है। इसलिए देश मे किसानो का बडा महत्त्वपूर्ण स्थान है। किन्तु उनकी स्थिति अच्छी नही है। जब तक देश का यह बहुत बडा अग आर्थिक दृष्टि से उन्नत नही बनता, तब तक हमारी समस्या हल नही हो सकती। पिछले १०० वर्षों मे दुनियाँ ने विभिन्न क्षेत्रो मे बडी तेजी से प्रगति की है किन्तु हमारे देश मे खेती करने का वही तरीका अब तक चला आ रहा है जो सदियो पहले था। परिणाम यह हुआ है कि जब हम अमेरिका, रूस, चीन, जापान या इसी प्रकार के किसी अन्य उन्नत राष्ट्र से अपने देश की प्रति एकड उपज से तुलना करते हैं, तो उसमे जमीन-आसमान का अन्तर दिखाई देता है। बेचारे किसानो को साल भर श्रम करने के बाद भी पर्याप्त अनाज नही मिल पाता और यही कारण है कि वे ग्रामो को छोडकर शहरो की ओर जा रहे हैं।

किसानो की इस स्थिति को देखकर ही भारतीय-राष्ट्रीय-कांग्रेस ने अपने नागपुर-अधिवेशन मे सहकारी-खेती के सम्बन्ध मे एक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास किया। इसमे कहा गया कि 'भविष्य मे सहकारी सामूहिक खेती का तरीका अपनाया जाना चाहिए। इस तरीके के अनुसार भूमि पर यद्यपि किसानो का अपना-अपना स्वामित्व रहेगा तथापि गाँव की सारी भूमि पर वे सामूहिक रूप से मिलजुल कर खेती करेंगे और जो कुछ उत्पादन होगा उसे अपनी भूमि के अनुपात से बाँट लेंगे। जो लोग भूमिहीन होंगे उन्हे उनके श्रम के हिसाब से उत्पादन मे हिस्सा दिया जायगा। सामूहिक खेती के इस तरीके को प्रचलित करने के लिए पहला क़दम यह उठाया जायगा कि सारे देश मे सहकारी समितियो का जाल बिछाया जाय। यह काम तीन वर्ष मे पूरा कर लिया जायगा और इस बीच जहाँ भी किसान तैयार होंगे सहकारी कृषि प्रारम्भ कर दी जायगी।'

सहकारी कृषि की बात हमारे देश के लिए एकदम नई है। अत. जैसा कि प्राय होता है—इस विचार का भी कुछ लोगो ने विरोध किया। किन्तु इस सब विरोध का मूल गलतफहमी ही है। यह गलतफहमी कई प्रकार की है। कोई उसके पीछे कम्युनिस्ट प्रणाली को आते हुए देखते है, तो कोई उसे अव्यावहारिक और अप्रजातान्त्रिक मानते हैं। सबसे बडी गलतफहमी यह हुई कि इस प्रस्ताव के द्वारा अब सब लोगो को सहकारी ढग से खेती करने के लिए विवश किया जायगा। किन्तु वस्तुत ऐसी बात नही है। १० फरवरी के दिन भूतपूर्व प्रधान-मन्त्री पडित जवाहरलाल नेहरू ने उत्तर-प्रदेश के एक ग्राम मे भाषण देते हुए स्पष्टत कहा था कि सहकारी खेती किसानो पर जबरदस्ती नही लादी जायगी। उसे अपनाना या न अपनाना पूरी तरह किसान की मर्जी पर निर्भर रहेगा। वह चाहे तो उसे आज ही अपना सकता है और चाहे तो महिने दो महिने या वर्ष दो वर्ष बाद। उन्होंने फिर यह बात दोहराई थी कि—सहकारी खेती का यह मतलब नही है कि भूमि पर किसान का स्वामित्व नही रहेगा। यह प्रयत्न तो केवल इस दृष्टि से है कि देश का उत्पादन बढाने के लिए किसान मिलजुल कर खेती का काम प्रारम्भ करें। जिस प्रकार अकेले सैनिक की कोई विशेष शक्ति नही होती किन्तु सेना के अनुशासन मे बँध जाने पर

एक वहुत वड़ी शक्ति तैयार हो जाती है, उसी प्रकार उत्पादन वढाने की दिशा मे सहकारी खेती एक प्रभावशाली कदम सिद्ध होगा।

हमारे देश के सामने जितने भी वड़े-वडे प्रश्न हैं उन सवमे उत्पादन वढाने का प्रश्न सवसे ज्यादा महत्त्व रखता है। देश मे जनसख्या की वृद्धि तेजी के साथ हो रही है और यदि यही स्थिति रही तो आगामी ५५ वर्ष के वाद वह दुगुनी हो जायगी। इस वढती हुई जनसख्या के लिए अन्नोत्पादन मे वृद्धि करना आवश्यक हो जाता है। किन्तु जहाँ जनसख्या वढती है वहाँ जमीन तो उतनी ही रहती है, उसमे कोई वृद्धि नही होती। अत उत्पादन वढाने का एक यही उपाय हो सकता है कि इस प्रकार के नवीन तरीको को अपनाया जाय जिनसे प्रति एकड उत्पादन मे निरन्तर वृद्धि होती जाय।

हमारे देश मे भूमि छोटे-छोटे खेतो मे वँटी हुई है। यदि एक पिता के तीन पुत्र हुए तो पिता की मृत्यु के वाद सारी भूमि तीन टुकडो मे वँट जाती है और जव इन पुत्रो के यहाँ पुत्र होते हैं तो फिर उस भूमि के और टुकडे होते हैं। इस प्रकार जमीन निरन्तर छोटे टुकडों मे वँटती चली जा रही है। परिणाम यह होता है कि इन टुकडो पर खेती करना वडा महगा पडने लगता है। न तो उनकी ठीक तरह देख-भाल हो पाती है, न उनके लिए आधुनिक यन्त्रो का ही उपयोग किया जा सकता है। आज अमेरिका, रूस, जापान आदि जिन देशो मे हमारे देश की अपेक्षा वहुत ज्यादा उत्पादन होता है वहाँ सर्वत्र आधुनिक यन्त्रो का उपयोग किया जाता है और जमीन भी बडे-बडे प्लॉटो मे बटी रहती है। सहकारी खेती के द्वारा जहाँ छोटे टुकडे मिला कर एक किये जा सकेंगे वहाँ सव मिलकर आधुनिक यन्त्रो का उपयोग भी सरलता से कर सकेंगे। आज एक किसान के लिए, जिसके पास दस हजार एकड जमीन ही है, न तो ट्रेक्टर या पानी का पम्प खरीदना सरल होता है, न उसका ठीक-ठीक प्रयोग कर पाना ही। सामूहिक खेती इस प्रकार की सव कठिनाइयो के लिए एक अच्छा हल पेश करेगी।

सामूहिक सहकारी खेती किसानो मे प्रेम और सहयोग का वातावरण पैदा करेगी और लोगो की सकुचित मनोवृत्ति को दूर कर उनके दृष्टिकोण

को उदार वनाएगी । आज प्रत्येक ग्राम मे पार्टीवन्दी और पारस्परिक झगडो का जाल-सा विछा हुआ है । इसके कारण कुछ लोगो की खुश-हाली दूसरो की ईर्ष्या का कारण वन जाती है और जिन लोगो की फसल अच्छी होती है उन्हे दूसरे लोग येन-केन-प्रकारेण हानि पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं । कही किसी के खेत मे रात को जानवर छोड दिये जाते हैं तो कही आग लगा दी जाती है । सहकारी खेती मे इस प्रकार की समस्याओ के लिए कोई स्थान नही रहेगा । न हर आदमी को चौबीसो घण्टे खेत की रखवाली करनी पडेगी, न आग लगाने की घटनाएँ ही घटेंगी । गांव के व्यक्तियो का हित एक वन जाएगा और वे प्रेम और एकता की नवीन शक्ति का अनुभव करने लगेंगे । वे अनुभव करेंगे कि उन्हे सवके साथ जीना और सवके साथ मरना है । यह भावना उनमे ग्राम और देश के व्यापक हितो को महत्त्वपूर्ण स्थान देगी जिससे राष्ट्रीयता और विश्ववन्धुत्व की मजबूत नीव तैयार हो सकेगी ।

सहकारिता का आन्दोलन आज दुनियाँ के सभी प्रगतिशील देशो मे तेजी के साथ वढ रहा है । उसमे जहाँ पारस्परिक एकता, सहयोग और सद्भावना का प्रसार होता है वहाँ थोड़ी-थोडी पूजी और छोटी-छोटी शक्ति के सगठन से काफी पूजी और शक्ति सचित हो जाती है और उसके वल पर वडे-वड़े काम कर सकना सरल हो जाता है । सहकारी आन्दोलन की एक विशेपता यह है कि वह लाभ को सव सदस्यो मे समान रूप से वाँटता है, जिससे पूजीवादी व्यवस्था की वुराइयो का अन्त होता है । किसानो की आर्थिक स्थिति के सुधार का तो यह एक अचूक साधन सिद्ध होगा ।

वहुत से लोगो की शङ्का है कि सहकारी खेती के नाम पर सरकार उसी प्रणाली को लाना चाहती है जो रूस मे प्रचलित है । इस प्रणाली को सामूहिक खेती के नाम से पुकारा जाता है । किन्तु सामूहिक खेती मे वडा भारी अन्तर है । सामूहिक खेती मे सव लोगो को मिलाकर खेती करने के लिए विवश किया जाता है । उसमे व्यक्तित्व के विकास के लिए वहुत कम अवसर रह जाता है और व्यक्ति मे काम करने का उत्साह भी घटता जाता है । किन्तु सहकारी खेती मे ये वुराइयाँ नही होती । वह

एक प्रजातान्त्रिक प्रणाली है । उसमे व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के लिए पर्याप्त अवसर होता है और चूँकि अपने श्रम का लाभ भी उसे भूमि के अनुपात से मिलता है, अत: उत्साह कम होने का कोई कारण नही रहता ।

इस प्रकार वर्तमान स्थिति मे उत्पादन बढाने तथा ग्रामीण जनता के जीवन का स्तर ऊँचा करने का एक मात्र उपाय सहकारी खेती ही है । उसके द्वारा जमीन की उर्वरा शक्ति बढाने के प्रयत्न सरलता-पूर्वक किये जा सकते हैं—उदाहरणार्थ अच्छे बीज, खाद और सिंचाई का प्रबन्ध किया जा सकता है तथा ट्रैक्टर जैसे औजार एव विशेषज्ञो की सलाह प्राप्त की जा सकती है । सरकार और विज्ञान दोनो की सहायता ग्रामो तक पहुँचना सरल हो जाता है । यदि यह हो गया तो देश मे समाजवादी व्यवस्था लाना बडा सरल हो जाता है ।

आज हमारे सामने यह एक महत्त्वपूर्ण कार्य है कि शङ्का-कुशङ्काओ को छोडकर खुले मस्तिष्क से इस पर विचार करें तथा यदि हमे इसमे कोई दोष प्रतीत न होता हो तो उसे अपनाने का प्रयत्न करे । यदि कुछ विचारशील किसान साहस के साथ इस दिशा मे कदम बढा देते है तो फिर उनकी सफलता अनेक किसानो को प्रोत्साहित करेगी और सहकारी खेती प्रारम्भ हो जायगी । इसमे कोई सन्देह नही कि सहकारी खेती का भविष्य बडा उज्ज्वल है ।

२७—सामुदायिक विकास योजनाएँ

१—सामुदायिक विकास योजना का अर्थ
२—उसका उद्देश्य
३—कार्य-क्षेत्र
४—योजनाओ के रूप
५—कार्य-विधि
६—व्यवस्था
७—उपसहार

भारत ग्रामो का देश है । उसके लगभग तीन चौथाई निवासी ग्रामो मे रहते हैं । शहरो मे सुखी जीवन के बहुत से साधन उपलब्ध रहते

हैं जबकि ग्रामो मे उनका अभाव-सा है । वहाँ न यातायात के अच्छे साधन हैं, न सन्देश प्रसारण के । न शिक्षा की समुचित व्यवस्था है, न उद्योग-धन्धो की । यही कारण है कि हमारे देशवासियो का एक बहुत बडा भाग अशिक्षित, निर्धन, रोगग्रस्त और पिछडा हुआ है । यदि यही स्थिति बनी रहती है तो हमारी स्वतन्त्रता का क्या अर्थ ? फिर प्रजातन्त्रीय शासन व्यवस्था से भी क्या लाभ ? वस्तुत हमारी आजादी की लडाई इसी प्रश्न को लेकर प्रारम्भ हुई थी और आजादी प्राप्ति के बाद वही हमारी सरकार और नेताओ के सामने प्रमुख प्रश्न है । ग्रामोन्नति अथवा ग्रामोत्थान के अभाव मे न तो हम शक्तिशाली और सम्पन्न भारत की कल्पना कर सकते हैं, न हमारी स्वतन्त्रता एव जनतन्त्रीय व्यवस्था का उद्देश्य ही पूरा हो सकता है । अत हमारी सबसे बड़ी आवश्यकता है ग्रामोत्थान अथवा ग्रामो का सर्वाङ्गीण विकास । सामुदायिक विकास योजना इसी उद्देश्य से बनाई गई है ।

सामुदायिक विकास योजना का अर्थ है वह योजना जो गाँवो के सर्वाङ्गीण विकास के लिये तैयार की गई है । यह एक विस्तृत योजना है । यह ग्रामो के विकास के किसी एक पक्ष पर ही नही, उनके सर्वाङ्गीण विकास पर बल देती है । भारत की सामुदायिक विकास योजनाओ के अध्येता अमेरिकन-विशेषज्ञ श्री लोश बाऊ के शब्दो मे, "सामुदायिक विकास योजना गहन विकास की दिशा मे एक सगठित एव सुआयोजित प्रयत्न है ।" ग्रामीण जनता का पिछडापन दूर करके उन्हे सुखी और समृद्ध बनाना ही इन योजनाओ का प्रमुख उद्देश्य है । ये योजनाएँ शिक्षा, स्वास्थ्य,सफाई, रोजगार आदि से सम्बन्धित सुविधाएँ ग्रामीण जनता को प्रदान करने की दृष्टि से तैयार की गई है । वे ग्रामीण जनता को शिक्षित, स्वस्थ्य, स्वावलम्बी और सुसस्कृत नागरिक बनाना चाहती है । सरकार ने इन योजनाओ का उद्देश्य बताते हुए कहा है—"सामुदायिक विकास योजना का उद्देश्य यह होगा कि योजना-क्षेत्र मे पुरुष-स्त्री एव शिशुओ के लिए एक ऐसा आदर्श उपस्थित किया जाय कि उन्हे जीने का अधिकार मिल सके और इसके लिए योजना की प्रारम्भिक स्थिति मे योजना की समस्या को अधिक महत्त्व दिया जा सके । योजनाओ का मुख्य उद्देश्य

है खाद्य एव कृषि उत्पादन मे शीघ्रातिशीघ्र वृद्धि करना । इसके अतिरिक्त शैक्षणिक विकास, स्वास्थ्य सुधार, नूतन शिल्प तथा व्यवसायो का भी श्रीगणेश करना बहुत आवश्यक है, जिससे योजना के द्वारा ग्रामीण बन्धुओ के लिए आर्थिक सगठन के नये स्तर प्राप्त किये जा सके एव नवीन ज्ञान और नवीन जीवन-विधियो के प्रति ग्रामीण जनता मे उत्साह उत्पन्न किया जा सके । ये सब इसके उद्देश्यो के अन्तर्गत आते हैं ।"

सामुदायिक विकास योजनाओ का कार्य-क्षेत्र बडा विस्तृत है । इसके अन्तर्गत ग्रामीण जनता के जीवन के विकास के अनेक कार्य आ जाते हैं । कृषि के विकास की दृष्टि से वे अनुर्वर एव बजर भूमि को उर्वर बनाने एव सिचाई के छोटे-छोटे कार्यों, नहरो, तालाबो, नल-कूपो, कुओ आदि मे सिचाई का समुचित प्रबन्ध करने का प्रयत्न करती हैं । वे किसानो को कृषि की नई प्रणालियाँ जैसे जापानी ढग से चावल की खेती करना, उत्तम बीजो की व्यवस्था करना, खेती के सुधरे हुए यन्त्रो का प्रयोग करना तथा फल व तरकारियो का उत्पादन बढाने के कार्य मे किसानो का मार्गदर्शन और सहायता करती है । वे किसानो को ऋण से मुक्त करने का प्रयत्न करती है और इसके लिए उन्हे कम ब्याज पर कर्ज दिलाने की व्यवस्था करती हैं । इसके अतिरिक्त, वे पशुपालन, पशु-चिकित्सा, पशुओ की नस्ल-सुधार और वनमहोत्सव के द्वारा अधिक पेड लगाने का भी प्रबन्ध करती है ताकि पशुधन की उन्नति और जङ्गलो का विस्तार हो ।

सामूहिक विकास योजना शिक्षा के काम को भी बडा महत्त्व देती है । वह प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य एव नि शुल्क करने का प्रयत्न करती है और मिडिल एव हायर सैकण्ड्री तक की शिक्षा की भी व्यवस्था करती है । इन योजनाओ के अनुसार प्रौढ व्यक्तियो की शिक्षा का भी प्रबन्ध किया जाता है तथा गाँव-गाँव मे वाचनालय एव पुस्तकालय बनाये जाते हैं । इनकी ओर से समय-समय पर शैक्षणिक फिल्म भी दिखाई जाती हैं ।

नई-नई सडकें बनाने का काम भी इन्ही योजनाओ के द्वारा किया जाता है। ये नई सडके बनवाती हैं, मोटर यातायात की व्यवस्था करती हैं

तथा पशुओ के यातायात के विकास का भी प्रयत्न करती हैं। उद्योग-धन्धो का विकास करने के लिये ये प्रोत्साहित करती हैं और उसके लिए कर्ज, प्रशिक्षण, अनुदान आदि की व्यवस्था करती हैं। ये कृषको, विस्तार-कार्य के सहायको, प्रबन्धकर्त्ताओ, शिल्पियो और स्वास्थ्य कार्य-कर्त्ताओ के प्रशिक्षण की व्यवस्था करती हैं ताकि विकास-कार्यों के लिए पर्याप्त व्यक्ति मिल सकें।

ये योजनाएँ सफाई और जनस्वास्थ्य की भी व्यवस्था करती हैं और इसके लिए डी० डी० टी० के छिडकाव, रोगियो की चिकित्सा, तथा गर्भवती स्त्रियो की प्रसूति की भी व्यवस्था करती हैं। लोगो को नये-नये काम-धन्धे दिलाने तथा सिखाने का काम भी ये ही करती है ताकि लोगो की आर्थिक-स्थिति सुधर सके। ये गांवो मे अच्छे साफ-सुथरे हवादार तथा नये ढग के मकानो की व्यवस्था भी करती हैं तथा स्थानीय सस्कृति का ध्यान रखते हुए सामुदायिक मनोरजन जैसे मेलो, नाटको, प्रदर्शनियो आदि का भी आयोजन करती है।

सामुदायिक विकास योजनाओ को दो रूपो मे बाँटा जा सकता है। पहली मूल ग्रामीण-योजना तथा दूसरी मिश्रित सामूहिक-योजना। मूल ग्रामीण सामुदायिक योजना मे दो लाख व्यक्तियो के ३०० ग्राम रखे जाते हैं। इन ग्रामो मे रहने वाले लोगो की स्वास्थ्य, शिक्षा, यातायात, कृषि आदि की दृष्टि से प्रगति करना इनका लक्ष्य होता है। प्रत्येक योजना १०० ग्रामो के ३ खण्डो मे विभाजित है। मिश्रित सामुदायिक योजना के अन्तर्गत लघु-उद्योग तथा कृषि-विकास के विविध अङ्गो पर जोर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त इन योजनाओ का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रो मे नागरिक सुविधाओ की व्यवस्था करना भी होता है।

सामुदायिक विकास योजनाओ को सुदृढ बनाने के लिए तीन खण्डो मे विभक्त किया जाता है। प्रत्येक खण्ड मे १०० ग्राम होते हैं। शेष दो भाग तीसरे वर्ष कार्य-क्षेत्र मे पदार्पण करते हैं। तीसरे वर्ष तक तीनो खण्डों का कार्य लगभग पूरा हो जाता है। इन तीन वर्षों की अवधि मे प्रत्येक योजना पर लगभग ६५ लाख रुपया खर्च हो जाता है। इस योजना का श्रीगणेश २ अक्टूबर, गाँधी-जयन्ती के शुभ अवसर पर सन् १९५४ मे

किया गया था। उस समय ५५ केन्द्रो मे काम प्रारम्भ किया गया और सरकार ने इस कार्य मे कुल १३ करोड ४८ लाख रुपया खर्च किया। जनता ने भी विकास-कार्यों मे पूरा-पूरा योग दिया और शरीर-श्रम, भूमि एव नकद चन्दे के रूप मे ७ करोड ४८ लाख रुपये दिये। इस प्रकार पहले ही वर्ष लगभग २१ करोड रुपया कार्यों पर व्यय हुआ जिसमे एक तिहाई भाग जनता का था।

इन योजनाओ के सुसचालन के लिए केन्द्र-समिति का निर्माण किया गया है। यह समिति केवल नीति निर्धारित करती है। नियोजन समिति के अध्यक्ष भारत के प्रधानमन्त्री होते हैं। उनके सदस्य भी इस केन्द्रीय समिति के सदस्य होते हैं। योजना की व्यवस्था के लिए केन्द्र के मन्त्रियो की भी एक समिति बनाई गई है जो सुयोग्य परामर्शदाताओं की सलाह से योजनाओ का सचालन करती है। प्रत्येक राज्य मे मुख्य-समिति की देखभाल मे राज्य-समिति भी बनाई गई है। प्रत्येक योजना का एक अध्यक्ष होता है। प्रान्तीय-सरकारो के ब्लॉक उसकी सहायता करते हैं। इसके अतिरिक्त जिले मे एक-एक योजना-परामर्शदात्री-समिति भी होती है जिसमे विधान-सभा के सदस्य, जिला-परिषद् के सदस्य तथा अन्य योग्य व्यक्ति होते है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि ग्रामीण विकास के लिए यह एक मजबूत और आगे बढा हुआ कदम है। इस कार्य मे ग्रामो का नक्शा बदलने की योजना है। इसमे कोई सन्देह नही कि पिछले वर्षों मे इन योजनाओ ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है और ग्रामो को पुरानी गिरी हुई स्थिति से काफी आगे बढाया है। किन्तु जितनी अच्छी तरह इनको कार्यान्वित किया जाना था उतने अच्छे ढग से ये कार्यान्वित की गई होती तो देश का नक्शा ही बदल गया होता। पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार तो इन्हे १९५६ के अन्त तक पूरा हो जाना चाहिए था किन्तु वह अभी तक चल रहा है। इनमे होने वाली ढीलढाल और पोलपाल के लिए हमे अपने राष्ट्रीय चरित्र को ही दोषी ठहराना होगा। क्या हम आशा करें कि शीघ्र ही हम अपनी इस कमजोरी को निकाल बाहर करेंगे ताकि देश तेजी से प्रगति कर सके और हमारे देश मे फिर सुनहले दिन आ सकें।

२८—हमारी नदी-घाटी योजनाएँ

१—आर्थिक विकास की समस्या
२—जल-शक्ति के विकास का इतिहास
३—नदी-घाटी योजनाओ से लाभ
४—नदी-घाटी योजनाओ का परिचय
५—योजनाओ की प्रगति
६—उपसहार

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हमारे देश के सामने जो समस्याएँ उपस्थित हुईं उनमे आर्थिक विकास की समस्या सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। यदि आर्थिक दृष्टि से भारत अविकसित बना रहता है तो उसकी स्वतन्त्रता का कोई अर्थ नही रहता। जहाँ तक प्राकृतिक साधनो और जन-शक्ति का प्रश्न है हमारे पास किसी प्रकार की कमी नहीं है। प्रकृति ने हमे अच्छी भूमि, पर्याप्त जल, खनिज और लम्बे चौडे वन-पर्वत आदि प्रदान किये हैं। इधर हमारे पास जनशक्ति की कमी नही है। चालीस करोड की जन-सख्या वाला यह विशाल देश अपने आप मे वैसे ही एक बडी शक्ति है। किन्तु दुर्भाग्य है कि हमारे यहाँ बेकारी, भुखमरी, अकाल आदि की समस्याएँ हल नही हो पाती हैं। अग्रेजी-शासन से हमे जो-जो अभिशाप मिले उनमे सबसे बडा यही है। उसका हमारे देश से शोषण का ही नाता रहा। एक लम्बे अर्से तक वे हमारा शोषण करते रहे। परिणाम यह हुआ कि हम दुनियाँ के साथ कदम से कदम मिलाकर चलना तो दूर अपनी रोटी की समस्या ही हल नही कर पा रहे हैं। नदी-घाटी योजनाएँ इसी समस्या को हल करने के लिए प्रारम्भ की गई हैं।

हमारे देश मे जल का अपरिमित भण्डार है। प्रतिवर्ष पर्याप्त वर्षा होती है और नदियाँ पानी से इतनी भर जाती हैं कि बाढ के कारण सैकडो ग्राम तबाह हो जाते हैं। उनको फिर से बसाने, सहायता कार्य प्रारम्भ करने और टूटे हुए पुल, सडक, रेलवे लाइन आदि को बनाने की समस्याएँ खड़ी होती रहती हैं। जो पानी ईश्वर का वरदान है उसे हम अपनी अक्षमता के कारण समेट नही पाते, उसका सदुपयोग नही कर पाते। फलत वह हमारे कष्ट और परेशानी का कारण बनता है। यदि हम इस

दैवी वरदान का कोई अच्छा उपयोग कर सकें तो वह देश के लिए वडा उपयोगी हो सकता है। अभी तक हम अपने जल के केवल १० प्रतिशत भाग का ही उपयोग कर पाये हैं। हम उस दिन की प्रतीक्षा बड़ी उत्सुकता से कर रहे है जवकि शत-प्रतिशत जल का उपयोग हो सकेगा।

जल-शक्ति के उपयोग की बात हमारे देश के लिए नई नही है। प्राचीन हिन्दू-काल के राजा लोग नहरो की उपयोगिता जानते थे और उन्होने जगह-जगह कुछ नहरे वनवाई थी। किन्तु उस समय वे केवल सिचाई का लाभ ही उससे प्राप्त करते थे। वस्तुत उस समय जनसख्या वहुत कम थी और थोडी सिचाई से ही देश की आवश्यकताएँ पूरी हो जाती थी। किन्तु, जैसे-जैसे जन-सख्या वढी, जीविका की समस्या जटिल वनने लगी वैसे-वैसे यह अनुभव किया जाने लगा कि प्राकृतिक साधनो का अधिकाधिक उपयोग किया जाय। मुस्लिम-काल मे नहरो का कुछ विकास और हुआ। अव वे यातायात का साधन भी वनी और उनके द्वारा माल को भी एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाया जाने लगा। शाहजहाँ और शेरशाह ने इस दिशा मे उल्लेखनीय कार्य किया। ब्रिटिश शासन-काल मे इन नहरो की मरम्मत की गई और कुछ नई नहरें भी खोदी गई। किन्तु सरकार ने यह कार्य उदार हृदय से नही किया। अधूरे मन से किया हुआ उसका प्रयत्न कोई अधिक लाभदायी नही हो सका।

सन् १९१९ मे जिन सुधारो की घोषणा ब्रिटिश सरकार ने की उनके अनुसार सिंचाई को प्रान्तीय विषय वना दिया गया और प्रातीय सरकार सिंचाई-कार्य करने लगी। इससे प्रत्येक प्रान्त को अपने साधनो के विकास का सुअवसर मिला। सन् १९३१ मे भारत सरकार ने राजकीय कमीशन की सिफारिशो के अनुसार एक 'सिंचाई समिति' की स्थापना की। इस समिति का कार्य था सिंचाई विषयक कार्यों मे समन्वय स्थापित करना तथा विभिन्न राज्यो के वीच सूचनाओ की अदला-वदली करना। साराश यह कि इस समय तक नदी-योजनाएँ सिंचाई तथा जल-विद्युत् उत्पादन का ही काम करती थी इससे अधिक नही। सन् १९४५ तक यही स्थिति रही। सन् १९४५ मे सवसे पहले एक केन्द्रीय जल-मार्ग, सिंचाई तथा जलयान आयोग की स्थापना

की गई और साथ ही एक टैक्नीकल-शक्ति-परिषद् की स्थापना की गई जो केन्द्र से सम्बन्धित थी। इस आयोग का उद्देश्य था जल-शक्ति पर नियन्त्रण रखना, तथा उसके उपयोग और सरक्षण की योजना बनाना। इसके एक वर्ष बाद ही सन् १९४६ मे केन्द्रीय भूगर्भ-जल-सगठन नामक एक और सस्था की स्थापना हुई।

जल-शक्ति के विकास की दिशा मे महत्त्वपूर्ण कदम है—बहुउद्देशीय नदी-घाटी योजनाओ का सूत्रपात। ये योजनाएँ एक साथ अनेक उद्देश्य पूरे करती है। इनके उद्देश्य हैं—बाढ पर नियन्त्रण रखना, सिंचाई की व्यवस्था करना, जल-विद्युत्-शक्ति उत्पन्न करना और मत्स्य उद्योग का विकास करना। इन योजनाओ को सबसे पहले कार्यान्वित करने का श्रेय केन्द्रीय जल-राशि-सिंचाई एव जलयान की सिफारिशो को है। योजना कमीशन ने भी इसका समर्थन किया। फल यह हुआ कि प्रथम पचवर्षीय योजना मे अनेक नवीन योजनाओ को आरम्भ करने की व्यवस्था की गई। प्रथम पचवर्षीय योजना मे जो नदी-घाटी योजनाएँ सम्मिलित करने का निश्चय किया गया, वे इस प्रकार हैं—

योजनाएँ	योजनाकाल मे कुल व्यय (करोड रुपयो मे)	योजना मे सींचा जाने वाला क्षेत्र (लाख एकडो मे)
दामोदर घाटी योजना	४१ ७०	५ ९५
भाखडा नागल योजना	७७ ५०	१३ ६१
हरिके योजना	१० ६२	—
हीरा-कुण्ड योजना	४४ ००	१ ६१
अतिरिक्त व्यय की व्यवस्था	५० ००	—
नई योजनाएँ	४० ००	३९ २०
योग	२६३·८२	६० ३७

इन योजनाओ के अनेक लाभ है। वे जिन क्षेत्रो मे प्रारम्भ की जाती हैं वहाँ के अनेक विकास-कार्य अपने मे समेट लेती है। वे हमारे आर्थिक विकास मे बडा योग देती हैं। इनमे किसी भी साधन का अपव्यय नही होता और ये सभी प्रकार की क्षेत्रीय आवश्यकताओ की पूर्ति करती हैं। इन योजनाओ से सबसे बडा लाभ है सिंचाई की व्यवस्था। हमारे देश मे अनावृष्टि का खतरा बना ही रहता है। यदि वृष्टि समय पर नही होती है तो बेचारा कृषक सकट मे पड जाता है और देश मे भुखमरी या अकाल का सकट छा जाता है। नदी-घाटी योजनाएँ वर्षा के इस खतरे को दूर करने मे बडा महत्त्वपूर्ण योग प्रदान करती हैं। उनके द्वारा कृषक अपने खेतो को जब चाहे तब और जितना चाहे उतना पानी दे सकता है और अच्छी फसल पैदा कर सकता है। जब देश का बँटवारा हुआ और पाकिस्तान बना, तो भारत को सिंचाई की जाने वाली ४८० लाख एकड भूमि मिली। यदि इतनी भूमि की ठीक प्रकार सिंचाई न की जाय तो खाद्यान्नो की कमी पडना निश्चित है। अत. नदी-घाटी योजनाओ का हमारे लिए बडा महत्त्व है।

ये नदी-घाटी योजनाएँ बाढ पर नियन्त्रण करने मे भी बडा योग देती हैं। बाढ का खतरा तो हमारे देश मे सदा बना ही रहता है। बाढो से जहाँ मकानो, मनुष्यो और पशुओ को हानि पहुँचती है वहाँ फसल भी चौपट हो जाती है। यातायात वन्द हो जाता है और प्रलय का सा दृश्य उपस्थित हो जाता है। नदी-घाटी योजनाओ के द्वारा नदी पर बाँध बनाया जाता है और अपार जलराशि इकट्ठी करली जाती है। इससे पानी का भण्डार कायम हो जाता है और बाढ नही आने पाती। जो जल विनाश का कारण बनता है वही प्रकाश, सिंचाई और उद्योग-धन्धो के लिये उपयोगी बना लिया जाता है। ये योजनाएँ काफी बडी है और इनको पूरा करने मे हजारो मजदूर, इन्जीनियर, सामान्य कर्मचारी और टैक्नीकल स्टाफ की आवश्यकता होती है। इससे बेकारी की समस्या हल होती है। इन योजनाओ से बिजली पैदा

होती है जिससे देश के औद्योगीकरण मे बडी मदद मिलती है। गाँव-गाँव मे विजली पैदा की जाती है और उस बिजली से अनेक छोटे-मोटे उद्योग-धन्धे खोले जा सकते हैं। इससे आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त होता है।

इन सब बातो को ध्यान मे रखकर तथा रूस के उदाहरण से प्रेरणा लेकर हमारे देश मे भी सन् १९४५ मे केन्द्रीय जलशक्ति, सिंचाई एव जलयान आयोग ने अनेक नदी-घाटी योजनाएँ तैयार की। इनमे नदियो पर वाँध बाँध कर वाढ़ो को रोकने, जल से विद्युत् तैयार करने और सिंचाई सम्वन्धी सुविधाओ की व्यवस्था की गई। इस आयोग ने १७२ नदियो पर लागू करने के लिए १३५ योजनाएँ तैयार की। हमारी सरकार ने योजना-आयोग की नियुक्ति के पहले ही वहुत-सी योजनाएँ कार्यान्वित कर दी थी। इन सब योजनाओ पर कुल मिलाकर अनुमानत २,००० करोड रुपये खर्च करना तय किया गया। जब ये योजनाएँ पूरी हो जायँगी, इनसे लगभग ४००, ४५० एकड़ भूमि मे सिंचाई हो सकेगी।

प्रथम पचवर्षीय योजना मे उन्ही नदी-घाटियो को चुना गया जिन पर पहले कुछ काम हो चुका था और जिनसे यह आशा थी कि उनके पूरा हो जाने पर खाद्यान्न का उत्पादन बढ जायगा। इन योजनाओ पर लगभग ७६५ करोड रुपया खर्च किया गया। इसमे से १२५ करोड रुपया प्रथम पचवर्षीय योजना के पूर्व ही व्यय हो चुका था। ५६२ करोड रुपया शक्ति एव विजली पर व्यय किया जाना था। सन् १९५१ से ५६ तक प्रथम पचवर्षीय योजना की अवधि मे निम्न प्रकार रुपया व्यय किये जाने का निश्चय किया और उससे निम्न प्रकार सिंचाई के क्षेत्रफल मे वृद्धि हुई—

योजनाएँ	योजनाकाल मे प्रस्तावित व्यय (करोड रुपयो मे)	योजनाकाल मे अतिरिक्त सिचाई की व्यवस्था लाख एकडमे,	योजनाओ के पूरा हो जाने पर सिचाई की वृद्धि (लाख एकडमे)
माखडा नागल (केन्द्रीय सरकार)	९९ ९	१६ ६	
दामोदर घाटी (")	६२ ७	६ ०	३६ ०
हीरा कुण्ड (")	६१ २	२ ६	११ ४
काकरापार (बम्बई)	५ ६	३ ९	१७ ८
तुगभद्रा (मद्रास व हैदरावाद)	३१ १	३ २	६ ५
मच्छकुण्ड (मद्रास व उडीसा)	११ ५	—	७ ०
मयूराक्षी (पश्चिमी बगाल)	१२ ४	६ ०	—
लोअर भवानी (मद्रास)	४ ९	१ ३	६ ०
घाट प्रथा (बम्बई)	४ ५	० ५	२ १
गगापुर (बम्बई)	२ ३	० १	१ ०
कोसी भाग १			० ५
कोयना भाग १			
कृष्णा	४० ०	—	३८ २
चम्बल भाग १			
रिहन्द			
अन्य	२२३ ३	४७ ४	७६ १
योग	५५९ ४	८७ ६	२०२ ६

प्रथम पचवर्षीय योजना के पहले ३ वर्षों मे भाखरा नागल, हरिके, दामोदर घाटी, हीरा कुण्ड, काकरापार बाँध, मयूराक्षी योजना तथा तुगभद्रा नदी-घाटी योजना को कार्यान्वित किया गया। बाद मे, कोसी नदी योजना को भी इसमे सम्मिलित कर लिया गया। उसके बाद यह निश्चित किया गया था कि आर्थिक साधनो की उपलब्धि हो जाने पर कोसी बाँध, कृष्णा, कोयना, चम्बल और रिहन्द बाँध पर कार्य प्रारम्भ किया जाय। हमारे लिये यह बडी प्रसन्नता का विषय है कि ये सब योजनाएँ लगभग पूरी हो चुकी है और अब छोटी-छोटी अनेक योजनाएँ हाथ मे ली

जा रही है। अब राजस्थान मे एक लगभग ३००० फीट लम्बी नहर बनाने का काम भी बहुत कुछ पूरा हो गया है और जो भूमि वर्षों से बजर पडी थी वह इन योजनाओ के प्रसाद से लहलहाने लग जायगी।

इसमे कोई सन्देह नही कि नदी-घाटी योजनाएँ हमारे देश के सुनहले भविष्य की योजनाएँ है। इन योजनाओ ने देश के आर्थिक नियोजन मे बडा उत्साह उत्पन्न किया है। अब इनका लाभ हमको मिलना प्रारम्भ हो रहा है। २-४ वर्षों के बाद जब ये बिल्कुल पूर्ण होकर लाभ पहुँचाने लगेंगी तो न अनाज की कमी रहेगी और न बेकारी, गरीबी आदि का कोई चिह्न शेष रह न जायगा।

२९—पचवर्षीय योजनाओ की उपलब्धि

१—भूमिका
२—पचवर्षीय योजनाओ पर एक दृष्टि
३—उनकी उपलब्धियाँ
  (क) राष्ट्रीय आय मे वृद्धि
  (ख) कृषि सम्बन्धी उन्नति
  (ग) शक्ति के साधनो मे वृद्धि
  (घ) सामुदायिक विकास
  (ड) उद्योग-धन्धे तथा खनिज पदार्थ
  (च) लघु-उद्योगो का विकास
  (छ) सामाजिक सेवा
  (ज) अन्य विकास कार्य
४—उपसहार

सन् १९४७ मे हमारा देश स्वतन्त्र हुआ। स्वतन्त्रता प्राप्त करते ही हमारे देश के दूरदर्शी नेताओ ने देश के आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए पचवर्षीय योजनाओ का क्रम आरम्भ किया और यह दिखा दिया कि वे अपने गुरुत्तर उत्तरदायित्व के प्रति कितने सजग और क्रियाशील हैं। अब तक दो पचवर्षीय योजनाएँ पूरी हो चुकी हैं। इन योजनाओ के द्वारा हम दुनियाँ के प्रगतिशील राष्ट्रो की श्रेणी मे खडे होते जा रहे है। अपनी आर्थिक और औद्योगिक स्थिति सुधारने मे हमे इन योजनाओ ने बडा योग दिया है।

शासन की बागडोर हाथ मे लेते ही हमारे देश के नेताओ ने देश की आर्थिक स्थिति सुधारने और औद्योगिक कार्यक्रमो को आगे बढाने के लिए पचवर्षीय योजनाओ को प्रारम्भ करने का निश्चय किया और तदानुसार सन् १९५१ मे देश की आर्थिक और औद्योगिक प्रगति के लिए भारतीय योजना-आयोग ने पचवर्षीय योजनाओ का प्रस्ताव किया। इस प्रस्ताव के अनुसार प्रथम योजना का श्रीगणेश हुआ। प्रथम योजना की कार्यावधि अप्रेल सन् १९५१ से लेकर मार्च सन् १९५६ ई० तक थी। प्रथम योजना के बाद अप्रेल सन् १९५६ से द्वितीय योजना प्रारम हुई जो मार्च १९६२ मे समाप्त हो गई। इन दोनो योजनाओ के १० वर्ष के समय मे हमारे देश ने अभूतपूर्व उन्नति की है। इस समय मे जहाँ हमारी राष्ट्रीय आय मे वृद्धि हुई है वहाँ कृषि पदार्थों के उत्पादन मे भी पर्याप्त वृद्धि हुई है। सरकारी आँकडो के अनुसार प्रथम तथा द्वितीय योजनाओ मे एक खरब से कुछ अधिक रुपये खर्च किये गये। प्रथम पचवर्षीय योजना मे सन् १९५१ से सन् १९५६ तक सरकारी-क्षेत्र मे १५६० करोड रुपयो का नियोजन हुआ। इस प्रकार कुल व्यय ३३६० करोड रुपये हुआ। द्वितीय पचवर्षीय योजना मे कुल व्यय लगभग सात हजार करोड रुपया हुआ जो कि पहली योजना से बहुत अधिक है।

इन दस वर्षों के समय मे दोनो योजनाओ की उपलब्धि बडी आकर्षक और उत्साहवर्धक रही है। सबसे अधिक महत्त्व की बात है—राष्ट्रीय आय मे वृद्धि। योजना आयोग का मत था कि दोनो पचवर्षीय योजनाओ के बाद राष्ट्रीय आय मे ४२ प्रतिशत तथा प्रति व्यक्ति औसत आय २० प्रतिशत बढ जायगी। कृषि-सम्बन्धी उत्पादनो मे वृद्धि होने के कारण पहली योजना के बाद १८ प्रतिशत की वृद्धि राष्ट्रीय आय मे हुई थी, द्वितीय योजना मे २५ प्रतिशत वृद्धि का अनुमान किया था, जो लगभग पूरा हो गया है।

कृषि सम्बन्धी उपज मे भी पर्याप्त सफलता मिलने की आशा है। आयोग का अनुमान है कि दोनो योजनाओ के पूरा होने पर अनाज की उपज ५२४ लाख टन से बढकर ७५० लाख टन हो जायगी और तिलहन की उपज ४१ लाख टन से बढकर ७२ लाख टन। कपास की उपज २९

लाख गाँठ से बढकर ५४ लाख गाँठ तथा गुड और चीनी का उत्पादन ५६ लाख टन से बढकर ७२ लाख टन हो जायगा। आयोग का यह अनुमान थोडे-बहुत अन्तर के साथ लगभग पूरा होता हुआ प्रतीत होता है। कृषि सम्बन्धी उत्पादन का सूचनाक सन् १६५०-५१ मे केवल ६५ ६ था। सन् १६६०-६१ मे ही वह १३५ टन हो चुका है। क्या यह प्रगति सन्तोषजनक नही कही जा सकती ?

पचवर्षीय योजनाओ की दूसरी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है—शक्ति के साधनो मे वृद्धि। सन् १६५०-५१ मे हमारे देश मे बिजली उत्पादन की शक्ति २३ लाख किलोवाट थी। अब १६६०-६१ के अन्त तक वह ५८ लाख किलोवाट हो गई है। द्वितीय योजना से कोयला, सीमेट, इस्पात आदि मूल उद्योगो के विकास का कार्य भी प्रारम्भ किया गया। द्वितीय योजना के अन्त तक अनुमान है कि १२०० मील लम्बी नई रेलवे-लाइन बिछा दी जायगी और ८८० मील लम्बे मार्ग पर बिजली की रेले चलने लगेंगी। रेल के एजिन बनाने के कारखानो, टाटा व चितरजन लोकोमोटिव कम्पनी मे क्रमश ३०० और २०० एञ्जिन के निर्माण की योजना बनाई गई है। योजनावधि मे ५०० करोड रुपया डाक-तार तथा टेलीफोन के विकास पर खर्च किया गया है और उसके कारण इसका भी पर्याप्त विकास हुआ है।

प्रथम पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सारे देश मे सामुदायिक योजना का विस्तार किया गया है। ये गाँवो के सर्वाङ्गीण विकास की योजनाएँ है। अक्टूबर सन् १६६३ के अन्त तक ये देश के प्रत्येक ग्राम मे पहुँच जायँगी। इस योजना ने ग्रामो की आर्थिक, सामाजिक और औद्योगिक स्थिति के विकास मे बडा योग दिया है।

उद्योग-धन्धो तथा खनिज पदार्थ के उत्पादन के सम्बन्ध मे भी इन दोनो योजनाओ ने काफी सफलता प्राप्त की है। इस सम्बन्ध मे योजना आयोग ने अपना लक्ष्य इस प्रकार निर्धारित किया था—(१) ऐसे यन्त्रो का निर्माण करना जो कृषि, सिंचाई और बिजली उत्पादन की आवश्यकताओ की पूर्ति कर सके। (२) लोहा, इस्पात और रासायनिक

वस्तुओ का उत्पादन करने वाले उद्योगो की उत्पादन शक्ति बढाना। (३) उन कारखानो का समुचित लाभ प्राप्त करना जो जनता की आवश्यकताओ की पूर्ति करने वाले माल के उत्पादन मे लगे हुए हैं। साराश यह है कि योजना-आयोग का लक्ष्य था औद्योगिक दृष्टि से सर्वाङ्गीण उन्नति की दिशा मे कदम बढाना। अपने इस लक्ष्य की प्राप्ति मे उसने पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। पिछले १० वर्षों मे उसने वुनियादी उद्योगो, मशीन तैयार करने वाले उद्योगो तथा अन्य प्रकार के छोटे उद्योगो मे पर्याप्त उन्नति की है। पहली योजना के प्रारम्भ होने के पूर्व हमारे देश मे कुल १० लाख टन लोहे का उत्पादन होता था। पहली पचवर्षीय योजना के बाद १३ लाख टन हो गया और अब दूसरी पचवर्षीय योजना के वाद वह ४५ लाख टन हो गया है। क्या इतनी वडी सफलता अपना कोई उल्लेखनीय महत्त्व नही रखती ?

किन्तु इसका मतलब यह नही कि ग्रामोद्योगो अथवा कुटीर-उद्योगो की ओर योजना आयोग का ध्यान न गया हो। इन उद्योगो के विकास मे भी काफी काम हुआ है। अकेले हाथ-करघा वस्त्र का उत्पादन इन दस वर्षों मे तिगुना हो गया है। सन् १९५०-५१ मे उसका उत्पादन ७४ करोड २० लाख गज था, किन्तु अब वह २ अरब १२ करोड ५० लाख हो गया है। खादी का उत्पादन तो पहले से १०-११ गुना बढ गया है। सन् १९५० मे खादी का उत्पादन ७० लाख गज था, किन्तु अब यह ८ करोड गज हो गया है।

इन योजनाओ का उद्देश्य केवल औद्योगिक विकास कभी नही रहा। उन्होंने सामाजिक सेवा के कार्य को भी अपने कार्य का महत्त्वपूर्ण अग माना और शिक्षा, स्वास्थ्य एव समाज-कल्याण के क्षेत्र मे भी आशातीत सफलता प्राप्त की। जहाँ तक स्वास्थ्य का सम्बन्ध है, मलेरिया, इन्फ्लुएन्जा आदि रोगो की रोक-थाम का प्रयत्न किया गया है। पीने के जल का समुचित प्रवन्ध भी इस अवधि मे हुआ है और जगह-जगह नये अस्पताल खोलने, जच्चा-खाने बनाने तथा बडे अस्पतालो मे मरीजो के विस्तर बढाने का कार्य भी काफी हुआ है। इस कार्य मे

लगभग ६६ करोड रुपया व्यय किया गया। इसी प्रकार शिक्षा के क्षेत्र मे भी वडी प्रगति हुई। सन् १६५०-५१ मे ६ से ११ वर्ष तक की आयु वाले ऐसे बालको की सख्या, जो स्कूलो मे पढते थे, ४३ प्रतिशत थी किन्तु १६६ं के अन्त तक वह ६० प्रतिशत हो गई। सभी स्तर के स्कूलो और कॉलेजो मे पढने वाले विद्यार्थियो की सख्या क्रमशः ७५ और ४० प्रतिशत बढी है। इस अवधि मे वुनियादी-शिक्षा, स्त्रियो की शिक्षा तथा प्रौढो की शिक्षा पर विशेष बल दिया गया। अध्यापको के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई और उनकी वेतन-वृद्धि भी की गई। इतना ही नही, अनुसूचित एव पिछडी जाति के बालको को प्रोत्साहित करने के लिये छात्रवृत्तियाँ दी गई तथा अन्य प्रकार से भी उन्हे सहायता दी गई। इसके साथ-साथ परिवार-नियोजन के काम मे भी उल्लेखनीय कार्य किया गया।

वेकारी की समस्या को हल करने की दिशा मे भी इन योजनाओ का महत्त्वपूर्ण योग रहा। इनका लक्ष्य प्रारम्भ से ही यह था कि देश से वेकारी मिटे। विभिन्न उद्योग-धन्धो, कृषि, स्वास्थ्य और शिक्षा के विकास कार्यों मे दस वर्ष की अवधि मे लगभग ७० लाख व्यक्तियो को काम मिला। यद्यपि अभी देश की वेकारी की समस्या हल नही हुई, तथापि इससे पर्याप्त राहत मिली।

यद्यपि ये उपलब्धियाँ गर्व करने योग्य हैं तथापि कुछ ऐसी कमियाँ भी है जो हमारा ध्यान आकर्पित किये बिना नही रहती। पहली है मूल्य वृद्धि की समस्या। यह घाटे के बजट के परिणाम-स्वरूप पैदा हुई है। इसके लिए घाटे की योजना कम करके अपने साधन बढाना चाहिए। दूसरी वात है कर-व्यवस्था। आजकल विकास कार्यों क नाम पर काफी कर बढा दिये गये हैं जिनसे बेचारे साधारण आदमी की कमर ही टूटने लगी है। तीसरी बात है विदेशी ऋण की अधिकता। विदेशो का वहुत-सा ऋण भी हानिप्रद है। यदि ये बुराइयाँ हटाई जा सकें तो तृतीय और चतुर्थ पचवर्षीय योजनाओ से अधिक उत्साहवर्धक परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं।

३०—तीसरी पंचवर्षीय योजना

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय हमारे देश के सामने बहुत-सी समस्याएँ थी। इन समस्याओ के हल के लिए ही पचवर्षीय योजनाओ का श्रीगणेश हुआ। यद्यपि पहली दो योजनाओ ने इस दिशा मे कुछ सफलता प्राप्त की किन्तु फिर भी हमारे सामने कुछ बडी-बडी समस्याएँ हैं जिनके लिए हमे निरन्तर कार्य करते रहना पडेगा। एक-दो पचवर्षीय योजनाओ द्वारा इनको हल कर देना सम्भव नही है। आजकल हमारी सबसे बडी समस्याएँ हैं—जीवन के निम्न मान, उत्पादन की नीची सतह, बेकारी या अर्ध-बेकारी और बहुत तेजी से बढती हुई जनसख्या। इसके अतिरिक्त शिक्षा, आय तथा अन्य सुविधाओ के सम्बन्ध मे आजकल बहुत विषमता है। कहने की आवश्यकता नही कि ये सभी समस्याएँ हमसे सिलसिलेवार या योजनाबद्ध ढग से दीर्घकाल तक कार्य करते रहने की माँग कर रही हैं। तृतीय पचवर्षीय योजना इसी माँग का परिणाम है।

तीसरी योजना के सामने जो उद्देश्य हैं उनमे प्रमुख हैं—

(१) आगामी पाँच वर्षों मे राष्ट्रीय आय मे २५ प्रतिशत से अधिक की वृद्धि करना और इस हिसाब से देश के विकास मे धन लगाना जिससे आगे भी वृद्धि का यही क्रम जारी रहे।

(२) अनाज की पैदावार मे आत्मनिर्भरता प्राप्त करना और कच्चे माल की उपज को इतना बढाना कि उससे हमारे उद्योगो की जरूरते पूरी हो और निर्यात भी हो।

(३) इस्पात, तेल, बिजली, ईंधन आदि बुनियादी उद्योगो को बढाना और मशीन बनाने के कारखाने कायम करना जिससे १० वर्ष के अन्दर देश के औद्योगिक विकास के लिए आवश्यक मशीनें अपने देश मे ही बनाई जा सकें।

(४) देश की जन और श्रमशक्ति का उपयोग करना और लोगो को रोजगार के अधिक साधन देना।

(५) धन और आय की विषमता को घटाना और सम्पत्ति का अधिक न्यायोचित वितरण करना।

वस्तुत तीसरी योजना का उद्देश्य यह है कि देश मे विकास का एक ऐसा क्रम चालू हो जाय जो अपने आप चलता रहे। देश के लोग इतना धन बचाते और लगाते रहे जिससे राष्ट्र की सम्पत्ति और आय बराबर बढती रहे। इसके लिये आवश्यक है कि देश मे पूँजीगत माल और मशीने आदि बनाने का प्रबन्ध हो जिससे नये उद्योग-धन्धो मे पूँजी लगती रहे। तीसरी पचवर्षीय योजना धन और आय की विषमता को कम करने के उपाय भी निकालना चाहती है, ताकि समाजवादी ढग का समाज कायम हो सके।

इस योजना मे सरकारी क्षेत्र के अन्तर्गत व्यय राशि ७,५०० करोड रुपये रखी गई है। योजना अन्तिम रूप से स्वीकार करते हुए राष्ट्रीय विकास-परिषद् ने सुझाव दिया है कि ७५०० करोड रुपये की व्यय राशि की तुलना मे तीसरी योजना मे शामिल किये जाने वाले भौतिक कार्यक्रम ८००० करोड रु० के हो सकते है। अधिकतम बचतें एकत्र करने के उद्देश्य से परिषद् ने एक बचत-समिति भी नियुक्त की है।

सरकारी व्यय के लिये स्वीकृत व्यय का विवरण निम्न प्रकार है —

	कुल व्यय				(करोड रुपये) राज्य तथा केन्द्र शासित क्षेत्र	
	प्रस्तावित	प्रतिशत	प्रारम्भिक रूपरेखा	प्रतिशत	प्रस्तावित	प्रतिशत
१ कृषि और सामुदायिक विकास	१०७२	१४	१०२५	१४	९४७	२४
२ सिंचाई (छोटी-बडी)	६५६	९	६५०	९	६५१	१७
३. बिजली	१०१९	१४	९२५	१३	८९४	२३
४ ग्रामोद्योग और लघु-उद्योग	२५६	३	२५०	३	१३६	४
५ उद्योग और खनिज पदार्थ	१५२६	२०	१५००	२१	७६	२
६. परिवहन और सचार	१४७५	२०	१४५०	२०	२५०	६
७ समाज सेवाएँ और विविध	१२९६	१७	१२५०	१७	९४६	२४
८. सूचियाँ	२००	३	२००	३		
कुल	७५००	१००	७२५०	१००	३९००	१००

मोटा अनुमान है कि सरकारी क्षेत्र के ७५०० करोड रुपये के व्यय मे १२०० करोड रुपये चालू व्यय की रकम तथा ६३०० करोड रुपये विनियोग व्यय की रकम शामिल होगी। गैर-सरकारी क्षेत्र मे पूजी विनियोग ४१०० करोड रु० का होगा। तीसरी योजना मे कुल पूजी विनियोग १०४०० करोड़ रुपये का होगा जबकि योजना के प्रारूप मे १०२०० करोड़ रु० का अनुमान था।

तीसरी पचवर्षीय योजना मे खेती और सामुदायिक विकास के लिए सार्वजनिक क्षेत्र मे १०२५ करोड रुपये तथा सिंचाई (बड़ी और मध्यम) योजनाओ के लिए ६५० करोड रुपये रखे गए हैं। इसके अलावा अनुमान है कि लोग अपनी ओर से भी इन कामो के लिए ८०० करोड रुपये

लगाएंगे। खेती की पैदावार मे ३० से ३३ प्रतिशत की वृद्धि की जायगी। इस योजना मे खास-खास फसलो के उत्पादन के लक्ष्य इस प्रकार हैं —

फसल का नाम	१९६०–६१ अनुमानित	वार्षिक उत्पादन १९६५–६६ लक्ष्य
अनाज (मिलियन टनो मे)	७५ ०	१००–१०५
कपास (मिलियन टनो मे)	५ ४	७.२
गन्ना (गुड) (" ")	७ २	९ ०–९·२
तिलहन (" ")	७ २	९ २–९ ५
पटसन (" ")	५ ५	६ ५
चाय (" ")	७ २५	८·५०

अनाज की पैदावार बढाने का लक्ष्य इस हिसाब से रखा गया है कि हर व्यक्ति को प्रतिदिन औसतन १५ औंस अनाज और ३ औंस दाल मिल सके तथा सकट-काल के लिये भी कुछ अनाज बच जाए। इसी प्रकार हर आदमी को प्रतिवर्ष औसतन १७½ गज कपडा मिल सके और कुछ कपडा दूसरे देशो को भी जा सके।

जहाँ तक सिंचाई का सम्बन्ध है, लगभग ९ करोड एकड भूमि मे तीसरी योजना के अन्त तक सिंचाई होने लगेगी। एक करोड ३० लाख एकड अधिक भूमि को कटाव आदि से बचाने का काम किया जायगा। १९६५–६६ तक १० लाख टन नाइट्रोजन-युक्त खाद का उपयोग होने लगेगा और ७½ करोड एकड जमीन मे पौधो को बचाने की व्यवस्था की जायगी। अक्टूबर १९६३ तक देश के प्रत्येक गाँव मे सामुदायिक विकास का काम प्रारम्भ हो जायगा। सहकारिता का काम भी काफी आगे बढ जायगा और सहकारी समितियो के द्वारा अधिक ऋण दिलवाये जायेंगे। बड़े उद्योगो पर भी ध्यान दिया जायगा और बडे उद्योग, बिजली, यातायात आदि के विकास पर पर्याप्त धनराशि व्यय की जायगी। भिलाई, राऊर-केला और दुर्गापुर के इस्पात के कारखानो को इतना विकसित किया जायगा कि वे ५५ लाख टन डोके (इनगोटस) बना सकें। इस्पात का चौथा बडा कारखाना बोकारो मे बनाया जायगा।

तृतीय पचवर्षीय योजना मे भारी मशीनें बनाने वाले फाउण्डी फोर्ज (गलाई और ढलाई), कोयला खोदने की मशीन बनाने वाले और भारी मशीनी औजार बनाने वाले कारखाने कायम करने की व्यवस्था की गई है। बैंगलोर के मशीन टूल्स कारखाने का उत्पादन दुगना करने, भोपाल मे भारी बिजली के सामान के कारखाने को बढाने, बिजली के भारी सामान के दो अन्य कारखाने बढाने, ऊँचे दबाव के बायलर और सूक्ष्म यन्त्रो के कारखानो को भी लगाने की योजना है। कागज, सीमेंट, चीनी, चमडा आदि बनाने की प्राय सब मशीनें देश मे ही तैयार होने लगेंगी। दूसरी योजना के अन्त तक छ करोड टन कोयला निकाला जाता था, अब ९ करोड ७० लाख टन कोयला निकाला जाने लगेगा। नवपाटी और बरोनी मे मिट्टी के तेल को साफ करने के कारखाने बनाये जायेंगे और जहाँ तेल मिलने की आशा है वहाँ खोज की जायगी।

तृतीय पचवर्षीय योजना मे ग्रामोद्योगो के विकस का भी ध्यान रखा गया है। इन उद्योगो को इस प्रकार सहायता दी जायगी कि हाथ-करघा और घरेलू-उद्योग के द्वारा सन् १९६५-६६ मे ३५० करोड गज कपडा बनाया जा सके। दूसरी योजना के अन्त तक ६० उद्योग-पुरियाँ बनाने का लक्ष्य था। अब तीसरी योजना के अन्त तक उनकी सख्या ३६० हो जायगी। इसी प्रकार बिजली के उत्पादन की क्षमता ५८ लाख किलो-वाट से बढाकर एक करोड १८ लाख किलोवाट कर दी जायगी। अणुशक्ति से ३ लाख किलोवाट बिजली तैयार की जायगी। अब १५ हजार गाँवो मे बिजली लग जायगी और बिजली लगने वाले ग्रामो की कुल सख्या ३४ हजार हो जायगी। १२०० मील लम्बी नयी रेलवे-लाइन बिछाई जायगी और २०,००० मील लम्बी सडकें तैयार की जायँगी।

तीसरी योजना के अन्त तक ६ से ११ वर्ष तक की आयु के सभी बालको को अनिवार्य और नि शुल्क शिक्षा दी जाने लगेगी। इजीनियरिंग, डाक्टरी आदि की शिक्षा के नये कॉलेज बनाये जायेंगे और इन्जीनियरिंग तथा डाक्टरी पास करने वालो की सख्या काफी बढ जायगी।

ऊपर जिन लक्ष्यो का उल्लेख किया गया है उन्हे पूरा करने के लिए तीसरी योजना की अवधि मे १०२०० करोड रु० की कुल पूंजी लगाने

का विचार है । । इससे हमारी राष्ट्रीय आय ५ प्रतिशत प्रतिवर्ष बढ जायगी। पिछले १० वर्षों मे अर्थात् पहली और दूसरी पचवर्षीय योजनाओ के समय मे सिंचाई, विजली, परिवहन आदि मे जो प्रगति हुई है उसका भी लाभ इस समय मिलेगा। इस लाभ को आगे पूँजी के रूप मे लगाया जायगा। इसी प्रकार गरीवी, वेकारी अशिक्षा और अस्वास्थ जैसी पुरानी वीमारियो से लडने के लिए तीसरी पचवर्षीय योजना ने एक सुसगठित और सुयोजित आन्दोलन प्रारम्भ किया है। वह हमारे आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रो मे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करने का उद्देश्य लेकर बनी है। आइये, हम उसे सफल वनाने मे पूरी शक्ति के साथ जुट जायँ।

३१—स्वतन्त्र भारत मे विद्यार्थियो के कर्त्तव्य

१—भूमिका
२—विद्यार्थियो का विशेष उत्तरदायित्व
३—बढती हुई अनुशासनहीनता
४—विद्यार्थियो के कर्त्तव्य
५—उपसहार

स्वतन्त्रता जहाँ बन्धनो से मुक्ति है, अधिकारो का उपभोग है, वहाँ आत्मसयम भी है, कर्त्तव्यपालन भी है। यदि सही बात कही जाय तो वह यह है कि अधिकारो के उपभोग की बुनियाद कर्त्तव्य-पालन ही है। कर्त्तव्यो पर दृष्टि रखे बिना—उन्हे भलीभाँति पूरा किये बिना—अधिकारो की कल्पना ही नही की जा सकती। अत सन् १९४७ के बाद से प्रत्येक भारतीय पर—चाहे वह पुरुष हो या स्त्री और चाहे बूढे हो या जवान—बहुत से उत्तरदायित्व आ गये हैं। हम सबके सामने अपने देश के पुनर्निर्माण का बहुत बडा प्रश्न है। जब तक देश का निर्माण नही होता हमारी स्वतन्त्रता का कोई अर्थ नही रहता और न हम किसी प्रकार के सुख की ही आशा कर सकते हैं। आज देश की उन्नति और सफलता के साथ हमारी उन्नति और सफलता जुडी हुई है। कहने की आवश्यकता नही कि देश को सफलता और उन्नति की ओर लेजाने का काम वृद्ध पुरुषो और बालको का उतना नही है जितना युवको का।

आज स्कूल-कॉलेजो मे शिक्षा पाने वाले युवक ही कल देश के कामो का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेने वाले है। अत. देश के नव-निर्माण और समृद्धि का प्रश्न युवको की बुद्धिमता, कार्य-कुशलता, उत्साह, लगन और निष्ठा के साथ घनिष्ठता से जुडा हुआ है।

कौन नही जानता कि आज के विद्यार्थी कल के नागरिक है ? अपने विद्यार्थी-जीवन मे वे अपने को जितना योग्य बना लेते हैं, जितनी कार्य-कुशलता और बुद्धि प्राप्त कर लेते हैं, देश को उन्नत बनाने की उनकी क्षमता भी उतनी ही बढ जाती है। विद्यार्थी-जीवन एक ऐसा समय है जब कि प्रभाव-ग्रहण की क्षमता सबसे अधिक रहती है। इस आयु मे वह जो भी प्रभाव ग्रहण करता है वही उसके व्यक्तित्व और चरित्र का निर्माण करता है। आगे की आयु मे इस समय की सीखी बातो को भुलाना कठिन हो जाता है। अत' देश की उन्नति का काम विद्यार्थियो की उन्नति के बिना एक कदम भी आगे नही बढ सकता।

सन् १९४७ के पूर्व जब हमे स्वतन्त्रता नही मिली थी हमारे नेता सरकार से लड रहे थे और उनके आह्वान पर जब तब हमारे नवयुवक भी मैदान मे उतर आते थे। इसमे कोई सन्देह नही कि स्वतन्त्रता-सग्राम मे युवको ने बडा भाग लिया और उसके लिए बडी कीमत भी चुकाई। किन्तु अब समय बदल गया है। जब तक हमारे विद्यार्थी इस बदली हुई स्थिति के प्रति सजग नही होते, तब तक न तो वे स्वय का ही कोई लाभ कर सकते हैं न अपनी मातृभूमि का।

यह दुर्भाग्य है कि पिछले कुछ वर्षों से हमारे विद्यार्थी आलोचना के विषय बने हुए हैं। उनकी अनुशासन-हीनता और कानून को न मानने की प्रवृत्ति इस सीमा तक बढ गई है कि चारो ओर से उनके विरुद्ध आवाज उठाई जाने लगी है। लखनऊ, इलाहाबाद, ग्वालियर, कटक, पटना और इन्दौर मे कुछ ऐसी स्थिति हो गई कि विद्यार्थियो की हिंसक कार्यवाहियो पर रोक लगाने के लिए लाठी और गोली वर्षा तक करनी पडी। लखनऊ, इलाहाबाद और बनारस तो जैसे इन कार्यवाहियो के केन्द्र ही बन गये हैं। सन् १९५३-५४ के वर्ष मे तो यह तूफान इतना प्रबल हुआ कि लखनऊ और इलाहाबाद के विश्वविद्यालय कुछ दिनो तक

वन्द कर देने पडे। अलीगढ मे अभी पिछले दिनो चुनाव के प्रश्न को लेकर जैसी साम्प्रदायिक तनातनी पैदा हो गई उससे भी विद्यार्थियो की प्रतिष्ठा को वडा धक्का लगा है। इन सवसे हमारा आशय न तो यह है कि हम विद्यार्थियो को वदनाम करें, और न सारी भूलो के लिए उन्ही को उत्तर-दायी ठहराएँ और न यही है कि हम अधिकारियो और पुलिस की आलोचना करें तथा सारा दोप उन्ही के सिर पर मढ दें। हमारा आशय यही है कि इस प्रकार की कार्यवाहियो से विद्यार्थियो की वदनामी हुई है, वे सार्वजनिक आलोचना के पात्र वने हैं और उनकी प्रतिष्ठा को वड़ा धक्का लगा है।

अब हमारा देश स्वतन्त्र है। अव हिंसक उपद्रवो की कोई आव-श्यकता नही रही। अव यदि किसी वात की आवश्यकता है तो वह है रचनात्मक कार्य की। हमे यह वात स्वीकार करना चाहिए कि हम दुनियाँ के अन्य देशो की तुलना मे वहुत पिछड़े हुए है और यदि हम उनकी वरावरी मे आना चाहते है तो हमे जीवन के विविध क्षेत्रो मे भी जी-तोड श्रम करना पड़ेगा। अपने देश का पुनर्निर्माण करने के लिए हमे सुनियोजित ढग से कार्य करना होगा। आज हमे सुयोग्य डॉक्टर, कुशल इजिनियर, विद्वान् प्रोफेसर, होशियार सैनिक, मेहनती कारीगर तथा ईमानदार व्यापारियो की आवश्यकता है। यदि हमारे विद्यार्थी इस ओर ध्यान नही देते हैं, अपने अध्ययन मे पूरी-पूरी रुचि नही लेते हैं और अव भी तोड-फोड की कार्यवाहियो मे सलग्न रहते हैं, तो हम समय की माँग को कैसे पूरा कर सकेंगे ?

हमारे विद्यार्थियो को आज यह वात अनुभव करनी चाहिये कि उनकी जवानी का यह तकाजा नही है कि वे हिंसक कार्यवाहियो मे व्यस्त रहे और अनुशासन को न माने। उन्हे सरकार या विश्व-विद्यालयो से शिकायत हो सकती है किन्तु उसे दूर करवाने का एक-मात्र रास्ता हिंसक कार्यवाही और तोड-फोड नही है। इसमे कोई सन्देह नही कि उन्हे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अधिकार है, किन्तु इसके लिए वे सामाजिक स्वतन्त्रता की वलि नही चढा सकते। एक ओर अपने लिये आत्म-सयम तथा दूसरी ओर दूसरो के लिये सहानुभूति एव सद्भावना ही सच्ची नागरिकता की निशानी है। यही अच्छी सस्कृति का प्रतीक है।

किन्तु इस सबसे हमारा आशय यह कदापि नही है कि हमारे विद्यार्थी डरपोक एव आवश्यकता से अधिक आज्ञाकारी बन जायें और अपने अधिकारो व आत्म-सम्मान की कोई चिन्ता ही न करें। अधिकारो के लिए लडना चारित्रिक शक्ति का द्योतक है तथा आत्म-सम्मान और विचार-स्वातन्त्र्य ऐसे गुण है जिनकी प्रशसा की जानी चाहिए। अतः जब हम यह कहते हैं कि विद्यार्थियो को अनुशासित और शान्त रहना चाहिये तो हमारा यही आशय होता है कि वे अपने अधिकारो तथा राज्य के अधिकारो मे सतुलन बनाये रखें। इसमे कोई सदेह नही कि यह कोई सरल काम नही किन्तु आज इसी की आवश्यकता है। हमारे विद्यार्थी यदि इस ओर ध्यान दें तो यह असम्भव भी नही है।

विद्यार्थियो के सम्बन्ध मे दूसरी महत्त्वपूर्ण शिकायत यह है कि उनका ध्यान अध्ययन से हटता जा रहा है और उनका शैक्षणिक स्तर घटता जाता है। इससे भी बुरी बात यह है कि हमारे विद्यार्थी केवल परीक्षा पास करने की धुन मे रहते हैं और इसके लिये न नकल करने मे चूकते हैं न किसी अन्य अनुचित साधन के प्रयोग से। प्रति वर्ष बोर्ड और युनिवर्सिटी की परीक्षाओ मे हजारो विद्यार्थी नकल करते हुए पकडे जाते हैं। इतना ही नही, हमारी छात्राएँ भी नकल करती हुई पाई जाती है। यदि वे केवल नकल ही करते हो तो भी एक बात है किन्तु निरीक्षको को धमकियाँ भी देते हैं और अनेक बार उन पर हमला भी करने मे आगा-पीछा नही देखते। आये दिन समाचार-पत्रो मे ऐसे समाचार प्रकाशित होते रहते हैं। कहने की आवश्यकता नही कि यह सब अच्छा नही है। इससे भी समझदार व्यक्ति का सिर लज्जा से झुके बिना न रहेगा। यदि जीवन के प्रारम्भिक वर्षों मे ही विद्यार्थियो का यह हाल रहे तो उनके आगे आनेवाले जीवन का क्या हाल होगा? फिर तो उनसे ईमानदारी, आत्म-सयम और चारित्रिक पवित्रता की आशा करना दुराशा-मात्र ही होगी।

स्वतन्त्र भारत मे विद्यार्थियो का स्थान बडा गौरवशाली और चमकता हुआ होना चाहिये। उन्हे देश के भविष्य का निर्माण करना है। उनके ऊपर देश और समाज के बहुत बड़े उत्तरदायित्व है। उनकी

योग्यता-अयोग्यता अथवा चारित्रिक पवित्रता-अपवित्रता पर देश का भविष्य निर्भर है। अतः इसके लिये उन्हे सबसे पहले चरित्र को ही बनाना होगा। उन्हे आत्म-सयम और दूसरो के अधिकारो का सम्मान करना सीखना होगा। उन्हे साहस और ईमानदारी के गुण भी प्राप्त करने होगे। इतना ही नही, उन्हे अपने विषय का अच्छा अध्ययन करना होगा और साम्प्रदायिकता, जाति, रङ्ग, वर्ण आदि के सकुचित विचारो से ऊपर उठना होगा। तभी वे सच्चे अर्थों मे देश की आशा और आने वाले गौरवशाली भारत के निर्माता बन सकेंगे।

३२—अनिवार्य सैनिक शिक्षा

१—भूमिका

२—हमारी स्वतन्त्रता के मार्ग के खतरे

३—अनिवार्य सैनिक शिक्षा की आवश्यकता

४—एन० सी० सी० और ए० सी० सी०

५—सैनिक शिक्षा के लाभ

६—उपसहार

वर्षों की परतन्त्रता के बाद हमारा देश स्वतन्त्र हुआ और हम लोग अपनी भूमि के मालिक बने। इसमे कोई सदेह नही कि अब हमारे सामने विकास के अनेक दरवाजे खुल गये हैं और हम विभिन्न क्षेत्रो मे प्रगति करने के लिए मुक्त हो गये हैं। किन्तु विकास की दिशा मे बढते हुए हमे यह बात नही भूलना है कि आस-पास की कुछ शक्तियाँ हमारी स्वतन्त्रता को अच्छी नजर से नही देख रही हैं। वे इस ताक मे हैं कि ज्योंही अवसर मिले हमारे देश की भूमि पर अधिकार करलें। अत हमारे सामने आज जितने भी प्रमुख प्रश्न हैं उनमे से एक यह भी है कि हम अपनी स्वतन्त्रता को किस प्रकार टिकाये रख सकते है। जब हम इस प्रश्न पर विचार करते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि हमे इस सम्बन्ध मे सतत् जागरूक रहना पडेगा और यदि हम थोडे भी लापरवाह हुए तो हमे बहुत बडे खतरे का सामना करना पड़ेगा। देश की स्वतन्त्रता की रक्षा के दो ही मार्ग हैं—हिंसा और अहिंसा। हिंसा का मार्ग सारी दुनियाँ मे प्रचलित है और सभी राष्ट्र अपनी रक्षा के लिए सैनिक शक्ति

बढाते चले जा रहे हैं। दूसरा मार्ग अहिंसा का है जो गांधीजी ने हमे बताया था। इसमे कोई सदेह नही कि अहिंसा का मार्ग ही श्रेष्ठ है किन्तु एक ओर तो उसके लिए गांधीजी जैसा ही मार्ग-दर्शक चाहिये, दूसरी ओर अभी उसमे बहुत वडे खतरे भी है। आज दुनियाँ का कोई राष्ट्र अहिंसा के मार्ग पर बिना पूरी तैयारी किये बिना चल पडे तो हिंसा की शक्ति मे विश्वास करने वाले राष्ट्र उसके लिए घातक सिद्ध हो सकते हैं। दुनियाँ के वडे-वडे राष्ट्र भले ही शान्ति और सद्भावना की वात करते रहे किन्तु तथ्य यह है कि आजकल सारे प्रश्नो का हल सैनिक शक्ति से ही होता है। अत आज विसैन्यीकरण का मार्ग अपनाना मानो खतरो को न्यौता देना है। दोनो विश्व-युद्धो का यही सबक है।

हमारी स्वतन्त्रता अभी अपनी शैशवावस्था मे ही है। जिस प्रकार एक नवजात वालक को रक्षा और पोषण की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार हमारी स्वतन्त्रता को भी रक्षा और पोषण की आवश्यकता है। यदि हम अपने आस-पास दृष्टि डाले तो हमे स्पष्ट दिखाई देता है कि पश्चिम मे पाकिस्तान जव तब लडाई की धमकी देता रहता है। काश्मीर के प्रश्न को लेकर तो वह किस दिन क्या न कर गुजरेगा कहा नही जा सकता। अभी-अभी वह हमसे लड भी चुका है। उधर-उत्तर और पूर्व मे साम्यवाद अपनी शक्ति वढाता हुआ हमारी सीमा के निकट पहुँच गया है। यहाँ तक कि उसने हमारी सीमाओ का अतिक्रमण भी प्रारम्भ कर दिया है। उसने तिब्बत पर कब्जा जमा लेने के बाद नेपाल, भूटान, ब्रह्मा आदि पर अपनी गिद्ध दृष्टि जमाई है और हमारी सैकडो मील भूमि पर अधिकार करके हमारे लिये एक सकट का कारण बन गया है। जिस हिमालय-पर्वत को हम अब तक अजेय मानते थे और जिसके कारण हम अपनी उत्तरी सीमा को बिलकुल सुरक्षित मानते थे, वह अव अजेय नही रह पाया है। उसमे अव हमारी उत्तरी सीमा को सुरक्षित रखने की क्षमता न रह गई है। अत स्पष्ट है कि हमारी स्वतन्त्रता पर खतरो के वादल मँडरा रहे हैं और यदि हम जागरूक न रहे तो किसी भी दिन अपनी स्वतन्त्रता से हाथ धोना पड सकता है।

अत वर्तमान स्थिति मे इस समस्या का एक ही हल है और वह है अपनी जल, थल और वायु सेना की शक्ति बढाना। किन्तु सैनिक शक्ति को बढा लेना कोई हसी मजाक नही है। आज सेना पर वैसे ही बहुत रुपया खर्च करना पड रहा है और हमारा देश इस स्थिति मे नही है कि उसके लिए और अधिक रुपया खर्च कर सके। अपने सीमित साधनो के बल पर एक मजबूत सैनिक शक्ति का निर्माण कर लेना संभव नही है। यदि इसका कोई रास्ता है तो वह यही कि हम सैनिक शिक्षा को अनिवार्य बनादे।

अनिवार्य सैनिक शिक्षा का अर्थ है देश के प्रत्येक युवक को अनिवार्य रूप से सैनिक शिक्षा देना। यह कार्य एन० सी० सी० (नेशनल केडेट कोर) और ए० सी० सी० (आक्जीलरी केडेट कोर) के द्वारा किया जा रहा है। एन० सी० सी० कॉलेजो और विश्वविद्यालयो मे पढने वाले युवको के लिए है। ए० सी० सी० स्कूलो मे पढने वाले बालको के लिए। इस योजना को प्रारम्भ किये हुए अब पर्याप्त समय हो गया है और ऐसा लगता है कि इसका प्रचार और प्रसार बढता जा रहा है। देहरादून की मिलिट्री एकेडमी मे तथा अन्य स्थानो पर शिक्षको को प्रशिक्षण दिया जाता है और ये प्रशिक्षित अध्यापक अपने-अपने स्कूलो मे बालको को प्रशिक्षण देते हैं। इसके अतिरिक्त लोक-सहायक-सेना भी इस दिशा मे महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही है। लोक-सहायक-सेना के अधिकारी प्रतिमास प्रत्येक प्रान्त मे एक कैम्प लगाते हैं जिसमे सैकडो विद्यार्थियो को एक महीने तक कैम्प मे रखकर सैनिक शिक्षा दी जाती है। ये कैम्प बारी-बारी से प्रत्येक जिले में लगाये जाते है और आस-पास के युवको को उसमे सम्मिलित होने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। यह सब अच्छे लक्षण है किन्तु जो कुछ हो रहा है उसे देखकर सन्तोष नही किया जा सकता। सारे देश मे इसका प्रचार करने के लिए तथा प्रत्येक युवक को शिक्षा देने के लिए अभी हमे और भी काम करना पडेगा।

अनिवार्य सैनिक शिक्षा से हमारी सरकार का यह आशय नही है कि वह देश को एक आक्रामक राष्ट्र बनादे। वह न तो उसे हिटलर का

जर्मनी बनाना चाहती है न टोजो का जापान । वह तो केवल सुरक्षात्मक कार्यवाही है और सकट के समय ही इन युवको को बुलाया जा सकता है। हमारा देश शान्तिप्रिय है, वह युद्ध नही चाहता। किन्तु यदि किसी ओर से हमारे ऊपर युद्ध थोपा जाता है तो हमको उसका मुकाबला करना ही पड़ेगा । सैनिक शिक्षा किसी भी राष्ट्र को लडाकू नही बनाती । वह एक शारीरिक अनुशासन पैदा करती है । अग्रेजो के समय भी इस प्रकार का प्रशिक्षण दिया जाता था । वर्तमान एन० सी० सी० उसी का विकसित रूप है ।

इस प्रकार की सैनिक शिक्षा से हमे अनेक लाभ होगे । वह भारतीय जनता में अनुशासन की भावना पैदा करेगी । कहने की आवश्यकता नहीं कि हमारे देश मे इसका वडा अभाव है। विशेषकर हमारे विद्यार्थियो मे तो अनुशामनहीनता और अनुत्तरदायित्व निरन्तर वढते जा रहे हैं और जवसे देश स्वतन्त्र हुआ है तव से इसमे और भी वृद्धि हो गई है । अत. सैनिक शिक्षा इस बुराई को दूर करेगी । वह देश मे अनुशासन पैदा करेगी और हमे सगठित वनाएगी । हमारी शिक्षा मे जो आध्यात्मिकता और वौद्धिकता की अधिकता और शारीरिक विकास की उपेक्षा है उसका भी इलाज सैनिक शिक्षा ही करेगी । वह युवको को शक्तिशाली वनाने के साथ-साथ सच्चरित्र वनाएगी । इसके अतिरिक्त, वह युवको मे नेतृत्व की शक्ति का भी विकास करेगी और उन्हे सहिष्णु वनाएगी ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि सैनिक शिक्षा समय की सबसे बडी आवश्यकता है। यही कारण है कि सरकार ने उसकी आवश्यकता को अनुभव करके इस दिशा मे प्रयत्न आरभ कर दिया है, फिर भी यह तो स्वीकार करना ही पडेगा कि अभी इस दिशा मे हमे और भी काम करना है क्योकि जो कुछ हुआ है वह पर्याप्त नही है। अभी आर्थिक कठिनाइयाँ, जनता का सहयोग और सगठन सम्बन्धी कठिनाइयाँ उसके मार्ग को प्रशस्त नही वनने दे रही हैं । किन्तु शीघ्र ही वह दिन आयेगा जब इन कठिनाइयो को दूर किया जा सकेगा और राष्ट्र मे अनिवार्य सैनिक-शिक्षा के द्वारा शारीरिक शक्ति, चारित्रिक पवित्रता और पारस्परिक सहिष्णुता जैसे गुण पैदा किये जा सकेंगे ।

३३—एक क्रिकेट मैच

१—भूमिका
२—मैच का प्रारम्भ
३—उसका वर्णन
४—दूसरे और तीसरे दिन का वर्णन
५—विजयोल्लास

मुझे क्रिकेट का खेल बडा पसन्द है। जब मैं पांचवी कक्षा पास करके माध्यमिक शाला मे भर्ती हुआ, तभी से मुझे इसका शौक लग गया और कोई शाम ऐसे नही जाती जब मैं खेल मे सम्मिलित नही होता। सन्ध्या समय वस्तुत मेरा मन और किसी काम मे लगता ही नही था। ९ वी कक्षा मे आते-आते तो मैं अपने स्कूल के अच्छे खिलाडियो मे गिना जाने लगा और मुझे एक के बाद एक अनेक मैच खेलने का अवसर मिला। यहाँ मैं एक ऐसे मैच का वर्णन कर रहा हूँ जो मेरे जीवन के स्मरणीय मैचो मे से है। बात नवम्बर की है। अशोकनगर के रॉयल क्लब ने हम लोगो को खेल के लिए निमन्त्रण भेजा। रॉयल क्लब के खिलाडियो की आस-पास बडी प्रसिद्धि थी और हम भी अब तक उसकी विजय के समाचार सुनते रहते थे। किन्तु हमारी टीम भी कम नही थी। अत हमने उनके निमन्त्रण को उसी समय स्वीकार कर लिया।

मैच के एक दिन पूर्व हम लोग ट्रेन से अशोकनगर पहुँच गये और एक मित्र के घर ठहर गये। प्रात काल नाश्ता करके हम लोग रॉयल क्लब के मैदान की ओर चल पडे। मन मे बडी हलचल थी—कैसा मैदान होगा, खिलाडी कैसे होगे, दर्शक कम होगे या अधिक, विकेट अनुकूल रहेगे या प्रतिकूल और रॉयल क्लब के गेंदबाज कैसे होगे आदि बातें दिमाग मे घूमती रही। हमारा कैप्टिन किशोर बडी मस्ती के साथ चल रहा था और हम सब उसके आस-पास खेल की बातें करते हुए चले जा रहे थे। ज्योही हम मैदान के पास पहुँचे तो देखा कि बहुत से दर्शक मैदान के चारो ओर बैठे हुए हैं। वातावरण बडा सुहावना था और रॉयल क्लब के खिलाडियो के अच्छे खेल की सहज ही कल्पना हो जाती थी। उनके कप्तान पीटर अलबारिस ने, जो कि एक ऊँचा पूरा नवयुवक था, आगे बढकर हमारा स्वागत किया और बारी-बारी

से हमारे सब खिलाडियो से हाथ मिलाये। खेल का समय निकट था, अतः हम लोग तैयार होकर मैदान मे आ गये। अम्पायर और रॉयल क्लब के खिलाडी भी हमारे साथ थे। सबसे पहले खेल के रिवाज के अनुसार सिक्का उछाला गया और दुर्भाग्य से हमारा कप्तान उसमे हार गया। यह कोई अच्छा लक्षण नही था। अत हम लोगो को एक चोट-सी लगी, किन्तु इस तरह हिम्मत हारना तो हमारा स्वभाव नही था। रॉयल क्लब ने ज्यो ही पहले खेलने की घोषणा की हम लोग मैदान मे अपने नियत स्थान पर पहुँच कर खडे हो गये। मन मे बडी हलचल थी और अनेक प्रकार के विचार आ रहे थे। यद्यपि यह सब जल्दी-जल्दी होता जा रहा था, तथापि विचार कहाँ रुकते हैं ?

खेल प्रारम्भ हुआ। रॉयल क्लब की ओर से जेकब और जॉन की जोडी खेलने आई। दोनो ही उनके अच्छे बल्लेबाज थे। हमारे तेज गेंदबाज साहू ने गेंद फेंकना प्रारम्भ किया। पहली दो गेदो ने ही जेकब को घबरा दिया। पहली गेंद पर उसने अच्छा शाट लगाया लेकिन वह हमारे गेंदबाज साहू के पास पहुँची और उसने रोक लिया। दूसरी गेंद वह खेल नही सका और वह विकेट के बहुत पास से निकल गई। तीसरी गेद पर उसने पूरी ताकत से एक शॉट लगाया, किन्तु हमारे खिलाडी पाण्डे ने उसे रोक दिया। चौथी और पाँचवी गेद जेकब ने अपने पैड से रोकी। छठी गेंद को उसने पूरी ताकत से पीटने का प्रयत्न किया किन्तु हमारे खिलाडी मदन ने उसे झेल लिया। दर्शको ने ताली पीटी और हमारे खिलाडियो मे नई चेतना आ गई। हमने एक भी रन दिये बिना एक विकेट ले लिया था। जेकब जैसे खिलाडी का एक भी रन न बना सकना हमारे लिए एक अच्छी शुरुआत थी। हमे ऐसा लगने लगा कि हम रॉयल क्लब के ३५-४० रन से अधिक न बनने देगे।

शीघ्र ही उनका दूसरा खिलाडी मैदान मे आया। उसने जम कर खेलना प्रारम्भ किया। साहू की गेद वह एक के बाद एक पीटता ही गया और रॉयल क्लब की रन-सख्या देखते ही देखते बढने लगी। हमारे कप्तान ने साहू के स्थान पर चन्दू को गेंद फेकने भेजा। चन्दू हमारा सबसे तेज गेंदबाज था। उसने इस बल्लेबाज की कमजोरी को एक ही ओवर मे मालूम कर लिया। दूसरे ओवर की पहली ही गेद उसने

इतनी चतुराई से फेंकी कि बल्लेबाज सभले, तब तक एक विकेट गिर गया। अब दो विकेट पर उनके तीस रन बन चुके थे।

तीसरा बल्लेबाज आया लेकिन वह पाँच रन बनाकर आउट हो गया। चौथा केवल दो रन ही बना सका। पाँचवें ने बड़े विश्वास के साथ खेल प्रारम्भ किया। दूसरी ही गेंद पर उसने एक छक्का जमा दिया; किन्तु उसकी तीसरी गेंद किशोर ने उछलकर लपक ली और वह भी मुँह लटकाये हुए पेवीलियन चला गया। उनका छठा खिलाडी खूब जमा। उसने ७६ रन बना लिए, लेकिन वह भी चन्दू की गेंद पर लपक लिया गया। लच तक उनके सब खिलाडी आउट हो गये और वे केवल १६८ रन ही बना सके।

रॉयल क्लब ने लच का बडा अच्छा प्रबन्ध किया था। बडा ही अच्छा भोजन परोसा गया। हमारे कप्तान साहब तो खाने के आनन्द मे मैच को ही भूल गये। खाना खाकर हमने थोडा-सा आराम किया और समय होते ही मैदान मे आ गये। इस बार हमे खेलना था। हमारे पहले खिलाडी रामनारायण ने बडे आत्म-विश्वास के साथ खेलना प्रारम्भ किया, किन्तु वह तीसरी ही गेंद पर आउट हो गया। वह केवल एक छक्का लगा सका। दूसरा खिलाडी कुछ टिका किन्तु वह एक भी रन बनाये बिना आउट हो गया। दो विकेट पर छः रन कोई आशा-जनक सकेत नही था किन्तु क्रिकेट तो चास (अवसर) का खेल है। हमारे अच्छे-अच्छे बल्लेबाज तो अभी मैदान मे आये ही नही थे। अत: हमारे सामने निराश होने का कोई प्रश्न नही था। किशोर मैदान मे आया और उसने जमकर खेलना प्रारम्भ किया। पहली ही गेंद पर चौका लगाकर उसने अपना खाता खोल दिया। ४५ मिनिट के खेल मे उसने ५१ रन बनाये और हमारी रन सख्या ७७ हो गई। उसके आउट होते ही भगवानदास आया। वह अभी १२ रन ही बना पाया था कि एक तेज गेंद उसके सिर मे लगी और वह गिरकर बेहोश हो गया। उसे शीघ्र ही अस्पताल ले जाया गया। भगवानदास की चोट से हमारे खिलाडियो को बडा धक्का लगा। वह हमारे सबसे अच्छे बल्ले-बाजो मे से था और उससे हमे एक शतक की आशा थी। पाँचवें और छठे खिलाड़ी क्रमश मैदान मे आये लेकिन वे ५-५, ७-७ रन बना कर ही

आउट हो गये। सातवाँ खिलाडी श्यामू शून्य पर ही आउट हो गया। हमारी रन सख्या ६१ थी और यदि खेल की यही गति रहती तो जीत असभव थी। अब मेरी बारी आई। पहले दो ओवर मे तो मैं एक भी रन न ले सका लेकिन इसके बाद मैंने एक के बाद एक उनकी तेज गेंदो को पीटना प्रारम्भ किया। चाय तक मैंने और मेरे साथी राजू ने हमारी रन-सख्या १२१ कर दी। हमारे खिलाडियो का उत्साह दुगुना हो गया। खेल बन्द होने तक हमने १३५ रन बना लिये। दूसरे दिन लच तक हमने २४८ रन बनाये और हमारे कप्तान ने पारी समाप्ति की घोषणा कर दी।

यह एक त्रिदिवसीय मैच था। लच के बाद रॉयल क्लब ने खेलना प्रारम्भ किया और सन्ध्या तक उनके बल्लेबाजो ने ५ विकेट पर ११२ रन बनाये। तीसरे दिन लच तक उन्होने अपनी रन-सख्या २०१ कर ली और अभी उनके दो खिलाडी शेष थे। हम बडी विचित्र स्थिति मे पड गये किन्तु हमारे कप्तान ने हिम्मत न हारी। लच के बाद ज्यो ही खेल प्रारम्भ हुआ हमने पाँच ही मिनिट मे शेष दोनो विकेट ले लिये और खेलना प्रारम्भ किया।

अब हमे विजय प्राप्त करने के लिए १२६ रन बनाने थे जो असम्भव-सा प्रतीत होता था। किशोर ने मुझे और राजू को ही सबसे पहले खेलने को कहा। उसने हमसे कहा कि हम आउट होने की चिन्ता किये बिना तेजी के साथ खेलें और अपने अधिक से अधिक रन बनाने का प्रयत्न करे। वह जानता था कि मेरा खेल जमा हुआ अवश्य होता है किन्तु रन सख्या प्राय धीमी रहती है। यदि मैं तेजी से खेलूँ तो रन-सख्या बढ सकती है। मैंने खेलना प्रारम्भ किया। मैं एक के बाद दूसरी उनकी तेज गेंदो को पीटने लगा और पहले दो ओवर मे ही मैंने एक छक्का और पाँच चौके लगा दिये। चाय तक हमारी रन-सख्या ६४ हो गई। अब हमे कुछ सन्तोष हुआ। चाय के बाद मैंने फिर धुआँधार खेल प्रारम्भ किया और खेल के अन्त तक बिना कोई विकेट दिये अपनी रन-सख्या १४८ कर दी। जब खेल समाप्त हुआ तो साथियो ने मुझे सिर पर बिठा लिया और सब बडे प्रसन्न हुए। दर्शको की भी एक बडी भीड मेरे आस-पास जमा हो गई और वे मेरे खेल की भूरि-भूरि प्रशसा कर रहे थे। अशोकनगर की गली-गली मे हमारा मैच एक चर्चा का विषय बन गया।

३४—भारत की भावनात्मक एकता

१—भूमिका
२—भारत की सास्कृतिक परम्परा
३—विघटनकारी शक्तियाँ
४—उनको समाप्त करने के उपाय ।
(अ) स्वस्थ आर्थिक व्यवस्था (आ) सांस्कृतिक शिक्षा
(इ) पूर्णता की भावना (ई) एक अखिल भारतीय भाषा का प्रसार ।
५—उपसहार

विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भारत को महामानवो का सागर कहा है । उनका आशय यह था कि भारतीय सस्कृति किसी एक जाति की रचना नही है । उसकी रचना और विकास मे अनेक जातियो का योगदान रहा है । इतिहासकार बताते हैं कि आर्यों के आगमन के पूर्व यहाँ द्राविड़ जाति के लोग रहते थे और उससे भी पहले ओष्ट्रिक एव नीग्रो जाति के । समय के साथ ओष्ट्रिक एव नीग्रो जाति की विभेदक रेखाएँ क्षीणतर होती गई और उनके अन्तर को पहिचानना ही कठिन हो गया । आर्यों के आगमन पर द्राविडो से उनकी टक्कर हुई किन्तु यह टक्कर भी दोनो को बहुत देर तक एक दूसरे से दूर न रख सकी । थोडे ही समय मे वे एक दूसरे से घुल-मिल गये । यहाँ तक कि उनकी सस्कृति भी एक हो गई और आज तो यदि हम यह देखना चाहे कि हमारी वर्तमान सस्कृति मे कौन-सा तत्त्व आर्यों का है और कौन-सा द्राविडो का तो यह बताना ही कठिन हो जायगा । श्री रामधारीसिंह दिनकर के शब्दो मे "आर्य परिवार की सभी भाषाओ ने उस एक ही घाट का पानी पिया है जो व्यास और वाल्मीकि का घाट है, उन्होने विचारो के उस एक ही भण्डार से प्रेरणा ली है जो वेदो और उपनिषदो का भण्डार है और उनके भीतर सुरो एव नरो के उस एक ही चरित्र का यशोगान है जो ब्रह्मा, विष्णु और महेश अथवा राम, कृष्ण, बुद्ध और महावीर का चरित्र है ।"

मुसलमान तो अभी हजार बारह-सौ वर्ष पूर्व ही इस देश मे आये । प्रारम्भ मे गजनी और गौरी के कृत्यो से इस देश के निवासियो को बडी

ठेस पहुँची। किन्तु जैसे-जैसे समय बीतता गया वे एकता का मार्ग खोजते रहे। कबीर पहला व्यक्ति था जिसने एकता के प्रश्न पर चिन्तन किया। एकता का दूसरा चिन्तक था, सम्राट् जलालुद्दीन अकबर और तीसरा राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी। यद्यपि गजनी, गौरी और औरङ्गजेब के नाम पर जब तब विद्वेष और घृणा भी फैलाये गये तथा कबीर को जीवन भर हिन्दू-मुसलमान दोनो का विरोध सहना पडा, इधर अकबर से सभी मुल्ला, मौलवी नाराज हो गये और गाँधीजी को तो उन्ही के एक धर्म-बन्धु की गोली का शिकार होना पडा, तथापि मानवता की भागीरथी जमाने भर की गन्दगी एव कूडे कर्कट को उदरस्थ करके भी आगे ही बढती रही।

इतिहास बताता है कि भारतीय सस्कृति का प्रवाह सदैव समानता, सहिष्णुता और एकता की ओर रहा है और यही हमारे भविष्य का मार्ग है। धर्मों और सम्प्रदायो के वाह्याचारो ने इस एकता को बार-बार चुनौती दी। किन्तु धर्म आत्मा की वस्तु है वह वाह्याचार या छुआछूत मे नही बसता। कवीन्द्र रवीन्द्र ने कहा था—"धर्म को पकडे रहो, धर्मो को छोड दो।" किन्तु हमारा दुर्भाग्य है कि भारतीय सस्कृति का यह सन्देश बहरे कानो पर पडता हुआ प्रतीत होता है। सन् १९४७ मे अपने एक राष्ट्र के दो राष्ट्र बनवाकर, मानवता की इस भूमि को रक्त-रजित करके तथा इस बीसवी शताब्दी को एक बार फिर बर्बरता के दिन दिखाकर भी विघटनकारी शक्तियो को सन्तोष नही हुआ है। धर्म के नाम पर देश के दो टुकडे करवाकर अब वे भाषावाद के नाम पर सगठित हो रही हैं। यह उन्ही की करामात है कि दक्षिण-वालो को अग्रेजी पसन्द है किन्तु हिन्दी का नाम भी अच्छा नही लगता, और उत्तर वालो के पास दक्षिण को समझाने का समय ही नही रहता। भाषावार प्रात के नाम पर गुजराती महाराष्ट्रीय का दुश्मन बना, असमी बगाली का और जब भाषावार प्रान्तो की रचना भी हो गई; तो कही विदर्भ का विवाद प्रारम्भ हुआ, कही अकाली सूबे की आवाज बुलन्द हुई। एक समस्या हल होते न होते चार नई समस्याएँ खडी हो जाती हैं और एकता एव सद्भावना के सारे प्रयत्नो को हवा मे उडा देती हैं।

ऐसा लगता है कि यदि यही स्थिति रही तो मद्रास के विश्व-विद्यालय मे उत्तर-भारत का तो दूर, आन्ध्र का भी कोई प्रोफेसर दिखाई न देगा और फिर बनारस के विश्वविद्यालय मे उत्तर-प्रदेश तो दूर, किसी विशेष जाति और विशेष कुल के ही लोग रखे जायेंगे। इस सकुचित मनोवृत्ति के कुछ उदाहरण हमारे सामने आने भी लगे है। अब धीरे-धीरे सभी प्रदेशो मे यह भय भी घर करता जा रहा है कि कही हमारे यहाँ दूसरी भाषा या सम्प्रदाय के लोग बडी सख्या मे न आ बसें। क्या देश मे सभी विचारशील व्यक्तियो के सामने यह एक प्रश्न चिह्न नही है ? विज्ञान के प्रभाव से आज जबकि देश और काल की दूरी निरन्तर कम होती जा रही है और 'एक विश्व' की चर्चा चलने लगी है, तब क्या यह सकुचित मनोवृत्ति, यह भाषायी सम्प्रदायवाद, यह प्रान्त-वाद और इसके पीछे छिपा हुआ सत्तावाद चिन्ता का कारण नही है ? क्या यह हमारी राष्ट्रीय-एकता के लिए चुनौती नही है ?

यदि मैं कहूँ कि इन सबसे उदासीन होकर चुप बैठे रहना जीवन और जगत् के प्रति ही उदासीनता का द्योतक है, तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। हम सबको इस चुनौती को स्वीकार करना चाहिये। सौभाग्य से कबीर, गांधी और अकबर की बहाई हुई धारा अभी जीवित है। देश के अनेक गणमान्य नेता, विचारक और समाज-सेवी हमारे सामने खडे हुए इस खतरे को देख रहे हैं और इसके विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द कर रहे है। भारतवर्ष एक अखण्ड देश है और वह हमे अपने पूर्वजो से उत्तराधिकार मे मिला है। जब राष्ट्रीयता का विचार भी नही जगा था और लोगो मे एकता की प्रतीति भी नही थी तब भी कभी एकता के विषय मे प्रश्न नही उठा। भारत का प्रत्येक साधारण व्यक्ति आज भी स्नान करते समय 'गगे-यमुनेच' कहकर भारत की सभी नदियो का स्मरण करता है और चारो धाम की यात्रा कर अपने को कृत-कृत्य मानता है। ऐसी स्थिति मे इन विघटनकारी शक्तियो को अपनी वीभत्सता का प्रदर्शन करने के लिए मुक्त कर देना क्या जघन्य अपराध नही होगा ?

अब प्रश्न यह होगा कि इन विघटनकारी शक्तियो को कैसे उखाड़ फेंके ? कैसे देश मे एकता, सहिष्णुता और पारस्परिक सद्भावना की

स्थापना करे ? गहराई से विचार करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि चाहे जातिवाद हो, चाहे भाषावाद, चाहे सम्प्रदायवाद हो, चाहे प्रान्तवाद—इन सबके पीछे जाति, भाषा, प्रान्त, परम्परा अथवा सस्कृति के लगाव की भावुक प्रवृत्ति तो होती ही है, किन्तु इसके मूल प्रेरक हैं किसी व्यक्ति अथवा समूह के हित। जब-जब व्यक्तिगत स्वार्थों या महत्त्वाकाक्षाओ को चोट पहुँचती है, तब-तब वे जातिवाद, भाषावाद आदि का बाना पहन कर उठ खड़े होते हैं। इसीलिये जिस प्रकार रक्त की अशुद्धि के रोगी का इलाज जगह-जगह उठने वाले फोडो पर मरहम लगाकर नही किया जा सकता, उसके लिये तो रक्त को शुद्ध बनाने वाली औषधि का ही सेवन करना हितकर होगा, उसी प्रकार इस विघटनकारी शक्ति का इलाज है एक सशक्त, गतिशील एव व्यापक आर्थिक प्रणाली की व्यवस्था जिसमे वैषम्य और अभाव के लिये नाममात्र का ही स्थान न हो। जब ऐसी आर्थिक प्रणाली स्थापित हो जायगी तब ये विघटनकारी प्रवृत्तियाँ अपना सारा जादू खो बैठेंगी। इसमे कोई सदेह नहीं कि यह एक बहुत बडा कार्य है किन्तु जब तक वह नही होता जनता का तनाव किसी न किसी रूप मे फूटता ही रहेगा।

दूसरी बात है सांस्कृतिक शिक्षा की। कवीन्द्र रवीन्द्र ने भारतीय सस्कृति की तुलना एक पूर्ण विकसित कमल से की है। उन्होने कहा है कि इसकी विभिन्न पखुडियो मे विभिन्न क्षेत्रो की सस्कृतियाँ प्रवाहित होती हैं और इन पखुडियो का समन्वित रूप पूर्ण कमल हमारी अविभाज्य किन्तु अनेक-पत्रीय भारतीय सस्कृति का प्रतीक है। रवीन्द्र के शब्दो मे यदि इसकी एक पखुडी विक्षत हो जाती है अथवा अविकसित या अर्ध-विकसित रह जाती है तो इसका पूरे फूल के सौंदर्य पर प्रभाव पडेगा। स्पष्ट है कि पूर्णता की यह भावना, यह विशाल दृष्टिकोण ही हमारी सकुचित मनोवृत्ति, स्वार्थपरता और लगाव की भावुक प्रवृत्ति का इलाज कर सकेगी।

पूर्णता की भावना लाने के लिए हम बहुत-सी बातें कर सकते हैं। उदाहरणार्थ पडौसी राज्यो के बीच गहरा सम्पर्क स्थापित करना, उनकी भाषा, सस्कृति और साहित्य का अध्ययन करना तथा पारस्परिक सहयोग

श्रौर सद्भावना का विकास करना। भले ही गुजरात मे शिक्षा का माध्यम गुजराती हो श्रौर बगाल मे बगला हो, किन्तु गुजरात मे चण्डीदास श्रौर रविबाबू के गीतो का वही सम्मान हो जो नरसी मेहता श्रौर मीरांबाई के गीतो का है। इसी प्रकार पजाब मे ज्ञानेश्वर श्रौर तुकाराम के श्रभग उसी श्रद्धा से गाये जायँ जिस श्रद्धा से गुरु नानक श्रौर श्रगद के भजन गाये जाते है। इसी प्रकार मद्रास मे लक्ष्मीबाई की मूर्ति लगाई जाय, राजस्थान मे शिवाजी की। श्रान्ध्र मे गुरु नानक की जयन्ती मनाई जाय, काश्मीर मे शकराचार्य की। मार्गों श्रौर उद्यानो के नामकरण, पाठ्य-पुस्तको के पाठो के चयन श्रौर पर्व-उत्सवो श्रादि के श्रायोजन मे भी यही नीति श्रपनाई जा सकती है। स्वास्थ्य, रेल श्रादि विभागो की सेवा को श्रखिल भारतीय बनाने का सुझाव तो राज्य-पुनर्गठन-श्रायोग ने दिया ही था। प्रत्येक राज्य के कॉलेजो मे पडौसी राज्य के विद्यार्थियो श्रौर प्रोफेसरो के लिए कुछ स्थान सुरक्षित रखे जाये तथा श्रन्य विभागो मे भी इस नीति को श्रपनाया जाय। इस प्रकार पारस्परिक सम्पर्क जितना बढेगा, विघटनकारी शक्तियाँ उतनी ही पीछे छूटती जायँगी।

एक श्रखिल भारतीय भाषा का प्रचार श्रौर प्रसार भी हमारी श्राज की बहुत बडी श्रावश्यकता है। सस्कृत के विघटन के बाद उसका स्थान क्रमश उर्दू श्रौर श्रग्रेजी ने ग्रहण किया किन्तु वे जन-जीवन को उतनी गहराई से स्पर्श न कर सकी। श्रग्रेजी से देश को भले ही श्रनेक हानियाँ हुई हो किन्तु एक सबसे बडा लाभ यह हुश्रा कि उसने दूरस्थ प्रान्तवासियो को श्रभिव्यक्ति का एक सर्व-साधारण माध्यम प्रदान किया। इस माध्यम के द्वारा भारतवासी एक दूसरे के निकट-सम्पर्क मे श्राये श्रौर भावनात्मक एकता का मार्ग प्रशस्त हुश्रा। श्राज वही गौरव का स्थान हम हिन्दी को देने का निश्चय कर चुके है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि कुछ लोग उसे श्रखिल भारतीय भाषा स्वीकार नही करना चाहते। उनके श्रनुसार श्रखिल भारतीय भाषा वही हो सकती है जो किसी एक राज्य की भाषा न हो। यह एक दु खद स्थिति है। इन भाइयो की शका का निवारण कर उनका हृदय बदलने का एक बहुत बडा उत्तरदायित्व

हिन्दी-भाषा-भाषियो के ऊपर है। यह भी हमारा एक बड़ा दुर्भाग्य है कि हमारी भाषा, संस्कृति, इतिहास, लिपि सब कुछ सम्प्रदायो के साथ जुड़ गये हैं। साम्प्रदायिकता का यह दलदल भी हमसे औदार्य, विशाल-हृदयता और मानवी-दृष्टिकोण की माँग कर रहा है। यह हमारे उस सामाजिक और आर्थिक विकास पर भी कुठाराघात कर रहा है जिस पर हमारे समूचे देश का भाग्य निर्भर है।

अन्त मे मैं नेहरूजी के शब्दो को दुहराना चाहता हूँ—"भारत के उत्तर और दक्षिण तथा पूर्व और पश्चिम मे कोई अन्तर नही है। भारत एक है जिसके हम सब उत्तराधिकारी हैं और इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भारत के उज्ज्वल भविष्य के भी हमी उत्तराधिकारी है।" साराश यह कि भारत का उज्ज्वल भविष्य हमसे एकता, सहिष्णुता, विशाल-हृदयता और औदार्य की अथवा यो कहे कि भारत की भावनात्मक एकता की माँग कर रहा है। क्या उसकी आवाज सुनेंगे ?

३५—साहित्य और समाज

१—साहित्य का अर्थ

२—साहित्य का समाज पर प्रभाव

३—सामाजिक स्थिति और साहित्य

४—साहित्य का महत्त्व

५—सत्साहित्य से समाज की उन्नति

साहित्य शब्द का अर्थ है सहित होने का भाव—"सहितस्य भाव साहित्य।" सहित शब्द के दो अर्थ है—सह अर्थात् साथ होना और 'हितेन सह सहित' अर्थात् हित के साथ होना अथवा जिसमे हित सम्पादन हो। अत हम कह सकते है कि जहाँ शब्द और अर्थ, विचार और भाव का परम्परानुकूलता के साथ सह-भाव हो वही साहित्य है।

कवि-कुल-चूडामणि कालिदास ने रघुवश के मगलाचरण मे शब्द और अर्थ को अपने उपास्य पार्वती-परमेश्वर के सयोग का उपमान माना है और कवि-कुल-शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास ने वाणी और अर्थ का सम्बन्ध जल और उसकी तरङ्ग की भाँति एक दूसरे से अभिन्न माना है। साहित्य का अर्थ "हितेन सह सहित" लगाते हुए हम कहेगे कि

साहित्य वह है जिससे मानव हित का सम्पादन हो। अंग्रेजी मे साहित्य को लिटरेचर (Literatuie) कहते हैं। यह शब्द अक्षरो (Letters) से बना है, अर्थात् अक्षरो के सारे विस्तार का ही नाम साहित्य है। अरबी भाषा मे साहित्य को 'अदब' कहा जाता है। अदब का अर्थ है आदर—शिष्टता। अत उसके अनुसार जिसमे शिष्टता हो वही 'अदब' या साहित्य है।

साहित्य शब्द के शाब्दिक अर्थ से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि उसके दो अर्थ हैं—एक व्यापक, दूसरा सकुचित। व्यापक अर्थ मे जितना शब्द भण्डार और वाणी का विस्तार है सब इसके अन्तर्गत आ जाता है। सकुचित अर्थ मे साहित्य का अर्थ है—काव्य। व्यापक अर्थ मे साहित्य एक ऐसी रचना है जिसमे कुछ हित या प्रयोजन हो और सकुचित अर्थ मे काव्य अथवा भावना प्रधान साहित्य। श्री गुलाबरायजी के अनुसार "साहित्य ससार के प्रति हमारी प्रतिक्रिया अर्थात् विचारो, भावो और सकल्पो की शाब्दिक अभिव्यक्ति है और वह हमारे किसी न किसी प्रकार के हित का सम्पादन करने के कारण सरक्षणीय हो जाती है।" डॉ० श्याम सुन्दरदास के शब्दो मे "सामाजिक मस्तिष्क अपने पोषण के लिए जो भाव-सामग्री निकाल कर समाज को सौपता है उसी के सचित भण्डार का नाम साहित्य है।" आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का कहना था कि "ज्ञान-राशि के सचित कोष का ही नाम साहित्य है।" अंग्रेज विद्वान् विलियम हडसन का कथन है कि "साहित्य केवल ऐसी पुस्तको का भण्डार है जो विषय-वस्तु और उसकी प्रतिपादन शैली के कारण सर्व साधारण के लिए रुचिकर होता है तथा जिसमे रूप और उसका आस्वाद आवश्यक होते हैं।"

साहित्यकार अपने युग का प्रतिनिधि होता है। युग की प्रवृत्तियो, भावनाओ और आशा-आकाक्षाओ को ही वह अपनी रचनाओ मे मूर्तरूप प्रदान करता है। जिस प्रकार बेतार के तार का रिसीवर आकाश-मण्डल मे विचरती हुई विद्युत तरङ्गो को पकड़ कर भाषित शब्द का आकार देता है, ठीक उसी प्रकार कवि या लेखक अपने युग के वायुमण्डल मे घूमते हुए विचारो को पकड़ कर मुखरित कर देता है। साहित्यकार

वही बात कहता है, जो सब लोगो के अनुभव मे दिन-रात आती है। साहित्यकार और साधारण व्यक्ति मे अन्तर इतना ही होता है कि साधारण व्यक्ति मे अभिव्यक्ति की क्षमता नही होती जब कि साहित्यकार मे उसकी कोई कमी नही होती। साहित्यकार सहृदय होता है। सबके सुख-दु ख को अपना सुख-दु ख मनकर वैसी अनुभूति कर लेता है और जहाँ उसे किसी भावना की क्षीण से क्षीण रेखा ही दिखाई देती है वहाँ वह उसके आधार पर पूरा चित्र खीच देता है।

किन्तु साहित्यकार केवल समाज का मुँह ही नही होता, वह समाज का मस्तिष्क भी होता है। वह समाज के हित की बात सोचता है और उसके लिए समाज का आह्वान करता है। वह सामाजिक भावो की जो मूर्ति बनाता है वह समाज की उन्नायिका होती है। साहित्यकार के माध्यम से हम समाज की भावनाओ को समझ पाते हैं और हमको उन परिस्थितियो का भी पता लगता है जो समाज को प्रभावित कर वायुमण्डल मे एक नई लहर पैदा कर देती हैं। यद्यपि सर्वत्र मानव-हृदय एक-सा ही है तथापि प्रत्येक जाति के साहित्य की अपनी अलग विशेषता होती है। आत्मा का जो विस्तार, जो त्याग और तप हमे उपनिषदो में दिखाई देता है वह अन्य जातियो के साहित्य मे नही मिलता। उपनिषदो के इस साहित्य मे उस समय के भारत की सामाजिक स्थिति तथा तपोवनो का पवित्र, मुक्त और उज्ज्वल जीवन ही प्रतिबिम्बित हुये हैं। इस्लाम मूर्ति-पूजा का निषेध करता है, यही कारण है कि हमे मुसलमानो के साहित्य मे नाटको का अभाव मिलता है। हिन्दुओ मे सम्मिलित कुटुम्ब प्रणाली प्रचलित है। अत सम्मिलित परिवार का जैसा सुन्दर वर्णन भारतीय-साहित्य मे उपलब्ध है वैसा अन्यत्र दिखाई नही देता। शेक्सपियर लाख प्रयत्न करने पर भी कालिदास की भावनाओ को नही पा सकते और कालिदास शेक्सपीयर की भावनाओ को। इसी प्रकार मर्यादावादी गोस्वामी तुलसीदास न तो मिल्टन के 'पैराडाइज लॉस्ट' की कल्पना कर सकते थे, न स्वच्छन्दतावादी क्रान्तिकारी मिल्टन रामचरितमानस की। हिन्दू-जाति सदैव अहिंसा-प्रिय रही है, अत. उसके साहित्य मे त्याग, तप, औदार्य, सहिष्णुता, सत्यवादिता आदि का ही वर्णन है

और इन भावनाओ के अनुरूप उसके चरित्र-नायक भी हरिश्चन्द्र, राम, कृष्ण, शिवि, दधीचि आदि रहे है।

पाश्चात्य देशो मे वैज्ञानिक उन्नति के कारण वहाँ के साहित्य मे भी भौतिकवाद की प्रतिष्ठा हो गई। वहाँ विज्ञान की उन्नति के ही कारण स्वरति की भावना का भी विकास हुआ। वहाँ के लोगो मे विलास-प्रियता और भोगेच्छा की वृद्धि हुई। भौतिकवादी दृष्टिकोण के कारण वहाँ के जीवन मे सघर्ष, घात-प्रतिघात एव प्रतिद्वन्द्विता की अधिकता है। अत वहाँ के साहित्य मे इन भावो का चित्रण प्रचुरता से मिलता है। इधर हमारा भारत प्राकृतिक शोभा से पूर्ण है। प्रकृति ने यहाँ के निवासियो के लिए अक्षय खाद्य-पदार्थ उत्पन्न किये हैं। परिणाम यह हुआ कि यहाँ के निवासी या तो अतीन्द्रिय जगत के साथ सम्बन्ध जोड़ने मे रहे या भोग-विलास मे फसकर ऐन्द्रिक सुखो मे लीन हो गये।

दूसरी ओर जिस प्रकार साहित्य मे सामाजिक भावो और विचारो की प्रतिच्छाया रहती है उसी प्रकार हमारा समाज भी साहित्य से प्रभावित होता है। समाज साहित्य का निर्माण करता है और साहित्यकार समाज का। दोनो मे आदान-प्रदान होता रहता है, दोनो पर एक दूसरे की क्रिया-प्रतिक्रिया होती रहती है। वर्तमान युग विचारो का युग है। आजकल जो भी परिवर्तन होते हैं वे सब विचार-धारा के ही परिणाम-स्वरूप होते हैं। जैसे छोटे से वट-बीज मे बडे वृक्ष की सभावना छिपी रहती है उसी प्रकार विचारो मे बडी-से-बडी क्रान्ति या विघटन छिपे रहते हैं। इस युग के सारे राजनीतिक आन्दोलन विचारो के ही फल है। साहित्य हमारे ज्ञान का विकास करता है तथा हमारे मन मे वर्तमान के प्रति असन्तोष पैदा करता है। वह हमे अपनी हीन-अवस्था की, दूसरो की उन्नत अवस्था से तुलना करने की प्रेरणा देता है और उसे सुधारने की स्फूर्ति प्रदान करता है। प्रेमचन्द के उपन्यास और कहानियो मे किसानो के प्रति सहानुभूति और मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, एक भारतीय आत्मा के काव्य मे देश को आजाद बनाने की छटपटाहट है। रूस की क्रान्ति मार्क्स के विचारो का परिणाम थी तो हमारे देश का सत्याग्रह और असहयोग आन्दोलन महात्मा गाँधी के

अहिंसावाद एव निष्क्रिय-प्रतिरोध का। इसी प्रकार तुलसीदासजी ने अपने रामचरित-मानस से भारत के घर घर मे सुख, शान्ति और भक्ति का सन्देश पहुँचाया तो कवीर ने हिन्दू-मुस्लिम एकता और सहिष्णुता का मार्ग प्रशस्त किया। साहित्य हमारे अव्यक्त भावो का व्यक्त रूप ही तो है। वह किसी भी देश के भावो को जीवित रखता है और व्यक्तित्व को स्थिर बनाता है। साहित्य के द्वारा जो परिवर्तन होते है वे तलवार के द्वारा किये हुए परिवर्तनो से कही अधिक शक्तिशाली होते हैं।

इसके अतिरिक्त, साहित्य हमारा मनोविनोद करता है और हमारे जीवन का भार भी हल्का करता है। वह सामाजिक सगठन को दृढ बनाता है और जातीय जीवन को वल देता हे। साहित्य हमे एक सस्कृति और एक जातीयता के सूत्र मे बाँधता है। जैसा साहित्य होता है वैसी ही हमारी मनोवृत्तियाँ भी होती हैं और जैसी मनोवृत्तियाँ होती है वैसा ही कार्य हम करते है। अत हम कह सकते हैं कि साहित्य केवल समाज का प्रतिविम्व ही नही होता वह समाज का उन्नायक और नियामक भी होता है। साहित्य समाज के अज्ञान-अन्धकार को समाप्त करता है और उसकी एक ही चोट मे पाखण्ड, ढौग, अन्धविश्वास हवा हो जाते हैं। साहित्य मे क्रान्ति करने की जवरदस्त शक्ति होती है। जब वैपम्य बढने लगता है, अत्याचार से लोग त्रस्त हो जाते है और अनर्थकारी रूढियाँ जड जमाने लगती है तो साहित्य उनका प्रतिरोध करता है और जनता मे प्रतिरोध की शक्ति भर देता है। साहित्य ने किसानो, मजदूरो की आवाज वुलन्द की है और उसी ने सोये हुए भारतवासियो, एशिया और अफ्रीका के निवासियो मे जागरण का मन्त्र फूँका है। इस प्रकार साहित्य की शक्ति अपरिमेय है। वह समाज के उत्थान-पतन, विकास-ह्रास और आरोह-अवरोह की अपार शक्ति अपने अन्दर छिपाये हुए है।

किन्तु आजकल साहित्य के नाम पर कुछ ऐसी पुस्तकें भी धडाधड निकल रही हैं जो हमारी कुत्सित वृत्तियो का पोषण करती हैं और हमे अनैतिक जीवन की ओर मोडती हैं। ऐसी पुस्तकें कभी भी साहित्य नही कही जा सकती। हम उसी को सद्साहित्य कहेगे जो हमे सुपथ पर चलाए। जो अज्ञान के अन्धकार से हटाकर हमे ज्ञान के प्रकाश मे लाए,

असत् से निकाल कर सत्य के दर्शन कराए और विनाश से निकाल कर अमृत पिलाए, वही सच्चा साहित्य है। सच्चा साहित्य समाज मे आशा और उल्लास पैदा करता है, साहस और बल भरता है, प्रेरणा और स्फूर्ति जगाता है। जब ऐसे साहित्य का सृजन होता है, जातियाँ निहाल हो जाती हैं।

३६—नि शस्त्रीकरण की समस्या

१—भूमिका
२—नि शस्त्रीकरण का अर्थ
३—उसका सक्षिप्त इतिहास
४—नि शस्त्रीकरण का महत्त्व
५—उसका भविष्य

हम विज्ञान के युग मे रह रहे है। आज का युग विज्ञान के चमत्कारो का युग है। जीवन के जिस क्षेत्र पर दृष्टि जाती है वही विज्ञान के चमत्कारो से चमत्कृत दिखाई देता है। आज वायुयान, मोटर, रेल, जहाज आदि हमे देखते ही देखते दुनियाँ के एक कोने से दूसरे कोने मे पहुँचा देते हैं और तार, टेलीफोन, बेतार के तार आदि दुनियाँ के किसी कोने से घर बैठे हमारी बातचीत करवा देते हैं। विशाल बाँधो, पुलो, सडको और नहरो के निर्माण मे कला का चमत्कार दिखाई देने लगा है तो नई-नई दवाइयो, निरोधक टीके, एक्सरे आदि के आविष्कार मे व्याधि-निवारण एव नियन्त्रण के। रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा आदि ने शिक्षा एव मनोरजन के क्षेत्र मे चमत्कार उपस्थित किया है तो स्पुतनिक ने अन्तरिक्ष-यात्रा के क्षेत्र मे। अभी विज्ञान के गर्भ मे मानव-कल्याण की अनेक सम्भावनाएँ छिपी हुई है। आज की प्रगति को देखते हुए हम विश्वास के साथ कह सकते हैं कि आगामी कुछ वर्षों मे दुनियाँ का नक्शा ही बदल सकता है। किन्तु जैसे समुद्र-मन्थन के समय अमृत के साथ विष भी निकला था, उसी प्रकार विज्ञान से वरदानो के साथ-साथ कुछ अभिशाप भी हमे मिले हैं। ये अभिशाप हैं—एटमबम, हायड्रोजन बम, कोबाल्ट बम, दूरमारक यन्त्र, विषैली गैसें तथा इसी प्रकार के अन्य विनाशकारी शस्त्रास्त्र। समुद्र-मन्थन के बाद जिस प्रकार विष पीने की

समस्या खडी हुई थी उसी प्रकार आज भी इन विनाशकारी हथियारो पर नियन्त्रण रखने की समस्या हमारे सामने उपस्थित है। उस समय तो सौभाग्य से शकर ने विप पीकर दुनियाँ को बचा लिया था किन्तु आज इस विष को पीने के लिए कोई भी तैयार नही है। दुनियाँ के सिर पर तलवार लटक रही है। न जाने कब महायुद्ध प्रारम्भ हो जाय और दुनियाँ देखते ही देखते मिट जाय। हमारी विज्ञान की सारी प्रगति युद्ध के विनाशकारी खतरे से कुण्ठित हो गई है। हमे ऐसा लगता है कि दुनियाँ विनाश के कगार पर खडी है। न जाने कब वह किसी झोके से गिर पड़े और हमेशा के लिए गहरी नीद मे सो जाय! आप पूछेगे कि इसका कोई इलाज भी है या नही? हाँ, है। वह इलाज है नि शस्त्रीकरण।

निःशस्त्रीकरण का अर्थ है इन विनाशकारी शस्त्रास्त्रो पर नियन्त्रण करना। आज दुनियाँ के सभी शक्तिशाली और उन्नत राष्ट्र शक्ति प्राप्त करने के लिए इन शस्त्रास्त्रो के अन्धाधुन्ध निर्माण मे जुटे हुए हैं। सब एक दूसरे से भयभीत हैं और अपनी शक्ति रक्षा और उन्नति का स्रोत इन शस्त्रास्त्रो को ही समझ रहे हैं। किसी मे इतना साहस नही है कि इन विनाशकारी उपकरणो से अपना पीछा छुडाएँ और दुनियाँ से कहे कि हमारा कोई बुरा इरादा नही है। यदि कोई हम पर बुरा इरादा रखता है तो हम बिना हथियारो के उसका मुकाबला करेंगे और भले ही मर मिटे पर उसके इरादो को सफल नही होने देंगे। इस निश्चय के साथ शस्त्रास्त्रो की इस कुटिल और विनाशकारी होड से पीछे हट जाना ही नि शस्त्रीकरण है।

यह बात नही है कि नि शस्त्रीकरण के महत्त्व को कोई समझ नही रहा है। आज दुनियाँ के सभी बडे राष्ट्र उसके महत्त्व को समझ रहे है। वे उसके लिए प्रयत्नशील भी हैं किन्तु उनके प्रयत्न अधूरे और आधे मन से किए हुए हैं। आइए, हम इन प्रयत्नो के इतिहास पर एक दृष्टि डालें। नि शस्त्रीकरण का इतिहास बहुत पुराना नही है। वह अपने जीवन के केवल २-३ दशक ही बिता सका है। उसका जन्म दूसरे महायुद्ध की विभीषिका के बाद सन् १९४५ मे हुआ था। दुनियाँ के बडे राष्ट्र अपनी

आँखो से युद्ध के विनाशकारी कुकृत्यो और उनके दुष्परिणामो को देख चुके थे। उन्होने अनुभव किया था कि यदि यही स्थिति रही तो दुनिया का विनाश दूर नही है। अत सन् १९४५ मे उन सभी बड़े राष्ट्रो ने नि शस्त्रीकरण का प्रश्न उठाया। अमेरिका और ब्रिटेन दोनो ने ही न्यू मेक्सिको के प्रथम आणविक विस्फोट के बाद एक सम्मिलित घोषणा की। उन्होने कहा कि इन विनाशकारी अस्त्रो की होड़ को रोकने के लिए शीघ्र ही एक सयुक्त-राष्ट्र-आयोग की स्थापना की जाय। इस घोषणा का अच्छा फल हुआ। अमेरिका, ब्रिटेन और सोवियत-रूस के विदेश-मन्त्रियो ने जनवरी १९४६ मे सयुक्त-राष्ट्र-अणुशक्ति-आयोग की स्थापना की। इस वर्ष जून मास मे अमेरिका ने एक योजना प्रस्तुत की जो कि 'बरुच-योचना' के नाम से प्रसिद्ध है। इस योजना के कुछ प्रस्ताव इस प्रकार हैं—

(१) भय पूर्ण सभावनाओ से युक्त सम्पूर्ण आणविक क्रिया-कलापो एव अन्य कार्य-विधियो की व्यवस्था, नियन्त्रण और अन्य कार्यक्रम एक अन्तर्राष्ट्रीय सस्था के आधीन हो।

(२) इस अन्तर्राष्ट्रीय सस्था के नियमो का उल्लघन करने वाले राष्ट्रो को दण्ड दिया जाय। स्थायी सदस्यो का निषेधाधिकार भी इस निर्णय मे बाधक न हो।

(३) दण्ड-विधान के नियम के साथ ही आणविक शस्त्रास्त्रो के उत्पादन पर भी अकुश लगाया जाय और इनके उत्पादन मे लगने वाली समस्त सामग्री का उपयोग मानव-कल्याण के विविध कार्यों मे किया जाय।

सन् १९४९ मे यह 'बरुच-योजना' राष्ट्रसघ मे बहुमत से स्वीकार कर ली गई। दु ख है कि इस योजना को सभी सदस्य राष्ट्रो की सर्व-सम्मत स्वीकृति नही मिल सकी। सोवियत-रूस तथा उसके मित्र राष्ट्रो ने यह आपत्ति की कि सर्वप्रथम आणविक अस्त्रो के प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगाया जाय और नियन्त्रण-विधि बाद मे कार्यान्वित की जाय। इसके बाद रूस ने यह कहा कि अणुबमो पर नियन्त्रण प्रतिबन्ध दोनो एक साथ प्रारम्भ किये जायँ। इसके बाद रूस बार-बार विरोध करता रहा।

परिणाम यह हुआ कि सयुक्त-राष्ट्रसघ की समिति ने केवल एक ही आयोग मे, जिसका नाम नि शस्त्रीकरण आयोग रखा गया, परिवर्तित कर दिया। यद्यपि रूस का रुख नि शस्त्रीकरण विरोधी नही है तथापि अमेरिका और रूस के बीच व्याप्त पारस्परिक अविश्वास और वैमनस्य के कारण उनके बीच की खाई कम हो ही नही पाती। फलत सयुक्त राष्ट्र-मघ की सयुक्त-समिति ने इस आयोग के सारे कार्य को एक निष्पक्ष एव मध्यस्थ उपसमिति को सौप दिया। इस उपसमिति की बहुत सी वैठकें सन् १९५३-५४ मे हुई। अक्टूबर १९५४ मे सयुक्त-राष्ट्र-सघ ने यह प्रस्ताव पास किया कि मुख्य रूप से अस्त्र-निर्माता पाँच महान् राष्ट्रो का सम्मिलित निर्णय होगा। तीन-चार वर्षों की अवधि मे नि शस्त्रीकरण के समझौते के सम्बन्ध मे पाँच महान् राष्ट्रो की अनेक वैठके हुई और इनमे पर्याप्त विचार-विनिमय भी हुआ। किन्तु खेद है कि इन सबका कोई सुपरिणाम सामने नही आ पाया। पता नही वह सुदिन कव उदय होगा जब इन बडी-बडी शक्तियो मे इस प्रश्न पर समझौता होगा और दुनियाँ मुक्ति की साँस ले सकेगी।

इसमे कोई सन्देह नही कि नि शस्त्रीकरण का प्रश्न दुनियाँ के जीवन-मरण का प्रश्न है। यदि इस प्रश्न का समुचित हल निकल आया तो ठीक है अन्यथा कुशल नही हो सकती। बात यह है कि जैसे-जैसे विज्ञान की प्रगति हो रही है वैसे-वैसे विनाश के नये शस्त्र-अस्त्र बन रहे हैं। इन शस्त्रास्त्रो की शक्ति चौंका देने वाली है। पहले जहाँ तलवार या बन्दूक एक बार मे एक-दो व्यक्तियो को ही मारने की क्षमता रखते थे, वहाँ अब आधुनिक शस्त्रास्त्र एक-साथ करोडो व्यक्तियो को मारने की क्षमता रखने लगे हैं। वे देश के देश नष्ट कर सकते है। अब सारी दुनियाँ का विनाश कुछ ही घण्टो का काम हो गया है। अत दुनियाँ के सामने यह प्रश्न है कि वह विनाश की इस होड मे आगे वढे या इनसे मुक्ति ले। स्पष्ट है कि विनाश कोई नही चाहता। किन्तु पारस्परिक अविश्वास और विद्वेष का ऐसा कुटिल जाल विछा हुआ है कि विश्वास, शान्ति, सद्भावना और सुरक्षा का मार्ग प्रशस्त नही हो पाता। वैसे तो दुनियाँ के सामने आज अनेक समस्याएँ हैं किन्तु

नि शस्त्रीकरण की समस्या उससे तत्काल हल की मांग कर रही है। यदि इसकी इसी प्रकार उपेक्षा होती रही तो विनाश निश्चित है। इसीलिए मैं इसे दुनियां के जीवन-मरण का प्रश्न कहता हूँ।

प्रसन्नता की बात है कि सन् १९५५ मे सोवियत-रूस ने अपनी सेना मे सात लाख सैनिको की कमी करने की घोषणा करके इस दिशा मे एक महत्त्वपूर्ण पहल की। इसमे कोई सन्देह नही कि नि शस्त्रीकरण की दिशा मे यह एक महत्त्वपूर्ण कदम था किन्तु खेद है कि दूसरे राष्ट्रो ने इसका बिल्कुल उत्तर नही दिया। अगस्त १९५७ मे नि शस्त्रीकरण की समस्या पर फिर एक बैठक हुई जिसमे कुछ नये सुझाव रखे गये। अमेरिका के भूतपूर्व विदेश-मन्त्री श्री डलेस ने अमेरिका, रूस और 'वारसा-सन्धि' के देशो मे हवाई-निरीक्षण का प्रस्ताव रखा। इधर नाटो-परिषद् ने भी नि शस्त्रीकरण सम्बन्धी बातो से अपनी सहमति प्रकट की किन्तु अभी तक दुनियाँ के बडे-बडे राष्ट्र किसी सर्वसम्मत निर्णय तक पहुँच नही सके है। वस्तुत नि शस्त्रीकरण का प्रश्न हमसे साहस की मांग कर रहा है। हम अपने मनो मे अविश्वास, वैमनस्य और कटुता बनाये रखकर इस प्रश्न को हल नही कर सकेंगे। अत इस समस्या की मांग यह है कि बडे राष्ट्र वैमनस्य, अविश्वास और कटुता के सकुचित एव विनाशकारी घेरे से ऊपर उठें और मुक्त मस्तिष्क से इस प्रश्न पर सोचें-विचारें। यदि दुर्भाग्य से ये लोग उस घेरे से ऊपर न उठ सके तो दुनियाँ के शान्तिप्रिय लोगो का मत इतना शक्तिशाली बन सके कि उन्हे नि शस्त्रीकरण के लिये विवश कर दें। सौभाग्य से ऐसी शक्तियो का उदय हो रहा है। चिन्ता यही है कि इन शक्तियो के मजबूत होने से पहले ही कही विनाशकारी शक्तियाँ अपने पैर न जमा ले।

३७—चीन की चुनौती

१—चीन का सपना
२—जीवन मूल्यो का सघर्ष
३—रूढिवादी साम्यवाद मैदान मे
४—हमारा कर्त्तव्य
(अ)—सुरक्षा का महत्त्व समझें

(आ)—सरकार, ससद और प्रधान मत्री का समर्थन करें
(इ)—शान्तिकालीन सुविधाओ को छोडने के लिए तैयार रहे

५—उपसहार

चीन ने हमारी उत्तरी सीमा पर आक्रमण कर हमे एक वहुत वडी चुनौती दी है। चीन का आक्रमण एक साधारण युद्ध नही है। बात यह है कि चीन का आक्रमण उमकी उस महत्वाकाक्षा का पहला अभियान है जो वह सम्पूर्ण दक्षिण-पूर्व एशिया, जिसमे पूर्वी पाकिस्तान और ब्रह्मा भी सम्मिलित हैं, को विजय करके पूरा करना चाहता है। यदि किसी दिन चीन को इसमे सफलता मिली तो वह हमारे दुर्भाग्य का दिन होगा। उस दिन आजादी ही नही व्यक्तिगत स्वतन्त्रता भी समाप्त हो जायगी। अपनी जिस सस्कृति और नैतिक व आध्यात्मिक जीवन पर हम सदियो से गर्व करते आए हैं, समाप्त हो जावेंगे। हमारी पराजय सम्पूर्ण एशिया ही नही दुनियाँ की परतन्त्रता और जनतान्त्रिक प्रणाली के लिये एक बहुत वडा आघात सिद्ध होगी। चीनी साम्यवादी यही सपना देख रहे हैं कि वे समस्त एशिया ही नही, दुनियाँ की स्वतन्त्रता, आध्यात्मिक जीवन और जनतात्रिक प्रणाली का अन्त कर दें।

चीन के आक्रमण को केवल सीमा का झगडा समझना एक बहुत बडी भूल होगी। वस्तुत वह भारतीय और चीनी जीवन पद्धतियो, आदर्श एव दर्शन का सघर्ष है। हम आस्तिक हैं, वे नास्तिक। हम भौतिक पदार्थों से अधिक मानवीय मन व सकल्प-शक्ति को प्रधानना देते हैं, वे मानवीय मन और सकल्प को भौतिक परिस्थितियो की उपज मानते है। हम साध्य के साथ-साथ साधन की पवित्रता को भी महत्त्वपूर्ण मानते हैं जब कि उनके लिये साधनो की शुद्धता कोई महत्त्व नही रखती। उनकी दृष्टि मे केवल साध्य ही महत्त्वपूर्ण है। उसके लिये वे निम्न से निम्न साधन अपनाते हुए नही हिचकते। हम अहिंसा को बडा महत्त्व देते हैं और जीवन ही नही, जगत् मे उसकी प्रतिष्ठा करना चाहते हैं। किन्तु उनके सामने अहिंसा न तो नीति-शास्त्र का प्रश्न है न आचार का। वह उनके लिये मात्र व्यावहारिक उपयोगिता का प्रश्न है। हमारा लक्ष्य है 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय।' हमारी निष्ठा सर्वोदय मे है किन्तु वे

पार्टी या पक्ष के लिये सभी छोटे-वडे स्वार्थों को-वलिदान करना श्रेयस्कर मानते हैं। हमारी मान्यता है कि सद्भावना पैदा करके वातचीत या पच-फैसले द्वारा सभी झगडे निपटाये जा सकते है। किन्तु वे वर्ग सघर्ष और क्रान्ति की निरन्तरता मे विश्वास करते है। माओ का कहना है कि शक्ति 'बन्दूक की नली से आती है।' हम सब प्रकार की वैचारिक स्वतन्त्रता को मूल्यवान मानते हैं और उसके लिये पूरा-पूरा अवसर देना चाहते हैं। किन्तु वे वैचारिक स्वतन्त्रता को खतरनाक मानते हैं। उनके अनुसार वही विचार प्रचलित किया जाना चाहिये जो शासनसत्ता तय करे। आज हमारे सामने अपने इन्ही जीवन मूल्यो की रक्षा का प्रश्न उपस्थित हो गया है। साम्यवादियो ने सन् १९२८ मे अपने अन्तर्राष्ट्रीय कार्यक्रम मे यह स्पष्ट कर दिया था कि गाँधीवाद जनक्रान्ति का अधिकाधिक विरोधी सिद्ध हो रहा है और साम्यवाद को उसका डटकर मुकावला करना चाहिये।

यद्यपि यूगोस्लाविया और सोवियत रूस भी साम्यवादी राष्ट्र हैं, किन्तु उन्होने अपनी रीति-नीति से यह सिद्ध कर दिया है कि वे चीन की भाँति रूढिवादी साम्यवाद मे विश्वास नही करते। चीन रूढिवादी साम्यवाद के सभी तरीके, नारे और ध्येय अपनाना चाहता है। चीन का नेता माओ स्टेलिनवाद मे विश्वास रखता है। चीन के साम्यवादी इतने प्रवल आतकवादी हैं कि उन्होने सव प्रकार की स्वतन्त्रता को पूर्णत कुचल दिया है। ससार पर प्रभुत्व स्थापित करने की आकाक्षा उसमे इतनी प्रवल है कि यदि आज स्टेलिन जीवित होता तो वह इन सवको देखकर नाचने लगता। यही कारण है कि हमारी यह लडाई साधारण लडाई नही है। इसमे हमे केवल चीनियो का मुकाबला ही नही करना है, उन सब लोगो का भी मुकावला करना है जो इस रूढिवादी साम्यवाद मे विश्वास करते हैं। हमारा दुर्भाग्य है कि ऐसे कुछ लोग हमारे देश मे भी मौजूद हैं। ऐसे लोग जहाँ-तहाँ हमारे देश की जनता के सकल्पो को क्षीण करने मे लगे हुए हैं। वे देश के विभिन्न भागो मे राष्ट्र-विरोधी विध्वसक कार्य कर रहे हैं। अव आप समझ गये होगे कि चीनी आक्रमण अपने गर्भ मे कितना घातक विष छिपाये हुए

है, उसकी शक्ति कितनी प्रबल है और उसका मुकाबला करना कितना आवश्यक है।

अब प्रश्न यह है कि इस स्थिति मे हमारा क्या कर्त्तव्य है? जब अंग्रेज हमारे देश के शासक थे, उनकी सैनिक शक्ति अपरिमित और अजेय थी। फलत: एक लम्बे अर्से तक हम अपने को सुरक्षित समझते रहे और हमने सुरक्षा के प्रश्न की कमी को इतनी गहराई और तीव्रता से नही सोचा। किन्तु आज सुरक्षा का प्रश्न हमारे जीवन और मरण का प्रश्न बन गया है। यदि हम खतरे की गम्भीरता को नही समझते, उसके लिये पूरी तैयारी नही करते और मौका आने पर अपना सब कुछ बलिदान करने की तत्परता नही दिखाते तो हमारा भविष्य निश्चय ही अन्धकारमय है। सौभाग्य से आज देश मे हमारी अपनी सरकार है। हमारे अपने चुने हुए व्यक्ति शासन की कुर्सियो पर बैठे हैं और वे ही हमारे युद्ध प्रयत्नो का सचालन कर रहे हैं। ये वे ही लोग हैं जो आजादी की लडाई मे अपनी देश-भक्ति का परिचय दे चुके हैं। हम अलग-अलग और असगठित रहकर इस खतरे का मुकाबला नही कर सकते। सरकार ही हमारे युद्ध प्रयत्नो का सचालन कर रही है। हमारी विजय-प्राप्ति का वही सबसे बडा उपकरण है। अत आज की सबसे पहली आवश्यकता यह है कि हम अपनी सरकार को मजबूत बनाये, उसे पूरा समर्थन और सहयोग दें। हम ऐसा कोई काम न करें जिससे वह कमजोर बने। हमारे प्रधान मन्त्री प० जवाहरलाल नेहरू ने चीनियो को निकाल बाहर करने की दृढ प्रतिज्ञा की थी। अत हमे उनके नेतृत्व मे पूरा विश्वास रखना चाहिये और वे जैसा मार्गदर्शन कर गये हैं हमे उसी प्रकार का कार्य करते रहना चाहिये। इधर हमारी ससद भी प्रजातन्त्रीय प्रणाली का पर्याप्त अनुभव कर चुकी है। वह भी चीनी आक्रमण का मुकाबला करने के लिये बद्धिबद्ध है। अत हमे उसका भी पूरा समर्थन करना चाहिये। समय की यह आवश्यकता है कि हम दुश्मनो को अपने देश से बाहर निकालने के लिये दृढ सकल्प करें और अपने मे थोड़े से भी सशय या दुविधा को स्थान न दें। इस सकट-काल मे हमे उन सब सुविधाओ और नागरिक स्वतन्त्रता की आशा नही

करनी चाहिये जो शांति के समय हमे प्राप्त होती रहती हैं। हमें अपने सत्तारूढ नेताओ पर पूरा विश्वास रखना चाहिये कि वे अपने अधिकारों का दुरुपयोग नही करेंगे। ऐसे समय शासको को अपने पास कुछ विशेष अधिकार रखने आवश्यक होते है और राष्ट्र के प्रति कोई भी विरोध सहन नही किया जाता। क्या हम अपने इस कर्त्तव्य को पहचानेंगे ?

३८—हमारी प्रतिरक्षा का प्रश्न

१—भूमिका

२—प्रतिरक्षा की आधुनिक आवश्यकताएँ

३—भारत मे इन साधनो की सुलभता

४—हमारी कमी—राष्ट्रीय एकता का अभाव

५—आजादी के वाद एकता की ओर प्रगति

६—सकटकालीन स्थितियो का वरदान

७—उपसहार

आधुनिक युग मे किसी भी राष्ट्र को अपनी प्रतिरक्षा के लिये विपुल साधनो की आवश्यकता होती है। अब वह युग नही कि थोड़े साधनो से ही कुछ वीर पुरुषो के बल पर विजय प्राप्त की जा सके। आज सेनाओं को अनेक अस्त्र-शस्त्र तथा अन्य साधन सामग्रियो की आवश्यकता होती है और इन सब का उत्पादन केवल वही राष्ट्र कर सकते हैं जो औद्योगिक दृष्टि से आगे बढे हुए हैं। इतना ही नही, कच्चे माल का पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होना भी आजकल प्रतिरक्षा के लिये बडा आवश्यक है। आजकल प्रतिरक्षा के लिये सेना की सभी आवश्यकताओ को, जिनमे अस्त्र-शस्त्र से लेकर बूट और बटन तक अनेक वस्तुएँ आती है, अपने ही देश मे तैयार करने की आवश्यकता है। उनमे प्रमुख ये है—

(१) जनबल अर्थात् शारीरिक दृढता और साहस वाले व्यक्तियो की पर्याप्त सख्या।

(२) इतना लम्बा चौडा क्षेत्र जिसमे आर्थिक और सैनिक दोनो ही दृष्टियो से अपनी व्यवस्था को विकसित और शक्तिशाली बनाते रहने का अवसर हो।

(३) पर्याप्त मात्रा मे कच्चे माल का उपलब्ध होना।

(४) रेल सड़क व जल-मार्ग की उत्तम व्यवस्था ।

जहाँ तक हमारे देश का प्रश्न है चीन के आक्रमण से अपनी रक्षा करने के लिये हमे देखना होगा कि हमारे पास प्रतिरक्षा के लिये ये साधन कहाँ तक उपलब्ध है। जहाँ तक जनबल का सम्बन्ध है, हमारे देश मे साहसी योद्धाओ की कमी नही है। अंग्रेजो ने हमारे देश के विशाल जनबल का आंशिक प्रयोग ही किया था और सेना मे मराठे, जाट, राजपूत, गोरखे, सिक्ख, मुसलमान आदि को ही प्रमुख स्थान दिया था। यदि आज जनबल का पूरा उपयोग किया जाय तो हमारे सामने जनबल की कोई समस्या नही रहेगी। विस्तार और क्षेत्र के मामले मे भी हमारा देश सौभाग्यशाली है। मुगलो को दक्षिण पर विजय प्राप्त करने मे जो बहुत सा समय लगा और फिर भी सफलता न मिल सकी उसका एक मात्र कारण क्षेत्र का विस्तार ही था। अंग्रेजो को भी भारत को जीतने मे जो सौ वर्ष का समय लगा उसके पीछे भी क्षेत्र का विस्तार ही एक प्रमुख कारण था। आजकल यह भी आवश्यक है कि हमारी प्रतिरक्षा व्यवस्था किन्ही एक या दो स्थानो पर केन्द्रित न हो। क्योकि यदि दुश्मन उन्ही जगहो पर बम गिरा देता है तो हमारी सारी शक्ति समाप्त हो जाती है। जहाँ क्षेत्र का विस्तार सीमित होता है वहाँ बम आदि विनाशक अस्त्र-शस्त्र सर्वाधिक विनाश करते हैं। हमारे देश मे गङ्गा के मैदान को छोडकर शेष सभी भागो की आबादी विरल है। हमारे उद्योग-धन्धे सारे देश मे फैले हुए हैं। हाँ, कुछ उद्योग कच्चे माल की एक विशिष्ट क्षेत्र मे बहुतायत होने के कारण उसी क्षेत्र मे इकट्ठे जरूर हैं। किन्तु कुल मिलाकर हमारे उद्योग देश भर मे फैले हैं। इसी प्रकार प्रतिरक्षा के लिये जिन भौतिक सामग्रियो की आवश्यकता होती है वह भी सारे देश भर मे फैली हुई है।

इन साधनो की दृष्टि से समृद्ध होते हुए भी हमारी कुछ कमियाँ हैं। उनमे प्रमुख है मानसिक साधन। किसी भी देश की प्रतिरक्षा के लिये सबसे पहली आवश्यकता है स्वतन्त्र रहने की कामना और उसके लिये सब कुछ बलिदान करने की तैयारी। हमे यह खेद के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि सदियों से हमारे देश मे इस भावना का अभाव रहा

है। एक ओर क्षेत्रीय दृष्टि से हमारे देश का विस्तार और दूसरी ओर जातियो की अनेकता इस दिशा मे बाधक बनती रही है। राष्ट्रीय एकता के अभाव मे हमारे यहाँ क्षेत्रीय या स्थानीय भावनाएँ प्रबल होती रही है जिनसे सदैव राष्ट्रीय एकता को आघात पहुँचा। इतिहास बताता है कि अरब के नवाब ने मरहठो के डर से ईस्ट इण्डिया कम्पनी से मेल किया और सिंधिया के आधिपत्य से बचने के लिए राजस्थान के राजाओं ने अग्रेजो की शरण ली। इसी प्रकार ट्रावनकोर के राजा ने भी मैसूर के राज्य की माँग स्वीकार करने की अपेक्षा विदेशियो की आधीनता स्वीकार की। इधर अवध के नवाब शुजाउद्दौला ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी से सन्धि की। इसमे कोई सन्देह नही कि शुजाउद्दौला बडा कुशल योद्धा था किन्तु हमारा यह दुर्भाग्य था कि उसके मन मे भारत की एकता व स्वतन्त्रता की भावना न थी। वह अवध के लिए चिन्तित था और उसे मरहठो से बचाना चाहता था। १८ वीं शताब्दी मे यही भावना हमे सब शासको मे दिखाई दी।

राजा-महाराजा ही नही, हमारी जनता भी उस कमजोरी का शिकार रही है। उसमे भी अपने प्रादेशिक शासको के प्रति वफादारी का अभाव था। बात यह थी कि न तो उस काल के शासक विधिवत् नियुक्त हुए थे न उनका शासन किसी सिद्धान्त पर आधारित था। जो जिस पर कब्जा कर बैठता उसी का राजा बन बैठता। जैसे हैदराबाद व अर्काट के नवाब। इसमे कोई सन्देह नही कि महाराष्ट्र व पजाब मे अपने शासको के प्रति वफादारी थी किन्तु सारे देश की दृष्टि से यह वफादारी कम ही कही जायगी।

अब प्रश्न यह है कि क्या आज स्थिति मे परिवर्तन हुआ है। बाहर से देखने पर आज भी हमे अनेक विभाजक प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं। भाषाओ की दृष्टि से हमारे देश मे अनेक भाषाये हैं और उन भाषाओ को बोलने वाले लोग अपनी-अपनी भाषाओ के प्रति जितने वफादार है उतने राष्ट्रीय एकता के प्रति नही है। हमारे यहाँ अनेक जातियाँ व उपजातियाँ हैं। और सबको अपनी ऐतिहासिक परम्पराओ पर गर्व है। भारत मे ऐसा कोई प्रदेश नही जो किसी न किसी बात मे

अपने को बडा न मानता हो। किन्ही बातो मे अपनी विशिष्टता या श्रेष्ठता मानना बुरा नही है। किन्तु हमारी कमी यह है कि हम ऐसा करते हुए भारत की विशिष्टता और श्रेष्ठता को भूलकर आपस मे लडने-झगडने लगते है। वस्तुत किसी भी जाति, क्षेत्र या भाषा की विशिष्टता एव गौरव पृथकता पर आधारित नही हो सकता। सदियो से हमारे यहाँ कोई अपनी केन्द्रीय सरकार नही थी। यह पृथकता उसकी भी देन है। किन्तु आज भारत मे एक केन्द्रीय सरकार है और वह भी हमारी ही जनता द्वारा चुनी हुई है। आज दुनियाँ भी छोटे-छोटे राज्यो का विलय कर बडे-बडे देशो की स्थापना की ओर बढ रही है। ऐसी स्थिति मे विभाजन व पृथकता की प्रवृत्ति असामयिक एव अहितकर है।

इसमे कोई सन्देह नही कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ऐसे बहुत से काम हुए है जिन्होने हमे एकता के सूत्र मे बाँधने का प्रयत्न किया है। हिन्दू-धर्म के नाते तो हम एक सूत्र मे बन्धे हुए है ही, आर्थिक पुर्ननिर्माण ने भी हमे एकता की ओर बढाया है। आज भारत मे जो पुर्ननिर्माण हो रहा है वह कोई भी एक प्रदेश अलग रहकर नही कर सकता। हमारे देश के निवासी अब लोकतन्त्रीय राजनीतिक जीवन मे समान रूप से भाग ले रहे हैं। सबको समान अधिकार और समान स्वतन्त्रता प्राप्त है। किसी जाति या किसी क्षेत्र से दूसरो को कोई क्लेश नही पहुँचता। यदि यही स्थिति रही तो निश्चय ही एक ऐसा दिन आयेगा जबकि भाषा, जाति और क्षेत्रीयता पर आधारित ईर्ष्या व स्पर्धा की क्षुद्र भावनाएँ समाप्त हो जायेंगी। हमे यह कहते हुए हर्ष है कि चीन द्वारा भारत पर आक्रमण करते ही एकता की भावना प्रबल हुई है। आज हमारी सबसे बड़ी शक्ति है स्वस्थ प्रादेशिक स्पर्धा पर आधारित राष्ट्रीय अखण्डता तथा केन्द्रीय शासन मे देश के विविधतापूर्ण जीवन का प्रतिनिधित्व।। हमे प्रसन्नता है कि यह शक्ति विकास कर रही है। पाकिस्तान ने जब कश्मीर पर आक्रमण किया तो हमारी एकता मजबूत हुई। हैदराबाद की जनता ने भी यही काम किया और अब चीन के आक्रमण ने तो हमारी एकता को सबसे अधिक बल

पहुँचाया है। जो लोग यह सोचते थे कि भारत की राजनीतिक एकता निर्बल है और कोई बड़ा खतरा सामने आते ही वह टुकड़े-टुकड़े हो जायगी, उनके विचार अब तक काल्पनिक सिद्ध हो चुके हैं।

किन्तु आज हमारे सामने प्रमुख प्रश्न यही है कि क्या हम अपने प्रतिरक्षात्मक साधनों का इतनी तीव्रगति से विकास कर सकेंगे कि हम दूसरों की सहायता के बिना ही इस सकट का डट कर मुकाबला कर सके। इस प्रश्न का यही उत्तर है कि हम जिस परिमाण में राष्ट्रीय दक्षता प्राप्त करेंगे, अपनी जनता को शिक्षित बनायेंगे, राजनीतिक स्थिरता और सामाजिक एकता को विकसित करेंगे उसी परिमाण मे हम शक्तिशाली होते चले जायेंगे। चीन की चुनौती का जवाब हमारी इसी प्रतिरक्षात्मक तैयारी पर निर्भर करता है। आइये, हम उसमे जुट पड़े।

३६—मन के हारे हार है, मन के जीते जीत!

१—भूमिका
२—दुनियाँ की विपदाओं पर विजय पाने का महामन्त्र
३—उसे प्राप्त करने के उपाय—(१) आत्म-निरीक्षण (२) स्वाध्याय (३) गुरु कृपा।
४—उपसहार

विद्वानों और दार्शनिको ने इस दुनियाँ को एक शाश्वत दुःखालय कहा है। यहाँ हम जो चाहते है वह बहुत थोड़ा है और जो नही चाहते हैं वही सबसे अधिक है। हम जो कुछ चाहते हैं उसी को प्राप्त करने के लिये करोड़ो व्यक्तियो की दौड़ निरन्तर लगी रहती है फलत. जिनके सिर पर सफलता का सेहरा बँधता है ऐसे सौभाग्यशाली बहुत कम निकलते हैं। अधिकाश वे ही हैं जिन्हे बार-बार विपत्ति, पराजय और निराशा का मुँह देखना पड़ता है। इस दृष्टि से यदि देखे तो जीवन मानो विपद, असफलता और नैराश्य के सघर्ष की एक लम्बी कहानी है। जीवन मे सफलता व आनन्द बहुत थोड़ा है। अत: हमारी सफलता व आनन्द अधिकतर इसी बात पर निर्भर करता है कि हम जीवन की

विपदाओं, असफलताओं और निराशाओ का मुकावला कितने साहस से, कितनी बहादुरी से करते हैं। विपदाओ और निराशाओ से लडते हुए जिस एक बात के सर्वत्र दर्शन होते है और जो सवके अनुभव मे समान रूप से आती है वह किसी कवि के शब्दो मे इस प्रकार है—

मन के हारे हार है,
मन के जीते जीत !

जीवन की कठिनाइयो पर विजय प्राप्त करने का यही एक मूल मन्त्र है। इसमे कहा गया है कि मनुष्य की जीत उसके मन पर निर्भर है और मन ही पर उसकी हार निश्चित है। गीता मे इसी वात को कुछ शब्दो के हेर-फेर के साथ इस प्रकार कहा गया है—

मन एव मनुष्याणा कारणं वधमोक्षयो ।

अर्थात् हमारा मन ही वन्धन व मोक्ष का कारण है। मतलब यह कि यदि हम वाधाओ को वाधा समझकर उलझते रहे तो निश्चय ही उन वाधाओ के झझट मे उलझ जायेंगे। किन्तु यदि हम बाधाओ को बाधा समझते ही नहीं, न उनसे डरते या घबराते हैं तो वे देखते ही देखते समाप्त हो जायेंगी। अतः हमारी अपनी सफलता या असफलता, आशा या निराशा, विपद या आनन्द हमारे अपने मन पर ही निर्भर है। यदि हमारा मन जीता हुआ है, आशाओ से भरा है तो दुनियाँ की कोई मुसीबत उसे हरा नही सकती, निराश नही कर सकती। वह राम का जीता हुआ ही मन था जिसने राज्याभिषेक के तुरन्त बाद वनवास के समाचार सुनकर भी कोई परेशानी अनुभव नही की। कैकेयी ने वरदान माँगकर मानो दुनियाँ भर की विपत्ति राम के सिर पर डाल दी। किन्तु राम के जीते हुए मन को ये मुसीवतें छू भी नही सकी। उनका मन चाहे सीता हरण का समय आया, चाहे राम-रावण युद्ध का, सदैव अपराजित रहा। कठिनाइयाँ, असफलताएँ और निराशाएँ क्या प्रताप, शिवाजी व नैपोलियन के सामने कम थी ? किन्तु इनके अपराजित मनो ने कठिनाई को कठिनाई कब समझा ? उसे देखकर कव ठण्डी साँस ली ? यह उनके अपराजित मन का ही प्रभाव था कि वडी से वडी बाधा भी उनके मार्ग

को अवरुद्ध न कर सकी। कटकाकीर्ण मार्ग उनके लिये राजमार्ग बन गया, पहाड़ नतमस्तक हो गये और सरिताएँ मार्ग देने के लिये विवश हो गईं। यदि गम्भीरतापूर्वक विचार करके सृष्टि के रहस्य को जानने का प्रयत्न किया जाय, तो ऐसा प्रतीत होता है कि आनन्द का स्रोत मनुष्य के अपने अन्दर है। मनुष्य अपनी सारी शक्ति उसे बाहरी दुनिया मे ढूँढते हुए खर्च कर देता है। किन्तु जब मन की शक्ति का पता पड़ जाता है तो जैसे कोई खजाना ही हाथ लग जाता है। विद्वानों का कहना है कि सृष्टि के आदि पुरुष मनु थे। आगे मनु की सन्तान ही मानव कहलाई। मनु शब्द की उत्पत्ति 'मनु' नामक मूल धातु से हुई है। मूल धातु मनु का अर्थ है चिंतन करना, विचार करना। जो चिंतन या विचार करता है वही वस्तुत मानव है। हम मानव तो हैं परन्तु मानव का प्रमुख गुण चितन हममे से कितनो को प्राप्त है? राम को हम ईश्वर की तरह पूजते है। क्या हमने कभी सोचा कि राम मे ऐसा कौन-सा गुण था जिसने उन्हे ईश्वर की कोटि मे लाकर रख दिया? पचवटी मे राम के इसी गुण का सकेत लक्ष्मण के मुँह से कराते हुए मैथिलीशरणजी गुप्त ने लिखा है—

मन प्रसाद चाहिये केवल
क्या कुटीर फिर क्या प्रासाद,
भाभी का आल्हाद अतुल है,
मझली माँ का विपुल विषाद?

राम की सहधर्मिणी होने के कारण सीता को मन प्रसाद प्राप्त हो गया था और जगल उनके लिए सैकड़ो स्वर्ग की भाँति आनन्ददायी बन गया था। दूसरी ओर कैकेयी ने इसी मन.प्रसाद को खो दिया! फलतः राजप्रासादो मे भी रहकर वह सदैव दुखी रही।

आप प्रश्न करेंगे कि यह मन प्रसाद कैसे प्राप्त किया जा सकता है? मन प्रसाद प्राप्त करने के लिये हमे अपने मन को पवित्र बनाना पडेगा। उसके ऊपर से स्वार्थ, कलुष, अज्ञान और अविचार का आवरण उठाना पडेगा। हमे सतत् जागरूक होकर यह देखते रहना पड़ेगा कि

हमारा मन बुराइयो का शिकार तो नही हो रहा है, अपवित्र तो नही बन रहा है। ऐसा करते रहने से हम अपने मन की कमजोरियो, अशुद्धता और अपवित्रता को खोज सकेंगे और उनका अन्त करके उसे विशुद्ध बनाने मे सफलता प्राप्त कर लेंगे। यदि हम जागरूक रहकर अपने दिन भर के क्रिया-कलाप पर विचार करें, यह देखे कि हमारी अपनी त्रुटियाँ क्या है तो निश्चय ही इससे बढकर हमारा कोई मार्ग-दर्शक नही हो सकता। यह आत्मनिरीक्षण हमे सदैव सही रास्ता दिखाता रहेगा। जब हम अपने को देखेंगे, अपनी भूलो को पहचानेंगे तो उन्हे दूर करने का प्रयत्न अपने आप प्रारम्भ हो जायगा। उस स्थिति मे हमे अपनी भूल स्वीकार करना आनन्ददायक लगेगा और हमारा मन स्फटिक की भाँति स्वच्छ और पवित्र बन जायगा। राम के पास मन की पवित्रता की ही तो पूँजी थी। इसी पूँजी ने जगल के बन्दरो की ही सेना उनके लिये बनादी और ये पशु कहलाये जाने वाले वानर उसी पूँजी के बल पर सोने की लका मे रहने वाले उस युग के बहुत बड़े और शक्तिशाली राजा रावण की सेना का पराभव उसी के नगर मे जाकर कर सके। मन की शुद्धता की इसी पूँजी ने गाँधी को हमारे राष्ट्र का पिता बना दिया। गाँधी ने कभी जेल को जेल समझा ही नही। वह तो उनके लिये कृष्ण मन्दिर था। अस्पृश्य जातियो के लोग उनके लिये हरिजन थे और सदियो से शोषित एव पीडित व्यक्ति दरिद्र नारायण। कठिनाइयो की उनके सामने भी कोई कमी नही थी। किन्तु जिसे मन प्रसाद प्राप्त हो जाय उसका रास्ता कौन-सी कठिनाई रोक सकती है? कोई भी कठिनाई गाँधी का रास्ता न रोक सकी। यही बात महात्मा बुद्ध, पैगम्बर मुहम्मद साहब और ईसा के साथ भी थी।

आप कहेगे आत्म-निरीक्षण के द्वारा मन की पवित्रता प्राप्त करना कठिन है। इतना जागरूक रहना और अपनी कमियो को निरन्तर निकालते रहना महापुरुषो का ही काम है। क्या इसका कोई अन्य सुगम मार्ग नही? विद्वानो ने इसके दो अन्य मार्ग भी बताये हैं। एक है स्वाध्याय, दूसरा है गुरु की कृपा। यदि आत्मनिरीक्षण का कार्य

हमे कष्ट साध्य प्रतीत होता है, तो या तो अच्छे-अच्छे ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिये या किसी योग्य गुरु की शरण मे जाना चाहिये। बड़े-बड़े ग्रन्थ मानव-समाज की बडी मूल्यवान पूँजी हैं। महापुरुषो के जीवन का सारा ज्ञान व अनुभव इन ग्रन्थो मे समाया रहता है जिसे प्राप्त करने मे उन्हे अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडा, कडी साधना करनी पडी, वही बात हमे थोडे से समय मे प्राप्त हो जाती है। इन ग्रन्थो का अध्ययन दूसरे शब्दो मे कहे तो उन महापुरुषो का सत्सग ही है। उनके ग्रन्थ पढते हुए किसे ऐसा नही लगता कि हम उनके पास ही हैं और उनका प्रेम, औदार्य, अनुभव और ज्ञानगरिमा हमे अपनी शीतल छाया प्रदान नही कर रहे हैं।

जिन्हे इस मार्ग मे भी कठिनाई मालूम होती है उनके लिये सरल मार्ग है किसी गुरु की शरण मे जाना। सन्तो ने गुरु की महिमा का बहुत वर्णन किया है और उसे गोविन्द से भी बडा माना है। जो जीवन-पथ आलोकित करे उसे गोविन्द ही कह दिया जाय तो इसमे क्या बुराई है?

साराश यह कि यह सृष्टि जैसी है वैसी ही रहेगी। इसकी कठिनाइयो का कोई अन्त नही है और शायद कोई अन्त मिल भी नहीं पायेगा। एक कठिनाई हल होते ही यहाँ चार नई कठिनाइयाँ जन्म लेंगी और नये-नये आविष्कार, साधन-सम्पन्नता एव भौतिक समृद्धि शायद इसका कोई हल नही निकाल पायेगी। यहाँ सफलता का एक ही मार्ग रहेगा और वह होगा मन को विशुद्ध बनाना। मन की शक्ति प्राप्त करके जिस प्रकार अतीत काल के महापुरुषो ने जीवन की बाधाओ और असफलताओ को पराजित किया उसी प्रकार भविष्य मे भी बड़े-बडे सिद्ध व महात्मा यही मार्ग दिखाते रहेगे। मन की यह पवित्रता आत्मनिरीक्षण, स्वाध्याय तथा गुरु की कृपा से प्राप्त की जा सकती है। जो वैराग्य, असफलता और विपदाओ के महासागर से पार होना चाहते हैं उन्हे इसी नाव का सहारा लेना चाहिये।

४०—उपग्रह एवं चन्द्र-यात्रा

१—उपग्रह
२—रूसी उपग्रहो की कहानी
३—अमेरिकन उपग्रहो की सफलता
४—अन्य सफलताएँ
५—रूस और अमेरिका के अन्य उपग्रह
६—चन्द्रमा सम्बन्धी वर्तमान ज्ञान
७—भावी सभावनाएँ

उपग्रह या बालचन्द्र आजकल चर्चा का विषय बना हुआ है। उसकी बढती हुई सफलताओ ने दुनियाँ मे एक तहलका मचा दिया है और सभी पढे-लिखे लोगो का ध्यान आकर्षित कर लिया है। अग्रेजी मे इसे स्पुतनिक कहते हैं। यह रूसी भापा का शब्द है। इसका अर्थ है—साथ चलने वाला या सहयात्री। जिस प्रकार चन्द्रमा हमारी पृथ्वी की परिक्रमा करता है उसी प्रकार यह कृत्रिम उपग्रह भी पृथ्वी की परिक्रमा करता है। इसके आविष्कार और सफलता ने ज्ञान का नया क्षितिज विस्तृत कर दिया है। अभी तक अन्तरिक्ष के सम्बन्ध मे हमे कुछ विशेष बातें मालूम नही थी। हमारे धार्मिक विश्वासो के अनुसार तो चन्द्रमा एक देवता है। इसी प्रकार सूर्य, बुध, गुरु, शुक्र, शनि आदि भी देवता माने जाते हैं। उपग्रह सम्बन्धी सफलताएँ इस सम्बन्ध मे हमारे अज्ञान को समाप्त करके ज्ञान का नया क्षितिज विस्तृत कर रही हैं। अब वह दिन दूर नही है जब मनुष्य चन्द्रमा पर पहुँच जायगा और वहाँ का सारा आँखो देखा हाल बताएगा। चन्द्रमा पर विजय प्राप्त कर लेने के बाद अन्य ग्रहो मे पहुँच कर वहाँ का भी ज्ञान प्राप्त किया जायगा तथा यह देखा जायगा कि वहाँ से हम क्या-क्या लाभ प्राप्त कर सकते हैं। इन सफलता के पीछे मानव के भावी लाभ की अनेक सभावनाएँ छिपी हुई है।

वैज्ञानिक दृष्टि से ये उपग्रह मानव के अन्तरिक्ष सम्बन्धी ज्ञान मे वृद्धि करेंगे। पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण उपग्रह के पथ पर प्रभाव पडता है और यह प्रभाव पृथ्वी के रूप परिवर्तन के अनुरूप ही

आकर्षण के बदलने के साथ-साथ बदलता रहता है। अतः इस पथ-परिवर्तन के आधार पर वैज्ञानिक निश्चित रूप से यह पता लगा सकेंगे कि समय-समय पर पृथ्वी मध्य मे कितनी उभर आती है और दोनों ध्रुवो पर कितनी दब जाती है। भूतल के प्राचीन आकर्षण-क्षेत्र के बारे मे अध्ययन करने मे भी यह प्रयोग सहायता करेगा।

वाह्य-व्योम मे पहला उपग्रह ४ अक्टूबर १९५७ को छोडा गया। इसका घेरा ५८ सेण्टीमीटर और भार ७४·५० किलोग्राम था। इसकी गति २९,००० किलोमीटर प्रति घंटा थी और इसने ९६ मिनिट २ सेकण्ड मे पृथ्वी की परिक्रमा की थी। इसमे रेडियो ट्रान्समीटर लगे थे और इसके सकेत सभी वायरलेस केन्द्रो के शार्टवेव पर सुने गये थे। जिस राकेट द्वारा यह उपग्रह आकाश मण्डल मे छोडा गया था, वह राकेट भी उपग्रह के साथ-साथ लगभग एक महीने तक पृथ्वी का चक्कर लगाता रहा। बाद मे वह आकाश मे ही जलकर भस्म हो गया।

दूसरा उपग्रह ३ नवम्बर १९५७ को छोडा गया। इसमे लाइका नामक एक कुत्ते को भी बैठाया गया था। यह पृथ्वी से १५०० किलोमीटर की दूरी पर छोडा गया और इसने १०२ मिनिट मे पृथ्वी की परिक्रमा की। कुछ दिनों बाद कुत्ते के मरने की सूचना मिली। पहला उपग्रह तीन महीने से अधिक तक अन्तरिक्ष मे चक्कर काटने के बाद गिरा था, दूसरा अप्रेल १९५८ मे।

ये दोनो उपग्रह रूस ने छोड़े थे और अमेरिका के तत्कालीन प्रेसीडेन्ट आइजन हावर ने स्वीकार किया था कि विज्ञान के क्षेत्र मे रूस अमेरिका से आगे है। लेकिन १७ सप्ताह बाद अमेरिका ने भी १ फरवरी १९५८ को अपना पहला उपग्रह अन्तरिक्ष मे छोडा। इसकी गति २१,००० किलोमीटर प्रति घटा थी। इसने पृथ्वी की पहली परिक्रमा १०६ मिनिट मे पूरी की। इसका पथग्रह पृथ्वी से कम-से-कम १६० किलोमीटर और अधिक-से-अधिक ३२० किलोमीटर दूर था। इसका आकार तोप के गोले के समान था और वजन १६·३२ किलोग्राम। यह ९० मिनिट मे ही पृथ्वी की परिक्रमा कर लेता था। जब यह आकाश मण्डल मे छोड़ा गया तो इसके पृष्ठ भाग से लपटें निकली।

अमेरिकन वैज्ञानिको का कहना है कि यह लगभग ढ़ाई वर्ष तक अन्तरिक्ष में घूमता रहेगा।

इसी शृङ्खला मे अमेरिका ने अपना दूसरा उपग्रह छोडा १७ मार्च १९५८ को। इसका नाम था 'बीटा १९५८।' वैज्ञानिक उपकरणो से युक्त यह उपग्रह ४००० किलोमीटर से भी अधिक ऊँचाई पर १३५ मिनिट मे पृथ्वी की परिक्रमा पूरी करता था। जिस वेनगार्ड राकेट द्वारा यह छोडा गया था वह तीन खण्डो का था। इसका कुल भार १ ५० किलोग्राम था। इसमे ६ स्पर्शदण्ड, दो ट्रान्समीटर एव सामान्य बैटरियों के अतिरिक्त शक्ति से चलने वाली बैंटरियाँ लगी हुई थी। ये १०८ और १०८·०३ मेगासाइकिल पर रेडियो सन्देश प्रसारित करती थी।

अन्तरिक्ष के रहस्यो का पता लगाने की यह होड़ ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र मे बडी लाभदायी सिद्ध हुई। इससे प्रेरणा प्राप्त करके अब तक न जाने कितने उपग्रह तथा अन्तरिक्ष क्षेपास्त्र छोडे जा चुके हैं। जापान, फ्रान्स, संयुक्त अरब गणराज्य, भारत आदि अनेक देशो ने भी इस दिशा में अपने प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये हैं। रूस के मेजर यूरी गागरिन और मेजर तितोव तथा अमेरिका के कप्तान शेफर्ड और कप्तान ग्लेन अन्तरिक्ष मे पृथ्वी के अनेक चक्कर लगाकर पृथ्वी पर सकुशल लौट आये हैं। इसके अलावा अनेक जानवरो एव कीडे-मकोडो को भी अन्तरिक्ष मे भेजकर वापिस पृथ्वी पर ले आने मे सफलता प्राप्त कर ली गई है। विश्व इतिहास मे ये घटनाएँ अपना विशेष महत्व रखती हैं। अब मानव चन्द्रमा के अदृश्य भाग का चित्र लेने, अन्तरिक्ष मे कृत्रिम उपग्रह छोडकर उसके माध्यम से दो महाद्वीपो के बीच टेलीविजन तथा रेडियो सचार स्थापित करने जैसे महत्वपूर्ण कार्यों को पूरा करने मे सफल हुआ है। अमेरिका के नवीनतम 'टेलिस्टार' परीक्षण ने, जिसके द्वारा अमेरिका और ब्रिटेन के बीच टेलीविजन चित्रो एवं सन्देशो का आदान-प्रदान हुआ है, अनेक आर्थिक एव व्यापारिक सभावनाओ का श्रीगणेश कर दिया है।

यद्यपि अब अनेक उपग्रह छोड़े जाने लगे हैं और उपग्रह छोडना

कोई अनोखी बात नही है तथापि रूस के तीसरे उपग्रह ने १५ मई सन् १९५८ मे अन्तरिक्ष मे प्रवेश करके दुनियां को चकित कर दिया। इसने वायुमण्डल की ऊपरी तहो के घनत्व के बारे मे अधिक सही जानकारी दी। पृथ्वी के तापमान के बारे मे भी नये तथ्य प्राप्त हुए है। इनसे मालूम हुआ है कि पृथ्वी लगभग २०० किलोमीटर की ऊँचाई पर कही अधिक 'गरम' है और पहले जितना समझा जाता था उससे कही अधिक 'ऊँचा' है। ब्रह्म किरणें भौतिकविदो तथा नक्षत्रज्ञानवेताओ का पूरा ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रही हैं। उनके स्वरूप के बारे मे जानकारी प्राप्त हो जाने से नये ससार के निर्माण के सम्बन्ध मे महत्त्वपूर्ण प्रक्रियाओ और सितारो की जीवनावधि पर और अधिक प्रकाश पड़ेगा तथा उसके अन्दर परमाणुविक घटनाओ को ज्यादा गहराई के साथ समझा जा सकेगा।

अन्तरिक्ष की असीम गहराइयो के रहस्य के उद्घाटन के क्षेत्र मे इस समय रूस और अमेरिका मे होड़ हो रही है। रूस ने सबसे पहले सफलता प्राप्त करके अमेरिका को प्रेरणा दी। रूस ने एक ऐसा अन्तरिक्ष यान छोडा जो चन्द्रमा के पृष्ठ भाग का फोटो पृथ्वी को भेज सका। इधर अमेरिका ने मार्च १९६० मे एक ऐसा कृत्रिम गृह—पायोनियर-५—अन्तरिक्ष मे स्थापित किया जो अनन्तकाल तक सूर्य की परिक्रमा करता रहेगा। वह अनेक वर्षो तक पृथ्वी और चन्द्रमा से भी आगे की परिस्थितियो के बारे मे सूचनाएँ प्रेषित करता रहेगा। रूस के दो अन्तरिक्ष यात्री मेजर यूरी गागरिन और तितोव तथा अमेरिका के दो अन्तरिक्ष यात्री शेफर्ड और ग्लेन अन्तरिक्ष मे पृथ्वी की परिक्रमा कर चुके हैं। इनके बाद जुलाई १९६३ मे रूस के वेलेरेवाई कोवस्की ने अन्तरिक्ष मे ५ दिन की उडान भरी। १२ अक्टूबर १९६४ को रूस ने विश्व के पहले यात्रीवाहक अन्तरिक्ष मे तीन व्यक्तियो (एक डाक्टर, एक वैज्ञानिक और एक चालक) को भेजकर अन्तरिक्ष शोध मे एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। अभी-अभी रूस ने चन्द्रमा पर एक उपग्रह को सफलतापूर्वक उतारा और उसने चन्द्रमा के धरातल के अनेक चित्र प्रेषित किये।

इन उपग्रहों के कारण जो नवीन ज्ञान प्राप्त हुआ है उससे सबसे पहले चन्द्रमा के सम्बन्ध मे नई-नई जानकारी प्राप्त होने की सभावना बढ गई है। चन्द्रमा पृथ्वी के सबसे ज्यादा निकट है और एक दिन ऐसा आ सकता है जबकि मनुष्य चन्द्रमा पर पहुँच कर प्रत्यक्ष रूप से उसको देखें। चन्द्रमा के जो चित्र अब तक उतारे गये है उनसे मालूम हुआ है कि उसका पूरा धरातल आठ-नौ किलोमीटर ऊँची पर्वत मालाओ से ढका हुआ है। उसमे बीच-बीच में कुछ गहरी दरारें भी हैं और मण्डलाकार उठान है। वहाँ के पर्वत पृथ्वी के ज्वालामुखी जैसे होते है लेकिन उनका व्यास बहुत अधिक होता है। कभी-कभी तो वह तीन-सौ किलोमीटर तक का होता है। पर्वतो के अतिरिक्त वहाँ चपटे गड्ढे भी है।

एक वैज्ञानिक का कहना है कि चन्द्रमा की सतह एक 'पुस्तक' की तरह है जिसे पढने से उसका सारा इतिहास मालूम हो जाता है। लेकिन अभी इसके बहुत से अध्याय पढे नही जा सके हैं। चन्द्रमा के पश्च भाग के बारे मे जानने की भी वैज्ञानिको को बडी जिज्ञासा थी। रूस का एक राकेट चन्द्रमा के पश्च भाग के चित्र खीचने में भी सफल हुआ है। उसके अनुसार यह भाग चपटा है और उसमें आर-पार बड़े छिद्र हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि चन्द्रमा के सामने और पीछे के भाग में कुछ अन्तर है।

सोवियत ज्योतिषविद बारावाशोव के अनुसार चन्द्रमा पर मुश्किल से ही कोई समतल भाग होगा। चट्टानो के विभिन्न स्तर, जिनसे चन्द्रमा की सतह बनी है, ताप के भारी परिवर्तनो के आधीन है। चारो ओर वायुमण्डल न होने से वहाँ दिन और रात के तापो में भारी अन्तर रहता है। रात को वहाँ तापमान बर्फ के ताप से भी १५० डिग्री कम हो जाता है तथा दिन में शून्य से १२० डिग्री ऊपर चढ जाता है। सोवियत वैज्ञानिक प्रोफेसर मारकोव के अनुसार चन्द्रमा का पूरा धरातल स्पज जैसे रन्ध्रीय पदार्थ से बना हुआ है। यह कथन कुछ अजीब-सा लगता है कि चन्द्रमा मे वायु नही, पानी नही और वहाँ के ताप में बराबर बहुत अधिक उतार-चढ़ाव होते रहते है। किन्तु वहाँ ऐसी वनस्पतियो के, जो कार्बन-डाइ-आक्साइड के वायुमण्डल में

थोड़े दिनो तक ही जीवित रह सके, होने से इन्कार नही किया जा सकता। ये वनस्पतियाँ कुछ चट्टानों के नीचे के भागों की दरारो मे पैदा होकर जमीन से अपने लिये भोजन पा सकती हैं। अब तक की इस प्रगति के आधार पर कहा जा सकता है कि शीघ्र ही ऐसा दिन आने वाला है जब पृथ्वी की ही भाँति चन्द्रमा पर भी मनुष्य रहने लगेगा।

४१—संकटकालीन स्थिति और विद्यार्थी

१—सकटकालीन स्थिति की पुकार

२—नेहरूजी की अपील

३—विद्यार्थियो के कर्त्तव्य—

(अ) ज्ञान-विज्ञान के मन्दिर में राजनीति को न घुसने दें।

(आ) ज्ञानोपासना मे जुटें (इ) विश्वविद्यालयो की प्रतिष्ठा बढाएँ।

४—एक नई चुनौती

५—प्रोथेसर ला ग्रोस क्लार्क का कथन

६—शिक्षरण सस्थाएँ और विद्यार्थी चुनौती का मुकावला करें

पिछले ५ वर्षों मे (सन् १९६२ से ६६ तक) हमारे देश को दो वार सकटकालीन स्थिति मे से गुजरना पडा। पहली बार अक्टूबर १९६२ मे चीन के आक्रमरण के समय और दूसरी वार अगस्त १९६५ मे पाकिस्तान के आक्रमरण के समय। यद्यपि हम किसी देश को जीतने की महत्वाकाँक्षा अपने मन मे नही रखते तथापि कुछ ऐसे देश है जो या तो हमारी बढती हुई शक्ति से शङ्कित हैं या अपने मन मे बुरे इरादे छिपाये हुए हैं और अपनी शक्ति मे ऐसे बावले हैं कि उचित-अनुचित की चिन्ता किये बिना ही लडाई के लिए चढ दौड़ते हैं। जो भी हो, हम दो वार अग्निपरीक्षा मे से गुजर चुके है और कह नही सकते कव हमारे सिर पर सकट के नये बादल मडराने लगे। चीन तो लगातार हमारे सम्मान, एकता और स्वतन्त्रता को बर्बरतापूर्ण चुनौती देता आ रहा है। उसकी चुनौती केवल हमे ही नही है, वह समूची

मानव-जाति को है, दुनियाँ की शान्ति, स्वतन्त्रता और विकास को है। उसका आक्रमण केवल हमारे विरुद्ध नही है, वह तो मानवता और सभ्यता की बुनियाद पर सीधा प्रहार है। इस सकट का मुकाबला करने के लिए और देश की स्वतन्त्रता को अक्षुण्य बनाये रखने के लिए हम सभी को, विशेषकर हमारे विद्यार्थियो को सतर्क रहना चाहिए। वह एक स्थायी खतरा है, एक लम्बा सकट है।

इस सम्बन्ध मे विद्यार्थियो का नाम हमने जान-बूझकर लिया है। विद्यार्थी देश के भावी नागरिक हैं। वे देश के सिपाही और कर्णधार हैं। उनके ऊपर बहुत बडा उत्तरदायित्व है। प० जवाहरलाल नेहरू ने हमारे विद्यार्थियो से सकट के ही समय मे कहा था—"प्रत्येक पीढी को नये सिरे से स्वतन्त्रता की लड़ाई लडनी पडती है। क्योकि इसके अभाव मे किसी भी राष्ट्र के इरादे कमजोर पड जाते हैं और वे जीवन तथा स्वतन्त्रता के मौलिक मूल्यो को भूल जाते हैं। मुझे इस बात का गर्व है और इस बात का सौभाग्य प्राप्त है कि जिस पीढी से मैं सम्बन्धित हूँ उसे गांधीजी के मार्गदर्शन मे आजादी की लडाई मे भाग लेने का अवसर मिला।

आज हम सबके लिए और विशेषकर नौजवानो के लिए राष्ट्रीय परीक्षा का समय है, जिसमे हमारे शौर्य और धैर्य की समय की कसौटी पर परख होनी है। इस सकटकाल मे जिस जुम्मेदारी और दृढता से हमारे देश की जनता ने अपनी आवाज बुलन्द की है वह हमारी बुनियादी शक्ति का परिचायक है। हमे जनगण की शक्ति के इस महान् स्रोत को छोटी बातो मे उलझाकर बेकार नही बनाना है। हमे इस चुनौती को यह समझकर स्वीकार करना है कि वह हमे और हमारे राष्ट्र को ऊँचा उठाने के लिए एक स्वर्ण अवसर है, जिसका यदि हम बहादुरी, सम्मान और अनुशासन के साथ मुकाबला करे तो हमारा देश इस अग्निपरीक्षा मे से निकल कर एक नया और समृद्धशाली राष्ट्र बन सकता है।

इस मौके पर हमारे विद्यार्थी राष्ट्र की सेवा अनेक तरीको से कर सकते हैं। मैं चाहता हूँ कि विश्वविद्यालय का प्रत्येक विद्यार्थी राष्ट्रीय

रक्षा-दल या एन० सी० सी० रायफल मे भर्ती होकर प्रारम्भिक सैनिक प्रशिक्षण प्राप्त करे ताकि आवश्यकता पडने पर उसको और भी ऊँचा प्रशिक्षण दिया जा सके। हम सभी को अब सारा जीवन व्यतीत करना होगा और इस तरह जो कुछ भी बचा सकते हैं उसे बचाना होगा। हमे अपनी शिक्षा और प्रशिक्षण को जारी रखकर उस अवसर के लिए तैयारी करनी होगी जबकि राष्ट्र को हमारी सबसे अधिक आवश्यकता हो।

.... इसलिये वर्तमान सकट के इस मौके पर हमारे विद्यार्थियो और नौजवानो को अपनी शक्ति किसी भी ऐसी बात मे लगाकर बेकार नही करनी चाहिये जो राष्ट्र या समाज को चोट पहुँचाती हो या जो हमारे राष्ट्र के महान् उद्देश्य को प्राप्त करने मे बाधक हो। हमे अपने प्रत्येक कार्य और भाषा में सयम लाना होगा जो प्रत्येक विकसित और प्रौढ राष्ट्र की धरोहर है।"

यह अपील सकटकालीन स्थिति मे विद्यार्थियों के कर्त्तव्य पर अच्छा प्रकाश डालती है। इसमे कोई सन्देह नही कि सैनिक प्रशिक्षण प्राप्त करना और अपनी सारी शक्ति राष्ट्र निर्माण के काम मे लगाना— विद्यार्थियो के यही दो प्रमुख कर्त्तव्य होते हैं। आइये हम इस सम्बन्ध मे जरा और गहराई से सोचें और देखें कि सकटकाल मे हम क्या करें और क्या न करें। आधुनिक संसार को गढने का काम आजकल विज्ञान और टेक्नालाजी कर रहे हैं। मानव समाज तथा भौतिक जगत पर प्रत्यक्ष एव परोक्ष रूप से उनका बडा प्रभाव पड रहा है। विज्ञान के विकास मे आज दुनियाँ के लगभग सभी विकासशील देश लगे हुए हैं। आज विज्ञान सम्पूर्ण मानव समाज की एक सामूहिक प्रक्रिया है। वह विभिन्न देशो, जातियो और राष्ट्रो को जोडने वाली एक ऐसी शक्तिशाली कडी बन गया है जिसका सास्कृतिक प्रभाव भी काफी पडता है। क्योकि जिन सार्वदेशिक सिद्धान्तों को खोजने का काम विज्ञान करता है वे ऊँच-नीच, जात-पाँत और मतमतान्तर के गड्ढो को तोडते हुए मनुष्य के मन की गहराइयो मे उतर कर सात्विक

प्रवृत्तियो एवं सच्ची आकांक्षाओ को जन्म देते है। विज्ञान स्पर्धा नही, सहयोग पैदा करता है। यह तो राजनीति है जिसने विज्ञान के क्षेत्र मे घुसकर उसे विकृत करने का प्रयत्न किया है। विद्यार्थियो का यह कर्त्तव्य है कि ज्ञान-विज्ञान के इस पवित्र मन्दिर को राजनीति की कालिमा से बचाते रहे।

विद्यार्थी ज्ञानोपासक हैं और ज्ञान की उपासना ही उनका सबसे बडा कर्त्तव्य है। लेकिन यदि हम विश्वविद्यालयो और माध्यमिक शिक्षा मण्डलो के परीक्षा-फलो को देखें तो हमे यह स्पष्टत दिखाई देता है कि हमारे यहाँ लगभग ५० प्रतिशत बालक उत्तीर्ण होते है और विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने वाले बालको मे तो २५ प्रतिशत ही उत्तीर्ण होते हैं। यदि हम अपनी इस स्थिति की तुलना इगलैण्ड से करें तो वहाँ लगभग ६५ प्रतिशत बालक पास होते हैं। यह हमारे राष्ट्र की बहुत बडी हानि है। यद्यपि इसके अनेक कारण हैं तथापि विद्यार्थियो की भी इस सम्बन्ध मे बडी जुम्मेवारी है। उन्हे अपना अधिकाश समय अध्ययन मे लगाना चाहिए। वाचनालयो, पुस्तकालयो और छात्रालयो का पूरा लाभ उठाना चाहिए और राजनीतिक नारेबाजी और आन्दोलनो को छोडकर रचनात्मक कार्यों मे जुटना चाहिए। विद्यार्थियो के आस-पास अध्ययन का वातावरण बनना चाहिए और उनकी बहुत-सी शक्ति इसी मे खर्च होनी चाहिए। विद्यार्थियो को विश्वविद्यालयो एव अन्य शिक्षण सस्थाओ को विचारको, तत्त्व-चिन्तको एव मनुष्यो का निवास स्थान बनाना चाहिए, राजनीतिक दाँव पेच का अखाडा नही। विश्वविद्यालयो का काम है समाज को ऐसे प्रतिभावान, योग्य एवं सजग नर-नारी प्रदान करना जो कला, विज्ञान, टेक्नालाजी, औषधि, कृषि आदि मे प्रशिक्षित हो और जो त्यागी, तपस्वी एव कर्मठ हो। विद्यार्थियो का काम है कि वे विश्वविद्यालयो को इस मे पूरा-पूरा सहयोग दें। विश्वविद्यालयो मे हडतालें करने से तो इस उद्देश्य को बहुत चोट पहुँचेगी।

किसी भी विश्वविद्यालय का महत्त्व उसकी ऊँची-ऊँची इमारतो, बडे-बडे पुस्तकालयो तथा अन्य साधन सामग्रियो से नही होता। वस्तुतः

विश्वविद्यालय उन विचारों से बनता है जिनका वहाँ सृजन होता है और जो वहाँ की मिट्टी मे पनपते हैं। वे महान् और ऊँचे विचारो को जन्म देने वाले स्थान होने चाहिए। लेकिन आजकल विचारो की दुनियाँ मे रहने वाले विद्वान विश्वविद्यालय से दूर रहना ही अच्छा समझते हैं। यह कोई शुभ लक्षण नही है। विद्यार्थी इस काम मे बहुत योग दे सकते हैं। वे विश्वविद्यालयो को सच्चे अर्थों मे ज्ञान-विज्ञान के केन्द्र बनाकर उनकी प्रतिष्ठा बढा सकते हैं और अपना भी बहुत बड़ा हित कर सकते हैं।

यह परमाणु युग है। आजकल ध्वस के अनेक स्वयचालित एवं स्वय निर्देशित अस्त्र बडे पैमाने पर तैयार किये जा रहे हैं। ये मानव-जीवन एव मनुष्य सभ्यता के सामने चुनौती बनकर खडे हैं। आज मानवता परमाणु विस्फोट रूपी व्यापक और सघन दावानल के मुँह तक पहुँच चुकी है और परमाणु शक्ति के जाने अनजाने गलत प्रयोग से हमारी सभ्यता के ही विलुप्त हो जाने का खतरा पैदा हो गया है। इस सम्बन्ध मे प्रो० लाग्रोस क्लार्क का यह कथन बडा महत्त्वपूर्ण है—"अब हमें अपने को धोखे मे नही रखना चाहिए। क्योकि यह भयावह प्रश्न है कि जिस सभ्यता को मानव-समाज ने धीरे-धीरे बडी मेहनत से एक के उपर एक ईंट रखकर पिछले हजारो वर्षों मे खडा किया है, क्या नष्ट होने से बचाया जा सकता है, जो आज मानव-प्रतिभा के गलत इस्तेमाल, तथा राजनीतिक सत्ता एव आर्थिक महत्ता के अकुशहीन सम्पर्क के परिणामस्वरूप विनाश के तट पर आ पहुँची है।"

बात यह है कि वैज्ञानिक एव टेक्नीकल ज्ञान तथा राजनीति, व्यवहार कुशलता और नैतिक मूल्यों के बीच पड़ी हुई खाई तेजी से बढती जारही है। नतीजा यह हो रहा है कि विज्ञान और अध्ययन, तथा परमाणु और अहिंसा अपना सन्तुलन खोते जा रहे हैं। वे परस्पर सहायक एवं पूरक बनने के स्थान पर विघातक बनते जा रहे हैं। विद्यार्थी और शिक्षण सस्थाएँ ही इस खाई को पाट सकते हैं। वे ही विज्ञान और अध्यात्म तथा परमाणु एव अहिंसा मे सन्तुलन एव सामजस्य

पैदा कर सकते हैं। यह तभी हो सकता है जबकि शिक्षरण सस्थाएँ ऐसी बन सकें जहाँ पर प्रत्येक विद्यार्थी को जिज्ञासा व्यक्त करने की सुविधा हो, प्रत्येक विचार को विवेक की तुला पर तोलने और अपनी शका का समाधान करने की स्वतन्त्रता हो, जहाँ पर ज्ञान, विवेक और विनय एक ही वृक्ष की विभिन्न शाखाएँ हो और जहाँ पर केवल विद्वत्ता, विश्वास-पात्रता एव चरित्र को ही सम्मान न दिया जाता हो, वरन् जहाँ इन गुरगो के विकास की समुचित व्यवस्था हो। विद्यार्थी ही अपने आप और चरित्र से शिक्षरण सस्थाओ को यह गौरव प्रदान कर सकते हैं।

शिक्षरण सस्थाएँ मानवता, सहनशीलता, विवेक, सद्विचार और सत्यान्वेषरण की प्रतीक हैं। वे मनुष्य समाज को अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाती हैं। वे सही अर्थों मे मानव को मानव बनाती है। लेकिन हमारे विद्यार्थी राजनीतिक दलबन्दी के शिकार होकर शिक्षरण सस्थाओ की इस पवित्रता को कायम नही रख पाते, उसे बढाना तो दूर की बात है। जो राजनीति आज विज्ञान के क्षेत्र मे प्रवेश करके उसे विकृत कर रही है वही शिक्षा के क्षेत्र मे प्रविष्ट होकर उसे भी विद्रूप बना रही है। सकटकाल मे विद्यार्थियो का यह परम कर्त्तव्य हो जाता है कि वे इस बुराई को बिलकुल पनपने न दें। सकटकाल मे राष्ट्र को एक बहुत बडी सख्या मे प्रतिभावान, योग्य एव लगन वाले व्यक्तियो की आवश्यकता होती है। शिक्षरण सस्थाएँ ही विज्ञान, टेक्नालाजी, औषधि विज्ञान, व्यापार-व्यवसाय, कृषि आदि मे अच्छा प्रशिक्षरण प्राप्त किये हुए व्यक्ति दे सकती है। सकटकाल हमारे स्कूल कॉलिजो को यही चुनौती देते हुए आते हैं। कालेजो को और उनके विद्यार्थियो को ही इस चुनौती का जवाब देना पडता है। हमारे विद्यार्थी कडी मेहनत करके और अपनी कार्यक्षमता को बढ़ाकर ही सकट की घडियो में देश को दुश्मनो के सामने लोहे की दीवार की भाँति खडा रख सकते हैं। राष्ट्र की परीक्षा के ये अवसर वस्तुत. नौजवानो की ही परीक्षा के अवसर होते हैं। हमारे विद्यार्थियो ने हमेशा इस चुनौती का बुद्धिमानी और मेहनत से मुकाबला किया है। हम आशा करें कि

महान् खतरो को सिर पर खडा देखकर वे सदैव सजग रहेगे और राजनीतिक दलबन्दी या नारेबाजी से पथभ्रष्ट न होगे।

४२—हमारी खाद्य समस्या और उसका हल

१—समस्या का जन्म और विकास।

२—खाद्यान्न की कमी के कारण—(अ) भूमि मे नाइट्रोजन की कमी, (आ) बढती हुई जनसख्या, (इ) नये साधनो का अभाव तथा नये शास्त्रीय ज्ञान का न मिल पाना, (ई) सिंचाई के साधनो का अभाव, (उ) किसानो मे मुनाफे की वृत्ति एव (ऊ) वितरण की दोप-पूर्ण व्यवस्था।

३—समस्या का हल—(अ) उर्वरको का अधिकाधिक उपयोग, (आ) परिवार नियोजन, (इ) अच्छे बीज आदि की व्यवस्था एव (ई) राष्ट्रीयकरण।

४—उपसहार—सबके सहयोग और परिश्रम से ही समस्या सुलझेगी।

दूसरे महायुद्ध के पूर्व तक खाद्यान्न हमारे लिए कोई समस्या नही थे। हमारे देश मे आटे का कभी घाटा नही रहा। जहाँ दूध-दही की नदियाँ बहती हो, वहाँ अनाज की कमी का तो प्रश्न ही पैदा नही होता। लेकिन जब दूसरा महायुद्ध प्रारम्भ हुआ और आगे चलकर जापान भी उसमे कूद पडा तो लडाई हमारे दरवाजे के पास तक आगई। फलत: विदेशी सैनिक आये और देश की भी बहुत-सी सेना पूर्वी सीमा पर तैनात की गई। एक ओर सेना के भोजन पर ध्यान केन्द्रित हुआ, दूसरी ओर देश मे अनाज के यातायात और वितरण की व्यवस्था बिगडने लगी। ऐसी अवस्था मे पहली बार सन् १९४१ मे सरकार को गेहूँ का मूल्य निश्चित करना पडा और गेहूँ के अन्तर्प्रान्तीय व्यापार पर भी रोक लगानी पडी। आगे मई सन् १९४२ मे पहली बार 'फुडग्रेनस् कन्ट्रोल आर्डर' लागू किया गया। सात महीने बाद दिसम्बर मे खाद्य विभाग नामक एक नया विभाग बनाया गया और पहला खाद्य सम्मेलन बुलाया गया। सितम्बर १९४३ मे खाद्यान्न सम्बन्धी नीति निर्धारित

करने वाली कमेटी ने तय किया कि अब आगे दूसरे देशो को खाद्यान्न भेजना बन्द कर दिया जाय और जितना आवश्यक हो उतना अनाज बाहर से मगवाया जाय। कमेटी ने मूल्य नियन्त्रण, अधिक अन्नोत्पादन, सिंचाई तथा वितरण आदि के सम्बन्ध मे भी कुछ सिफारिशे की। उन्नत बीज के उपयोग, खाद के उत्पादन और सिंचाई के विकास पर उसने विशेष बल दिया।

तब से अब तक बीस वर्ष से अधिक बीत गये लेकिन हमारी खाद्यान्न की समस्या जैसी की तैसी ही बनी हुई है। सन् १९४३ से लेकर आज तक लगभग ९-१० लोकप्रिय खाद्य मन्त्रियो ने यह विभाग सम्भाला और अपने-अपने ढग से कार्य किया। इधर सन् १९५१ मे हमारी प्रथम पचवर्षीय योजना भी प्रारम्भ हुई और उसने खाद्यान्न के अधिक उत्पादन को ही अपना लक्ष्य बनाया। पहली योजना समाप्त हुई, दूसरी समाप्त हुई और अब तीसरी भी समाप्त हो चुकी है लेकिन खाद्यान्न की समस्या जैसी की तैसी ही बनी हुई है। आज हमारा सारा देश एक स्वर से यह बात कहने लगा है कि सुरक्षा के बाद दूसरा महत्त्व का कार्य अन्न का उत्पादन ही है और अब हमे विदेशो के आयात पर निर्भर न रहकर स्वावलम्बन की ही दिशा मे प्रयत्न करना चाहिए लेकिन हम इस दिशा मे कुछ कर नही पा रहे हैं।

आइये पहले हम समस्या के मूल रूप को समझें। पहले हमे यह जानना चाहिये कि खाद्यान्न की कमी का मुख्य कारण है जमीन की उर्वरक शक्ति का निरन्तर कम होते जाना। दूसरी बात यह है कि खाने वालो की सख्या जिस तेजी से बढ़ती जा रही है उस तेजी से उत्पादन नही बढ पा रहा है। बात यह है कि जनसख्या प्रतिवर्ष बढ जाती है लेकिन भूमि तो बढती नही। उसकी लम्बाई चौडाई तो उतनी ही रहती है। फलत प्रतिवर्ष समस्या कठिन होती जाती है। एक और बात यह है कि भारतीय किसान अशिक्षित और पिछडा हुआ है। वह अपने पुराने हल, फावडे कुदाली आदि औजारो और पुराने तौर तरीको से ही चिपका हुआ है। उत्पादन बढाने के लिए तो कृषि के नये औजारो का उपयोग करना होगा, नये तौर तरीके

काम मे लेने होगे। जब तक किसानो के पास खेती के आधुनिकतम साधन नही पहुँचेंगे, तब तक उत्पादन बढ नही सकेगा। चौथी बात है सिचाई के साधनो का अभाव। इस समय हमारे देश मे ३८४६ लाख एकड भूमि कृषि योग्य है। किन्तु इसमे से ६१२ लाख एकड भूमि मे ही सिचाई होती है। शेष ३२३४ लाख एकड़ की खेती भगवान् के भरोसे होती है। वर्षा समय पर हो गई तो ठीक अन्यथा हाहाकार ही दिखाई देता है।

खाद्यान्नो के अभाव का एक अन्य कारण यह बताया जाता है कि किसानो का झुकाव गन्ना, कपास, मूगफली, तिलहन, तम्बाकू आदि पैदा करने की ओर अधिक रहता है, क्योकि इनसे अधिक पैसा मिल जाता है। लेकिन यह कोई बडा और महत्त्वपूर्ण कारण नही है। आखिर इन चीजो की भी आवश्यकता तो रहती ही है। यदि ये चीजें पैदा न की गई तो इन्हे बाहर से मंगवाना पडेगा। खाद्यान्नो के अभाव का एक महत्त्वपूर्ण कारण है उसकी दोषपूर्ण वितरण व्यवस्था। व्यापारियो की मुनाफा वृत्ति ने इस समस्या को और जटिल बना दिया है। जब अनाज बाजार से गायब होने लगता है तो जनता मे सग्रह की वृत्ति पैदा होती है। व्यापारी जान बूझकर चीजो की बनावटी कमी पैदा करते हैं। लोग सोचते हैं कि यदि ये चीजे न मिली तो क्या होगा। अत. वे कर्ज लेकर भी उन्हे खरीद कर रखने का प्रयत्न करते हैं। इससे व्यापारियो को तो लाभ होता है लेकिन बेचारे गरीब मारे जाते हैं।

भारत-पाक युद्ध के बाद वर्षा की कमी के कारण अनाज की जो सर्वव्यापी कमी आई उससे हमारे देश के सभी लोगो का ध्यान उसकी ओर खिंचा। सब यही अनुभव करने लगे हैं कि इस समस्या का वास्तविक हल विदेशो से अनाज मगाना नही, अनाज के मामले मे आत्मनिर्भर बनना ही है। हम दूसरे देशो की सहायता के भरोसे कब तक जिन्दा रहेगे? यह बात नही है कि अब तक हमने इस दिशा मे कोई प्रयत्न नही किया। लेकिन पुराने अनुभव से यह स्पष्ट

हो जाता है कि हमे इस दिशा मे बहुत कुछ करना पड़ेगा। अब केवल उत्पादन का लक्ष्य निर्धारित कर लेने और सरकार द्वारा उसकी घोषणा मात्र कर देने से काम नही चलेगा। यदि हमे सचमुच खाद्यान्न का उत्पादन बढाना है तो एक नये प्रकार से काम करना होगा। हमे देखना होगा कि दुनियाँ के दूसरे देश इस समस्या को किस प्रकार हल कर रहे हैं।

विदेशो के कृषि विशेषज्ञो का कहना है कि भारतीय भूमि के वे सारे तत्त्व, जो वनस्पति को पोषण देते हैं, बहुत कुछ नष्ट हो चुके हैं। बात यह है कि भारत की सभ्यता बहुत पुरानी है। यहाँ लगभग पिछले पाँच हजार वर्षो से लगातार खेती होती आरही है। अत यदि हमारी भूमि मे पोषक तत्त्वो की कमी हो जाय तो कोई आश्चर्य की बात नही। दूसरी बात वे यह बताते हैं कि हमारी फसल को कुछ बीमारियाँ लग जाती है जिनके कारण हमारे उत्पादन का १५ से लेकर ३० प्रतिशत खाद्यान्न नष्ट हो जाता है। अत उत्पादन बढाने के लिए इन दोनो बीमारियो का इलाज करना पडेगा।

जहाँ तक पोषक तत्त्वो की कमी का प्रश्न है, उसके लिए हमे रासायनिक खाद का उत्पादन बढाना होगा। एक बार यदि हम पर्याप्त मात्रा मे रासायनिक खाद तैयार कर लेते हैं तो फिर अनाज का उत्पादन निश्चय ही चौगुना पाँच गुना बढा सकते हैं। जापान मे भी कुछ दिनो पहले यही समस्या पैदा हुई थी। वहाँ भी भूमि मे नाइट्रोजन की कमी होगई थी। जापानियो ने ४—५ वर्ष तक परिश्रम करके नाइट्रोजन का उत्पादन बढाया और यह खाद देकर उस कमी को पूरा कर दिया। फिर तो वहा उत्पादन बढ़ गया और अब उनकी भूमि मे हमारी भूमि की अपेक्षा ५ गुना अधिक चावल पैदा होता है। डेन्मार्क मे भी यही हुआ। आजकल कृषि के विकास की दृष्टि से वह दुनियाँ के सर्वोन्नत देशो मे गिना जाता है। साठ वर्ष पूर्व वहा की भूमि की उत्पादन क्षमता भारत से अधिक नही थी। लेकिन विगत महायुद्ध के दिनो उन्होने नाइट्रोजन की मात्रा बढाई और नये औजारो का उपयोग प्रारम्भ किया। फलत. देखते ही देखते जहाँ एक हेक्टर

भूमि मे ८ टन गेहूँ होता था वहाँ अब ३ ५ टन होने लगा। आजकल वहाँ एक हेक्टर भूमि (लगभग ढाई एकड) मे ४ १ टन गेहूँ पैदा होता है। रूस मे भी नाइट्रोजन के अधिक उपयोग से उत्पादन काफी बढ गया है। कृपि शास्त्र के अनुभवियो का कहना है कि १ किलो नाइट्रोजन खाद्यान्न उत्पादन को १५ किलो बढा देता है। हमारी सरकार इस दिशा मे सजग है और वह रासायनिक खाद के कारखाने बढ़ाती जा रही है। जब तक हमारे देश मे इसका पर्याप्त उत्पादन नही होता तब तक बाहर से भी उसे मगवाने की व्यवस्था की जा रही है। अब किसानो को उसका ज्यादा से ज्यादा उपयोग करना सीखना चाहिए।

उत्तरोत्तर बढती हुई जनसख्या निश्चय ही एक समस्या है। सरकार ने इसके लिए परिवार नियोजन की सलाह देना प्रारम्भ किया है। प्रत्येक सरकारी हस्पताल मे एक परिवार नियोजन केन्द्र भी खोल दिया गया है जहाँ लोगो को बडे परिवार की बुराइयाँ बताई जाती हैं और छोटे परिवार के लाभ समझाकर इस दिशा मे प्रेरित किया जाता है। सरकारी डाक्टर लोगो को इस बारे मे सलाह देते हैं और प्रत्यक्ष मदद भी करते है। आजकल ऐसे अनेक उपाय निकाल लिये गये हैं जिनके द्वारा पति-पत्नी अपने परिवार को बडा बनने से रोक सकते है। वे जितने बच्चे चाहे उतने बच्चो के बाद बच्चो के जन्म पर नियन्त्रण कर सकते हैं। अभी यह विचार ग्राम-ग्राम तक नही पहुँचा है और ये साधन भी वहाँ तक नही जा सके हैं। इसलिए यद्यपि इस दिशा मे कुछ विशेष प्रगति दिखाई नही देती तथापि २-३ वर्ष मे ही इसका लाभ दिखाई देने लगेगा।

किसानो को अच्छे औजार, अच्छे बीज, कर्ज, खाद आदि देने की भी व्यवस्था की जा रही है। लेकिन इस दिशा मे भी कोई विशेष प्रगति दिखाई नही देती। हमारे यहाँ जमीन छोटे-छोटे टुकडो मे बटती जा रही है अत कोई भी किसान ट्रेक्टर आदि आधुनिक साधन सरलता से खरीद नही पाता। सरकार ने सहकारी खेती का उपाय सुझाया है लेकिन कुछ राजनीतिक पार्टियाँ उसका विरोध कर रही हैं।

को-आपरेटिव सोसायटियो का काम व्यवस्थित ढग से चलना प्रारम्भ नही हुआ है। अत. किसानो को अन्य सुविधाएँ भी सरलतापूर्वक उपलब्ध नही हुई हैं। जैसे-जैसे यह काम बढेगा किसानो को सरलता से कर्ज मिलने लगेगा और वे खाद, बीज, बैल तथा अन्य साधन उपलब्ध कर सकेंगे।

एक और बात जो इस सम्बन्ध मे उल्लेखनीय है वह यह कि हमारी खाद्य समस्या का हल जनता की नैतिक स्थिति के साथ भी जुडा हुआ है। कुछ व्यापारियो और सरकारी कर्मचारियो के नैतिक पतन ने इस समस्या को बडा ही विकट बना दिया है। जब तक मुनाफे-खोरी अपराध नही मानी जाती, मिलावट करने वालो को कडी सजा नही दी जाती, रिश्वत लेने वाले का सार्वजनिक बहिष्कार नही किया जाता खाद्य समस्या ज्यो-की-त्यो बनी रहने वाली है। यदि व्यापारी आम जनता का ध्यान न रखे और कम तोलकर मिलावट करके और ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमाने को ही अपना उद्देश्य समझते रहे तो यह समस्या कभी भी हल नही होगी। अत इन पर रोक लगाना, इनके लिए कडाई से सजाएँ देना सरकार का काम है। दूसरी ओर समाज मे ऐसे लोगो की भत्सना भी की जानी चाहिए और जनता को ऐसे लोगो से कोई सहयोग नही करना चाहिए। बल्कि मैं तो यह कहूँगा कि उन्हे ऐसे लोगो को रगे हाथो पकडकर पुलिस के हवाले करना चाहिए और सजाएँ दिलवाना चाहिए।

वितरण की दोषपूर्ण व्यवस्था को सुधारने के लिए राष्ट्रीयकरण ही एकमात्र इलाज है। राष्ट्रीयकरण के बिना समाज-विरोधी तत्त्वो का उन्मूलन न हो सकेगा। सरकार ने इस स्थिति को देखकर ही खाद्य-निगम की स्थापना की है। सरकार ने स्वय अनाज खरीदना प्रारम्भ किया है ताकि जब व्यापारी अनाज के भाव मनमाने बढाने लगे तो सरकार अपना अनाज बेचकर भावो को ऊँचे चढने से रोक सके। यद्यपि सरकार के लिए यह कार्य नया है और कर्मचारियो को भी इसका अनुभव नही है तथापि यदि ईमानदारी, देशभक्ति और परिश्रम से यह काम किया गया तो आगामी दो तीन वर्षों मे सरकार

भावो पर नियन्त्रण रखने और मुनाफाखोरी को रोकने मे सफल हो जायगी।

सिंचाई के अधिक से अधिक साधन उपलब्ध करवाना भी इस समस्या के हल मे बडा सहायक होगा। नहरें, बाँध, ट्यूबवेल, तालाब, कुओ आदि का निर्माण इस दिशा मे बडा उपयोगी सिद्ध होगा। यह बात नही है कि पिछले दिनो इस दिशा मे कुछ भी काम नही हुआ। पिछले दिनो बडे-बडे बाँध बाँधे गये, नहरें निकाली गईं और ट्यूब वेल्स भी लगाये गये किन्तु कही सरकार की अक्षमता और कही किसानो की अक्षमता से इसका पूरा-पूरा लाभ नही मिल पाया। बहुत-सी ऐसी जमीन भी पडी है जहाँ सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है लेकिन किसान उसका लाभ नही उठाते और बहुत से ऐसे किसान भी है जो ऐसी सुविधा प्राप्त करने के लिए लालायित हैं और वह उन्हे प्राप्त नही हो पाती। हमे अब इसका तालमेल बैठाना पडेगा।

हमारा यह निश्चित मत है कि खाद्यान्न की समस्या हमारी राष्ट्रीय समस्या है और राष्ट्रीय-स्तर पर प्रयत्न करके ही उसका हल निकाला जा सकता है। यदि व्यापारी इसके लिए सरकार को कोसते रहे और सरकार किसानो पर सारा दोष मढ दे तो इस परस्पर दोपारोपण से कोई लाभ नही होगा। इसके लिए सबको कन्धे से कन्धा मिडाकर चलना होगा और राष्ट्रीय सुख एव समृद्धि के यज्ञ मे एक साथ खडे होकर सबको अपनी-अपनी आहुति देनी होगी। आइये, हम अपने जीवन मरण की इस समस्या को हल करने के लिए एक होकर काम करें और अपना-अपना कर्त्तव्य पूरा करने मे कदम पीछे न रखे।

४३—भ्रष्टाचार-उन्मूलन एव चारित्रिक शिक्षा

१—भूमिका

२—भ्रष्टाचार के कारण—(अ) उच्छृङ्खलता (ब) भ्रष्ट-वातावरण (स) पद लोलुपता (द) आर्थिक-विषमता (य) चरित्र हीनता

३—उसके उन्मूलन के उपाय

४—चारित्रिक शिक्षा

५—कुछ उपयोगी सुझाव ।

भ्रष्टाचार वर्तमान युग की एक ज्वलन्त समस्या है। यद्यपि यह युग-युग की समस्या है और समाज के सदाचारी, जागृत एवं उत्तरदायी लोग हमेशा इस पर कडी नजर रखते आये हैं तथापि यह है कि थोडी-सी भी ढील-ढाल, लापरवाही या शिथिलता देखते ही हावी होने लगती है। प्रत्येक युग मे समाज की धारणा के लिए कुछ जीवन मूल्य स्थिर किये जाते हैं—कुछ का कानून की सहायता से तथा कुछ का समाज के प्रतिष्ठित लोगो के प्रभाव एवं प्रयत्न से उनका पालन कराया जाता है। वस्तुत इन जीवन मूल्यो का उद्देश्य होता है व्यापक और शाश्वत सत्य की साधना। ये अधिक से अधिक लोगो के हित का उद्देश्य सामने रखकर कार्य करते हैं। लेकिन समाज मे ऐसे भी लोग हैं जो अपने स्वार्थ साधन के लिए इनकी अवहेलना एवं उपेक्षा करते हैं और बहुत से लोगो के हितो को हानि पहुँचा कर भी अपना स्वार्थ साधने मे हिचकिचाते नही हैं। अत. जो आचरण समाज की धारणा मे बाधक हो और उसके व्यापक-हितो का विरोधी हो वही भ्रष्टाचार है। कहने की आवश्यकता नही कि आजकल वह हमारे सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक जीवन मे घुन की तरह लगा हुआ है। समाज के सभी विचारशील व्यक्ति उसे समाप्त करने के लिए प्रयत्नशील हैं लेकिन उसका अन्धकार कुछ इतना घना होता जाता है कि समाज के नेताओ की तेजस्विता कमजोर सी प्रतीत हो रही है। यदि यह अधकार मिटाया न जा सका तो हमारा राष्ट्र और समाज एक भयकर कठिनाई मे फँस जायेंगे।

भ्रष्टाचार की जडें बहुत गहरी हैं। वर्षो ही नही, सदियो तक हम दासता की बेड़ियो मे जकड़े रहे। उन दिनो हमे अपने मालिको के इशारो पर नाचना पडा और उनकी उचित-अनुचित सभी बातो के सामने सिर झुकाना पडा। इससे हमारी तेजस्विता कम हुई। जब तक देश गुलाम रहा हमे यह कमी अधिक नही खटकी। लेकिन जब से

देश स्वतन्त्र हुआ है और हम उसका नव-निर्माण करने के लिए तैयार हुए हैं, हमे यह बुराई काँटे की तरह कसकने लगी है। क्योकि आज हम जो भी कोई अच्छा कार्य करना चाहते हैं, भ्रष्टाचार उसमे रोडे अटकाता हुआ प्रतीत होता है। प्राचीनकाल मे धार्मिक बन्धन कुछ इतने मजबूत थे कि जो व्यक्ति अनैतिक आचरण करते थे उन्हे समाज मे आदर का स्थान नही मिल पाता था। दूसरे धार्मिक भावना स्वय व्यक्ति को ही अनैतिक आचरण करने से रोकती रहती थी लेकिन आजकल उसका प्रभाव समाप्त होता जा रहा है और अनेक बार तो लोग अनैतिक आचरण की वकालत करते हुए दिखाई देते हैं। आजकल आपको यह कहने वाले बहुत मिल जायेंगे कि "मैंने इतने रुपये रिश्वत के दिये और अपना काम करवा लिया। कौन-सा ऐसा काम है जो पैसे देकर नही किया जा सकता। आप किसी भी व्यक्ति की हत्या कर डालिये और कुछ रुपये खर्च कीजिये, साफ बच जायेंगे।" इतना ही नही, ऐसे भी अनेक व्यक्ति मिल जायेंगे जो आपको ऐसे सब रास्ते बता देंगे। आज कोई भी व्यापारी यह कहते हुए मिल जायगा कि "आजकल बिना झूँठ बोले काम नही चलता। सच बोलें तो भूखो मर जायँ।" इसी प्रकार बहुत से ऐसे सरकारी कर्मचारी भी मिलेंगे जो यह कह देंगे कि "आती हुई लक्ष्मी किसे बुरी लगती है।" मतलब यह कि चारो ओर भ्रष्टाचार का जोर है और ऐसा आचरण करते हुए लोग ग्लानि या शर्म अनुभव नही करते।

भ्रष्टाचार का एक अन्य कारण है हमारी उच्छृङ्खलता। अँग्रेजी शासन के समय अपराधियो के साथ अमानवी व्यवहार किया जाता था। अत लोग अपराध करते हुए डरते थे। लेकिन अब अपनी सरकार है और अपने ही आदमी बड़े-बडे ओहदो पर है। अत वे न तो अधिकारियो की चिन्ता करते हैं न उनसे डरते हैं। उल्टे यह सोचते हैं कि उनके ऊपर इधर उधर के प्रभाव डलवाकर अपना काम करवा लेंगे। जनतन्त्र मे आत्मानुशासन का बडा महत्त्व होता है। उसमे लोग स्वय ही अनैतिक आचरण से बचते हैं। उसमे बाह्य नियन्त्रण

कम होता है लेकिन हमारे बहुत से लोगो ने वाह्य नियन्त्रण की इस कमी को मनमानी करने के लिए अच्छा अवसर माना और वे इसका लाभ उठाकर जो मन मे आता है, करते हैं।

भ्रष्टाचार के इस बढते हुए प्रभाव का हमारी आने वाली पीढी पर भी बुरा प्रभाव पड रहा है। जब घर मे बालक अपने बड़े बूढो को झूठ बोलते हुए सुनता है, रिश्वत लेते देखता है और कम तौलते, मिलावट करते हुए पाता है तो वह भी इन सब कामो को करने मे कोई हिचकिचाहट अनुभव नही करता। जब वह देखता है कि दूसरे लोग भ्रष्टाचार करके काफी पैसा जोड रहे हैं, ऊँचे पदो पर पहुँच रहे हैं, अपना काम बना रहे है तो फिर वही नैतिकता से चिपका रह कर कष्ट क्यो उठाए ? वातावरण की यह बुराई अनेक लोगो को भ्रष्ट बना रही है। कही कही तो कुछ लोग यह बात भी कहते हुए सुनाई पड जाते हैं कि—"हमारे आफिस मे सब रिश्वत लेते हैं। मैंने नही ली। मैंने ऐसे व्यक्तियो के हथकण्डे प्रकाश मे ला दिये। बस, सब मेरे दुश्मन हो गये और मुझे नुक्सान पहुँचा दिया।" इस प्रकार भले आदमियो को बडी कठिनाई का सामना करना पडता है।

भ्रष्टाचार के लिए राजनीतिक दलो की पद लोलुपता भी कम जुम्मेवार नही है। आजकल चुनावो मे इतना पैसा खर्च होता है कि सभी दलो को आर्थिक सहायता के लिए पूँजीपतियो का मुँह देखना पडता है। इन उद्योगपतियो और धनवानो के पैसे के बल पर जीतने वाले हमारे नेतागण यद्यपि जनता के प्रतिनिधि ही कहे जाते हैं तथापि उन्हे पूँजीपतियो के हितो का ही बार-बार ध्यान रखना पडता है। अनेक बार उन्हे राष्ट्र के बृहत्तर हितो को ताक मे रखकर पूँजीपतियो के हितो के कार्य करने पडते हैं। इस प्रकार राजनीतिक दलो की पद लोलुपता भी भ्रष्टाचार का एक बहुत बडा कारण है।

भ्रष्टाचार का एक अन्य कारण है आर्थिक विषमता। हमारे समाज मे कुछ लोग धनी हैं, कुछ गरीब। जो धनी हैं उन्हे जीवन के सब आराम उपलब्ध हैं जबकि गरीबो को अभाव का जीवन व्यतीत करना पडता है। 'बुभुक्षित किं न करोति पाप' वाली कहावत के अनुसार

गरीब लोग अभावो से परेशान होकर भी भ्रष्ट आचरण की ओर उन्मुख हो जाते हैं। वे देखते हैं कि धनी लोग तो चाहे स्याह करें चाहे सफेद—सब माफ है। समाज मे उनकी प्रतिष्ठा भी है। फिर हम ही नैतिकता का सारा बोझा उठाकर भूखों क्यो मरते रहे? अत प्रत्येक व्यक्ति उचित-अनुचित सभी साधनो से पैसा कमाने को ही अपना चरम लक्ष्य मानने लगा है। परिणाम यह हुआ है कि धन कमाने की इस दौड मे नैतिकता, सच्चरित्रता और सद्-व्यवहार की उपेक्षा होती जा रही है।

भ्रष्टाचार का एक अन्य प्रमुख कारण है चरित्र- हीनता। दुर्भाग्य से समाज मे चरित्र हीनता बढती जा रही है। जिन कार्यों को घृणा की दृष्टि से देखा जाना चाहिए उनके प्रति घृणा कम होती जा रही है। इतना ही नही अनेक बार तो उन पर गर्व तक किया जाने लगा है। अब चोरी, धोखेबाजी और झूठ को बुद्धि की कुशलता कहा जाता है और धन को प्रतिष्ठा का द्योतक माना जाता है। यदि आजकल कोई व्यक्ति शराब नही पीता, धूम्रपान नही करता, क्लबो का जीवन व्यतीत नही करता तो उसे सभ्य नही माना जाता। जो लोग इनकी निन्दा करते है या इनका विरोध करते हैं उन्हे खूसट कहा जाता है। चरित्र-हीनता का यह बढता हुआ प्रवाह हमारे समाज मे भ्रष्टाचार को बढाता जा रहा है।

कोई भी समझदार व्यक्ति भ्रष्टाचार के इस प्रवाह को बढते हुए देखना पसन्द नही कर सकता। सभी विचारशील व्यक्ति इस स्थिति से चिन्तित हैं। इस बारे मे सब लोग एक मत हैं कि इसे समाप्त करने के लिए भ्रष्टाचार के कारणो पर ही चोट करनी होगी। वस्तुत भ्रष्टाचार का सम्बन्ध व्यक्ति के चरित्र से है। अत सच्चरित्रता का आँदोलन ही इस बीमारी की रामबाण औषधि है। लोगो को सच्चरित्र बनाने के लिए पहले शिक्षित बनाना पडेगा। हमारे देश मे पढे लिखे या साक्षर लोगो की सख्या २५ प्रतिशत है और उनमे भी शिक्षित व्यक्ति तो एक दो प्रतिशत ही निकलेंगे। अत शिक्षा का प्रचार तेजी से होना चाहिए और उसमे भी सच्चरित्रता पर ज्यादा ध्यान दिया जाना चाहिए। दूसरी ओर समाज मे सादा जीवन, उच्च-विचार के

आदर्श को मूर्तरूप देने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। जब सादा जीवन अच्छा और ऊँचा माना जायगा तो लोग उस ओर उन्मुख होने लगेंगे और ज्यादा पैसा इकट्ठा करने तथा उसके लिए भ्रष्टाचार करने की प्रवृत्ति समाप्त होने लगेगी। हमने देखा कि दूसरे महायुद्ध के बाद रूस, पश्चिमी जर्मनी, इग्लैण्ड, जापान आदि लगभग नष्ट हो गये थे। लेकिन अपनी उच्च नैतिक भावना और परिश्रम के बल पर वे फिर ससार की महान् शक्तियो की पक्ति मे खडे हो गये। इन देशो के नागरिक सदैव इस बात का ध्यान रखते है कि उनके किसी काम से देश की प्रतिष्ठा को धक्का तो नही लग रहा है। हमारे देश मे भी इसी प्रकार की उच्च-नैतिक भावना और सच्चरित्रता का उदय होना चाहिए।

राजनीतिक दलो के कुप्रभाव को रोकने के लिए एक आचार संहिता बनाई जानी चाहिए। सभी दलो के लोग मिलकर बैठें और ऐसे उपाय खोजें जिनसे राजनीति मे भी सदाचार का दर्जा ऊँचा हो। महात्मा गाँधी ने सदाचार और सच्चरित्रता का एक बहुत बडा आदर्श लोगो के सामने रखा था। वे सत्य और अहिंसा को त्याग कर आजादी भी लेने को तैयार नही थे। अत नैतिक मूल्यो के लिए हमे बाहर से कुछ ज्यादा सीखने जैसा नही है। यदि चुनाव के तरीको मे कुछ परिवर्तन कर दिया जाय, सच्चे जन-सेवको को ही टिकिट दिया जाय, नेताओ से सम्पत्ति का हिसाब मांगा जाय और भ्रष्ट आचरण के लिए दल की ओर से दण्ड दिया जाय तो इस बुराई को बहुत सीमा तक रोका जा सकेगा।

भ्रष्टाचार उन्मूलन का काम वस्तुतः चारित्रिक शिक्षा का ही काम है। यदि लोग चरित्रवान बन जाते हैं तो भ्रष्टाचार की समस्या ही समाप्त हो जायेगी। अत. चारित्रिक शिक्षा के लिए यहाँ हम कुछ सुझाव दे रहे हैं। यदि इन सुझावो के अनुसार काम किया गया तो निश्चय ही कुछ लाभ होगा—

(१) सारे देश भर मे जगह-जगह नैतिक पुनरुत्थान के लिए काम करने वाली सस्थाएँ सगठित की जानी चाहिएँ। सच्चरित्र व्यक्ति

इसके सदस्य बनें और वे अपने क्षेत्र मे नैतिक पुनरुत्थान के लिए कार्य करें। इसी प्रकार अनैतिक आचरणों पर भी वे दृष्टि रखें और जब भी अवसर आए, उसका विरोध करें।

(२) जगह-जगह ऐसी सस्थाएँ सगठित की जायँ जो सच्चरित्रता के लिए कुछ कसौटी कायम करें और जो लोग उस पर खरे उतरे उन्हे प्रतिवर्ष पुरस्कृत एव सम्मनित किया जाय। इससे एक अच्छा वातावरण बनने मे सहायता मिलेगी।

(३) प्रत्येक विद्यालय मे भी ऐसे विद्यार्थियों को पुरस्कृत और सम्मानित किया जाय जिनका आचरण वर्ष भर बहुत अच्छा रहा हो। जो विद्यार्थी अनैतिक आचरण के लिए दोषी पाए जायँ उन्हे विद्यार्थी सभा के द्वारा ही दण्डित किया जाय। परीक्षा मे नकल करने वालो की सर्वत्र निन्दा की जानी चाहिए।

(३) सरकारी कर्मचारियो और व्यापारियो मे भी ऐसे लोगो को सम्मानित करने तथा भ्रष्ट लोगो को सजा देने की व्यवस्था की जाय। भ्रष्ट लोगो के कार्य का जितना प्रचार किया जायगा उतना ही समाज मे उन्हे लज्जित होना पड़ेगा और भविष्य मे वे ऐसा करने से रुकेंगे।

(४) जीवन की दैनिक आवश्यकताएँ घटाने का प्रयत्न किया जाय और 'सादा जीवन उच्च विचार' के आदर्श को व्यावहारिक रूप प्रदान किया जाय। महिलाओ का सहयोग इस कार्य मे विशेष रूप से प्राप्त किया जाय। यदि वे घर की आवश्यकताओ को न बढने दें और पतियो को खोटी कमाई घर मे न लाने दें तो भ्रष्टाचार बडी जल्दी समाप्त हो जायगा।

(५) यदि विद्यालयो में धर्म और नैतिकता की शिक्षा अनिवार्य करदी जाय तो उसका भी अच्छा परिणाम होगा।

(६) छोटे लोग अधिकतर बडे-बडे नेताओ, उद्योग-पतियो और सरकारी कर्मचारियो से प्रेरणा ग्रहण करते हैं। अत यदि बडे लोग अपने आचरण का ध्यान रखे और अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करें तो उससे सहज ही छोटे लोगो को अच्छी चारित्रिक शिक्षा मिलेगी।

४४—स्वर्ण-नियन्त्रण

१—सोने की माया

२—चीनी आक्रमण और स्वर्ण-नियन्त्रण

३—उसके उद्देश्य

४—स्वर्ण-नियन्त्रण अधिनियम

५—प्रभाव

६—उपसहार

सर्वसाधारण को आकर्षित करने तक ही नही, अपितु पागल तक बना देने की क्षमता यदि किसी मे है तो वह सोने मे है। दुनियाँ मे जितनी हलचल हैं, जितनी दौड धूप है, जितनी कला बाजियाँ हैं—सब सोने के लिए हैं। सोने के बल पर बडे से बड़ा पाप दबाया जा सकता है, सोने के बल पर बडे से बडा पुण्य कमाया जा सकता है। ऐसी कौन-सी बात है जो सोना नही कर सकता ? उससे सब चीजें खरीदी जा सकती हैं। कहा जाता है कि मनुष्य जीवन का चरम उद्देश्य है—धर्म, अर्थ काम और मोक्ष को प्राप्त करना। अर्थ से यहाँ सोने का ही आशय है। वह मिल गया तो धर्म, काम और मोक्ष के मार्ग खुल जाते हैं। उसके बल पर खूब दान-पुण्य किया जा सकता है, तीर्थ-यात्राएँ की जा सकती हैं, पण्डे पुजारियो के आशीर्वाद प्राप्त किये जा सकते हैं, गरीबो की सेवा की जा सकती है और मन्दिर, धर्मशाला, घाट आदि बनवाये जा सकते हैं। और ये ही तो धर्म-साधना के माध्यम हैं। 'काम' तो सोने का दास ही है। सोने के इशारे पर महल तैयार हो जाते हैं, दास-दासी मिल जाते हैं, विलास वस्तुओं का अम्बार लग जाता है और कही नूपुरो की झकार सुनाई देती है तो कही रगीनी बरसने लगती है। और मोक्ष का सम्बन्ध भी तो बहुत कुछ इस जन्म के कार्यकलापो से ही रहता है। अत मोक्ष की साधना मे भी सोना बहुत कुछ योग देता है।

इस महत्त्व के कारण ही सोना आज हर आदमी का लक्ष्य बना हुआ है। आज ही नही, आदि काल से उसका महत्त्व अक्षुण्य है।

उसके लिए किसी ने भाई को छोडा, किसी ने माता-पिता को। किसी ने पत्नी और बच्चो को छोड़ा, किसी ने देश और समाज को। जिसे सोना मिल गया, उसे सब कुछ मिल गया। जिसे सोना नही मिला उसे कुछ नही मिला। इसलिए दुनियाँ पर सोने का जादू चल रहा है। पुरुषो की सारी शक्ति सोना कमाने मे खर्च होती है और भारतीय स्त्रियाँ तो सोने के गहनो पर न्यौछावर हैं। पुरुष सोना प्राप्त करके भौतिक समृद्धि प्राप्त करना चाहता है, स्त्रियाँ अपना सौंदर्य बढाना चाहती हैं, समाज मे प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाहती हैं। बच्चे तो जैसे सोना प्राप्त करने का प्रशिक्षण लेने मे ही अपना बहुत समय व्यतीत करते हैं और बूढे तो सोने को छोडना पसन्द ही नही करते। सोने का मोह जितना भारतीय स्त्री-पुरुषो को है उतना कम लोगो को होगा। वैसे सोने की माया तो सर्वत्र फैली हुई है। आज यद्यपि कागजी नोट का प्रचलन प्रारम्भ हो गया और सोने का बहुत-सा काम कागजी नोट करने लग गये हैं तथापि प्रत्येक भारतीय नर-नारी, चाहे गहने के रूप मे हो चाहे अन्य किसी रूप मे, सोने को अपने पास रखना बहुत पसन्द करता है।

लेकिन सन् १९६२ के अक्टूबर मास मे जब चीन ने हमारे देश पर अकारण हमला कर दिया और हमारे सामने जीवन-मरण का प्रश्न पैदा हो गया तो हमारी सरकार ने यह अनुभव किया कि जब तक कानून बनाकर सोना अधिक-से-अधिक मात्रा मे प्राप्त करने का प्रयत्न नही किया जायगा तब तक चीनियो के हमले का जवाब नही दिया जा सकेगा। स्वर्ण नियन्त्रण अधिनियम को जन्म देने का श्रेय इन्ही परिस्थितियो को है।

सन् १९६२ मे चीनियो ने अपने साम्राज्यवाद को फैलाने के लिए भारत पर अकारण आक्रमण कर दिया। हमारा देश इतने बडे आक्रमण के लिए तैयार नही था। न तो हिमालय पर लड़ने का प्रशिक्षण हमारे सैनिको को था न वहाँ सडकें, हवाई अड्डे आदि ही थे ताकि सैनिको और युद्ध-सामग्री को वहाँ भेजा जा सके। हमारी सेनाओ को निरन्तर पीछे हटना पडा। इस सकट के समय सारा देश

एक हो गया। उसने रुपया, सोना, खून तथा अन्य साधन सामग्री इकट्ठी की। लेकिन हमारे पास आधुनिक शस्त्रास्त्र नही थे। उन्हे तो अमेरिका, ब्रिटेन आदि से खरीद कर ही प्राप्त किया जा सकता था। विदेशो से माल मगवाने मे कागजी मुद्रा तो काम नही देती। वहाँ तो सोने की ही आवश्यकता पडती है। अत सरकार के सामने यह प्रश्न पैदा हुआ कि अधिक सोना इकट्ठा किया जाय ताकि बडी मात्रा मे हथियार मगवाये जा सकें। लोगो के पास गहनो के रूप मे तथा जमा किया हुआ सोना जब तक प्राप्त न हो तब तक यह काम नही हो सकता था। इधर भारत मे सोने का भाव १४० रु० प्रति तोले के आस-पास था जबकि उसका अन्तर्राष्ट्रीय भाव ६२ या ६३ रुपयो के आस-पास था। नतीजा यह होता था कि विदेशो से चोरी छिपे बहुत-सा सोना पाकिस्तान, चीन, ब्रिटेन, अमेरिका, ईरान आदि देशो से आ रहा था और इस अवैध व्यापार मे लगे हुए लोग मालामाल हो रहे थे। सरकार को इससे बडी हानि हो रही थी। अत सरकार ने स्वर्ण नियन्त्रण अधिनियम बनाने का निश्चय किया और थोड़े ही समय मे उसकी घोषणा कर दी।

उन दिनो मुरारजी देसाई वित्त-मन्त्री थे। उन्होने स्वर्ण-नियन्त्रण अधिनियम लागू करने की घोषणा की। इस अधिनियम के अनुसार स्वर्णकारो अथवा सोने का काम करने वाले किसी भी व्यक्ति पर सोने के गहने बनाने की पाबन्दी लगा दी गई। अब कोई भी व्यक्ति या स्वर्णकार सरकार से लाइसेन्स प्राप्त करके ही सोने का काम कर सकता था और जिन्हे लाइसेन्स दिया जाता था वे भी १४ केरेट से अधिक शुद्धता के गहने नही बना सकते थे। अर्थात् अब शुद्ध सोने के गहने बनाना एकदम रोक दिया गया। अब १४ केरेट से अधिक शुद्धता के गहने न तो कोई बेच सकता था न खरीद ही सकता था। इस कानून के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह घोषित करना अनिवार्य कर दिया गया कि उसके पास कितना सोना है। यदि आगे किसी व्यक्ति के पास घोषित परिमाण से अधिक सोना पाया गया तो जब्त कर लिया जायगा। अब प्रत्येक लाइसेन्स प्राप्त स्वर्णकार

के लिए अपने तथा ग्राहको के सोने का हिसाब रखना भी अनिवार्य कर दिया गया ताकि सरकार स्वर्णकारो और सोने के गहने बनाने वालो पर नजर रख सके और यह मालूम कर सके कि अवैध सोने के गहने तो नही बनाये जा रहे हैं।

इस अधिनियम के अनुसार एक कन्ट्रोल बोर्ड बनाया गया जिसमे एक अध्यक्ष तथा कम से कम २ और अधिक से अधिक ४ सदस्य नियुक्त करने की व्यवस्था की गई। इस बोर्ड को यह कार्य सौंपा गया कि वह सरकार को ऐसी सलाह दे और ऐसे कदम उठाए जिनसे सोने के उपयोग मे कमी हो और उसकी मांग घटे।

इस कानून के बनते ही स्वर्णकारो मे बडी खलबली मची। उनका धन्धा ही समाप्त हो गया। १४ केरेट के गहने बनाने के लिए कुछ तो महगे औजारो की आवश्यकता थी और कुछ प्रशिक्षण की भी। फिर यह भी अनिश्चित ही था कि लोग १४ केरेट के गहने बनाना पसन्द करेंगे या नही। स्वर्णकारो की स्थिति शरणार्थियो जैसी हो गई। सरकार ने उनको दूसरा धन्धा दिलाने के लिए आश्वासन दिये। यह घोषित किया गया कि उन स्वर्णकारो को, जिन्हे इस कानून के कारण बेकार हो जाना पडा है, नौकरियो मे रियायतें दी जावेंगी। उन्हे कुछ कर्ज देने की भी व्यवस्था की गई ताकि वे उस पूँजी से कोई अन्य धन्धा प्रारम्भ कर सकें। कुछ लोगो को थोडे समय तक कुछ मासिक सहायता भी दी गई। स्वर्णकारो के बालको को पुस्तको की सहायता दी गई तथा शुल्क से मुक्त किया गया। यद्यपि इससे स्वर्णकारो को कुछ राहत मिली तथापि उनकी समस्या हल नही हो सकी। यह देखकर सरकार ने आगे इस कानून मे कुछ सशोधन किया और जिन लोगो के पास पुराने गहने हैं उन्हे उन्ही के नये गहने उसी शुद्धता के बनवाने की सुविधा दे दी।

अब स्वर्ण-नियन्त्रण अधिनियम को बने काफी समय हो गया है और हम इस स्थिति मे है कि उसके परिणामो की समीक्षा कर सके। इसमे कोई सन्देह नही कि सरकार को विदेशी मुद्रा के लिए काफी सोना मिला, लेकिन सोने को अपने पास बनाये रखने की वृत्ति मे

कोई कमी नही आई । १४ केरेट के गहने प्रचलित हुए, लेकिन उनका भी कोई अच्छा स्वागत नही हुआ । चोरी छिपे सोने की खरीद और बिक्री चलती ही रही और विदेशो से सोने का अवैध आयात भी एकदम रूक नही पाया ।

स्वर्ण अधिनियम बनाते समय सरकार के सामने जो उद्देश्य थे उन्हे पूरा होने में अभी काफी समय लग जायगा । स्वर्ण के अवैध आयात को रोकने के लिए एक ओर सीमाओ के ऊपर कडी नजर रखनी पडेगी तो दूसरी ओर सोने का भाव कम करना पड़ेगा । जब तक अन्तर्राष्ट्रीय भाव मे और भारत के भाव मे अन्तर रहेगा अवैध आयात को रोकना समस्या ही बना रहेगा । दुर्भाग्य से स्वर्ण-नियन्त्रण अधिनियम बनने के बाद से सोने का भाव घटने के बजाय बढ़ा ही है । इसी प्रकार सोने के गहने पहिनने और सोने को जमा करके रखने की वृत्ति को बदलने मे भी काफी समय लगेगा । वर्षों के सस्कार ३–४ वर्ष मे समाप्त नही हो सकते । जैसे-जैसे जनता मे शिक्षा का प्रसार होगा और स्वार्थी तत्त्वो पर सरकार का नियन्त्रण बढेगा वैसे-वैसे स्वर्ण-नियन्त्रण मे निहित भावना को बल मिलता जायगा । स्वर्णकारो की समस्या तो कुछ अशो मे हल हुई है और वे दूसरे काम-धन्धो मे लग भी गये हैं लेकिन उनकी समस्या भी अपने हल के लिए समय की मांग कर रही है । इस कानून ने एक बार फिर यह सिद्ध कर दिया है कि जनता की मनोवृत्ति को बदले बिना केवल कानून बनाने से ही कोई समस्या हल नही हो जाती ।

४५—कृषि उत्पादन बढाने के मुख्य साधन

१—अन्न सकट-एक चुनौती

२—कृषि उत्पादन न बढ़ने के कारण

३—उत्पादन बढाने के प्रमुख साधन—

(अ) रासायनिक खादो का उत्पादन बढाना (आ) कृषि सहकारी समितियो का निर्माण (इ) सिंचाई की व्यवस्था

(ई) कृषि का आधुनिकतम ज्ञान (उ) कीटनाशक दवाओ का प्रयोग (ऊ) सहकारी खेती (ए) शासकीय सम्मान

४—उपसहार

भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ के ७० प्रतिशत लोग अपनी जीविका उसी से कमाते हैं। लेकिन हमारे देश की प्रति एकड उपज अन्य देशो की अपेक्षा बहुत कम है। पिछले १५ वर्षों के समय मे तीन पचवर्षीय योजनाएँ पूरी हुई लेकिन उत्पादन चार प्रतिशत से अधिक नही बढा। इधर जनसख्या तो प्रतिवर्ष २० प्रतिशत के लगभग बढ ही जाती है। फलत पिछले १५-२० वर्षों से हम लगातार अन्न सकट का सामना करते आ रहे हैं। हमने बार बार यह सकल्प दुहराया कि हम आगामी २-४ वर्षों मे आत्मनिर्भर हो जायेंगे लेकिन आज तक वैसा नही हो सका और अब तो वर्षा कम होने के कारण अकाल की ही छाया बढती हुई आने लग गई है। यद्यपि विदेशो ने—विशेपकर अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया आदि—इस वर्ष काफी अनाज भेजकर अन्न सकट को टालने मे हमारी बड़ी सहायता की है। लेकिन आखिर यह सब कब तक चल सकेगा? खाद्यान्न की समस्या आज हमारे अस्तित्व को ही चुनौती दे रही है। वह हमसे अपनी शक्तिभर श्रम की माँग कर रही है। हमारे सामने भी 'करो या मरो' के अतिरिक्त और कोई विकल्प नही है। अत. आइये हम विचार करे कि ऐसे कौन-से साधन है जिनके द्वारा हम इस समस्या को हल कर सकते हैं।

कृषि उत्पादन बढाने के साधनो पर विचार करने के पूर्व हमे यह देखना होगा कि वे कौनसे कारण हैं जो उत्पादन बढाने मे बाधक हो रहे हैं। यदि इन कारणो को ही समाप्त कर दिया जाय तो उत्पादन वृद्धि के मार्ग की बाधाएँ समाप्त हो जायेंगी। इस दृष्टि से विचार करने पर हमे ज्ञात होता है कि हमारी भूमि मे वनस्पति पोषक तत्वो की कमी होती जा रही है। पाँच हजार वर्षों से हमारे यहाँ कृषि हो रही है और कोई भी जमीन इतने वर्षों तक लगातार फसल देकर पोषक तत्वो को खो देती है। दूसरी बात यह है कि कृषि के सम्बन्ध मे

वैज्ञानिक दृष्टि से हमने कोई विशेष प्रगति नही की है। उसका शास्त्रीय ज्ञान हमारे पास अधिक नही है। हमारे किसान अशिक्षित है और पुराने तरीको से ही खेती करते है। तीसरे फसलो को बहुत कुछ नुकसान कीटाणुओ से होता है। विभिन्न प्रकार के रोग लग जाते है और फसल का २०-२५ प्रतिशत भाग नष्ट हो जाता है। सिचाई का विकास भी हमारे देश मे अच्छी प्रकार नही हुआ है। हमारी कृषि वर्षा पर निर्भर रहती है। यदि वर्षा समय पर और पर्याप्त नही हुई तो फसल नष्ट हो जाती है। किसानो को अच्छे औजार, बीज, खाद तथा अन्य साधन भी उपलब्ध नही हो पाते। कृषि उत्पादन के मार्ग की ये ही प्रमुख बाधाएँ हैं।

यदि हम दुनियाँ के विभिन्न देशो के कृषि उत्पादन पर एक दृष्टि डालें तो हमे मालूम होता है कि जापान, डेन्मार्क, रूस, अमेरिका आदि अनेक देशो का कृषि उत्पादन भारत की तुलना मे चार-पाँच गुना अधिक है। वस्तुत जमीन तो लगभग सब जगह समान ही है लेकिन इन देशो मे भूमि की वनस्पति पोषक शक्ति रासायनिक खाद देकर बढा दी जाती है और काफी फसल प्राप्त करली जाती है। जापान मे तो जनसख्या हमारे देश की अपेक्षा बहुत अधिक है लेकिन रासायनिक खाद की मदद से उन्होने उत्पादन चार-पाँच गुना बढा लिया है और उन्हे अनाज की कभी कमी नही रहती। डेन्मार्क कृषि उत्पादन की दृष्टि से सर्वोन्नत देश माना जाता है। वहाँ भी रासायनिक खाद की मात्रा बढाकर और फसल के रोगो को मिटाकर उत्पादन को बढाया गया है। रूस ने तो अपने यहा नाइट्रोजन का उत्पादन सन् १९६७ के अन्त तक ५० लाख टन कर देने का लक्ष्य निर्धारित किया है। रासायनिक खाद की औसत वहा प्रति व्यक्ति १५ किलो पडती है। कृषि-विशेषज्ञो का कहना है कि एक किलो नाइट्रोजन मे १५ किलो अनाज पैदा करने की शक्ति रहती है। यदि फास्फोरस एव पोटेशियम का उपयोग किया गया तो उत्पादन और भी बढ जाता है। अनुमान है कि यदि हम १० लाख टन रासायनिक खाद का उत्पादन कर ले तो खाद्यान्न के बारे मे आत्मनिर्भर हो जायेंगे। इसके बाद यदि हम प्रतिवर्ष २ लाख टन नाइट्रोजन का

उत्पादन बढाते गये तो बढती हुई जन-सख्या के अनुपात से अनाज भी बढता जायगा और कभी अकाल की स्थिति पैदा नही हो सकेगी।

वर्तमान युग मे विज्ञान की सहायता से ऐसे औजारो का निर्माण हो गया है जो पुराने औजारो की तुलना मे कई गुना ज्यादा काम करते है। इससे समय और शक्ति की वहुत बचत होती है। उदाहरणार्थ ट्रेक्टर बैलो की अपेक्षा कितने ही गुना अधिक जमीन जोत देता है। लेकिन हमारे किसानो के पास न तो इतना पैसा है कि वे उसे खरीद सके और न उनके पास इतनी जमीन ही है कि ट्रेक्टर को पूरा काम दे सके। अत आवश्यकता है कि कृषि उत्पादको की सोसायटी वनाई जाय ताकि सब मिलकर ऐसे औजार खरीद सकें तथा उनका पूरा-पूरा उपयोग कर सकें। अच्छे बीज की समस्या भी इससे हल हो जायेगी। कर्ज की व्यवस्था भी इन सोसायटियो के द्वारा भली-भांति हो सकेगी। सहकारी खेती इस दिशा मे बडी मदद कर सकेगी।

आज तक हमारे देश मे खेती वर्षा के सहारे होती रही है। जब-जब वर्षा न हुई तब-तब अकाल पडे और हजारो-लाखो लोग मर गये। अत अब भी वर्षा पर निर्भर रहना खतरनाक होगा। इससे लिए सिंचाई की व्यवस्था करनी होगी। इसमे कोई सन्देह नही कि भाखरा-नागल, चम्बल, हीराकुण्ड, माताटीला आदि अनेक बाँध बाँधे गये हैं और उनसे नहरें भी निकाली गई है लेकिन कही तो किसान सिंचाई का लाभ नही उठाते और कही नहरें आदि के निर्माण का काम चल रहा है। इन बडी योजनाओ के साथ अनेक छोटी-छोटी योजनाएँ भी प्रारम्भ करनी चाहिए ताकि जगह-जगह सिंचाई का क्षेत्र बढ सके। नये कुए खुदवाकर, तालाब बनवाकर, और छोटे बाँध बाँधकर यह काम बढाया जा सकता है। इससे निश्चय ही उत्पादन बढेगा।

कृषि उत्पादन बढाने के साधनो मे कृषि का आधुनिकतम ज्ञान भी बडा महत्व रखता है। यद्यपि हमारे देश मे कुछ कृषि महाविद्यालय बने हैं लेकिन अभी इनकी सख्या बहुत कम है। इनकी सख्या बढाई जानी चाहिए और ग्रामीण क्षेत्र के सभी हायर सेकण्डरी स्कूलो मे कृषि की

शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। यदि योग्य अध्यापको और कृषि विशेषज्ञो का मार्ग-दर्शन किसानो को मिलता रहे और इन कृषि विद्यालयो के 'एक्सपेरीमेन्टल फार्मस्' से किसानो को नई प्रणाली के प्रयोग दिखाए जायँ तो उनको निश्चित ही प्रेरणा मिलेगी।

फसलो मे प्राय कीडे लग जाते हैं और उससे बहुत-सी फसल नष्ट हो जाती है। अलग-अलग प्रकार की फसलो मे लगने वाले कीडे अलग-अलग होते हैं। किमानो को इनका कोई ज्ञान नही होता। वे नही जानते कि टमाटर के पत्तो मे क्या बीमारी लगती है और गन्ने मे कौनसी तथा उनका इलाज क्या है। नतीजा यह होता है कि प्रतिवर्ष हम जितना उत्पादन करते हैं उसमे से १५ से लेकर ३० प्रतिशत तक इन बीमारियो के कारण नष्ट हो जाता है। अत बीमारियो का अध्ययन और उनसे बचने के उपायो की जानकारी बडी आवश्यक है। यद्यपि सरकार ने इसके सम्बन्ध मे कुछ अधिकारी रखे है लेकिन इस सम्बन्ध मे भी बहुत कुछ करना शेष है। ऐसी दवाइयो का उत्पादन बढाया जाना चाहिए और उनका प्रयोग करके किसानो को बताना चाहिए।

सहकारी खेती भी कृषि उपज बढाने का बहुत बडा साधन सिद्ध हो सकता है। अभी हमारे किसान अलग-अलग अपनी-अपनी खेती करते है। पैसे के अभाव मे वे अच्छे खाद, बीज और औजारो का उपयोग नही कर पाते। उनका एक खेत यहा है तो दूसरा मील दो मील दूर और तीसरा और दो-तीन मील दूर। अत उसकी बहुत-सी शक्ति इन खेतो पर भटकते फिरने मे ही नष्ट हो जाती है। आपसी लडाई-झगडो के कारण विरोधी कभी घास जला देते हैं तो कभी खेतो मे जानवर छोड देते हैं। गाँवो मे ये प्रतिदिन के किस्से हैं। इससे किसान की उत्पादन क्षमता घटती जा रही है। सहकारी खेती इन सब बीमारियो का सुन्दर इलाज है। यदि सारे गाँव के लोग गाँव की सारी भूमि पर मिल-जुलकर खेती करें तथा अपनी जमीन के अनुपात से उत्पादन बाट लें तो उससे बहुत लाभ होगे। उससे न तो आपसी लडाई-झगड़े का

कोई स्थान रह जायेगा न किसी का कोई नुक्सान ही होगा। सरकार की ओर से नये औजारो की सहायता मिल सकेगी, खाद-बीज का भी प्रबन्ध हो सकेगा और कर्ज की समस्या भी सहकारी समिति की सहायता से हल हो जायगी। सहकारी खेती से ग्रामो मे नये युग का उदय होगा। किसानो को यह सब बातें समझाने की आवश्यकता है। यदि कही उन्हे सहकारी खेती का आदर्श दिखाया जा सके तो उससे भी लाभ होगा।

कृषि उपज बढाने के साधनो मे अधिक उत्पादन करने वालो के लिए पुरस्कार एव शासकीय सम्मान का भी बडा महत्त्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि भारत सरकार अधिक उत्पादन करने वाले कुछ किसानो को प्रतिवर्ष सम्मानित करती है और उन्हे पुरस्कार एव कृषि पण्डित की पदवी प्रदान करती है लेकिन इसे और व्यापक बनाने की आवश्यकता है। प्रत्येक जिले मे प्रतियोगिता आयोजित की जानी चाहिए और विजेताओ को पुरस्कृत किया जाना चाहिए।

कृषि उत्पादन बढाने के उपर्युक्त सभी साधनो की ओर भारत सरकार का ध्यान है और उन्हे किन्ही अशो मे किया भी जा रहा है। लेकिन एक तो इन सब प्रयत्नो को पूरी शक्ति के साथ नही किया जा रहा है, दूसरे इन सब प्रयत्नो मे पूर्ण सामञ्जस्य नही है। वस्तुत. उत्पादन बढाने का प्रश्न राष्ट्र के अस्तित्व का प्रश्न है। यदि हम उत्पादन नही बढा सके तो हमारे जीवन को ही खतरा उन्पन्न हो जायगा। अत. इस कार्य को प्राथमिकता दी जानी चाहिए और इसको पूरी ईमानदारी और शक्ति से करना चाहिए। कृषि उत्पादन का कार्य सम्पूर्ण ग्रामीण जीवन के उत्थान के वृहत् कार्यक्रम का ही एक अग है। अत विभिन्न कार्यक्रमो मे सामञ्जस्य की स्थापना बडी महत्त्वपूर्ण बात है। इधर सरकार ने साधन सहकारिताओ एव ग्रामीण उद्योग पुरियो की स्थापना, सहकारी खेती, जोता की हदबन्दी, ग्राम वनो आदि योजनाओ तथा चकबन्दी और सहकारी बिक्री सुविधाओ के विस्तार के द्वारा कृषि की उन्नति के लिए कुछ नये कदम उठाये हैं जिनसे अगले कुछ वर्षो मे इस क्षेत्र मे सफलता मिलने की आशा की जा सकती है।

४६—एशिया-विश्वयुद्ध का क्षेत्र

१—दो विश्व-युद्ध और उनसे शिक्षा
२—एशिया युद्ध का क्षेत्र बनता जा रहा है
३—एशिया को आग की लपटो मे डालने वाली शक्तियाँ
४—इनके नापाक इरादो के शिकार देश—भारत, वियतनाम, इण्डोनेशिया तथा पाकिस्तान
५—इसके लिए सबसे ज्यादा उत्तरदायी है—चीन ।
६—उपसहार

इस युग मे दुनियाँ के दो महायुद्ध (सन् १९१४ से सन् १९१९ तक और सन् १९३९ से ४५ तक) मुख्यत यूरोप की भूमि पर लडे गये । दुनियाँ के इतिहास मे यह पहला समय था जबकि कोई लडाई इतने बडे पैमाने पर और इतने लम्बे समय तक चलती रही । दुनियाँ के अधिकाश राष्ट्र इसमे सम्मिलित हुए और उन्होने किसी न किसी पक्ष को सहायता दी । इसीलिए इन्हे विश्वयुद्ध कहा जाता है । इन युद्धो मे धन और जन की जो अपार क्षति हुई उसने दुनियाँ के राजनीतिज्ञों को चौका दिया और वे यह सोचने के लिए विवश हुए कि यदि युद्धो से बचने की कोशिश नही की गई तो एक दिन ऐसा आ सकता है जबकि सारी दुनियाँ ही प्रलय की विभिषिका बन जाय और मानव का अस्तित्व ही समाप्त हो जाय । क्योकि दिन-प्रतिदिन विज्ञान की सहायता से जितने विनाशकारी शस्त्रास्त्र धडाधड तैयार हो रहे है उनका परिणाम सर्वनाश के अतिरिक्त और कुछ हो ही नही सकता । अत इन दोनो महायुद्धो के बाद जहाँ 'लीग आफ नेशन्स' और 'राष्ट्रसघ' जैसी सस्थाओ का निर्माण हुआ वहाँ दुनियाँ के बडे-बडे राष्ट्रो ने यह सबक भी सीखा कि यदि लडाई अनिवार्य हो ही जाय तो कम से कम उनकी भूमि पर न लडी जाय ताकि वह विनाश लीला दुहराई न जा सके ।

इसमे कोई सन्देह नही कि इन महायुद्धो ने दुनियाँ के बडे राष्ट्रो को एकदम साधु और अहिंसक नही बना दिया है । लडाई को बुराई समझकर छोडने का विचार कभी उनके मस्तिष्क मे ही नही आता ।

इसीलिए तो वे धडाधड विनाशकारी शस्त्रास्त्र तैयार करते जा रहे हैं। उनकी धारणा है कि दुनियाँ मे शान्ति स्थापित करने का यही एकमात्र तरीका है। जब हमारे विरोधी देखेंगे कि हमारे पास उनसे ज्यादा सेना है, उनसे अच्छे हथियार है तो वे लडाई करने का विचार ही नही करेंगे और इस प्रकार शान्ति रहेगी। यह वडा विवादाग्रस्त प्रश्न है और यह आवश्यक नही कि सभी उनसे सहमत हो। नतीजा यह होता है कि विनाशकारी शस्त्रो की यह होड कभी न कभी आपसी मुठभेड का अवसर ला ही देती है। दुनियाँ की वडी-वडी शक्तियाँ शक्ति सतुलन के लिए किसी भी विवादास्पद झगडे मे एक न एक पक्ष लेकर खडी हो जाती हैं और वह प्रदेश लडाई का मैदान बन जाता है। यद्यपि इस प्रकार की लड़ाइयाँ पिछले दिनो अफ्रीका और एशिया मे ही अधिक लडी गई हैं तथापि एशिया उनका प्रमुख केन्द्र रहा है। स्वेजनहर और काँगो के प्रश्न को लेकर अफ्रीका मे काफी तनातनी का वातावरण बना और कोरिया, कश्मीर एव वियतनाम के प्रश्न को लेकर एशिया मे। स्वेजनहर की समस्या जल्दी ही हल हो गई और काँगो मे भी अब शान्ति है लेकिन कोरिया के बाद कश्मीर और वियतनाम तो दुनियाँ का सिरदर्द बने हुए हैं। इनके माध्यम से शक्ति सतुलन की लडाई चल रही है और दुनियाँ के वडे राष्ट्र अपनी-अपनी शक्ति बढाने मे सलग्न हैं लेकिन युद्ध की विनाश लीला का स्थल उनकी भूमि नही, एशिया और अफ्रीका की भूमि बनी हुई है। यह उनके लिए तो अच्छा है लेकिन हम एशियावासियो के लिए बहुत बडा सकट बन गया है। हमे बलिपशु बनने के लिए विवश किया जा रहा है।

एशिया को आग की लपटो मे डालने का बहुत कुछ उत्तरदायित्व चीन पर है। चीन की नीति है पडौसी देशो पर बलात अधिकार जमाना, कम्युनिस्ट पार्टियो के द्वारा सभी देशो मे अपनी शक्ति वढाना, लोगो को शासन के विरुद्ध भडकाना और वहाँ की हुकूमत का तख्ता पलटना। तिब्बत को हडप कर उसके हौसले बहुत वढ गये हैं। अक्टूबर १९६२ मे भारत को हडपने के उद्देश्य से ही उसने हमला किया। भारत बडी विकट स्थिति मे फँस गया क्योकि वह इसके लिये तैयार

नही था। उसने जैसे-तैसे उसका मुकाबला किया। बाहरी सहायता के बिना जगखोर चीनियो के मुकाबले टिके रहना सम्भव नही था। अत उसे विदेशो से सहायता माँगनी पड़ी। अमेरिका और ब्रिटेन, जो चीन की शक्ति को बढता हुआ नही देखना चाहते, तुरन्त सहायता के लिए आगे आये और चीन को युद्ध बन्द करने की घोषणा करनी पडी। यदि वियतनाम की तरह भारत भी विदेशी सैनिको को चीन से लडने बुला लेता तो भारत ही विश्वयुद्ध का रगमच बन जाता। अमेरिका और ब्रिटेन तो चीन से निबटना ही चाहते हैं और चीन भी उनसे टक्कर लेने को तैयार है। अत भारत रणक्षेत्र बन जाता। हमारे योग्य प्रधान-मन्त्री ने भारत को आग की लपटो मे गिरने से बचा लिया।

भारतीय सीमा पर असफल होने के बाद चीन ने दक्षिण पूर्व एशिया मे अपना विस्तारवाद प्रारम्भ किया। उत्तरी वियतनाम, जो कि चीन समर्थक है, दक्षिणी वियतनाम से उलझ पडा। अमेरिका दक्षिणी वियतनाम की मदद के लिए आया और वहाँ भयकर लडाई हो रही है। रूस और चीन उत्तरी वियतनाम की मदद कर रहे हैं और अमेरिका दक्षिणी वियतनाम की। लडाई इतनी भयकर बनती जा रही है कि आसपास के देशो के लिए खतरा पैदा होता जा रहा है। लड़ाई को रोकने के सारे प्रयत्न विफल होते जा रहे है और चीन अपनी जिद्द पर ऐसा अडा हुआ है कि वह बातचीत तक करने को तैयार नही है। कुछ वर्षों पहले जैसा भयकर युद्ध कोरिया मे हुआ वैसा ही वियतनाम मे हो रहा है।

वियतनाम की लडाई चल ही रही थी कि चीन के दूसरे मोहरे इण्डोनेशिया ने मलाया पर घात लगाना प्रारम्भ किया। यद्यपि इस अवसर पर विवाद ज्यादा नही बढने पाया लेकिन दोनो देशो के बीच तनाव तो पैदा हो ही गया है। इण्डोनेशिया चीन समर्थक बनकर फूला नही समा रहा था लेकिन वहाँ कम्युनिस्टो ने राष्ट्रपति सुकर्णो का ही तख्ता पलटने का षडयन्त्र रचा। विद्रोह हुआ। कई लोग मारे गये। वहाँ के राष्ट्रवादियो की आँखें खुली और कम्युनिस्टो की शक्ति कम

करने का प्रयत्न किया गया लेकिन इण्डोनेशिया गृहयुद्ध का शिकार बन गया है। सेना ने वहाँ मत्ता सभाल ली है और पता नही शान्ति और व्यवस्था कायम होने मे कितना समय लग जाय।

भारत-पाक युद्ध भी इसी युद्धोन्माद की एक कडी था। चीन ने भारत को कमजोर बनाने के लिए पाकिस्तान को भडकाया और न जाने क्या-क्या सब्जवाग दिखाये। पाकिस्तान उसके जाल मे फँस गया और उसने कश्मीर मे घुसपैठिये भेजकर उसे अपने कब्जे मे कर लेने का षडयन्त्र रचा। जब भारत सरकार को इसका पता पडा तो उसने जवाबी कार्यवाही प्रारंभ की। परिणाम यह हुआ कि सीधी लडाई का मौका आ गया। एक ओर पाकिस्तान के पास अमेरिका के बहुत से हथियार थे और दूसरी ओर चीन की सहायता। वह फूला न समा रहा था। सोचता था एक ही दिन मे दिल्ली पर अपना झडा गाड देगा लेकिन भारतीय वीरो ने उसके दाँत खट्टे कर दिये। जिन सेवरजेट विमानो और विशाल टैंको पर उसे बडा घमण्ड था वे देखते ही देखते चकनाचूर कर दिये गये। चीन ने इस लडाई को बन्द न होने देने के लिए भारत को अल्टीमेटम देकर पाकिस्तान को बार-बार ढाढस बधाया लेकिन पाकिस्तान की शक्ति इतनी चूर-चूर हो गई थी कि उसे युद्ध विराम मानना ही पडा। आगे चलकर ताशकन्द समझौता हुआ और यह दुखद अध्याय समाप्त हुआ।

इस प्रकार एशिया विश्वयुद्ध का रग-मच बना हुआ है। एक ओर चीन का विस्तारवाद और दूसरी ओर अमेरिका, ब्रिटेन आदि की शक्ति सन्तुलन की या इस विस्तारवाद को रोकने की नीति एशिया को आग की लपटो मे धकेल रहे हैं। इन दोनो मे जो सबसे ज्यादा खतरनाक बात है वह चीन की रीति-नीति है। चीन हर देश पर अपना प्रभाव बढाने का प्रयत्न कर रहा है। अफ्रीका और एशिया के सभी देशो को अपने चगुल मे फँसाने के लिए, और जो फँस जाते है उन्हे हजम करने के लिए उसकी सारी शक्ति लग रही है। सह-अस्तित्व के सिद्धान्त मे उसका कोई विश्वास नही। वह नही चाहता कि एशिया मे शान्ति हो। उसका विश्वास है कि सैनिक शक्ति के द्वारा ही दुनियाँ को कम्युनिस्ट

बनाया जा सकता है। झूठ, षडयन्त्र, छल, प्रपञ्च और मारकाट यही चीन के साधन हैं। अपने इन हथियारो से लेस होकर वह एशिया ही नही, दुनियाँ के प्रत्येक विचारशील व्यक्ति का सिरदर्द बन गया है।

लेकिन सौभाग्य की बात यह है कि चीन के नापाक इरादे प्रकट होते जा रहे हैं। अफ्रो-एशियाई एकता के जिस ढिढोरे को पीटकर उसने एशिया और अफ्रीका के देशो को अपने चगुल मे फँसाने का प्रयत्न किया था उसका थोथापन प्रकट होने लगा है। इण्डोनेशिया और पाकिस्तान का चीनप्रेय ठण्डा पड रहा है और अफ्रीका के देशो ने भी चीनी चालों का पर्दाफाश करना प्रारम्भ कर दिया है। घाना मे अभी क्रान्ति हुई है और वहाँ से चीन समर्थक लोगो को निकाल बाहर किया गया है। अफ्रीका के अन्य तीन-चार राष्ट्रो ने भी ऐसा ही किया है। प्रसन्नता की बात है कि रूस को भी, जो कि एक कम्युनिस्ट राष्ट्र है, चीन की यह नीति पसन्द नही है और दोनो के मतभेद की खाई दिन प्रतिदिन गहरी होती जा रही है। सीमा सम्बन्धी विवाद भी दोनो देशो के बीच पैदा हो गया है। इसी प्रकार क्यूबा के साथ भी चीन के सम्बन्ध बिगड गये हैं। वह साम्यवादी देशो मे भी आदर का पात्र नही रहा है। हो सकता है जनमत का प्रभाव उस पर पडे और वह कभी इस खतरनाक मार्ग को छोड दे लेकिन आज तो उसने एशिया को युद्धक्षेत्र बनाकर एशियावासियो के जीवन को सकट मे डाल दिया है। जब तक उसके विस्तारवाद का सगठित होकर मुकाबला नही किया जायगा यह खतरा बना ही रहेगा।

४७—कहानी और उपन्यास

१—वर्तमान युग की कहानी
२—उसका रूप और परिभाषा
३—उपन्यास की परिभाषा
४—कहानी और उपन्यास का अन्तर—
(अ) उद्देश्य (आ) कथानक (इ) पात्र (ई) कथोपकथन
(ए) वातावरण एव शैली
५—उपसहार

वर्तमान युग की कहानियाँ 'गल्प', 'आख्यायिका', 'लघुकथा' आदि

नामो से पुकारी जाती है। यद्यपि इन पर पश्चिमी साहित्य का बहुत प्रभाव पडा है तथापि इन्हे जन्म देने का श्रेय भारत की पुरानी कहानियो को ही है। ये जन्मत भारतीय-होते हुए भी पाश्चात्य सस्कारो से पालित-पोषित हैं। वस्तुत. ये वर्तमान युग की नवीन आवश्यकताओ की उपज है। ये निरन्तर नई सामग्री, नया कथानक और नया विषय उपस्थित करके पाठको का मन बहलाती है। वे आजकल के व्यस्त जीवन मे मनोरजन के साथ-साथ ज्ञानवृद्धि का भी साधन हैं। चाहे रेल-मोटर का सफर हो, चाहे स्कूल के खाली घटे हो, चाहे घर हो, चाहे बाहर, कहानी सर्वत्र एक कुशल मित्र की भाँति हमारे मन बहलाव के लिए हमेशा प्रस्तुत रहती है। बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे एक ओर जीवन की प्रतिद्वन्द्विताओ ने समयाभाव और उतावलापन पैदा किया जिसके कारण बडे-बडे नाटको और उपन्यासो को देखना या पढना कठिन हो गया और दूसरी ओर अनेक मासिक-पत्र पत्रिकाएँ प्रारम्भ हुईं जो नित्य नई कहानियो की माँग करने लगी। फलत ऐसे स्वतःपूर्ण मनोरजन साहित्य की माँग हुई जो फालतू समय को भार स्वरूप होने से बचाये। कहानी ने इसी माँग को पूरा किया।

कहानी दिन प्रतिदिन रूप बदलती हुई विकास को प्राप्त हो रही है। अत उसकी परिभाषा देना सरल नही है। अग्रेजी के प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री एच० जी० वेल्स ने सक्षिप्तता को ही कहानी का एकमात्र लक्षण माना है और कहा है कि 'कहानी वह कथा है जो एक घटे मे पढी जा सके।' लेकिन कहानी की कुछ अपनी विशेषता भी है।

उपन्यास जीवन का पूरा चित्र है तो कहानी उसके एक पक्ष की झाँकी है। इसीलिए अग्रेजी लेखको ने उसे 'स्नेपशाट' अथवा जीवन का 'एक टुकडा' कहा है। वह स्वत पूर्ण होती है। उसमे न तो तन्तु बाहर से लाकर जोडने पडते हैं न सन्दर्भ देकर उसकी व्याख्या ही करनी पडती है। उसमे मुक्तक काव्य जैसा एकाङ्गी किन्तु पूरा चित्र रहता है। वह यद्यपि छोटी होती है तथापि किसी बडे तथ्य का उद्घाटन करती है और तथ्य जितना ही व्यापक होता है कहानी उतनी

ही उत्तम होती है। अमरिकी कहानीकार एडगर एलन पो के अनुसार "छोटी कहानी एक ऐसा आख्यान है जो इतना छोटा है कि एक बैठक मे पढा जा सके और जो पाठक पर एक ही प्रभाव के उत्पन्न करने के उद्देश्य से लिखा गया हो। उसमे ऐसी सब बातो का बहिष्कार कर दिया जाता है जो उस प्रभाव को अग्रसर करने मे सहायक न हो। वह स्वत पूर्ण होती है।" सर ह्यू वालपोल का कहना है कि "कहानी-कहानी होनी चाहिए। अर्थात् उसमे घटित होने वाली वस्तुओ का लेखा-जोखा होना चाहिए। वह घटना और आकस्मिकता से पूर्ण होना चाहिए। उसमे क्षिप्रगति के साथ अप्रत्याशित विकास हो जो कौतुहल द्वारा चरम बिन्दु और सन्तोषजनक अन्त तक ले जाय।" बाबू गुलाब राय ने इन सब विशेषताओ को एक सूत्र मे पिरोते हुए लिखा है—"छोटी कहानी एक स्वत. पूर्ण रचना है, जिसमे एक तथ्य या प्रभाव को अग्रसर करने वाली व्यक्ति केन्द्रित घटना या घटनाओ के आवश्यक परन्तु कुछ-कुछ अप्रत्याशित ढग से उत्थान-पतन और मोड के साथ पात्रो के चरित्र पर प्रकाश डालने वाला कौतुहलपूर्ण वर्णन हो।

डा० श्याम सुन्दरदास के शब्दो मे—"उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है।" मुन्शी प्रेमचन्दजी का कहना है—"मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यो को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।" एक अग्रेज विद्वान् शिपले के अनुसार—"उपन्यास एक लम्बे आकार की काल्पनिक कथा या प्राक्कथन है जिसके द्वारा एक कार्य कारण शृङ्खला मे बधे हुए कथानक मे वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्रो और कार्यों का चित्रण किया गया हो।" उपन्यास की चार सीमाएँ हैं। एक ओर वह इतिहास या जीवनी की सी वास्तविकता का अनुकरण करता है। दूसरी ओर उसमे काव्य का सा कल्पना-पुट, भावो का परिपोषण और शैली का सौन्दर्य रहता है। इसी प्रकार एक ओर उसमे दार्शनिक की सी जीवन मीमासा और तथ्योद्घाटन की प्रवृत्ति रहती है तो दूसरी ओर उसमे समाचार पत्रो की सी कौतुहल वृत्ति और वाचालता भी रहती है।

इस प्रकार कहानी और उपन्यास दोनो ही कथा साहित्य की सन्तान है और दोनो कई बातो मे समान है । दोनो कलात्मक रूप से मानव जीवन पर प्रकाश डालते है । लेकिन दोनो की अपनी-अपनी विशेषताएँ है और ये विशेषताएँ ही उन्हे एक दूसरे से पृथक करती हैं । दोनो मे केवल आकार का ही भेद नही है । हम यह नही कह सकते कि कहानी छोटा उपन्यास है अथवा उपन्यास बडी कहानी है । आजकल कहानी ने उपन्यास से बिलकुल पृथक एक नवीन साहित्यिक विधा के रूप मे प्रतिष्ठित होने का गौरव प्राप्त कर लिया है ।

ऊपर कहा जा चुका है कि कहानी जीवन की एक झलक या झाँकी है । झाँकी यद्यपि क्षणिक होती है तथापि उसमे प्रभावपूर्णता रहती है । कहानी लेखक केवल एक ही दृश्य पर सारा आलोक केन्द्रस्थ कर उसके प्रभाव को तीव्रतम बना देता है । वह धनुर्विद्याविशारद अर्जुन की तरह अपने निशाने को अचूक बनाने के लिये केवल आँख को और ज्यादा से ज्यादा सिर को, जिसमे आँख अवस्थित है, लक्ष्य करके तीर छोडता है । किन्तु उपन्यासकार का ध्यान सारे दृश्य पर रहता है । वह सारे दृश्य को सावधानी के साथ देखता है और उन सबका पूर्ण चित्र प्रस्तुत करना चाहता है ।

कहानी लेखक अपने पाठक को अन्तिम सवेदना तक शीघ्रातिशीघ्र पहुँचा देता है । वह एकदम पर्दा उठाकर और मनमोहन झाँकी दिखाकर पाठक के मन को मुग्ध कर देता है । लेकिन उपन्यासकार पाठक को अपने विश्वास मे लेता है । विश्वास एकदम पैदा नही होता । वह बहुत-सी बातो पर निर्भर रहता है । अत उपन्यासकार को बहुत कुछ करना पडता है । कहानीकार थोडे ही समय मे प्रभावपूर्ण दृश्य दिखा देता है, केन्द्रीभूत आनन्द प्राप्त करा देता है । उपन्यास घटना-प्रधान होता है और कहानी व्यञ्जना प्रधान । किसी को घटनाएँ अच्छी लगती हैं तो किसी को व्यञ्जना । अत कहानी और उपन्यास भिन्न-भिन्न रुचि वाले व्यक्तियो को सन्तुष्ट करने वाली साहित्यिक विधाएँ हैं ।

कहानी की सबसे बडी विशेषता है उद्देश्य । यही उसे उपन्यास से पृथक करती है । कहानी हमारी समस्याओ, चिन्तन और भावनाओं

को मूर्तरूप देती है। वह किसी समस्या का हल प्रस्तुत नही करती, वह तो केवल मार्गदर्शन करती है। हम अपने प्रश्नो, अपनी शकाओ और अपनी समस्याओ का समाधान कहानी मे ढूढना चाहते हैं किन्तु कहानी उत्तर नही देती। वह तो केवल उत्तर की ओर सकेत मात्र कर देती है। पाठक को अपनी सूझ-बूझ और चिन्तन के द्वारा उत्तर प्राप्त करना पडता है। उधर उपन्यास महाकाव्य के समान विशाल होता है। उपन्यासकार लम्बे-लम्बे उपदेश दे सकता है, विस्तृत विवेचन कर सकता है, किसी भी बात को विस्तार के साथ समझा सकता है और इस प्रकार अपने पाठक को सन्तुष्ट कर सकता है।

कथावस्तु उपन्यास और कहानी दोनो का ही एक प्रमुख तत्त्व है। लेकिन कथावस्तु के अभाव मे उपन्यास की कल्पना ही नही की जा सकती। उपन्यास मे वस्तु-विस्तार के लिए पर्याप्त अवकाश होता है। इसलिए आधिकारिक कथा के साथ कई प्रासगिक कथाएँ भी होती है। प्रकृति वर्णन, नगर, ग्राम, पर्वत आदि का वर्णन यथास्थान हो सकता है। उसमे राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियो का चित्रण सभव है। लेकिन कहानी तो छोटी होती है। उसमे इतना अवकाश कहाँ? कहानी का घटना-प्रधान होना अधिक सीमा तक सभव नहीं होता क्योकि अनेक घटनाओ के आयोजन के लिये कहानी के पास न तो स्थान होता है न समय। लेकिन उपन्यास की तुलना मे कथाविस्तार सीमित होते हुए भी कहानी का प्रभाव गहरा रहता है। उपन्यास मे उपदेश, नीति तथा लोक व्यवहार के कई व्याख्यानो के लिए स्थान रहता है किन्तु कहानी नीति-प्रधान नही बनाई जा सकती। वह या तो घटना-प्रधान होती है या वातावरण प्रधान अथवा चरित्र-चित्रण प्रधान। कहानी अनन्त शोभा से युक्त है। उसे किसी के सहयोग या सहायता की आवश्यकता नही।

जहाँ तक पात्रो का सम्बन्ध है, उपन्यास मे उसकी कोई सीमा नही है। उपन्यास मे चाहे जितने पात्र रखे जा सकते हैं। वह चाहे जिस पात्र को मृत्यु के मुँह मे ढकेल सकता है और चाहे जिसको जन्म दे सकता है क्योकि इन सबके लिए उसके पास पर्याप्त अवसर होता है

किन्तु कहानी मे पात्रो की संख्या सीमित होती है। उसके छोटे कलेवर मे सबका क्रमिक विकास दिखाना असमव होता है। उपन्यास मे चरित्र-चित्रण वर्णित होता हैं किन्तु कहानी मे व्यग्य होता है।

कथोपकथन की दृष्टि से कहानी और उपन्यास दोनो का कथोपकथन नाटकीयता का आनन्द उत्पन्न करता है। लेकिन कहानी की अपेक्षा उपन्यास मे कथोपकथन की अधिक आवश्यकता रहती है। दोनो मे कथोपकथन चरित्र-चित्रण करने मे सहायता देता है। कहानी का कथोपकथन संक्षिप्त, सशक्त सजीव और व्यञ्जनापूर्ण होता है। अगर ऐसा न हो तो कहानी सफल नही मानी जाती। उपन्यास मे चरित्र-चित्रण दो प्रकार से होता है। पहले प्रत्यक्ष रूप से दूसरे अभिनयात्मक रूप से। लेखक जहाँ पात्र का विश्लेपण स्वय करने लगता है वहाँ चरित्र-चित्रण प्रत्यक्ष कहा जाता है और जहाँ पात्रो के वार्तालाप के द्वारा होता है वहाँ परोक्ष। चरित्र-चित्रण प्रधान कहानियाँ और उपन्यास आजकल बडे लोकप्रिय हो रहे हैं। कहानी मे दोनो प्रकार के चरित्र-चत्रिण होते हैं। लेकिन वहाँ अवकाश कम होता है इसलिए विश्लेषण के लिए स्थान का अभाव रहता है।

कहानी और उपन्यास दोनो की शैली एक ही प्रकार की होती है। कुछ आत्म-चरित्र-प्रणाली, कुछ चरित्र-प्रधान तथा अन्य पात्रो द्वारा या ऐतिहासिक भी होती है। कुछ कहानियाँ वातावरण प्रधान तथा काव्यमय भी होती है। शैली की दृष्टि से दोनो मे शब्द-चयन, पदमैत्री, सुसगत वाक्य विन्यास, अकुण्ठित प्रभाव, सुन्दर अलकार योजना, चित्रोपमता, हास्य-व्यग आदि के पुट का होना आवश्यक है किन्तु कहानी मे शैली अपनी सक्षिप्तता के कारण अधिक व्यञ्जना-प्रधान होती है। उसमे गागर मे सागर भरने की प्रवृत्ति रहती है। व्यञ्जना, जोकि काव्य का प्राण है, उपन्यास की अपेक्षा कहानी मे अधिक मात्रा मे वर्तमान रहती हैं इसलिये वह काव्य के अधिक निकट आ जाती है। उधर उपन्यास का काव्यत्व बिखरा-सा रहता है किन्तु कहानी का गुण उसकी एक ध्येयता के कारण अन्तिम बिन्दु मे स्थित रहता हैं।

कहानी मे कथानक, चरित्र-चित्रण और वातावरण होते हैं किन्तु मुख्यता एक को ही मिलती है। शेष दो वहुत गौण हो जाते हैं। उपन्यास मे मुख्यता चाहे एक की ही रहे किन्तु तीनो को उचित विस्तार मिल जाता है। उपन्यास की सफलता सभी तत्वो के यथोचित समावेश मे है।

इसमे कोई सन्देह नही कि कहानी और उपन्यास के तत्त्व लगभग एकसे ही हैं किन्तु छोटा उपन्यास कहानी और वडी कहानी उपन्यास नही वन सकती। वे एक दूसरे के पूरक नही हैं। वे तो दो स्वतन्त्र साहित्यिक विधाएँ हैं। किसी को कहानी रुचिकर प्रतीत होती है, किसी को उपन्यास, लेकिन आज के व्यस्त-जीवन क्रम मे कहानी वडी लोकप्रिय वन रही है।

४८—नाटक

१—नाटक का महत्त्व
२—कथावस्तु
३—कथोपकथन
४—पात्र
५—चरित्र-चित्रण
६—रस और उद्देश्य
७—शैली
८—नाटक और एकाँकी का अन्तर

भारतीय काव्य-शास्त्र के विद्वानो ने काव्य के दो भेद किये है—दृश्य काव्य और श्रव्य काव्य। श्रव्य-काव्य मे शब्द के द्वारा कल्पना की सहायता से मानसिक चित्र उपस्थित किये जाते हैं। दृश्य काव्य मे कल्पना पर इतना वल नही देना पडता। उसमे हमको यही प्रतीत होता है कि हम वास्तविकता को देख रहे है। नाटककार की भाषा मे जो कमी रह जाती है वह अभिनेताओ के अभिनय या भाव-भगी से पूरी हो जाती है। अत नाटक मे श्रव्य-काव्य की अपेक्षा प्रभाव उत्पन्न करने की शक्ति अधिक होती है। सर्वसाधारण को, जो कि

अधिक-पढे-लिखे नही होते, नाटक का मूर्त और प्रत्यक्ष रूप अधिक बुद्धिगम्य होता है। नाटक को हम जनता की वस्तु कहते हैं। साधारण काव्य की अपेक्षा उसमे लोकहित और लोकरजन की भावना के साथ-साथ सामाजिकता भी अधिक होती है। काव्य-शास्त्र के विद्वानो ने तो 'काव्येषु नाटक रम्यम्' कहकर नाटक को महत्त्व की दृष्टि से सर्वोपरि माना है। नाटक के प्रमुख तत्त्व है—कथावस्तु, पात्र, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, अभिनय, उद्देश्य और शैली। योरोपीय समीक्षको ने जिसे उद्देश्य कहा है भारतीय समीक्षको ने उसी को रस कहा है।

नाटक के कथानक को कथावस्तु कहते हैं। अग्रेजी मे इसी को 'प्लाट' कहते हैं। उपन्यास मे तो कथा का विस्तार किन्ही नियमो से बँधा हुआ नही होता लेकिन नाटक के लिए यह आवश्यक होता है कि वह इतना ही बडा हो कि एक बैठक मे समाप्त हो जाय। उसकी कथावस्तु दो प्रकार की होती है—एक आधिकारिक या मुख्य, दूसरी प्रासगिक या गौण। आधिकारिक कथावस्तु उसे कहते हैं जिसमे प्रधान-पात्रो से सम्बन्ध रखने वाली कथा ही मुख्य विषय हो। उसका सूत्र प्रारम्भ से लेकर फल-प्राप्ति तक चलता रहता है। प्रासगिक कथावस्तु का सम्बन्ध सीधा नायक व नायिका से न रहकर अन्य पात्रो से रहता है। वह नाटक मे प्रसग-वश ही आती है। रामायण मे राम की कथा आधिकारिक कथावस्तु है और सुग्रीव की प्रासगिक। प्रासगिक कथावस्तु दो प्रकार की होती है—पताका और प्रकरी। जब प्रासगिक कथा का प्रसग आधिकारिक कथा के साथ अन्त तक चलता रहे तो वह पताका कहलाती है। जब यह कथा प्रसग बीच मे ही रुक जाय तो उसे प्रकरी कहते हैं।

कथावस्तु के आधार के सम्बन्ध मे तीन प्रकार के भेद माने गये हैं—प्रख्यात, उत्पाद्य और मिश्र। प्रख्यात कथावस्तु वह है जिसका आधार इतिहास, पुराण या जनश्रुति हो। नाटककार जिस कथावस्तु को अपनी कल्पना से गढता है उसे उत्पाद्य कहते हैं। जिस कथावस्तु मे इतिहास और कल्पना दोनो का मिश्रण होता है उसे मिश्र कहते हैं।

भारतीय नाट्य शास्त्र के अनुसार नाटक मे कार्य के व्यापार की पांच अवस्थायें मानी गई हैं—(१) प्रारम्भ, (२) यत्न, (३) प्राप्त्याशा, (४) नियतप्ति और (५) फलागम।

नाटक की कथावस्तु कथोपकथन या सम्वाद के रूप मे रहती है। कथोपकथन के माध्यम से नाटककार की कुशलता, शैली एव पद्धति को समझना सरल हो जाता है। पात्रो के भावो, विचारो, प्रवृत्तियो आदि के विकास, पतन आदि का वहुत कुछ ज्ञान कथोपकथन के माध्यम से ही होता है। कथावस्तु का अच्छा या बुरा होना उसी पर आधारित रहता है। वह चरित्र-चित्रण का भी प्रमुख साधन होता है। कथोपकथन सरल, सुन्दर, धारावाहिक एव सक्षिप्त होना चाहिये। नाटक सर्वसाधारण की वस्तु है और सर्वसाधारण का मनोरजन ही उसका उद्देश्य होता है अत उसका सरल होना बडा आवश्यक है।

कथोपकथन मुख्य रूप से ३ प्रकार का होता है—श्राव्य, अश्राव्य और नियतश्राव्य। जिसे पात्र रग-मच पर प्रकट रूप मे कहता है और जो सवके सुनने के लिये हो उसे श्राव्य कथोपकथन कहते है। जिसे पात्र आकाश की तरफ देख कर स्वय अपने से ही कहता है और जो दूसरे पात्रो के सुनने के लिए न हो उसे अश्राव्य कहा जाता है। उसे स्वगत या आत्मकथन भी कहा जाता है। जो कुछ पात्रो के सुनने योग्य हो और कुछ के लिए सुनने योग्य न हो उसे नियतश्राव्य कहते हैं।

नाटक मे पात्रो की प्रमुखता रहती है। उसके सभी तत्त्व पात्रो के आश्रित रहते हैं। नाटक के प्रधान पात्र को नायक कहा जाता है। जो कथा को फल की ओर ले जाता है वही नायक कहा जाता है। नायक को ही फल की प्राप्ति होती है। उसके द्वारा नाटक की कथावस्तु आगे बढती है। उसके उत्थान-पतन एव सघर्ष मे दर्शको की पर्याप्ति रुचि होती है। भारतीय नाट्य-शास्त्र मे नायक को सव प्रकार के उच्च और उदार-गुणो से युक्त माना गया है। भारतीय नाटककार नायक मे कुविचार दिखाना पसन्द नही करते। उनकी मान्यता है कि ऐसा करने से समाज के नैतिक विचारो को चोट लगती है। नायक चार प्रकार के माने गये है—(१) धीरोदात्त, (२) धीर-ललित,

(३) धीर-प्रशात और (४) धीरोद्धत्त। श्रेष्ठ वृत्तियो वाला, गम्भीर, क्षमाशील एव अहकार शून्य नायक धीरोदात्त कहा जाता है। धीर-ललित नायक कोमल स्वभाव वाला, सुखान्वेषी, कलाविद् एव निश्चिन्त होता है। धीर-प्रशात गम्भीर और शान्त होता है। धीरोद्धत्त मायावी, अभिमानी, आत्मप्रशसक, प्रचण्ड, चपल, धोखेबाज, अहकारी एव दर्पयुक्त होता है।

नायक का प्रतिद्वन्द्वी प्रतिनायक कहा जाता है। वह सदा धीरोद्धत्त होता है। प्रासगिक कथा का नायक पीठमर्द कहा जाता है। हँसोड, पेटू एव विचित्र वेशभूषा वाले पात्र को विदूषक कहा जाता है। यह नाटक को नीरस नही होने देता। नाटक मे इसका होना आवश्यक माना जाता है। नायक की भाँति नायिकाओ के भी कुछ भेद किये गये हैं। ये हैं—(१) स्वाधीनपतिका, (२) वासकसज्जा, (३) विरहोत्कठिता, (४) खण्डिता, (५) विप्रलब्धा, (६) प्रोशितपतिका, (७) अभिसारिका एव (८) कलहान्तरिता।

उपन्यास की तरह नाटक मे चरित्र-चित्रण विश्लेषणात्मक विधि से नही किया जाता। नाटक मे परोक्ष अथवा अभिनयात्मक रूप से ही चरित्र-चित्रण किया जाता है। नाटक के पात्र अपने वार्तालाप मे एक दूसरे के चरित्र के ऊपर प्रकाश डालते हैं अथवा कभी पात्र स्वय अपने चरित्र का उद्घाटन करते हैं। मनुष्य का कार्यकलाप भी उसके चरित्र का सबसे अच्छा परिचय दे देता है। सफल कथोपकथन वही माना जाता है जो कथा के क्रम को अग्रसर करने के साथ-साथ पात्रो के चरित्र पर भी प्रकाश डालता है। कथोपकथन जहाँ तक हो सके छोटा होना चाहिये और उसमे चरित्र पर अधिक से अधिक प्रकाश डालने की क्षमता भी होनी चाहिये। वे ही बाते और कार्य सामने लाये जाने चाहियें जिनमे चरित्र की कुँजी सन्निहित हो। कलाकार का कौशल इसी बात मे होता है कि वह छोटे-से-छोटे साधनो से अधिक-से-अधिक कार्य निकाल ले।

भारतीय परम्परा मे रस को जो महत्त्व प्राप्त है वही पाश्चात्य परम्परा मे उद्देश्य को दिया जाता है। हमारे देश मे रसो का वर्णन

सबसे पहले नाटक के ही सम्बन्ध मे किया गया था । नाटक मे रस का होना अनिवार्य समझा जाता था । पाश्चात्य देशो मे परोक्ष रूप मे नाटक मे उद्देश्य का होना आवश्यक माना जाता है । वहाँ के नाटको मे उद्देश्य या तो किसी प्रकार की जीवन-मीमासा के रूप मे रहता है या विचार सामग्री के रूप मे । इस उद्देश्य का सम्बन्ध आन्तरिक या वाह्य सघर्षो से होता है। नाटककार उद्देश्य सम्बन्धी विचार सामग्री उपस्थित करके पात्रो के द्वारा अपने उद्देश्य की पूर्ति करवाता है । वह स्वयं अपनी ओर से कुछ नही वोलता । आधुनिक-युग के वुद्धि-प्रधान नाटको मे उद्देश्य का विशेष स्थान रहता है ।

नाटको मे तथ्यो के साथ उनकी शैलियो का वर्णन भी आता है । शैली का मुख्य आधार है शब्द । शब्द ही वाक्य मे सार्थक रूप धारण कर भावो को अभिव्यक्त करते हैं । शैली भाषा मे प्रेषणीयता का गुण लाती है । वस्तुत प्रेषणीयता ही कला का मूल है । शैली के अग हैं—गुण, रीति एव वृत्ति । वृत्तियो का सम्बन्ध पात्रो के चलने-फिरने के ढग से होता है । यह ४ मानी गई हैं—कौशिकी, सात्वती, आरभटी और भारती । अभिनय नाटक का प्रधान तत्त्व माना जाता है । इसी से नाटक का उदय होता है । अभिनय ४ प्रकार का माना गया है—आगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक ।

एकाकी नाटक आधुनिक युग की देन है । प्रारम्भ मे ये नाटक समय की पूर्ति के लिए खेले जाते थे । नाटक देखने के लिए विशेष अतिथि प्राय देर से आया करते थे और उनकी प्रतीक्षा मे अन्य लोगो को खाली विठलाना अच्छा नही लगता था इसलिए आगतुको के मनोरजन के लिए नाटक के आरम्भ के पूर्व कुछ छोटे नाटकीय दृश्य दिखाये जाते थे। धीरे-धीरे ये पसन्द किये जाने लगे और उन्ही से आधुनिक एकाकी नाटक का जन्म हुआ । छोटे होने के कारण इनसे समय की वचत भी होती थी इसलिए समय की वचत चाहने वाले लोगो को ये वहुत पसन्द आये । यद्यपि सस्कृत मे भी रूपको के प्रकारो

मे एकाकी नाटक थे। जैसे—भाण, अक, व्यायोग, वीथि, प्रहसन आदि तथापि वर्तमान हिन्दी एकाकी नाटको ने पश्चिम के एकाकी नाटको से ही प्रेरणा प्राप्त की है। यूरोप मे भी इनका आविर्भाव समय के सदुपयोग के लिए ही हुआ था।

नाटक और एकाकी मे काफी अन्तर है। एकाकी को नाटक का लघु रूप नही कहा जा सकता। दोनो के सगठन मे बहुत कुछ समानता होते हुए भी एकाकी मे जो सरसता पाई जाती है वह नाटक में नही होती। एकाकि मे घटनायें कम होती है लेकिन उन्हे इस कुशलता से रखा जाता है कि वे दर्शक को सीधे लक्ष्य की ओर ले जायें। एकाकी मे जीवन के एक ही अग की ओर सकेत होता है। उपन्यास की भांति एकाकी यद्यपि सम्पूर्ण जीवन का रूप तो उपस्थित नही कर सकता तथापि वह जिस विशिष्ट रूप को लेता है उसका पूर्ण एव सघटित चित्र प्रस्तुत कर देता है। एकाकीकार एक कुशल होम्योपैथिक डाक्टर की तरह एक मीठी दवाई देता है जो खाते ही अपना प्रभाव दिखाती है। नाटक की तरह एकाकी मे चरित्रो को धीरे-धीरे-विकसित नही किया जाता। उसमे तो रगमच पर विकसित चरित्र ही लाये जाते है। एकाकीकार की शैली उस सर्चलाइट की तरह होती है जो ऊपरी तहो को छोडकर विशिष्ट लक्ष्य पर प्रभाव डालती है। एकाकी मे चरित्र विश्लेषण के साथ-साथ सुधार की ओर भी ध्यान रहता है। अधिकतर एकाकी वर्तमान समस्याओ को लिए हुए होते हैं। अत वे हमारे जीवन के अधिक निकट रहते है। आकार सूक्ष्मता के कारण निर्वाह भी भली प्रकार हो जाता है। हमारे वर्तमान एकाकीकार पश्चिम के एकाकियो से बहुत प्रभावित है। इसमें कोई सन्देह नही कि आजकल हिन्दी साहित्य मे एकाकी अपना विशेष स्थान रखने लगे है।

४६—एकाँकी नाटक

१—एकाँकी नाटक के सम्बन्ध मे कुछ भ्रान्तियाँ

२—नाटक और एकाँकी

३—एकाँकी नाटक की कथावस्तु

४—पात्र और चरित्र-चित्रण

५—कथोपकथन

६—रग मच निर्देश

७—उपसहार

एकाँकी नाटक हिन्दी-साहित्य का एक अत्यन्त आधुनिक, लोकप्रिय एव महत्त्वपूर्ण अग है। पर्दा उठने से लेकर पर्दा गिरने तक के समय को नाटक मे दृश्य कहा जाता है। ऐसे ३ से लेकर ५ अथवा अधिक दृश्यो का एक अक होता है। नाटक मे ५ से लेकर १० तक अक होते हैं। आजकल कुछ कम अक वाले नाटक भी लिखे गये हैं। एकाँकी वे नाटक हैं जिनमे केवल एक ही अक होता है। नाटक की भाँति एकाकी भी दृश्य काव्य है और टेकनीक की दृष्टि से रग-मच की रचना है। एकाकी मे पात्रो के कथोपकथन की सहायता से किसी एक घटना का स्वाभाविक चरित्र-चित्रण किया जाता है। साहित्य का एक अत्यन्त आधुनिक अग होने के कारण अभी लोगो के मन मे उसके सम्बन्ध मे कुछ भ्रान्तियाँ हैं। कुछ लोगो का कहना है कि एकाकी नाटक और सभाषण मे कोई विशेष अन्तर नही होता। किन्तु उनकी यह धारणा भ्रमपूर्ण है। एकाकी नाटक और सभाषण मे बडा अन्तर है। कथावस्तु, रचना कौशल तथा समय की दृष्टि से दोनो मे पर्याप्त अन्तर है। एकाकी की कथावस्तु का अपना स्वतन्त्र विन्यास होता है। उसका विकास केवल सभाषण के द्वारा नही होता। पात्रो की कियाएँ भी उसमे सहायता देती हैं। इसके अतिरिक्त पात्रो के अन्तर्द्वन्द्व का जो रूप एकाकी मे मिलता है वह सभाषण मे नही मिल सकता। अत एकाकी और सभाषण को एक नही माना जा सकता।

इधर, कुछ लोगो को यह भ्रान्ति भी है कि एकाकी और कहानी मे कोई भेद नही है। एकाँकी कहानी का रग-मच पर खेला जाने वाला सस्करण है। यहाँ दोनो को समान मानते हुए भी वे इतना भेद तो स्वीकार करते ही है कि कहानी का रस सुनने से प्राप्त होता है जबकि एकाकी का अभिनय देखने से। एकांकीकार को अभिनय कला का बडा ध्यान रखना पडता है। डा० रामकुमार वर्मा ने इस अन्तर को बडी ही सुन्दर उपमा से स्पष्ट किया है—"कहानी लज्जाशील नारी की तरह मच पर आने का साहस नही करती। वह पाठको के मनोमच पर ही अवगुण्ठन डाले हुए अपने पैर से जीवन की भावभूमि कुरेदती रहती है।"

कुछ लोगो की धारणा है कि एकाकी नाटक नाटक का ही एक छोटा सस्करण मात्र है। किन्तु उनकी यह मान्यता भी भ्रमपूर्ण है। वस्तुतः नाटक और एकांकी नाटक मे बहुत अन्तर है। एकाकी में एक घटना की शर्त होती है जबकि नाटक मे एक से अधिक घटनाएँ होती हैं। नाटक जीवन का एक विस्तृत भाग घेरे रहता है किन्तु एकाकी जीवन के एक अग को ही अपना लक्ष्य बनाता है। एकाकीकार जीवन की कोई ऐसी घटना चुनता है जो तीव्र और प्रभावोत्पादक हो। इस एक घटना का सूत्र सारे जीवन से जुडा रहता है। यदि ऐसा न हो तो उसे उस घटना की रिपोर्ट मात्र कहना होगा। किन्तु एकाकीकार की दृष्टि अपने लक्ष्य बिन्दु पर रहती है। वह प्रभाव और घटना की एकता का पूरा ध्यान रखता है।

नाटक मे ५ से लेकर १० तक अक होते हैं और उसे खेलने मे ढाई-तीन घण्टे लग जाते हैं। किन्तु एकाकी नाटक केवल एक ही अक का होता है और एक-आध घण्टे मे समाप्त हो जाता है। नाटक में मुख्य कथावस्तु के साथ प्रासगिक कथावस्तु भी जुडी रहती है किन्तु एकांकी मे प्रासगिक कथावस्तु के लिए कोई स्थान नही रहता। नाटक मे कथा के प्रत्येक पक्ष पर दृष्टि डाली जाती है। उसमे वर्णनात्मकता होती है किन्तु एकाकी मे केवल मतलब की बात ही कही जाती है। बडे नाटको मे कई पात्र रहते हैं किन्तु एकाकी मे उनकी सख्या चार-पांच

से अधिक नही होती । इसी प्रकार एकाकी नाटक की गति तीव्र होती है । जैसे-जैसे अन्त निकट आता है, वह तीव्रतर बनती जाती है किन्तु बडे नाटको मे ऐसा नही होता ।

कला की दृष्टि से एकाकी नाटक के लिए सबसे अधिक आवश्यक बात यह है कि वह अभिनय करने योग्य हो । उसके अन्य प्रमुख तत्त्व हैं—कथावस्तु, पात्र एव चरित्र-चित्रण तथा कथोपकथन । जहाँ तक कथावस्तु का प्रश्न है, एकाकी की कथावस्तु कलापूर्ण होनी चाहिए । उसमे स्पष्टता के साथ कौतुहलपूर्णता भी हो तो और अच्छा है । शिथिलता उसकी कथावस्तु का एक बहुत बडा दोष माना जाता है । अत एकाकीकार को उससे सदैव बचते रहना चाहिये । अन्तर्द्वन्द्व एकाकी की कथावस्तु का प्राण होता है । यदि एकाकीकार अन्तर्द्वन्द्व के चित्रण मे सफल हो गया तो एकाकी नाटक की सफलता सुनिश्चित हो जाती है ।

एकांकी की कथावस्तु के चार भाग किये जा सकते है—निरूपण, अवरुन्धन, उत्कर्ष और अपकर्ष । निरूपण मे प्रारम्भिक बातें रहती हैं । इस भाग मे पृष्ठ भूमि तो प्रस्तुत की ही जाती है लेकिन उसके साथ-साथ परिस्थिति, समस्या और उद्देश्य की ओर भी सकेत कर दिया जाता है । यह भाग काफी छोटा होना चाहिए । अवरुन्धन मे एकाकी-कार को कथा निरूपण का असवर मिलता है । कथा निरूपण द्वन्द्व के साथ होना चाहिए । अवरुन्धन की योजना एकाकी को चरम सीमा की ओर ले जाने के लिए होती है । अत उसमे उत्तरोत्तर उठान का होना आवश्यक होता है । तीसरा भाग उत्कर्ष सबसे अधिक विस्मय पैदा करने वाला होता है । इसकी प्रखरता अनुरुन्धन भाग पर निर्भर रहती है । अपकर्ष मे वह अपने अन्तिम परिणाम पर पहुँचता है । इसमे बडी विविधता होनी चाहिए क्योकि सभी एकाकी एक ही प्रकार से समाप्त नही होते । उनका अन्त चाहे जैसा हो किन्तु उनका कलापूर्ण होना आवश्यक है ।

एकाकी की कथावस्तु को सगठित बनाने के लिये सकलन-त्रय की योजना भी की जाती है । सकलन-त्रय का अर्थ है—समय, कार्य और

स्थान की एकता। यहाँ समय का मतलब उस अन्तर से है जो निरन्तर घटने वाली घटनाओ के बीच होता है। यह अन्तर कम से कम होना चाहिए। कार्य से अभिप्राय यह है कि पात्र एकाकी मे एक ही कार्य करे। स्थान की एकता का आशय यह है कि एकाकी मे वर्णित घटनाएँ ऐसी हो जो एक ही स्थान पर घटी हो। सक्षेप मे सकलन-त्रय का आशय यह है कि एक कार्य एक ही स्थान पर और एक ही समय मे हो। ऐसा न हो कि एकाकी मे जो घटना दी जा रही है उस पात्र के बचपन का वर्णन हो और वृद्धावस्था का भी, उसमे एक घटना हिन्दुस्तान मे घटित होती हुई दिखाई जाय और दूसरी अमेरिका मे। यदि ऐसा किया जायगा तो स्वाभाविकता नही रह सकेगी और एकाकी का प्रभाव कम हो जायगा।

पात्र और चरित्र-चित्रण भी एकाकी के शिल्प विधान में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। एकाकी मे प्राय· ४–५ से अधिक पात्र नही होते। इन पात्रो की दो श्रेणियाँ होती है। एक को हम प्रमुख पात्र कहेगे, दूसरे को गौण। प्रमुख पात्र अधिक से अधिक तीन हो सकते है। गौण-पात्र उनकी चारित्रिक विशेषता प्रदर्शित करने के लिये रखे जाते है। एकाकी के पात्रो का व्यक्तित्व बडा सबल होना चाहिए। एकाकीकार अपनी बात-बहुत थोडे शब्दो मे कहता है। अत उसे पात्रो की गतिविधि पर बडा ध्यान रखना पडता है। छोटी-छोटी-सी बात भी पात्र की चारित्रिक विशेषता को प्रकट करती है, उसे थोड़े से समय में अपने पात्रो के व्यक्तित्व की पूरी झलक देनी होती है। अत. इस सम्बन्ध मे सावधानी रखना आवश्यक है।

एकाकी नाटक का विकास पूर्णत कथोपकथन के सहारे होता है। अत कथोपकथन को उसका प्राण कहा जा सकता है। कथोपकथन एक ओर कथा को विकसित करता है तथा दूसरी ओर चरित्र-चित्रण मे भी सहायता करता है। उसके द्वारा पात्रो की चारित्रिक विशेषताएँ प्रकट होती हैं। असगत एव महत्त्वहीन कथोपकथन एकाकी के प्रभाव को समाप्त कर देता है। अत उससे बचते रहना चाहिए तथा ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि उसमे एक भी वाक्य—यहाँ तक कि एक भी

शब्द व्यर्थ न हो। लम्बे-लम्बे सम्वाद एकांकी को नीरस एवं निर्जीव बना देते हैं। उसे सरस, सजीव एव आकर्षक बनाने के लिए सम्वादो की स्वाभाविकता, सक्षिप्तता, सार्थकता एव प्रभावोत्पादकता का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए। प्रत्येक पात्र की भाषा और शैली मे भी अन्तर होना चाहिए। सभी व्यक्तियो के बोलने का ढग एक-सा नही होता। फिर योग्यता के अनुसार भी पात्रो की बातचीत मे अन्तर होना चाहिए। एक प्रोफेसर और किसान की बातचीत मे स्पष्टत अन्तर होगा। सारांश यह कि बातचीत सभी दृष्टियो से पात्रो के अनुकुल होनी चाहिए। कथोपकथन के सम्बन्ध मे एक और बात ध्यान रखना आवश्यक होती है और वह है सम्वादो मे गति और क्रियाकलाप की यथास्थान व्यवस्था। उनके अभाव मे कोई भी सम्वाद एकाकी को बोझिल बना देगा।

रङ्ग-मच निर्देश का भी एकांकी मे बडा महत्त्वपूर्ण स्थान है। एकाकीकार के लिए रङ्ग-मच सम्बन्धी अनेक निर्देश देना जरूरी होता है। इनसे लेखक का मन्तव्य समझने मे सरलता होती है और लेखक के लिए यह बताना भी सरल हो जाता है कि किसी पात्र के विश्वास, सस्कार, रुचि आदि क्या हैं। उदाहरण के लिए लेखक अपने निर्देश मे यह बताता है कि दीवार पर राणा प्रताप और शिवाजी के चित्र टगे हैं तो सहज ही हमे उसके विचारो की झलक मिल जाती है। रङ्ग-मच के निर्देश एकांकी नाटक को अभिनय के योग्य बनाते हैं और उसे उन बडी-बडी भूलो से बचाते हैं जिनसे खेले जाने के गुण मे कमी आ जाती है।

इस प्रकार एकाकी नाटक साहित्य का एक अत्यन्त आधुनिक अग है। वह बडी तेजी के साथ विकास करता जा रहा है और उसे लोकप्रियता भी बहुत अधिक मिलती जा रही है। आजकल शहरो और ग्रामो मे बडे-बडे नाटको के स्थान पर एकाकी ही अभिनय के लिए चुने जाते हैं और उनके अभिनय को देखने के लिए हजारो की भीड जमा होती रहती है। एकाकी समाज को बदलने के अच्छे माध्यम हैं।

उनके द्वारा जो बात कही जाती है वह मन पर अच्छा प्रभाव डालती है। एकाकी केवल घण्टे आधा घण्टे के ही समय मे खेला जाता है। अत उसमे कम समय लगता है और सघर्ष मे निरत मनुष्य को उससे अच्छा मनोरजन मिल जाता है। फिर उनके खेलने मे ज्यादा पैसे की भी आवश्यकता नही पड़ती और व्यवस्था मे भी कठिनाई नही होती।

५०—श्री लालबहादुर शास्त्री

१—भारत का प्रधान मन्त्रित्व

२—शास्त्रीजी का जीवन परिचय—बाल्यकाल

३—असहयोग आन्दोलन का प्रभाव

४—स्वतन्त्रता सग्राम में

५—असम और कश्मीर की समस्याएँ

६—प्रधान मन्त्रित्व और भारत-पाक-युद्ध

७—ताशकन्द समझौता और निधन

हिन्दुस्तान भयानक कठिनाइयो से भरा हुआ देश है। उसकी ये कठिनाइयाँ ही प्रधान मन्त्री के पद को कठिन बना देती है। जो व्यक्ति कम से कम चौदह घण्टे डटकर काम नही कर सकता वह इस देश का नेतृत्व नहीं सम्भाल सकता। प्रधान मन्त्री का पद काँटो का ताज है, शूलो की सेज है। वह जीने का, हुकूमत करने का पद नही, मरने का पद है, बलिदान की वेदी है। अत जब २७ मई १९६४ को प्रधानमन्त्री प० जवाहरलाल नेहरू का निधन हुआ तो उनका कोई उपयुक्त उत्तराधिकारी दिखाई ही नही देता था। जब शास्त्रीजी इस पद के लिए निर्विरोध चुन लिये गये तो सघर्ष टल जाने और इतने बड़े प्रश्न के सरलता एव शान्ति से निबट जाने पर यद्यपि देश ने शान्ति की सास ली तथापि अन्दर ही अन्दर यह कानाफूसी भी चलती ही रही कि वे देश का काम-काज ठीक प्रकार चला भी सकेंगे या नही। कुछ लोगो की इसी मनोभावना को पहिचान कर डा० रामधारीसिंह दिनकर ने अपने एक लेख मे लिखा था—"जो लोग लालबहादुरजी

को दूध और बताशा समझ रहे हैं वे गलती पर हैं। यह वह बकरी है जिसकी टाँगें इस्पात की हैं। बिनम्रता और सादगी शास्त्रीजी के सबसे बड़े गुण हैं लेकिन वे इतने सीधे नही हैं कि लोग उन्हे चकमा दे जाएँ। वे इतने विनम्र भी नही हैं कि जो चाहे उन्हे झुकादे।" और हमने देखा कि दिनकरजी की यह भविष्य वाणी अक्षरश सत्य निकली।

शास्त्रीजी का जन्म वाराणसी के मुगल सराय नामक ग्राम मे २ अक्टूबर १९०४ को हुआ था। उनके पिता श्री शारदाप्रसाद एक सामान्य शिक्षक थे। जब शास्त्रीजी डेढ वर्ष के ही थे तो पिता चल वसे। माता रामदुलारीदेवी ने उन्हे पाला पोसा। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा बडी निर्धनता मे हुई। जब वे वाराणसी पढने जाते थे तो अनेक बार नाव के किराये के पैसे न होने के कारण तैरकर गगा पार करते थे। दस वर्ष की अवस्था मे उन्होने छठी कक्षा पास करली और वनारस मे अपने मौसा रघुनाथप्रसाद के पास रहने लगे। वे हरिश्चन्द्र हाई स्कूल मे भर्ती हुए। यहाँ विद्यालय के अध्यापक श्री निश्कामेश्वर मिश्र का ध्यान उनकी ओर गया और उन्होने उनकी शिक्षा दीक्षा मे रुचि ली। वे उनका मार्ग-दर्शन करने लगे। मिश्रजी के ही प्रभाव से शास्त्रीजी के हृदय मे देशभक्ति के अकुर फूटे।

लेकिन शास्त्रीजी के सच्चे गुरु तो जीवन के वे कडवे अनुभव हैं जो उन्हे बार-बार मिलते रहे। निर्धनता और भोले-भाले स्वभाव ने उन्हे बार-बार कठिनाइयो के सामने ला खडा किया और शास्त्रीजी थे कि जो भी शिक्षा मिली उसे सिर माथे पर चढाते रहे। उन्होंने अनुभवो के प्रकाश मे ही जीवन का मार्ग बनाया और अन्तत इन कठिनाइयो को ही वरदान बना लिया। कहा जाता है कि वचपन मे एक बार उनके मित्रो ने एक बगीचे के फलो पर धावा बोलने का कार्यक्रम बनाया। शास्त्रीजी भी इस दल मे सम्मिलित हुए। कुछ अनुभव तो था नही। माली आया और अकेले वे ही पकड लिये गये। बस अब क्या था? सारा गुस्सा शास्त्रीजी पर ही निकला। उसने पिटाई शुरू की और देर तक पीटता रहा। जब वे बहुत तग आ गये तो उन्होने हाथ जोडकर माफी माँगी और कहा—"अब मुझसे ऐसी गलती

नही होगी ।" लेकिन माली ने माफ नही किया । बोला—"आगे गलती नही करोगे तो पिटाई भी कौन करेगा ? अब जो गलती की है उसकी सजा तो तुम्हे मिलनी ही चाहिए ।" लालबहादुर को कोई रास्ता दिखाई नही दे रहा था । बडी अनुनय विनय के साथ बोले—"मै गरीब हूँ । मेरे पिता नही हैं ।" लेकिन माली के दिल पर कोई असर नही हुआ । वह पीटता रहा और बोला—"यदि तू गरीब है और तेरे पिता नही हैं तब तो तुझे और भी अच्छी तरह से रहना चाहिए ।" माली के ये शब्द बालक लालबहादुर के दिमाग मे रास्ते भर गूँजते रहे और रास्ते भर ही नही, महीनो और वर्षों तक वे उन्हे भूल नहीं सके और शायद इन्हीं शब्दो ने उनके जीवन को मोड दिया ।

जब लालबहादुर १६ वर्ष के थे तब १० वी कक्षा मे पहुँच गये थे और हाई स्कूल परीक्षा की तैयारी कर रहे थे । इसी समय असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हुआ । बनारस मे असहयोग सम्बन्धी नागपुर प्रस्ताव का समर्थन करते हुए बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के कुछ प्रोफेसरो ने, जिनमे आचार्य कृपलानी भी थे, विश्वविद्यालय से त्याग-पत्र दे दिया । उन्होंने शहर मे प्रदर्शन किया और आन्दोलन मे सम्मिलित होने के लिए अध्यापको तथा विद्यार्थियो का आह्वान किया । इस आह्वान पर जिन लोगो ने पढना छोडा उनमे लालबहादुर भी थे । उनके निश्चय ने परिवार मे खलबली मचा दी । सबने उन्हे समझाया लेकिन वे अडिग रहे । इतना ही नहीं, वे आन्दोलन मे कूद पडे । सरकार ने उन्हे पकडा और जेल भेज दिया ।

जेल से छूटने के बाद वे काशी विद्यापीठ मे भर्ती हो गये । यह विद्यापीठ सरकारी शिक्षा का बहिष्कार करने वाले छात्रो के लिए बनी थी । इसके सारे अध्यापक राष्ट्रीय विचार के व्यक्ति थे । डॉ० भगवानदास इसके प्राचार्य थे और आचार्यों मे सम्पूर्णानन्द, आचार्य नरेन्द्रदेव, आचार्य कृपलानी एव श्री प्रकाश जैसे महान् देश भक्त थे । यहाँ चार वर्ष तक अध्ययन करके उन्होने दर्शन शास्त्र मे प्रथम श्रेणी मे शास्त्री परीक्षा पास की । यहाँ शास्त्रीजी को बडा स्वस्थ

वातावरण मिला। इस वातावरण ने उन्हे एक नवीन एव परिपक्व जीवन दृष्टि प्रदान की।

काशी विद्यापीठ से उपाधि प्राप्त करके शास्त्रीजी ने 'सर्वेन्ट्स ग्राफ दी पीपुल सोसायटी' की आजीवन सदस्यता स्वीकार की। इस सस्था की स्थापना पजाव केसरी लाला लाजपतराय ने सन् १९२१ मे की थी। सस्था ने उन्हे मुजफ्फर नगर मे हरिजन विकास कार्य करने के लिये भेजा। यहाँ कुछ दिन काम करने के बाद राजर्षि पुरषोत्तमदास टण्डन के साथ काम करने के लिए इन्हे इलाहाबाद भेजा गया। यह सस्था उन्हे जीवनयापन के लिए प्रारम्भ मे ६० रु० मासिक तथा बाद मे १०० रु० मसिक देती थी।

सन् १९२७ मे उनका विवाह ललितादेवी के साथ हुआ। शास्त्रीजी ने दहेज मे एक चरखा और कुछ गज खादी के अतिरिक्त और कुछ स्वीकार नही किया।

सन् १९३० मे असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। उन दिनो वे जिला काँग्रेस के मन्त्री थे। आन्दोलन को सफल बनाने के लिए वे जी-जान से जुट गये। जब वे इलाहाबाद के एक गाँव मे किसानो को लगान न देने की बात कह रहे थे तो गिरफ्तार कर लिये गये। ढाई वर्ष की सजा हुई। ढाई वर्ष बाद वे छूटे और फिर जेल गये। सन् १९४५ तक यही सिलसिला चलता रहा। इस अवधि मे वे ७ बार जेल गये। भारतीय स्वतन्त्रता के सग्राम मे एक सिपाही की भाँति लडते हुए उन्हे ९ वर्ष तक जेल मे बन्द रहना पडा। कारावास के दिनो उन्होंने गांधीजी के आदेशो के अनुसार सत्याग्रह के सारे नियमो का पालन किया और अपना अधिकाश समय अध्ययन, लेखन और चिन्तन मे व्यतीत किया।

स्वतन्त्रता सग्राम के दिनो मे शास्त्रीजी को कडी परीक्षाएँ देनी पडी लेकिन वे सदैव अडिग रहे। एक बार शास्त्रीजी की पुत्री गम्भीर रूप से बीमार हुई। यदि नियम के अनुसार शास्त्रीजी सरकार को यह लिखकर दे देते कि बाहर रहते समय वे किसी राजनीतिक गतिविधि मे भाग नही लेंगे तो उन्हे पेरोल पर छोड दिया जाता। लेकिन वे

ऐसा लिखने के लिए तैयार नही हुए। पुत्री की हालत गम्भीर देखकर जेलर ने उन्हे बिना लिखाये ही १५ दिन के लिए पेरोल पर रिहा कर दिया। लेकिन दुर्भाग्य से जिस दिन घर पहुँचे उसी दिन लडकी का स्वर्गवास हो गया। शास्त्रीजी ने उनका दाह सस्कार किया और अवधि के पूर्व ही जेल आ गये।

लगभग एक वर्ष बाद फिर ऐसी ही घटना घटी। उनकी चार वर्षीय पुत्री को मोतीभरा निकला। ज्वर १०४ डिग्री तक पहुँचा। शास्त्रीजी एक सप्ताह के लिए पेरोल पर छोडे गये। इस बार भी उन्होने लिखकर नही दिया था। सरकार ने ही उन्हे छोडा, जब जेल लौटने का समय आया तो पुत्र का बुखार १०६ डिग्री तक पहुँच गया। शास्त्रीजी लिखकर दे देते तो अवधि बढ जाती। तपते ओठो से बालक ने कहा—"बाबूजी मत जाओ।" शास्त्रीजी की आँखो मे आँसू छलछला आये लेकिन वे रुके नही। घर के लोगो को नमस्कार करके आगे बढ गये और पीछे मुडकर देखा तक नही। मनोव्यथा, पीडा, अर्थ-सकट और दुविधा के ऐसे कितने ही क्षण आये लेकिन वे सदैव अडिग रहे।

सन् १९४७ मे आजादी का स्वप्न पूरा हुआ। अब प्रदेश मन्त्रि-मण्डल से लेकर केन्द्रीय मन्त्रि-मण्डल के सदस्य और अन्त मे प्रधानमत्री तक का गौरव पूर्ण स्थान उन्हे प्राप्त हुआ। लेकिन जैसे निधनता और पीडा उन्हे अब तक तोड नही पाये थे वैसे ही अधिकार और वैभव भी उन्हे तोड नही पाये। उन्होने एक बार कामराज योजना के अनुसार मन्त्रि-मण्डल से त्याग-पत्र दिया और दूसरी बार रेलवे दुर्घटना के कारण। लेकिन नेहरूजी की नजर मे वे कुछ इतने जमे कि उन्होने उन्हे बार-बार बुलाया और बडे-से-बडे महत्त्व के काम सौंपे। वस्तुत शास्त्रीजी उसके योग्य भी थे। उन्होने बार-बार अपनी योग्यता, कुशलता, ईमानदारी, देशभक्ति और परिश्रमप्रियता की परीक्षा दी और बार-बार इसमे सफल हुए।

जब असम मे असमी और बगाली भाइयो के बीच झगडा हुआ और स्थिति बिगडी तो पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने उन्ही को भेजा।

शास्त्रीजी गये। वातावरण इतना विषाक्त था कि उनका कलेजा बैठ गया लेकिन वे हिम्मत हारने वाले प्राणी नही थे। वे लगातार प्रयत्न करते रहे और कडी मेहनत के बाद झगड़े को निपटा कर ही वहाँ से लौटे। इसी प्रकार जब कश्मीर मे 'पवित्र बाल' को लेकर उत्पात खडा हुआ तो उस आग को बुझाने के लिए भी नेहरूजी ने उन्ही को भेजा। वहाँ की स्थिति भी बडी विषम थी। समझ ही नही पडता था कि क्या किया जाय। लेकिन शास्त्रीजी ने अक्ल की बडी बारीकी दिखाई। उन्होने आदरणीय मुल्लाओ को इकट्ठा किया और उनसे पूछा कि यह बाल वही है या दूसरा। मुल्लाओ ने घोषणा की कि यह असली बाल ही है और समस्या सुलझ गई।

इस प्रकार जब अग्रेजी समर्थक विधेयक ससद मे पेश हुआ तब भी शास्त्रीजी ने बडी सूझ-बूझ, नम्रता और चतुराई से काम लिया। यह बडा बदनाम विधेयक था। लेकिन शास्त्रीजी की सूझ-बूझ और चतुराई से सारा विवाद ठडा हो गया। प्रारम्भ मे कुछ लोग कहते थे कि शास्त्रीजी ने पण्डित नेहरू को खुश करके अपनी तरक्की की राह बनाली है लेकिन उन्हे यह अनुभव करते समय न लगा कि शास्त्रीजी वस्तुत पण्डितजी को नही, देश की जनता को खुश करके आगे आये हैं। पण्डितजी भी उन्हे इसीलिए चाहते थे कि वे सच्चे अर्थों मे जनसेवी थे। पण्डितजी को ऐसे आदमी की ही तलाश थी जिसे अपनी गरज न हो, जो निश्छल और विनम्र हो, जिसके हाथ मे देश की बागडोर सौंपी जा सके और शास्त्रीजी मे ये सब गुण मौजूद थे।

नेहरूजी के बाद वे प्रधानमन्त्री बने। लोगो को शका थी कि वे इतना बडा उत्तरदायित्व निभा भी सकेंगे या नही। लेकिन उन्होंने अल्पकाल मे ही यह प्रमाणित कर दिया कि वे इस पद के सर्वथा योग्य थे। जब वे प्रधानमत्री बने, चीन से हार जाने के कारण भारत का मस्तक ग्लानि से झुका हुआ था। लेकिन उन्होने अपने डेढ वर्ष के ही शासनकाल मे उसे गौरवपूर्वक ऊँचा करके चलने योग्य बना दिया। हमारे इतिहास मे ऐसे कितने राजा और राजनीतिज्ञ हुए जिनके शासनकाल मे देश को वह चीज मिली जो उसे शास्त्री के शासनकाल मे मिली?

उनके समय भारतवासियो ने यह अनुभव किया कि वे भी वीर हैं, वे भी मरने-मारने मे माहिर हो सकते हैं और वे भी अपने शत्रुओ को धूल चटा सकते हैं।

शास्त्रीजी दृढता और आत्मविश्वास के आगार थे। भारत-पाक युद्ध के बाद जब अमेरिका ने अन्न तक के निर्यात पर प्रतिबन्ध लगा दिया तो शास्त्रीजी का कलेजा जल उठा। फिर भी उन्होने बड़े सयम से काम लिया। उनकी वाणी जरा भी गर्म नही हुई। उन्होने बडी सजीदगी से देशवासियो को यही सलाह दी कि "पेट पर रस्सी बाधो, साग-सब्जी ज्यादा खाओ, सप्ताह मे एक शाम उपवास करो। हमे जीना है तो इज्जत से जियेगे वरना भूखो मर जायेंगे। बेइज्जती की रोटी से इज्जत की मौत अच्छी रहेगी।" नतीजा यह हुआ कि इधर देश में आत्मतेज जाग्रत हुआ और उधर अमेरिका को अनाज भेजने के लिए विवश होना पड़ा।

युद्ध के समय उन्होंने जो मुस्तैदी दिखाई उसकी प्रशसा तो सारा भारत और सारी सेना करती है। लेकिन जब शान्ति का अवसर आया तो ताशकन्द में उन्होने रक्षा-मन्त्री चह्वाण से कहा था—"याद रखिये कि जिस दृढता से हमने युद्ध किया है उसी दृढता के साथ यहाँ हम शान्ति की भी खोज करेंगे।" और दुनियाँ ने देखा कि उन्होने उसी दृढता के साथ शान्ति की खोज की। ताशकन्द समझौते पर ९ जनवरी १९६६ को हस्ताक्षर हुए और उसी रात को वे सदा के लिए विदा हो गये। निश्चय ही वे भारत धर्म के अवतार थे। हमें अपना धर्म सिखाकर स्वर्ग चले गये।

५१—श्रीमती इन्दिरा गाँधी

१—जन्म और बाल्यकाल

२—पहली विदेश यात्रा

३—अध्ययन

४—विवाह

५—राजनीति में

श्रीमती इन्दिरा गांधी का जन्म १९ नवम्बर सन् १९१७ मे इलाहाबाद के आलीशान आनन्द-भवन मे हुआ। उनका जन्म जैसे नेहरू परिवार मे एक क्राति लेकर आया। उनके जन्म के बाद नेहरू परिवार के रहन-सहन का तरीका ही बदल गया। चार साल की आयु मे ही इन्दिराजी ने देखा कि लाखो रुपया कमाने वाले उनके दादा मोतीलाल नेहरू उन्हे गोद मे लेकर अदालत के कटघरे मे बैठे है और बिना अपना बचाव किये जेल जाने की तैयारी कर रहे हैं। चार साल की आयु मे ही जब उनके पिता प० जवाहरलाल नेहरू भी जेल चले गये और उदास इन्दिरा अपने घर अकेली लौटी तो उन्होने अपनी सारी गुडियाओ को इकट्ठा किया, उन्हे राजनीतिक भाषण दिया और फिर जेल भिजवा दिया।

जवाहरलालजी की भाँति इन्दिराजी का भी बचपन अकेलेपन मे बीता क्योकि उन दिनो आनन्द-भवन राजनीतिक हलचलो और तूफानो का केन्द्र बन गया था। घर के लोगो को इतनी फुरसत नही थी कि बच्चो की रुमानी दुनियाँ मे अपने को खोयें। अत राजनीति की आँधी के झोके बार-बार आते और इन्दिराजी के एकान्त बचपन को झकझोर जाते। वे देखती कि जब-तब पुलिस वाले आते है और घर की महगी-महगी कालीनो एव टेबल कुर्सियो को उठाकर ले जाते हैं। कांग्रेस की नीति थी कि सरकार को जुर्माना न दिया जाय। अत. जुर्माने के एवज मे पुलिस वाले ये चीजें ले जाते थे। तीन वर्ष की उम्र मे ही उन्हे कांग्रेस अधिवेशन देखने को मिला। इस अधिवेशन की अनेक महत्त्वपूर्ण बैठकें आनन्द भवन मे ही हुईं। इस प्रकार राजनीति मानो उन्हे अपनी घुट्टी मे ही मिली। बचपन मे वे 'जॉन आफ आर्क' की कहानियो से बहुत प्रभावित होती थी। 'जॉन आफ आर्क' ने फ्रांस

को इग्लैण्ड की दासता से मुक्त कराने के लिए युद्ध किया था। वे भी जॉन आफ आर्क की भांति भारत को मुक्त कराने के सपने देखती रहती।

९ वर्ष की आयु मे प० जवाहरलाल नेहरू सपरिवार स्वीटजरलैण्ड गये। यहाँ वे एक स्कूल मे भर्ती करवा दी गई। पौने दो वर्ष वहाँ रहने के बाद सब लोगो के साथ इन्दिराजी भी भारत आ गई। जेल यात्रा और स्वाधीनता सघर्ष के कारण प० जवाहरलाल नेहरू कभी उनकी शिक्षा की ओर ध्यान नही दे सके। अनेक बार स्वय इन्दिराजी को ही यह फैसला करना पडा कि वे किस स्कूल मे भर्ती हो। एक बार जब घर के सब लोग जेल चले गये तो वे स्वय पूना के एक स्कूल मे भर्ती हुई। लेकिन इन राजनीतिक हलचलो के कारण न तो उनकी पढाई-लिखाई क्रमबद्ध तरीके से हो सकी और न वे स्वय ही उसमे अपना ध्यान लगा पाईं। बारह वर्ष की आयु मे जब वे विदेश यात्रा से लौटी तो उन्होने बच्चो की एक वानर सेना बनाई। यह वानर सेना विदेशी कपडो की दुकानो पर धरना देने मे बडो की सहायता करती थी। जब वे पूना गईं तो वहाँ उन्होने गन्दी बस्तियो मे हरिजनो के बीच काम किया और स्वदेशी वस्तुओ का प्रचार किया। इस प्रकार वे राष्ट्रीय कार्यों के साथ-साथ पढती भी रही लेकिन पढाई का सिलसिला बार-बार टूटता रहा। उनकी सबसे अच्छी शिक्षा १३ वर्ष की आयु मे प्रारम्भ हुई। इन दिनो नेहरूजी ने उन्हे जेल से चिट्ठियाँ लिखना प्रारम्भ किया। यह सिलसिला ३ वर्ष तक चलता रहा। ये ही चिट्ठियाँ बाद मे 'विश्व इतिहास की झलक' नाम से प्रकाशित हुईं। इतना बढ़िया पोस्टल शिक्षण किसी पुत्री को अपने पिता से नही मिला होगा।

सन् १९३४ मे जवाहरलालजी और कमला नेहरू गुरुदेव से मिलने शाति-निकेतन गये और उनकी शिक्षा की व्यवस्था वही करदी। स्विस स्कूल से लौटकर इन्दिराजी शान्ति-निकेतन आईं। गुरुदेव इन्दिरा से बडे प्रभावित हुए और उन्होने नेहरूजी को एक पत्र मे लिखा था—'तुम्हारी बेटी बिलकुल तुम जैसी ही है।' थोडे दिन बाद माँ बीमार हुई और इन्दिराजी को फिर विदेश जाना पडा। सन् १९३६ मे कमला नेहरू की मृत्यु हो गई। साल भर बाद बीस वर्षीय इन्दिराजी ऑक्सफोर्ड के समरविल कॉलेज मे भर्ती हो गईं। यहाँ इन्दिराजी

कृष्ण मेनन के प्रभाव मे आई। उन्होंने श्री मेनन को अपना बुजुर्ग एव सलाहकार माना। वे लेबर पार्टी मे शरीक हुई और मजदूर दल के जुलूसो मे भाग लेने लगी। यहाँ वे अर्नेस्टवेविन और हेरल्ड लास्की जैसे राजनीतिज्ञो के सम्पर्क मे आई।

सन् १९४२ मे इन्दिराजी का विवाह फिरोज गाँधी के साथ सम्पन्न हुआ। श्री फिरोज गाँधी इलाहाबाद के ही रहने वाले थे। सन् १९३५ मे जब कमला नेहरू बीमार हुई तब फिरोज एक पारिवारिक मित्र के रूप मे मृत्यु शैया के पास ही थे। इलाहाबाद मे मोतीलालजी ने ही उन्हें कांग्रेस के कार्य की दीक्षा दी थी।

विवाह के छ महीने बाद ही उन्हे जेल जाना पडा। पति-पत्नी दोनो एक साथ गिरफ्तार हुए। बुखार की हालत मे वे जेल पहुँची। जेल मे न इलाज की सुविधा थी न घर से भेजी हुई चीजे ही मिल पाती थी। अंग्रेज सरकार महिलाओ के साथ ऐसा सख्त व्यवहार करके पुरुष-वर्ग को आतकित करना चाहती थी। न चिट्ठी-पत्री की समुचित सुविधा थी न मुलाकातो की। वे तेरह महीने जेल मे रही। सन् १९४४ से ४६ तक के २-३ वर्ष उनके जीवन मे सुखी गृहस्थ जीवन के वर्ष रहे। इन्ही दिनो राजीव और सजीव का जन्म हुआ।

सन् १९४७ मे भारत स्वतन्त्र हुआ। लेकिन देश मे साम्प्रदायिक दगे जोर शोर से शुरू हुए। नेहरूजी स्वय दिल्ली के मार्गों पर लोगो के हाथो से चाकू-छुरे छीनते हुए घूमते फिरे। इन दिनो गाँधीजी ने इन्दिराजी से कहा कि वे मुस्लिम मुहल्लो का दौरा करें। इन मुहल्लो में हैजा फैल रहा था और हिन्दू-मुस्लिम तनातनी तो चरम सीमा पर थी ही। इन्दिराजी ने मुहल्ले-मुहल्ले और घर-घर घूमकर लोगो में विश्वास पैदा किया। उन्होंने बीमारो के लिए डाक्टर और दवाओ का प्रबन्ध किया तथा भूखो के लिए अनाज भिजवाया। उनके अनवरत श्रम से हिन्दू मुस्लिम एकता कायम हुई। ५०० लोगो की सम्मिलित दावत हुई और सबने साथ-साथ भोजन किया।

इन दिनो इन्दिराजी से आग्रह किया जाने लगा कि वे चुनाव में खडी हों। प० गोविन्दवल्लभ पन्त ने भी उनसे यही बात कही लेकिन

इन्दिराजी ने इसे न माना। आखिर शिकायत गांधीजी तक पहुँची। इन्दिराजी ने गांधीजी से कहा—"मैं राजनीति के बजाय बच्चों के लालन-पालन में व्यस्त रहना चाहती हूँ।"

सन् १९४७ मे जब नेहरूजी भारत के प्रधानमन्त्री बने तो इन्दिराजी ने उनकी सेवा ही अपना मुख्य कार्य बना लिया। उन्होंने छ वर्ष तक अपने को राजनीति से दूर रखा और पिता की सेवा करती रहीं। सन् १९५१, सन् १९५७ में तथा फिर सन् १९६२ में हर समय उनसे चुनाव मे खडे होने का आग्रह किया गया लेकिन प्रत्येक बार उन्होंने इन्कार कर दिया। शायद उन्हे अपने पिता के कन्धो पर बैठकर ऊँचा उठना पसन्द नही था। लेकिन आखिर १९५५ में वे कांग्रेस कार्य-कारिणी की सदस्या बनाली गईं। नेहरूजी के साथ वे सन् १९५३ मे रानी एलिजाबेथ के राज्याभिषेक मे गईं। सन् १९५४ में चीन गईं और उसके बाद बाडुंग सम्मेलन मे। यहाँ वे कभी-कभी नेहरूजी से कह देती थी "पापा, जरा गुस्से पर काबू कीजिये।" सन् १९५५ में वे नेहरूजी के ही साथ रूस गईं और अमेरिका तो वे उनके साथ तीन बार सन् १९४९, १९५६ और १९६१ में गईं।

सन् १९५९ में श्री ढेबर ने कांग्रेस की अध्यक्षता छोड दी। कई नेताओ ने अध्यक्ष पद के लिए उनका नाम सुझाया। नेहरूजी को यह विचार पसन्द नही आया लेकिन उन्होने फैसला किया कि वे अपने प्रभाव का बिलकुल उपयोग नही करेंगे। बडी मुश्किल से इन्दिराजी को राजी किया गया। उन्होने नियोजन-पत्र भर दिया। उन दिनो नेताओ के जनसम्पर्क दौरे चल रहे थे और सब अपने-अपने क्षेत्रो की पैदल यात्रा कर रहे थे। इन्दिराजी अपने पिता के चुनाव क्षेत्र की पद-यात्रा में व्यस्त थी। २ फरवरी १९५९ को उन्हे समाचार मिला कि वे कांग्रेस अध्यक्ष चुन ली गई हैं। इस समय वे ४२ वर्ष की थी। नेहरू परिवार की वे तीसरी कांग्रेस अध्यक्ष थी और भारत की वे चौथी महिला थी जिन्होने कांग्रेस अध्यक्ष का पद ग्रहण किया था।

इन्दिराजी की इस सफलता से नेहरूजी का मन भर आया। ९ फरवरी को जब कांग्रेस ससदीय पार्टी ने उनका सम्मान किया तो

नेहरूजी ने उनके स्वागत मे भाषण करते हुए कहा—"इन्दिरा मेरी बेटी है और मैं उससे प्रेम करता हूँ। हो सकता है कि अगर मैं उसके बारे मे राय दूं तो वह पक्षपातपूर्ण हो। लेकिन मुझे उसके अच्छे मिजाज पर, काम करने की शक्ति पर, ईमानदारी पर और सजीदगी पर गर्व है। उसने मुझसे विरासत मे क्या सस्कार पाये, यह तो मैं नही जानता लेकिन मेरा ख्याल है कि उसे सारे अच्छे सस्कार अपनी माँ से मिले हैं।

कांग्रेस अध्यक्ष बनने पर उन्होने कई ऐसे काम किये जिन्होने वामपथी कांग्रेसियो को और कृष्ण मेनन को चौंका दिया। तिब्बत की बगावत के समय उन्होने दलाईलामा का स्वागत किया और चीन के दमन की निन्दा की। उन्होंने केरल की कम्युनिस्ट सरकार को बरखवास्त करवा कर कांग्रेस का लीग से गठबन्धन करवाया और कांग्रेस को जितवाया।

सन् १९६० मे उनके पति फीरोज गांधी की मृत्यु हो गई। इससे उन्हे बडा सदमा पहुँचा। अब उन्होने अपने को राष्ट्र की सेवा मे लगा दिया। सन् १९६१ के प्रारभ मे जब जबलपुर मे साम्प्रदायिक दगे हुए तो वे वहाँ सबसे पहले पहुँची और शान्ति स्थापना का कार्य करती रही। सन् १९६२ मे उन्होंने अमेरिका की भाषण यात्रा की। उसी वर्ष चुनाव थे। उन्होने लालबहादुर शास्त्री के साथ बैठकर कांग्रेस उम्मीदवारो की सूची बनाई और फिर चुनावी दौरे किये। सन् १९६४ मे नेहरूजी बीमार हुए और वह सब कुछ छोडकर उनकी सेवा मे लग गई। २७ मई को नेहरूजी के निधन से वे बिलकुल अकेली और दु खी रह गईं। शास्त्रीजी प्रधान-मन्त्री बने और उन्होने चाहा कि इन्दिराजी विदेश विभाग सभालें लेकिन इन्दिराजी ने कहा कि "मुझे अनुभव नही है अत' हल्का काम दीजिये।" शास्त्रीजी ने उन्हे सूचना और प्रसारण मन्त्रालय दिया। वे पहली बार मन्त्री बनी। मन्त्री के रूप मे उन्होंने कई देशो की सद्भावना यात्राएँ की। सन् १९६४ मे वे टी० टी० कृष्णमाचारी के साथ राष्ट्र मण्डल प्रधान-मन्त्री सम्मेलन में भी गईं। फिर उन्होंने रूस, यूगोस्लाविया, मगोलिया आदि की यात्रा की। रूस मे इन्दिराजी की बडी प्रतिष्ठा है।

फरवरी १९६५ मे जब मद्रास मे भाषा के प्रश्न को लेकर दगे हुए तो वे तुरन्त मद्रास पहुँची और लोगो को समझाने-बुझाने मे लग गईं। नेहरूजी की भाँति वे भी तूफान के मध्य-बिन्दु पर पहुँचने मे नही घबराती है। लालबहादुर शास्त्री की मृत्यु के बाद ४८ वर्ष की आयु मे वे भारत की तीसरी प्रधान-मन्त्री बनी। प्रधान-मन्त्री चुनी जाने के बाद उन्होने ससद सदस्यो से कहा—"मेरा दिल भर आया है। समझ नही पडता कि क्या कहूँ ? इस वक्त यहाँ खडे हुए मेरा मन बहुत पीछे चला गया है। गाँधीजी के चरणो मे मैं पली हूँ। मेरे पिताजी को तो आप सब जानते ही हैं। शास्त्रीजी से भी मेरा बडा पुराना और गहरा सम्बन्ध था। पडितजी ने प्रधान-मन्त्री पद से पहला भाषण देते हुए कहा था कि वे इस महान् देश के प्रथम सेवक हैं। इस अवसर पर मैं भी यही कहना चाहती हूँ कि मैं इस महान् देश की जनता की प्रथम सेविका हूँ। हमारा देश बहुत लम्बा-चौडा है और इसकी अनेक समस्याएँ हैं। इन्हे सुलझाने का प्रयत्न करना मेरा पहला कर्त्तव्य होगा।" हमारे देश को उनसे बडी-बडी आशाएँ है।

५२—भारतीय विदेश नीति . एक पुनर्विचार

१—पुनर्विचार की आवश्यकता
२—जनतन्त्रवाद और समाजवादी व्यवस्था बेमेल हैं
३—नेहरूजी ने भी पुनर्विचार की आवश्यकता अनुभव की थी
४—तटस्थता की नीति का मनमाना अर्थ
५—हमारी विदेश नीति के आधारभूत तत्त्व—जनतन्त्रवाद को बढावा देना, चीन के इरादो के प्रति सतर्कता
६—हमे अपने मित्रो को पहचानना चाहिए
७—उपसहार

जब से पिछला भारत-पाक युद्ध प्रारभ हुआ, भारतीय विदेश नीति पर पुनर्विचार करने की चर्चा बढती हुई दिखाई देने लगी है। भारत-पाक युद्ध के दिनो हमे यह देखकर बडी निराशा हुई कि अमेरिका, ब्रिटेन आदि जिन पश्चिमी राष्ट्रो को हम अपना मित्र समझते थे उन्होने

हमारे प्रति कोई सहानुभूति प्रदर्शित नही की । हमारे अनेक राजनीतिज्ञ एवं बड़े-बड़े पत्रकार यही कहते हुए पाये गये कि ब्रिटेन के रुख को देखते हुए हमे राष्ट्र मण्डल से अपने सम्बन्ध तोड लेना चाहिए । साधारण जनता मे भी अमेरिका और ब्रिटेन के समाचार पत्रो, रेडियो और राजनीतिज्ञो के पाकिस्तान समर्थक रुख को लेकर बडी नाराजगी व्यक्त की गई । दूसरी ओर रूस, युगोस्लाविया, हगेरी आदि साम्यवाद समर्थक राष्ट्रो ने हमारे पक्ष की सराहना की और अपना पूरा समर्थन प्रदान करने का वायदा किया । अत सहज ही हमारे सामने यह प्रश्न पैदा हुआ कि हमारे मित्र कौन हैं । जो सकटकाल मे हमारा साथ नही दे सके क्या अब भी हम आँख मूद कर उन्ही को अपना मित्र समझते रहे ?

ऐसा ही एक अवसर सन् १९६२ मे भी हमारे सामने उपस्थित हुआ था जबकि चीन ने हमारी सीमा पर आक्रमण किया था । अपनी तटस्थता की नीति के कारण हम साम्यवादी और साम्राज्यवादी दोनो ही प्रकार के राष्ट्रो को अपना घनिष्ठ मित्र समझ रहे थे । आक्रमण के दिनो हमने दोनो से मदद माँगी लेकिन युगोस्लाविया को छोडकर शेप साम्यवादी राष्ट्रो ने तो चीन को आक्रामक तक कहना स्वीकार नही किया । उन दिनो अमेरिका और ब्रिटेन, जिन्हे हम साम्राज्यवादी कहकर कोसा करते थे, हमारी मदद के लिए आगे आये । उन्होने तत्काल सहायता भेजी । फलत. चीन के हौसले पस्त हो गये और उसे अपनी सेना वापिस बुलाने की घोषणा करनी पडी । यह भी ऐसा अवसर था जब कि हमको अपनी विदेश नीति पर पुनर्विचार करना चाहिए था । लेकिन आक्रमण का खतरा टल जाने के बाद हम फिर तटस्थता की नीति पर चलने लग गये ।

जब से हमे स्वतन्त्रता मिली है हम ऊँची सिद्धान्तवादिता के स्वप्न-लोक मे विचरण करते रहे । एक ओर हमने जनतन्त्रवाद मे गहरी निष्ठा व्यक्त की, दूसरी ओर समाजवादी व्यवस्था कायम करने पर अपना ध्यान केन्द्रित किया । वस्तुत जनतन्त्रवाद और समाजवादी व्यवस्था मे कोई मेल नही है । नतीजा यह हुआ कि हमारी अर्थ-

व्यवस्था खिचडी बन गई। विचारो और सिद्धान्तो के इस अनमेल गठ-बन्धन को हमने बीसवी सदी की सामाजिक और आर्थिक बुद्धिमत्ता कहा और उसका बडा स्वागत किया। हम गभीर विचारो और डगमगाते हुए कदमो से आगे बढते रहे और हमने यह अनुभव ही नही किया कि इससे कितनी मुसीबतें खडी हो जायेंगी।

इधर तटस्थता की नीति के भँवर मे हमारी कश्मीर की समस्या उलझ गई। जब-जब राष्ट्रसघ मे उस पर विचार हुआ हमने देखा कि हमारा समर्थन करने वाला वहाँ कोई नही है और यदि रूस निषेधाधिकार का प्रयोग करके हमारी मदद न करता तो हमारी स्थिति बहुत बुरी हो जाती। हमारे प्रधान-मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने इस स्थिति को भाँप लिया था। अपने अन्तिम समय मे उन्होंने इस बात का प्रयत्न किया कि विदेश नीति मे कुछ सशोधन किया जाय और इसके लिए अपनी ओर से प्रयत्न भी किया। लेकिन पाकिस्तान ने अपने युद्धोन्माद और शत्रुतापूर्ण रुख से समझौते का मार्ग ही अवरुद्ध कर दिया।

तटस्थता की नीति की प्रेरणा हमे शायद ब्रिटिश राजनीतिज्ञो से मिली। वे एक ओर चीन से व्यापार बढाने की ताक मे थे लेकिन दूसरी ओर अमेरिका को नाराज भी नही करना चाहते थे। इस समस्या को हल करने के लिए हमारे प्रधान-मन्त्री के रूप मे उन्हे एक अच्छा औजार मिल गया। हमारे प्रधान-मन्त्री प० नेहरू ने जोरदार शब्दो मे अपनी सरकार की यह नीति घोषित की कि वे लाल चीन को मान्यता प्रदान करेंगे। बस फिर क्या था? राष्ट्र मण्डल के अन्य लालची राष्ट्र एक के बाद एक अपना मतलब सिद्ध करने के लिए उनका अनुसरण करते गये और चीन को मान्यता देते गये। इस प्रकार तटस्थता की नीति सम्माननीय बन गई तथा दुनियाँ के राष्ट्र अपने-अपने मतलब के लिये उसका उपयोग करते रहे। न केवल एशिया और अफ्रीका के नवोदित राष्ट्रो ने इस नीति को अपनाया बल्कि रूस जैसे राष्ट्र ने भी, जिसकी घोषित नीति ही है अन्य राष्ट्रो पर अपनी शासन व्यवस्था थोपना, इस नीति की पीठ थपथपाना प्रारभ कर दिया।

रूस ने अनुभव कर लिया था कि दुनियाँ के अन्य राष्ट्रो पर अपनी शासन व्यवस्था थोपने के लिए प्रत्यक्ष रूप से तो कुछ कर सकना बडा कठिन है । अत उसे तटस्थता के नाम पर अन्य राष्ट्रो मे घुसपैंठ करने का एक अच्छा अवसर मिल गया । भारत मे प्रवेश करने के लिए तो कश्मीर का रास्ता उसके लिए खुला था ही ।

वस्तुत अन्य राष्ट्रो की भाँति हमारी विदेशी नीति भी हमारे राष्ट्रीय हितो की साधना का एक माध्यम है। इन राष्ट्रीय हितो की जो भी कल्पना हमारे मस्तिष्क मे हो उसी से उसका निश्चय होना चाहिए । हमारी राष्ट्रीय नीति के कुछ बहुत बड़े लक्ष्य हैं—जनतन्त्रवाद, धर्मनिरपेक्षता, आर्थिक समृद्धि और सामाजिक न्याय। इन आदर्शो को जिन बातो से ताकत मिलती हो, जो हमारे राष्ट्रीय हितो को भली-भाँति साध सके, वही हमारी विदेशी नीति होनी चाहिये ।

इस दृष्टि से हमारी विदेश नीति का सबसे पहला और महत्त्वपूर्ण लक्ष्य होना चाहिए दुनियाँ भर की जनतन्त्रीय शक्तियो को मजबूत बनाना। इसका मतलब यह है कि यदि कही किसी जनतन्त्रीय और तानाशाह राष्ट्र के बीच युद्ध छिड जाय तो हमे जनतन्त्रीय राष्ट्र का समर्थन करना चाहिए और उसी के प्रति अपनी सहानुभूति प्रदर्शित करनी चाहिए । जो हमारे मूल्यवान् आदर्श हैं और जिन्हे हम पनपते हुए देखना चाहते हैं, उनके सम्बन्ध मे हमे साफ-साफ बोलने और कार्य करने मे किसी भी प्रकार की हिचकिचाहट नही रखनी चाहिए फिर भले ही पाकिस्तान का प्रश्न सामने आए चाहे वियतनाम का ।

भारत की विदेश नीति के सम्बन्ध मे विचार करते समय सबसे महत्त्वपूर्ण बात है चीन की बढती हुई शक्ति । चीन एशिया और अफ्रीका के सभी राष्ट्रो को हडपने के स्वप्न देख रहा है और इसके लिए वह शक्तिशाली सैनिक तैयारियाँ कर रहा है । इधर कम्युनिस्ट पार्टियो के द्वारा प्रत्येक देश मे उसकी घुसपैंठ भी चालू है ही । वह बाहर और भीतर दोनो ही ओर से हमला करने के लिए प्रयत्नशील है । इसमे कोई सन्देह नही कि भारत उसके मार्ग की एक बहुत बडी

बाधा है और इसे हटाने का वह पूरी शक्ति से प्रयत्न करेगा। अत हमारे सामने एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या हम अकेले ही उसका मुकाबला कर सकेंगे ? कहा जाता है कि जब भारत-पाक युद्ध के दिनो चीन ने भारत को तीन दिन का अल्टीमेटम दिया था तब अमेरिका ने वार्सा स्थित चीनी दूतावास के द्वारा यह चेतावनी दी थी कि यदि चीन भारत-पाक युद्ध मे हस्तक्षेप करता है तो अमेरिका उसे अपने ऊपर आक्रमण समझेगा। शायद इसी वजह से चीन धमकी देकर ही चुप हो गया।

रूस के प्रति भारत मे बडी सद्भावना है और रूसी भी भारत के प्रति मैत्री का बार-बार दावा करते हैं। लेकिन भारत-पाक युद्ध के दिनो जब सुरक्षा-परिषद् ने २० सितम्बर के प्रस्ताव के द्वारा युद्ध बन्दी एव सेनाओ की वापसी का प्रस्ताव पास किया तो रूस भी प्रस्ताव पास करने वाले राष्ट्रो मे से एक था। ताशकन्द समझौते के समय रूस ने सराहनीय प्रयत्न किया लेकिन उस समय भी उसका स्थान मध्यस्थ का था। यह ठीक है कि भारत को उसने आर्थिक सहायता दी है लेकिन पाकिस्तान को भी ऐसी ही सहायता देने की योजनाएँ बन गई हैं। चाहे पाकिस्तान को अमेरिकन ग्रुप से खीचने के इरादे से वह यह सब कर रहा हो चाहे उसे चीन के प्रभाव मे जाने से रोकना चाहता हो लेकिन वह इसके लिए प्रयत्नशील है।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जब कभी चीन और भारत के बीच सघर्ष प्रारम होगा रूस चाहते हुए भी भारत का साथ नही दे सकेगा क्योकि इससे उसके लिए अनेक आन्तरिक समस्याएँ खडी हो जायेंगी। इसके लिए हम उसे दोषी नही ठहरा सकते क्योकि यह उसकी अपनी नीति का प्रश्न है और उसे अपनी नीति निर्धारित करने का पूरा-पूरा अधिकार है। इसी प्रकार जनरल डिगाल और प्रेसीडेन्ट नासर से भी अधिक आशा रखना गलत होगा। उनके पास बार-बार अपने विशेष प्रतिनिधि भेजने से तो उल्टे उन्हे अनावश्यक महत्त्व प्राप्त होगा। इसका यह मतलब भी नही है कि उनकी उपेक्षा की जाय। हमारा

आशय यही है कि किसी पर भी आवश्यकता से अधिक भरोसा रखना खतरनाक होगा।

हमने यह निश्चय तो कर ही लिया है कि हम जैसे भी हो चीनी आक्रमण का मुकाबला अवश्य करेंगे, फिर भले ही हमे अकेले क्यो न लडना पडे। पिछले युद्ध मे पाकिस्तान ने जिस प्रकार मुँह की खाई है उससे ऐसा लगता है कि वह अब आगे हमले का इरादा करते हुए सौ-बार सोचेगा। लेकिन अपनी सफलता पर फूले न समाना भी खतरनाक होगा। आवश्यकता इस बात की है कि कश्मीर के प्रश्न को हल करने का प्रयत्न किया जाय। प० जवाहरलाल नेहरू, जयप्रकाश नारायण और विनोवा भावे जैसे महान् देश भक्तो ने बार-बार इस प्रश्न को हल करने के लिए जोर दिया। लेकिन दुर्भाग्य यह है कि इस पर गभीरता से विचार नही किया गया। यदि ऐसा किया जाय तो निश्चय ही कोई रास्ता निकल आएगा क्योकि इण्डोनेशिया के चीन प्रेय का परिणाम पाकिस्तान देख चुका है। यदि एक वार पाकिस्तान और भारत के सम्बन्ध ठीक हो जाते हैं तो जापान, फिलिपाइन्स, न्यूजीलैण्ड, लका, ब्रह्मा, आस्ट्रेलिया तथा अन्य छोटे राष्ट्रो से भी सम्बन्ध बनाये जा सकते है और चीनी आक्रमण के समय ये राष्ट्र मदद दे सकते है। यह ठीक है कि कश्मीर के प्रश्न पर कोई समझौता कर लेने पर भी पाकिस्तान हमारा सच्चा मित्र नही बन सकेगा लेकिन यदि हमारे और चीन के सघर्ष मे वह तटस्थ बन सके तो भी लाभदायक ही सिद्ध होगा। हमारी विदेशी नीति अव इसी आधार पर वननी चाहिए कि सकट के समय हमारे सहायक कौन होगे ? जो सकट के समय हमारे लिये उपयोगी सिद्ध हो सकें उन्ही से हमे घनिष्ठता बढाना चाहिए।
